ॐ अर्ह

जिनागम ग्रन्थमाला : ग्रन्थाङ्क ४

[परमश्रद्धेय गुरुदेव पूज्य श्रीजोरावरमलजी महाराज की पुण्य-स्मृति मे आयोजित]

पचम गणधर भगवत्सुधर्म-स्वामि-प्रणीत षष्ठ अग

ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र

[मूलपाठ, हिन्दी अनुवाद, विवेचन, परिशिष्ट युक्त]

प्रेरणा ☐
(स्व) उपप्रवर्त्तक शासनसेवी स्वामी श्री ब्रजलालजी महाराज

आद्यसयोजक तथा प्रधान सम्पादक ☐
(स्व०) युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी महाराज 'मधुकर'

सम्पादक ☐
मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल'

मुख्य सम्पादक ☐
स्व प शोभाचन्द्र भारिल्ल

प्रकाशक ☐
श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर (राजस्थान)

□ निर्देशन
अध्यात्मयोगिनी महासती साध्वी श्री उमरावकुंवरजी 'अर्चना'

□ सम्पादकमण्डल
अनुयोगप्रवर्तक मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल'
आचार्य श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री
श्री रतनमुनि
पंडित श्री शोभाचन्द्र भारिल्ल

□ तृतीय संस्करण
वीरनिर्वाण संवत् २५२४
मार्च, १९९७

□ प्रकाशक
श्री आगम प्रकाशन समिति,
श्री ब्रज-मधुकर स्मृति भवन
पीपलिया बाजार, ब्यावर (राजस्थान)
ब्यावर—३०५९०१
फोन ५००८७

□ मुद्रक
सतीश चन्द्र शुक्ल
वैदिक यंत्रालय,
केसरगंज, अजमेर—३०५००१

□ मूल्य १२५) रुपये

Published on the Holy Remembrance occasion
of
Rev Guru Shri Joravarmalji Maharaj

Fifth Ganadhar Sudharma Swami Compiled
Sixth Anya

NĀYĀ DHAMMAKAHĀO

[Original Text, Hindi Verion, Notes, Annotation and Appendices etc]

☐
Inspiring Soul
(Late) Up-pravartaka Shasansevi Rev Swami Shri Brijlalji Maharaj

☐
Convener & Founder Editor
(Late) Yuvacharya Shri Mishrimalji Maharaj 'Madhukar'

☐

☐
Translator & Annotator
(Late) Pt Shobhachandra Bharilla

☐
Publishers
Shri Agam Prakashan Samiti
Beawar (Raj)

Jinagam Granthmala Publication No 4

☐ Direction

Sadhvi Shri Umravakunwar 'Archana'

☐ Board of Editors

Anuyogapravartaka Muni Shri Kanhaiyalal 'Kamal'
Upachrya Shri Devendra Muni Shastri
Shri Ratan Muni
Pt Shobhachandra Bharilla

☐ Promotor

Munishri Vinayakumar 'Bhima'

☐ Third Edition

Vir-Nirvana Samvat 2524
June, 1997

☐ *Publisheers*

Shri Agam Prakashan Samiti,
Shri Brij-Madhukar Smriti Bhawan
Pipaliya Bazar, Beawar (Raj) [India]
Pin—305 901
Phone 50087

☐ Printer

Vedic Yantralaya
Kesarganj, Ajmer

☐ Price . Rs. 125/-

समर्पण

जिनकी तलस्पर्शी विद्वत्ता जैन सघ मे विश्रुत है, अनेकानेक दशाब्दियाँ जिनके उज्ज्वल आचार की साक्षी हैं, जो आगम-ज्ञान के विशाल भण्डार हैं, बहुभाषाविज्ञ हैं, ज्योतिष शास्त्र के मर्मज्ञ आचार्य हैं,

जिनका हृदय नवनीत-सा मृदुल एव मधुर है, जिनके व्यवहार मे असाधारण सौजन्य झलकता है, सघ जिनके लोकोत्तर उपकारो से ऋणी है,

उन महास्थविर श्रमणसघरत्न
पण्डितप्रवर उपाध्याय

श्री कस्तूरचन्द्रजी महाराज

के कर-कमलो मे

☐ मधुकर मुनि
(प्रथम सस्करण से)

प्रकाशकीय

श्रमण भगवान् महावीर की २५वीं निर्वाण शताब्दी के पावन प्रसग को स्मरणीय बनाने के लिए एक उत्साहपूर्ण वातावरण निर्मित हुआ था। शासकीय एव सामाजिक स्तर पर विभिन्न योजनायें बनीं। उसमे भगवान् महावीर के लोकोत्तर जीवन और उनकी कल्याणकारी शिक्षाओं से सम्बन्धित साहित्य प्रकाशन को प्रमुखता दी गई थी।

स्वर्गीय श्रद्धेय युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी म सा ने विचार किया कि अन्यान्य आचार्यों द्वारा रचित साहित्य को प्रकाशित करने के बजाय आगमो के रूप मे उपलब्ध भगवान् की साक्षात देशना का प्रचार-प्रसार करना विश्वकल्याण का प्रमुख कार्य होगा।

युवाचार्य श्री जी को इस विचार का चतुर्विध सघ ने सहर्ष समर्थन किया और आगम बत्तीसी के प्रकाशित करने की घोषणा कर दी। शुद्ध मूलपाठ व सरल सुबोध भाषा में अनुवाद, विवेचन युक्त आगमों का प्रकाशन प्रारम्भ होने पर दिनोदिन पाठको की सख्या मे वृद्धि होती गयी तथा अनेक विश्वविद्यालयो के पाठ्यक्रमो मे भी समिति के प्रकाशित आगम ग्रन्थो के निर्धारित होने से शिक्षार्थियो की भी मांग बढ़ गई।

इस कारण प्रथम एव द्वितीय सस्करण की अनुमानित सख्या से अधिक माग होने एव देश-विदेश के सभी ग्रन्थभडारों, धर्मस्थानों मे आगमसाहित्य को उपलब्ध कराने के विचार से अनुपलब्ध आगमो के पुनर्मुद्रण कराने का निश्चय किया गया। तदनुसार अभी तक सभी आगमों के द्वितीय सस्करण प्रकाशित हो गये हैं और अब ज्ञाताधर्मकथांगसूत्र का तृतीय सस्करण प्रकाशित हो रहा है। समयक्रम से अन्य आगमो आचाराग सूत्र, प्रथमभाग, उपासक दशांग सूत्र के भी तृतीय सस्करण प्रकाशित किये जायेंगे।

प्रबुद्ध सतों, विद्वानों और समाज ने प्रकाशनो की प्रशसा करके हमारे उत्साह का सवर्धन किया है और सहयोग दिया है, उसके लिए आभारी हैं तथा पाठको से अपेक्षा है कि आगम साहित्य का अध्ययन करके जिनवाणी के प्रचार-प्रसार मे सहयोगी बनेंगे। इसी आशा और विश्वास के साथ—

निवेदक

सागरमल बैताला	रतनचद मोदी	सायरमल चोरडिया	ज्ञानचन्द बिनायकिया
अध्यक्ष	कार्याध्यक्ष	महामन्त्री	मन्त्री

श्री आगम प्रकाशन-समिति, ब्यावर

श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

कार्यकारिणी समिति

१	श्रीमान् सागरमलजी बैताला	अध्यक्ष
२	श्रीमान् सेठ रतनचन्दजी मोदी	कार्यवाहक अध्यक्ष
३	श्रीमान् धनराजजी विनायकिया	उपाध्यक्ष
४	श्रीमान् भवरलालजी गोठी	उपाध्यक्ष
५	श्रीमान् हुक्मीचन्दजी पारख	उपाध्यक्ष
६	श्रीमान् दुलीचन्दजी चोरडिया	उपाध्यक्ष
७	श्रीमान् जसराजजी पारख	उपाध्यक्ष
८	श्रीमान् जी. सायरमलजी चोरडिया	महामन्त्री
९	श्रीमान् ज्ञानचन्दजी विनायकिया	मन्त्री
१०	श्रीमान् ज्ञानराजजी मूथा	मन्त्री
११	श्रीमान् प्रकाशचन्दजी चोपडा	सहमन्त्री
१२	श्रीमान् जवरीलालजी शीशोदिया	कोषाध्यक्ष
१३	श्रीमान् आर. प्रसन्नचन्दजी चोरडिया	कोषाध्यक्ष
१४	श्रीमान् माणकचन्दजी संचेती	परामर्शदाता
१५	श्रीमान् एस. सायरमलजी चोरडिया	सदस्य
१६	श्रीमान् मूलचन्दजी सुराणा	सदस्य
१७	श्रीमान् मोतीचन्दजी चोरडिया	सदस्य
१८	श्रीमान् अमरचन्दजी मोदी	सदस्य
१९	श्रीमान् किशनलालजी बैताला	सदस्य
२०	श्रीमान् जतनमलजी मेहता	सदस्य
२१	श्रीमान् देवराजजी चोरडिया	सदस्य
२२	श्रीमान् चन्दनमलजी चोरडिया	सदस्य
२३	श्रीमान् सुमेरमलजी मेडतिया	सदस्य
२४	श्रीमान् आसूलालजी बोहरा	सदस्य
२५	श्रीमान् तेजराजजी भण्डारी	सदस्य

**

सम्पादकीय : यत्किञ्चित्

ज्ञाताधर्मकथाङ्ग द्वादशागी मे छठा अग है और कथाप्रधान है। यद्यपि अ तगड, अनुत्तरोववाइय तथा विपाक आदि अग भी कथात्मक ही हैं तथापि इन सब अगो की अपेक्षा ज्ञाताधर्मकथा का अपना एक विशिष्ट स्थान है। कहना चाहिए कि यह अग एक प्रकार से आकर अग है। यद्यपि प्रस्तुत अग मे भी औपपातिक, राजप्रश्नीय आदि अगो के अनुसार अनेक प्ररूपणाएँ—विशेषत राजा, रानी, नगर आदि को जान लेने के उल्लेख—स्थान-स्थान पर उपलब्ध होते हैं, फिर भी अनेक कथा-आगमो मे ज्ञातासूत्र का ही प्रचुरता से उल्लेख हुआ है। अतएव आकर-अगो मे प्रस्तुत सूत्र की गणना करना अनुचित नही, सर्वथा उचित ही है।

ज्ञाताधर्मकथाङ्ग की भाषा भी पूर्वोक्त अगो की अपेक्षा अधिक प्रौढ और साहित्यिक है। जटिलता लिए हुए है। अनेक स्थल ऐसे भी इसमे है जहाँ बडी हृदयहारी आलकारिक भाषा का प्रयोग किया गया है और उसे पढते समय ऐसा आभास होता है कि हम किसी कमनीय काव्य का रसास्वादन कर रहे हैं। आठवें अध्ययन मे वर्णित अर्हन्नक श्रमणोपासक की समुद्रयात्रा के प्रसग मे तालपिशाच द्वारा किये गये उपसर्ग का वर्णन है और नौका के डूबने-उतराने का जो वर्णन किया गया है वह अत्यन्त रोचक है। उपमा और उत्प्रेक्षा अलकार वहाँ मन को मोह लेते हैं।

अन्यत्र ज्ञाताधर्मकथासूत्र की कथाओ मे अवान्तर कथाओ का उल्लेख मिलता है, वे सब कथाएँ आज उपलब्ध नही हैं तथापि उनकी एक स्पष्ट झलक आज भी देखी जा सकती है और वे अवान्तर कथाएँ लगभग सर्वत्र विद्यमान हैं। प्रथम अध्ययन मे मेघकुमार की कथा के अन्तर्गत उसके पूर्वभवो की कथाएँ हैं तो द्वितीय अध्ययन मे धन्य सार्थवाह की कथा मे विजय चोर की कथा गर्भित है। अष्टम अध्ययन मे तो अनेकानेक अवान्तर कथाएँ आती हैं। उनमे एक बडी ही रोचक कथा कूपमडूक की भी है। नौवें माकन्दी अध्ययन मे प्रधान कथा माकन्दीपुत्रो की है, मगर उसके अन्तर्गत रत्नद्वीप की रत्ना देवी और शूली पर चढे पुरुष की भी कथा है। द्वितीय श्रुतस्कन्ध मे भी ऐसी कथाएँ खोजी जा सकती हैं।

उदाहरण के रूप मे ही यहाँ अवान्तर कथाओ का उल्लेख किया जा रहा है। आगम का सावधानी के साथ पारायण करने वाले पाठक स्वय ऐसी कथाओ को जान-समझ सकेंगे, ऐसी आशा है।

प्रस्तुत आगम दो श्रुतस्कन्धो मे विभक्त है। टीकाकार के अनुसार प्रथम श्रुतस्कन्ध मे जो कथाएँ हैं, वे ज्ञात अर्थात् उदाहरण हैं और दूसरे श्रुतस्कन्ध की कथाएँ धर्मकथाएँ हैं। अनेक स्थलो पर टीकाकार का यही अभिमत उल्लिखित हुआ है। टीकाकार श्री अभयदेवसूरि ने अपनी टीका के प्रारम्भ मे इस प्रकार लिखा है—

'नायाणि त्ति ज्ञातानि उदाहरणानीति प्रथमश्रुतस्कन्ध, धम्मकहाओ—धर्मप्रधाना कथा धर्मकथा। ज्ञातता चास्यैव भावनीया—दयादिगुणवन्त सहन्त एव देहकष्ट उत्क्षिप्तैकपादो मेघकुमारजीवहस्तीवेति।'

तात्पर्य यह है कि 'नाय' का सस्कृत रूप 'ज्ञात' है और ज्ञात का अर्थ है उदाहरण। इस प्रकार प्रथम श्रुतस्कन्ध ज्ञात' है। इसे ज्ञात (उदाहरण) रूप किस प्रकार माना जाय ? इस प्रश्न का समाधान यह दिया गया है कि जिनमे दया आदि गुण होते हैं वे देह-कष्ट सहन करते ही हैं, जैसे एक पैर ऊपर उठाए रखने वाला मेघकुमार का जीव हाथी।

इस प्रकार प्रथम अध्ययन का उदाहरण के रूप मे उपसहार करने का समर्थन किया गया है। अन्य अध्ययनों को भी इसी प्रकार उदाहरण के रूप मे समझ लेना चाहिए।

दूसरे श्रुतस्कन्ध मे टीकाकार का कथन है कि धर्मप्रधान कथाओ को धर्मकथा जानना चाहिए।

ज्ञात और धर्मकथा का जो पृथक्करण टीकाकार ने किया है, वह पूरी तरह समाधानकारक नहीं है। क्या प्रथम श्रुतस्कन्ध की कथाओं को धर्मप्रधान कथाएँ नहीं कहा जा सकता ? यदि वे भी धर्मप्रधान कथाएँ हैं—और वस्तुतः उनमें धर्म की प्रधानता है ही—तो उन्हें धर्मकथा क्यों न माना जाय ? यदि उन्हें भी धर्मकथा मान लिया जाता है तो फिर उक्त पृथक्करण ठीक नहीं बैठता। ऐसी स्थिति में सूत्र का नाम 'ज्ञाताधर्मकथा' के बदले 'धर्मकथा' ही पर्याप्त ठहरता है, क्योंकि दोनों श्रुतस्कन्धों में धर्मकथाएँ ही हैं।

इसके अतिरिक्त दूसरे श्रुतस्कन्ध में जो धर्मकथाएँ हैं, क्या उनका उपसंहार मेघकुमार की कथा के समान ज्ञात—उदाहरण रूप में नहीं किया जा सकता ? अवश्य किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में दोनों श्रुतस्कन्ध 'ज्ञात' ही बन जाते हैं और उक्त पृथक्करण बिगड़ जाता है। अतएव प्रथम श्रुतस्कन्ध में ज्ञात और दूसरे श्रुतस्कन्ध में धर्मकथाएँ होने से प्रस्तुत अंग का नाम 'ज्ञातधर्मकथा' अथवा 'नायाधम्मकहाओ' है, यह अभिमत चिन्तनीय बन जाता है।

इस विषय में एक तथ्य और उल्लेखनीय है। श्री अभयदेवसूरि ने यह भी उल्लेख किया है कि प्राकृत-भाषा होने के कारण 'नाय' के स्थान पर दीर्घ 'आ' हो जाने से 'नाया' हो गया है। यह तो यथार्थ है किन्तु जब 'नायाधम्मकहाओ' का संस्कृतरूपान्तर 'ज्ञाताधर्मकथा' किया गया तो 'ज्ञात' का ज्ञाता' कैसे हो गया, इसका कोई समाधान सूरिजी ने नहीं किया है किन्तु उन्होंने भी अपनी टीका की आदि और अन्त में 'ज्ञाताधर्मकथा' शब्द का ही प्रयोग किया है—

ज्ञाताधर्मकथाङ्गस्यानुयोगः कश्चिदुच्यते।

—मंगलाचरणश्लोक

शिष्येणाभयदेवाख्यसूरिणा विवृत्तिः कृता।
ज्ञाताधर्मकथाङ्गस्य श्रुतभक्त्या समासतः ॥

—अन्तिम प्रशस्ति

प्रस्तुत आगम के नाम एवं उसके अर्थ के सम्बन्ध में अनेक प्रश्नों का समाधान होना अब भी शेष है। यद्यपि समवायांगटीका में इसके समाधान का प्रयत्न किया गया है, परन्तु वह सन्तोषजनक नहीं है।

प्रस्तावनालेखक विद्वद्वर श्रीदेवेन्द्रमुनिजी ने अपनी विस्तृत प्रस्तावना में इस सम्बन्ध में भी गहरा ऊहापोह किया है। अतएव हम इस विषय को यहीं समाप्त करते हैं। वास्तव में मुनिश्री ने प्रस्तुत आगम की विस्तारपूर्ण प्रस्तावना लिख कर मेरा बड़ा उपकार किया है। मेरा सारा भार हल्का कर दिया है। उस प्रस्तावना से मुनिश्री का विशाल अध्ययन तो विदित होता ही है, गम्भीर चिन्तन भी प्रतिफलित होता है। उन्होंने प्रस्तुत आगम के विषय में सर्वांगीण विचार प्रस्तुत किए हैं। आगम में आई हुई नगरियों आदि का ऐतिहासिक दृष्टि से परिचय देकर अनेक परिशिष्टों के श्रम से भी मुझे बचा लिया है। मैं उनका बहुत आभारी हूँ। अनुवाद और सम्पादन के विषय में किंचित् उल्लेख करके ही मैं अपना वक्तव्य समाप्त करूँगा।

श्रमणसंघ के युवाचार्य पण्डितवर्य मुनि श्री मिश्रीमलजी म. के नेतृत्व में आगमप्रकाशन समिति ने आगमों का मूलपाठ के साथ हिन्दी संस्करण प्रकाशित करना आरम्भ किया है। यह एक सराहनीय प्रयत्न है। इस पुनीत आयोजन में मुझे जो सहयोग देने का सद्भाग्य प्राप्त हुआ। उसके प्रधान कारण आगमग्रन्थमाला के प्रधान सम्पादक मधुकर मुनिजी हैं।

ज्ञाताधर्मकथा का सन् १९६४ में मैंने एक संक्षिप्त अनुवाद किया था जो श्री तिलोक-रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी से प्रकाशित हुआ था। वह संस्करण विशेषतः छात्रों को लक्ष्य करके सम्पादित और प्रकाशित किया गया था। प्रस्तुत संस्करण सर्वसाधारण स्वाध्यायप्रेमी एवं जिज्ञासुओं को ध्यान में रख कर समिति

द्वारा निर्धारित पद्धति का अनुसरण करते हुए तैयार किया गया है। इसमे स्थान-स्थान पर 'जाव' शब्द का प्रयोग करके इसी ग्रन्थ मे अन्यत्र आए पाठो को तथा अन्य आगमो मे प्रयुक्त पाठो को सक्षिप्त करने का प्रयास किया गया है। फिर भी ग्रन्थ अपने आप मे बृहदाकार है। अतएव ग्रन्थ अत्यधिक स्थूलकाय न बन जाए, यह बात ध्यान मे रख कर 'जाव' शब्द से ग्राह्य आवश्यक और अत्युपयोगी पाठो को ब्रैकेट मे दे दिया गया है, किन्तु जिस 'जाव' शब्द से ग्राह्य पाठ वारवार आते ही रहते हैं, जैसे 'मित्त-णाई', अन्न पाण, आदि वहाँ अति परिचित होने के कारण यो ही रहने दिया गया। कही-कही उन पाठो के स्थान टिप्पणी मे उल्लिखित कर दिए हैं।

कथात्मक होने से प्रस्तुत ग्रन्थ के आशय को समझ लेना कठिन नही है। अतएव प्रत्येक सूत्र-कडिका का विवेचन करके ग्रन्थ को स्थूलकाय बनाने से बचा गया है, परन्तु जहाँ आवश्यक प्रतीत हुआ वहाँ विवेचन किया गया है।

प्रत्येक अध्ययन के प्रारम्भ से पूर्व उसका वास्तविक रहस्य पाठक को हृदयगम कराने के लक्ष्य से सार सक्षेप मे दिया गया है।

आवश्यक टिप्पणी और पाठान्तर भी दिए गए हैं।

अनेक स्थलो में मूलपाठ के 'जाव' शब्द का 'यावत' रूप हिन्दी-अनुवाद मे भी प्रयुक्त किया गया है। यद्यपि प्रचलित भाषा मे ऐसा प्रयोग नही होता किन्तु प्राकृत नहीं जानने वाले और केवल हिन्दी-अनुवाद पढने वाले पाठको को भी आगमिक भाषापद्धति का किंचित आभास हो सकेगा, इस दृष्टिकोण से अनुवाद मे यावत' शब्द का प्रयोग किया गया है। 'यावत' शब्द का अर्थ है—पर्यन्त या तक। जिस शब्द या वाक्य से आगे जाव (यावत) शब्द का प्रयोग हुआ है, वहा से आरम्भ करके जिस शब्द के पहले वह हो, उसके बीच का पाठ यावत् शब्द से समझा जाता है। इस प्रकार पुनरुक्ति से बचने के लिए 'जाव' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

अन्त मे तीन परिशिष्ट दिए गए हैं। प्रथम परिशिष्ट में उपनय-गाथाएँ दी गई हैं और उनका हिन्दी भाषा मे अर्थ भी दे दिया गया है। *ये गाथाएँ मूल आगम का भाग नहीं हैं, अतएव इन्हें मूल से पृथक्* रक्खा गया है। फिर भी अध्ययन का मर्म प्रकाशित करने वाली हैं, अतएव पठनीय हैं। दूसरे परिशिष्ट मे प्रस्तुत आगम मे प्रयुक्त व्यक्तिविशेषो की अकारादि क्रम से सूची दी गई है और तीसरे मे स्थल-विशेषो की सूची है जो अनुसधान-प्रेमियो के लिए विशेष उपयोगी होगी।

मूलपाठ के निर्धारण मे तथा 'जाव' शब्द की पूर्ति मे मुनि श्री नथमलजी म द्वारा सम्पादित 'अग-सुत्ताणि' का अनेकानेक स्थलो पर उपयोग किया गया है, एतदर्थ उनके आभारी हैं। अर्थ करने मे श्री अभयदेव-सूरि की टीका का अनुगमन किया गया है। इनके अतिरिक्त अनेक आगमों और ग्रन्थों से सहायता ली गई है, उन सबके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना कर्त्तव्य है।

आशा है प्रस्तुत सस्करण जिज्ञासु स्वाध्यायप्रेमियो, आगम-सेवियो तथा छात्रो के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

चम्पानगर
ब्यावर

—शोभाचन्द्र भारिल्ल



आमुख

(प्रथम संस्करण से)

जैनधर्म, दर्शन व संस्कृति का मूल आधार वीतराग सर्वज्ञ की वाणी है। सर्वज्ञ अर्थात् आत्मद्रष्टा। सम्पूर्ण रूप से आत्मदर्शन करने वाले ही विश्व का समग्र दर्शन कर सकते हैं। जो समग्र को जानते हैं, वे ही तत्त्वज्ञान का यथार्थ निरूपण कर सकते हैं। परमहितंकर निःश्रेयस् का यथार्थ उपदेश कर सकते हैं।

सर्वज्ञों द्वारा कथित तत्त्वज्ञान, आत्मज्ञान तथा आचार-व्यवहार का सम्यक् परिबोध 'आगम', शास्त्र या सूत्र के नाम से प्रसिद्ध है।

तीर्थंकरों की वाणी मुक्त सुमनों की वृष्टि के समान होती है, महान् प्रज्ञावान् गणधर उसे सूत्र रूप में ग्रथित करके व्यवस्थित 'आगम' का रूप दे देते हैं।[1]

आज जिसे हम 'आगम' नाम से अभिहित करते हैं, प्राचीन समय में वे 'गणिपिटक' कहलाते थे। 'गणिपिटक' में समग्र द्वादशांगी का समावेश हो जाता है। पश्चाद्वर्ती काल में इसके अंग, उपांग, मूल, छेद, आदि अनेक भेद किये गये।

जब लिखने की परम्परा नहीं थी, तब आगमों को स्मृति के आधार पर या गुरु परम्परा से सुरक्षित रखा जाता था। भगवान् महावीर के बाद लगभग एक हजार वर्ष तक 'आगम' स्मृति परम्परा पर ही चले आये थे। स्मृतिदुर्बलता, गुरुपरम्परा का विच्छेद तथा अनेक कारणों से धीरे-धीरे आगमज्ञान भी लुप्त होता गया। महासरोवर का जल सूखता-सूखता गोष्पद मात्र ही रह गया। तब देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण ने श्रमणों का सम्मेलन बुलाकर स्मृति-दोष से लुप्त होते आगमज्ञान को, जिनवाणी को सुरक्षित रखने के पवित्र उद्देश्य से लिपिबद्ध करने का ऐतिहासिक प्रयास किया और जिनवाणी को पुस्तकारूढ़ करके आने वाली पीढ़ी पर अवर्णनीय उपकार किया। यह जैनधर्म, दर्शन एवं संस्कृति की धारा को प्रवहमान रखने का अद्भुत उपक्रम था। आगमों का यह प्रथम सम्पादन वीरनिर्वाण के ९८० या ९९३ वर्ष पश्चात् सम्पन्न हुआ।

पुस्तकारूढ़ होने के बाद जैन आगमों का स्वरूप मूल रूप में तो सुरक्षित हो गया, किन्तु कालदोष, बाहरी आक्रमण, आन्तरिक मतभेद, विग्रह, स्मृति-दुर्बलता एवं प्रमाद आदि कारणों से आगमज्ञान की शुद्ध धारा, अर्थबोध की सम्यक् गुरु-परम्परा धीरे-धीरे क्षीण होने से नहीं रुकी। आगमों के अनेक महत्त्वपूर्ण संदर्भ, पद तथा गूढ़ अर्थ छिन्न-विच्छिन्न होते चले गए। जो आगम लिखे जाते थे, वे भी पूर्ण शुद्ध नहीं होते थे। उनका सम्यक् अर्थ-ज्ञान देने वाले भी विरले ही रहे। अन्य भी अनेक कारणों से आगम-ज्ञान की धारा संकुचित होती गयी।

विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में लोंकाशाह ने एक क्रांतिकारी प्रयत्न किया। आगमों के शुद्ध और यथार्थ अर्थ-ज्ञान को निरूपित करने का एक साहसिक उपक्रम पुनः चालू हुआ। किन्तु

1. अत्थं भासइ अरहा सुत्तं गंथंति गणहरा निउणं।

कुछ काल बाद पुन उसमे भी व्यवधान आ गए। साम्प्रदायिक द्वेष, सैद्धान्तिक विग्रह तथा लिपिकारो की भाषाविषयक अल्पज्ञता आगमो की उपलब्धि तथा उनके सम्यक् अर्थबोध मे बहुत बडा विघ्न बन गए।

उन्नीसवी शताब्दी के प्रथम चरण मे जब आगम-मुद्रण की परम्परा चली तो पाठकों को कुछ सुविधा हुई। आगमो की प्राचीन टीकाएँ चूर्णि व नियुक्ति जब प्रकाशित हुई तथा उनके आधार पर आगमो का सरल व स्पष्ट भावबोध मुद्रित होकर पाठकों को सुलभ हुआ तो आगमज्ञान का पठन-पाठन स्वभावत बढा, सैकडो जिज्ञासुओ मे आगम स्वाध्याय की प्रवृत्ति जगी व जैनेतर देशी-विदेशी विद्वान् भी आगमो का अनुशीलन करने लगे।

आगमो के प्रकाशन-सम्पादन-मुद्रण के कार्य मे जिन विद्वानो तथा मनीषी श्रमणों ने ऐतिहासिक कार्य किया, पर्याप्त सामग्री के अभाव मे आज उन सबका नामोल्लेख कर पाना कठिन है। फिर भी मैं स्थानकवासी परम्परा के कुछ महान् मुनियो का नाम ग्रहण अवश्य ही करूँगा।

पूज्य श्री अमोलकऋषिजी महाराज स्थानकवासी परम्परा के महान् साहसी व दृढ-सकल्पबली मुनि थे, जिन्होंने अल्प साधनो के बल पर भी पूरे बत्तीस सूत्रो को हिन्दी मे अनूदित करके जन-जनको सुलभ बना दिया। पूरी बत्तीसी का सम्पादन प्रकाशन एक ऐतिहासिक कार्य था, जिससे सम्पूर्ण स्थानकवासी व तेरापथी समाज उपकृत हुआ।

गुरुदेव पूज्य स्वामी श्री जोरावरमलजी महाराज का एक सकल्प

मैं जब गुरुदेव स्व स्वामी श्री जोरावरमलजी महाराज के तत्वावधान मे आगमों का अध्ययन कर रहा था तब आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित कुछ आगम उपलब्ध थे। उन्हीं के आधार पर गुरुदेव मुझे अध्ययन कराते थे। उनको देखकर गुरुदेव को लगता था कि यह सस्करण यद्यपि काफी श्रम-साध्य है, एव अब तक के उपलब्ध सस्करणों में काफी शुद्ध भी हैं, फिर भी अनेक स्थल अस्पष्ट हैं। मूल पाठ मे एव उसकी वृत्ति में कही-कही अन्तर भी है, कही वृत्ति बहुत सक्षिप्त है।

गुरुदेव स्वामी श्री जोरावरमलजी महाराज स्वय जैन सूत्रो के प्रकाण्ड पण्डित थे। उनकी मेधा बडी व्युत्पन्न व तर्कणा-प्रधान थी। आगमसाहित्य की यह स्थिति देखकर उन्हें बहुत पीडा होती और कई बार उन्होने व्यक्त भी किया कि आगमो का शुद्ध, सुन्दर व सर्वोपयोगी प्रकाशन हो तो बहुत लोगो का कल्याण होगा, कुछ परिस्थितियो के कारण उनका सकल्प, मात्र भावना तक सीमित रहा।

इसी बीच आचार्य श्री जवाहरलालजी महाराज, जैनधर्मदिवाकर आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज, पूज्य श्री घासीलालजी महाराज आदि विद्वान् मुनियो ने आगमो की सुन्दर व्याख्याएँ व टीकाएँ लिखकर अथवा अपने तत्वावधान मे लिखाकर इसी कमी को पूरा किया है।

वर्तमान मे तेरापथ सम्प्रदाय मे आचार्य श्री तुलसी ने भी यह भगीरथ प्रयत्न प्रारम्भ किया है और अच्छे स्तर से उनका आगम-कार्य चल रहा है। मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल' आगमो की वक्तव्यता को अनुयोगों मे वर्गीकृत करने का मौलिक एव महत्वपूर्ण प्रयास कर रहे हैं।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा के विद्वान् श्रमण स्व मुनि श्री पुण्यविजयजी ने आगम-सम्पादन की दिशा में बहुत ही व्यवस्थित व उत्तमकोटि का कार्य प्रारम्भ किया था। उनके स्वर्गवास के पश्चात् मुनि श्री जम्बूविजयजी के तत्वाधान मे यह सुन्दर प्रयत्न चल रहा है।

उक्त सभी कार्यों का विहगम अवलोकन करने के बाद मेरे मन मे एक सकल्प उठा। आज कहीं तो आगमो का मूल मात्र प्रकाशित हो रहा है और कहीं आगमो की विशाल व्याख्याएँ की जा रही हैं। एक, पाठक के लिए दुर्बोध है तो दूसरी जटिल। मध्यम मार्ग का अनुसरण कर आगमवाणी का भावोद्घाटन करने वाला ऐसा प्रयत्न होना चाहिए जो सुबोध भी हो, सरल भी हो, सक्षिप्त हो पर सारपूर्ण व सुगम हो।

गुरुदेव ऐसा ही चाहते थे। उसी भावना को लक्ष्य मे रखकर मैंने ४-५ वर्ष पूर्व इस विषय मे चिन्तन प्रारम्भ किया। सुदीर्घ चिन्तन के पश्चात् वि स २०३६ वैशाख शुक्ला १० महावीर कैवल्यदिवस को दृढ निर्णय करके आगम-बत्तीसी का सम्पादन-विवेचन कार्य प्रारम्भ कर दिया और अब पाठकों के हाथो मे आगम ग्रन्थ क्रमश पहुँच रहे हैं, इसकी मुझे अत्यधिक प्रसन्नता है।

आगम-सम्पादन का यह ऐतिहासिक कार्य पूज्य गुरुदेव की पुण्यस्मृति मे आयोजित किया गया है। आज उनका पुण्यस्मरण मेरे मन को उल्लसित कर रहा है। साथ ही मेरे वन्दनीय गुरु-भ्राता पूज्य स्वामी श्री हजारीमलजी महाराज की प्रेरणाएँ—उनकी आगम-भक्ति तथा आगम सम्बन्धी तलस्पर्शी ज्ञान, प्राचीन धारणाएँ, मेरा सम्बल बनी हैं। अत मैं उन दोनो स्वर्गीय आत्माओं की पुण्यस्मृति में विभोर हूँ।

शासनसेवी स्वामीजी श्री ब्रजलालजी महाराज का मार्गदर्शन, उत्साह-सवर्द्धन, सेवा-भावी शिष्य मुनि विनयकुमार व महेन्द्र मुनि का साहचर्य-बल, सेवा-सहयोग तथा महासती श्री कानकु वरजी, महासती श्री झणकारकु वरजी, परमविदुषी साध्वी श्री उमरावकु वरजी, 'अर्चना'—की विनम्र प्रेरणाएँ मुझे सदा प्रोत्साहित तथा कार्यनिष्ठ बनाये रखने में सहायक रही हैं।

मुझे दृढ विश्वास है कि आगम-वाणी के सम्पादन का यह सुदीर्घ प्रयत्न-साध्य कार्य सम्पन्न करने में मुझे सभी सहयोगियो, श्रावकों व विद्वानो का पूर्ण सहकार मिलता रहेगा और मैं अपने लक्ष्य तक पहुँचने में गतिशील बना रहूँगा।

इसी आशा के साथ

—मुनि मिश्रीमल 'मधुकर'

प्रथम संस्करण के अर्थ सहयोगी

श्रीमान् सेठ खींवराजजी चोरड़िया

[जीवन-रेखा]

राजस्थान के गौरवास्पद व्यवसायी, स्थानकवासी जैनसमाज की अन्यतम विभूति, धर्मनिष्ठ सेठ श्री खींवराजजी सा चोरडिया का जन्म राजस्थान के ग्राम नोखा - चान्दावतो का - मे ई सन् १९१४ को हुआ। आपके पूज्य पिताश्री सिरेमलजी सा और माता सायबकुवरजी के धार्मिक संस्कार आपको उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त हुए हैं। आपके ज्येष्ठतम भ्राता सेठ हीराचदजी सा, ज्येष्ठ भ्राता पद्मश्री सेठ मोहनमलजी सा तथा श्री माणकचदजी सा हैं। आपके सुपुत्र श्री देवराजजी और श्री नवरतनमलजी हैं। अनेक पौत्रों और पौत्रियों से हरा-भरा आपका यह वृहत परिवार समाज के लिए धर्मनिष्ठा की दृष्टि से आदर्श है।

चोरडियाजी की धर्मपत्नी श्रीमती भवरीबाई धर्मश्रद्धा की प्रतिमूर्ति एव तपस्विनी भी हैं। आपने शारीरिक स्वास्थ्य साधारण होते हुए भी अपने प्रबल आत्मबल के आधार पर वर्षी तप की आराधना की है, जिसका उद्यापन बडी ही धूमधाम से नोखा मे किया था। वर्षी तप के उपलक्ष्य मे लाखो की राशि दान में दी गई थी।

श्री चोरडियाजी का विशाल व्यवसाय मद्रास नगर मे है। व्यापारिक समाज मे आपका वर्चस्व है। व्यापारियो में आप एक प्रकार से राजा कहलाते हैं। आपके व्यवसाय इस प्रकार हैं—

१—खीवराज मोटर्स प्रा लि माबर रोड, मद्रास

२—फाइनेन्सस

३—खीवराज मोटर्स बैंगलूर—ऑटोमोबाइल्स एजेसी

४—राज मोटर्स—मोटर साइकिल एजसी

५—जमीन-जायदाद का व्यवसाय

६—दी भवानी मिल्स लिमि (धागे की मिल) (चेयरमेन)

७—श्रीविग केमिकल (चेयरमेन)

इसके अतिरिक्त आपकी मद्रास, जोधपुर तथा नोखा आदि मे विपुल स्थावर सम्पत्ति है।

किन्तु यह न समझा जाये कि आपका जीवन व्यवसाय के लिए ही समर्पित है। धार्मिक और सामाजिक क्षेत्रो मे भी आप तन, मन और धन से महत्त्वपूर्ण योगदान कर रहे हैं। निम्नलिखित तालिका से यह कथन स्पष्ट हो जाता है। वर्तमान मे आपका नि लि सस्थाओ के साथ घनिष्ठ सम्पर्क है—

१—आप स्थानकवासी जैन सघ के उपाध्यक्ष हैं।

२ श्री वर्धमान सेवासमिति, नोखा के अध्यक्ष हैं।

३—दयासदन, मद्रास के अध्यक्ष हैं।

४—मुनि श्रीहजारीमलजी म सा ट्रस्ट, नोखा के ट्रस्टी हैं।

५—श्री जैन एजुकेशन सोसाइटी के पेटर्न हैं।

६—श्री जयमल जैन छात्रावास के सदस्य हैं।

७—श्री एस. एस. जैन महिलासंघ के अध्यक्ष हैं।

८—श्री दक्षिण भारत स्वाध्याय समिति मद्रास के सदस्य हैं।

उल्लिखित संस्थाओं के साथ संबद्ध होने के साथ-साथ आपने स्वयं अपने उदार दान से निम्न संस्थाओं की स्थापना भी की है—

१—चौथमल चोरडिया डिस्पेंसरी, मावर रोड, मद्रास

२—चौथमल चोरडिया चेरेटेबिल ट्रस्ट, मद्रास

३—श्रीमती भंवरीकुंवर चोरडिया चेरेटेबिल, मद्रास

इस संक्षिप्त परिचय से ही पाठक समझ सकेंगे कि सेठ चौथमलजी का जीवन कितना बहुमुखी है। विशेषतः उल्लेखनीय यह है कि चोरडियाजी अतीव भाग्यशाली हैं। वे लक्ष्मी के पीछे नहीं दौड़ते, लक्ष्मी उनके पीछे दौड़ती है। जब, जहाँ, जिस व्यवसाय में हाथ डालते हैं, पूर्ण सफलता आपका स्वागत करने के लिए तत्पर रहती है।

इतना सब होते हुए भी चोरडियाजी बहुत सादगी-पसन्द, सौजन्यमूर्ति, भद्रहृदय, मितभाषी और प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी हैं।

उल्लेख करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता है कि प्रस्तुत शास्त्र 'ज्ञाताधर्मकथा' के प्रकाशन का व्यय भार आपने ही वहन किया है। इस उदारता के लिए समिति आपकी अतीव आभारी है।

प्रस्तावना

(प्रथम संस्करण से)

धर्म, दर्शन, समाज और संस्कृति का भव्य प्रासाद उनके मूल-भूत ग्रन्थों की गहरी नींव पर टिका हुआ है। विश्व में जितने भी धर्म और सम्प्रदाय हैं उनके वरिष्ठ महापुरुषों ने, प्रवर्तकों ने जो पावन उपदेश प्रदान किये वे उपदेश वेद, त्रिपिटक, बाइबिल, कुरान या गणिपिटक के रूप में जाने और पहचाने जाते हैं। उन्हीं ग्रन्थों को केन्द्र बनाकर विश्व के धर्म और दर्शन विकसित हुए हैं।

वेद और आगम

ब्राह्मण संस्कृति के मूल-भूत ग्रन्थ वेद हैं। वेद वैदिक चिन्तकों के विचारों की अमूल्य निधि हैं। ऋग्वेद आदि की विज्ञगण विश्व के प्राचीनतम साहित्य में परिगणना करते हैं। ब्राह्मण मनीषियों ने वेदों के शब्दों की सुरक्षा का अत्यधिक ध्यान रखा है। कहीं वेदमन्त्र के शब्द इधर-उधर न हो जायें, इसके लिए वे सतत जागरूक रहे। वेदों के शब्दों में मन्त्रशक्ति का आरोप करने से उनमें शब्द परिवर्तन नहीं हुए। क्योंकि वैदिक विज्ञों ने सहितापाठ, पादपाठ, क्रमपाठ, जटापाठ, घनपाठ के रूप में वेदमन्त्रों के पठन और उच्चारण का एक वैज्ञानिक क्रम बनाया था, जिसके कारण वेदों का शाब्दिक कलेवर वर्तमान में ज्यों का त्यों विद्यमान है। पर बौद्ध और जैन चिन्तकों ने शब्दों की ओर अधिक लक्ष्य न देकर अर्थ पर विशेष ध्यान दिया। उन्होंने अर्थ की किंचित मात्र भी उपेक्षा नहीं की, जिससे जैन आगम और बौद्ध त्रिपिटकों में अनेक पाठान्तर उपलब्ध होते हैं। विविध पाठान्तरों के होने पर भी अर्थ के सम्बन्ध में मतभेद नहीं हैं। जैन और बौद्ध शास्त्रों में मन्त्र-शक्ति का आरोप नहीं किया गया। इसलिए भी उनमें शब्द-परिवर्तन होते रहे हैं।

जैन, बौद्ध और वैदिक साहित्य का जब हम तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करते हैं तो यह स्पष्ट परिज्ञात होता है कि वेद एक ऋषि के द्वारा निर्मित नहीं हैं, अपितु अनेक ऋषियों ने समय-समय पर मन्त्रों की रचनाएँ की हैं, जिसके कारण वेदों में विचारों की विविधता है। सभी ऋषियों के विचारों में एकरूपता हो, यह कभी सभव नहीं है। वैदिक मान्यतानुसार ऋषिगण मन्त्रद्रष्टा थे, मन्त्रस्रष्टा नहीं थे, उन्होंने अपने अन्तश्चक्षुओं से जो देखा और परखा उसे शब्दों में अभिव्यजना दी थी।

पर जैन आगम और बौद्ध त्रिपिटक श्रमण भगवान् महावीर और तथागत बुद्ध के चिन्तन का ही मूर्त रूप हैं। उनके प्रवक्ता एक ही हैं, इसलिए उनमें विभिन्नता नहीं आई है। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि वेद में ऋषियों के ही शब्द हैं जब कि जैन आगमों में तीर्थंकरों के शब्द नहीं हैं। तीर्थंकर तो अर्थ रूप में अपना प्रवचन करते हैं,[1] शब्द रूप में सूत्रबद्ध रचना गणधर करते हैं। अत जैन आगम के शब्द गणधरों के हैं

---

१ आवश्यकनियुक्ति गा० १९२ (ख) धवला भा १ ६४-७२।

तीर्थंकरों में नहीं। जैन परम्परा में और वैदिक परम्परा में यह महत्वपूर्ण अन्तर है कि एक ने अर्थ को प्रधानता दी है तो दूसरे ने शब्द को प्रधानता दी है। यही कारण है कि वैदिक परम्परा में वेद के नाम पर विभिन्न चिन्ताधाराएँ विकसित हुई हैं। विभिन्न दार्शनिक जीव, जगत और ईश्वर को लेकर पृथक्-पृथक् व्याख्याएं करते रहे हैं। वेद सभी को मान्य हैं, किन्तु वेदों की व्याख्या में एकरूपता नहीं है।

जैन परम्परा में वैदिक परम्परा की तरह सम्प्रदायभेद नहीं है। जो श्वेताम्बर, दिगम्बर या अन्य उपसम्प्रदाय हैं उनमें विचारों का मतभेद प्रमुख नहीं, अपितु आचार का भेद प्रमुख है। यह सत्य है कि श्वेताम्बर-मान्य आगमों को दिगम्बर मान्य नहीं करते हैं पर दिगम्बर साहित्य में अंग साहित्य के नाम ज्यों के त्यों मिलते हैं, किन्तु वे उन्हें विच्छिन्न मानते हैं। यह पूर्ण सत्य है कि श्वेताम्बर और दिगम्बरों में मूल भूत तत्वों में किंचित् मात्र भी अन्तर नहीं है। षट् द्रव्य, नौ तत्व, प्रमाण, नय, निक्षेप, कर्म आदि दोनों ही परम्पराओं में एक सदृश हैं।

जैन आगम के उद्गाता तीर्थंकर हैं जिन्होंने स्वयं भौतिक वैभव को ठुकराकर साधना के पथ पर अपने सुदृढ़ कदम बढ़ाये थे। इसलिए उन्होंने सभी को उस पथ पर बढ़ने की पवित्र प्रेरणा दी। उन्होंने स्वर्ग के स्वर्गीय सुखों को नहीं किन्तु मोक्ष के अनन्त आनन्द को प्रधानता दी और मोक्षमार्ग की बहुत ही विशद रूप से चर्चा की जब कि वेदों में भौतिक वैभव को प्राप्त करने की कामना और भावना प्रमुख रही है और इसी के लिए प्रार्थनाएं की जाती रही हैं।

यहाँ पर यह बात स्पष्ट करना आवश्यक है कि जैन आगमों में आध्यात्मिक चिन्तन की प्रमुखता तो है हाँ, साथ ही उस युग में प्रचलित अनेक ज्ञान-विज्ञान का अपूर्व संकलन भी उनमें है। जीवविज्ञान के सम्बन्ध में जितना विस्तार के साथ जैन आगमों में निरूपण हुआ है उतना अन्यत्र मिलना कठिन है। आगमों में पृथ्वीकाय, अपकाय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय के सम्बन्ध में गहराई से विश्लेषण किया गया है। उस युग की धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियों का जो चित्रण है, वह जैन परम्परा के अभ्यासियों के लिए ही नहीं अपितु मानवीय संस्कृति के अध्येताओं के लिए भी अत्यन्त उपयोगी है।

पाश्चात्य और पौर्वात्य अनुसंधानकर्ता भारतीय धर्म, दर्शन, साहित्य और संस्कृति का मूल वेदों में निहारते थे पर मोहनजोदड़ो हड़प्पा के ध्वंसावशेषों से प्राप्त सामग्री के पश्चात् चिन्तकों की चिन्तन-दिशा ही बदल गई है और अब यह प्रमाणित हो चुका है कि श्रमण संस्कृति वैदिक संस्कृति से पृथक् है। वैदिक संस्कृति में ईश्वर को सृष्टि का निर्माता माना है जबकि श्रमणपरम्परा ने विश्व की संरचना में जड़ और चेतन इन दोनों को प्रधानता दी है। जड़ और चेतन ये दोनों तत्व ही सृष्टि के मूल कारण हैं। सृष्टि की कोई आदि नहीं है, वह तो अनादि है। चक्र की तरह वह सदा चलती रहती है। व्रत निरूपण संसारचक्र से मुक्त होने के लिए किया गया है, जबकि वेदों में व्रतों का जिस रूप में चाहिए उस रूप में निरूपण नहीं है। श्रमण संस्कृति का दिव्य प्रभाव जब द्रुत गति से बढ़ने लगा तब उपनिषदों में और उसके पश्चाद्वर्ती वैदिक साहित्य में भी व्रतों के सम्बन्ध में चर्चाएँ होने लगी। संक्षेप में सारांश यह है कि जैन आगम वेदों पर आधृत नहीं है। वे सर्वथा स्वतन्त्र हैं।

पूर्व पंक्तियों में हम यह लिख चुके हैं कि तीर्थंकर अर्थ रूप में प्ररूपणा करते हैं। जब जैसा प्रसंग आता है, उस रूप में वे प्ररूपणा करते हैं। अर्थागम दृष्टि से किये गये उपदेशों को उनके प्रमुख शिष्य सूत्र

रूप मे संकलन करते हैं। भगवान् महावीर के एकादश गणधर थे। उनमे सभी गणधर अपनी दृष्टि से शब्दरूप मे उनकी रचना करते हैं। शाब्दिक दृष्टि से सभी गणधरो की रचना एक सदृश हो, यह सभव नही है पर अर्थ सभी का एक था। भगवान महावीर के गणधर ग्यारह थे किन्तु उनके गण नौ थे[1], पहले से सातवें तक गणधर एक-एक गण की वाचना देते थे। आठवें नौवें गणधर की एक वाचना थी और दसवें तथा ग्यारहवें की भी एक वाचना थी। वे गणधर परस्पर सम्मिलित रूप से वाचना देते थे। इसलिए स्थानाग[2] और कल्पसूत्र[3] मे यह स्पष्ट बताया है कि ग्यारह गणधरो की नौ वाचनाएँ हुई। नौ गणधर भगवान् महावीर के रहते हुए ही मुक्त हो चुके थे। इन्द्रभूति गौतम और सुधर्मा, ये दोनो भगवान महावीर के मुक्त होने के पश्चात विद्यमान थे। ज्यो-ज्यो गणधर मुक्त होते चले गये, उनके गण सुधर्मा के गण मे सम्मिलित होते गये। आज जो आगम-साहित्य उपलब्ध है उसके रचयिता सुधर्मा हैं पर अर्थ के प्ररूपक भगवान् महावीर ही हैं। किन्तु स्मरण रखना होगा कि उसकी प्रामाणिकता, अर्थ के प्ररूपक सर्वज्ञ होने से ही है।

अनुयोगद्वार मे आगम के सुत्तागम अत्थागम और तदुभयागम, ये तीन भेद प्राप्त होते हैं[4]। साथ ही अन्य दृष्टि से आत्मागम अनन्तरागम और परम्परागम, ये तीन रूप भी मिलते हैं[5]। तीर्थकर अर्थ रूप आगम का उपदेश प्रदान करते हैं। इसलिए अर्थ रूप आगम तीर्थकरो का आत्मागम है। उन्होने अर्थागम किसी अन्य से प्राप्त नही किया। वह अर्थागम उनका स्वय का है। उसी अर्थागम को गणधर, तीर्थकरो से प्राप्त करते हैं। तीर्थकर और गणधरो के बीच किसी अन्य तीसरे व्यक्ति का व्यवधान नही है। इसलिए वह अर्थागम गणधरो के लिए अनन्तरागम है। उस अर्थागम के आधार से ही गणधर स्वय सूत्र रूप मे रचना करते हैं अत सूत्रागम गणधरो के लिए आत्मागम है। गणधरो के जो साक्षात् शिष्य हैं, सूत्रागम गणधरो से सीधा ही प्राप्त करते हैं। उनके बीच मे भी किसी तीसरे का व्यवधान नही है, अत उन शिष्यो के लिए सूत्रागम अनन्तरागम हैं। पर अर्थागम परम्परागम से प्राप्त हुआ है, क्योकि वह अर्थागम अपने धर्मगुरु गणधरो से उन्होंने प्राप्त किया। अर्थागम गणधरो का आत्मागम नही क्योकि उन्होने तीर्थकरो से प्राप्त किया। गणधरो के प्रशिष्य और उसकी परम्परा मे होने वाले अन्य शिष्य-प्रशिष्यो के लिए सूत्र और अर्थ—दोनो आगम परम्परागम हैं।

श्रमण भगवान् महावीर के पावन प्रवचनो का गणधरो ने सूत्र रूप मे जो सकलन और आकलन किया, वह सकलन 'अगसाहित्य' के नाम से विश्रुत है। जिनभद्र गणी क्षमा श्रमण ने विशेषावश्यकभाष्य मे लिखा है कि तप, नियम और ज्ञानरूपी वृक्ष पर आरूढ अनन्तज्ञानसम्पन्न केवलज्ञानी भव्यजनो को उद्बोधन देने हेतु ज्ञान-पुष्पो की वृष्टि करते हैं उसे गणधर बुद्धि रूपी पट मे ग्रहण कर उसका प्रवचन के निमित्त ग्रथन करते हैं[6]। गणधरो मे विशिष्ट प्रतिभा होती है। उनकी बुद्धि अत्यन्त तीक्ष्ण होती है। वे बीजबुद्धि आदि ऋद्धियो से सपन्न होते है। वे तीर्थकरो की पुष्पवृष्टि को पूर्णरूप से ग्रहण कर रगबिरगी पुष्पमाला की तरह प्रवचन के निमित्त सूत्रमाला ग्रथित करते हैं। बिखरे हुए पुष्पो को ग्रहण करना बहुत कठिन है, किन्तु गूथी हुई पुष्पमाला को ग्रहण करना सुकर है। वही बात जिनप्रवचन रूपी पुष्पो के सम्बन्ध मे भी है। पद, वाक्य,

१ कल्पसूत्र-२०३
२ स्थानाग स्था ९-२६
३ कल्पसूत्र सू० २०३
४ अनुयोगद्वार-४७० पृ० १७९
५ वही ४७० वही
६ विशेषा० भाष्य० १०९४-९५

प्रकरण, अध्ययन, प्राभृत आदि निश्चित क्रमपूर्वक सूत्ररूप में व्यवस्थित हो तो वह सहज रूप से ग्रहण होता है। इस तरह समीचीन रूप से सरलता-पूर्वक उसका ग्रहण, गुणन, परावर्तन, धारण, स्मरण, दान, पृच्छा आदि हो सकते हैं। गणधरों ने अविच्छिन्न रचना की है। गणधर होने के कारण इस प्रकार सूत्ररचना करना उनका कार्य है। भाष्यकार ने विविध प्रकार के प्रश्न समुत्पन्न कर उनके समाधान प्रस्तुत किये हैं। तीर्थंकर जिस प्रकार सर्वसाधारण लोगों के लिए विस्तार से विवेचन करते हैं, वैसा गणधरों के लिए नहीं करते। वे गणधरों के लिए बहुत ही संक्षेप में अर्थ भाषित करते हैं। गणधर निपुणता के साथ उस अर्थ का सूत्ररूप में विस्तार करते हैं। वे शासनहित के लिए सूत्र का प्रवर्तन करते हैं।

सहज ही यह जिज्ञासा उद्बुद्ध हो सकती है कि तीर्थंकर अर्थ का प्ररूपण करते हैं किन्तु शब्द के अर्थ किस प्रकार कहा जा सकता है? यदि तीर्थंकर संक्षेप में सूचना ही करते हैं तो जो सूचना दी जाती है वह तो सूत्र ही है। पर उसे अर्थ कहना कहाँ तक उचित है? समाधान करते हुए जिनभद्र ने कहा—अर्हत् पुरुषापेक्षया अर्थात् गणधरों की अपेक्षा से बहुत ही स्वल्प रूप में कहते हैं। वे पूर्णरूप से द्वादशांगी नहीं कहते। द्वादशांगी की अपेक्षा से वह अर्थ है और गणधरों की अपेक्षा से सूत्र है[1]।

तीर्थंकर जब धर्मदेशना प्रदान करते हैं, उनके वैशिष्ट्य के कारण वे भाषात्मक पुद्गल श्रोताओं को अपनी-अपनी भाषा में परिवर्तित हो जाते हैं। समवायांग[2] में 'भाषा अतिशय' के सम्बन्ध में चिन्तन करते हुए लिखा है—तीर्थंकर अर्धमागधी भाषा में धर्म का आख्यान करते हैं। उनके द्वारा कही हुई अर्धमागधी भाषा आर्य-अनार्य, द्विपद-चतुष्पद मृग पशु पक्षी सरीसृप आदि जीवों के हित व कल्याण तथा सुख के लिए उनकी अपनी-अपनी भाषाओं में परिणत हो जाती है। इसी कथन का समर्थन औपपातिक[3] में और आचार्य हेमचन्द्र[4] ने काव्यानुशासन में किया है। संक्षेप में सारांश यह है कि वर्तमान में जो अंग साहित्य है उसके अर्थ के प्ररूपक भगवान् महावीर और सूत्र-रचयिता गणधर सुधर्मा हैं। अंग साहित्य के बारह भेद हैं, जो इस प्रकार हैं- (१) आचार (२) सूत्रकृत् (३) स्थान (४) समवाय (५) भगवती (६) ज्ञाताधर्मकथा (७) उपासकदशा (८) अन्तकृद्दशा (९) अनुत्तरौपपातिक (१०) प्रश्नव्याकरण (११) विपाक और (१२) दृष्टिवाद।

ज्ञातासूत्र परिचय

अंग साहित्य में ज्ञाताधर्मकथा का छठा स्थान है। इसके दो श्रुतस्कंध हैं। प्रथम श्रुतस्कंध में ज्ञात यानी उदाहरण और द्वितीय श्रुतस्कंध में धर्मकथाएँ हैं। इसलिए इस आगम का 'णायाधम्मकहाओ' नाम है। आचार्य अभयदेव ने अपनी टीका में इसी अर्थ को स्पष्ट किया है। तत्त्वार्थभाष्य में 'ज्ञातधर्मकथा' नाम आया है। भाष्यकार ने लिखा है—उदाहरणों के द्वारा जिसमें धर्म का कथन किया है[5]। जयधवला में णाहधम्म-कहा—'नाथधर्मकथा' नाम मिलता है। नाथ का अर्थ स्वामी है। नाथधर्मकथा का तात्पर्य है नाथ-तीर्थंकर

---

१ अनुयोगद्वार-४७० पृ० १७९
२ समवायांग सू० ३४
३ औपपातिक सू० ११७-१८
४ काव्यानुशासन अलंकार तिलक १-१
५ ज्ञाता दृष्टान्ता तानुपादाय धर्मो यत्र कथ्यते ज्ञातधर्मकथा। — तत्त्वार्थभाष्य

प्रतिपादित धमकथा। सस्कृत साहित्य मे प्रस्तुत आगम का नाम 'नातृधमकथा' उपलब्ध होता है[1]।
ाय मलयगिरि[2] व आचाय अभयदेव[3] ने उदाहरणप्रधान धमकथा का ज्ञाताधमकथा कहा है। उनकी
ट से प्रथम अध्ययन मे ज्ञात है और दूसरे अध्ययन मे धमकथा है।

आचाय हेमचन्द्र ने अपने कोश मे ज्ञातप्रधान धमकथाएँ ऐसा अथ किया है। प बेचरदास जी दोशी[4],
० जगदीशचन्द्र जैन[5], डा० नेमिचन्द्र शास्त्री[6] का अभिमत है कि ज्ञातपुत्र महावीर की धमकथाओं का प्ररूपण
होने से प्रस्तुत अग को उक्त नाम से अभिहित किया गया है।

श्वेताबर आगम साहित्य के अनुसार भगवान् महावीर के वश का नाम "ज्ञात" था। कल्पसूत्र[7],
आचारांग[8], सूत्रकृताग[9], भगवती[10], उत्तराध्ययन[11], और दशवैकालिक[12] मे उनके नाम के रूप मे ज्ञात'
शब्द का प्रयोग हुआ है। विनयपिटक[13], मज्झिमनिकाय[14], दीघनिकाय[15] सुत्तनिपात[16] आदि बौद्धपिटकों

---

१ तत्वायवार्तिक १।२०, पृ ७२
२ ज्ञातानि उदाहरणानि तत्प्रधाना धमकथा नाताधमकथा अथवा नातानि—नाताध्ययनानि प्रथमश्रुतस्कधे धमकथा द्वितीयश्रुतस्कधे यासु ग्रन्थपद्धतिपु (ता) नाताधमकथा। —नदी वत्ति, पत्र २३०-२३१
ज्ञातानि उदाहरणानि तत्प्रधाना धमकथा, दीघत्व सनात्वाद अथवा—प्रथमश्रुतस्कधो ज्ञाताभिधाय-
कत्वात् नातानि द्विती यस्तु तथैव धमकथा। —समवायाग पत्र १०८।
भगवान् महावीर नी धमकथाओं, टिप्पण पृ १८०
प्राकृतसाहित्य का इतिहास
६ प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ १७२
७ कल्पसूत्र ११०
८ (क) आचाराग श्रु २, अ १५, सू १००३
(ख) आचाराग श्रु १, अ ८, उ ८, से ४४८
९ (क) सूत्र उ १, गा २२
(ख) सूत्र १।६।२
(ग) सूत्र १।६।२४
(घ) सून २।६।१९
१० भगवती १५।७९
११ उत्तरा० ६।१७
१२ दशवै० अ० ५, उ० २ गा० ४९ तथा ६।२५ एव ६।२१
१३ विनय पिटक महावग्ग पृ २४२
१४ मज्झिमनिकाय हिन्दी उपाति—सुत्तत पृ० ७७२
चूल—दुक्खक्खन्ध सुत्तत ,, ५९
चूल—सोरोपम-सुत्तत ,, १२४
महा सच्चक सुत्तन्त ,, १४७
अभयराज कुमार सुत्तन्त ,, २३४
देवदह सुत्तन ,, ४४१
१५ दीघनिकाय सामञ्जफल सुत्त ,, १८।२१
,, सगीति परियाय सुत्त ,, २८२
,, महापरिनिब्बाण सुत्त ,, १४५
,, पासादिक सुत्त ,, २५२
१६ सुत्तनिपात—सुभिय सुत्त ,, १०८

म भी भगवान् महावीर का उल्लेख "निगंठ नातपुत्त" के रूप में किया गया है।

दिगंबर साहित्य में[1] महावीर का वंश "नाथ" माना है। 'धनंजय नाममाला'[2] में नाथ का उल्लेख है। उत्तरपुराण में[3] भी 'नाथ' वंश का उल्लेख हुआ है। कितने ही मूर्धन्य मनीषियों का अभिमत है कि प्रस्तुत आगम का नाम भगवान महावीर के वंश को लक्ष्य में लेकर किया गया है। नायधम्मकहा का नाथधर्मकथा से तात्पर्य है भगवान महावीर की धर्मकथा। पाश्चात्य चिन्तक वेबर[4] का मानना है कि जिस ग्रन्थ में ज्ञातृवंशीय महावीर की धर्मकथा हो वह 'नायाधम्मकहा' है। किन्तु समवायांग[5] नंदीसूत्र[6] में आगमों का जो परिचय प्रदान किया गया है उसके आधार से ज्ञातृवंशी महावीर की धर्मकथा यह अर्थ संगत नहीं लगता। वहाँ पर यह स्पष्ट किया गया है कि ज्ञाताधर्मकथा में ज्ञातों (उदाहरणभूत व्यक्तियों) के नगर उद्यान आदि का निरूपण किया गया है। प्रस्तुत आगम के प्रथम अध्ययन का नाम "उक्खित्तणाए" (उत्क्षिप्तज्ञात) है। यहां पर ज्ञात का अर्थ उदाहरण ही सही प्रतीत होता।

इसमें उदाहरणप्रधान धर्मकथाएँ हैं। उन कथाओं में उन धीरवीर साधकों का वर्णन है जो भयंकर उपसर्ग समुपस्थित होने पर भी मेरु की तरह अकंप रहे। इसमें परिमित वाचनाएँ, अनुयोगद्वार, वेढ, छन्द, श्लोक, निर्युक्तियाँ, संग्रहणियाँ व प्रतिपत्तियाँ संख्यात संख्यात हैं। इसके दो श्रुतस्कंध हैं। प्रथम श्रुतस्कंध में उन्नीस अध्ययन हैं और द्वितीय श्रुतस्कंध में दस वर्ग हैं। दोनों श्रुतस्कंधों के २९ उद्देशनकाल हैं २९ समुद्देशनकाल हैं, ५७६००० पद हैं संख्यात अक्षर हैं, अनंत गम अनंत पर्याय, परिमित त्रस, अनंत स्थावर आदि का वर्णन है। इसका वर्तमान में पदपरिमाण ५५०० श्लोक प्रमाण है।

प्रथम श्रुतस्कंध में कितनी ही कथाएँ—ऐतिहासिक व्यक्तियों से सम्बन्धित हैं और कितनी ही कथाएँ कल्पित हैं। प्रथम अध्ययन का मुख्य पात्र मेघकुमार ऐतिहासिक व्यक्ति है। तुंबे आदि की कुछ कथाएं रूपक के रूप में हैं। उन रूपक-कथाओं का उद्देश्य भी प्रतिबोध प्रदान करना है।

द्वितीय श्रुतस्कंध में दस वर्ग हैं। उनमें से प्रत्येक धर्मकथा में ५००-५०० आख्यायिकाएँ और एक एक आख्यायिका में ५००-५०० उप-आख्यायिकाएँ हैं और एक-एक उप आख्यायिका में ५००-५०० आख्यायिकोपाख्यायिकाएँ हैं[7] पर ये सारी कथाएँ आज उपलब्ध नहीं हैं। वह विराट कथासाहित्य आज विस्मृत हो चुका है। उसका केवल प्राचीन साहित्य में उल्लेख ही मिलता है। वर्तमान में प्रथम श्रुतस्कंध में १९ कथाएँ और द्वितीय श्रुतस्कंध में २०६ कथाएँ हैं। विश्व के जितने भी धर्मसंस्थापक हुए हैं उन्होंने जन-जन के आध्यात्मिक समुत्कर्ष के लिए तात्त्विक व गम्भीर रहस्यों को कथाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया। जैन दार्शनिक

---

१ तिलोयपण्णत्ति ४-५५० जयधवला पृ० १३५

२ धनंजय-नाममाला, ११५

३ उत्तरपुराण पृ० ४५०

४ Stories from The Dharma of Naya
इ, ए, जि १९ पृ ६६

५ समवायांग प्रकीर्णक समवाय सूत्र, ९४

६ नंदीसूत्र—८५

७ नंदीसूत्र बम्बई सूत्र ९२, पृ ३७

पहलुओ को सुलझाने के लिए कथाओं का उपयोग किया है। वेद उपनिषद, त्रिपिटक, कुरान व बाइबिल म कथाएँ व रूपक हैं।

भगवान् महावीर ने भी कथाओं द्वारा बोध प्रदान किया है। प्रस्तुत आगम मे आत्मा की उन्नति के क्या हेतु हैं किन कारणो से आत्मा अधोगत होता है महिलावर्ग भी उत्कृष्ट आध्यात्मिक उत्कर्ष कर सकता है। आहार का उद्देश्य, सयमी जीवन की कठोर साधना, शुभ परिणाम, अनासक्ति व श्रद्धा का महत्त्व आदि विषयो पर कथाओ के माध्यम से प्रकाश डाला गया है। ये कथाएँ वाद-विवाद के लिए नही, जीवन के उत्थान के लिए हैं। ये कथाएँ ईसामसीह की नीतिकथाओ (पैरबल्स) की तरह हैं, इनमे अनुभव का अमृत है। इन कथाओ की शैली सरल सीधी और सचोट है।

मेघकुमार

प्रथम श्रुतस्कध के प्रथम अध्ययन मे मेघकुमार की कथा दी गई है। मेघकुमार राजा श्रेणिक का पुत्र है। भगवान् महावीर के त्याग-वैराग्य से छलछलाते हुए प्रवचन को श्रवण कर अपनी आठो पत्नियो का परित्याग कर प्रव्रज्या ग्रहण करता है। माता-पिता व अन्य परिजन उसे रोकने का अथक प्रयास करते हैं किन्तु वैराग्यभावना इतनी प्रबल थी कि ससार का कोई भी आकर्षण उसे आकर्षित न कर सका। उसे एक दिन का राज्य भी दिया गया पर वह उसमे भी आसक्त नही हुआ। दीक्षा ग्रहण के पश्चात श्रमण मेघ को रात्रि मे सोने के लिए ऐसा स्थान मिला जहा सन्त-गण आते-जाते रहते थे। उनके पैरो की टकराहट से उसकी आखें खुल जाती, पुन आखो मे नीद आने लगती कि दूसरे मुनि के चरण स्पर्श हो जाता। फूलो की सुकुमार शय्या पर सोने वाला राजकुमार आज धूल मे सो रहा था और पैरो की ठोकरें लगने से उसे नीद नही आ रही थी, जिससे सिर भन्ना गया, आखें लाल हो गई और सम्पूर्ण शरीर शिथिल हो गया। उसके विचार बदल गये। उसका सम्पूर्ण धैर्य काच के बर्तन की तरह टूट-टूट कर बिखरने लगा। वह सोचने लगा—प्रतिदिन इस प्रकार पलकें मसलते मसलते उनीदी रातें बिताना किस प्रकार सभव हो सकेगा ? प्रात होने पर भगवान महावीर मुनि मेघकुमार को उसका पूर्वभव सुनाते और कहते हैं—तुमने पूर्वभव मे किस तरह कष्ट सहन किया था, स्मरण आ रहा है न ? सुमेरुप्रभ हाथी के भव मे ढाई दिन और तीन रात तुमने अपना एक पैर खरगोश को बचाने के लिए अधर रखा था। तीन दिन पश्चात् जब पैर को नीचे रखना चाहा तो अधर मे रहने के कारण वह अकड गया था। जोर देकर नीचे रखने का तुमने प्रयास किया तो अपने आपको न सभालकर नीचे गिर पड़े। तीन दिन के भूखे और प्यासे तुम उठ नही सके पर तुम्हारे मन मे अपूर्व शाति थी। वह सुमेरुप्रभ हाथी मरकर तुम मेघ हुए हो। अब जरा से कष्ट से घबरा रहे हो ! घबराओ मत, आध्यात्मिक दृष्टि से समभावपूर्वक सहन किये गये कष्टो का अत्यधिक मूल्य है। ये कष्ट जीवन को पवित्र बनाने वाले हैं।

भगवान महावीर की प्रेरणाप्रद वाणी मे मेघकुमार का हृदय प्रबुद्ध हो गया और वह साधकजीवन मे आने वाले कष्टो से जूझने के लिए तयार हो गया।

मेघ के साथ नन्द की तुलना

मेघकुमार के समान ही सद्य दीक्षित नन्द का वर्णन बौद्ध साहित्य सुत्तनिपात[1] धम्मपद[2] अट्ठकथा,

१ सुत्तनिपात—अट्ठकथा पृ० २७२

२ धम्मपद—अट्ठकथा, खण्ड-१। पृ० ५९-१०५

जातककथा[1] व थेरगाथा[2] में प्राप्त होता है। यहाँ भी तथागत बुद्ध के पास अपनी नवविवाहिता पत्नी जनपदकल्याणी को छोड़कर दीक्षा ग्रहण करता है। पर जनपदकल्याणी नन्दा का उसे स्मरण बना रहता है जिससे वह मन ही मन व्यथित होता है। तथागत बुद्ध ने उसके हृदय की बात जान ली और उसे प्रतिबुद्ध करने के लिए वे उसे अपने साथ में लेते हैं। चलते हुए मार्ग में एक बन्दरिया को दिखाते हैं, जिसके कान, नाक और पूंछ कटी हुई थी, जिसके बाल जल कर नष्ट हो गये थे। चमड़ी भी फट चुकी थी। उसमें से रक्त चू रहा था। देखने में बड़ी बीभत्स थी। बुद्ध ने नन्द से पूछा—नन्द, क्या तुम्हारी पत्नी इस बन्दरिया से अधिक सुन्दर है? उसने कहा—भगवन्! वह तो अत्यन्त सुन्दर है।

बुद्ध उसे अपने साथ त्रायस्त्रिंश स्वर्ग में ले गये। बुद्ध को देखकर अप्सराओं ने नमस्कार किया। अप्सराओं की ओर संकेत कर बुद्ध ने नन्द से पूछा—क्या तुम्हारी पत्नी जनपदकल्याणी नन्दा इनसे भी अधिक सुन्दर है? 'नहीं भगवन् इन अप्सराओं के दिव्य रूप के सामने जनपदकल्याणी नन्दा का रूप तो उस कनकटी बन्दरी के समान प्रतीत होता है।'' तथागत ने मुस्कराते हुए कहा—तो फिर नन्द, क्यों विमुख हो रहे हो? भिक्षुधर्म का पालन करो। यदि तुमने अच्छी तरह से भिक्षुधर्म का पालन किया तो इनसे भी अधिक सुन्दर अप्सराएँ तुम्हें प्राप्त होंगी। वह दत्तचित्त होकर भिक्षुधर्म का पालन करने लगा। पर उसके मन में भावना बनी हुई थी। उसका वैषयिक लक्ष्य मिटा नहीं था। एक बार सारीपुत्र आदि अस्सी भिक्षुओं ने उपहास करते हुए कहा—'तो अप्सराओं के लिए श्रमणधर्म का आचरण कर रहा है।' यह सुनकर वह बहुत ही लज्जित हुआ। उसके पश्चात् विषयाभिलाषा से वह मुक्त होकर अर्हत बना।

मेघकुमार और नन्द की साधना से विचलित होने के निमित्त अलग-अलग हैं। भगवान महावीर मेघकुमार को पूर्वभव की दारुण वेदना और मानवजीवन का महत्त्व बताकर संयम-साधना में स्थिर करते हैं तो तथागत बुद्ध नन्द को आगामी भव के रंगीन सुख बताकर स्थिर करते हैं। जातक साहित्य से यह भी परिज्ञात होता है कि नंद अपने पूर्व भवों में हाथी था[3]। दोनों के पूर्वभव में हाथी की घटना भी बहुत कुछ समानता लिए हुए है।

प्रथम अध्ययन में आये हुए अनेक व्यक्ति ऐतिहासिक हैं। सम्राट् श्रेणिक की जीवनगाथाएँ जैन साहित्य में ही नहीं, बौद्ध साहित्य में भी विस्तार से आई हैं[4]। अभयकुमार, जो श्रेणिक का पुत्र था, प्रबल प्रतिभा का धनी था, जैन और बौद्ध दोनों ही परम्पराएँ उसे अपना अनुयायी मानती हैं[5] और उसकी प्रत्युत्पन्न प्रतिभा की अनेक घटनाएँ जैन साहित्य में उट्टङ्कित हैं[6]।

---

१ जातक सं० १८२

२ थेरगाथा – १५७

३ संगामावचार जातक सं० १८२ (हिन्दी अनुवाद ख २ पृ २४८-२५४)

४ सुत्तनिपात पब्बज्जासुत्त २

(क) बुद्धचरित सर्ग ११ श्लो ७२

(ख) विनयपिटक-महावग्गो—पृ ३५-३८

५ (i) भरतेश्वर बाहुबलि वृत्ति, आवश्यकचूर्णि, धर्मरत्नप्रकरण आदि।

(ii) थेरीगाथा अट्ठकथा ३१-३२ मज्झिमनिकाय- अभयराजकुमार सुत्त, धम्मपद अट्ठकथा आदि।

६ त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र १०-११

अनुत्तरोपपातिकसूत्र मे अभयकुमार के जैनदीक्षा लेने का उल्लेख है।[1] बौद्धदीक्षा लेने का उल्लेख थेरा अपदान व थेर गाथा की अट्ठकथा मे है।[2] मज्झिमनिकाय,[3] सयुक्त निकाय[4] आदि मे उसक जीवनप्रसग हैं।

राजगृह

प्रथम अध्ययन मे राजगृह नगर का भी उल्लेख है जहा पर भगवान् महावीर ने अनेक चातुर्मास किय थे[5] और दो सौ से भी अधिक बार उनके वहाँ समवसरण लगे थे।[6] राजगृह नगर को प्रत्यक्ष देवलोकभूत व अलकापुरी सदृश कहा है।[7] तथागत बुद्ध भी अनेक बार राजगृह मे आए थे। उन्होने अपने धमप्रचार का केन्द्र बनाने का भी प्रयास किया था। भगवान महावीर गुणशील, मण्डिकुच्छ और मुदगरपाणि आदि उद्यानो मे ठहरा करते थे,[8] जबकि बुद्ध गद्धकूट पवत, कलदकनिवाप और वेणुवन मे ठहरते थे।[9] राजगृह नगर और उसके सन्निकट नारद ग्राम[10] कुक्कुटाराम विहार,[11] गध्रकूट पहाडी यष्टिवन,[12] उरुविल्वग्राम प्रभासवन[13] आदि बुद्ध धम से सम्बन्धित थे। राजगह मे एक बौद्ध-सगीति हुई थी।[14] जब बिम्बसार बुद्ध का अनुयायी था तब बुद्ध ने राजगह से वैशाली जाने की इच्छा व्यक्त की। तब राजा ने बुद्ध के लिए सडक बनवायी और राजगह से गगा तक की भूमि को समतल करवाया।[15]

राजगृह के प्राचीन नाम गिरिव्रत, वसुमती[16] बाहृद्रथपुरी[17] मगधपुर[18] वराह, वृषभ, ऋषिगिरि

---

१ अनुत्तरोपपातिक १-१०
२ खुद्दकनिकाय खण्ड ७ नालदा, भिक्षुजगदीश कश्यप
३ मज्झिमनिकाय ७६
४ सयुक्तनिकाय
५ कल्पसूत्र ५-१२३
(क) व्याख्याप्रज्ञप्ति ७-४, ५-९, २-५
(ख) आवश्यक ४७३/४९२/५१८
६ भगवान महावीर एक अनुशीलन पृ २४१-४३
७ पच्चक्ख देवलोगभूआ एव अलकापुरीसकासा।
८ (क) ज्ञाताधमकथा पृ ४७, (ख) दशाश्रुतस्कध १०९ पृ ३६४
(ग) उपासकदशा ८, पृ ५१
९ मज्झिमनिकाय सारनाथ पृ २३४
(ख) मज्झिमनिकाय चलसकलोदायी सुत्तन्त पृ ३०५
१० नेपालीज बुद्धिस्ट लिटरेचर पृ ४५
११ वही पृ ९-१०
१२ महावस्तु ४४१
१३ नेपालीज बुद्धिस्ट लिटरेचर पृ १६६
१४ चुल्लवग्ग ११वा खधक
१५ धम्मपद कामेट्री ४३९-४०
१६ रामायण १/३२/७
१७ महाभारत २४ से ४४
१८ वही २०-३०

गिरिव्रज[1], बिम्बसारपुरी[2] और कुशाग्रपुर[3] थे। बिम्बसार के शासनकाल में राजगृह में आग लग जाने से वह जल गई इसीलिए राजधानी हेतु नवीन राजगृह का निर्माण करवाया। युवानच्वाङ् का अभिमत है कि कुशाग्रपुर या कुशाग्रपुर आग में भस्म हो जाने से राजा बिम्बसार श्मशान में गये और नये राजगृह का निर्माण करवाया। फाहियान का मानना है नये नगर का निर्माण अजातशत्रु ने करवाया, न कि बिम्बसार ने।

चीनी यात्री ह्वेनसांग जब भारत आया था तो वह राजगृह में भी गया था, पर महावीर और बुद्ध युग का विराट वैभव उस समय नहीं था।[4]

महाभारत में राजगृह को पाँच पहाड़ियों से परिवेष्टित कहा है (१) वैहार, (२) वाराह (३) वृषभ (४) ऋषिगिरि और (५) चैत्यगिरि[5]। फाहियान ने भी इस सत्य तथ्य को स्वीकार किया।[6] युवानच्वाङ् का भी यही अभिमत है।[7] गौतम बुद्ध के समय राजगृह की परिधि तीस मील के लगभग थी।[8] राजनीति के केन्द्र के साथ ही वह धार्मिक केन्द्र भी था। महाभारत में राजगृह की पहाड़ियों को सिद्धों, यतियों और मुनियों का स्थान भी बताया है।[9] वहाँ पर अनेक सन्तगण ध्यान की साधना करते थे। जैन और बौद्ध साहित्य में उनके उल्लेख हैं। भगवती आदि में गर्म पानी के कुण्डों का वर्णन है। युवानच्वाङ् ने भी इस बात को स्वीकार किया है। उस पानी से अनेक चर्मरोगी पूर्ण स्वस्थ हो जाते थे,[10] आज भी वे कुण्ड हैं।

स्वप्न : एक चिन्तन

प्रस्तुत अध्ययन में महारानी धारिणी के स्वप्न का वर्णन है। वह स्वप्न में अपने मुख में हाथी को प्रवेश करता हुआ देखती है। जहाँ कहीं भी आगम-साहित्य में कोई भी विशिष्ट पुरुष गर्भ में आता है उस समय उसकी माता स्वप्न देखती है। स्वप्न न जागते हुए आते हैं, न प्रगाढ़ निद्रा में आते हैं किन्तु जब मध्यस्थित अवस्था में मानव होता है उस समय उसे स्वप्न आते हैं।[11] अष्टांगहृदय में लिखा है[12]—जब इन्द्रियाँ अपने विषय में निवृत्त होकर प्रशान्त हो जाती हैं और मन इन्द्रियों के विषय में लगा रहता है तब वह स्वप्न देखता है।

---

१ पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ ऍश्येंट इण्डिया पृ. ७०
२ द लाइफ एण्ड वर्क ऑव बुद्धघोष, पृ. ८७ टिप्पणी
३ वाटर्स, द ट्रेवल्स ऑव युवानच्वाङ्, पृ. ११३ पार्जिटर ऍश्येंट इण्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडिशन पृ. १४९
४ लेग, फाहियान पृ. ८०
५ महाभारत सभापर्व अध्याय ५४ पंक्ति १२०
६ फाहियान, गाइल्स अनुवाद पृ. ४०
७ ऑन युवानच्वाङ् वाटर्स २, १५२
८ ऑन युवानच्वाङ् वाटर्स २, १५३
९ तत्र देवाः सुसिद्धाश्च समागताः ।
यतीनामाश्रमाश्चैव मुनीनां च महात्मनाम् ।
वृषभस्य तमालस्य महावीर्यस्य च तथा ।
गन्धर्वरक्षसां चैव नागानां च तथालयाः ॥
—महाभारत सभापर्व अ. २१ १२-१४
१० ऑन युवानच्वाङ् वाटर्स, २, १५४
११ भगवती सूत्र १६-६
१२ अष्टांगहृदय निदानस्थान

जैन दर्शन के अनुसार स्वप्न का मूल कारण दर्शनमोहनीय कर्म का उदय है। दर्शनमोह के कारण मन में राग और द्वेष का स्पन्दन होता है, चित्त चचल बनता है। शब्द आदि विषयों से सबधित स्थूल और सूक्ष्म विचार-तरंगों से मन प्रकंपित होता है। सकल्प-विकल्प या विषयमुखी वृत्तियां इतनी प्रबल हो जाती हैं कि नीद आने पर भी शांति नहीं होती। इन्द्रियाँ सो जाती हैं, किन्तु मन की वृत्तियाँ भटकती रहती हैं। व अनेकानेक विषयों का चिन्तन करती रहती हैं। वृत्तियों की इस प्रकार की चचलता ही स्वप्न है।

सिगमण्ड फ्रायड ने स्वप्न को अथ दमित वासनाओं की अभिव्यक्ति कहा है। उन्होंने स्वप्न के सक्षपण, विस्तारीकरण, भावान्तरकरण, और नाटकीकरण, ये चार प्रकार किये हैं। (१) बहुत विस्तार की घटना को स्वप्न में संक्षिप्त रूप से देखना (२) स्वप्न में घटना को विस्तार से देखना (३) घटना का रूपान्तर हो जाना, किन्तु मूल संस्कार वही है, अभिभावक द्वारा भयभीत करने पर स्वप्न में किसी क्रूर व्यक्ति आदि को देखकर भयभीत होना (४) पूरी घटनाएँ नाटक के रूप में स्वप्न में आना।

चार्ल्स युग[1] स्वप्न को केवल अनुभव की प्रतिक्रिया नहीं मानते हैं। व स्वप्न को मानव के चारित्र का विकास और भावी जीवन का द्योतक मानते हैं। फ्रायड और युग के स्वप्न सबधी विचारों में मुख्य रूप से अन्तर यह है कि फ्रायड यह मानता है कि अधिकांश स्वप्न मानव की कामवासना से सम्बधित होते हैं जब कि युग का मन्तव्य है कि स्वप्नों का कारण मानव के केवल वैयक्तिक अनुभव अथवा उसकी स्वार्थमयी इच्छाओं का दमन मात्र ही नहीं होता अपितु उसके गभीरतम मन की आध्यात्मिक अनुभूतियाँ भी होती हैं। स्वप्न में केवल दमित भावनाओं की अभिव्यक्ति की बात पूर्ण सगत नहीं है, वह केवल सयोग मात्र ही नहीं है, किन्तु उसमें अभूतपूर्व सत्यता भी रही हुई होती है।

आचार्य जिनसेन ने[2] स्वस्थ अवस्था वाले और अस्वस्थ अवस्था वाले, ये दो स्वप्न के प्रकार माने हैं। जब शरीर पूर्ण स्वस्थ होता है तो मन पूर्ण शात रहता है, उस समय जो स्वप्न दीखते हैं वह स्वस्थ अवस्था वाला स्वप्न है। ऐसे स्वप्न बहुत ही कम आते हैं और प्राय सत्य होते हैं। मन विक्षिप्त हो और शरीर अस्वस्थ हो उस समय देखे गये स्वप्न असत्य होते हैं। आचार्य ने दोषसमुद्भव और देवसमुद्भव[3] इस प्रकार स्वप्न के दो भेद भी किये हैं। वात, पित्त, कफ प्रभृति शारीरिक विकारों के कारण जो स्वप्न आते हैं वे दोषज हैं। इष्टदेव या मानसिक समाधि की स्थिति में जो स्वप्न आते हैं वे देवसमुद्भव हैं। स्थानांग[4] और भगवती[5] में यथातथ्य स्वप्न, (जो स्वप्न में देखा है जागने पर उसी तरह देखना, अर्थात् अनुकूल प्रतिकूल शुभ-अशुभ फल की प्राप्ति) प्रतानस्वप्न (विस्तार से देखना) चिन्तास्वप्न (मन में रही हुई चिन्ता को स्वप्न में देखना) तद्विपरीत स्वप्न (स्वप्न में देखी हुई घटना का विपरीत प्रभाव) अव्यक्त स्वप्न (स्वप्न में दिखाई देने वाली वस्तु का पूर्ण ज्ञान न होना), इन पाँच प्रकार के स्वप्नों का वर्णन है।

---

१ हिन्दी विश्वकोष खण्ड-१२ पृ० २६४

२ ते च स्वप्ना द्विधा भ्रात स्वस्थास्वस्थात्मगोचरा ।
समैस्तु धातुभि स्वस्थविषमैरितरैर्मता ।
तथ्या स्यु स्वस्थसदृष्टा मिथ्या स्वप्नो विपर्ययात् ।
जगत्प्रतीतमेतद्धि विद्धि स्वप्नविमर्शनम् ॥ —महापुराण ४१-५९/६०

३ वही सग ४१/६१

४ स्थानांग—५

५ भगवती—१६-६

प्राचीन भारतीय स्वप्नशास्त्रियों ने स्वप्नों के नौ कारण बतलाये हैं[1]—

(१) अनुभूत स्वप्न (अनुभव की हुई वस्तु का) (२) श्रुत स्वप्न (३) दृष्ट स्वप्न (४) प्रकृतिविकारजन्य स्वप्न (वात, पित्त, कफ की अधिकता और न्यूनता से) (५) स्वाभाविक स्वप्न (६) चिन्ता समुत्पन्न स्वप्न (जिस पर पुनः पुनः चिन्तन किया हो) (७) देव प्रभाव से उत्पन्न होने वाला स्वप्न (८) धर्मक्रिया प्रभावोत्पादित स्वप्न और (९) पापोदय से आनेवाला स्वप्न। इसमें छह स्वप्न निरर्थक होते हैं और अन्त के तीन स्वप्न शुभाशुभ फल प्रदान करते हैं। जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण[2] ने भी विशेषावश्यक भाष्य में उनका उल्लेख किया है।

हम जो स्वप्न देखते हैं उनमें कोई-कोई सत्य होते हैं। हम पूर्व में बता चुके हैं कि जब इन्द्रियाँ प्रसुप्त होती हैं और मन जागृत होता है तो उसके परदे पर भविष्य में होने वाली घटनाओं का प्रतिबिम्ब गिरता है। मन उन अज्ञात घटनाओं का साक्षात्कार करता है। वह सुषुप्ति और अर्ध-निद्रावस्था में भावी के कुछ अस्पष्ट संकेतों को ग्रहण कर लेता है और वे स्वप्न रूप में दिखायी देते हैं।

स्वप्नशास्त्रियों ने यह भी बताया है कि किस समय देखा गया स्वप्न उत्तम और मध्यम होता है। रात्रि के प्रथम प्रहर में जो स्वप्न दीखते हैं उनका शुभ-अशुभ परिणाम बारह महीनों में प्राप्त होता है। द्वितीय प्रहर के स्वप्नों का फल छह महीने में, तृतीय प्रहर के स्वप्नों का फल तीन महीने और चतुर्थ प्रहर में जब मुहूर्त भर रात्रि अवशेष रहती है उस समय जो स्वप्न दिखाई देता है उसका फल दस दिनों में मिलता है। सूर्योदय के स्वप्न का फल बहुत ही शीघ्र मिलता है। जो स्वप्नपंक्ति देखते हैं या दिन में स्वप्न देखते हैं या मल-मूत्र आदि की व्याधि के कारण जो स्वप्न देखते हैं, वे स्वप्न सार्थक नहीं होते। पश्चिम रात्रि में शुभ स्वप्न देखने का एक ही कारण यह भी हो सकता है कि थका हुआ मन तीन प्रहर तक गहरी निद्रा लेने के कारण प्रशान्त हो जाता है। उसकी चपलता मिट जाती है। ताजगी उसमें होती है और स्थिरता भी। अतः उस समय देखे गये स्वप्न सत्य फल प्रदान करते हैं। शुभ स्वप्न देखने के बाद स्वप्नद्रष्टा को नहीं सोना चाहिए। क्योंकि स्वप्नदर्शन के पश्चात् नींद लेने से उस स्वप्न का फल नष्ट हो जाता है। जो अशुभ स्वप्न हो उसको देखने के बाद सो सकते हैं, जिससे उसका अशुभ फल नष्ट हो जाय। शुभ स्वप्न आने के पश्चात् धर्मचिन्तन करना चाहिए।

रात्रि में सोते समय प्रसन्न होना चाहिए। मन में किसी प्रकार की वासनाएँ या उत्तेजनाएँ नहीं होनी चाहिए। नमस्कार महामन्त्र जपते हुए या प्रभुस्मरण करते हुए जो निद्रा आती है, उसमें अशुभ स्वप्न नहीं आते उसे अच्छी निद्रा आती है और श्रेष्ठ स्वप्न दिखलायी देते हैं।

प्राचीन आचार्यों ने शुभ और अशुभ स्वप्नों की एक सूची[3] दी है। पर यह सूची पूर्ण हो ऐसी बात नहीं है। उनके अतिरिक्त भी कई तरह के स्वप्न आते हैं। उन स्वप्नों का सही फल जानने के लिए परिस्थिति, वातावरण और व्यक्ति की अवस्था देखकर ही निर्णय करना चाहिए।

---

१ अनुभूतः श्रुतो दृष्टः प्रकृतेश्च विकारजः।
स्वभावतः समुद्भूतः चिन्तासन्ततिसम्भवः॥
देवताद्युपदेशोत्थो धर्मकर्मप्रभावजः।
पापोद्रेकसमुत्थश्च स्वप्नः स्यान्नवधा नृणाम्॥
प्रकारैरादिमैः षड्भि—रशुभश्चाशुभोऽपि वा।
दृष्टो निरर्थको स्वप्नः सत्यस्तु त्रिभिरुत्तरैः॥ —स्वप्नशास्त्र

२ विशे. आव. भाष्य गाथा १७०३

३ भगवती सूत्र १६-६

विशिष्ट व्यक्तियो की माताएँ जो स्वप्न निहारती हैं उनके अन्तर्मानस की उदात्त आकांक्षाएँ उसमे रहती हैं। वे सोचती हैं कि मेरे ऐसा दिव्य पुत्र हो जो दिग्दिगन्त को अपनी यशोगाथा से गौरवान्वित करे। उसकी पवित्र भावना के कारण इस प्रकार के पुत्र आते भी हैं। यह अवश्य स्मरण रखना चाहिए कि स्वप्न वस्तुत स्वप्न ही है। स्वप्न पर अत्यधिक विश्वास कर यथार्थता से मुँह नही मोडना चाहिए। केवल स्वप्नद्रष्टा नही यथार्थद्रष्टा बनना चाहिए। यह तो केवल सूचना प्रदान करने वाला है।

दोहद एक अनुचिन्तन

प्रस्तुत अध्ययन मे मेघकुमार की माता धारिणी को यह दोहद उत्पन्न होता है कि आकाश मे उमड-घुमड कर घटाएं आयें, हजार-हजार धारा के रूप मे वह बरस पडे। आकाश मे चारु चपला की चमक हो। चारो ओर हरियाली लहलहा रही हो, रंगबिरंगे फूल महक रहे हो, मेघ की गभीर गर्जना को सुनकर मयूर केकारव के साथ नृत्य कर रहे हो और कलकल और छलछल करते हुए नदी-नाले बह रहे हो, मढकों की टर-टर ध्वनि हो रही हो। उस समय मैं अपने पति सम्राट श्रेणिक के साथ हस्ती-रत्न पर आरूढ होकर राजगृह नगर के उपवन वैभारगिरि मे पहुँचकर आनन्द क्रीडा करूँ। पर वह ऋतु वर्षा की नहीं थी, जिससे दोहद की पूर्ति हो सके। दोहद की पूर्ति न होने से महारानी मुरझाने लगी। महाराजा श्रेणिक उसके मुरझाने के कारण को समझकर अभयकुमार के द्वारा महारानी के दोहद की पूर्ति करवाते है।

दोहद की इस प्रकार की घटनाएँ आगम साहित्य[1] मे अन्य स्थलो पर भी आई है। जैनकथासाहित्य मे, बौद्ध जातको मे[2] और वैदिक परम्परा के ग्रन्थो[3] मे दोहद का अनेक स्थलो पर वर्णन है। यह ज्ञातव्य है कि जब महिला गर्भवती होती है तब गर्भ के प्रभाव से उसके अन्तर्मानस मे विविध प्रकार की इच्छाएँ उद्बुद्ध होती हैं। वे विचित्र और असामान्य इच्छाएँ 'दोहद' 'दोहला' कही जाती है। दोहद के लिए संस्कृत साहित्य मे 'द्विहृद' भी आया है। 'द्विहृद' का अर्थ है दो हृदय को धारण करने वाली। गर्भावस्था मे मा की इच्छाओ पर गर्भस्थ शिशु का भी प्रभाव होता है। यद्यपि शिशु की इच्छाएँ जिस रूप मे चाहिए उस रूप मे व्यक्त नही होती, किन्तु उसका प्रभाव मा की इच्छाओ पर अवश्य ही होता है। मैंने स्वय अनुभव किया है कि कजूस से कजूस महिला भी गर्भस्थ शिशु के प्रभाव के कारण उदार भावना से दान देती है धर्म की साधना करती है और धर्म-साधना करने वाली महिलाएँ भी शिशु के प्रभाव से धर्म-विमुख बन जाती है। इसलिए यह स्पष्ट है कि गर्भस्थ शिशु का प्रभाव मा पर होता है और मा की विचारधारा का असर शिशु पर भी होता है। जीजाबाई आदि के ऐतिहासिक उदाहरण हमारे सामने हैं, जिन्होने अपने गर्भस्थ शिशु पर शौर्य के संस्कार डाले थे।

दोहद के समय महिला की स्थिति विचित्र बन जाती है। उस समय उसकी भावनाएँ इतनी तीव्र होती हैं कि यदि उसकी भावनाओ की पूर्ति न की जाये तो वह रुग्ण हो जाती है। कई बार तो दोहद की पूर्ति के अभाव मे महिलाएँ अपने प्राणो का त्याग भी कर देती हैं। सुश्रुत भारतीय आयुर्वेद का एक शीर्षस्थ ग्रन्थ है। उसमे लिखा

---

१ विपाक सूत्र—३, वद्दाकोसु स १६, गाहा सतसई प्र शतक गा १-१५,
—३-९०२ ५-७०, श्रेणिक चरित्र, उत्तरा टीका १३२, आवश्यक-चूर्णि ० पृ० १६६
निरियावालिका १ पृ० ९-११, पिण्ड नियुक्ति ८०, व्यवहारभाष्य १, ३ पृ० १६,
२ सिसुमार जातक एव वानर जातक, सुपत्त जातक धूस जातक, छवक जातक
निदान कथा,
३ रघुवंश—स०१४, कथासरित्सागर अ० २२, ३५, तिलकमजरी पृ ३५, बाणासहार।

है—दोहद के पूर्ण न होने पर जो संतान उत्पन्न होती है उसका अवयव विकृत होता है। या तो वह कुबड़ा ठूंठ लुंज-पुंज जड़, बौना, बहरा या अंधा होगा, अष्टावक्र की तरह कुरूप होगा। किन्तु दोहद पूर्ण होने पर संतान सर्वांगसुन्दर होती है।[1]

आचार्य हेमचन्द्र के समय तक दोहदों माता की मनोरथ-पूर्ति के रूप में प्रचलित था। राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश और दक्षिण भारत के कर्नाटक, आन्ध्र और तमिलनाडु में सातवें माह में गोद, साध और सीमन्त के रूप में समारंभ मनाया जाता है। सात महीने में गर्भस्थ शिशु प्रायः शारीरिक पूर्णता को प्राप्त कर लेता है। ऐसा भी माना जाता है कि यदि सात मास में बालक का जन्म हो जाता है और वह जीवित रहता है तो महान् यशस्वी होता है। वासुदेव श्रीकृष्ण को सातवें माह में उत्पन्न हुआ माना जाता है।

सुश्रुत आदि में चार माह में दोहद पूर्ति का समय बताया है। ज्ञाताधर्मकथा[2] 'कथा-कोश'[3] और कहारयणु[4] आदि ग्रन्थों में ऐसे प्रसंग मिलते हैं कि तीसरे, पाँचवें और सातवें माह में दोहद की पूर्ति की गई। क्योंकि उसी समय उसको दोहद उत्पन्न हुए थे। आधुनिक शरीर-शास्त्रियों का भी यह अभिमत है कि शरीर निर्माण की प्रक्रिया तृतीय मास में पूर्ण हो जाती है उसके पश्चात् भ्रूण के आवश्यक अंग प्रत्यंग में पुष्टता आती रहती है।

अंगविज्जा[5] जैन साहित्य का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। उस ग्रन्थ में विविध दृष्टियों से दोहदों के संबंध में गहराई से चिन्तन किया है। जितने भी दोहद उत्पन्न होते हैं, उन्हें पाँच भागों में विभक्त किया जा सकता है—शब्दगत, गंधगत, रूपगत, रसगत और स्पर्शगत। क्योंकि ये ही मुख्य इन्द्रियों के विषय हैं और इन्हीं की दोहदों में पूर्ति की जाती है। प्राचीन साहित्य में जितने भी दोहद आये हैं, उन सभी का समावेश इन पाँचों में हो जाता है। वैदिक वाङ्मय में, बौद्ध जातक साहित्य में और जैन कथा साहित्य में दोहद उत्पत्ति और उसकी पूर्ति के अनेक प्रसंग मिलते हैं। चरक आदि में भी इस पर विस्तार से चर्चा है।

प्राचीन ग्रन्थों के आधार से पाश्चात्य चिन्तक डा० ब्लूमफील्ड[6] आदि ने दोहद के सम्बन्ध में खूब चिन्तन किया है।

कला एक विश्लेषण

व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के सर्वांगीण विकास हेतु शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक माना गया था। प्राचीन शिक्षापद्धति का उद्देश्य था चरित्र का गठन, व्यक्तित्व-निर्माण, संस्कृति की रक्षा, सामाजिक

---

1 दौहृदविमानात् कुब्जं कुणिं खञ्जं जडं वामनं विकृताक्षमनक्षं वा नारी सुतं जनयति। तस्मात् सा यद्यदिच्छेत् तत्तस्यै दापयेत्। लब्धदौहृदा हि वीर्यवन्तं चिरायुषं पुत्रं जनयति।

—सुश्रुतसंहिता, अ० ३, शारीरस्थानम्-१५

2 ज्ञाताधर्मकथा—१, पृ० १०

3 कथाकोश पृ० १४

4 कहारयणु—गा-४१

5 अंगविज्जा अध्याय ३१

6 The Dohado or Craving of Pregnant women

— Journal of American Oriental Society Vol IX Part 1st Page 1-24

धार्मिक कर्तव्यों का सम्यक् प्रकार से पालन करना। जब मेघकुमार आठ वर्ष का हो गया तब शुभ नक्षत्र और श्रेष्ठ लग्न में उसे कलाचार्य के पास ले जाया गया। प्राचीन युग में शिक्षा का प्रारम्भ आठ वर्ष में माना गया, क्योंकि तब तक बालक का मस्तिष्क शिक्षा ग्रहण करने के योग्य हो जाता था। भगवती[1] और अन्य आगमों में भी इसी उम्र का उल्लेख है। कथाकोश-प्रकरण[2], ज्ञानपंचमी कथा[3], कुवलयमाला[4] आदि में भी इसी उम्र का उल्लेख है। स्मृतियों में पांच वर्ष की उम्र में शिक्षा देने का उल्लेख है। पर आगमों में आठ वर्ष ही बताया है[5]।

उस युग में विविध कलाओं का गहराई से अध्ययन कराया जाता था। पुरुषों के लिए बहत्तर कलाएँ और स्त्रियों के लिए चौसठ कलाएँ थी। केवल ग्रन्थों से ही नहीं, उन्हें अर्थ और प्रयोगात्मक रूप से भी सिखलाया जाता था। वे कलाएँ मानव की ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के पूर्ण विकास के लिए अत्यन्त उपयोगी थी। मानसिक विकास उच्चतम होने पर भी शारीरिक विकास यदि न हो तो उसके अध्ययन में चमत्कृति पैदा नहीं हो सकती।

प्रस्तुत आगम में बहत्तर कलाओं का उल्लेख हुआ है। बहत्तर कलाओं के नाम समवायांग, राजप्रश्नीय, औपपातिक और कल्पसूत्र सुबोधिका टीका में भी प्राप्त होते हैं। पर ज्ञातासूत्र में आई हुई कलाओं के नामों में और उन आगमों में आये हुए नामों में कुछ अन्तर है। तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने हेतु हम यहां दे रहे हैं। —ज्ञातासूत्र के अनुसार[6] (१) लेख (२) गणित (३) रूप (४) नाट्य (५) गीत (६) वादित्र (७) स्वरगत (८) पुष्करगत (९) समताल (१०) द्यूत (११) जनवाद (१२) पाशक (पासा) (१३) अष्टापद (१४) पुर काव्य (१५) दकमृत्तिका (१६) अन्नविधि (१७) पानविधि (१८) वस्त्रविधि (१९) विलेपनविधि (२०) शयनविधि (२१) आर्या (२२) प्रहेलिका (२३) मागधिका (२४) गाथा (२५) गीति (२६) श्लोक (२७) हिरण्ययुक्ति (२८) स्वर्णयुक्ति (२९) चूर्णयुक्ति (३०) आभरणविधि (३१) तरुणीप्रतिकर्म (३२) स्त्रीलक्षण (३३) पुरुष-लक्षण (३४) हयलक्षण (३५) गजलक्षण (३६) गोलक्षण (३७) कुक्कुटलक्षण (३८) छत्रलक्षण (३९) दण्डलक्षण (४०) असिलक्षण (४१) मणिलक्षण (४२) काकणीलक्षण (४३) वास्तुविद्या (४४) स्कन्धावारमान (४५) नगरमान (४६) व्यूह (४७) प्रतिव्यूह (४८) चार (४९) प्रतिचार (५०) चक्रव्यूह (५१) गरुडव्यूह (५२) शकटव्यूह (५३) युद्ध (५४) नियुद्ध (५५) युद्धनियुद्ध (५६) दृष्टियुद्ध (५७) मुष्टियुद्ध (५८) बाहुयुद्ध (५९) लतायुद्ध (६०) इषुशास्त्र (६१) छरुप्रवाद (६२) धनुर्वेद (६३) हिरण्यपाक (६४) स्वर्णपाक (६५) सूत्रखेड (६६) वस्त्रखेल (६७) नालिकाखेल (६८) पत्रच्छेद्य (६९) कटच्छेद्य (७०) सजीव (७१) निर्जीव (७२) शकुनिरुत।

औपपातिक[7] में पांचवी कला 'गीत' है, पच्चीसवी कला 'गीति' और छप्पनवी कला 'दृष्टियुद्ध' नहीं है।

---

१ भगवती-अभयदेव वृत्ति ११ ११ ४२९, पृ ९९९
२ कथाकोश प्रकरण पृ ८
३ नाणपंचमी कहा ६ ९२
४ कुवलयमाला २१, १२-१३
५ (क) डी सी दासगुप्त 'द जैन सिस्टम आफ एजुकेशन' पृ ७४
(ख) एच आर कापडिया 'द जैन सिस्टम आफ एजुकेशन' पृ २०६
६ ज्ञातासूत्र पृ ४८ (प्रस्तुत संस्करण)
७ औपपातिक ४० पत्र १८५

है—दोहद के पूर्ण न होने पर जो सन्तान उत्पन्न होती है उसका अवयव विकृत होता है। या तो वह कुबड़ा होगा लुंज-पुंज, जड, बौना, बडा या अंधा होगा, अष्टावक्र की तरह कुरूप होगा। किन्तु दोहद पूर्ण होने पर सन्तान सर्वांगसुन्दर होती है।[1]

आचार्य हेमचन्द्र के समय तक दोहला माता की मनोरथ-पूर्ति के अर्थ में प्रचलित था। राजस्थान मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश और दक्षिण भारत के कर्नाटक, आन्ध्र और तमिलनाडु में सातवें माह में गोद, सांध और सीमन्त के रूप में समारंभ मनाया जाता है। सात महीने में गर्भस्थ शिशु प्राय शारीरिक पूर्णता को प्राप्त कर लेता है। ऐसा भी माना जाता है कि यदि सात मास में बालक का जन्म हो जाता है और वह जीवित रहता है तो महान् यशस्वी होता है। वासुदेव श्रीकृष्ण को सातवें माह में उत्पन्न हुआ माना जाता है।

सुश्रुत आदि में चार माह में दोहद पूर्ति का समय बताया है। ज्ञातधर्मकथा[2] कथा-कोश[3] और कहारयणकोसु[4] आदि ग्रन्थों में ऐसे प्रसंग मिलते हैं कि तीसरे, पाँचवें और सातवें माह में दोहद की पूर्ति की गई। क्योंकि उसी समय उसको दोहद उत्पन्न हुए थे। आधुनिक शरीर-शास्त्रियों का भी यह अभिमत है कि अवयव निर्माण की प्रक्रिया तृतीय मास में पूर्ण हो जाती है उसके पश्चात् भ्रूण के आवश्यक अंग प्रत्यंग में पूर्णता आती रहती है।

अंगविज्जा[5] जैन साहित्य का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। उस ग्रन्थ में विविध दृष्टियों से दोहदा के सम्बन्ध में गहराई से चिन्तन किया है। जितने भी दोहद उत्पन्न होते हैं, उन्हें पाँच भागों में विभक्त किया जा सकता है—शब्दगत, गंधगत, रूपगत, रसगत और स्पर्शगत। क्योंकि ये ही मुख्य इन्द्रियों के विषय हैं और इन्हीं की दोहदा में पूर्ति की जाती है। प्राचीन साहित्य में जितने भी दोहद आये हैं, उन सभी का समावेश इन पाँचों में हो जाता है। वैदिक वाङ्मय में, बौद्ध जातक साहित्य में और जैन कथा साहित्य में दोहद उत्पत्ति और उसकी पूर्ति के अनेक प्रसंग मिलते हैं। चरक आदि में भी इस पर विस्तार से चर्चा है।

प्राचीन ग्रन्थों के आधार से पाश्चात्य चिन्तक डा० ब्लूमफील्ड[6] आदि ने दोहद के सम्बन्ध में कुछ चिन्तन किया है।

कला एक विश्लेषण

व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के सर्वांगीण विकास हेतु शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक माना गया था। प्राचीन शिक्षापद्धति का उद्देश्य था चरित्र का संगठन, व्यक्तित्वनिर्माण, संस्कृति की रक्षा, सामाजिक

---

१ दोहदविमानात् कुब्जं कुणिं खञ्जं जडं वामनं विकृताक्षमनक्षं वा नारी सुतं जनयति। तस्मात सा यद्यदिच्छेत् तत्तस्यै दापयेत्। लब्धदौहृदा हि वीर्यवन्तं चिरायुषञ्च पुत्रं जनयति।

—सुश्रुतसंहिता अ० ३, शरीरस्थान-१४

२ ज्ञाताधर्मकथा—१, पृ० १०

३ कथाकोश पृ० १४

४ कहारयणकोसु—गं-४०

५ अंगविज्जा अध्याय २६

६ The Dohado or Craving of Pregnant women

—Journal of American Oriental Society Vol IX Part 1st Page 1-24

धार्मिक कर्त्तव्यों को सम्यक् प्रकार से पालन करना। जब मेघकुमार आठ वर्ष का हो गया तब शुभ नक्षत्र और श्रेष्ठ लग्न में उसे कलाचार्य के पास ले जाया गया। प्राचीन युग में शिक्षा का प्रारम्भ आठ वर्ष में माना गया, क्योंकि तब तक बालक का मस्तिष्क शिक्षा ग्रहण करने के योग्य हो जाता था। भगवती[1] और अन्य आगमों में भी इसी उम्र का उल्लेख है। कथाकोश-प्रकरण[2], ज्ञानपंचमी कथा[3], कुवलयमाला[4] आदि में भी इसी उम्र का उल्लेख है। स्मृतियों में पांच वर्ष की उम्र में शिक्षा देने का उल्लेख है। पर आगमों में आठ वर्ष ही बताया है[5]।

उस युग में विविध कलाओं का गहराई से अध्ययन कराया जाता था। पुरुषों के लिए बहत्तर कलाएँ और स्त्रियों के लिए चौसठ कलाएँ थीं। केवल ग्रंथों से ही नहीं, उन्हें अर्थ और प्रयोगात्मक रूप से भी सिखलाया जाता था। वे कलाएँ मानव की ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियों के पूर्ण विकास के लिए अत्यन्त उपयोगी थीं। मानसिक विकास उच्चतम होने पर भी शारीरिक विकास यदि न हो तो उसके अध्ययन में चमत्कृति पैदा नहीं हो सकती।

प्रस्तुत आगम में बहत्तर कलाओं का उल्लेख हुआ है। बहत्तर कलाओं के नाम समवायांग, राजप्रश्नीय, औपपातिक और कल्पसूत्र सुबोधिका टीका में भी प्राप्त होते हैं। पर ज्ञातासूत्र में आई हुई कलाओं के नामों में और उन आगमों में आये हुए नामों में कुछ अंतर है। तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने हेतु हम यहाँ दे रहे हैं। —**ज्ञातासूत्र के अनुसार**[6] (१) लेख (२) गणित (३) रूप (४) नाट्य (५) गीत (६) वादित्र (७) स्वरगत (८) पुष्करगत (९) समताल (१०) द्यूत (११) जनवाद (१२) पाशक (पासा) (१३) अष्टापद (१४) पुरःकाव्य (१५) दकमृत्तिका (१६) अन्नविधि (१७) पानविधि (१८) वस्त्रविधि (१९) विलेपनविधि (२०) शयनविधि (२१) आर्या (२२) प्रहेलिका (२३) मागधिका (२४) गाथा (२५) गीति (२६) श्लोक (२७) हिरण्ययुक्ति (२८) स्वर्णयुक्ति (२९) चूर्णयुक्ति (३०) आभरणविधि (३१) तरुणीप्रतिकर्म (३२) स्त्रीलक्षण (३३) पुरुष-लक्षण (३४) हयलक्षण (३५) गजलक्षण (३६) गोलक्षण (३७) कुक्कुटलक्षण (३८) छत्रलक्षण (३९) दण्डलक्षण (४०) असिलक्षण (४१) मणिलक्षण (४२) काकणीलक्षण (४३) वास्तुविद्या (४४) स्कन्धावारमान (४५) नगरमान (४६) व्यूह (४७) प्रतिव्यूह (४८) चार (४९) प्रतिचार (५०) चक्रव्यूह (५१) गरुडव्यूह (५२) शकटव्यूह (५३) युद्ध (५४) नियुद्ध (५५) युद्धनियुद्ध (५६) दृष्टियुद्ध (५७) मुष्टियुद्ध (५८) बाहुयुद्ध (५९) लतायुद्ध (६०) इषुशास्त्र (६१) छरुप्रवाद (६२) धनुर्वेद (६३) हिरण्यपाक (६४) स्वर्णपाक (६५) सूत्रखेड (६६) वस्त्रखेल (६७) नालिकाखेल (६८) पत्रच्छेद्य (६९) कटच्छेद्य (७०) सजीव (७१) निर्जीव (७२) शकुनिरुत।

औपपातिक[7] में पाँचवीं कला 'गीत' है, पच्चीसवीं कला 'गीति' और छप्पनवीं कला 'दृष्टियुद्ध' नहीं है।

---

१ भगवती-अभयदेव वृत्ति ११ ११, ४२९, पृ ९९९
२ कथाकोश प्रकरण पृ ८
३ नाणपंचमी कहा ६ ९२
४ कुवलयमाला २१, १२-१३
५ (क) डी सी दासगुप्त 'द जैन सिस्टम आफ एजुकेशन' पृ ७४
(ख) एच आर कापडिया 'द जैन सिस्टम आफ एजुकेशन' पृ २०६
६ ज्ञातासूत्र पृ ४८ (प्रस्तुत संस्करण)
७ औपपातिक ४० पत्र १८५

इनके स्थान पर औपपातिक मे (३६) चक्रलक्षण, (३८) चम्मलक्षण तथा (४६) वत्थुनिवेशन कलाओं का उल्लेख है।

रायपसेणिय सूत्र[1] म उन्नीसवी कला 'चूर्णयुक्ति' नही है, (३८) वीं कला 'चक्रलक्षण' विशेष है। छप्पनवी कला 'दष्टियुद्ध' के स्थान पर 'यष्टियुद्ध' है। अन्य सभी कलाएँ ज्ञाताधर्म के अनुसार ही हैं।

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[2] शान्तिचन्द्रीयवृत्ति, वक्षस्कार-२ पत्र सख्या १३६-२, १३७-१ म सभी कलाएँ ज्ञातासूत्र जैसी ही हैं, किन्तु सख्या क्रम मे किंचित् अन्तर है।

ज्ञातासूत्र में[3] आयी हुई बहत्तर कलाओ के नामों मे और समवायांग मे आई हुई बहत्तर कलाओं के नामो मे बहुत अन्तर है। समवायाग की कलासूची यहाँ प्रस्तुत है—

(१) लेह—लेख लिखने की कला
(२) गणिय—गणित
(३) रूव—रूप सजाने की कला
(४) नट्ट—नाट्य करने की कला
(५) गीय—गीत गाने की कला
(६) वाइय—वाद्य बजाने की कला
(७) सरगय—स्वर जानने की कला
(८) पुक्खरगय—ढोल आदि वाद्य बजाने की कला
(९) समताल—ताल देना
(१०) जूय—जुआ खेलने की कला
(११) जणवाय—वार्तालाप की कला
(१२) पोक्खच्च—नगर-संरक्षण की कला
(१३) अट्ठावय—पासा खेलने की कला
(१४) दगमट्टिय—पानी और मिट्टी के सम्मिश्रण से वस्तु बनाने की कला
(१५) अन्नविहि—अन्न उत्पन्न करने की कला
(१६) पाणविहि—पानी को उत्पन्न करने तथा शुद्ध करने की कला
(१७) वत्थविहि—वस्त्र बनाने की कला
(१८) सयणविहि—शय्या निर्माण करने की कला
(१९) अज्ज—संस्कृत भाषा में कवितानिर्माण की कला।
(२०) पहेलिय—प्रहेलिका निर्माण की कला
(२१) मागहिय—छन्द विशेष बनाने की कला
(२२) गाह—प्राकृत भाषा म गाथा निर्माण की कला
(२३) सिलोग—श्लोक बनाने की कला

१ राजप्रश्नीयसूत्र, पत्र ३४०
२ समवायाग, समवाय ७२
३ ज्ञातासूत्र-१

(२४) गधजुत्ति—सुगधित पदार्थ बनाने की कला
(२५) मधुसित्थ—मधुरादि छह रस सबधी कला
(२६) आभरणविहि—अलकार निर्माण व धारण की कला
(२७) तरुणीपडिकम्म—स्त्री को शिक्षा देने की कला
(२८) इत्थीलक्खण—स्त्री के लक्षण जानने की कला
(२९) पुरिसलक्खण—पुरुष के लक्षण जानने की कला
(३०) हयलक्खण—घोडे के लक्षण जानने की कला
(३१) गयलक्खण—हस्ती के लक्षण जानने की कला
(३२) गोलक्खण—गाय के लक्षण जानने की कला
(३३) कुक्कुडलक्खण—कुक्कुट के लक्षण जानने की कला
(३४) मिढियलक्खण—मेढे के लक्षण जानने की कला
(३५) चक्कलक्खण—चक्र के लक्षण जानने की कला
(३६) छत्रलक्खण - छत्र के लक्षण जानने की कला
(३७) दण्डलक्खण—दण्ड के लक्षण जानने की कला
(३८) असिलक्खण—तलवार के लक्षण जानने की कला
(३९) मणिलक्खण—मणि के लक्षण जानने की कला
(४०) कागणिलक्खण—काकिणी-चक्रवर्ती के रत्न विशेष के लक्षण जानने की कला
(४१) चम्मलक्खण—चर्म लक्षण जानने की कला
(४२) चदलक्खण—चन्द्र लक्षण जानने की कला
(४३) सूरचरिय—सूर्य आदि की गति जानने की कला
(४४) राहुचरिय राहु आदि की गति जानने की कला
(४५) गहचरिय—ग्रहो की गति जानने की कला
(४६) सोभागकर—सौभाग्य का ज्ञान
(४७) दोभागकर—दुर्भाग्य का ज्ञान
(४८) विज्जागय—रोहिणी, प्रज्ञप्ति आदि विद्या सम्बन्धी ज्ञान
(४९) मतगय—मन्त्र साधना आदि का ज्ञान
(५०) रहस्सगय—गुप्त वस्तु को जानने की कला
(५१) सभास—प्रत्येक वस्तु के वृत्त का ज्ञान
(५२) चार—सैन्य का प्रमाण आदि जानना
(५३) पडिचार—सेना को रणक्षेत्र मे उतारने की कला
(५४) वूह—व्यूह रचने की कला
(५५) पडिवूह—प्रतिव्यूह रचने की कला
(५६) खधावारमाण—सेना के पडाव का प्रमाण जानना
(५७) नगरमाण—नगर का प्रमाण जानने की कला
(५८) वत्थुमाण—वस्तु का प्रमाण जानने की कला
(५९) खधावारनिवेस—सेना का पडाव आदि डालने का परिज्ञान

(६०) वत्थुनिवेस—प्रत्येक वस्तु के स्थापन करने की कला

(६१) नगरनिवेस—नगर निर्माण का ज्ञान

(६२) ईसत्थ—ईषत् को महत् करने की कला

(६३) छरुप्पवाय—तलवार आदि की मूठ बनाने की कला

(६४) आससिक्ख—अश्वशिक्षा

(६५) हत्थिसिक्ख—हस्तिशिक्षा

(६६) धणुव्वेय—धनुर्वेद

(६७) हिरण्णपाग, सुवण्णपाग, मणिपाग, धातुपाग—हिरण्यपाक, सुवर्णपाक, मणिपाक, धातुपाक बनाने की कला

(६८) बाहुजुद्ध, दंडजुद्ध, मुट्ठिजुद्ध, अट्ठिजुद्ध, जुद्ध, निजुद्ध, जुद्धाइजुद्ध—बाहुयुद्ध, दण्डयुद्ध, मुष्टियुद्ध, यष्टियुद्ध, युद्ध, नियुद्ध, युद्धातियुद्ध करने की कला

(६९) सुत्ताखेड, नालियाखेड, वट्टखेड, धम्मखेड, चम्मखेड—सूत बनाने की कला, नली बनाने की, गेंद खेलने की, वस्तु के स्वभाव जानने की चमड़ा बनाने आदि की कला

(७०) पत्तच्छेज्ज-कडगच्छेज्ज,—पत्रछेदन वक्षाग विशेष छेदने की कला

(७१) सजीव, निज्जीव—सजीवन, निर्जीवन—सजीवनी विद्या

(७२) सउणरुय—पक्षी के शब्द से शुभाशुभ जानने की कला

कल्पसूत्र की टीकाओं[1] में बहत्तर कलाओं का वर्णन प्राप्त होता है। वे ज्ञातासूत्र की बहत्तर कलाओं से प्राय भिन्न हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) लेखन (२) गणित (३) गीत (४) नृत्य (५) वाद्य (६) पठन (७) शिक्षा (८) ज्योतिष (९) छन्द (१०) अलकार (११) व्याकरण (१२) निरुक्ति (१३) काव्य (१४) कात्यायन (१५) निघटु (१६) गजारोहण (१७) अश्वारोहण (१८) आरोहणशिक्षा (१९) शास्त्राभ्यास (२०) रस (२१) यत्र (२२) मत्र (२३) विष (२४) खन्य (२५) गन्धवाद (२६) प्राकृत (२७) संस्कृत (२८) पैशाचिका (२९) अपभ्रंश (३०) स्मृति (३१) पुराण (३२) विधि (३३) सिद्धान्त (३४) तर्क (३५) वैद्यक (३६) वेद (३७) आगम (३८) संहिता (३९) इतिहास (४०) सामुद्रिक (४१) विज्ञान (४२) आचार्य विद्या (४३) रसायन (४४) कपट (४५) विद्यानुवाद दर्शन (४६) संस्कार (४७) धूर्त सबलक (४८) मणिकर्म (४९) तरुचिकित्सा (५०) खेचरी कला (५१) अमरी कला (५२) इन्द्रजाल (५३) पातालसिद्धि (५४) यन्त्रक (५५) रसवती (५६) सर्वकरणी (५७) प्रासाद लक्षण (५८) पण (५९) चित्रोपल (६०) लेप (६१) चर्मकर्म (६२) पत्रच्छेद (६३) नखछेद (६४) पत्रपरीक्षा (६५) वशीकरण (६६) काष्ठघटन (६७) देशभाषा (६८) गारुड (६९) योगाग (७०) धातु कर्म (७१) केवल विधि (७२) शकुनरुत।

आचार्य वात्स्यायन ने "कामसूत्र" में[2] चौसठ कलाओं का वर्णन किया है। उन चौसठ कलाओं के साथ ज्ञातासूत्र में आई बहत्तर कलाओं की हम सहज तुलना कर सकते हैं। ये बहत्तर कलाएँ चौसठ कलाओं में अन्तर्गत आ सकती हैं। देखिए—

---

१ कल्पसूत्र सुबोधिकाटीका

२ कामसूत्र विद्यासमुद्देश प्रकरण

कामसूत्र	ज्ञातासूत्र
(१) गीत	(५) गीत (७) स्वरगत
(२) वादित्र	(६) वादित्र (८) पुष्करगत (९) समताल
(३) नृत्य	(४) नाट्य
(४) आलेख्य	(३) रूप
(५) विशेषकच्छेद्य (पत्रच्छेद्य)	(६८) पत्रच्छेद्य
(६) तडुल कुसुमवलि विकार	
(७) पुष्पस्तरण (पुष्पशयन)	(२०) शयनविधि ?
(८) दशनवसनागराग	(३१) तरुणीप्रतिकर्म (१९) विलेपन (३८) वस्त्रविधि
(९) मणि भूमि कर्म	
(१०) शयन रचन	(२०) शयनविधि
(११) उदक वाद्य	
(१२) उदकघात	
(१३) चित्रयोग	
(१४) माल्यग्रथन	
(१५) शेखरकापीड योजन	
(१६) नेपथ्य प्रयोग	
(१७) कर्णपत्र भंग	
(१८) गंध युक्ति	(२९) चूर्णयुक्ति
(१९) भूषण योजना	(१८) आभरणविधि
(२०) इन्द्रजाल	
(२१) कौचुमार योग	
(२२) विचित्र शाक	(१९) अन्नविधि
(२३) सूचिवान् कर्म	
(२४) वीणा डमरुक वाद्य	(६) वादित्र
(२५) प्रतिमाला	
(२६) हस्तलाघव	(६८) पत्रच्छेद्य (५९) कटच्छेद्य
(२७) पानकरस रागासव योजन	(१७) पानविधि
(२८) सूत्रक्रीडा	(६५) सूत्रखेल (६७) नालिकाखेल
(२९) प्रहेलिका	(२२) प्रहेलिका
(३०) दुर्वाचक योग	
(३१) पुस्तक वाचक	
(३२) नाटकाख्यायिक दर्शन	
(३३) काव्य समस्या पूर्ति	
(३४) पत्रिका वेत्रवान विकल्प	

कामसूत्र	ज्ञातासूत्र
(३५) तक्षकर्म	
(३६) तक्षण	
(३७) वास्तुविधि	(४३) वास्तुविद्या (४५) नगरमान
(३८) रूप्यरत्नपरीक्षा	(४०) मणिलक्षण (४२) काकणीलक्षण (२७) हिरण्ययुक्ति (२८) स्वर्णयुक्ति
(३९) धातुवाद	(६३) हिरण्यपाक (६४) स्वर्णपाक (७०) सजीव (७१) निर्जीव
(४०) मणिरागाकर—ज्ञान	
(४१) वृक्षायुर्वेद	
(४२) मेष कुक्कुट लावक युद्ध विधि	
(४३) शुक सारिका प्रलापन	
(४४) उत्सादन संवाहन केशमार्जन कुशलता	
(४५) अक्षर मुष्टिका कथन	
(४६) म्लेच्छित कलाविकल्प	
(४७) देशभाषा-विज्ञान	
(४८) पुष्पकटिका	
(४९) निमित्तज्ञान	(७२) शकुनिरुत (३२) स्त्रीलक्षण (३३) पुरुषलक्षण (३४) हयलक्षण (३५) गजलक्षण (३६) गोलक्षण (३७) कुक्कुटलक्षण (३८) छत्रलक्षण (३९) दण्डलक्षण (४०) असिलक्षण (४१) मणिलक्षण (४२) काकणीलक्षण
(५०) यन्त्रमातृका	
(५१) धारणमातृका	
(५२) सपाठ्य	
(५३) मानसी काव्य क्रिया	
(५४) अभिधानकोष	
(५५) छन्द विज्ञान	(२१) आर्या (१५) मागधिका (२४) गाथा (२५) गीति (२६) श्लोक (१४) पुर काव्य
(५६) क्रिया कल्प	
(५७) छलितक योग	
(५८) वस्त्र गोपन	
(५९) द्यूत विशेष	
(६०) आकर्ष क्रीडा	(१०) द्यूत (११) जनवाद (१२) पाशक (१३) अष्टापद
(६१) बालक्रीडा—	

कामसूत्र	ज्ञातासूत्र
(६२) वैनयिका	
(६३) वैजयिका	(४६) व्यूह (४७) प्रतिव्यूह (५०) चक्रव्यूह (५१) गरुडव्यूह (५२) शकटव्यूह (५३) युद्ध (५४) नियुद्ध (५५) युद्धातियुद्ध (५६) दृष्टियुद्ध (५७) मुष्टियुद्ध (५८) बाहुयुद्ध (५९) लतायुद्ध (६०) इषुशास्त्र (६१)
(३३) व्यायामिकी	छरूप्रवाद (६२) धनुर्वेद (४४) स्कन्धावारमनन

पुरुषो की भांति महिलाओ की कलाओ का भी प्रस्तुत आगम मे उल्लेख है। पर यहाँ उनके नाम नही बताये गये हैं। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[1] मे महिलाओ की चौसठ कलाओ के नाम इस प्रकार प्राप्त होते हैं—

(१) नृत्य (२) औचित्य (३) चित्र (४) वादित्र (५) मत्र (६) तत्र (७) ज्ञान (८) विज्ञान (९) दम्भ (१०) जलस्तभ (११) गतिमान (१२) तालमान (१३) मेघवृष्टि (१४) फलाकृष्टि (१५) आरामरोपण (१६) आकारगोपन (१७) धर्मविचार (१८) शकुनसार (१९) क्रियाकल्प (२०) सस्कृतजल्प (२१) प्रासादनीति (२२) धर्मनीति (२३) वणिकावृद्धि (२४) सुवर्णसिद्धि (२५) सुरभितैलकरण (२६) लीलासचरण (२७) हयगज-परीक्षण (२८) पुरुष-स्त्री लक्षण (२९) हेमरत्नभेद (३०) अष्टादश लिपि परिच्छेद (३१) तत्काल बुद्धि (३२) वस्तुसिद्धि (३३) काम विक्रिया (३४) वैद्यक क्रिया (३५) कुम्भभ्रम (३६) सारिश्रम (३७) अजनयोग (३८) चूर्णयोग (३९) हस्तलाघव (४०) वचनपाटव (४१) भोज्यविधि (४२) वाणिज्यविधि (४३) मुखमण्डन (४४) शालिखण्डन (४५) कथाकथन (४६) पुष्पग्रथन (४७) वक्रोक्ति (४८) काव्य शक्ति (४९) स्फारविधि वेश (५०) सर्वभाषा विशेष (५१) अभिधान ज्ञान (५२) भूषणपरिधान (५३) भृत्योपचार (५४) गृहाचार (५५) व्याकरण (५६) परनिराकरण (५७) रधन (५८) केशबधन (५९) वीणानाद (६०) वितण्डावाद (६१) अकविचार (६२) लोकव्यवहार (६३) अन्त्याक्षरिका (६४) प्रश्नप्रहेलिका।

केलदि श्रीबसवराजेन्द्र ने 'शिवतत्वरत्नाकर' मे भी चौसठ कलाओ का निर्देश किया है। वे इस प्रकार हैं—(१) इतिहास (२) आगम (३) काव्य (४) अलकार (५) नाटक (६) गायकत्व (७) कवित्व (८) कामशास्त्र (९) दुरोदर (द्युत) (१०) देशभाषालिपिज्ञान (११) लिपिकर्म (१२) वाचन (१३) गणक (१४) व्यवहार (१५) स्वरशास्त्र (१६) शकुन (१७) सामुद्रिक (१८) रत्नशास्त्र (१९) गज-अश्व-रथ कौशल (२०) मल्लशास्त्र (२१) सूपकर्म (२२) भूरुहदोहद (बागवानी) (२३) गधवाद (२४) धातुवाद (२५) रस सबधी (२६) खनिवाद (२७) बिलवाद (२८) अग्निस्तभ (२९) जलस्तभ (३०) वाक् स्तभन (३१) वय स्तभन (३२) वशीकरण (३३) आकर्षण (३४) मोहन (३५) विद्वेषण (३६) उच्चाटन (३७) मारण (३८) कालवचन (३९) परकायप्रवेश (४०) पादुकासिद्धि (४१) वाक्सिद्धि (४२) गुटिकासिद्धि (४३) ऐन्द्रजालिक (४४) अजन (४५) परदृष्टिवचन (४६) स्वरवचन (४७) मणिमत्र औषधादि की सिद्धि (४८) चोरकर्म (४९) चित्रक्रिया (५०) लोहक्रिया (५१) अश्मक्रिया (५२) मृत्क्रिया (५३) दारुक्रिया (५४) वेणुक्रिया (५५) चर्मक्रिया (५६) अम्बरक्रिया (५७) अदृश्यकरण (५८) दतिकरण (५९) मृगयाविधि (६०) वाणिज्य (६१) पाशुपाल्य (६२) कृषि (६३) आसवकर्म (६४) मेषादि युद्धकारक कौशल

[1] जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति वृत्ति, २, पत्र १३९-२ १४०-१

शुक्राचार्य ने नीतिसार ग्रन्थ[1] में प्रकारान्तर से चौसठ कलाएँ बताई हैं। किन्तु विस्तारभय से हम यहाँ उन्हें नहीं दे रहे हैं। शुक्राचार्य का अभिमत है कि कला वह अद्भुत शक्ति है कि एक गूँगा व्यक्ति जो वर्णोच्चारण नहीं कर सकता है, उसे कर सके।[2]

प्राचीन काल में कलाओं के व्यापक अध्ययन के लिए विभिन्न चिन्तकों ने विभिन्न कलाओं पर स्वतन्त्र ग्रन्थों का निर्माण किया था। अत्यधिक विस्तार से उन कलाओं के संबंध में विश्लेषण भी किया था। जैसे, भरत का 'नाट्यशास्त्र' वात्स्यायन का 'कामसूत्र' चरक और सुश्रुत की संहिताएँ, नल का 'पाक दर्पण', पालकाप्य का 'हस्त्यायुर्वेद', नीलकण्ठ की 'मातंगलीला', श्रीकुमार का 'शिल्परत्न', रुद्रदेव का 'श्यैनिक शास्त्र' आदि।

अतीत काल में अध्ययन बहुत ही व्यापक होता था। बहत्तर कलाओं में या चौसठ कलाओं में जीवन की संपूर्ण विधियों का परिज्ञान हो जाता था।

लिपि और भाषा

कलाओं के अध्ययन व अध्यापन के साथ ही उस युग में प्रत्येक व्यक्ति को और विशेषकर समृद्ध परिवार में जन्मे हुए व्यक्तियों को बहुभाषाविद् होना भी अनिवार्य था। संस्कृत और प्राकृत भाषाओं के अतिरिक्त अठारह देशी भाषाओं का परिज्ञान आवश्यक था। प्रस्तुत सूत्र में मेघकुमार के वर्णन में 'अट्ठारसविहिप्पगारदेसीभासा विसारए' यह मूल पाठ है। पर वे अठारह भाषाएँ कौनसी थीं, इसका उल्लेख मूल पाठ में नहीं है। औपपातिक आदि में भी इसी तरह का पाठ मिलता है, किन्तु वहाँ पर भी अठारह देशी भाषाओं का निर्देश नहीं है। नवांगी टीकाकार आचार्य अभयदेव ने[3] प्रस्तुत पाठ पर विवेचन करते हुए अष्टादश लिपियों का उल्लेख किया है, पर अठारह देशी भाषाओं का नहीं। अभयदेव ने विभिन्न देशों में प्रचलित अठारह लिपियों में विशारद लिखा है। समवायांग, प्रज्ञापना, विशेषावश्यकभाष्य की टीका और कल्पसूत्रटीका में अठारह लिपियों के नाम मिलते हैं। पर सभी नामों में यत्किंचित् भिन्नता है। हम यहाँ तुलनात्मक अध्ययन करने वाले जिज्ञासुओं के लिए उनके नाम प्रस्तुत कर रहे हैं।

समवायांग[4] के अनुसार

(१) ब्राह्मी (२) यावनी (३) दोषउपरिका (४) खरोष्ट्रिका (५) खरशाविका (पुष्करशारि) (६) पहारातिगा (७) उच्चत्तरिका (८) अक्षरपृष्टिका (९) भोगयतिका (१०) वैणकिया (११) निह्नविका (१२) अंकलिपि (१३) गणितलिपि (१४) गंधर्वलिपि (भूतलिपि) (१५) आदर्शलिपि (१६) माहेश्वरी (१७) दामिलीलिपि (द्राविडी) (१८) पोलिन्दी लिपि

प्रज्ञापना[5] के अनुसार

(१) ब्राह्मी (२) यावनी (३) दोसापुरिया (४) खरोष्ठी (५) पुक्खरसारिया (६) भोगवइया (भोगवती)

---

१ नीतिसार ४-३
२ शक्तो मूको पि यत् कर्तुं कलासंज्ञं तु तत् स्मृतम् ।।
३ ज्ञातासूत्र १ टीका
४ समवायांग, समवाय १८
५ प्रज्ञापना १।३७

(७) पहूराइया (८) अन्तरखरिया (९) अक्खरपुट्ठिया (१०) वैनयिकी (११) अंकलिपि (१२) निह्नविकी (१३) गणितलिपि (१४) गन्धर्वलिपि (१५) आयसलिपि (१६) माहेश्वरी (१७) दोमिलीलिपि (१८) पौलिन्दी

विशेषावश्यक[1] टीका के अनुसार

(१) हंस (२) भूत (३) यक्षी (४) राक्षसी (५) उड्डी (६) यवनी (७) तुरुक्की (८) कीरी (९) द्रविडी (१०) सिंधवीय (११) मालविनी (१२) नडि (१३) नागरी (१४) लाट (१५) पारसी (१६) अनिमित्ती (१७) चाणक्की (१८) मूलदेवी

कल्पसूत्र[2] टीका के अनुसार

(१) लाटी (२) चौडी (३) डाहली (४) कानडी (५) गूजरी (६) सोरठी (७) मरहठी (८) खुरासानी (९) कोंकणी (१०) मागधी (११) सिंहली (१२) हाडी (१३) कीडी (१४) हम्मीरी (१५) परमी (१६) मसी (१७) मालवी (१८) महायोधी

चीनी भाषा में रचित "फा युअन् चु लिन्" नामक बौद्ध विश्वकोश में तथा "ललित विस्तरा"[3] के अनुसार

[१] ब्राह्मी [२] खरोष्ठी [३] पुष्करसारी [४] अंगलिपि [५] वंगलिपि [६] मगधलिपि [७] मांगल्यलिपि [८] मनुष्यलिपि [९] अंगुलीयलिपि [१०] शकारिलिपी [११] ब्रह्मवलीलिपि [१२] द्राविडलिपि [१३] कनारिलिपि [१४] दक्षिणलिपि [१५] उग्रलिपि [१६] सख्यालिपि [१७] अनुलोमलिपि [१८] ऊर्ध्वधनुलिपि [१९] दरदलिपि [२०] खास्यलिपि [२१] चीनलिपि [२२] हूणलिपि [२३] मध्याक्षर-विस्तरलिपि [२४] पुष्पलिपि [२५] देवलिपि [२६] नागलिपि [२७] यक्षलिपि [२८] गन्धर्वलिपि [२९] किन्नरलिपि [३०] महोरगलिपि [३१] असुरलिपि [३२] गरुडलिपि [३३] मृगचक्रलिपि [३४] चक्रलिपि [३५] वायुमरुलिपि [३६] भौमदेवलिपि [३७] अंतरिक्षदेवलिपि [३८] उत्तरकुरुद्वीपलिपि [३९] अपरगौडादिलिपि [४०] पूर्वविदेहलिपि [४१] उत्क्षेपलिपि [४२] निक्षेपलिपि [४३] विक्षेपलिपि [४४] प्रक्षेपलिपि [४५] सागरलिपि [४६] वज्रलिपि [४७] लेखप्रतिलेखलिपि [४८] अनुद्रुतलिपि [४९] शास्त्रावर्त्तलिपि [५०] गणावर्त्तलिपि [५१] उत्क्षेपावर्त्तलिपि [५२] विक्षेपावर्त्तलिपि [५३] पादलिखितलिपि [५४] द्विरुत्तरपदसंधिलिखितलिपि [५५] दशोत्तरपद संधिलिखितलिपि [५६] अध्याहारिणीलिपि [५७] सर्वरुतसंग्रहिणीलिपि [५८] विद्यानुलोमलिपि [५९] विमिश्रितलिपि [६०] ऋषितपस्तप्तलिपि [६१] धरणीप्रेक्षणलिपि [६२] सर्वौषधनिष्यंदलिपि [६३] सर्वसारसंग्रहणलिपि [६४] सर्वभूतरुद्रग्रहणी लिपि।

इन लिपियों के सम्बन्ध में आगमप्रभाकर पुण्यविजयजी म.[4] का यह अभिमत था कि इनमें अनेकों नाम कल्पित हैं। इन लिपियों के सम्बन्ध में अभी तक कोई प्राचीन शिलालेख भी उपलब्ध नहीं हुआ है, इससे भी यह प्रतीत होता है कि ये सभी लिपियाँ प्राचीन समय में ही लुप्त हो गईं। या इन लिपियों का स्थान ब्राह्मी-लिपि ने ले लिया होगा। मेरी दृष्टि से अठारह देशीय भाषा और लिपियाँ ये दोनों पृथक्-पृथक् होनी चाहिए।

---

१ विशेषावश्यकभाष्य गाथा ४६४ की टीका

२ कल्पसूत्र टीका

३ ललितविस्तरा अध्याय १०

४ 'भारतीय जैन श्रमण संस्कृति अने लेखनकला' पृ. ५

भरत[1] ने नाट्यशास्त्र में सात भाषाओं का उल्लेख मिलता है—मागधी, आवन्ती, प्राच्या, शौरसेनी, बाह्लिका, दाक्षिणात्य और अर्धमागधी। जिनदासगणिमहत्तर[2] ने निशीथचूर्णि में मगध, मालवा, महाराष्ट्र लाट, कर्नाटक द्रविड, गौड, विदर्भ इन आठ देशों की भाषाओं को देशी भाषा कहा है। 'बृहत्कल्पभाष्य' में आचार्य संघदासगणि[3] ने भी इन्हीं भाषाओं का उल्लेख किया है। 'कुवलयमाला'[4] में उद्योतनसूरि ने गोल्ल, मध्यप्रदेश, मगध, अन्तर्वेदि, कीर, ढक्क, सिन्धु, मरु गुर्जर, लाट, मालवा, कर्नाटक, ताइय (ताजिक) कोशल, मरहट्ठ और आन्ध्र इन सोलह भाषाओं का उल्लेख किया है। साथ ही सोलह भाषाओं में इन भाषाओं के उदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं। डा ए मास्टर[5] का सुझाव है कि इन सोलह भाषाओं में औड्र और द्राविडी भाषाएँ मिला देने से अठारह भाषाएँ, जो देशी हैं, हो जाती हैं।

प्रथम अध्ययन के अध्ययन से महावीरयुगीन समाज और संस्कृति पर भी विशेष प्रकाश पड़ता है। उस समय की, भवन-निर्माणकला, माता-पिता-पुत्र आदि के पारिवारिक सम्बन्ध, विवाहप्रथा, बहुपत्नीप्रथा, दहेज प्रसाधन, आमोद-प्रमोद, रोग और चिकित्सा, धनुर्विद्या, चित्र और स्थापत्यकला, आभूषण, वस्त्र शिक्षा और विद्याभ्यास तथा शासनव्यवस्था आदि अनेक प्रकार की सांस्कृतिक सामग्री भी इसमें भरी पड़ी है।

द्वितीय अध्ययन में एक कथा है—धन्ना राजगृह का एक लब्धप्रतिष्ठ श्रेष्ठी था। चिर प्रतीक्षा के पश्चात् उसको एक पुत्र प्राप्त होता है। श्रेष्ठी पंथक नाम के एक सेवक को उसकी सेवा में नियुक्त किया। राजगृह के बाहर एक भयानक खंडहर में विजय चोर रहता था। वह तस्करविद्या में निपुण था। पंथक की दृष्टि चुराकर वह श्रेष्ठीपुत्र देवदत्त को आभूषणों के लोभ से चुरा लेता है और बालक की हत्या कर देता है। वह चोर पकड़ा गया और कारागृह में बन्द कर दिया गया। किसी अपराध में सेठ भी उसी कारागृह में बन्द हो गये, जहाँ पर विजय चोर था। श्रेष्ठी के लिए बढ़िया भोजन घर से आता। विजय चोर की जबान उस भोजन को देखकर लपलपाती। पर, अपने प्यारे एकलौते पुत्र के हत्यारे को सेठ एक ग्रास भी कैसे दे सकता था? दोनों एक ही बेड़ी में जकड़े हुए थे। जब सेठ की शौचनिवृत्ति के लिए भावना प्रबल हुई तो वह एकाकी जा नहीं सकता था। उसने विजय चोर से कहा। उसने साफ इन्कार कर दिया। अन्त में सेठ को विजय चोर की शर्त स्वीकार करनी पड़ी कि आधा भोजन प्रतिदिन तुम्हें दूंगा। श्रेष्ठीपत्नी ने सुना तो वह अत्यन्त क्रुद्ध हुई। कारागृह से मुक्त होकर श्रेष्ठी घर पहुँचा तो भद्रा ने कहा कि तुमने महान् अपराध किया है। श्रेष्ठी ने अपनी विवशता बताई।

प्रस्तुत कथाप्रसंग को देकर शास्त्रकार ने यह प्रतिपादन किया है कि सेठ को विवशता से पुत्र-घातक को भोजन देना पड़ता था। वैसे साधक को भी संयमनिर्वाह हेतु शरीर को आहार देना पड़ता है, किन्तु उसके प्रति किंचित भी आसक्ति नहीं होती। श्रमण की आहार के प्रति किस तरह से अनासक्ति होनी चाहिए, कथा के माध्यम से इतना सजीव चित्रण किया गया है। श्रेष्ठी ने जो भोजन तस्कर को प्रदान किया था उसे अपना परम स्नेही और हितैषी समझकर नहीं किन्तु अपने कार्य की सिद्धि के लिए। वैसे ही श्रमण भी ज्ञान-दर्शन-चारित्र की उपलब्धि के लिए आहार ग्रहण करता है। पिण्डनिर्युक्ति आदि में श्रमण के आहार ग्रहण करने के सम्बन्ध में गहराई से विश्लेषण किया गया है। उस गुरुतम रहस्य को यहाँ पर कथा के द्वारा सरस रूप से प्रस्तुत किया है।

---

१ भरत ३-१७-४८

२ निशीथचूर्णि

३ बृहत्कल्पभाष्य—१ १२३१ की वृत्ति

४ 'कुवलयमाला का सांस्कृतिक अध्ययन' पृ २४३-४८

५ A Master B SOAS XIII-2 1950 PP 41315

तृतीय अध्ययन की कथा का सम्बन्ध चम्पा नगरी से है। चम्पा नगरी महावीर युग की एक प्रसिद्ध नगरी थी। स्थानाग[1] मे दस राजधानियो का उल्लेख है और दीघनिकाय मे जिन छह महानगरियो का वर्णन है उनमे एक चम्पा नगरी भी है। औपपातिक मे विस्तार से चम्पा का निरूपण है। आचार्य शय्यभव ने दशवैकालिकसूत्र की रचना चम्पा मे ही की थी। सम्राट् श्रेणिक के निधन के पश्चात् उसके पुत्र कुणिक ने चम्पा को अपनी राजधानी बनाया था। चम्पा उस युग का प्रसिद्ध व्यापार केन्द्र था। कनिंघम[2] ने भागलपुर से २४ मील पर पत्थरघाट या उसके आसपास चम्पा की अवस्थिति मानी है। फाहियान ने पाटलीपुत्र से अठाहर योजन पूर्व दिशा मे गगा के दक्षिण तट पर चम्पा की अवस्थिति मानी है। महाभारत[3] मे चम्पा का प्राचीन नाम मालिनी या मालिन मिलता है। जैन बौद्ध और वैदिक परम्परा के साहित्य के अनेक अध्याय चम्पा के साथ जुडे हुए हैं। विनयपिटक (१,१७९) के अनुसार भिक्षुओ को बुद्ध ने पादुका पहनने की अनुमति यहाँ पर दी थी। सुमगलविलासिनी के अनुसार महारानी ने नगगरागोक्खरिणी नामक विशाल तालाब खुदवाया था, जिसके तट पर बुद्ध विशाल समूह के साथ बैठे थे। (दीघनिकाय १, १११) राजा चम्प ने इसका नाम चम्पा रखा था। वहा के दो श्रेष्ठीपुत्रो मे पय-पानीवत् प्रेम था। एक दिन उन्होने उपवन म मयूरी के दो अण्डे देखे। दोनो ने एक-एक अण्डा उठा लिया। एक ने बार-बार अण्डे को हिलाया जिससे वह निर्जीव हो गया। दूसरे न पूर्ण निष्ठा के साथ रख दिया तो मयूर का बच्चा निकला और कुशल मयूरपालक के द्वारा उसे नृत्यकला मे दक्ष बनाया। एक श्रद्धा के अभाव मे मोर को प्राप्त न कर सका, दूसरे न निष्ठा के कारण मयूर को प्राप्त किया। इस रूपक के माध्यम से यह स्पष्ट किया है—सशयात्मा विनश्यति और दूसरा श्रद्धा के द्वारा सिद्धि प्राप्त करता है- श्रद्धावान् लभते ज्ञानम। श्रमणधर्म व श्रावकधर्म की आराधना व साधना पूर्ण निष्ठा के साथ करनी चाहिए। और जो निष्ठा के साथ साधना करता है वह सफलता के उच्च शिखर का स्पर्श करता है। श्रद्धा के महत्त्व को बताने के लिए यह रूपक बहुत ही सटीक है। इस कथा के वर्णन से यह भी पता लगता है कि उस युग मे पशुओ पक्षियो को भी प्रशिक्षण दिया जाता था, पशु-पक्षि गण प्रशिक्षित होकर ऐसी कला प्रदर्शित करते थे कि दर्शक मन्त्र-मुग्ध हो जाता था।

चतुर्थ अध्ययन की कथा का प्रारम्भ वाराणसी से होता है। वाराणसी प्रागैतिहासिक काल से ही भारत की एक प्रसिद्ध नगरी रही है। जैन बौद्ध और वैदिक परम्पराओ के विकास, अभ्युदय एव समुत्थान के ऐतिहासिक क्षणो को उसने निहारा है। आध्यात्मिक, दार्शनिक, धार्मिक, सास्कृतिक और राजनैतिक चिन्तन के साथ ही भौतिक सुख सुविधाओ का पर्याप्त विकास वहाँ पर हुआ था। वैदिक परम्परा मे वाराणसी को पावन तीर्थ[4] माना। शतपथब्राह्मण, उपनिषद् और पुराणो मे वाराणसी से सम्बन्धित अनेक अनुश्रुतियाँ हैं। बौद्ध जातको मे वाराणसी के वस्त्र और चन्दन का उल्लेख[5] है और उसे कपिलवस्तु, बुद्धगया के समान पवित्र स्थान माना है। बुद्ध का और उनकी परम्परा के श्रमणो का वाराणसी से बहुत ही मधुर सम्बन्ध रहा। उन्होने अपने जीवन का अधिकाश भाग वहा बिताया[6]। व्याख्याप्रज्ञप्ति मे साढे पच्चीस आर्य देशो एव सोलह महाजनपदो मे काशी का उल्लेख

१ स्थानाग १०-७१७

२ The Ancient Geography of India Page 546-547

३ महाभारत XII, ५६-७ (ख) मत्स्यपुराण ४८, ९७ (ग) वायुपुराण ९९, १०५-६,
(घ) हरिवशपुराण ३२, ४९

४ जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज पृ० ४६८

५ सम्पूर्णानन्द अभिनन्दन ग्रन्थ—"काशी की प्राचीन शिक्षापद्धति और पण्डित"

६ विनयपिटक भा० २, ३५९-६० (ख) मज्झिम० १, १७०
(ग) कथावत्थु ९७, ५५९, (घ) सौन्दरनन्दकाव्य III श्लो० १०-११

है।[1] भारत की दस प्रमुख राजधानियों में एक राजधानी वाराणसी भी थी[2]। यूवान् चूआंग ने वाराणसी को देश और नगर दोनों माना है। उसने वाराणसी देश विस्तार ४००० ली और नगर का विस्तार लम्बाई में १८ ली, चौड़ाई में ६ ली बतलाया है[3]। जातक के अनुसार काशी राज्य का विस्तार ३०० योजन था[4]। वाराणसी काशी जनपद की राजधानी थी। प्रस्तुत नगर वरुणा और असी इन दो नदियों के बीच में अवस्थित था अतः इसका नाम वाराणसी पड़ा। यह निरुक्त नाम है। भगवान् पार्श्वनाथ आदि का जन्म भी इसी नगर में हुआ था।

वाराणसी के बाहर मृत-गंगातीर नामक एक द्रह (ह्रद) था जिसमें रंग-बिरंगे कमल के फूल महकते थे। विविध प्रकार की मछलियाँ और कूर्म तथा अन्य जलचर प्राणी थे। दो कूर्मों ने द्रह से बाहर निकलकर अपने अंगोपांग फैला दिये। उसी समय दो शृगाल आहार की अन्वेषणा करते हुए वहाँ पहुँचे। कूर्मों ने शृगालों की पद ध्वनि सुनी, तो उन्होंने अपने शरीर को समेट लिया। शृगालों ने बहुत प्रयास किया पर वे कूर्मों का कुछ भी न कर सके। लम्बे समय तक प्रतीक्षा करने के बाद एक कूर्म ने अपने अंगोपांगों को फैला दिया जिससे उसे शृगालों ने चीर दिया। जो सिकुड़ा रहा उसका बाल भी बाँका न हुआ। उसी तरह जो साधक अपनी इन्द्रियों को पूर्ण रूप से वश में रखता है उसको किंचित् भी क्षति नहीं होती। सूत्रकृतांग[5] में भी बहुत ही संक्षेप में कूर्म के रूपक को साधक के जीवन से सम्बन्धित किया है।

श्रीमद् भगवद्गीता[6] में भी 'स्थितप्रज्ञ' के स्वरूप का विश्लेषण करते हुए कछुए का दृष्टान्त देते हुए कहा, जैसे—वह अपने अंगों को, बाह्य भय उपस्थित होने पर, समेट लेता है वैसे ही साधकों को विषयों से इन्द्रियों को हटा लेना चाहिए। तथागत बुद्ध ने भी साधकजीवन के लिए कूर्म का रूपक प्रयुक्त किया है।

इस तरह कूर्म का रूपक जैन बौद्ध और वैदिक आदि सभी धर्मग्रन्थों में इन्द्रियनिग्रह के लिए दिया गया है। पर यहाँ कथा के माध्यम से देने के कारण अत्यधिक प्रभावशाली बन गया है।

पाँचवें अध्ययन का सम्बन्ध विश्वविश्रुत द्वारका नगरी से है। श्रमण और वैदिक दोनों ही परम्पराओं के ग्रन्थों में द्वारका की विस्तार से चर्चा है। यह पूर्व-पश्चिम में १२ योजन लम्बी और उत्तर दक्षिण में नौ योजन विस्तीर्ण थी। कुबेर द्वारा निर्मित सोने के प्राकार वाली थी, जिस पर पाँच वर्णवाली मणियों के कंगूरे थे। बड़ी दर्शनीय थी। उसके उत्तर-पूर्व में रैवतक नामक पर्वत था। उस पर नन्दनवन नामक उद्यान था। कृष्ण वहाँ के सम्राट थे।[7]

---

१ व्याख्याप्रज्ञप्ति १५, पृ० ३८७

२ — (क) स्थानांग १० (ख) निशीथ ९-१९ (ग) दीघनिकाय-महापरिनिब्बाण सुत्त

३ यूआन, चुआंग्स ट्रैवेल्स इन इण्डिया, भा० २, पृ० ४६–४८

४ धजविहेठजातक-जातक भाग ३ पृ० ४५४

५ जहा कुम्मे सअंगाई सए देहे समाहरे।
एवं पावाइं मेहावी अज्झप्पेण समाहरे॥
—सूत्रकृतांग

६ यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।
—श्रीमद्भगवद्गीता २-५८

७ ज्ञातासूत्र १-५

बृहत्कल्प[1] के अनुसार द्वारका के चारो ओर पत्थर का प्राकार था। त्रिषष्ठिशलाका पुरुष[2] चरित्र में आचाय हेमचन्द्र ने लिखा है कि द्वारका १२ योजन आयामवाली और नौ योजन विस्तृत थी। वह रत्नमयी थी। उसके सन्निकट अठारह हाथ ऊँचा, नौ हाथ भूमिगत और बारह हाथ चौडा सभी ओर खाई से घिरा हुआ एक सुन्दर किला था। बडे सुन्दर प्रासाद थे। रामकृष्ण के प्रासाद के पास प्रभासा नामक सभा थी। उसके समीप पूर्व मे रवतक गिरि, दक्षिण मे माल्यवान शैल पश्चिम मे सौमनस पवत और उत्तर म गन्धमादन गिरि थे। आचाय हेमचन्द्र[3] आचाय शीलाक[4] देवप्रभसूरि[5] आचाय जिनसेन,[6] आचाय गुणभद्र[7] प्रभृति श्वेताबर व दिगम्बर परम्परा के ग्रथकारो से और वैदिक हरिवशपुराण,[8] विष्णुपुराण[9] और श्रीमद्भागवत[10] आदि म द्वारका को समुद्र के किनारे माना है। महाभारत मे श्रीकृष्ण ने द्वारकागमन के सम्बन्ध मे युधिष्ठिर से कहा—मथुरा को छोडकर हम कुशस्थली नामक नगरी मे आये जो रैवतक पवत से उपशोभित थी। वहाँ दुगम दुग का निर्माण किया। अधिक द्वारो वाली होने से द्वारवती कहलाई।[11] महाभारत जनपद की टीका[12] मे नीलकंठ ने कुशावत का अथ द्वारका दिया है।

प्रभुदयाल मित्तल[13] ने लिखा है—शूरसेन जनपद से यादवो के आजाने के कारण द्वारका व उस छोटे से राज्य की अत्यधिक उन्नति हुई। वहा पर अभेद्य दुग और विशाल नगर का निर्माण कराया गया और अधक-वृष्णि सघ के एक शक्तिशाली यादव राज्य के रूप मे सगठित किया गया। भारत के समुद्र तट का वह सुदृढ राज्य विदेशी अनार्यो के आक्रमण के लिए देश का एक सजग प्रहरी बन गया। गुजराती मे द्वार' का अथ बन्दरगाह है। द्वारका या द्वारावती का अथ बन्दरगाहो की नगरी है। उन बन्दरगाहों से यादवो ने समुद्रयात्रा कर विराट सम्पत्ति अर्जित की थी। हरिवशपुराण[14] मे लिखा है—द्वारका मे निधन, भाग्यहीन, निबल तन और मलिन मन का कोई भी व्यक्ति नही था। वायुपुराण आदि के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि महाराजा रेवत ने समुद्र के मध्य कुशस्थली नगरी बसाई थी। वह आनत्त जनपद मे थी। वह कुशस्थली श्रीकृष्ण के समय द्वारका या द्वारवती के नाम स पहचानी जाने लगी। घटजातक[15] का अभिमत है कि द्वारका के एक ओर विराट समुद्र अठखेलियाँ कर रहा था तो दूसरी ओर गगनचुम्बी पवत था। डा मलशेखर का भी यही मन्तव्य है कि

१ बृहत्कल्प भाग २, २५१
२ त्रिषष्टि शलाका पव ८ सग ५, पृ ९२
३ त्रिषष्ठि पव, ८, सग ५, पृ ९२
४ चउप्पन महापुरिसचरिय
५ पाण्डवचरित्र देवप्रभसूरिरचित
६ हरिवशपुराण ४१/१९१९
७ उत्तरपुराण ७१/२०-२३ पृ ३७६
८ हरिवशपुराण २/५४
९ विष्णुपुराण ५/२३/१३
१० श्रीमद्भागवत १० अ ५०/५०
११ महाभारत सभापव अ १४
१२ (क) महाभारत जनपव अ १६० श्लो ५०/ (ख) अतीत का अनावरण पृ १६३
१३ द्वितीय खड ब्रज का इतिहास पृ ४७
१४ हरिवशपुराण २/५८/५५
१५ जातक (चतुथ खड) पृ २८४

पजवत्तु[1] ने द्वारका को कम्बोज का एक नगर माना है। डा. मलसेकर[2] ने प्रस्तुत कथन का समर्थन करते हुए लिखा है कि संभव है यह कंबोज ही कसभोज हो जो कि अंधकवृष्णि के दस पुत्रों का देश था। डा. मोतीचन्द्र[3] कम्बोज को पामीर प्रदेश मानते हैं और द्वारका को बदरवशा के उत्तर में अवस्थित दरवाजनगर कहते हैं। रायस डेविड्स[4] ने कम्बोज को द्वारका की राजधानी लिखा है। उपाध्याय भरतसिंह[5] ने लिखा है द्वारका सौराष्ट्र का एक नगर था, संप्रति द्वारका कस्बे से आगे २० मील की दूरी पर कच्छ की खाड़ी में एक छोटा सा टापू है। वहाँ एक दूसरी द्वारका है जो बेट द्वारका कही जाती है। बॉम्बे गजेटियर[6] में लिखा है विद्वानों ने द्वारिका की अवस्थिति पंजाब में मानने की संभावना की है। डॉ. जनार्दन सदाशिव अलतेकर[7] ने लिखा है—प्राचीन द्वारका समुद्र में डूब गई, अतः द्वारका की अवस्थिति का निर्णय करना कठिन है।

प्रस्तुत विवेचन से यह स्पष्ट है कि द्वारका एक विशिष्ट नगरी थी। वह लंका के समान ही स्वर्णमयी थी। सम्राट् श्रीकृष्ण तीन खण्ड के अधिपति थे। उनकी वह राजधानी थी। थावच्चा नामक गाथापत्नी महान् प्रतिभासम्पन्न नारी थी। आधुनिक युग में जिस तरह से नारी नेतृत्व करने के लिए उत्सुक रहती है वह सर्वतंत्र स्वतंत्र होकर संचालन करना पसन्द करती है, वैसे ही थावच्चा घर की मालकिन थी। वह सम्पूर्ण घर की व्यवस्था करती थी। उसी के नाम का अनुसरण उसके पुत्र के लिए किया गया। भगवान् अरिष्टनेमि के पावन प्रवचन को श्रवण कर थावच्चापुत्र के अन्तर्मानस में वैराग्य का पयोधि उछालें मारने लगा। उसने अपनी बत्तीस पत्नियों का परित्याग कर संयमसाधना के कठोर महामार्ग पर बढ़ना चाहा। माता के अनेक प्रकार से समझाने और प्रयत्न करने पर भी अन्त में पुत्र के वैराग्य की विजय हुई। थावच्चा दीक्षोत्सव मनाने के लिए स्वयं सम्राट् कृष्ण के पास पहुँचती है और दीक्षोत्सव के लिए छत्र चामर माँगती है। श्रीकृष्ण ने स्वयं जाकर कुमार की परीक्षा की। थावच्चापुत्र ने कहा— नाथ, मेरे दो शत्रु हैं। आप यदि उन शत्रुओं से मेरी रक्षा कर सकें तो मैं संयम स्वीकार नहीं करूँगा।

श्रीकृष्ण ने पूछा—वे शत्रु कौन हैं जो तुम्हें परेशान कर रहे हैं? उसने कहा—एक वृद्धावस्था है जो निरंतर निकट आ रही है और दूसरी मृत्यु है। श्रीकृष्ण ने कहा इन शत्रुओं को पराजित करने का सामर्थ्य मुझमें भी नहीं है। कुमार परीक्षा में खरा उतरा। श्रीकृष्ण ने द्वारका में उद्घोषणा करवाई कि जो कोई भी संयमसाधना के पथ बढ़ना चाहे उसके परिवार का भरण-पोषण मैं करूँगा। इस उद्घोषणा से एक हजार व्यक्ति थावच्चापुत्र के साथ प्रव्रज्या लेने के लिए प्रस्तुत हुए। श्रीकृष्ण ने अभिनिष्क्रमण महोत्सव मनाया।

प्रस्तुत कथानक में ऐतिहासिक पुरुष श्रीकृष्ण वासुदेव के अन्तर्मानस में अर्हत् धर्म के प्रति कितनी गहरी निष्ठा थी, यह स्पष्ट रूप से व्यक्त होती है। एक महिला भी उनके पास सहर्ष पहुँच सकती थी। और अपने हृदय की बात उनसे कह सकती थी। वे प्रत्येक प्रजा की बात को शान्ति से श्रवण करते और समस्याओं का समाधान करते। इसी अध्ययन में अनेक दार्शनिक गुत्थियों को भी सुलझाया गया है। शौचधर्म की मान्यताओं का निरसन करते हुए आत्मशुद्धिमूलक शौचधर्म का प्रतिपादन किया है। जैनदर्शन ने द्रव्यशौच के स्थान पर भावशौच को महत्त्व दिया

1. पपंचसूदनी भाग १, पृ. ९
2. The Dictionary of Pali proper Names भाग १ पृ. ११२६
3. Geographical & Economic Studies in Mahabharatha P 32-40
4. Buddist India P 28
5. बौद्धकालीन भारतीय भूगोल पृ. ४८७
6. बॉम्बे गजेटियर भा. १ पार्ट १ पृ. ११ का टिप्पण।
7. इण्डियन एण्टिक्वेरी, सन् १९२५ सप्लीमेंट पृ. २५

है। यात्रा, यज्ञ अव्याबाध के संबंध में जैन दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है। शब्दजाल में उलझाने के लिए ऐसे प्रश्न समुपस्थित किये जिनमें सामान्य व्यक्ति उलझ सकता है। किन्तु थावच्चामुनि ने उन शब्दों का सही अर्थ कर पोथीपंडितों की वाणी मूक बना दी, धर्म का मूल विनय बताया।

इस अध्याय में शैलक राजर्षि का भी वर्णन है, जो उग्र साधना करते हैं। उत्कृष्ट तप साधना से उनका शरीर व्याधि से ग्रसित हो गया। उनका पुत्र राजा मण्डूक राजर्षि के उपचार के लिए प्रार्थना करता है और संपूर्ण उपचार की व्यवस्था करने से वे पूर्ण रूप से रोगमुक्त भी हो जाते हैं। यहां पर स्मरणीय है कि रोग परीषह है, उत्सर्ग मार्ग में श्रमण औषध ग्रहण नहीं करता पर अपवाद मार्ग में वह औषध का उपयोग भी करता है। गृहस्थ का कर्तव्य है कि वह श्रमण-श्रमणियों की ऐसे प्रसंग पर सेवा का सुनहरा लाभ ले। जो गृहस्थ उस महान् लाभ से वंचित रहता है, वह बहुत बड़ी सेवा की निधि से वंचित रहता है।

जब शैलक राजर्षि साधना की दृष्टि से शिथिल हो जाते हैं तब उनके अन्य शिष्यगण अन्यत्र विहार कर जाते हैं किन्तु पंथकमुनि अपनी अपूर्व सेवा से एक आदर्श शिष्य का उत्तरदायित्व निभाते हैं। शिष्य के द्वारा चरणस्पर्श करते ही गुरु की प्रसुप्त आत्मा जग जाती है। बड़ा ही सुन्दर विश्लेषण है और वह अत्यन्त प्रेरणादायी भी है।

छठे अध्ययन का संबंध राजगृह नगर से है। इस अध्ययन में कर्मवाद जैसे गुरु गंभीर विषय को रूपक के द्वारा स्पष्ट किया है। गणधर गौतम की जिज्ञासा के समाधान में भगवान ने तूंबे के उदाहरण से इस बात पर प्रकाश डाला कि मिट्टी के लेप से भारी बना हुआ तुंबा जल में मग्न हो जाता है और लेप हटने से वह पुनः तरने लगता है। वैसे ही कर्मों के लेप से आत्मा भारी बनकर संसार-सागर में डूबता है और उस लेप से मुक्त होकर ऊर्ध्वगति करता है।

सातवें अध्ययन में धन्ना सार्थवाह की चार पुत्रवधुओं का उदाहरण है। श्रेष्ठी अपनी चार पुत्रवधुओं की परीक्षा के लिए पांच शालि के दाने उन्हें देता है। प्रथम पुत्रवधु ने फेंक दिये। दूसरी ने प्रसाद समझकर खा लिये। तीसरी ने उन्हें संभालकर रखा और चौथी ने खेती करवाकर उन्हें खूब बढ़ाया। श्रेष्ठी ने चतुर्थ रोहिणी को गृहस्वामिनी बनाया। वैसे ही गुरु पंच दाने रूप महाव्रत-शाली के दाने शिष्यों को प्रदान करता है। कोई उसे नष्ट कर डालता है, दूसरा उसे खान-पान का साधन बना लेता है। कोई उसे सुरक्षित रखता है और कोई उसे उत्कृष्ट साधना कर अत्यधिक विकसित करता है।

प्रो. टाइमन ने अपनी जर्मन पुस्तक—"बुद्ध और महावीर" में बाइबिल की मैथ्यू और लूक की कथा के साथ प्रस्तुत कथा की तुलना की है। वहां पर शालि के दानों के स्थान पर 'टेलेण्ट' शब्द आया है। टेलेण्ट उस युग में प्रचलित एक सिक्का था। एक व्यक्ति विदेश जाते समय अपने दो पुत्रों को दस दस टेलेण्ट दे गया था। एक ने व्यापार द्वारा उसकी अत्यधिक वृद्धि की। दूसरे ने उन्हें जमीन में रख लिए। लौटने पर पिता प्रथम पुत्र पर बहुत प्रसन्न हुआ।

आठवें अध्ययन में तीर्थंकर मल्ली भगवती का वर्णन है जिन्होंने पूर्व भव में माया का सेवन किया। माया के कारण उनका आध्यात्मिक उत्कर्ष जो साधना के द्वारा हुआ था उसमें बाधा उपस्थित हो गई। तीर्थंकर सभी पुरुष होते हैं पर मल्ली भगवती स्त्री हुई। इसे जैन साहित्य में एक आश्चर्यजनक घटना माना है। मल्ली भगवती ने अपने पर मुग्ध होने वाले छहों राजाओं को, शरीर की अशुचिता दिखा कर प्रतिबुद्ध किया। उन्हीं के साथ दीक्षा ग्रहण की। केवलज्ञान प्राप्त किया। तीर्थ स्थापना कर तीर्थंकर बनीं।

मल्ली भगवती का जन्म मिथिला में हुआ था। मिथिला उस युग की एक सुप्रसिद्ध नगरी थी। जातक[1] की दृष्टि से मिथिला राज्य का विस्तार ३०० योजन था। उसमें १६ सहस्र गाँव थे। सुरुचि जातक में भी मिथिला के विस्तार का पता चलता है। वाराणसी के राजा ने यह निश्चय किया था कि वह अपनी पुत्री का विवाह उसी राजकुमार के साथ करेगा जो एक पत्नीव्रत का पालन करेगा। मिथिला के राजकुमार सुरुचि के साथ विवाह की चर्चा चल रही थी। एक पत्नीव्रत की बात को श्रवण कर वहाँ के मन्त्रियों ने कहा—मिथिला का विस्तार ७ योजन है और समूचे राष्ट्र का विस्तार ३०० योजन है। हमारा राज्य बड़ा है, अतः राजा के अन्तःपुर में १६००० रानियाँ होनी[2] चाहिए। रामायण में मिथिला को जनकपुरी कहा है। विविध तीर्थकल्प[3] में इस देश को तिरहुत्ति कहा है और मिथिला को जगती[4] कहा है। महाभारत वनपर्व (२५४) महावस्तु (पृ १७२) दिव्यावदान (पृ ४२८) और रामायण बालकाण्ड के अनुसार तीरभुक्ति नाम है। यह नेपाल की सीमा पर स्थित है। वर्तमान में यह जनकपुर के नाम से प्रसिद्ध है, इसके उत्तर में मुजफ्फरपुर और दरभंगा के जिले हैं, (लाहा, ज्याग्रफी आव अर्ली बुद्धिज्म पृ ३१, कनिंघम ऐंश्येंट ज्याग्रेफी आव इण्डिया, एम एन मजुमदार संस्करण पृ ७१) इसके पास ही महाराजा जनक के भ्राता कनक थे। उनके नाम से कनकपुर बसा हुआ है। मिथिला से ही जैन श्रमणों की शाखा मथिलिया[5] निकली है। यहाँ पर भगवान् महावीर ने छह वर्षावास[6] सम्पन्न किये थे। आठवें गणधर अकंपित की भी यह जन्मस्थली है[7]। यहीं पर प्रत्येकबुद्ध नमि को कंकण की ध्वनि को श्रवण कर वैराग्य उत्पन्न हुआ था।[8]

इन्द्र ने नमि राजर्षि को कहा—मिथिला जल रही है और आप साधना की ओर मुस्तैदी से कदम उठा रहे हैं तब नमि ने इन्द्र से कहा—इन्द्र! महिलाए डज्झमाणीए न मे डज्झइ किंचण (उत्तरा ९/१४) उत्तराध्ययन की भाँति महाभारत में भी जनक के सम्बन्ध में एक कथा आती है। प्रबल अग्निदाह के कारण भस्मीभूत होते हुए मिथिला को देखकर अनासक्ति से जनक ने कहा—इस जलती हुई नगरी में मेरा कुछ भी नहीं जल रहा है 'मिथिलायाम् प्रदीप्तायाम् न मे दह्यति किञ्चन।' (महाभारत १२, १७, १८-१९) महाजनक जातक में भी इसी प्रकार का वर्णन मिलता है। मिथिलायाम् दह्यमानाय न मे किञ्चि अदह्यथ (जातक ६, ५४-५५)। भगवान् महावीर और बुद्ध के समय मिथिला में गणराज्य था।

चतुर्थ निह्नव ने सामुच्छेदिकवाद का यहीं प्रवर्तन किया था[9] दशपूर्वधारी आर्य महागिरि का यह मुख्य रूप से विहारस्थल था[10]। बाणगंगा और गंडक ये दो नदियाँ प्रस्तुत नगर को घेरकर बहती हैं।[11] मिथिला एक समृद्ध राष्ट्र था। जिनप्रभसूरि के समय यहाँ पर प्रत्येक घर कदलीवन से शोभित था। खीर यहाँ का प्रिय भोजन था स्थान-स्थान पर वापी, कूप और तालाब थे। यहाँ की जनता धर्मनिष्ठ और शास्त्रज्ञ

---

१ जातक (सं ४०६) भाग ४, पृ २७
२ जातक (सं ४८९) भाग ४, पृ ८, ५२१-२२
३ सम्प्रति काले तिरहुत्ति देसोत्ति भण्णइ—विविध तीर्थकल्प पृ. ३२
४ वही पृ ३२
५ वही पृ ३२
६ कल्पसूत्र २१३ पृ २९८
७ आवश्यक नियुक्ति गा ६४४
८ उत्तराध्ययन सुखबोधा पत्र १३६ १४३
९ आवश्यक भाष्य गा १३१
१० आवश्यक नियुक्ति गा ७८२
११ विविध तीर्थकल्प पृ ३२

ज्ञाता थी।[1] जातक के अनुसार मिथिला के चार प्रवेशद्वारो मे प्रत्येक स्थान पर बाजार थे। (जातक VI पृ, ३३०) नगर वास्तुकला की दृष्टि से अत्यन्त कलात्मक था। वहा के निवासी बहुमूल्य वस्त्र धारण करते थे। (जातक ४६ महाभारत २०६) रामायण के अनुसार यह एक मनोरम व स्वच्छ नगर था। सुन्दर सडकें थी। व्यापार का बडा केन्द्र था। (परमत्थदीपकी आनद थेरगाथा सिंहली सस्करण ।।।२७७-८) यह नगर विद्या का केन्द्र था। (आश्वलायन श्रोतसूत्र X ३, १४) अनेक तार्किक यहा पर हुए हैं जिन्होने तर्कशास्त्र को नई दिशा दी। महान तार्किक गणेश मण्डनमिश्र और वैष्णव कवि विद्यापति भी यहीं के थे। विदेह राज्य की सीमा उत्तर मे हिमालय, दक्षिण मे गगा, पश्चिम म गडकी और पूर्व मे मही नदी तक थी। वर्तमान मे नेपाल की सीमा के अन्तर्गत यहा पर मुजफ्फरपुर और दरभगा के जिले हैं। वहा छोटे नगर जनकपुर को प्राचीन मिथिला कहते हैं। कितने ही विद्वान् सीतामढी के सन्निकट 'मुहिला'[2] नामक स्थान को प्राचीन मिथिला का अपभ्रंश मानते हैं। जैन आगमो मे दस राजधानियो मे मिथिला भी एक है।[3]

प्रस्तुत अध्ययन मे उत्कृष्ट चित्रकला का भी रूप देखने को मिलता है। कलाकार इतने निष्णात होते थे कि किसी व्यक्ति के एक अग को देखकर ही उनका हूबहू चित्र उटटकित कर देते थे। राजा-महाराजा और श्रेष्ठीगणो को चित्रकला अधिक प्रिय थी जिसके कारण विविध प्रकार की चित्रशालाएँ बनाई जाती थीं। प्रस्तुत अध्ययन मे कुछ अवान्तर कथाएँ भी आई हैं। जब परिव्राजिका चोक्खा राजा जितशत्रु के पास जाती है, जितशत्रु परिव्राजिका से कहता है कि क्या आपने मेरे जैसे अन्त पुर को कही निहारा है? परिव्राजिका ने मुस्कराते हुए कहा – तुम कूपमडूक जैसे हो और फिर कूपमडूक की मनोरजक कथा मूल पाठ म दी गई है।

प्रस्तुत अध्ययन मे अर्हन्नक श्रावक की सुदृढ धर्मनिष्ठा का उल्लेख है। उस युग म समुद्रयात्रा की जाती थी। व्यापारीगण विविध प्रकार की सामग्री लेकर एक देश से दूसरे देश म पहुँचते थे। इसम छह राजाओ का परिचय भी दिया गया है। मल्ली भगवती के युग मे राज्यव्यवस्था किस प्रकार थी, इसकी भी स्पष्ट जानकारी मिलती है।

नौवें अध्ययन म माकन्दीपुत्र जिनपालित और जिनरक्षित का वर्णन है। उन्होने अनेक बार समुद्रयात्रा की थी। जब मन मे आता तब वे यात्रा के लिए चल पडते। बारहवी बार माता-पिता नही चाहते थे कि वे विदेश-यात्रा के लिए जायें, पर वे आज्ञा की अवहेलना कर चल दिये। किन्तु भयकर तूफान से उनकी नौका टूट गई और वे रत्नद्वीप मे रत्नदेवी के चगुल म फँस गये। शैलक यक्ष ने उनका उद्धार करना चाहा। जिनरक्षित ने वासना से चलचित्त होकर अपने प्राण गवा दिये और जिनपालित विचलित न होने से सुरक्षित स्थान पर पहुँच गया। इसी प्रकार जो साधक अपनी साधना से विचलित नही होता है वही लक्ष्य को प्राप्त करता है।

प्रस्तुत कथानक से मिलता-जुलता कथानक बौद्ध साहित्य के वलाहस जातक म है और दिव्यावदान म भी मिलता है। तुलनात्मक अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि कथानको मे परम्परा के भेद से कुछ अन्तर अवश्य आता है पर कथानक के मूल तत्त्व प्राय काफी मिलते-जुलते हैं। प्रस्तुत कथानक से यह भी पता चलता है कि समुद्रयात्रा सरल और सुगम नही थी। अनेक आपत्तिया उस यात्रा मे रही हुई थी। उन आपत्तियो से बचने के लिए वे लोग स्तुतिपाठ और मगलपाठ भी करते थे। विदेशयात्रा के लिए राजा की आज्ञा भी आवश्यक थी। इष्ट स्थान पर पहुचने पर वे उपहार लेकर वहाँ के राजा के पास पहुचते और राजा उनके कर को माफ कर देता था। आर्थिक व्यवस्था मे विनियम का महत्त्वपूर्ण हाथ है। इसलिए व्यापारी व्यापार के विकास हेतु समुद्रयात्रा करता थे।

---

१ वही पृ २२
२ The Ancient Geography of India, पृ ७१८
३ स्थानाग १०/११७

शकुन

प्रस्तुत अध्ययन में जब जिनपालित और जिनरक्षित समुद्रयात्रा के लिए प्रस्थित होते हैं तब वे शकुन देखते हैं। 'शकुन का अर्थ सूचित करनेवाला' है। जो भविष्य में शुभाशुभ होनेवाला है उसका पूर्वाभास शकुन के द्वारा होता है। आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से भी प्रत्येक घटनाओं का कुछ न कुछ पूर्वाभास होता है। शकुन कोई अन्धविश्वास या रूढ़ परम्परा नहीं है। यह एक तथ्य है। अतीत काल में स्वप्नविद्या अत्यधिक विकसित थी।

शकुनदर्शन की परम्परा प्रागैतिहासिक काल से चलती आ रही है। कथा-साहित्य का अवलोकन करने से स्पष्ट होता है कि जन्म, विवाह, बहिर्गमन, गृहप्रवेश और अन्यान्य मांगलिक प्रसंगों के अवसर पर शकुन देखने का प्रचलन था। गृहस्थ तो शकुन देखते ही थे। श्रमण भी शकुन देखते थे। सहज ही जिज्ञासा हो सकती है कि गृहस्थों की तो अनेक कामनाएँ होती हैं और उन कामनाओं की पूर्ति के लिए वह शकुन देखें यह उचित माना जा सकता है, पर श्रमण शकुन देखें, यह कहाँ तक उचित है? उत्तर में निवेदन है कि श्रमण के शकुन देखने का केवल इतना ही उद्देश्य रहा है कि मुझे ज्ञान, दर्शन, चारित्र व तप की विशेष उपलब्धि होगी या नहीं? मैं जिस उद्देश्य को प्रतिबोध देने जा रहा हूँ—उसमें मुझे सफलता मिलेगी या नहीं? शकुन को देखकर कार्य की सफलता का सहज परिज्ञान हो जाता है और अपशकुन को देखकर उसमें आनेवाली बाधाएँ भी ज्ञात हो जाती हैं। इसलिए श्रमण के शकुन देखने का उल्लेख आया है। वह स्वयं के लिए उसका उपयोग करे पर गृहस्थों को न बताए। विशेष जिज्ञासु बृहत्कल्पभाष्य,* निशीथभाष्य**, आवश्यकचूर्णि*** आदि में श्रमणों के शकुन देखने के प्रसंग देख सकते हैं।

देश, काल और परिस्थिति के अनुसार एक वस्तु शुभ मानी जाती है और वही वस्तु दूसरी परिस्थितियों में अशुभ भी मानी जाती है। एतदर्थ शकुन विवेचन करनेवाले ग्रन्थों में मान्यता-भेद भी दृग्गोचर होता है।

जैन और जैनेतर साहित्य में शकुन के संबंध में विस्तार से विवेचन है, पर हम यहाँ उतने विस्तार में न जाकर संक्षेप में ही प्राचीन ग्रन्थों के आलोक में शुभ और अशुभ शकुन का वर्णन प्रस्तुत कर रहे हैं। बाहर जाते समय यदि निम्न शकुन होते हैं तो अशुभ माना जाता है—

(१) पथ में मिलनेवाला पथिक अत्यन्त गन्दे वस्त्र धारण किये हो।[1]

(२) मार्ग मिलनेवाले व्यक्ति के सिर पर काष्ठ का भार हो।

(३) मार्ग में मिलनेवाले व्यक्ति के शरीर पर तेल मला हुआ हो।

(४) पथ में मिलनेवाला पथिक वामन या कुब्ज हो।

(५) मार्ग में मिलनेवाली महिला वृद्धा कुमारी हो।

शुभ शकुन इस प्रकार हैं—

(१) मोर का दिखाई देना (२) पंख किये हुए मयूर का केकारव[2]

(३) दाईं ओर अग्नि कार पथ परस्पराग्न हुआ स्पर्श कर।

* (क) बृहत्कल्पभाष्य — १ १०१२-१४, १ २८१०-२१

** (ख) निशीथभाष्य — १९ ३०४४-४५, १९ ६०७८-६०९५

*** (ग) आवश्यकचूर्णि — २ पृ. २१८

१ ओघनिर्युक्ति

२ (क) पद्मचरित ४४, ५३, ६९, ७०, ७२, ८१, ७३

(४) दाहिनी ओर चिंघाड़ते हुए हाथी का शब्द करना और पृथ्वी को प्रताडना ।
(५) सूर्य के सम्मुख बैठे हुए कौए द्वारा बहुत तीक्ष्ण शब्द करना ।
(६) दाहिनी ओर कौए का पखा को ढीला कर व्याकुल रूप मे बैठना ।
(७) रीछ द्वारा भयकर शब्द ।
(८) गीध का पख फडफडाना ।
(९) गदभ द्वारा दाहिनी ओर मुडकर रेंकना ।
(१०) सुगधित हवा का मद-मद रूप से प्रवाहित होना ।[1]
(११) निधू म अग्नि की ज्वाला दक्षिणावत प्रज्वलित होना ।
(१२) नन्दीउर, पूणकलश, शख, पटह, छत्र, चामर, ध्वजा-पताका का साक्षात्कार होना ।[2]

प्रकीणक गणिविद्या[3] मे लिखा है कि शकुन मुहूत से भी प्रबल होता है। जबूक, चास (नीलकठ), मयूर, भारद्वाज, नकुल यदि दक्षिण दिशा मे दिखलाई दें तो सवसपत्ति प्राप्त होती है ।[4]

दसवें अध्ययन मे चन्द्र के उदाहरण से प्रतिपादित किया है कि जैसे कृष्णपक्ष मे चन्द्र की चारु चद्रिका मद और मदतर होती जाती है और शुक्लपक्ष मे वही चद्रिका अभिवृद्धि को प्राप्त होती है वैसे ही चन्द्र के सदश कर्मों की अधिकता से आत्मा की ज्योति मद होती है और कम की ज्या-ज्यो न्यूनता होती है त्या-त्यो उसकी ज्योति अधिकाधिक जगमगाने लगती है । रूपक बहुत ही शानदार है । दशनिक गहन विचारधारा को रूपक के द्वारा बहुत ही सरल व सुगम रीति से उपस्थित किया है । यह जिज्ञासा भी गणधर गौतम ने राजगृह मे प्रस्तुत की थी और भगवान् ने समाधान दिया था ।

ग्यारहवें अध्ययन मे समुद्र के सन्निकट दावद्रव नामक वक्ष होते हैं । उनका उदाहरण देकर आराधक और विराधक का निरूपण किया गया है । जिस प्रकार वह वृक्ष अनुकूल और प्रतिकूल पवन को सहन करता है वैसे ही श्रमणो को अनुकूल और प्रतिकूल वचनों को सहन करना चाहिए । जो सहता है वह आराधक बनता है ।

बारहवें अध्ययन मे कलुषित जल को शुद्ध बनाने की पद्धति पर प्रकाश डाला है । गटर के गदे पानी को साफ करने की यह पद्धति आधुनिक युग की फिल्टर पद्धति से प्राय मिलती है । आज से २५०० वर्ष पूव भी यह पद्धति ज्ञात थी । ससार को कोई भी पदाथ एकान्त रूप से न शुभ है और न अशुभ ही है । प्रत्येक पदाथ शुभ से अशुभ रूप मे और अशुभ से शुभ रूप म परिवर्तित हो सकता है । अत किसी से घृणा नही करनी चाहिए ।

यहाँ पर ध्यान देने योग्य है भगवान् ऋषभदव और महावीर के अतिरिक्त बाईस तीथकरो ने चातुर्याम धम का उपदेश दिया । यह चातुर्याम धम श्रमणो के लिए था, किन्तु गृहस्थों के लिए तो पच अणुव्रत ही थे । वहाँ पर चार अणुव्रत का उल्लेख नहीं है, किन्तु पांच अणुव्रत का उल्लेख है ।[5]

इस कथानक का सबध चपानगरी से है ।

---

१ पद्मचरित—७२, ८४, ८५/२, ९१, ९४, ९५, ९६
२ वृहत्कल्पलघुभाष्य—८२-८४
३ गह दिणा उ मुहुत्ता मुहुत्ता उ सउणावली ।
—प्रकीणक गणिविद्या श्लो० ८
४ ओघनियुक्ति भाष्य १०८
५ "विचित्त केवलिपन्नत्त चाउज्जाम धम्म परिकहेइ, तमाइक्खइ जहा जीवा बज्झति जाव पच अणुव्वयाइ ।"

तेरहवें अध्ययन में दर्दुर का उदाहरण है। नंद मणिकार राजगृह का निवासी था। सत्संग के अभाव में व्रत-नियम की साधना करते हुए भी वह पतित हो गया। उसने चार शालाओं के साथ एक वापिका का निर्माण कराया। उसकी वापिका के प्रति अत्यन्त आसक्ति थी। आसक्ति के कारण आर्तध्यान में वह मृत्यु को वरण करता है और उसी वापी में दर्दुर बनता है। कुछ समय के बाद भगवान् महावीर के आगमन की बात सुनकर जाति-स्मरण प्राप्त करके वह वन्दन करने के लिए चला। पर घोड़े की टाप से घायल हो गया। वहीं पर अनशन पूर्वक प्राणों का परित्याग कर वह स्वर्ग का अधिकारी देव बना।

इस अध्ययन में पुष्करिणी-वापिका का सुन्दर वर्णन है। वह वापिका चतुष्कोण थी और उसमें विविध प्रकार के कमल खिल रहे थे। उस पुष्करिणी के चारों ओर उपवन भी थे। उन उपवनों में आधुनिक युग के 'पार्क' के सदृश स्थान-स्थान पर विविध प्रकार की कलाकृतियाँ निर्मित की गई थीं। वहाँ पर सैर-सपाटे के लिए जो लोग आते थे उनके लिए नाटक दिखाने की भी व्यवस्था की गई थी। चिकित्सालय का भी निर्माण कराया था। वहाँ पर कुशल चिकित्सक नियुक्त थे उन्हें वेतन भी मिलता था। उस युग में सोलह महारोग प्रचलित थे—(१) श्वास (२) कास-खाँसी (३) ज्वर (४) दाह जलन (५) कुक्षिशूल (६) भगंदर (७) अर्श-बवासीर (८) अजीर्ण (९) नेत्रशूल (१०) मस्तकशूल (११) भोजन विषयक अरुचि (१२) नेत्रवेदना (१३) कर्णवेदना (१४) कण्डू-खाज (१५) दकोदर—जलोदर (१६) कोढ़। आचारांग[1] में १६ महारोगों के नाम दूसरे प्रकार से मिलते हैं। विपाक[2] निशीथ भाष्य[3] आदि में भी १६ प्रकार की व्याधियों के उल्लेख हैं पर नामों में भिन्नता है। चरकसंहिता[4] में आठ महारोगों का वर्णन है।

इस प्रकार इस अध्ययन में सांस्कृतिक दृष्टि से विपुल सामग्री है, जिसका ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व है।

चौदहवें अध्ययन में तेतलीपुत्र का वर्णन है। मानव जिस समय सुख के सागर पर तैरता हो उस समय उसे धार्मिक साधना करना पसन्द नहीं होता पर जिस समय दुःख की दावाग्नि में झुलस रहा हो, उस समय धर्म-क्रिया करने के लिए भावना उद्बुद्ध होती है। जब तेतली प्रधान का जीवन बहुत ही सुखी था, उस समय उसे धर्म-क्रिया करने की भावना ही नहीं जागृत हुई। पर पोट्टिल देव, जो पूर्वभव में पोट्टिला नामक उसकी धर्मपत्नी थी, उसने वचनबद्ध होने से तेतलीपुत्र को समझाने का प्रयास किया, पर जब वह नहीं समझा तो राजा कनकध्वज के अन्तर्मानस के विचार परिवर्तित कर दिये और प्रजा के भी। वह अपमान को सहन न कर सका। फाँसी डालकर, मरना चाहा, पर मर न सका। गले में बड़ी शिला बाँधकर जल में कूद कर, सूखी घास के ढेर में आग लगाकर, मरने का प्रयास किया, पर मर न सका। अन्त में देव ने प्रतिबोध देकर उसे मुनिव्रत ग्रहण करने के लिए उत्प्रेरित किया। संयम ग्रहण कर उसने उत्कृष्ट संयम साधना की।

इस अध्ययन में राजा कनकरथ की अत्यन्त निष्ठुरता का वर्णन है। वह स्वयं ही राज्य का उपभोग करना चाहता है और उसके मानस में यह क्रूर विचार उद्बुद्ध होता है कि कहीं मेरे पुत्र मुझसे राज्य छीन न लें। इसलिए वह अपने पुत्रों को विकलांग कर देता था। एक पिता राज्य के लोभ में इतना अनार्य,व क्रूर

1 आचारांग - ६-१ १ १७३
2 विपाक—१, पृ ७
3 निशीथभाष्य —११/३६४६
4 वातव्याधिरपस्मारी, कुष्ठी शोफी तथोदरी।
गुल्मी च मधुमेही च, राजयक्ष्मी च यो नर:।
—चरकसंहिता इन्द्रियस्थान—९

कर सकता है—यह इतिहास का एक काला पृष्ठ है और इस पृष्ठ की एक वार नही अनेक बार पुनरावत्ति होती रही है। कभी पिता के द्वारा तो कभी पुत्र के द्वारा और कभी भाई के द्वारा। वस्तुत लोभ का दानव जिसके सिर पर सवार हो जाता है वह उचित अनुचित के विवेक से विहीन हो जाता है।

पन्द्रहवें अध्ययन मे नदीफल का उदाहरण है। नदीफल विपले फल थे जो देखने मे सुन्दर, मधुर और सुवासित, पर उनकी छाया भी बहुत जहरीली थी। धन्न साथवाह ने अपने सभी व्यक्तियो को सूचित किया कि वे नदीफल से बच, पर जिन्होने सूचना की अवहेलना की अपने जीवन से हाथ धो बैठे। धन्य साथवाह की तरह तीर्थंकर है। विपय-भोग रूपी नदीफल हैं जो तीथकरो की आज्ञा की अवहेलना कर उन्हे ग्रहण करत हैं, वे जन्म-मरण को प्राप्त करते हैं किन्तु मुक्ति को वरण नही कर सकते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन मे धन्य साथवाह अपने साथ उन सभी व्यक्तियो को ले जाते हैं जिनकी आर्थिक स्थिति नाजुक थी, जो स्वय व्यापार आदि हेतु जा नही सकते थे। इसमे पारस्परिक सहयोग की भावना प्रमुख है साथसमूह मे अनेक मता के माननेवाले परिव्राजक भी थ। इससे यह स्पष्ट होता है कि उस समय विविध प्रकार के परिव्राजक अपने मत का प्रचार करने के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान भी जाते थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—

१ चरक—जो जूथ बन्द घूमते हुए भिक्षा ग्रहण करते थे और खाते हुए चलत थे। व्याख्याप्रज्ञप्ति म[1] चरक परिव्राजक धायी हुई भिक्षा ग्रहण करने और लगोटी लगाने थे। प्रज्ञापना मे[2] चरक आदि परिव्राजको को कपिल का पुत्र कहा है। आचाराग चूर्णि मे लिखा[3] है—साख्य चरण के भक्त थे। वे परिव्राजक प्रात काल उठकर स्कन्द आदि देवताओ के गृह का परिमाजन करते, देवताओ पर उपलेपन करते और उनके सामने धूप आदि करते थे। बृहदारण्यक उपनिषद्[4] मे भी चरक का उल्लेख मिलता है। प वेचरदास जी दोशी ने चरक को त्रिदण्डी, कच्छनीधारी या कौपीनधारी तापस माना है।

२ चीरिक—पथ मे पडे हुए वस्त्रा को धारण करने वाला या वस्त्रमय उपकरण रखने वाला।

३ चमखडित—चपडे के वस्त्र और उपकरण रखने वाला।

४ भिच्छुण्ड-(भिक्षोड) केवल भिक्षा से ही जो जीवननिर्वाह करते हैं, किन्तु गोदुग्ध आदि रस ग्रहण नही करते। कितने ही स्थला पर बुद्धानुयायी को भिक्षुण्ड कहा है।

५ पण्डुरग—जो शरीर पर भस्म लगाते हैं। निशीथचूर्णि[5] मे गोशालक के शिष्या को पन्डरभिक्खु लिखा है। अनुयोगद्वारचूर्णि[6] मे पडुरग को ससरक्ख भिक्खुओ का पर्यायवाची माना है। शरीर पर श्वेत भस्म लगाने के कारण इन्हे पडुरग या पडरभिक्षु कहा जाता था उद्योतनसूरि की दृष्टि से गाय के दही, दूध, गोवर, घी आदि को मास की भाति समझकर नही खाना पडरभिक्षुओं का धर्म था।

---

१ व्याख्याप्रज्ञप्ति १-२-पृ ४९
२ प्रज्ञापना २० व १२१४
३ (क) आचारागचूर्णि ८-पृ २६५
(ख) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति भा १, पृ ८७
४ वृहद् उप
५ निशीथचूर्णि १३, ४४२० (ख) २, १०८५
६ अनुयोगद्वारचूर्णि पृ १२
(१) जनल आफ द ओरियण्टल इन्सटीच्यूट पूना २६, न २ पृ, ९२०
(२) कुवलयमाला २०६/११

६ गौतम[1]—अपने साथ बैल रखने वाले। बैल को इस प्रकार की शिक्षा देते जो विचित्र प्रकार की करामात दिखाकर जन-जन के मन को प्रसन्न करते। उससे आजीविका चलाने वाले।

७ गो-व्रती[2]—"रघुवंश" में राजा दिलीप का वर्णन है कि जब गाय खाये तो खाना, पानी पिये तो पानी पीना, वह जब नींद ले तब नींद लेना और वह जब चले तब चलना। इस प्रकार व्रत रखने वाले।

८ गृहि-धर्मी—गृहस्थधर्म को ही सर्वश्रेष्ठ मानने वाला और सतत गृहस्थधर्म का चिन्तन करने वाला।

९ धर्मचिन्तक—सतत् धर्मशास्त्र का अध्ययन करने वाला।

१० अविरुद्ध[3]—किसी के प्रति विरोध न रखने वाला।

अंगुत्तरनिकाय में[4] भी अविरुद्धकों का उल्लेख है। प्रस्तुत मत के अनुयायी बाह्य क्रियाओं के स्थान पर मोक्ष, हेतु, विनय को आवश्यक[5] मानते हैं। ये देवगण, राजा, साधु, हाथी, घोड़े, गाय, भैंस, बकरी, गीदड़, कौआ, बगुले आदि को देखकर उन्हें भी प्रणाम करते थे[6]। सूत्रकृतांग की टीका[7] में विनयवादी के बत्तीस भेद किये हैं। आगम साहित्य में विनयवादी परिव्राजकों का अनेक स्थलों पर उल्लेख है। वैश्यायन जिसने गोशालक पर तेजोलेश्या का प्रयोग किया था[8] और मौर्यपुत्र तामली भी विनयवादी था। वह जीवनपर्यन्त छठ-छठ तप करता था और सूर्याभिमुख होकर आतापना लेता था। काष्ठ का पात्र लेकर भिक्षा के लिए जाता और भिक्षा में केवल चावल ग्रहण करता था। वह जिसे भी देखता उसे प्रणाम करता था। पूरण तापसी भी विनयवादी ही था। बौद्ध साहित्य में पूरण कस्सप को महावीरकालीन छह धर्मनायकों में एक माना[9] है। पर हमारी दृष्टि से वह पूरण कस्सप से पृथक् होना चाहिये। क्योंकि बौद्ध साहित्य का पूरण कस्सप अक्रियावादी भी था और वह नग्न था और उसके अस्सी हजार थे।[10]

११ विरुद्ध—परलोक और अन्य सभी मत-मतान्तरों का विरोध करनेवाला। अक्रियावादियों को 'विरुद्ध' कहा है, क्योंकि उनका मन्तव्य अन्य मतवादियों से विरुद्ध[11] था। इनके चौरासी भेद भी निर्मित हैं[12]।

---

१ आचारांगचूर्णि २-२-पृ ३४६

२ गावीहिं समं निग्गमपवेससयणासणाइ पकरेंति।
भुंजंति जहा गावी तिरिक्खवासं विहाविंता।
—औपपातिक टीका, पृ १६९

३ औपपातिक ३८, पृ १६९

४ अंगुत्तरनिकाय ३, पृ, २७६

५ सूत्रकृतांग १-१२-२ और उसकी टीका

६ उत्तराध्ययन टीका १८, पृ २३०

७ सूत्रकृतांग टीका १-१२-पृ २०९ (अ)

८ (क) आवश्यकनिर्युक्ति ४९४, (ख) आवश्यकचूर्णि, पृ २९८
(ग) भगवती सूत्र शतक १४ तृतीय खण्ड, पृ ३७३-७४

९ व्याख्याप्रज्ञप्ति ३-१

१० वही ३-२

११ दीघनिकाय —सामञ्ञफल सुत्त, २

१२ बौद्ध पर्व (मराठी) प्र १०, पृ १२७

अज्ञानवादी मोक्षप्राप्ति के लिए ज्ञान को निष्फल मानते थे। बौद्ध ग्रन्थो म पकुध कच्चायन' को अक्रियावादि कहा है।[1]

(१२) वृद्ध—वृद्धावस्था मे सन्यास ग्रहण करने मे विश्वास वाले। ऋषभदेव के समय मे उत्पन्न होने के कारण ये सभी लिंगियो मे आदिलिंगी कहे जाते है। इसलिए उन्हे वृद्ध कहा है।[2]

(१३) श्रावक—धर्मशास्त्र श्रवण करने वाला ब्राह्मण। 'श्रावक' शब्द जैन और बौद्ध दोना ही परम्पराओ मे विशेष रूप से प्रचलित रहा है[3] वह वर्तमान म भी जैन और बौद्ध उपासको के अर्थ मे व्यवहृत होता है। यह वैदिक परम्परा के ब्राह्मणों के लिए कब प्रयुक्त हुआ, यह चिन्तनीय है। श्रवण भगवान् महावीर के समय तीन सौ तिरसठ पाखण्ड मत प्रचलित थे। उन अन्य तीर्थो मे 'वृद्ध' और 'श्रावक' ये शब्द प्रयुक्त हुए हैं।[4] औपपातिक मे विशिष्ट साधना मे लगे हुए अन्य तीर्थिको का वर्णन करते हुए लिखा है कि कितने ही साधक दो पदार्थ खाकर, कितने ३-४ ५ पदार्थ खाकर जीवन निर्वाह करते थे। उनमे वृद्ध और श्रावक का भी उल्लेख[5] है। अगुत्तरनिकाय[6] म भी वृद्ध, श्रावक का वर्णन है। उस वर्णन से भी यह परिज्ञात होता है कि वृद्ध श्रावक के प्रति जो उद्गार व्यक्त किये गये है वह चिन्तन करने के लिए उत्प्रेरित करते हैं। जो हिंसा करने वाला, चोरी, अब्रह्म का सेवन करने वाला, असत्यप्रलापी, सुरा, मेरय प्रभृति मादक वस्तुएँ ग्रहण करने वाला, होता है उस निगण्ठ वृद्ध श्रावक--देवधम्मिक मे ये पाच बातें होती हैं। वह इसी प्रकार होता है जैसे नरक मे डाल दिया गया हो। चरक शाक्य आदि के साथ वृद्ध श्रावक का उल्लेख है, जिससे यह ज्ञात होता है कि उस समय का कोई विशिष्ट सम्प्रदाय होना चाहिए। पर प्रश्न यह है वृद्ध श्रावक यह श्रमण सस्कृति का उपजीवी है या ब्राह्मण सस्कृति का? प्राचीन ग्रन्थों मे केवल नाम का उल्लेख हुआ है, पर उस सम्बन्ध मे कोई स्पष्टीकरण नही किया गया है। जैन साहित्य के पर्यवेक्षण से यह स्पष्ट परिज्ञात होता है कि वृद्ध श्रावक का उत्स जैन परम्परा मे है। बाद मे चलकर वह ब्राह्मण परम्परा मे अंतर्निहित हो गया। वृद्ध श्रावक का अर्थ दो तरह से चिन्तन करता है—पहले म वृद्ध और श्रावक इस तरह पदच्छेद कर वृद्ध और श्रावक दोना को पृथक्-पृथक माना है। दूसरे मे वृद्ध श्रावक को एक ही मानकर एक ही सम्प्रदाय का स्वीकार किया है। औपपातिक[7] सूत्र की वृत्ति म वृद्ध अर्थात् तापस श्रावक--ब्राह्मण तापसो को वृद्ध कहने का तात्पर्य यह है कि भगवान् ऋषभदेव ने चार सहस्र व्यक्तियो के ऋषभदेव के तीर्थप्रवर्तन के पूर्व ही तापस परम्परा प्रारम्भ हो गई थी। इसलिए उन्हे वृद्ध कहते हैं। वैदिक परम्परा मे आश्रम-व्यवस्था थी। उसमे पचहत्तर वर्ष के पश्चात् सन्यास ग्रहण करते थे। वृद्धावस्था मे सन्यास ग्रहण करने के कारण भी वे वृद्ध कहलाते थे।

---

१ (क) अनुयोगद्वार सूत्र २० (ख) औपपातिक सूत्र ३७, पृ ६९
(ग) ज्ञाताधर्मकथा टीका, १५ पृ १९४

२ सूत्रकृताग निर्युक्ति गा ११९

३ हिस्टारिकल क्लीनिंग्स B C Laha

४ अण्णतीर्थिकाश्चरक-परिव्राजक शाक्याजीविक-वृद्धश्रावकप्रभृतय —निशीथभाष्य चूर्णि, भाग २, पृ ११८

५ औपपातिक सूत्र ३।

६ अगुत्तरनिकाय (हिन्दी अनुवाद) भाग २, पृ ४५२।

७ वृद्धा तापसा वृद्धकाल एव दीक्षाभ्युपगमात् आदिदेवकालोत्पन्नत्वेन च सकललिंगिनामाद्यत्वात्, श्रावका-धर्मशास्त्रश्रवणाद् ब्राह्मणा अथवा वृद्ध-श्रावका ब्राह्मणा। —औपपातिक सू ३८ वृत्ति

ब्राह्मणों को श्रावक इसीलिए कहते हैं कि वे पहले श्रावक ही थे। बाद में ब्राह्मण भी नाम से कहे गये। आचारांग[1] चूर्णि आदि में लिखा है कि भगवान् ऋषभदेव जब श्रमण बन गये और भरत का राज्याभिषेक हो गया, श्रावकधर्म की जब उत्पत्ति हुई तो श्रावक बहुत ही ऋजु स्वभाव के धर्मप्रिय थे। किसी को भी हिंसा करते तो उनका हृदय दया से द्रवित हो उठता और उनके मुख से स्वर फूट पड़ते—इन जीवों को मत मारो, मत मारो "मा हन" इस उपदेश के आधार से 'माहण' ही बाद में ब्राह्मण हो गए।

सम्भव है पहले श्रमण और श्रावक दोनों के लिए "माहण" शब्द का प्रयोग होता रहा हो।

एक प्रश्न उत्पन्न होता है कि वृद्ध श्रावक का अर्थ ब्राह्मण क्यों किया जाय। भगवान् महावीर के समय हजारों की संख्या में पार्श्वापत्य श्रावक विद्यमान थे। वे वृद्ध श्रावक कहे जा सकते हैं। पर उत्तर में निवेदन है कि आगमसाहित्य में जहाँ पर भी 'बुड्ढ सावय' शब्द व्यवहृत हुआ है वहाँ 'निग्गंठ' शब्द भी आया है। निर्ग्रन्थ परम्परा श्रमणों के लिए व्यवहृत होती थी। इसलिए वृद्ध श्रावक पृथक् कहने की आवश्यकता नहीं। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि वृद्ध श्रावक केवल गृहस्थों के लिए ही नहीं आया है, साधु संन्यासी व गृहस्थ दोनों के लिए आया है। जैसे 'श्रावक' शब्द उस परम्परा के संन्यासी व गृहस्थ दोनों के लिए आता है, वैसे ही निर्ग्रन्थ शब्द भी दोनों के लिए आता है, एक के लिए उपासक के साथ में आता है। आगम साहित्य के मनन से यह भी स्पष्ट है कि वृद्ध श्रावक भगवान् महावीर के समय पूर्ण रूप से वैदिक परम्परा की क्रियाओं का पालन करते थे उनकी कोई भी क्रिया जैन परम्परा की धार्मिक क्रिया से मेल नहीं खाती थी। भले ही श्रावक शब्द ब्राह्मण परम्परा में प्रचलित न हो पर अतीत काल में था। भगवान् ऋषभदेव के पुत्र चक्रवर्ती सम्राट भरत उन श्रावकों से प्रतिदिन "जितो भवान् वर्द्धते भीस्तस्मात् माहन माहन" = "आप पराजित हो रहे हैं भय बढ़ रहा है, अतः आत्मगुणों का हनन न हो। अतः सावधान रहो।" इस श्रवण पर अन्तर्मुखी होकर चिन्तन के सागर में डुबकी लगाया करते। निरन्तर अन्तर्मुखी चिन्तन होने से अनासक्ति की भावना निरन्तर बढ़ती रहती। माहण का उच्चारण करने वाले महान् माहन थे। सम्राट भरत चक्रवर्ती ने उन श्रावकों के स्वाध्याय हेतु (१) संसारदर्शन, (२) संस्थानपरामर्शन (३) तत्त्वबोध (४) विद्याप्रबोध[2] इन चार आर्यवेदों का निर्माण किया। वे नौवें तीर्थंकर सुविधिनाथ तक चलते रहे। उसके पश्चात् सुलसा और याज्ञवल्क्य प्रभृति ऋषियों के द्वारा अन्य वेदों की रचना की गई। 'वृद्ध श्रावक' शब्द ब्राह्मण परम्परा का ही सूचक है। यद्यपि इसका प्रादुर्भाव श्रमण परम्परा में हुआ, किन्तु बाद में चलकर यह वैदिक परम्परा के सम्प्रदायविशेष के लिए व्यवहृत होने लगा। मेरी दृष्टि से वृद्ध और श्रावक ये दो पृथक् न होकर एक ही होना चाहिए।

(१४) रक्तपट—लाल वस्त्रधारी परिव्राजक।

इस प्रकार के शब्द इतिहास और परम्परा के संवाहक हैं। कितने ही शब्द अतीत काल में अत्यन्त गरिमामय रहे हैं और उनका बहुत अधिक प्रचलन भी था किन्तु समय की अंगड़ाई लेने के कारण उनकी अर्थव्यञ्जना दूर होती चली गई और वे शब्द आज रहस्यमय बन गये हैं। इसलिए उन शब्दों के अर्थ के अनुसन्धान की आवश्यकता है।

सोलहवें अध्ययन में पाण्डवपत्नी द्रौपदी को पद्मनाभ अपहरण कर हस्तिनापुर से अमरकंका ले आता है। हस्तिनापुर कुरुजाङ्गल जनपद की राजधानी थी। हस्तिनापुर के अधिपति श्रेयांस ने ऋषभदेव को सर्वप्रथम आहार दान दिया[3] था। महाभारत के[4] अनुसार सुहोत्र के पुत्र राजा हस्ती ने इस नगर को

१ आचारांग चूर्णि पृ० ५।
२ अनुयोगद्वार २०, और २६।
३ त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १ ६-२४७-२९३।
४ जम्बूद्वीप एक परिशीलन पृ० १६० (ख) आवश्यक निर्युक्ति (गा०) ३८५।
५ महाभारत आदि पर्व ९५-३४ २४१।

बसाया था। अत उसका नाम हस्तिनापुर पडा। महाभारत काल में वह कौरवो की राजधानी थी।[1] अभिमन्यु के पुत्र परिक्षित को वहाँ का राजा बनाया था।[2] विविध तीर्थ कल्प के अभिमतानुसार ऋषभदेव के पुत्र कुरु थे। उनके एक पुत्र हस्ती थे, उन्होने हस्तिनापुर बसाया[3] था। विष्णुकुमार मुनि ने बलि द्वारा हवन किये जाने वाले ७०० मुनियो की यहाँ रक्षा की थी। सनत्कुमार, महापद्म, सुभौम और परशुराम का जन्म इसी नगर मे हुआ था। इसी नगर मे कार्तिक श्रेष्ठी ने मुनिसुव्रत स्वामी के पास सयम लिया था और सौधर्मेन्द्र पद प्राप्त किया[4] था। शातिनाथ, कुथुनाथ और अरनाथ इस तीनो तीर्थंकरो और चक्रवर्तियो की जन्मभूमि होने का गौरव भी इसी नगर को है। पौराणिक दृष्टि से इस नगर का अत्यधिक महत्त्व रहा है। वासुदेवहिण्डी मे इसे ब्रह्मस्थल कहा[5] है। इसके अपर नाम गजपुर और नागपुर भी थे। वर्तमान मे हस्तिनापुर गगा के दक्षिण तट पर मेरठ से २२ मील दूर उत्तर-पश्चिम कोण मे तथा दिल्ली से छप्पन मील दूर दक्षिण-पूर्व मे विद्यमान है। पाली साहित्य मे इसका नाम हस्तिपुर या हस्तिनापुर आता है। जैनाचार्य श्री नदिषेण रचित "अजितशाति" नामक स्तवन मे इस नगरी के लिए गयपुर, गजपुर, नागाह्वय, नागसाह्वय नागपुर, हत्थिणउर, हत्थिणाउर, हत्थिणापुर, हस्तिनीपुर आदि पर्यायवाचक शब्दो का उल्लेख किया गया है। इसी हस्तिनापुर नगर से द्रौपदी को घातकीखड क्षेत्र की अमरकका नगरी मे ले जाया जाता है। श्रीकृष्ण पाडवो के साथ वहा पहुँचते हैं और द्रौपदी को, पद्मनाभ को पराजित कर पुन ले आते हैं। श्रीकृष्ण पाडवो की एक हरकत से अप्रसन्न होकर कुन्ती की प्रार्थना से समुद्र तट पर नवीन मथुरा बसा कर वहा रहने की अनुमति देते हैं। इसमे पाडवो की दीक्षा और मुक्ति लाभ का वर्णन है। प्रस्तुत अध्ययन के प्रारम्भ मे द्रौपदी के पूर्वभव का वर्णन है, जिसमे उसने नागश्री के भव में धर्मरुचि अनगार को कडुवे तूबे का आहार दिया था और जिसके फलस्वरूप अपने भवो मे उसे जन्म लेना पडा। इसमे कच्छुल नारद की करतूतो का भी परिचय है।

इस अध्ययन मे एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि दुर्भावना के साथ जहर का दान देने से बहुत लम्बी भव-परम्परा बढ गई। दान सद्भावना के साथ और ऐसे पदार्थ का देना चाहिए जो हितप्रद हो। दूसरी बात, निदान साधक-जीवन का शल्य है। सुव्रती होने के लिए शल्यरहित होना चाहिए। एतदर्थ ही उमास्वाति ने निःशल्यो व्रती[6] लिखा है। माया, निदान और मिथ्यादर्शन ये तीन शल्य हैं जिनके कारण व्रतो के पालन मे एकाग्रता नही आ पाती। ये शल्य अन्तर मे पीडा उत्पन्न करते हैं। वह साधक को व्याकुल और बेचैन बनाता है। इन शल्यो से तीव्र कर्मबन्ध होता है। सुकुमालिका साध्वी ने अपनी उत्कृष्ट साधना को भौतिक पदार्थों को प्राप्त करने के लिए नष्ट कर दिया।

इस अध्ययन मे सास्कृतिक दृष्टि से यह बात भी महत्त्वपूर्ण है कि उस युग मे मर्दन के लिये ऐसे तेल तैयार किये जाते थे जिनके निर्माण मे सौ स्वर्ण मुद्राए और हजार स्वर्ण मुद्राए व्यय होती थी। शतपाक तेल मे सौ प्रकार की ऐसी जडी-बूटियों का उपयोग होता था और सहस्रपाक में हजार औषधियो का। ये शारीरिक स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभप्रद होते थे। स्नान के लिए उष्णोदक, शीतोदक और गधोदक आदि का उपयोग होता था।

प्रस्तुत अध्ययन मे गगा महानदी को नौका के द्वारा पार करने का उल्लेख है। गगा भारत की सबसे

---

१ महाभारत, आदिपर्व १००-१२-२४४।
२ महाभारत, प्रस्थान पर्व १-८-२४५।
३ विविध तीर्थकल्प में हस्तिनापुर कल्प, पृ २७।
४ जयवाणी पृ २८३-९४।
५ वसुदेवहिण्डी पृ १६५।
६ तत्त्वार्थसूत्र ७ १३

बड़ी नदी है। उसे देवताओं की नदी माना है।[1] जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति के अनुसार वह देवाधिष्ठित[2] है। आगमों में अनेक स्थलों पर गंगा को महानदी माना है।[3] स्थानांग आदि में गंगा को महार्णव कहा है।[4] आचार्य अभयदेव ने महार्णव शब्द को उपमावाचक माना है।[5] विशाल जलराशि के कारण वह समुद्र के समान है। पुराणकार ने गंगा को समुद्ररूपिणी कहा[6] है। वैदिक दृष्टि से गंगा में तीन सौ नदियां मिलती हैं[7] और जैन दृष्टि से चौदह हजार[8] जिनमें यमुना, सरयू, कोशी, मही, गण्डकी ब्रह्मपुत्र आदि बड़ी नदियां भी सम्मिलित हैं। प्राचीन युग में गंगा अत्यन्त विशाल थी। समुद्र में प्रवेश करते समय गंगा का पाट साढ़े बासठ योजन चौड़ा[9] था और वह पांच कोस गहरी थी। आज गंगा उतनी विशाल नहीं है। गंगा और उसकी सहायक नदियों से अनेक विशालकाय नहरें निकल चुकी हैं। आधुनिक सर्वेक्षण के अनुसार गंगा १५५७ मील लम्बे मार्ग को तय कर बंग सागर में मिलती है। वह वर्षाकालीन बाढ़ में १७,००,००० घन फुट पानी का प्रति सैकण्ड प्रवाह करती है[10]। इस अध्ययन के प्रमुख पात्र श्रीकृष्ण, पाण्डव, द्रौपदी आदि जैन और वैदिक आदि परम्परा के बहुचर्चित और आदरणीय व्यक्ति रहे हैं, जिनके जीवन प्रसंग से सम्बन्धित अनेक विचारणीय तथ्य मिलते हैं। प्रस्तुत अध्ययन में श्रीकृष्ण के नरसिंह रूप का भी वर्णन है। नरसिंहावतार की कथा श्रीमद् भागवत में है जो विष्णु के एक अवतार थे, पर श्रीकृष्ण ने कभी नरसिंह का रूप धारण किया हो, ऐसा प्रसंग वैदिक परम्परा के ग्रन्थों में देखने में नहीं आया। यहाँ पर उसका सजीव चित्रण हुआ है।

सत्रहवें अध्ययन में जंगली अश्वों का उल्लेख है। कुछ व्यापारी हस्तिशीर्ष नगर से व्यापार हेतु समुद्र में परिभ्रमण करते हुए कालिक द्वीप में पहुँचते हैं। वहाँ वे चाँदी, स्वर्ण और हीरे की खदानों के साथ श्रेष्ठ जाति के घोड़े देखते हैं। इससे पूर्व अध्ययनों में भी समुद्रयात्रा के उल्लेख आये हैं। आगमों में पोतपट्टन और जलपत्तन शब्द व्यवहृत हुए हैं जो समुद्री बन्दरगाह के अर्थ में हैं, यहाँ पर विदेशी माल उतरता था। कहीं-कहीं पर जलमार्ग और पोतस्थान शब्द मिलते हैं। यानपात्र शब्द जहाज के लिए आया है। उस युग में जहाज दो प्रकार के होते थे। एक माल ढोनेवाले, दूसरे यात्रा के लिए। बन्दरगाह तक हाथी या शकट पर चढ़कर लोग आते थे। समुद्रयात्रा में प्रायः तूफान आने पर जहाज डगमगाने लगते। दिग्मूढ़ हो जाते, क्योंकि उस समय नौकाओं में दिशासूचक यन्त्र नहीं थे। इसलिए आसन्न संकट से बचने के लिए इन्द्र, स्कन्द आदि देवताओं का स्मरण भी करते थे। पर यह स्पष्ट है कि भारतीय व्यापारी अत्यन्त कुशलता के साथ समुद्री व्यापार करना जानते थे। उन्हें समुद्री मार्गों का भी परिज्ञान था। जहाज आकार में और आजकल की तरह सुदृढ़ और विशालकाय भी नहीं थे। इसलिए इनको

१ (क) स्कन्दपुराण, काशीखण्ड २९ अध्याय
(ख) अमरकोष १/१०/३१
२ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति ४ वक्षस्कार
३ (क) स्थानांग ५/३
(ख) समवायांग २४वां समवाय
(ग) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति ४ वक्षस्कार
(घ) निशीथसूत्र १२/४२
(ङ) बृहत्कल्पसूत्र ४/३२
४ (क) स्थानांग ५/२/१
(ख) निशीथ १२/४२
(ग) बृहत्कल्प ४/३२
५ (क) स्थानांग वृत्ति ५/२/१
(ख) बृहत्कल्पभाष्य टीका २१/१६
६ स्कन्दपुराण काशीखण्ड २९ अ०
७ हारीत १/७
८ जम्बू० ४ वक्षस्कार
९ वही०
१० हिन्दी विश्वकोष नागरी प्रचारिणी सभा

की प्रतिकूलता से जहाजा को अत्यधिक खतरा रहता था। तथापि वे निर्भीकता से एक देश से दूसरे मे घूमा करते थे। ये व्यापारी भी बहुमूल्य पदार्थों को लेकर हस्तिशीर्ष नगर पहुँचे और राजा को उन श्रेष्ठ अश्वों के सम्बन्ध म बताया। राजा अपने अनुचरो के साथ घोडो को लाने का वणिको को आदेश देता है। व्यापारी अश्वो का पकड लान के लिए वल्लकी भ्रामरी, कच्छभी, बभा, पटभ्रमरी विविध प्रकार की वीणाएँ, विविध प्रकार के चित्र, सुगन्धित पदार्थ, गुडिया-मत्स्यका शक्कर, मत्यसडिका, पुष्पोत्तर और पद्मोत्तर प्रकार की शर्कराए और विविध प्रकार के वस्त्र आदि के साथ पहुँचे और उन लुभावने पदार्थों से उन घोडों को अपने अधीन किया। स्वतन्त्रता से घूमने वाले घोडे पराधीन बन गये। इसी तरह जो साधक विषयो के अधीन होते हैं वे भी पराधीनता के पक म निमग्न हो जाते हैं। विषयो की आसक्ति साधक को पथभ्रष्ट कर देती है।

प्रस्तुत अध्ययन मे गद्य के साथ भी पद्य प्रयुक्त हुए हैं। बीस गाथाए हैं। जिनमे पुन उसी बात को उदबोधन के रूप में दुहराया गया है।

अठारहवें अध्ययन मे सुषमा श्रेष्ठी-कन्या का वणन है। वह धन्ना सार्थवाह की पुत्री थी। उसकी देखभाल के लिए चिलात दासीपुत्र को नियुक्त किया गया। वह बहुत ही उच्छृखल था। अत उसे निकाल दिया गया। वह अनेक व्यसनो के साथ तस्कराधिपति बन गया। सुषमा का अपहरण किया। श्रेष्ठी और उसके पुत्रो ने उसका पीछा किया। उन्हे अटवी मे चिलात द्वारा मारी गई सुषमा का मृत देह प्राप्त हुआ। वे अत्यत क्षुधा-पिपासा से पीडित हो चुके थे। अत सुषमा के मृत देह का भक्षण कर अपने प्राणो को बचाया। सुषमा के शरीर का मास खाकर उन्होंने अपने जीवन की रक्षा की। उन्हें किंचिन्मात्र भी उस आहार के प्रति राग नही था। उसी तरह षट्काय के रक्षक श्रमण-श्रमणिया भी सयमनिर्वाह के लिए आहार का उपयोग करते हैं, रसास्वादन हेतु नहीं। असह्य क्षुधा वेदना होने पर आहार ग्रहण करना चाहिए। आहार का लक्ष्य सयम-साधना है।

बौद्ध त्रिपिटक साहित्य मे भी इसी प्रकार मृत कन्या के मास को भक्षण कर जीवित रहने का वणन प्राप्त होता है।[1] विशुद्धिमग्ग और शिक्षा समुच्चय मे भी श्रमण को इसी तरह आहार लेना चाहिये यह बताया गया है। मनुस्मति आपस्तम्बधर्म सूत्र (२ ४ ९ १३) वासिष्ठ (६ २० २१) बोधायन धम सूत्र (२ ७ ३१ ३२) म सन्यासिया के आहार सबधी चर्चा इसी प्रकार मिलती है।

प्रस्तुत अध्ययन के अनुसार तस्करो के द्वारा ऐसी मन्त्रशक्ति का प्रयोग किया जाता था, जिससे सगीन ताले अपने आप खुल जात थे। इससे यह भी ज्ञात होता है कि महावीरयुग मे ताले आदि का उपयोग धनादि की रक्षा के लिए होता था। विदेशी यात्री मेगास्तनीज, ह्वेनसाग, फाहियान, आदि ने अपने यात्रीविवरणो मे लिखा है कि भारत मे कोई भी ताला आदि का उपयोग नही करता था, पर आगम साहित्य मे ताले के जो वणन मिलते हैं वे अनुसधित्सुओ के लिए अन्वेषण की अपेक्षा रखते हैं।

उन्नीसवें अध्ययन मे पुण्डरीक और कण्डरीक की कथा है। जब राजा महापद्म श्रमण बने तब उनका ज्येष्ठपुत्र पुण्डरीक राज्य का सचालन करने लगा और कण्डरीक युवराज बना। पुन महापद्म मुनि वहा आये तो कण्डरीक ने श्रमणधम स्वीकार किया। कुछ समय बाद कण्डरीक मुनि वहा आये उस समय वे दाहज्वर से ग्रसित थे। महाराजा पुण्डरीक ने औषधि-उपचार करवाया। स्वस्थ होने पर भी जब कण्डरीक मुनि वहीं जमे रहे तब राजा न निवेदन किया कि श्रमणमर्यादा की दृष्टि से आपका विहार करना उचित है। किन्तु कण्डरीक के मन मे भोगा के प्रति आसक्ति उत्पन्न हो चुकी थी। वे कुछ समय परिभ्रमण कर पुन वहा आ गय। पुण्डरीक के समझाने पर भी वे न समझे तब कण्डरीक को राज्य सौंपकर पुण्डरीक ने कण्डरीक का श्रमणवेष स्वयं धारण कर

---

१ सयुत्तनिकाय, २, पृ ९७

लिया। तीन दिन की साधना से पुण्डरीक तेतीस सागर की स्थिति का उपभोग करने वाला सर्वार्थसिद्धि विमान में देव बना और कण्डरीक भोगों में आसक्त होकर तीन दिन में आयु पूर्ण कर तेतीस सागर की स्थिति में सातवीं नरक का मेहमान बना। जो साधक वर्षों तक उत्कृष्ट साधना करते रहे किन्तु बाद में यदि वह साधना से च्युत हो जाता है तो उसकी दुर्गति हो जाती है और जिसका अन्तिम जीवन शुभ साधना में गुजरता है वह स्वल्पकाल में भी सद्गति का वरण कर लेता है।

इस तरह प्रथम श्रुतस्कन्ध में विविध दृष्टान्तों के द्वारा अहिंसा, अस्वाद, श्रद्धा, इन्द्रियविजय प्रभृति आध्यात्मिक तत्त्वों का बहुत ही संक्षेप व सरस शैली में कथन किया गया है। कथावस्तु की दृष्टि से भी अत्यन्त चित्ताकर्षक है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी जो शोधार्थी शोध करना चाहते हैं, उनके लिए पर्याप्त सामग्री है। उस समय की परिस्थिति, रीति-रिवाज, खान पान सामाजिक स्थितियों और मान्यताओं का विशद विश्लेषण भी इस आगम में प्राप्त होता है। शैली की दृष्टि से धर्मकथानुयोग का यह आदर्श रहा है। भाषा और रचना शैली की अपेक्षा जीवननिर्माण की शैली का प्रयोग करने में ये दक्ष रहे हैं। आधुनिक कलात्मक आगम की कथाकृतियों में कला का [illegible] अधिक पसन्द करते हैं। आधुनिक कहानियों से तत्त्वों और शैली से इनकी समता करना चाहते हैं। पर वे भूल जाते हैं कि ये कथाएं बोधकथाएं हैं। इनमें जीवननिर्माण की प्रेरणा है, न कि कला के लिए कलाप्रदर्शन। यदि वे बोध प्राप्त करने की दृष्टि से इन कथाओं का पारायण करेंगे तो उन्हें इनमें बहुत कुछ मिल सकेगा।

रामकृष्ण परमहंस ने कहा था कि दूध में जामन डालने के पश्चात् उस दूध को छूना नहीं चाहिए और न कुछ समय तक उस दूध को हिलाना चाहिए। जो दूध जामन डालने के पश्चात् स्थिर रहता है वही बढ़िया जमता है। इसी तरह साधक को साधना में पूर्ण विश्वास रखना चाहिए। इस अण्डकज्ञात रूपक में यह बात कही गई है और यह भी बताया गया है कि साधक को शीघ्रता भी नहीं करनी चाहिए। शीघ्रता करने से किस तरह हानि होती है जैसे कूर्म की कथा में बताया गया है। उत्कृष्ट साधना के शिखर पर पहुँचा व्यक्ति जरा-सी असावधानी से नीचे गिर सकता है जैसे शैलक राजर्षि। इस बात पर भी प्रकाश डाला है कि शिष्य का क्या कर्तव्य होना चाहिए? गुरु साधना से स्खलित हो जाए तथापि शिष्य को स्वयं जागरूक रहकर गुरु की शुश्रूषा करनी चाहिए, जैसे पंथक ने स्वयं का उद्धार किया और गुरु का भी।

मल्ली भगवती ने नारी के उत्कर्षकारी पद पर बढ़ने वाले और [illegible] साधनाओं का विशुद्ध सदाचार का मार्ग प्रदर्शित किया। शरीर के अन्दर भरी हुई गन्दगी का वास्तविक और सार दृश्य का परिचय दिया। [illegible] अपनी साधना से [illegible] उनके हाथ में [illegible] लिये और कहा – [illegible] पर उस कथा से भी मल्ली भगवती की कथा अधिक प्रभावशाली है। आगम में जो कथाएं आई हैं उनमें कहीं पर भी साम्प्रदायिकता या संकुचितता नहीं है। यद्यपि ये कथाएं जैन परम्परा को लेकर कही गई हैं, पर ये सार्वभौमिक हैं। सभी धर्म और सम्प्रदायों के अनुयायियों के लिए [illegible] हैं। सभी धर्म सम्प्रदायों का अपितु समस्त धर्मजिज्ञासुओं को प्रेरणा और मार्ग प्रदान करता है और [illegible] के लिए [illegible] दृष्टियों का कथन व कथन दायक है। यही इन कथाओं का [illegible] है।

इस सूत्र में लिखा हुआ है कि ज्ञातासूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध में धर्मकथाएं हैं। इसमें चमरेन्द्र, बलीन्द्र, धरणेन्द्र, [illegible] आदि की अग्रमहिषियों के रूप में उत्पन्न होने [illegible] है। [illegible] भगवान् पार्श्वनाथ के शासन में दीक्षित हुई थीं। [illegible] दस वर्गों में [illegible] है। [illegible] है। (१) काली (२) राजी (३) रजनी (४) विद्युत् (५) मेघा ये [illegible] और [illegible]

आर्या पुष्पचूला के पास दीक्षा ग्रहण की थी। (६) शुभा (७) निशुभा (८) रभा (९) निरभा और (१०) मदना ये श्रावस्ती की थी और पार्श्वनाथ के उपदेश से दीक्षा ग्रहण की थी। (११) इला (१२) सतरा (१३) सौदामिनी (१४) इन्द्रा (१५) घना और (१६) विद्युता ये वाराणसी की थी और श्रेष्ठियो की लडकिया थी। इन्होने भी पार्श्वनाथ के उपदेश से दीक्षा ग्रहण की थी। (१७) रुचा (१८) सुरुचा (१९) रुचाशा (२०) रुचकावती (२१) रुचकान्ता (२२) रुचप्रभा ये चम्पा नगरी की थी। इन्होने भी पार्श्वनाथ की परम्परा मे दीक्षा ग्रहण की थी। (२३) कमला (२४) कमलप्रभा (२५) उत्पला (२६) सुदर्शना (२७) रूपवती (२८) बहुरूपा (२९) सुरूपा (३०) सुभगा (३१) पूर्णा (३२) बहुपुत्रिका (३३) उत्तमा (३४) भारिका (३५) पद्मा (३६) वसुमती (३७) कनका (३८) कनकप्रभा (३९) अवतसा (४०) केतुमती (४१) वज्रसेना (४२) रतिप्रिया (४३) रोहिणी (४४) नौमिका (४५) ह्री (४६) पुष्पवती (४७) भुजगा (४८) भुजगवती (४९) माकच्छा (५०) अपराजिता (५१) सुघोषा (५२) विमला (५३) सुस्वरा (५४) सरस्वती ये बत्तीस कुमारिकाए नागपुर की थी। भगवान पार्श्वनाथ के उपदेश से साधना के पथ पर अपने कदम बढाये थे।

एक बार भगवान् पार्श्व साकेत नगरी मे पधारे। वहा बत्तीस कुमारिकाओ ने दीक्षा ग्रहण की। भगवान् पार्श्व अरुक्खुरी नगरी मे पधारे। उस समय (८७) सूर्यप्रभा (८८) आतपा (८९) अचिमाली (९०) प्रभकरा आदि ने त्यागमार्ग को ग्रहण किया। एक बार भगवान् पार्श्व मथुरा पधारे। उस समय (९१) चन्द्रप्रभा (९२) दोष्णाभा (९३) अचिमाली और (९४) प्रभकरा ने दीक्षा ग्रहण की। भगवान् श्रावस्ती पधारे जहा पर (९५) पद्मा और (९६) शिवा ने सयम मार्ग की ओर कदम बढाया। भगवान् पार्श्व हस्तिनापुर पधारे। उस समय (९७) सती और (९८) अजू ने श्रमणधर्म स्वीकार किया। भगवान् काम्पिल्यपुर पधारे, वहाँ पर (९९) रोहिणी और (१००) नवमिका ने प्रव्रज्या ग्रहण की। भगवान् साकेत नगर मे पुन पधारे तो वहाँ पर (१०१) अचला और (१०२) अप्सरा ने दीक्षा ग्रहण की। एक बार भगवान वाराणसी पधारे। उस समय (१०३) कृष्ण (१०४) कृष्णराजि, ने और राजगृह मे (१०५) रामा और (१०६) रामरक्षिता ने श्रावस्ती मे (१०७) वसु और (१०८) वसुगुप्ता ने कोशाबी मे (१०९) वसुमित्रा (११०) वसुधरा ने दीक्षा ग्रहण की थी। ये सभी साध्वियाँ चारित्र की विराधक हो गई थी। विराधना के कारण सभी देवियो के रूप मे उत्पन्न हुइ, पर देवियो का आयुष्य पूर्णकर व महाविदेह क्षेत्र मे उत्पन्न होगी और वहा से विशुद्ध चारित्र का आराधन कर मोक्ष जाएँगी।

व्याख्यासाहित्य

ज्ञातासूत्र कथाप्रधान आगम होने से यह बहुत सरल माना गया, यद्यपि इस आगम की भाषा बहुत ही क्लिष्ट, साहित्यिक और समासबहुल है। तथापि विषय सरल होने से इस पर व्याख्याए बहुत कम लिखी गई हैं। इस पर न नियुक्ति लिखी गई, न भाष्य का निर्माण किया गया और न चूर्णि ही लिखी गई। सर्वप्रथम इस पर आचार्य अभयदेव ने सस्कृत भाषा मे वृत्ति लिखी। यह वृत्ति मूलसूत्र को स्पर्श कर लिखी हुई है। इस वृत्ति मे शब्दार्थ की प्रधानता है। प्रारभ मे भगवान् महावीर को नमस्कार किया गया है। उसके पश्चात चम्पा नगरी का परिचय देकर पूर्णभद्र चैत्य का परिचय दिया है। श्रेणिक सम्राट् के पुत्र कोणिक का उल्लेख करके गणधर सुधर्मा का परिचय दिया गया है। प्रस्तुत सूत्र के नाम का स्पष्टीकरण किया गया है। प्रथम श्रुतस्कध में उन्नीस ही अध्ययनों के कठिन शब्दों के अर्थ स्पष्ट करके प्रत्येक अध्ययन के अन्त मे होने वाले विशेष अर्थ को प्रकट किया है।

वृत्तिकार ने प्रथम अध्ययन का सार बताते हुए लिखा—अविधिपूर्वक प्रवृत्ति करनेवाले शिष्य को सही मार्ग पर लाने के लिए समय पर उपालभ भी देना चाहिए। द्वितीय अध्ययन के अन्त मे लिखा—बिना आहार के मोक्ष की साधना के लिए प्रवृत्ति नहीं हो सकती। इसलिए शरीर को आहार देना चाहिए। तृतीय अध्ययन का

गार प्रस्तुत किया है कि किसी को जिन-वचन के प्रति किंचित् मात्र भी सन्देह नहीं करना चाहिए। कोई [illegible] सूक्ष्म है। जिनके अन्तर्मानस में शंकाएं होती हैं। वे सदा निराशा के सागर में झूलते रहते हैं। [illegible] कभी [illegible] दर्शन नहीं होते। इसी तरह सभी अध्ययनों का [illegible] प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय श्रुतस्कंध में धर्मकथाओं से ही धर्मार्थ का प्रतिपादन किया है। वृत्तिकार ने इसका विवेचन प्रस्तुत नहीं किया। सब सुगम और शेष सूत्रसिद्धम् इतना ही लिखा गया है। इस वृत्ति को श्लोक प्रमाण ३८०० है। यह वृत्ति सं. ११२० में विजयादशमी को अणहिलपुर पाटन में पूर्ण हुई। आचार्य अभयदेव ने अपने गुरु का नाम जिनेश्वर बताया है और यह भी बताया है कि इस वृत्ति का संशोधन द्रोणाचार्य ने किया है। वृत्ति की प्रशस्ति से यह भी पता चलता है कि इसकी अनेक वाचनाएं वृत्तिकार के समय प्रचलित थीं।

लक्ष्मीकल्लोल गणि ने वि. सं. १५९६ में ज्ञाताधर्मकथा वृत्ति का निर्माण किया था। अर्वाचीन युग में पूज्य श्री घासीलालजी म. ने संस्कृत में सविस्तार टीका लिखी है। ज्ञातासूत्र पर प्राचीन टब्बा भी मिलते हैं। वे टब्बे धर्मसिंह मुनि के लिखे हुए हैं। ज्ञातासूत्र पर सर्वप्रथम हिन्दी अनुवाद आचार्य श्री अमोलकऋषि म. का प्राप्त होता है। पं. शोभाचन्द्रजी भारिल्ल का हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हुआ है। पं. बेचरदासजी दोशी का गुजराती छायानुवाद भी प्रकाशित हुआ है। एक से आठ अध्ययनों तक गुजराती अनुवाद [illegible] भी प्रकाशित हुआ है।

स्थानकवासी समाज एक आगमनिष्ठ समाज है। वह आगमों के प्रति पूर्ण निष्ठावान् है। समय के अनुसार आगमों के विवेचन की ओर उसका लक्ष्य रहा है। जिस समय टब्बा युग आया उस समय आचार्य श्री धर्मसिंहजी ने सत्ताईस आगमों पर बालावबोध टब्बे लिखे, जो टब्बे मूलस्पर्शी और [illegible] को स्पष्ट करते हैं। जिस समय अनुवाद युग आया उस समय आचार्य श्री अमोलकऋषिजी म. ने आगमबत्तीसी का अनुवाद किया। उसके बाद श्रमणसंघ के प्रथम आचार्य श्री आत्मारामजी म. ने भी अनेक आगमों के हिन्दी अनुवाद और उन पर विस्तृत विवेचन लिखा। पूज्य श्री घासीलालजी म. ने अत्यन्त विस्तार के साथ संस्कृत में टीकाएं लिखीं और वे हिन्दी और गुजराती अनुवाद के साथ प्रकाशित भी हुईं और यों अनेक स्थलों से आगम साहित्य प्रकाशित हुआ तथापि आधुनिक संस्करण की मांग निरन्तर बनी रही। कितने ही प्रबुद्ध चिन्तकों ने व प्रतिभासम्पन्न [illegible] ने आवाजें उठाईं बहुत बार। उन्होंने रूपरेखाएं भी प्रस्तुत कीं। पर आगमों के जैसे चाहिए वैसे [illegible] साधारणोपयोगी संस्करण प्रकाशित नहीं कर सके। प्रयास उनके उठान, उठान ही रहे। परम हर्ष का विषय है कि मेरे परम श्रद्धेय सद्गुरुवर्य अध्यात्मयोगी राजस्थानकेसरी उपाध्याय श्री पुष्करमुनिजी म. के सहपाठी युवाचार्य श्री मधुकरमुनिजी ने इस भगीरथ कार्य को अपने हाथों में लिया। उन्होंने मूर्धन्य मनीषियों के सहयोग से इस कार्य का सम्पादन करने का दृढ़ संकल्प किया, जिसके फलस्वरूप आचारांगसूत्र का शानदार संस्करण [illegible] जिज्ञासु व प्रबुद्ध पाठकों के कर कमलों में पहुंचा। विभिन्न विज्ञों ने उसके सम्पादन और विवेचन की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। उसके पश्चात् उपासकदशांग का भी श्रेष्ठतम प्रकाशन हुआ।

उसी कार्यमाला की कड़ी की कड़ी में ज्ञातासूत्र का श्रेष्ठतम संस्करण प्रकाशित हो रहा है। इस संस्करण की यह विशेषता है कि इसमें विभिन्न प्रतियों के आधार से विशुद्ध पाठ भेद का चयन किया गया है। मूल पाठ के साथ ही हिन्दी में अनुवाद दिया गया है। जहाँ कहीं आवश्यक हुआ वहीं विषय को स्पष्ट करने के लिए संक्षेप में सारपूर्ण विवेचन भी दिये गए हैं। इस आगम के सम्पादक और विवेचक हैं जैनजगत् के ख्यातनामा मनीषी, सम्पादनकलामर्मज्ञ पं. शोभाचन्द्रजी भारिल्ल, जिन्होंने [illegible] अनेक ग्रन्थों का सम्पादन किया है। वे एक यशस्वी सम्पादक के रूप में जाने माने और पहचाने जाते हैं। सम्पादन के साथ ही [illegible] साधु-साध्वियों एवं भारतीय [illegible] और विद्यार्थियों को [illegible] पढ़ाते रहे हैं। [illegible]

वे एक विश्रुत आगममर्मज्ञ हैं। उन्होंने प्रस्तुत आगम का बहुत ही सुन्दर संपादन किया है। अनुवाद और विवे की भाषा सरल व सुबोध है, शैली मन को लुभाने वाली है। विवेचन में ऐसे अनेक रहस्य उद्घा किये हैं जो पाठकों को अभिनव चिन्तन प्रदान करने वाले हैं। उनकी विलक्षण प्रतिभा सर्वत्र मुखरित हुई है।

श्रद्धेय युवाचार्यश्री के दिशानिर्देशन में यह संपादन हुआ है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस संप का सर्वत्र समादर होगा।

प्रस्तुत संस्करण की यह विशेषता है कि इसमें अनेक परिशिष्ट दिये गए हैं। विशिष्ट स्थलों एवं व्यक्ति की अक्षरानुक्रम से नामावली दी गई है। साथ ही आगम में आए हुए 'जाव' शब्द की आवश्यकतानुसार पूर्ति की गई है। इस प्रकार अनेक नवीन विशेषताओं को लिए हुए यह आगम अवश्य ही जन-जन के मन मुग्ध करेगा।

प्रस्तावना को मैं और भी अधिक विस्तार के साथ लिखना चाहता था, पर अन्य लेखनकार्य में अत्य व्यस्त होने से तथा साधनाभाव से जितना लिखना चाहता था नहीं लिख सका, तथापि जो कुछ लिखा है उ प्रबुद्ध पाठकों को ज्ञातासूत्र के सम्बन्ध में जानने को कुछ प्राप्त हो सकेगा, ऐसी आशा है। आज आवश्यकत आगमसाहित्य पर तुलनात्मक दृष्टि से चिन्तन करने की। आगमसाहित्य में भरपूर सामग्री भरी पड़ी है। पर यदि कोई शोधकार्य करना चाहे तो बहुत कुछ किया जा सकता है। शोधार्थियों के लिए यह विषय अभी अछूता-सा पड़ा है। एक-एक आगम पर अनेक शोधप्रबन्ध तैयार हो सकते हैं। वैदिक और बौद्ध ग्रन्थों के उन सभी प्रसंगों की व स्थितियों की तुलना भी हो सकती है। समय मिला तो कभी यह कार्य करने की प्रबल भावना है। सुज्ञेषु किं बहुना।

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय
उदयपुर (राज.)
दि. २५-११-१९८०

—देवेन्द्रमुनि शा

विषयानुक्रम

प्रथम अध्ययन उत्क्षिप्तज्ञात

द्वितीय अध्ययन : संघाट

तृतीय अध्ययन अंडक

चतुर्थ अध्ययन : कूर्म

पञ्चम अध्ययन : शैलक

षष्ठ अध्ययन तुम्बक

सप्तम अध्ययन रोहिणीज्ञात

आठवा अध्ययन मल्ली

नवम अध्ययन : माकन्दी

दशम अध्ययन चन्द्र

ग्यारहवाँ अध्ययन दावद्रव

बारहवाँ अध्ययन उदकज्ञात

नवम अध्ययन : माकन्दी

दशम अध्ययन चन्द्र

ग्यारहवाँ अध्ययन दावद्रव

बारहवाँ अध्ययन उदकज्ञात

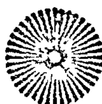
तेरहवाँ अध्ययन : ददुरज्ञात

सोलहवाँ अध्ययन : द्रौपदी

अठारहवाँ अध्ययन : सुंसुमा

उन्नीसवाँ अध्ययन : पुण्डरीक

द्वितीय श्रुतस्कन्ध १-१० वर्ग



पचमगणहर-सिरिसुहम्मसामिविरइय छट्ठ अग

नायाधम्मकहाओ

पचमगणधर-श्रीमत्सुधर्मस्वामि विरचित षष्ठम् अङ्गम्

ज्ञाताधर्मकथा-सूत्रम्

प्रथम अध्ययन उत्क्षिप्तज्ञात

सार सक्षेप

प्रथम अध्ययन मे राजगृह नगर (मगध) के अधिपति महाराज श्रेणिक के सुपुत्र मेघकुमार का आदर्श जीवन अकित किया गया है, किन्तु इसका नाम 'उक्खित्तणाए' है। यह नाम इस अध्ययन मे वर्णित एव मेघ के पूर्वभव मे घटित एक महत्त्वपूर्ण घटना पर आधारित है। उस घटना ने एक हाथी जैसे पशु को मानव और फिर अतिमानव-सिद्ध परमात्मा के सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित कर दिया।

आत्मा अनादि-अनन्त चिन्मय तत्त्व है। राग-द्वेष आदि विकारो से ग्रस्त होने के कारण वह विभिन्न अवस्थाओ मे जन्म-मरण करता है। एक अवस्था से दूसरी अवस्था मे जाना ही ससरण या ससार कहलाता है। कभी अधोगति के पाताल मे तो कभी उच्चगति के शैल-शिखर पर वह आरूढ होता है। इस चढाव-उतार का मूल कारण स्वय आत्मा ही है। सत सयोग मिलने पर आत्मा जब अपने सच्चे स्वरूप को समझ लेता है तब अनुकूल पुरुषार्थ करके अपने विशुद्ध स्वरूप को प्राप्त करके अनन्त-असीम आत्मिक वैभव को अधिगत कर लेता है— शाश्वत एव अव्याबाध सुख का स्वामी बन जाता है। मेघकुमार के जीवन मे यही घटित हुआ।

प्रस्तुत अध्ययन मे मेघकुमार के तीन भवो—जन्मो का दिग्दर्शन कराया गया है और दो भावी भवो का उल्लेख है। अतीत तीसरे भव मे वह जगली हाथी था। जगल मे दावानल सुलगता है। प्राणरक्षा के लिए वह इधर-उधर भागता-दौडता है। भूखा-प्यासा वह पानी पीने के विचार से कीचड-भरे तालाब मे प्रवेश करता है। पानी तक पहुँचने से पहले ही कीचड मे फँस जाता है। उबरने का प्रयत्न करता है पर परिणाम विपरीत होता है—अधिकाधिक कीचड मे धसता जाता है। विवश, लाचार, असहाय हो जाता है। सयोगवश, उसी समय एक दूसरा तरुण हाथी, जो उसका पूर्व वैरी था, वहाँ आ पहुँचता है और वैर का स्मरण करके तीखे दन्त-शूलो से प्रहार करके उसकी जीवन लीला समाप्त कर देता है। कलुषित परिणामो—आर्तध्यान—के कारण हाय-हाय करता हुआ वह प्राणत्याग करके पुन हाथी के रूप मे—पशुगति मे उत्पन्न होता है। वनचर उसका नाम 'मेरुप्रभ' रखते हैं।

सयोग की बात, जगल मे पुन दावानल का प्रकोप होता है। सारा जगल धाय-धाय कर आग की लपटो से व्याप्त हो जाता है। मेरुप्रभ फिर अपने यूथ— झुड के साथ इधर-उधर भागता-दौडता और प्राणरक्षा करता है। किन्तु इस बार दावानल का लोमहर्षक दृश्य देखकर अतीत भव का एक धुँधला-अस्पष्ट-सा चित्र उसके कल्पना-नेत्रो मे उभरता है। वह विचारों की गहराई में उतरता है और उसे शुभ अध्यवसाय, लेश्याविशुद्धि एव ज्ञानावरणकर्म के विशिष्ट क्षयोपशम से जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। इस ज्ञान से अपने पूर्वभवो को जाना जा सकता है।

मेरुप्रभ हाथी को जातिस्मरण से पूर्व जन्म की घटना विदित हो गई। दावानल का भी स्मरण हो आया। तब उसने बार-बार उत्पन्न होने वाली इस विपदा से छुटकारा पाने के लिए एक मडल—घास-फूस, पेड-पौधो से रहित, साफ-सफाचट मदान तैयार किया।

कुछ काल व्यतीत होने पर फिर ग्रीष्मऋतु में दावानल का प्रकोप हुआ। इस बार बचाव स्थान तैयार था—बनाया हुआ वह मंडल। मेरुप्रभ उसी ओर भागा। जंगल के सभी प्रकार के नवर मंडल में ठसाठस भर गए थे। जातिगत वैरभाव त्याग कर शेर, हिरण, भेड़िया, खरगोश आदि सभी एक दूसरे से सटे बैठे थे। मेरुप्रभ भी थोड़ी-सी जगह देख कर खड़ा हो गया।

अचानक मेरुप्रभ के शरीर में खुजली उठी। उसने शरीर खुजलाने के लिए पैर ऊपर उठाया था कि अन्य बलवान् प्राणियों द्वारा धकेला जाता हुआ एक शशक, पैर उठाने से खाली हु ह में आ घुसा।

अब मेरुप्रभ हाथी के सामने बड़ी विकट समस्या थी। पैर जमीन पर टेकता है तो शशक की नी बन जाती है। पैर उठाये रखे कब तक? दावानल जल्दी शान्त नहीं होता। फिर भारी कम शरीर! उसे तीन पैरों पर कैसे सँभाले! एक ओर आत्मरक्षा की चिन्ता तो दूसरी ओर दया की प्रबल भावना! बड़ी असमंजस की स्थिति थी। परन्तु श्रेष्ठ आत्मा अपने हित और का विघात करके भी दूसरे के हित और सुख के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। आखिर आत्मरक्षा मस्त भूतदया की विजय हुई। मेरुप्रभ ने स्वयं घोर कष्ट सहन करके भी शशक की अनुकम्पा के ए अपना पैर अधर ही उठा रखा। इस प्रशस्त अनुकम्पा की बदौलत मेरुप्रभ का संसार परीत हो ा—अनन्त जन्म मरण का चक्र अति सीमित हो गया और उसने मनुष्यायु का बन्ध किया।

मेरुप्रभ ने अढ़ाई अहो-रात्र तक अपना पैर उठाए रखा। जब दावानल जंगल को भस्मसात् के शान्त हो गया, बुझ गया और दूसरे प्राणी आहार-पानी की खोज में इधर-उधर चले गए, क भी चला गया तो मेरुप्रभ ने अपना पैर पृथिवी पर टेकना चाहा। परन्तु अढ़ाई दिन तक एक-अधर रहने के कारण पैर अकड़ गया था। अतएव पैर जमाने में असमर्थ वह स्वयं नीचे गिर ा जैसे विद्युत् के प्रबल आघात से पर्वत का शिखर टूट कर गिर पड़ा हो।

उस समय मेरुप्रभ की उम्र सौ वर्ष की थी। जरा से जर्जरित था। भूख-प्यास होने से न्त दुर्बल, अशक्त और पराक्रमहीन हो गया था। वह उठ नहीं सका और तीन दिन तक दुस्सह ना सहन करके अन्त में प्राण त्याग करके मगधसम्राट् श्रेणिक की महारानी धारिणी के उदर में शु के रूप में जन्मा।

शिशु जब गर्भ में था तब महारानी धारिणी को असमय में पचरंगी मेघों से युक्त वर्षाऋतु दृश्य देखने का दोहद उत्पन्न हुआ। अभयकुमार के प्रयत्न से, दैवी सहायता से, विक्रिया द्वारा र्षाऋतु का सर्जन किया गया। प्रस्तुत अध्ययन में वर्षाऋतु का जो सजीव चित्रण अंकित किया गया है अतिशय भव्य और हृदयग्राही है। सूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण की गंभीरता का उसमें स्पष्ट परिचय लता है। वर्षाऋतु का हूबहू दृश्य नेत्रों के सामने आ खड़ा होता है। उस प्रसंग की भाषा भी छटा-दार, सरस, आह्लादजनक और मनोरम है। पढ़ते-पढ़ते ऐसा अनुभव होने लगता है जैसे किसी त्कृष्ट काव्य का पारायण कर रहे हैं। इस प्रकार के सरस पाठ आगमों में विरल ही मिलते हैं।

मेघ सम्बन्धी माता के दोहद के कारण, यथासमय जन्म होने पर बालक का नाम भी मेघ ही ा जाता है।

सम्राट् के पुत्र के लालन-पालन के विषय में कहना ही क्या! बड़े प्यार से उसका लालन-न-संगोपन हुआ। आठ वर्ष की उम्र हुई। तब उसे कला-शिक्षण के लिए कलाचार्य के सुपुर्द कर

दिया गया। कलाचार्य ने पुरुष की बहत्तर कलाओं की शिक्षा दी। उन कलाओं का नामोल्लेख इस प्रसग में किया गया है। कलाकुशल मेघ के अग-अग खिल उठे। वह अठारह देशी भाषाओं में प्रवीण, गीत-नृत्य में निपुण और युद्ध-कला में भी निष्णात हो गया। तत्पश्चात् आठ राजकुमारियों के साथ एक ही दिन उसका विवाह किया गया। इस प्रकार राजकुमार मेघ उत्तम राजसी भोग-उपभोग भोगने लगा।

कुछ काल के पश्चात् जनपद-विहार करते-करते और जगत् के जीवों को शाश्वत एव पारमार्थिक सुख तथा कल्याण का पथ प्रदर्शित करते हुए भगवान् महावीर का राजगृह नगर में पदार्पण हुआ। राजा-प्रजा सभी धर्मदेशना श्रवण करने के लिए प्रभु की सेवा में उपस्थित हुए। मेघकुमार को जब भगवान् के समवसरण का वृत्तान्त विदित हुआ तो वह भी कहाँ पीछे रहने वाला था। आत्मा में जब एक बार सच्ची जागृति आ जाती है, अपने असीम आन्तरिक वैभव की झाँकी मिल जाती है, आत्मा जब एक बार भी स्व-सवेदन के अद्भुत, अपूर्व अमृत-रस का आस्वादन कर लेता है, तब ससार का उत्तम से उत्तम वैभव और उत्कृष्ट से उत्कृष्ट भोग भी उसे बालू के कवल के समान नीरस, निस्वाद और फीके जान पडते हैं। राजकुमार मेघ का विवेक जागृत हो चुका था। वह भी भगवान् की उपासना के लिए पहुचा। धर्मदेशना श्रवण की। भगवान् का एक-एक बोल मानो अमृत का एक एक बिन्दु था। उसका पान करते ही उसके आह्लाद की सीमा न रही। आत्मा लोकोत्तर आलोक से उद्भासित हो उठी। उसने अपने-आपको भगवत्-चरणों में समर्पित कर दिया। सम्राट् के लाडले नौजवान पुत्र ने भिक्षु बनने का सुदृढ सकल्प कर लिया।

मेघ माता पिता की अनुमति प्राप्त करने उनके पास पहुँचा। दीक्षा की बात सुनते ही माता धारिणी देवी तो बेहोश होकर धडाम से धरती पर गिर पडी और पिता श्रेणिक सम्राट् चकित रह गए। उन्होंने मेघकुमार को प्रथम तो अनेक प्रकार के सासारिक प्रलोभन देकर ललचाना चाहा। जब उनका कुछ भी असर न हुआ तो साधु-जीवन की कठोरता, भयकरता एव दुस्साध्यता का वर्णन किया। यह सब भी जब विफल हुआ तो माता-पिता समझ गए—'सूरदास की कारी कमरिया चढे न दूजो रग।'

आखिर माता-पिता ने अनमने भाव से एक दिन के लिए राज्यासीन होने का आग्रह किया, जिसे मेघ ने मौनभाव से स्वीकार कर लिया। बडे ठाठ-बाट से राज्याभिषेक हुआ। राजकुमार मेघ अब सम्राट् मेघ बन गए। मगर उनका सकल्प कब बदलने वाला था! तत्काल ही उन्होंने सयम ग्रहण करने की अभिलाषा व्यक्त की और उपकरणों की माग की। एक लाख स्वर्ण-मोहरों से पात्र एव एक लाख से वस्त्र खरीदे गए। एक लाख मोहरें देकर शिरोमुडन के लिए नाई बुलवाया गया। बडे ऐश्वर्य के साथ दीक्षा हो गई। सम्राट् ने स्वेच्छापूर्वक भिक्षुक-जीवन अगीकार कर लिया। इस प्रकार की महान् क्रान्ति करने का सामर्थ्य निर्फ धर्म में ही है। ससार के अन्य किसी पदार्थ में नहीं।

'समय गोयम! मा पमायए' सूत्र अत्यन्त सारपूर्ण है। जीवन का तलस्पर्शी और व्यापक अनुभव इसमें समाया है। मनुष्य एक क्षण के लिए असावधान होता है—गफलत में पडता है कि अन्तरतर में छिप-दबे विकार आक्रमण कर बैठते हैं। बडी से बडी ऊचाई पर से उसे नीचे गिरा देते हैं। मेघमुनि के जीवन में कुछ ऐसा ही घटित हुआ।

दीक्षा की पहली रात थी। ज्येष्ठानुक्रम बड़े-छोटे के क्रम से संस्तारक (बिछौने) बिछाये गये। मेघमुनि उस समय सब से छोटे थे। उनका बिस्तर द्वार के पास लगा, जहाँ से मुनियों का आवागमन था। आते-जाते मुनियों के पैरों की धूल उनके शरीर पर गिरती, कभी पैरों की टक्कर लगती। फूलों की सेज पर सोने वाले मेघमुनि को ऐसी स्थिति में निद्रा कैसे आती? बड़े कष्ट में वह रात व्यतीत हुई, मगर उन्होंने प्रातः ही उपाश्रय छोड़कर वापिस राजभवन में लौट जाने का विचार कर लिया। अलबत्ता भगवान् महावीर की अनुमति लेकर ही ऐसा करने का निश्चय किया। प्रातःकाल जब वे अनुमति लेने भगवान् के निकट पहुँचे तो अन्तर्यामी भगवान् ने उनके मनोभाव को पहले ही प्रकट कर दिया। साथ ही पूर्व के हाथी के भवों में सहन की गई घोरातिघोर व्यथाओं का विस्तृत वर्णन सुनाया। कहा— 'अब तुम इतना सा कष्ट भी सहन नहीं कर सकते?'

भगवान् के वचन सुनते ही मेघमुनि को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। वे स्पष्ट रूप से अपने पूर्वभवों को देखने-जानने लगे। अपनी स्खलना-दुर्बलता के लिए पश्चात्ताप करने लगे। बोले —'भंते! आज से दो नेत्र छोड़कर यह समग्र शरीर श्रमण निर्ग्रन्थों की सेवा के लिए समर्पित है।

मेघमुनि ने पुनः दीक्षा अंगीकार करके अपनी स्खलना के लिए प्रायश्चित्त किया। ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। भिक्षु-प्रतिमाएँ अंगीकार कीं, गुणरत्नसंवत्सर तप आराधन किया। इन तपश्चर्याओं से उनका शरीर निर्बल हो गया, किन्तु आत्मा अतिशय बलशाली बन गई। अन्त में समाधिपूर्वक शरीर त्याग कर वे विजय नामक अनुत्तर विमान में देव के रूप में जन्मे। वहाँ से च्यवन कर मनुष्य भव धारण करके अन्त में कैवल्य प्राप्त करके वे शाश्वत सुख - मुक्ति के भागी होंगे। विस्तार से जानने के लिए पाठक इस अध्ययन का स्वयं अध्ययन करें।

पढमं अज्झयणं : उक्खित्तणाए

आरम्भ—

१—तेण कालेण तेण समएण चम्पा नाम नयरी होत्था, वण्णओ[1]।

उस काल मे अर्थात् इस अवसर्पिणी काल के चौथे आरे मे और उस समय मे अर्थात् कूणिक राजा के समय मे चम्पा नामक नगरी थी। उसका वर्णन उववाईसूत्र के अनुसार जान लेना चाहिए।

२—तीसे ण चम्पाए णयरीए बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए पुण्णभद्दे नाम चेइए होत्था, वण्णओ[2]।

उस चम्पा नगरी के बाहर, उत्तरपूर्व दिक्-कोण मे अर्थात् ईशानभाग मे, पूर्णभद्र नामक चैत्य था। उसका भी वर्णन उववाईसूत्र के अनुसार जान लेना चाहिए।

३—तत्थ ण चम्पाए णयरीए कोणिओ नाम राया होत्था, वण्णओ[3]।

चम्पा नगरी मे कूणिका नामक राजा था। उसका भी वर्णन उववाईसूत्र से जान लेना चाहिए।

आर्य सुधर्मा

४—तेण कालेण तेण समएण समणस्स भगवओ महावीरस्स अतेवासी अज्जसुहम्मे नाम थेरे जाइसपन्ने, कुलसपन्ने, बल-रूव-विणय-णाण-दसण-चरित्त-लाघव-सपन्ने ओयसी, तेयसी वच्चसी जससी, जियकोहे, जियमाणे, जियमाए, जियलोहे, जियइदिए, जियनिद्दे, जियपरिसहे, जीवियास-मरण-भयविप्पमुक्के, तवप्पहाणे, गुणप्पहाणे, एव करण-चरण-निग्गह-णिच्छय अज्जव-मद्दव-लाघव-खति-गुत्ति-मुत्ति-विज्जा-मत-बभ-वेय-नय-नियम-सच्च-सोय-णाण-दसण-चरित्तप्पहाणे, ओराले, घोरे, घोरव्वए घोरतवस्सी, घोरबभचेरवासी, उच्छूढसरीरे, सखित्त-विउलतेउलेस्से, चोद्दसपुव्वी, चउनाणोवगए, पचहिं अणगारसएहिं सद्धि सपरिवुडे पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे, गामाणुगाम दूइज्जमाणे, सुहसुहेण विहरमाणे, जेणेव चम्पा नयरी, जेणेव पुण्णभद्दे चेइए, तेणामेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता अहापडिरूव उग्गह ओगिण्हइ, ओगिण्हित्ता सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरति।

उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर के शिष्य आर्य सुधर्मानामक स्थविर थे। वे जातिसम्पन्न—उत्तम मातृपक्ष वाले थे, कुलसम्पन्न—उत्तम पितृपक्ष वाले थे, उत्तम सहनन से उत्पन्न बल से युक्त थे, अनुत्तर विमानवासी देवो की अपेक्षा भी अधिक रूपवान् थे, विनयवान, चार ज्ञानवान् क्षायिक सम्यक्त्ववान्, लाघववान् (द्रव्य से अल्प उपधि वाले और भाव से ऋद्धि, रस एव साता रूप तीन गौरवो से रहित) थे, ओजस्वी अर्थात् मानसिक तेज से सम्पन्न या चढते परिणाम वाले, तेजस्वी अर्थात् शारीरिक कान्ति से देदीप्यमान, वचस्वी—सगुण वचन वाले, यशस्वी, क्रोध को जीतने वाले,

१ औपपातिक सूत्र १, २ औप० सूत्र २, ३ औप० सूत्र ६

मान को जीतने वाले, माया को जीतने वाले, लोभ को जीतने वाले, पाँचों इन्द्रियों को जीतने वाले, निद्रा को जीतने वाले, परीषहों को जीतने वाले, जीवित रहने की कामना और मृत्यु के भय से रहित, तपप्रधान अर्थात् अन्य मुनियों की अपेक्षा अधिक तप करने वाले या उत्कृष्ट तप करने वाले, गुणप्रधान अर्थात् गुणों के कारण उत्कृष्ट या उत्कृष्ट संयम-गुण वाले, करणप्रधान—पिण्डविशुद्धि आदि करणसत्तरी में प्रधान, चरणप्रधान—महाव्रत आदि चरणसत्तरी में प्रधान, निग्रहप्रधान—अनाचार में प्रवृत्ति न करने के कारण उत्तम, तत्त्व का निश्चय करने में प्रधान, इसी प्रकार आर्जवप्रधान, मार्दवप्रधान, लाघवप्रधान, अर्थात् क्रिया करने के कौशल में प्रधान, क्षमाप्रधान, गुप्तिप्रधान, मुक्ति (निर्लोभता) में प्रधान, देवता-अधिष्ठित प्रज्ञप्ति आदि विद्याओं में प्रधान, मंत्रप्रधान अर्थात् हरिणगमेषी आदि देवों से अधिष्ठित विद्याओं में प्रधान, ब्रह्मचर्य अथवा समस्त कुशल अनुष्ठानों में प्रधान, वेदप्रधान अर्थात् लौकिक एवं लोकोत्तर आगमों में निष्णात, नयप्रधान, नियमप्रधान—भाँति-भाँति के अभिग्रह धारण करने में कुशल, सत्यप्रधान, शौचप्रधान, ज्ञानप्रधान, दर्शनप्रधान, चारित्रप्रधान, उदार अर्थात् इतनी उग्र तपश्चर्या में समीपवर्ती अल्पसत्त्व वाले मनुष्यों को भय उत्पन्न करने वाले, घोर अर्थात् परीषह, इन्द्रियों और कषायों आदि आन्तरिक शत्रुओं का निग्रह करने में कठोर, घोरव्रती अर्थात् महाव्रतों का आदर्श रूप से पालन करने वाले, घोर तपस्वी, उत्कृष्ट ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले, शरीर संस्कार के त्यागी, विपुल तेजोलेश्या को अपने शरीर में ही समाविष्ट करके रखने वाले, चौदह पूर्वों के ज्ञाता, चार ज्ञानों के धनी, पाँच सौ साधुओं से परिवृत, अनुक्रम से चलते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम में विचरण करते हुए, सुखे-सुखे विहार करते हुए, जहाँ चम्पा नगरी थी और जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था, उसी जगह आये। आकर यथोचित अवग्रह को ग्रहण किया, अर्थात् उपाश्रय की याचना करके उसमें स्थित हुए। अवग्रह को ग्रहण करके संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

५—तए णं चंपाए नयरीए परिसा निग्गया। कोणिओ निग्गओ। धम्मो कहिओ। परिसा जामेव दिसं पाउब्भूया, तामेव दिसिं पडिगया।

तत्पश्चात् चम्पा नगरी से परिषद् (जनसमूह) निकली। कूणिक राजा भी (वन्दना करने के लिए) निकला। सुधर्मा स्वामी ने धर्म का उपदेश दिया। उपदेश सुनकर परिषद् जिस दिशा से आई थी, उसी दिशा में लौट गई।

जम्बूस्वामी

६—तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जसुहम्मस्स अणगारस्स जेट्ठे अंतेवासी अज्जजंबूनामं अणगारे कासवगोत्तेणं सत्तुस्सेहे जाव [समचउरंस-संठाण-संठिए, वइररिसहनारायसंघयणे, कणग-पुलग-निघस-पम्हगोरे, उग्गतवे, दित्ततवे, तत्ततवे, महातवे, उराले, घोरे, घोरगुणे, घोरतवस्सी, घोरबंभचेरवासी, उच्छूढसरीरे, संखित्त-विउलतेउलेस्से] अज्जसुहम्मस्स थेरस्स अदूरसामंते उड्ढंजाणू अहोसिरे झाणकोट्ठोवगए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरति।

उस काल और उस समय में आर्य सुधर्मा अनगार के ज्येष्ठ शिष्य आर्य जम्बू नामक अनगार थे, जो काश्यप गोत्रीय और सात हाथ ऊँचे शरीर वाले, [समचौरस संस्थान तथा वज्र-ऋषभ-नाराच संहनन वाले थे। कसौटी पर खींची हुई स्वर्ण-रेखा के समान तथा कमल के गर्भ के समान गौरवर्ण थे। उग्र तपस्वी, कर्मों को भस्म करने के लिए अग्नि के समान दीप्त तप वाले थे, तप्ततपस्वी-तपों

आत्मा को तपोमय बनाने वाले, महातपस्वी—प्रशस्त और दीर्घ तप वाले, उदार-प्रधान, घोर-कषायादि शत्रुओ के उन्मूलन मे कठोर, घोरगुण—दूसरो के लिए दुरनुचर मूलोत्तर गुणो से सम्पन्न, उग्रतपस्वी, अन्यो के लिए कठिन ब्रह्मचर्य मे लीन, शारीरिक सस्कारो का त्याग करने वाले—शरीर के प्रति सर्वथा ममत्वहीन, सैकडो योजनो मे स्थित वस्तु को भस्म कर देने वाली विस्तीर्ण तेजोलेश्या को शरीर मे ही लीन रखने वाले - [विपुल तेजोलेश्या का प्रयोग न करने वाले] आर्य सुधर्मा से न बहुत दूर, न बहुत समीप अर्थात् उचित स्थान पर, ऊपर घुटने और नीचा मस्तक रखकर ध्यानरूपी कोष्ठ मे स्थित होकर सयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे ।

जम्बूस्वामी की जिज्ञासा

७—तए ण से अज्जजबूणामे अणगारे जायसड्ढे, जायससए, जायकोउहल्ले, सजातसड्ढे, सजातससए, सजातकोउहल्ले, उप्पन्नसड्ढे, उप्पन्नससए, उप्पन्नकोउहल्ले, समुप्पन्नसड्ढे, समुप्पन्नससए, समुप्पन्नकोउहल्ले उट्ठाए उट्ठेति । उट्ठाए उट्ठित्ता जेणामेव अज्जसुहम्मे थेरे तेणामेव उवागच्छति । उवागच्छित्ता अज्जसुहम्मे थेरे तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ । करेत्ता वदति नमसति, वदित्ता नमसित्ता अज्जसुहम्मस्स थेरस्स णच्चासन्ने नातिदूरे सुस्सूसमाणे णमसमाणे अभिमुह पजलिउडे विणएण पज्जुवासमाणे एव वयासी ।

तत्पश्चात् आर्य जम्बू नामक अनगार को तत्त्व के विषय मे श्रद्धा (जिज्ञासा) हुई, सशय हुआ, कुतूहल हुआ, विशेषरूप से श्रद्धा हुई, विशेष रूप से सशय हुआ और विशेष रूप से कुतूहल हुआ । श्रद्धा उत्पन्न हुई, सशय उत्पन्न हुआ और कुतूहल उत्पन्न हुआ । विशेषरूप से श्रद्धा उत्पन्न हुई, विशेष रूप से सशय उत्पन्न हुआ और विशेष रूप से कुतूहल हुआ । तब वह उत्थान करके उठ खडे हुए और उठ करके जहा आर्य सुधर्मा स्थविर थे, वही आये । आकर आर्य सुधर्मा स्थविर की तीन वार दक्षिण दिशा से आरम्भ करके प्रदक्षिणा की । प्रदक्षिणा करके वाणी से स्तुति की और काया से नमस्कार किया । स्तुति और नमस्कार करके आर्य सुधर्मा स्थविर से न बहुत दूर और न बहुत समीप—उचित स्थान पर स्थित होकर, सुनने की इच्छा करते हुए सन्मुख दोनो हाथ जोडकर विनयपूर्वक पयु पासना करते हुए इस प्रकार बोले —

विवेचन—श्रद्धा का अर्थ यहाँ इच्छा है । जम्बूस्वामी को तत्त्व जानने की इच्छा हुई, क्योंकि श्री वर्धमान स्वामी ने जैसे पाँचवें अङ्ग का अर्थ कहा है, उसी प्रकार छठे अङ्ग का अर्थ कहा है या नही ? इस प्रकार का सशय उत्पन्न हुआ । सशय उत्पन्न होने का कारण यह था कि 'पचम अङ्ग मे समस्त पदार्थों का स्वरूप बतला दिया गया है तो फिर छठे अङ्ग मे क्या होगा ?' इस प्रकार का कुतूहल हुआ । इस प्रकार श्रद्धा, सशय और कुतूहल मे कार्यकारण-भाव है । अर्थात् कुतूहल से सशय का जन्म हुआ और सशय ने श्रद्धा—जानने की इच्छा उत्पन्न हुई ।

जात का अर्थ सामान्य रूप से होना, सजात का अर्थ विशेष रूप से होना उत्पन्न का अर्थ सामान्य रूप से उत्पन्न होना और समुत्पन्न का अर्थ विशेष रूप से उत्पन्न होना है ।

८—जइ ण भते ! समणेण भगवया महावीरेण, आइगरेण, तित्थयरेण, सयसबुद्धेण,
पुरिसुत्तमेण, पुरिससीहेण, पुरिसवरपु डरीएण, पुरिसवर- गधहत्थिणा,
लोगुत्तमेण लोगनाहेण, लोगहिएण, लोगपईवेण, लोग-पज्जोयगरेण,

अभयदएण, सरणदएण, चक्खुदएण, मग्गदएण, बोहिदएण, धम्मदएण,
धम्मदेसएणं, धम्मनायगेण, धम्मसारहिणा, धम्मवरचाउरन्तचक्कवट्टिणा,

अप्पडिहयवरनाणदंसणधरेण, वियट्टछउमेण, जिणेण, जावएण¹ तिन्नेणं, तारएणं, बुद्धेण, मोयगेण, मुत्तेण, बोहएण, सव्वन्नूण, सव्वदरिसीण सिवमयलमरुयमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्तिसिद्धिगइनामधेयं ठाणमुवगएणं, पंचमस्स अंगस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, छट्ठस्स णं भंते! अंगस्स णायाधम्मकहाणं के अट्ठे पण्णत्ते?

श्री जम्बूस्वामी ने श्री सुधर्मास्वामी से प्रश्न किया—भगवन्! यदि श्रुतधर्म की आदि करने वाले, गुरुपदेश के बिना स्वयं ही बोध को प्राप्त, पुरुषों में उत्तम, कर्म-शत्रु का विनाश करने में पराक्रमी होने के कारण पुरुषों में सिंह के समान, पुरुषों में श्रेष्ठ कमल के समान, पुरुषों में गंधहस्ती के समान, अर्थात् जैसे गंधहस्ती की गंध से ही अन्य हस्ती भाग जाते हैं, उसी प्रकार जिनके पुण्य-प्रभाव से ही ईति, भीति आदि का विनाश हो जाता है, लोक में उत्तम, लोक के नाथ, लोक का हित करने वाले, लोक में प्रदीप के समान, लोक में विशेष उद्योत करने वाले, अभय देने वाले, शरणदाता, श्रद्धारूप नेत्र के दाता, धर्ममार्ग के दाता, बोधिदाता, देशविरति और सर्वविरति रूप धर्म के दाता, धर्म के उपदेशक, धर्म के नायक, धर्म के सारथी, चारों गतियों का अन्त करने वाले धर्म के चक्रवर्ती अथवा सम्पूर्ण भरतक्षेत्र में धर्म सम्बन्धी चक्रवर्ती—सर्वोत्कृष्ट, कहीं भी प्रतिहत न होने वाले केवलज्ञान-दर्शन के धारक, घातिकर्म रूप छद्म के नाशक, रागादि को जीतने वाले और उपदेश द्वारा अन्य प्राणियों को जिताने वाले, संसार सागर से स्वयं तिरे हुए और दूसरों को तारने वाले, स्वयं कर्मबन्धन से मुक्त और उपदेश द्वारा दूसरों को मुक्त करने वाले, स्वयं बोध-प्राप्त और दूसरों को बोध देने वाले, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, शिव—उपद्रवरहित, अचल—चलन आदि क्रिया से रहित, अरुज—शारीरिक व्याधि की वेदना से रहित, अनन्त, अक्षय, अव्याबाध और अपुनरावृत्ति—पुनरागमन से रहित सिद्धिगति नामक शाश्वत स्थान को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने पांचवें अंग का यह (आपने कहा) अर्थ कहा है, तो भगवन्! छठे अंग ज्ञाताधर्मकथा का क्या अर्थ कहा है?

सुधर्मास्वामी का समाधान

९—जंबु त्ति, तए णं अज्जसुहम्मे थेरे अज्जजंबूणामं अणगारं एवं वयासी—एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव¹ संपत्तेणं छट्ठस्स अंगस्स दो सुयक्खंधा पण्णत्ता, तंजहा—णायाणि य धम्मकहाओ य।

'हे जम्बू!' इस प्रकार सम्बोधन करके आर्य सुधर्मा स्थविर ने आर्य जम्बू नामक अनगार से इस प्रकार कहा—जम्बू! यावत् सिद्धिस्थान को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने छठे अंग (ज्ञाताधर्मकथा) के दो श्रुतस्कन्ध प्रज्ञप्त किये हैं। वे इस प्रकार हैं—ज्ञात (उदाहरण) और धर्मकथा।

१०—जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं छट्ठस्स अंगस्स दो सुयक्खंधा पण्णत्ता, तंजहा—णायाणि य धम्मकहाओ य, पढमस्स णं भंते! सुयक्खंधस्स समणेणं जाव² संपत्तेणं णायाणं कइ अज्झयणा पण्णत्ता?

१. [illegible] (...)   २. [illegible]

जम्बूस्वामी पुन प्रश्न करते हैं—भगवन्! यदि यावत् सिद्धिस्थान को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने छठे अग के दो श्रुतस्कन्ध प्ररूपित किये हैं—ज्ञात और धर्मकथा, तो भगवन्! ज्ञात नामक प्रथम श्रुतस्कन्ध के यावत सिद्धिस्थान को प्राप्त श्रमण भगवान् ने कितने अध्ययन कहे हैं?

११—एव खलु जबू! समणेण जाव[1] सपत्तेण णायाण एगूणवीस अज्झयणा पण्णत्ता, तजहा—

उक्खित्तणाए, सघाडे, अडे कुम्मे य, सेलगे।
तु बे य, रोहिणी, मल्ली, माइदी, चदिमाइ य॥ १॥
दावद्दवे, उदगणाए, मडुक्के, तेयली, वि य।
णदिफले, अमरकका, आइण्णे, सुसमाइ य॥ २॥
अवरे य पु डरीए, णामा एगूणवीसइमे।

हे जम्बू! यावत् सिद्धिस्थान को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने ज्ञात नामक श्रुतस्कन्ध के उन्नीस अध्ययन कहे है। वे इस प्रकार हैं—

(१) उत्क्षिप्तज्ञात (२) सघाट (३) अडक (४) कूम (५) शैलक (६) रोहिणी (७) मल्ली (८) माकदी (९) चन्द्र (१०) दावद्रववृक्ष (११) तुम्ब (१२) उदक (१३) मडूक (१४) तेतलीपुत्र (१५) नन्दीफल (१६) अमरकका (द्रौपदी) (१७) आकीण (१८) सुषमा (१९) पुण्डरीक-कुण्डरीक, यह उन्नीस ज्ञात अध्ययनो के नाम है।

१२—जइ ण भते! समणेण जाव[1] सपत्तेण णायाण एगूणवीस अज्झयणा पण्णत्ता, तजहा—उक्खित्तणाए जाव पु डरीए य, पढमस्स ण भते! अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

भगवन्! यदि श्रमण यावत् सिद्धिस्थान को प्राप्त भगवान् महावीर ने ज्ञात-श्रुतस्कन्ध के उन्नीस अध्ययन कहे हैं, यथा—उत्क्षिप्तज्ञात यावत् पुण्डरीक, तो भगवन्! प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है?

१३—एव खलु जबू! तेण कालेण तेण समएण इहेव जबुद्दीवे, भारहे वासे, दाहिणड्ढभरहे, रायगिहे णाम णयरे होत्था, वण्णओ[2]। गुणसीले चेइए वण्णओ[3]।

हे जम्बू! उस काल और उस समय मे, इसी जम्बूद्वीप मे, भारतवर्ष मे, दक्षिणार्ध भरत में राजगृह नामक नगर था। उसका वर्णन उववाईसूत्र मे वर्णित चम्पा नगरी के समान जान लेना चाहिए। राजगृह के ईशान कोण मे गुणशील नामक उद्यान था। उसका वर्णन भी औपपातिकसूत्र मे जान लेना चाहिए।

१४—तत्थ ण रायगिहे णयरे सेणिए णाम राया होत्था महया हिमवत० वण्णओ[4]। तस्स ण सेणियस्स रण्णो णदा णाम देवी होत्था सुकुमालपाणिपाया वण्णओ[5]।

उस राजगृह नगर मे श्रेणिक नामक राजा था। वह महाहिमवत पर्वत के समान था, इत्यादि वर्णन औपपातिक सूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिए। उस श्रेणिक राजा की नन्दा नामक देवी थी। वह सुकुमार हाथों-पैरों वाली थी, इत्यादि वर्णन औपपातिक सूत्र मे जान लेना चाहिए।

---

१ सूत्र ८, २ औप सूत्र १, ३ औप सूत्र २, ४ औप सूत्र ६ ५ औप सूत्र ७

अभयकुमार

१५—तस्स णं सेणियस्स पुत्ते णंदादेवीए अत्तए अभए णामं कुमारे होत्था, अहीण जाव [अहीण-पडिपुण्ण-पंचिंदियसरीरे लक्खण-वंजण-गुणोववेए माणुम्माण-पमाण-पडिपुण्ण-सुजाय-सव्वंग-सुंदरंगे, ससिसोमाकारे कंते पियदंसणे सुरूवे, साम-दंड-भेय-उवप्पयाण-णीति-सुप्पउत्त-नय-विहिण्णू, ईहापोह-मग्गण-गवेसण-अत्थसत्थमई, विसारए, उप्पत्तियाए, वेणइयाए, कम्मयाए, पारिणामियाए, चउव्विहाए बुद्धीए उववेए, सेणियस्स रण्णो बहुसु कज्जेसु य, कुडुंबेसु य, मंतेसु य, गुज्झेसु य, रहस्सेसु य, निच्छएसु य, आपुच्छणिज्जे, पडिपुच्छणिज्जे, मेढी, पमाणं, आहारे, आलंबणभूए, पमाणभूए, आहारभूए, चक्खुभूए, सव्वकज्जेसु य, सव्वभूमियासु य लद्धपच्चए, विइण्णवियारे, रज्जधुरचिंतए यावि होत्था] सेणियस्स रण्णो रज्जं च, रट्ठं च, कोसं च, कोट्ठागारं च, बलं च, वाहणं च, पुरं च, अंतेउरं च सयमेव समुपेक्खमाणे-समुपेक्खमाणे विहरइ।

श्रेणिक राजा का पुत्र और नन्दा देवी का आत्मज अभय नामक कुमार था। वह शुभ लक्षणों से युक्त तथा स्वरूप से परिपूर्ण पांचों इन्द्रियों से युक्त शरीर वाला था। यावत् (स्वस्तिक चक्र आदि लक्षणों एवं तिलक आदि व्यंजनों के गुणों से युक्त था। मान-उन्मान और प्रमाण से परिपूर्ण तथा सुन्दर सर्वांगों से सुशोभित था। चन्द्रमा के समान सौम्य तथा कमनीय था। देखने वालों को उसका रूप प्रियंकर लगता था। वह सुरूप था। साम, दाम, भेद एवं उपप्रदान नीति में निष्णात तथा व्यापार नीति की विधि का ज्ञाता था। ईहा, अपोह, मार्गणा, गवेषणा तथा अर्थशास्त्र में कुशल था। औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कार्मिकी तथा पारिणामिकी, इन चार प्रकार की बुद्धियों से युक्त था। वह श्रेणिक राजा के लिए बहुत-से कार्यों में, कौटुम्बिक कार्यों में, मन्त्रणा में, गुह्य कार्यों में, रहस्यमय मामलों में, निश्चय करने में, एक बार और बार-बार पूछने योग्य था, अर्थात् श्रेणिक राजा इन सब विषयों में अभयकुमार की सलाह लिया करता था। वह सब के लिए मेढी (खलिहान के बीच में गाड़ा हुआ स्तंभ, जिसके चारों ओर घूम-घूम कर बैल धान्य को कुचलते हैं) के समान था, पृथ्वी के समान आधार था, रस्सी के समान आलम्बन रूप था, प्रमाणभूत था, आधारभूत था, चक्षुभूत था, सब और सब स्थानों में प्रतिष्ठा प्राप्त करने वाला था। सब को विचार देने वाला था तथा राज्य की धुरा को धारण करने वाला था। वह स्वयं ही राज्य (शासन) राष्ट्र (देश) कोश, कोठार (अन्नभंडार) बल (सेना) और वाहन—(सवारी के योग्य हाथी अश्व आदि) पुर (नगर) और अन्तःपुर की देखभाल करता रहता था।

विवेचन—पानी का एक कुंड लबालब भरा हुआ हो और उसमें पुरुष को बिठाने पर एक द्रोण (प्राचीन माप) पानी बाहर निकले तो वह पुरुष मान-युक्त कहलाता है। तराजू पर तोलने पर यदि वह [illegible] भार प्रमाण हो तो वह उन्मान-युक्त कहलाता है। अपने अंगुल से एक सौ आठ अंगुल ऊँचा हो तो वह प्रमाण-युक्त कहलाता है।

अभयकुमार जहाँ शरीरसौष्ठव से सम्पन्न था वहीं अतिशय बुद्धिशाली भी था। उसे चार प्रकार की बुद्धियों से युक्त कहा गया है। चार प्रकार की बुद्धियों का स्वरूप इस प्रकार है—

(१) औत्पत्तिकी बुद्धि—[illegible]। पूर्व में कभी नहीं देखे, नहीं सुने [illegible] किसी विषय को तत्काल ग्रहण [illegible], कोई विषम समस्या उपस्थित होने पर [illegible]

उसका समाधान खोज लेने वाली बुद्धि ।

(२) वैनयिकी—विनय से प्राप्त होने वाली बुद्धि ।

(३) कर्मजा—कोई भी कार्य करते-करते, चिरकालीन अभ्यास से जो दक्षता प्राप्त होती है वह कर्मजा, कार्मिकी अथवा कर्मसमुत्था बुद्धि कही जाती है ।

(४) पारिणामिकी—उम्र के परिपाक से—जीवन के विभिन्न अनुभवो से प्राप्त होने वाली बुद्धि ।

मतिज्ञान मूल मे दो प्रकार का है—श्रुतनिश्रित और अश्रुतनिश्रित । जो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान के पूर्वकालिक सस्कार के आधार से निमित्त से उत्पन्न होता है किन्तु वर्त्तमान मे श्रुतनिरपेक्ष होता है, वह श्रुतनिश्रित कहा जाता है । जिसमे श्रुतज्ञान के सस्कार की तनिक भी अपेक्षा नही रहती वह अश्रुतनिश्रित मतिज्ञान कहलाता है । उल्लिखित चारो प्रकार की बुद्धिया इसी विभाग के अन्तर्गत हैं । चारो बुद्धियो को सोदाहरण विस्तृत रूप से समझने के लिए नन्दीसूत्र देखना चाहिए ।

महारानी धारिणी

१६—तस्स ण सेणियस्स रण्णो धारिणीणाम देवी होत्था सुकुमालपाणि-पाया अहीणपंचिदियसरीरा लक्खण वजण-गुणोववेया माणुम्माण-प्पमाण सुजाय-सव्वगसु दरगी ससिसोमाकार-कत पियदसणा सुरूवा करयल- परिमित-तिवलिय-वलियमज्झा कोमुइ-रयणियर-विमल-पडिपुण्ण-सोमवयणा कु डलुल्लिहिय गडलेहा, सिंगारागार-चारुवेसा सगय-गय-हसिय-भणिय विहिय-विलास-सललिय-सलाव निउण-जुत्तोवयारकुसला पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा सेणियस्स रण्णो इट्ठा जाव [कता पिया मणुण्णा मणामा धेज्जा वेसासिया सम्मया वहुमया अणुमया भडकरडगसमाणतेल्लकेला इव सुसगोविया चेलपेडा इव सुसपरिगिहीया रयणकरडगो विव सुसारक्खिया, मा ण सीय, मा ण उण्ह, मा ण दसा, मा ण मसगा मा ण वाला, मा ण चोरा, मा ण वाइय-पित्तिय-सिंभिय-सन्निवाइय-विविहा रोगायका फुसतु त्ति कटटु सेणिएण रण्णा सद्धि विउलाइ भोगभोगाइ पच्चणुभवमाणी विहरइ ।

उस श्रेणिक राजा की धारिणी नामक देवी (रानी) थी । उसके हाथ और पैर वहुत सुकुमार थे । उसके शरीर मे पांचो इन्द्रियाँ अहीन, शुभ लक्षणो से सम्पन्न और प्रमाणयुक्त थी । वह शख-चक्र आदि शुभ लक्षणो तथा मसा-तिल आदि व्यजनो के गुणो से अथवा लक्षणो, व्यजनो और गुणो से युक्त थी, माप तोल और नाप से वरावर थी । उसके सभी अंग सुन्दर थे, चन्द्रमा के सदृश सौम्य आकृति वाली, कमनीय, प्रियदर्शना और सुरूपवती थी । उसका मध्यभाग इतना पतला था कि मुट्ठी मे आ सकता था, प्रशस्त त्रिवली से युक्त था और उसमे वलि पडे हुए थे । उसका मुख-मडल कार्तिकी पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान निर्मल, परिपूर्ण और सौम्य था । उसकी गडलेखा-कपोत-पत्रवल्ली कु डलों से शोभित थी, उसका सुशोभन वेष शृ गाररस का स्थान-सा प्रतीत होता था, उसकी चाल, हास्य, भाषण, शारीरिक और नेत्रो की चेष्टाए—सभी कुछ सगत था । वह पारस्परिक वार्तालाप करने मे भी निपुण थी । दर्शक के चित्त मे प्रसन्नता उत्पन्न करने वाली, दर्शनीय, रूपवती और अतीव रूपवती थी । वह श्रेणिक राजा की वल्लभा थी, यावत् [कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, अतीव मनोहर, धैर्य का स्थान, विश्वासपात्र, सम्मत, बहुमत, अनुमत अर्थात् अतीव मान्य, आभूषणो तथा वस्त्रो के पिटारे के समान,

यत्नपूर्वक सुरक्षित, प्रतिस्थान में रखा। सार-सम्भालपूर्वक सुरक्षित, उसको देवों के समान रखती हुई इस गर्भ को सर्दी न लग जाए, गर्मी न लग जाए, काम-वासना अत्यन्त न बढ़ जाए, भय न लग जाए, वात-पित्त-कफ अथवा सन्निपात जनित विविध प्रकार के रोग या आतंक उत्पन्न होने वाले या मानसिक रोग न हो जाए, इस प्रकार की सावधानी से सार सम्भाल की जाती हुई वह महारानी धारिणी श्रेणिक राजा के साथ विपुल भोगों का उपभोग करती हुई सुख भोगती हुई रहती थी।

धारिणी का स्वप्नदर्शन

१७ तए णं सा धारिणी देवी अन्नया कयाइ तंसि तारिसगंसि छक्कट्ठग-लट्ठमट्ठसंठिय-खंभुग्गय-पवरवरसालभंजिय-उज्जलमणिकणगरयण—थूभिय विडंकजालद्धचंदनिज्जूहंतरकणयालिचंदसालिया-विभत्तिकलिए, सरसच्छधाऊवलवण्णरइए, बाहिरओ दूमियघट्ठमट्ठे, अब्भिंतरओ पसत्त-सुविलिहियचित्तकम्मे, णाणाविहपंचवण्णमणिरयणकोट्टिमतले, पउमलया-फुल्लवल्लि-वरपुप्फजाइ-उल्लोयचित्तियतले, वंदणवरकणगकलस सुविणिम्मियपडिपूजियसरसपउमसोहंतदारभाए, पयरगलंबंतमणिमुत्तदाम-सुविरइयदारसोहे, सुगंध-वरकुसुम-मउयपम्हलसयणोवयारे, मणहिययनिव्वुइयरे, कप्पूर-लवंग-मलय-चंदण-कालागुरु-पवरकुंदुरुक्क-तुरुक्क-धूवडज्झंतसुरभिमघमघंतगंधुद्धयाभिरामे, सुगंधवरगंधिए गंध-वट्टिभूए, मणिकिरणपणासियंधयारे, किं बहुना? जुइगुणेहिं सुरवरविमाणवेलंबियवरघरए,

तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि, सालिंगणवट्टिए उभओ बिब्बोयणे, दुहओ उण्णए, मज्झेणय गंभीरे, गंगापुलिणवालुयाउद्दालसालिसए, ओयवियखोमियदुगुल्लपट्टपडिच्छन्ने, अत्थरय-मलय-नवतय-कुसत्त-लिंब-सीहकेसरपच्चुत्थए, सुविरइयरयत्ताणे, रत्तंसुयसंवुए, सुरम्मे, आइणग-रूय-बूर-नवणीय-तूलफासे,

पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि सुत्त-जागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी एगं महं सत्तुस्सेह-रययकूडसन्निहं, नहयलंसि सोमं सोमाकारं लीलायंतं जंभायमाणं मुहमइगयं गयं पासित्ता णं पडिबुद्धा।

वह धारिणी देवी किसी समय अपने उत्तम भवन में शय्या पर सो रही थी। वह भवन कैसा था? उसके बाहरी आलिन्दक या द्वार पर तथा मनोज्ञ, चिकने, सुन्दर आकार वाले और ऊँचे खम्भों पर अतीव उत्तम पुतलियाँ बनी हुई थीं। उज्ज्वल मणियों, कनक और कर्केतन आदि रत्नों के शिखर, कपोत-पाली, गवाक्ष, अर्ध चन्द्राकार सोपान, निर्यूहक (द्वार के दोनों ओर निकले हुए काष्ठ) अन्तर या निर्यूहकों के बीच का भाग, कनकालि तथा चन्द्रमालिका (घर के ऊपर की शाला) आदि घर के विभागों की सुन्दर रचना से युक्त था। स्वच्छ गेरु से उत्तम रंग का लिपा हुआ था। बाहर से उसमें सफेदी की गई थी, कोमल पाषाण से घिसाई की गई थी अतएव वह चिकना था। उसके भीतरी भाग में उत्तम और शुचि चित्रों का आलेखन किया गया था। उसका फर्श नाना प्रकार की पंचरंगी मणियों और रत्नों से जड़ा हुआ था। उसका ऊपरी भाग (छत) पद्म के से आकार की लताओं से, पुष्पप्रधान बेलों से तथा उत्तम पुष्पजाति मालती आदि से चित्रित था। उसके द्वार-भागों में चन्दन चर्चित, मांगलिक, घट सुन्दर ढंग से स्थापित किए हुए थे। वे सरस कमलों से सुशोभित थे, प्रतरक-स्वर्णमय आभूषणों से एवं मणियों तथा मोतियों की लम्बी लटकने वाली मालाओं से उसके द्वार सुशोभित हो रहे थे। उसमें सुगन्धित और श्रेष्ठ पुष्पों से कोमल और रूँएदार शय्या का उपचार किया गया था। वह मन एवं हृदय को आनन्दित करने वाला था। कपूर, लौंग, मलयज चन्दन, कृष्ण अगर, उत्तम कुन्दुरुक्क (चीड़ा), तुरुष्क (लोभान) और अनेक सुगन्धित द्रव्यों से बने धूप के

जलने से उत्पन्न हुई मघमघाती गध से रमणीय था। उसमे उत्तम चूर्णों की गध भी विद्यमान थी। सुगध की अधिकता के कारण वह गध-द्रव्य की वट्टी ही जैसा प्रतीत होता था। मणियो की किरणो के प्रकाश से वहा का अधकार गायब हो गया था। अधिक क्या कहा जाय? वह अपनी चमक-दमक से तथा गुणो से उत्तम देवविमान को भी पराजित करता था।

इस प्रकार के उत्तम भवन मे एक शय्या बिछी थी। उस पर शरीर-प्रमाण उपधान बिछा था। उसमे दोनो ओर—सिरहाने और पाँयते की जगह तकिए लगे थे। वह दोनो तरफ ऊँची और मध्य मे झुकी हुई थी—गभीर थी। जैसे गगा के किनारे की बालू मे पाव रखने से पाँव धँस जाता है, उसी प्रकार उसमे धँस जाता था। कसीदा काढे हुए क्षौमदुकूल का चद्दर बिछा हुआ था। वह आस्तरक, मलक, नवत, कुशक्त, लिम्ब और सिंहकेसर नामक आस्तरणों से आच्छादित था। जब उसका सेवन नही किया जाता था तब उसपर सुदर बना हुआ राजस्त्राण पडा रहता था—उस पर मसहरी लगी हुई थी, वह अति रमणीय थी। उसका स्पर्श आजिनक (चम का वस्त्र), रुई, बूर नामक वनस्पति और मक्खन के समान नरम था।

ऐसी सुन्दर शय्या पर मध्यरात्रि के समय धारिणी रानी, जब न गहरी नीद मे थी और न जाग ही रही थी, बल्कि बार-बार हल्की-सी नीद ले रही थी, ऊँघ रही थी, तब उसने एक महान्, सात हाथ ऊचा, रजतकूट-चादी के शिखर के सदृश श्वेत, सौम्य, सौम्याकृति, लीला करते हुए, जँभाई लेते हुए हाथी को आकाशतल से अपने मुख मे प्रवेश करते देखा। देखकर वह जाग गई।

स्वप्ननिवेदन

१८ तए ण सा धारिणी देवी अयमेयारूव उराल, कल्लाण सिव धन्न मगल्ल सस्सिरीय महासुमिण पासित्ता ण पडिबुद्धा समाणी हट्ठतुट्ठा चित्तमाणदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवसविसप्पमाणहियया धाराहयकलबपुप्फगपिव समुससियरोमकूवा त सुमिण ओगिण्हइ। ओगिण्हइत्ता सयणिज्जाओ उट्ठेति, उट्ठेइत्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहइत्ता अतुरियमचवलम-सभताए अविलबियाए रायहससरिसीए गईए जेणामेव से सेणिए राया तेणामेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता सेणिय राय ताहि इट्ठाहि कताहि, पियाहि मणुन्नाहि मणामाहि उरालाहि कल्याणाहि सिवाहि धन्नाहि मगल्लाहि सस्सिरियाहि, हिययगमणिज्जाहि, हिययपल्हायणिज्जाहि मिय-महुर-रिभिय-गभीर-सस्सिरीयाहि गिराहि सलवमाणी सलवमाणी पडिबोहेइ। पडिबोहेत्ता सेणिएण रन्ना अब्भणुन्नाया समाणी णाणामणि-कणग-रयण-भत्तिचित्त सि भद्दासणसि निसीयइ। निसीइत्ता आसत्था वीसत्था सुहासणवरगया करयलपरिग्गहिअ सिरसावत्त मत्थए अजलि कट्टु, सेणिय राय एव वयासी।

तत्पश्चात् वह धारिणी देवी इस प्रकार के इस स्वरूप वाले, उदार प्रधान, कल्याणकारी, शिव—उपद्रव का नाश करने वाले, धन्य—धन प्राप्ति कराने वाले, मागलिक—पाप विनाशक एव सुशोभित महास्वप्न को देखकर जागी। उसे हर्ष और सतोष हुआ। चित्त मे आनन्द हुआ। मन मे प्रीति उत्पन्न हुई। परम प्रसन्नता हुई। हर्ष के वशीभूत होकर उसका हृदय विकसित हो गया। मेघ की धाराओ का आघात पाए कदम्ब के फूल के समान उसे रोमाच हो आया। उसने स्वप्न का विचार किया। विचार करके शय्या से उठी और उठकर पादपीठ से नीचे उतरी। नीचे उतर मानसिक त्वरा से रहित, शारीरिक चपलता से रहित, स्खलना से रहित, विलम्ब-रहित राजहस जैसी गति से जहाँ श्रेणिक राजा था, वही आई। आकर श्रेणिक राजा को इष्ट, कान्त प्रिय, मनोज्ञ, मणाम (मन को

अतिशय प्रिय), उदार—श्रेष्ठ स्वर एवं उच्चार से युक्त, कल्याण—समृद्धिकारक, शिव—निर्दोष होने के कारण निरुपद्रव, धन्य, मंगलकारी, सश्रीक—अलंकारों से सुशोभित, हृदय को प्रिय लगने वाली, हृदय को आह्लाद उत्पन्न करने वाली, परिमित अक्षरों वाली, मधुर-स्वरों से मीठी, रिभित—स्वरों की घोलना वाली, शब्द और अर्थ की गंभीरता वाली और गुण रूपी लक्ष्मी से युक्त वाणी बार-बार बोल कर श्रेणिक राजा को जगाती है। जगाकर श्रेणिक राजा की अनुमति पाकर विविध प्रकार के मणि, सुवर्ण और रत्नों की रचना से चित्र-विचित्र भद्रासन पर बैठती है। बैठ कर आश्वस्त—चलने के श्रम से रहित होकर, विश्वस्त—क्षोभरहित होकर, सुखद और श्रेष्ठ आसन पर बैठी हुई वह दोनों करतलों से ग्रहण की हुई और मस्तक के चारों ओर घूमती हुई अंजलि को मस्तक पर धारण करके श्रेणिक राजा से इस प्रकार कहती है—

१९ एवं खलु अहं देवाणुप्पिया! अज्ज तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि सालिंगणवट्टिए जाव[1] नियगवयणमइवयंतं गयं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा। तं एयस्स णं देवाणुप्पिया! उरालस्स जाव [कल्लाणस्स सिवस्स धन्नस्स मंगल्लस्स सस्सिरीयस्स] सुमिणस्स के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ?

देवानुप्रिय! आज मैं उस पूर्ववर्णित शरीर प्रमाण तकिया वाली शय्या पर सो रही थी, तब यावत् अपने मुख में प्रवेश करते हुए हाथी को स्वप्न में देख कर जागी हूँ। हे देवानुप्रिय! इस उदार यावत् [कल्याणकारी, उपद्रवों का अन्त करने वाले, मांगलिक एवं सश्रीक—सुशोभन] स्वप्न का क्या फल-विशेष होगा?

२० तए णं सेणिए राया धारिणीए देवीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव [चित्तमाणंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाण] हियए धाराहयनीव-सुरभिकुसुम-चुंचुमालइयतणू ऊसवियरोमकूवे तं सुमिणं उग्गिण्हइ। उग्गिण्हित्ता ईहं पविसइ, पविसित्ता अप्पणो साभाविएणं मइपुव्वएणं बुद्धिविन्नाणेणं तस्स सुमिणस्स अत्थोग्गहं करेइ। करित्ता धारिणिं देविं ताहिं जाव[2] हिययपल्हायणिज्जाहिं मिउमहुररिभियगंभीरसस्सिरीयाहिं वग्गूहिं अणुवूहेमाणे अणुवूहेमाणे एवं वयासी।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा धारिणी देवी से इस अर्थ को सुनकर तथा हृदय में धारण करके हर्षित हुआ, [सन्तुष्ट हुआ, उसका चित्त आनन्दित हो उठा, मन में प्रीति उत्पन्न हुई, अतीव सौमनस्य प्राप्त हुआ,] हर्ष के कारण उसकी ... मेघ की धाराओं से आहत कदम्बवृक्ष के सुगन्धित पुष्प के समान उसका शरीर पुलकित हो उठा, उसे रोमांच हो आया। उसने स्वप्न का अवग्रहण किया, सामान्य रूप से विचार किया। अवग्रहण करके विशेष अर्थ के विचार रूप ईहा में प्रवेश किया। ईहा में प्रवेश करके अपने स्वाभाविक मतिपूर्वक बुद्धिविज्ञान से अर्थात् औत्पत्तिकी आदि बुद्धियों से उस स्वप्न के फल का निश्चय किया। निश्चय करके धारिणी देवी से हृदय में आह्लाद उत्पन्न करने वाली मृदु, मधुर, रिभित, गंभीर और सश्रीक वाणी से बार-बार प्रशंसा करते हुए इस प्रकार कहा।

श्रेणिक द्वारा स्वप्नफल-कथन

२१ उराले णं तुमे देवाणुप्पिए! सुमिणे दिट्ठे, कल्लाणे णं तुमे देवाणुप्पिए सुमिणे दिट्ठे,

१ सूत्र १७ २ सूत्र १८

सिवे धन्ने मगल्ले सस्सिरीए ण तुमे देवाणुप्पिए! सुमिणे दिट्ठे, आरोग्ग-तुट्ठि-दीहाउय-कल्लाण-मगल्ल-कारए ण तुमे देवी सुमिणे दिट्ठे। अत्थलाभो ते देवाणुप्पिए, पुत्तलाभो ते देवाणुप्पिए रज्जलाभो भोगलाभो सोक्खलाभो ते देवाणुप्पिए!

एव खलु तुम देवाणुप्पिए नवण्ह मासाण बहुपडिपुन्नाण अद्धट्ठमाण य राइदियाण विइक्कताण अम्ह कुलकेउ कुलदीव कुलपव्वय कुलवडिसय कुलतिलक कुलकित्तिकर, कुलवित्तिकर, कुलणदिकर, कुलजसकर, कुलाधार कुलपायव कुलविवद्धणकर सुकुमालपाणिपाय जाव[1] दारय पयाहिसि।

'देवानुप्रिये! तुमने उदार-प्रधान स्वप्न देखा है, देवानुप्रिये! तुमने कल्याणकारी स्वप्न देखा है, देवानुप्रिये! तुमने शिव—उपद्रव-विनाशक, धन्य—धन की प्राप्ति कराने वाला, मगलमय—सुख कारी और सश्रीक—सुशोभन स्वप्न देखा है। देवी! आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु, कल्याण और मगल करने वाला स्वप्न तुमने देखा है। देवानुप्रिये! इस स्वप्न को देखने से तुम्हे अर्थ का लाभ होगा, देवानुप्रिये! तुम्हे पुत्र का लाभ होगा, देवानुप्रिये! तुम्हें राज्य का लाभ होगा, भोग का तथा सुख का लाभ होगा।

निश्चय ही देवानुप्रिये! तुम पूरे नव मास और साढे सात रात्रि-दिन व्यतीत होने पर हमारे कुल की ध्वजा के समान, कुल के लिए दीपक के समान, कुल मे पर्वत के समान, किसी से पराभूत न होने वाला, कुल का भूषण, कुल का तिलक, कुल की कीर्ति बढाने वाला, कुल की आजीविका बढ़ाने वाला, कुल को आनन्द प्रदान करने वाला, कुल का यश बढाने वाला, कुल का आधार, कुल मे वृक्ष के समान आश्रयणीय और कुल की वृद्धि करने वाला तथा सुकोमल हाथ-पैर वाला पुत्र (यावत्) प्रसव करोगी।'

२२—से वि य ण दारए उम्मुक्कबालभावे विन्नायपरिणयमेत्ते जोव्वणगमणुपत्ते सूरे वीरे विक्कते वित्थिन्नविपुलबलवाहणे रज्जवती राया भविस्सइ। त उराले ण तुमे देवीए सुमणे दिट्ठे जाव[2] आरोग्गतुट्ठिदीहाउकल्लाणकारए ण तुमे देवी! सुमिणे दिट्ठे त्ति कट्टु भुज्जो भुज्जो अणुबूहेइ।

'वह बालक बाल्यावस्था को पार करके कला आदि के ज्ञान मे परिपक्व होकर, यौवन को प्राप्त होकर शूर-वीर और पराक्रमी होगा। वह विस्तीर्ण और विपुल सेना तथा वाहनो का स्वामी होगा। राज्य का अधिपति राजा होगा। अतएव, देवी! तुमने आरोग्यकारी, तुष्टिकारी, दीर्घायुकारी और कल्याणकारी स्वप्न देखा है।' इस प्रकार कहकर राजा बार-बार उसकी प्रशसा करने लगा।

२३—तए ण सा धारिणी देवी सेणिएण रण्णा एव वुत्ता समाणी हट्ठतुट्ठ जाव[3] हियया करयलपरिग्गहिय जाव सिरसावत्त मत्थए अजलि कट्टु एव वयासी—

तत्पश्चात् वह धारिणी देवी श्रेणिक राजा के इस प्रकार कहने पर हर्षित एव सतुष्ट हुई। उसका हृदय आनन्दित हो गया। वह दोनो हाथ जोडकर आवर्त्त करके और मस्तक पर अजलि करके इस प्रकार बोली—

२४—एवमेय देवाणुप्पिया! तहमेय अवितहमेय असदिद्धमेय इच्छियमेय देवाणुप्पिया! पडिच्छियमेय इच्छियपडिच्छियमेय, सच्चे ण एसमट्ठे ज ण तुब्भे वयह त्ति कट्टु त सुमिण सम्म

१ औप सूत्र १४३   २ प्र अ सूत्र २१   ३ प्र अ २०

अतिशय प्रिय), उदार—श्रेष्ठ स्वर एव उच्चार से युक्त, कल्याण—समृद्धिकारक, शिव—निर्दोष होने के कारण निरुपद्रव, धन्य, मगलकारी, सश्रीक—अलकारो से सुशोभित, हृदय को प्रिय लगने वाली, हृदय को आह्लाद उत्पन्न करने वाली, परिमित अक्षरों वाली, मधुर-स्वरो से मीठी, रिभित-स्वरो की घोलना वाली, शब्द और अर्थ की गभीरता वाली और गुण रूपी लक्ष्मी से युक्त वाणी वार-बार बोल कर श्रेणिक राजा को जगाती है। जगाकर श्रेणिक राजा की अनुमति पाकर विविध प्रकार के मणि, सुवर्ण और रत्नो की रचना से चित्र-विचित्र भद्रासन पर बैठती है। बैठ कर आश्वस्त—चलने के श्रम मे रहित होकर, विश्वस्त—क्षोभरहित होकर, सुखद और श्रेष्ठ आसन पर बैठी हुई वह दोनो करतलों से ग्रहण की हुई और मस्तक के चारो ओर घूमती हुई अजलि को मस्तक पर धारण करके श्रेणिक राजा से इस प्रकार कहती है—

१९ एव खलु अह देवाणुप्पिया! अज्ज तसि तारिसगसि सयणिज्जसि सालिगणवट्टिए जाव[1] नियगवयणमइवयत गय सुमिणे पासित्ता ण पडिबुद्धा। त एयस्स ण देवाणुप्पिया! उरालस्स जाव [कल्लाणस्स सिवस्स धण्णस्स मगल्लस्स सस्सिरीयस्स] सुमिणस्स के मन्ने कल्याणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ?

देवानुप्रिय! आज मैं उस पूर्ववर्णित शरीर-प्रमाण तकिया वाली शय्या पर सो रही थी, तब यावत् अपने मुख मे प्रवेश करते हुए हाथी को स्वप्न में देख कर जागी हूँ। हे देवानुप्रिय! इस उदार यावत् [कल्याणकारी, उपद्रवो का अन्त करने वाले, मागलिक एव सश्रीक—सुशोभन] स्वप्न का क्या फल-विशेष होगा?

२० तए ण सेणिए राया धारिणीए देवीए अतिए एयमट्ठ सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ-जाव [चित्तमाणदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवस विसप्पमाण] हियए धाराहय-नीय-सुरभिकुसुम चचुमालइयतणू ऊससियरोमकूवे त सुमिण उग्गिण्हइ। उग्गिण्हित्ता ईह पविसति, पविसित्ता अप्पणो साभाविएण मइपुव्वएण बुद्धिविण्णाणेण तस्स सुमिणस्स अत्थोग्गह करेइ। करित्ता धारिणि देवि ताहि जाव[2] हिययपल्हायणिज्जाहि मिउमहुररिभियगभीरसस्सिरियाहि वग्गुहि अणुवूहेमाणे अणुवूहेमाणे एव वयासी।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा धारिणी देवी से इस अर्थ को सुनकर तथा हृदय मे धारण करके हर्षित हुआ, [सन्तुष्ट हुआ, उसका चित्त आनन्दित हो उठा मन मे प्रीति उत्पन्न हुई, अतीव सौमनस्य प्राप्त हुआ,] हर्ष के कारण उसकी छाती फूल गई, मेघ की धाराओ से आहत कदम्बवृक्ष के सुगधित पुष्प के समान उसका शरीर पुलकित हो उठा—उसे रोमाच हो आया। उसने स्वप्न का अवग्रहण किया—सामान्य रूप से विचार किया। अवग्रहण करके विशेष अर्थ के विचार रूप ईहा मे प्रवेश किया। ईहा मे प्रवेश करके अपने स्वाभाविक मतिपूर्वक बुद्धिविज्ञान से अर्थात् औत्पत्तिकी आदि बुद्धियो से उस स्वप्न के फल का निश्चय किया। निश्चय करके धारिणी देवी से हृदय मे आह्लाद उत्पन्न करने वाली मृदु, मधुर, रिभित, गभीर और सश्रीक वाणी से बार-बार प्रशसा करते हुए इस प्रकार कहा।

श्रेणिक द्वारा स्वप्नफल-कथन

२१ उराले ण तुमे देवाणुप्पिए! सुमिणे दिट्ठे, कल्याणे ण तुमे देवाणुप्पिए सुमिणे दिट्ठे,

---

१ सूत्र १७ २ सूत्र १८

सिवे धन्ने मगल्ले सस्सिरीए ण तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणे दिट्ठे, आरोग्ग-तुट्ठि-दीहाउय-कल्लाण
कारए ण तुमे देवी सुमिणे दिट्ठे । अत्थलाभो ते देवाणुप्पिए, पुत्तलाभो ते देवाणुप्पिए र
भोगलाभो सोक्खलाभो ते देवाणुप्पिए !

एव खलु तुम देवाणुप्पिए नवण्ह मासाण बहुपडिपुण्णाण अद्धट्ठमाण य राइंदियाण
ताण अम्ह कुलकेउ कुलदीव कुलपव्वय कुलवर्डिसय कुलतिलक कुलकित्तिकर, कुलवित्तिकर, कुल
कुलजसकर, कुलाधार कुलपायव कुलविवद्धणकर सुकुमालपाणिपाय जाव[1] दारय पयाहिसि ।

'देवानुप्रिये ! तुमने उदार-प्रधान स्वप्न देखा है, देवानुप्रिये ! तुमने कल्याणकार
देखा है, देवानुप्रिये ! तुमने शिव—उपद्रव-विनाशक, धन्य—धन की प्राप्ति कराने वाला, मगलम
कारी और सश्रीक—सुशोभन स्वप्न देखा है । देवी ! आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु, कल्याण औ
करने वाला स्वप्न तुमने देखा है । देवानुप्रिये ! इस स्वप्न को देखने से तुम्हे अर्थ का ला
देवानुप्रिये ! तुम्हे पुत्र का लाभ होगा, देवानुप्रिये ! तुम्हे राज्य का लाभ होगा, भोग का
का लाभ होगा ।

निश्चय ही देवानुप्रिये ! तुम पूरे नव मास और साढे सात रात्रि-दिन व्यतीत होने प
कुल की ध्वजा के समान, कुल के लिए दीपक के समान, कुल मे पर्वत के समान, किसी से पराभू
वाला, कुल का भूषण, कुल का तिलक, कुल की कीर्ति बढाने वाला, कुल की आजीविका बढ़ा
कुल को आनन्द प्रदान करने वाला, कुल का यश बढाने वाला, कुल का आधार, कुल मे वृक्ष
आश्रयणीय और कुल की वृद्धि करने वाला तथा सुकोमल हाथ-पैर वाला पुत्र (यावत्) प्रसव क

२२—से वि य ण दारए उम्मुक्कबालभावे विन्नायपरिणयमेत्ते जोव्वणगमणुपत्ते
विक्कते वित्थिन्नविपुलबलवाहणे रज्जवती राया भविस्सइ । त उराले ण तुमे देवीए सुमि
जाव[2] आरोग्गतुट्ठिदीहाउकल्लाणकारए ण तुमे देवी ! सुमिणे दिट्ठे त्ति कट्टु भुज्ज
अणुवूहेइ ।

'वह बालक बाल्यावस्था को पार करके कला आदि के ज्ञान मे परिपक्व होकर, य
प्राप्त होकर शूर-वीर और पराक्रमी होगा । वह विस्तीर्ण और विपुल सेना तथा वाहनो का
होगा । राज्य का अधिपति राजा होगा । अतएव, देवी ! तुमने आरोग्यकारी, तुष्टिकारी, दीर्घ
और कल्याणकारी स्वप्न देखा है ।' इस प्रकार कहकर राजा बार-बार उसकी प्रशसा करने ल

२३—तए ण सा धारिणी देवी सेणिएण रण्णा एव वुत्ता समाणी हट्ठतुट्ठ जाव[3]
करयलपरिग्गहिय जाव सिरसावत्त मत्थए अजलि कट्टु एव वयासी—

तत्पश्चात् वह धारिणी देवी श्रेणिक राजा के इस प्रकार कहने पर हर्षित एव सतुष्
उसका हृदय आनन्दित हो गया । वह दोनो हाथ जोडकर आवर्त करके और मस्तक पर
करके इस प्रकार बोली—

२४—एवमेय देवाणुप्पिया ! तहमेय अवितहमेय असदिद्धमेय इच्छियमेय देवाणु
पडिच्छियमेय इच्छियपडिच्छियमेय, सच्चे ण एसमट्ठे ज ण तुब्भे वयह त्ति कट्टु त सुमि

---

१ औप सूत्र १४३   २ प्र अ सूत्र २१   ३ प्र अ २०

पडिच्छइ । पडिच्छित्ता सेणिएण रण्णा अब्भणुण्णाया समाणी णाणामणिकणगरयणभत्तिचित्ताओ भद्दासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयसि सयणिज्जसि निसीअइ । निसीइत्ता एव वयासी —

देवानुप्रिय ! आपने जो कहा है सो ऐसा ही है । आपका कथन सत्य है । असत्य नहीं है, यह कथन सशय रहित है । देवानुप्रिय ! आपका कथन मुझे इष्ट है, अत्यन्त इष्ट है, और इष्ट तथा अत्यन्त इष्ट है । आपने मुझसे जो कहा है सो यह अर्थ सत्य है । इस प्रकार कहकर धारिणी देवी स्वप्न को भलीभाति अगीकार करती है । अगीकार करके राजा श्रेणिक की आज्ञा पाकर नाना प्रकार के मणि, सुवर्ण और रत्नो की रचना से विचित्र भद्रासन से उठती है । उठकर जिस जगह अपनी शय्या थी, वही आती है । आकर शय्या पर बैठती है, बैठकर इस प्रकार (मन ही मन) कहती है—सोचती है—

२५—मा मे से उत्तमे पहाणे मगल्ले सुमिणे अन्नेहिं पावसुमिणेहिं पडिहम्मिहि त्ति कट्टु देवय-गुरुजणसंबद्धाहि पसत्थाहि धम्मियाहि कहाहि सुमिणजागरिय पडिजागरमाणी विहरइ ।

'मेरा यह स्वरूप से उत्तम और फल से प्रधान तथा मगलमय स्वप्न, अन्य अशुभ स्वप्नो से नष्ट न हो जाय' ऐसा सोचकर धारिणी देवी, देव और गुरुजन सबधी प्रशस्त धार्मिक कथाओ द्वारा अपने शुभ स्वप्न की रक्षा के लिए जागरण करती हुई विचरने लगी ।

स्वप्नपाठको का आह्वान

२६—तए ण सेणिए राया पच्चूसकालसमयसि कोडुबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एव वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! बाहिरिय उवट्ठाणसाल अज्ज सविसेस परमरम्म गधोदगसित्त सुइय-समज्जिओवलित्त पचवण्ण-सरस-सुरभि-मुक्कपुप्फपु जोवयारकलिय कालागरु-पवरकुदुरुक्क-तुरुक्क-धूव-डज्झतमघमघतगद्धुयाभिराम सुगधवरगधिय गधवट्टिभूय करेह कारवेह य, करित्ता य कारवित्ता य एयमाणत्तिय पच्चप्पिणह ।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने प्रभात काल के समय कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और बुला कर इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! आज बाहर की उपस्थानशाला (सभाभवन) को शीघ्र ही विशेष रूप से परम रमणीय, गधोदक से सिंचित, साफ-सुथरी, लीपी हुई, पाच वर्णों के सरस सुगधित एव बिखरे हुए फूलो के समूह रूप उपचार से युक्त, कालागुरु, कु दुरुक्क, तुरुष्क (लोभान) तथा धूप के जलाने से महकती हुई, गध से व्याप्त होने के कारण मनोहर, श्रेष्ठ सुगध के चूर्ण स सुगधित तथा सुगध की गुटिका (वट्टी) के समान करो और कराओ । मेरी आज्ञा वापिस सौंपो अर्थात् आज्ञानुसार कार्य हो जाने की सूचना दो !

विवेचन -प्राचीनकाल मे सेवको को समाज मे कितना सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त था, यह बात जैन शास्त्रो स भलीभाति विदित होती है । उन्हें 'कौटुम्बिक पुरुष' अर्थात् परिवार का सदस्य समझा जाता था और महामहिम मगधसम्राट् श्रेणिक जैसे पुरुष भी उन्हे 'देवानुप्रिय' कहकर सबोधन करते थे । यह ध्यान देने योग्य है ।

२७—तए ण ते कोडुबियपुरिसा सेणिएण रण्णा एव वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा जाव[1] पच्चप्पिणति ।

---

१ प्र अ सूत्र २०

तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष श्रेणिक राजा द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर हर्षित हुए। उन्होने आज्ञानुसार कार्य करके आज्ञा वापिस सौंपी।

२८—तए ण सेणिए राया कल्ल पाउप्पभायाए रयणीए फुल्लुप्पलकमलकोमलुम्मिलियम्मि, अह पडुरे पभाए, रत्तासोगपगास-किंसुय-सुयमुह-गु जद्धराग-बधुजीवग-पारावयचलण-नयण-परहुय-सुरत्तलोयण-जासुमिणकुसुम-जलियजलण-तवणिज्जकलस-हिंगुलयनियर-रुवाइरेगरेहन्तसस्सिरीए दिवागरे अहकमेण उदिए, तस्स दिणकरपरपरावयारपारद्धम्मि अधयारे, बालातवकु कुमेण खइए व्व जीवलोए, लोयणविसआणुआस-विगसत-विसददसियम्मि लोए, कमलागरसडबोहए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलते सयणिज्जाओ उट्ठेति।

तत्पश्चात् स्वप्न वाली रात्रि के बाद दूसरे दिन रात्रि प्रकाशमान प्रभात रूप हुई। प्रफुल्लित कमलो के पत्ते विकसित हुए, काले मृग के नेत्र निद्रारहित होने से विकस्वर हुए। फिर वह प्रभात पाण्डुर-श्वेत वर्ण वाला हुआ। लाल अशोक की कान्ति, पलाश के पुष्प, तोते की चोच, चिरमी के अर्धभाग, दुपहरी के पुष्प, कबूतर के पैर और नेत्र, कोकिला के नेत्र, जासोद के फूल, जाज्वल्यमान अग्नि, स्वर्णकलश तथा हिंगलू के समूह की लालिमा से भी अधिक लालिमा से जिसकी श्री सुशोभित हो रही है, ऐसा सूर्य क्रमश उदित हुआ। सूर्य की किरणो का समूह नीचे उतरकर अधकार का विनाश करने लगा। बाल-सूर्य रूपी कु कुम से मानो जीवलोक व्याप्त हो गया। नेत्रो के विषय का प्रसार होने से विकसित होने वाला लोक स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा। सरोवरो मे स्थित कमलो के वन को विकसित करने वाला तथा सहस्र किरणो वाला दिवाकर तेज से जाज्वल्यमान हो गया। ऐसा होने पर राजा श्रेणिक शय्या से उठा।

विवेचन—जब सूर्य उदीयमान होता है और जब उदित हो जाता है तब उसके प्रकाश के स्वरूप मे किस-किस प्रकार का परिवर्तन होता है—उसके प्रकाश के रगो मे किस क्रम से उलट-फेर होता है, प्रस्तुत सूत्र मे उसका चित्र उपस्थित किया गया है। नैसर्गिक वर्णन का यह उत्कृष्ट उदाहरण है।

२९—उट्ठित्ता जेणेव अट्टणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अट्टणसाल अणुपविसइ, अणुपविसित्ता अणेगवायाम-जोग-वग्गण-वामद्दण-मल्लजुद्धकरणेहिं सते परिस्सते, सयपागेहिं सहस्सपागेहिं सुगधवरतेल्लमाइएहिं पीणणिज्जेहिं दीवणिज्जेहिं दप्पणिज्जेहिं मदणिज्जेहिं, विहणिज्जेहिं, सव्विदियगायपल्हायणिज्जेहिं अब्भगएहिं अब्भगिए समाणे, तेल्लचम्मसि पडिपुण्णपाणिपाय-सुकुमालकोमलतलेहिं पुरिसेहिं छेएहिं दक्खेहि पट्ठेहिं कुसलेहिं मेहावीहिं निउणेहिं निउणसिप्पोवएहिं जियपरिस्समेहिं अब्भगण परिमद्दणुव्वट्टण-करणगुणनिम्माएहिं अट्ठिसुहाए मससुहाए तयासुहाए रोमसुहाए चउव्विहाए सवाहणाए सवाहिए समाणे अवगयपरिस्समे नरिंदे अट्टणसालाओ पडिणिक्खमइ।

शय्या से उठकर राजा श्रेणिक जहाँ व्यायामशाला थी, वही आता है। आकर व्यायामशाला मे प्रवेश करता है। प्रवेश करके अनेक प्रकार के व्यायाम, योग्य (भारी पदार्थों को उठाना), वल्गन (कूदना), व्यामर्दन (भुजा आदि अगो को परस्पर मरोडना), कुश्ती तथा करण (बाहुओ को विशेष प्रकार से मोडना) रूप कसरत से श्रेणिक राजा ने श्रम किया, और खूब श्रम किया अर्थात् सामान्यत शरीर का और विशेषत प्रत्येक अङ्गोपाग का व्यायाम किया। तत्पश्चात् शतपाक तथा सहस्रपाक आदि श्रेष्ठ सुगंधित तेल आदि अभ्यगनो से, जो प्रीति उत्पन्न करने वाले अर्थात् रुधिर

आदि धातुओं को सम करने वाले, जठराग्नि को दीप्त करने वाले, दर्पणीय अर्थात् शरीर का बल बढाने वाले, मदनीय (कामवर्धक), बृंहणीय (मांसवर्धक) तथा समस्त इन्द्रियों को एवं शरीर को आह्लादित करने वाले थे, राजा श्रेणिक ने अभ्यंगन कराया। फिर मालिश किये शरीर के चर्म को, परिपूर्ण हाथ-पैर वाले तथा कोमल तल वाले, छेक (अवसर के ज्ञाता), दक्ष (चटपट कार्य करने वाले), पट्ठे (बलशाली), कुशल (मर्दन करने में चतुर), मेधावी (नवीन कला को ग्रहण करने में समर्थ), निपुण (क्रीडा करने में कुशल), निपुण शिल्पी (मर्दन के सूक्ष्म रहस्यों के ज्ञाता), परिश्रम को जीतने वाले, अभ्यंगन मर्दन उद्वर्तन करने में गुणों में पूर्ण पुरुषों द्वारा अस्थियों को सुखकारी, मांस को सुखकारी, त्वचा को सुखकारी तथा रोमों को सुखकारी- इस प्रकार चार तरह की संबाधना से (मर्दन से) श्रेणिक के शरीर का मर्दन किया गया। इस मालिश और मर्दन से राजा का परिश्रम दूर हो गया—थकावट मिट गई। वह व्यायामशाला से बाहर निकला।

३०—पडिणिक्खमित्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुपविसइ। अणुपविसित्ता समतजालाभिरामे विचित्तमणि रयणकोट्टिमतले रमणिज्जे ण्हाणमंडवंसि णाणामणि-रयणभत्तिचित्तंसि ण्हाणपीढंसि सुहनिसन्ने।

सुहोदगेहिं पुप्फोदगेहिं गंधोदएहिं, सुद्धोदएहिं य पुणो पुणो कल्लाणगपवरमज्जणविहीए मज्जिए तत्थ कोउयसएहिं बहुविहेहिं कल्लाणगपवरमज्जणावसाणे पम्हल-सुकुमालगंधकासाइयलूहियंगे अहत-सुमहग्घ-दूसरयणसुसंवुए सरससुरभिगोसीसचंदणाणुलित्तगत्ते सुइमालावन्नगविलेवणे आविद्धमणि सुवण्णे कप्पियहारद्धहार-तिसर-पालंब-पलंबमाणकडिसुत्त-सुकयसोहे पिणद्धगेविज्जे अंगुलेज्जग-ललियंग ललियकयाभरणे णाणामणि-कडग-तुडिय-थंभियभुए अहियरूवसस्सिरीए कुंडलुज्जोइयाणणे मउडदित्त सिरए हारोत्थयसुकय-रइयवच्छे पालंब-पलंबमाण-सुकय-पडउत्तरिज्जे मुद्दियापिंगलंगुलीए णाणामणि-कणग-रयण-विमलमहरिह-निउणोविय—मिसिमिसंत—विरइय-सुसिलिट्ठ विसिट्ठ-लट्ठ—संठिय-पसत्थ आविद्ध-वीरवलए, किं बहुणा? कप्परुक्खए चेव सुअलंकियविभूसिए नरिंदे सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं उभओ चउचामरवालवीइयंगे मंगल-जयसद्दकयालोए अणेगगणनायग दंडनायग-राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-मंति महामंति-गणग—दोवारिय—अमच्च—चेड—पीढमद्द—नगर निगम-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाह-दूय-संधिवालसद्धिं संपरिवुडे धवलमहामेहनिग्गए विव गहगणदिप्पंतरिक्खतारागणाण मज्झे ससि व्व पियदंसणे नरवई मज्जणघराओ पडिनिक्खमइ। पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाण-साला तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सन्निसन्ने।

व्यायामशाला से बाहर निकलकर श्रेणिक राजा जहाँ मज्जनगृह (स्नानागार) था, वहाँ आता है। आकर मज्जनगृह में प्रवेश करता है। प्रवेश करके चारों ओर जालियों से मनोहर, चित्र-विचित्र मणियों और रत्नों के फर्श वाले तथा रमणीय स्नानमंडप के भीतर विविध प्रकार के मणियों और रत्नों की रचना से चित्र-विचित्र स्नान करने के पीठ-बाजौठ पर सुखपूर्वक बैठा।

उसने पवित्र स्नान से लाए हुए शुभ जल से, पुष्पमिश्रित जल से, सुगंध मिश्रित जल से और शुद्ध जल से बार-बार कल्याणकारी - आनन्दप्रद और उत्तम विधि से स्नान किया। उस कल्याण-कारी और उत्तम स्नान के अंत में रक्षा पोटली आदि सैकड़ों कौतुक किये गए। तत्पश्चात् पक्ष्म के पक्ष के समान अत्यन्त कोमल, सुगंधित और काषाय (कसैले) रंग से रंगे हुए वस्त्र से शरीर को पोंछा। कोरा,

बहुमूल्य और श्रेष्ठ वस्त्र धारण किया। सरस और सुगंधित गोशीर्ष चन्दन से शरीर पर विलेप किया। शुचि पुष्पो की माला पहनी। केसर आदि का लेपन किया। मणियो के और स्व के अलकार धारण किये। अठारह लडो के हार, नौ लडो के अर्धहार, तीन लडो के छोटे हार तथ लम्बे लटकते हुए कटिसूत्र से शरीर की सुन्दर शोभा बढाई। कठ मे कठा पहना। उगलियो अगूठियाँ धारण की। सुन्दर अग पर अन्यान्य सुन्दर आभरण धारण किये। अनेक मणियो के ब कटक और त्रुटिक नामक आभूपणो से उसके हाथ स्तभित से प्रतीत होने लगे। अतिशय रूप कारण राजा अत्यन्त सुशोभित हो उठा। कु डलो के कारण उसका मुखमडल उद्दीप्त हो गया मुकुट से मस्तक प्रकाशित होने लगा। वक्ष-स्थल हार से आच्छादित होने के कारण अतिशय प्रीति उत्पन्न करने लगा। लम्बे लटकते हुए दुपट्टे से उसने सुन्दर उत्तरासग किया। मुद्रिकाओ से उसक उगलिया पीली दीखने लगी। नाना भाति की मणियो, सुवर्ण और रत्नो से निर्मल, महामूल्यवान् निपुण कलाकारो द्वारा निर्मित, चमचमाते हुए, सुरचित, भली-भाति मिली हुई सधियो वाले विशिष्ट प्रकार के मनोहर, सुन्दर आकार वाले और प्रशस्त वीर-वलय धारण किए। अधिक क्य कहा जाय ? मुकुट आदि आभूपणो से अलकृत और वस्त्रो से विभूषित राजा श्रेणिक कल्पवृक्ष के समान दिखाई देने लगा। कोरट वृक्ष के पुष्पो की माला वाला छत्र उसके मस्तक पर धारण किय गया। आजू-बाजू चार चामरो से उसका शरीर वीजा जाने लगा। राजा पर दृष्टि पडते ही लोग 'जय-जय' का मागलिक घोष करने लगे। अनेक गणनायक (प्रजा मे बडे), दडनायक (कटक के अधिपति), राजा (माडलिक राजा), ईश्वर (युवराज अथवा ऐश्वर्यशाली), तलवर (राजा द्वारा प्रदत्त स्वर्ण के पट्ट वाले), माडलिक (कतिपय ग्रामो के अधिपति), कौटुम्बिक (कतिपय कुटुम्बो के स्वामी), मत्री, महामत्री, ज्योतिषी, द्वारपाल, अमात्य, चेट (पैरो के पास रहने वाले सेवक), पीठमर्द (सभा के समीप रहने वाले सेवक मित्र), नागरिक लोग, व्यापारी, सेठ, सेनापति, सार्थवाह, दूत और सधिपाल इन सब से घिरा हुआ ग्रहो के समूह मे देदीप्यमान तथा नक्षत्रो और ताराओ के बीच चन्द्रमा के समान प्रियदर्शन राजा श्रेणिक मज्जनगृह से इस प्रकार निकला जैसे उज्ज्वल महामेघो मे से चन्द्रमा निकला हो। मज्जनगृह से निकलकर जहाँ बाह्य उपस्थानशाला (सभा) थी, वहीं आया और पूर्व दिशा की ओर मुख करके श्रेष्ठ सिंहासन पर आसीन हुआ।

३१ – तए ण से सेणिए राया अप्पणो अदूरसामते उत्तरपुरच्छिमे दिसिभागे अट्ठ भद्दासणाइ सेयवत्थपच्चुत्थुयाइ सिद्धत्थमगलोवयारकयसतिकम्माइ रयावेइ। रयावित्ता णाणामणिरयणमडिय अहियपेच्छणिज्जरूव महग्घवरपट्टणुग्गय सण्हबहुभत्तिसयचित्तट्ठाण ईहामिय-उसभ-तुरय णर-मगर-विहग-वालग किन्नर-रुरु-सरभ-चमर-कु जर-वणलय-पउमलय-भत्तिचित्त सुखचियवरकणगपवर-पेरत-देसभाग अब्भितरिय जवणिय अछावेइ, अछावेत्ता अच्छरग-मउअमसूरग-उत्थइय धवलवत्थ-पच्चत्थुय विसिट्ठ अगसुहफासय सुमउय धारिणीए देवीए भद्दासण रयावेइ। रयावेत्ता कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ। सद्दावेत्ता एव वयासी खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अट्ठगमहानिमित्तसुत्तत्थपाढए विविहसत्थ-कुसले सुविणपाढए सद्दावेह, सद्दावेत्ता एयमाणत्तिय खिप्पामेव पच्चप्पिणह।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा अपने समीप ईशानकोण मे श्वेत वस्त्र मे आच्छादित तथा सरसो के मागलिक उपचार से जिनमे शान्तिकर्म किया गया है, ऐसे आठ भद्रासन रखवाता है। रखवा कर नाना मणियो और रत्नो से मडित, अतिशय दर्शनीय, बहुमूल्य और श्रेष्ठनगर मे बनी हुई, कोमल एव सकडो प्रकार की रचना वाले चित्रो का स्थानभूत, ईहामृग (भेडिया), वृषभ, अश्व, नर, मगर,

पक्षी, सर्प, किन्नर, रुरु जाति के मृग, अष्टापद, चमरी गाय, हाथी, वनलता और पद्मलता आदि के चित्रों से युक्त, श्रेष्ठ स्वर्ण के तारों से भरे हुए सुशोभित किनारों वाली जवनिका (पर्दा) सभा के भीतरी भाग में बँधवाई। जवनिका बँधवाकर उसके भीतरी भाग में धारिणी देवी के लिए एक भद्रासन रखवाया। वह भद्रासन आस्तरक (खोली) और कोमल तकिया से ढका था। श्वेत वस्त्र उस पर बिछा हुआ था। सुन्दर था। स्पर्श से अंगों को सुख उत्पन्न करने वाला था और अतिशय मृदु था। इस प्रकार आसन बिछवाकर राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलवाया। बुलवाकर इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! अष्टांग महानिमित्त—ज्योतिष के सूत्र और अर्थ के पाठक तथा विविध शास्त्रों में कुशल स्वप्नपाठकों (स्वप्नशास्त्र के पंडितों) को शीघ्र ही बुलाओ और बुलाकर शीघ्र ही इस आज्ञा को वापिस लौटाओ।

३२—तए णं ते कोडुंबियपुरिसा सेणिएणं रन्ना एवं वुत्ता समाणा हट्ठ जाव[1] हियया करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु 'एवं देवो तह त्ति' आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता सेणियस्स रण्णो अंतियाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता रायगिहस्स नगरस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव सुमिणपाढगगिहाणि तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सुमिणपाढए सद्दावेंति।

तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष श्रेणिक राजा द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर हर्षित यावत् आनन्दित-हृदय हुए। दोनों हाथ जोड़कर दसों नखों को इकट्ठा करके मस्तक पर घुमा कर अंजलि जोड़कर 'हे देव! ऐसा ही हो' इस प्रकार कह कर विनय के साथ आज्ञा के वचनों को स्वीकार करते हैं और स्वीकार करके श्रेणिक राजा के पास से निकलते हैं। निकल कर राजगृह के बीचोबीच होकर जहाँ स्वप्नपाठकों के घर थे, वहाँ पहुँचते हैं और पहुँच कर स्वप्नपाठकों को बुलाते हैं।

३३—तए णं ते सुमिणपाढगा सेणियस्स रन्नो कोडुंबियपुरिसेहिं सद्दाविया समाणा हट्ठतुट्ठ जाव[2] हियया ण्हाया कयबलिकम्मा जाव कयकोउयमंगलपायच्छित्ता अप्प-महग्घाभरणालंकियसरीरा हरियालिय-सिद्धत्थयकयमुद्धाणा सएहिं सएहिं गिहेहिंतो पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता रायगिहस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव सेणियस्स रन्नो भवणवडेंसगदुवारे तेणेव उवागच्छंति। उवागच्छित्ता एगयओ मिलंति, मिलित्ता सेणियस्स रन्नो भवणवडेंसगदुवारेणं अणुपविसंति, अणुपविसित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव सेणिये राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सेणियं रायं जएणं विजएणं वद्धावेंति। सेणिएणं रन्ना अच्चिय-वंदिय-पूइय-माणिय-सक्कारिय सम्माणिया समाणा पत्तेयं पत्तेयं पुव्वन्नत्थेसु भद्दासणेसु निसीयंति।

तत्पश्चात् वे स्वप्नपाठक श्रेणिक राजा के कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा बुलाये जाने पर हृष्ट-तुष्ट यावत् आनन्दितहृदय हुए। उन्होंने स्नान किया, कुलदेवता का पूजन किया, यावत् कौतुक (मषी तिलक आदि) और मंगल प्रायश्चित्त (सरसों, दही चावल आदि का प्रयोग) किया। अल्प किन्तु बहुमूल्य आभरणों से शरीर को अलंकृत किया, मस्तक पर दूर्वा तथा सरसों मंगल निमित्त धारण किये। फिर अपने-अपने घरों से निकले। निकल कर राजगृह के बीचोंबीच होकर श्रेणिक राजा के मुख्य महल के द्वार पर आये। आकर सब एक साथ मिले। एक साथ मिलकर श्रेणिक

[1] सूत्र १८ [2] सूत्र १८

राजा के मुख्य महल के द्वार के भीतर प्रवेश किया। प्रवेश करके जहाँ बाहरी उपस्थानशाला थी और जहा श्रेणिक राजा था, वहाँ आये। आकर श्रेणिक राजा को जय और विजय शब्दो से बधाया। श्रेणिक राजा ने चदनादि से उनकी अर्चना की, गुणो की प्रशसा करके वदन किया, पुष्पो द्वारा पूजा की, आदरपूर्ण दृष्टि मे देख कर एव नमस्कार करके मान किया, फल—वस्त्र आदि देकर सत्कार किया और अनेक प्रकार की भक्ति करके सम्मान किया। फिर वे स्वप्नपाठक पहले से बिछाए हुए भद्रासनो पर अलग-अलग बैठे।

३४ - तए ण सेणिए राया जवणियतरिय धारिणि देवि ठवेइ, ठवेत्ता पुप्फ फल-पडिपुण्णहत्थे परेण विणएण ते सुमिणपाढए एव वयासी—एव खलु देवाणुप्पिया! धारिणी देवी अज्ज तसि तारिसगसि सयणिज्जसि जाव[1] महासुमिण पासित्ता ण पडिबुद्धा। त एयस्स ण देवाणुप्पिया! उरालस्स जाव[2] सस्सिरीयस्स महासुमिणस्स के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ?

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने जवनिका के पीछे धारिणी देवी को बिठलाया। फिर हाथो मे पुष्प और फल लेकर अत्यन्त विनय के साथ उन स्वप्नपाठको से इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! आज उस प्रकार की उस (पूर्ववर्णित) शय्या पर सोई हुई धारिणी देवी यावत् महास्वप्न देखकर जागी है। तो देवानुप्रियो! इस उदार यावत् सश्रीक महास्वप्न का क्या कल्याणकारी फल-विशेष होगा?

स्वप्नपाठकों द्वारा फलादेश

३५ तए ण ते सुमिणपाढगा सेणियस्स रण्णो अतिए एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म हट्ठ जाव[3] हियया त सुमिण सम्म ओगिण्हति। ओगिण्हित्ता ईह अणुपविसति, अणुपविसित्ता अन्नमन्नेण सद्धि सचालेंति, सचालित्ता तस्स सुमिणस्स लद्धट्ठा गहियट्ठा पुच्छियट्ठा विणिच्छियट्ठा अभिगयट्ठा सेणियस्स रण्णो पुरओ सुमिणसत्थाइ उच्चारेमाणा उच्चारेमाणा एव वयासी—

तत्पश्चात् वे स्वप्नपाठक श्रेणिक राजा का यह कथन सुनकर और हृदय मे धारण करके हृष्ट, तुष्ट, आनन्दितहृदय हुए। उन्होने उस स्वप्न का सम्यक् प्रकार से अवग्रहण किया। अवग्रहण करके ईहा (विचारणा) मे प्रवेश किया, प्रवेश करके परस्पर एक-दूसरे के साथ विचार-विमर्श किया। विचार-विमर्श करके स्वप्न का अपने आपसे अर्थ समझा, दूसरो का अभिप्राय जानकर विशेष अर्थ समझा, आपस मे उस अर्थ की पूछताछ की, अर्थ का निश्चय किया और फिर तथ्य अर्थ का (अन्तिम रूप से) निश्चय किया। वे स्वप्नपाठक श्रेणिक राजा के सामने स्वप्नशास्त्रों का बार बार उच्चारण करते हुए इस प्रकार बोले—

३६—एव खलु अम्ह सामी! सुमिणसत्थसि बायालीस सुमिणा, तीस महासुमिणा बावत्तरि सव्वसुमिणा दिट्ठा। तत्थ ण सामी! अरहतमायरो वा, चक्कवट्टिमायरो वा अरहतसि वा चक्कवट्टिसि वा गब्भ वक्कममाणसि एएसि तीसाए महासुमिणाण इमे चोद्दस महासुमिणे पासित्ता ण पडिबुज्झन्ति—

तजहा—गय उसभ सीह-अभिसेय—दाम-ससि-दिणयर झय कु भ।
पउमसर-सागर-विमाण—भवण-रयणुच्चय सिहिं च॥

१-२ प्र अ सूत्र २१ ३ प्र अ सूत्र २०

'हे स्वामिन् ! हमारे स्वप्नशास्त्र मे बयालीस स्वप्न और तीस महास्वप्न—कुल मिलाकर ७२ स्वप्न हमने देखे हैं। अरिहंत की माता और चक्रवर्ती की माता, जब अरिहंत और चक्रवर्ती गर्भ मे आते हैं तो तीस महास्वप्नो मे चौदह महास्वप्न देखकर जागती हैं। वे इस प्रकार हैं—

(१) हाथी (२) वृषभ (३) सिंह (४) अभिषेक (५) पुष्पो की माला (६) चन्द्र (७) सूर्य (८) ध्वजा (९) पूर्ण कुंभ (१०) पद्मयुक्त सरोवर (११) क्षीरसागर (१२) विमान अथवा भवन (१३) रत्नो की राशि और (१४) अग्नि।

विवेचन—तीर्थंकर प्राय देवलोक से च्यवन करके मनुष्यलोक मे अवतरित होते हैं। कोई कोई कभी रत्नप्रभापृथ्वी से निकल कर भी जन्म लेते हैं। स्वर्ग से आकर जन्म लेने वाले तीर्थंकर की माता को स्वप्न मे विमान दिखाई देता है और रत्नप्रभापृथ्वी से आकर जन्मने वाले तीर्थंकर की माता भवन देखती है। इसी कारण बारहवें स्वप्न मे 'विमान अथवा भवन' ऐसा विकल्प बतलाया गया है।

३७—वासुदेवमायरो वा वासुदेवंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं चोद्दसण्हं महासुमिणाणं अन्नतरे सत्त महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति। बलदेवमायरो वा बलदेवंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं चोद्दसण्हं महासुमिणाणं अण्णयरे चत्तारि महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति। मंडलियमायरो वा मंडलियंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं चोद्दसण्हं महासुमिणाणं अन्नयरं एगं महासुमिणं पासित्ता णं पडिबुज्झन्ति।

जब वासुदेव गर्भ मे आते हैं तो वासुदेव की माता इन चौदह महास्वप्नों मे से किन्ही भी सात महास्वप्नो को देखकर जागृत होती हैं। जब बलदेव गर्भ में आते हैं तो बलदेव की माता इन चौदह महास्वप्नो मे से किन्ही चार महास्वप्नो को देखकर जागृत होती है। जब माडलिक राजा गर्भ मे आता है तो माडलिक राजा की माता इन चौदह महास्वप्नों मे से कोई एक महास्वप्न देखकर जागृत होती है।

३८—इमे य णं सामी ! धारिणीए देवीए एगे महासुमिणे दिट्ठे। तं उराले णं सामी ! धारिणीए देवीए सुमिणे दिट्ठे। जाव[1] आरोग्गतुट्ठिदीहाउकल्लाणमंगल्लकारए णं सामी ! धारिणीए देवीए सुमिणे दिट्ठे। अत्थलाभो सामी ! सोक्खलाभो सामी ! भोगलाभो सामी ! पुत्तलाभो सामी ! रज्जलाभो सामी ! एवं खलु सामी ! धारिणी देवी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं जाव दारगं पयाहिसि। से वि य णं दारए उम्मुक्कबालभावे विन्नायपरिणयमित्ते जोव्वणगमणुपत्ते सूरे वीरे विक्कंते विच्छिन्नविउलबलवाहणे रज्जवती राया भविस्सइ, अणगारे वा भावियप्पा। तं उराले णं सामी ! धारिणीए देवीए सुमिणे दिट्ठे जाव[2] आरोग्गतुट्ठि जाव दिट्ठे त्ति कट्टु भुज्जो भुज्जो अणुबूहेंति।

स्वामिन् ! धारिणी देवी ने इन महास्वप्नों में से एक महास्वप्न देखा है, अतएव स्वामिन् ! धारिणी देवी ने उदार स्वप्न देखा है, यावत् आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु, कल्याण और मंगलकारी, स्वामिन् ! धारिणी देवी ने स्वप्न देखा है। स्वामिन् ! इससे आपको अर्थलाभ होगा। स्वामिन् ! सुख का लाभ होगा। स्वामिन् ! भोग का लाभ होगा, पुत्र का तथा राज्य का लाभ होगा। इस प्रकार स्वामिन् ! धारिणी देवी पूरे नौ मास व्यतीत होने पर यावत् पुत्र को जन्म देगी। वह पुत्र बाल्यावस्था

१-२ प्र. अ. सूत्र २१

पार करके, गुरु की साक्षी मात्र से, अपने ही बुद्धिवैभव मे समस्त कलाओ का ज्ञाता होकर, युवावस्था को पार करके सग्राम मे शूर, आक्रमण करने मे वीर और पराक्रमी होगा। विस्तीर्ण और विपुल बल वाहनो का स्वामी होगा। राज्य का अधिपति राजा होगा अथवा अपनी आत्मा को भावित करने वाला अनगार होगा। अतएव हे स्वामिन्! धारिणी देवी ने उदार-स्वप्न देखा है यावत् आरोग्यकारक तुष्टिकारक आदि पूर्वोक्त विशेषणों वाला स्वप्न देखा है। इस प्रकार कह कर स्वप्नपाठक बार-बार उस स्वप्न की सराहना करने लगे।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे स्वप्नपाठको द्वारा फलादेश मे कथित 'रज्जवती राया भविस्सइ, अणगारे वा भावियप्पा' यह वाक्याश ध्यान देने योग्य है। इससे यह तो स्पष्ट है ही कि अतिशय पुण्यशाली आत्मा ही मानवजीवन मे अनगार-अवस्था प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त कर सकता है। इसके अतिरिक्त इससे यह भी विदित होता है कि बालक के माता-पिता को राजा बनने वाले पुत्र को पाकर जितना हर्ष होता था, मुनि बनने वाले बालक को प्राप्त करके भी उतने ही हर्ष का अनुभव होता था। तत्कालीन समाज मे धर्म की प्रतिष्ठा कितनी अधिक थी, उस समय का वातावरण किस प्रकार धर्ममय था, यह तथ्य इस सूत्र से समझा जा सकता है।

३९- तए ण सेणिए राया तेसि सुमिणपाढगाण अतिए एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म हट्ठ जाव[1] हियए करयल जाव एव वयासी—

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा उन स्वप्नपाठको से इस कथन को सुनकर और हृदय मे धारण करके हृष्ट, तुष्ट एव आनन्दितहृदय हो गया और हाथ जोड कर इस प्रकार बोला—

४०- एवमेय देवाणुप्पिया! जाव[2] जन्न तुब्भे वदह त्ति कट्टु त सुमिण सम्म पडिच्छइ। पडिच्छित्ता ते सुमिणपाढए विपुलेण असण-पाण-खाइम-साइमेण वत्थ-गध-मल्लालकारेण य सक्कारेइ समाणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता विपुल जीवियारिह पीतिदाण दलयइ। दलइत्ता पडिविसज्जेइ।

देवानुप्रियो! जो आप कहते हो सो वैसा ही है—आपका भविष्य-कथन सत्य है, इस प्रकार कहकर उस स्वप्न के फल को सम्यक् प्रकार से स्वीकार करके उन स्वप्नपाठको का विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य और वस्त्र, गध, माला एव अलकारो से सत्कार करता है, सन्मान करता है। सत्कार-सन्मान करके जीविका के योग्य—जीवननिर्वाह के योग्य प्रीतिदान देता है और दान देकर विदा करता है।

४१—तए ण से सेणिए राया सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता जेणेव धारिणी देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धारिणि देवि एव वयासी—एव खलु देवाणुप्पिए! सुमिणसत्थसि बायालीस सुमिणा जाव[3] एग महासुमिण जाव[3] भुज्जो भुज्जो अणुवूहइ।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा सिहासन से उठा और जहाँ धारिणी देवी थी, वहाँ आया। आकर धारिणी देवी से इस प्रकार बोला—'हे देवानुप्रिये! स्वप्नशास्त्र मे बयालीस स्वप्न और तीस महास्वप्न कहे हैं, उनमे से तुमने एक महास्वप्न देखा है।' इत्यादि स्वप्नपाठको के कथन के अनुसार सब कहता है और बार-बार स्वप्न की अनुमोदना करता है।

---

१ प्र अ सूत्र १८   २ प्र अ ३६-३७   ३ प्र अ सूत्र ३६-३७

४२—तए ण धारिणी देवी सेणियस्स रन्नो अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठ जाव[1] हियया त सुमिण सम्मं पडिच्छइ। पडिच्छित्ता जेणेव सए वासघरे तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता ण्हाया कयबलिकम्मा जाव विपुलाहिं जाव विहरइ।

तत्पश्चात् धारिणी देवी, श्रेणिक राजा का यह कथन सुनकर और हृदय मे धारण करके हृष्ट-तुष्ट हुई, यावत् आनन्दितहृदय हुई। उसने उस स्वप्न को सम्यक् प्रकार से अंगीकार किया। अंगीकार करके अपने निवासगृह मे आई। आकर स्नान करके तथा बलिकर्म अर्थात् कुलदेवता की पूजा करके यावत् विपुल भोग भोगती हुई विचरने लगी।

धारिणी देवी का दोहद

४३—तए ण तीसे धारिणीए देवीए दोसु मासेसु वीइक्कंतेसु तइए मासे वट्टमाणे तस्स गब्भस्स दोहलकालसमयंसि अयमेयारूवे अकालमेहेसु दोहले पाउब्भवित्था—

तत्पश्चात् दो मास व्यतीत हो जाने पर जब तीसरा मास चल रहा था तब उस गर्भ के दोहदकाल (दोहने का समय—गर्भिणी स्त्री की इच्छा विशेष का समय) के अवसर पर धारिणी देवी को इस प्रकार का अकाल-मेघ का दोहद उत्पन्न हुआ—

४४—धन्नाओ ण ताओ अम्मयाओ, सपुन्नाओ ण ताओ अम्मयाओ, कयत्थाओ ण ताओ कयपुन्नाओ, कयलक्खणाओ, कयविहवाओ, सुलद्धे तासिं माणुस्सए जम्म-जीवियफले, जाओ णं मेहेसु अब्भुग्गएसु अब्भुज्जएसु अब्भुन्नएसु अब्भुट्ठिएसु सगज्जिएसु सविज्जुएसु सफुसिएसु सथणिएसु धंतधोतरुप्पपट्ट-अंक-संख-चंद-कुंद-सालि-पिट्ठरासि-समप्पभेसु

चिउर-हरियालभेय-चंपग—सण—कोरंट—सरिसव-पउमरय-समप्पभेसु

लक्खारस-सरसरत्तकिंसुय-जासुमण-रत्तबंधुजीवग-जातिहिंगुलय-सरसकुंकुम-उरब्भ-ससरुहिर-इंदगोवगसमप्पभेसु,

बरहिण-नीलगुलिय-सुग-चास-पिच्छ—भिंगपत्त-सासग-नीलुप्पलनियर-नवसिरीस कुसुम-णवसद्दलसमप्पभेसु,

जच्चंजण-भिंगभेय रिट्ठग भमरावलि-गवल-गुलिय-कज्जल-समप्पभेसु,

फुरंतविज्जुयसगज्जिएसु वायवस-विपुलगगणचवलपरिसक्किरेसु निम्मलवर-वारिधारापगलिय-पयंडमारुयसमाहय-समोत्थरंत—उवरि उवरि तुरियवास पवासिएसु, धारापहकरणिवायनिव्वावियमेइणितले हरियगणकंचुए, पल्लवियपायवगणेसु, वल्लिवियाणेसु पसरिएसु, उन्नएसु सोभग्गमुवागएसु, नगेसु नएसु वा, वेभारगिरिप्पवायतड-कडगविमुक्केसु उज्झरेसु, तुरियपहावियपलोट्टफेणाउलं सकलुसं जलं वहंतीसु गिरिनदीसु, सज्ज-ज्जुण-नीव-कुडय-कंदल-सिलिंधकलिएसु उववणेसु, मेहरसिय-हट्ठतुट्ठ चिट्ठिय-हरिसवसपमुक्ककंठकेकारवं मुयंतेसु बरहिणेसु, उउ-वस-मयजणिय-तरुणसहयरि-पणच्चिएसु, नवसुरभिसिलिंध-कुडय-कंदल-कलंबगंधद्धणिं मुयंतेसु उववणेसु, परहुयरुयरिभितसंकुलेसु उद्दाइंतरत्तइंदगोवयथोवयकारुन्नविलवितेसु ओणयतणमंडिएसु दद्दुरपयंपिएसु संपिडिय-दरिय-भमर-महुकरिपहकर-परिलिंत-मत्तछप्पय-कुसुमा-सवलोलमधुरगुंजंतदेसभाएसु उववणेसु, परिसामियचंद-सूर-गहगण पणट्ठनक्खत्त-तारगपहे इंदाउहबद्धचिंधपट्टंसि अंबरतले उड्डीणबलागपंतिसोभंतमेहविंदे, कारंडग

१ प्र अ सूत्र १८

चक्कवाय-कलहस-उस्सुयकरे सपत्ते पाउसम्मि काले, ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउय-मगल-पायच्छित्ताओ, किं ते ?

वरपायपत्त-णेउर-मणिमेहल-हार-रइयउचियकडग-खुड्डय-विचित्तवरवलयथभियभुयाओ, कुडलउज्जोवियाणणाओ, रयणभूसियगाओ, नासानीसासवायवोज्झ चक्खुहर वण्णफरिससजुत्त हयलाला-पेलवाइरेय धवलकणयखचियन्तकम्म आगासफलिहसरिसप्पभ असुअ पवरपरिहियाओ, दुगुल्लसुकुमालउत्तरिज्जाओ, सव्वोउयसुरभिकुसुमपवरमल्लसोभितसिराओ, कालागुरु-धूवधूवियाओ, सिरिसमाणवेसाओ, सेयणगगधवहत्थिरयण दुरुढाओ समाणीओ, सकोरिंटमल्लदामेण छत्तेण धरिज्जमाणेण चदप्पभ-वइर-वेरुलिय-विमलदडसख-कु द-दगरय-अमयमहिय--फेणपु जसनिगासचउचामर-वालवीजियगीओ, सेणिएण रन्ना सद्धि हत्थिखधवरगएण, पिट्ठओ समणुगच्छमाणीओ चउरगिणीए सेणाए, महया हयाणीएण, गयाणीएण रहाणीएण, पायत्ताणीएण, सव्विड्ढीए सव्वज्जुईए जाव [सव्वबलेण सव्वसमुदएण सव्वादरेण सव्वविभूईए सव्वविभूसाए सव्वसभमेण सव्वपुप्फ-गध मल्लालकारेण सव्वतुडिय-सद्द-सण्णिणाएण, महया इड्ढीए महया जुईए महया बलेण महया समुदएण महया वरतुडियजमगसमग-प्पवाइएण सख-पणव-पडह-भेरि झल्लरि-खरमुहि-हुडुक्क-मुरय-मुइग-दु दुहि] निग्घोसणाइयरवेण रायगिह नगर सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह पहेसु आसित्तसित्तसुचियसमज्जिओवलित्त जाव पचवण्ण-सरस-सुरभिमुक्क-पुप्फपु जोवयारकलिय कालागुरु-पवरकु दुरुक्क-तुरुक्क-धूव-डज्झत सुरभिमघमघत-गधुद्धु याभिराम सुगधवरगधिय गधवट्टिभूय अवलोएमाणीओ, नागरजणेण अभिणदिज्जमाणीओ, गुच्छ-लया-रुक्ख-गुम्म-वल्लि गुच्छ-ओच्छाइय सुरम्म वेभारगिरिकडगपायमूल सव्वओ समता आहिंडेमाणीओ आहिंडेमाणीओ दोहल विणियति । त जइ ण अहमवि मेहेसु अब्भुवगएसु जाव दोहल विणिज्जामि ।

जो माताएं अपने अकाल-मेघ के दोहद को पूर्ण करती हैं, वे माताएँ धन्य हैं, वे पुण्यवती हैं, वे कृतार्थ हैं। उन्होंने पूर्व जन्म में पुण्य का उपार्जन किया है, वे कृतलक्षण हैं, अर्थात् उनके शरीर के लक्षण सफल हैं। उनका वैभव सफल है, उन्हें मनुष्य सबधी जन्म और जीवन का फल प्राप्त हुआ है, अर्थात् उनका जन्म और जीवन सफल है। आकाश में मेघ उत्पन्न होने पर, क्रमश वृद्धि को प्राप्त होने पर, उन्नति को प्राप्त होने पर, बरसने की तैयारी होने पर, गर्जना युक्त होने पर, विद्युत् से युक्त होने पर, छोटी-छोटी बरसती हुई बू दों से युक्त होने पर, मद-मद ध्वनि से युक्त होने पर, अग्नि जला कर शुद्ध की हुई चादी के पतरे के समान, अङ्क नामक रत्न, शख, चन्द्रमा, कुन्द पुष्प और चावल के आटे के समान शुक्ल वर्ण वाले,

चिकुर नामक रग, हरताल के टुकडे, चम्पा के फूल, सन के फूल (अथवा सुवर्ण), कोरट-पुष्प, सरसों के फूल और कमल के रज के समान पीत वर्ण वाले,

लाख के रस, सरस रक्तवर्ण किंशुक के पुष्प, जासु के पुष्प, लाल रग के बधुजीवक के पुष्प, उत्तम जाति के हिंगलू, सरस कुकु, बकरा और खरगोश के रक्त और इन्द्रगोप (सावन की डोकरी) के समान लाल वर्ण वाले,

मयूर, नीलम मणि, नीली गुलिका (गोली), तोते के पख, चास पक्षी के पख, भ्रमर के पख, सासक नामक वृक्ष या प्रियगुलता, नीलकमलों के समूह, ताजा शिरीष-कुसुम और घास के समान नील वर्ण वाले,

उत्तम अजा, काले भ्रमर या कोयला, रिष्टरत्न, भ्रमरसमूह, भैंस के सींग, काली गोली और कज्जल के समान काले वर्ण वाले,

इस प्रकार पाँचों वर्णों वाले मेघ हों, बिजली चमक रही हो, गर्जना की ध्वनि हो रही हो, विस्तीर्ण आकाश में वायु के कारण चपल बने हुए बादल इधर-उधर चल रहे हों, निर्मल श्रेष्ठ जल-धाराओं से गलित, प्रचंड वायु से आहत, पृथ्वीतल को भिगोने वाली वर्षा निरंतर बरस रही हो, जल-धारा के समूह से भूतल शीतल हो गया हो, पृथ्वी रूपी रमणी ने घास रूपी कंचुक को धारण किया हो, वृक्षों का समूह पल्लवों से सुशोभित हो गया हो, बेलों के समूह विस्तार को प्राप्त हुए हों, उन्नत भू-प्रदेश सौभाग्य को प्राप्त हुए हों, अर्थात् पानी से धुलकर साफ-सुथरे हो गए हों, अथवा पर्वत और कुण्ड सौभाग्य को प्राप्त हुए हों, वैभारगिरि के प्रपात तट और कटक से निर्झर निकल कर बह रहे हों, पर्वतीय नदियों में तेज बहाव के कारण उत्पन्न हुए फेनों से युक्त जल बह रहा हो, उद्यान सर्ज, अर्जुन, नीप और कुटज नामक वृक्षों के अंकुरों से और छत्राकार (कुकुरमुत्ता) से युक्त हो गया हो, मेघ की गर्जना के कारण हृष्ट-तुष्ट होकर नाचने की चेष्टा करने वाले मयूर हर्ष के कारण मुक्त कंठ से केकारव कर रहे हों, और वर्षा ऋतु के कारण उत्पन्न हुए मद से तरुण मयूरियाँ नृत्य कर रही हों, उपवन (घर के समीपवर्ती बाग) शिलिंध्र, कुटज, कंदल और कदम्ब वृक्षों के पुष्पों की नवीन और सौरभयुक्त गंध की तृप्ति धारण कर रहे हों, अर्थात् उत्कट सुगंध से सम्पन्न हो रहे हों, नगर के बाहर के उद्यान कोकिलाओं के स्वरघोलना वाले शब्दों से व्याप्त हों और रक्तवर्ण इन्द्रगोप नामक कीड़ों से शोभायमान हो रहे हों, उनमें चातक करुण स्वर से बोल रहे हों, वे नमे हुए तृणों (वनस्पति) से सुशोभित हों, उनमें मेढक उच्च स्वर से आवाज कर रहे हों, मदोन्मत्त भ्रमरों और भ्रमरियों के समूह एकत्र हो रहे हों, तथा उन उद्यान-प्रदेशों में पुष्प-रस के लोलुप एवं मधुर गुंजार करने वाले मदोन्मत्त भ्रमर लीन हो रहे हों, आकाशतल में चन्द्रमा, सूर्य और ग्रहों का समूह मेघों से आच्छादित होने के कारण श्यामवर्ण का दृष्टिगोचर हो रहा हो, इन्द्रधनुष रूपी ध्वजपट फरफरा रहा हो, और उसमें रहा हुआ मेघसमूह बगुलों की कतारों से शोभित हो रहा हो, इस भांति कारंडक, चक्रवाक और राजहंस पक्षियों को मानस-सरोवर की ओर जाने के लिए उत्सुक करने वाला वर्षाऋतु का समय हो। ऐसे वर्षाकाल में जो माताएँ स्नान करके, बलिकर्म करके, कौतुक मंगल और प्रायश्चित्त करके (वैभारगिरि के प्रदेशों में अपने पति के साथ विहार करती हैं, वे धन्य हैं।)

धारिणीदेवी ने इसके पश्चात् क्या विचार किया यह बतलाते हैं—वे माताएँ धन्य हैं जो पैरों में उत्तम नूपुर धारण करती हैं, कमर में करधनी पहनती हैं, वक्षस्थल पर हार पहनती हैं, हाथों में कड़े तथा उंगलियों में अंगूठियाँ पहनती हैं, अपने बाहुओं को विचित्र और श्रेष्ठ बाजूबंदों से स्तंभित करती हैं, जिनका अंग रत्नों से भूषित हो, जिन्होंने ऐसा वस्त्र पहना हो जो नासिका के निश्वास की वायु से भी उड़ जाय अर्थात् अत्यन्त बारीक हो, नेत्रों का हरण करने वाला हो, उत्तम वर्ण और स्पर्श वाला हो, घोड़े के मुख से निकलने वाले फेन से भी कोमल और हल्का हो, उज्ज्वल हो, जिसकी किनारियाँ सुवर्ण के तारों से बुनी गई हों, श्वेत होने के कारण जो आकाश एवं स्फटिक के समान शुभ्र कान्ति वाला हो और श्रेष्ठ हो। जिन माताओं का मस्तक समस्त ऋतुओं संबंधी सुगंधी पुष्पों और फूलमालाओं से सुशोभित हो, जो कालागुरु आदि [illegible] से धूपित हों और जो लक्ष्मी के समान वेष वाली हों। इस प्रकार सज-धज करके जो [illegible] पर आरूढ़ होकर, कोरंट-पुष्पों की माला से सुशोभित [illegible] करती हैं। [illegible] और बड़ा रहा

के निर्मल दड वाले एव शख, कुन्दपुष्प, जलकण और अमृत का मथन करने से उत्पन्न हुए फेन के समूह के समान उज्ज्वल, श्वेत चार चामर जिनके ऊपर ढोरे जा रहे हैं, जो हस्ती-रत्न के स्कध पर (महावत के रूप मे) राजा श्रेणिक के साथ बैठी हो। उनके पीछे-पीछे चतुरगिणी सेना चल रही हो, अर्थात् विशाल अश्वसेना, गजसेना, रथसेना और पैदलसेना हो। छत्र आदि राजचिह्नो रूप समस्त ऋद्धि के साथ, आभूषणो आदि की कान्ति के साथ, यावत् [समस्त वल, समुदाय, आदर, विभूति, विभूषा एव सभ्रम के साथ, समस्त प्रकार के पुष्पो के सौरभ, मालाओ अलकारो के साथ, समस्त वाद्यो के शब्दो की ध्वनि के साथ, महान् ऋद्धि, द्युति, वल तथा समुदाय के साथ एक ही साथ बजाए जाते हुए वाद्यो के शब्दो के साथ, शख, पणव, पटह, भेरी, झालर, खरमुखी, हुडुक्क, मुरज, मृदग एव दुदुभि] वाद्यो के निर्घोष-शब्द के साथ, राजगृह नगर के शृगाटक (सिघाडे के आकार के माग) त्रिक (जहाँ तीन मार्ग मिले), चतुष्क, (चौक), चत्वर (चबूतरा), चतुमुख (चारो ओर द्वार वाले देवकुल आदि), महापथ (राजमाग) तथा सामान्य मार्ग मे गधोदक एक वार छिडका हो, अनेक वार छिडका हो, शृगाटक आदि को शुचि किया हो, झाडा हो, गोवर आदि से लीपा हो, यावत् पाँच वर्णों के ताजा सुगधमय बिखरे हुए पुष्पो के समूह के उपचार से युक्त किया हो, काले अगर, श्रेष्ठ कुदरु, लोभान् तथा धूप को जलाने से फैली हुई सुगध से मघमघा रहा हो, उत्तम चूर्ण के गध से सुगधित किया हो और मानो गधद्रव्यो की गुटिका ही हो, ऐसे राजगृह नगर को देखती जा रही हो। नागरिक जन अभिनन्दन कर रहे हो। गुच्छो, लताओ, वृक्षो, गुल्मो (झाडियो) एव वेलो के समूहो से व्याप्त, मनोहर वैभारपर्वत के निचले भागो के समीप, चारो ओर सर्वत्र भ्रमण करती हुई अपने दोहद को पूर्ण करती है (वे माताएँ धन्य हैं।) तो मैं भी इस प्रकार मेघो का उदय आदि होने पर अपने दोहद को पूर्ण करना चाहती हू।

धारिणी की चिन्ता

४५—तए ण सा धारिणी देवी तसि दोहलसि अविणिज्जमाणसि असपन्नदोहला असपुन्नदोहला असमाणियदोहला सुक्का भुक्खा णिम्मसा ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा पमइलदुब्बला किलता ओमथियवयण-नयणकमला पडुइयमुही करयलमलिय व्व चपगमाला णित्तेया दीणविवण्णवयणा जहोचियपुप्फ-गध-मल्लालकार-हार अणभिलसमाणी कीडारमणकिरिय च परिहावेमाणी दीणा दुम्मणा निराणदा भूमिगयदिट्ठीया ओहयमणसकप्पा जाव झियायइ।

तत्पश्चात् वह धारिणी देवी उस दोहद के पूर्ण न होने के कारण, दोहद के सम्पन्न न होने के कारण, दोहद के सम्पूर्ण न होने के कारण, मेघ आदि का अनुभव न होने से दोहद सम्मानित न होने के कारण, मानसिक सताप द्वारा रक्त का शोषण हो जाने से शुष्क हो गई। भूख से व्याप्त हो गई। मास रहित हो गई। जीर्ण एव जीर्ण शरीर वाली, स्नान का त्याग करने से मलीन शरीर वाली, भोजन त्याग देने से दुबली तथा श्रान्त हो गई। उसने मुख और नयन रूपी कमल नीचे कर लिए उसका मुख फीका पड गया। हथेलियो मे मसली हुई चम्पक-पुष्पो की माला के समान निस्तेज हो गई। उसका मुख दीन और विवर्ण हो गया, यथोचित पुष्प, गध, माला, अलकार और हार के विषय मे रुचिरहित हो गई, अर्थात् उसने इन सबका त्याग कर दिया। जल आदि की क्रीडा और चौपड आदि खेलो का परित्याग कर दिया। वह दीन, दुखी मन वाली, आनन्दहीन एव भूमि की तरफ दृष्टि किये हुए बैठी रही। उसके मन का सकल्प—हौसला नष्ट हो गया। वह यावत् आर्त्तध्यान मे डूब गई।

४६—तए ण तीसे धारिणीए देवीए अगपडियारियाओ अब्भितरियाओ दासचेडीयाओ धारिणि देविं ओलुग्ग जाव झियायमाणि पासति, पासित्ता एव वयासी—'किं ण तुमे देवाणुप्पिये! ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा जाव झियायसि?'

तत्पश्चात् उस धारिणी देवी की अगपरिचारिकाए—शरीर की सेवा शुश्रूषा करने वाली आभ्यतर दासियाँ धारिणी देवी को जीर्ण-सी एव जीर्ण शरीर वाली, यावत् आर्तध्यान करती हुई देखती हैं। देखकर इस प्रकार कहती हैं—'हे देवानुप्रिये! तुम जीर्ण जैसी तथा जीर्ण शरीर वाली क्यो हो रही हो? यावत् आर्तध्यान क्यो कर रही हो?

४७—तए ण सा धारिणी देवी ताहिं अगपडियारियाहिं अब्भितरियाहिं दासचेडियाहिं एव वुत्ता समाणी नो आढाति, णो य परियाणाति, अणाढायमाणी अपरियाणमाणी तुसिणीया सचिट्ठइ।

तत्पश्चात् धारिणी देवी अगपरिचारिका आभ्यतर दासियो द्वारा इस प्रकार कहने पर (अन्यमनस्क होने से) उनका आदर नही करती और उन्हे जानती भी नहीं—उनकी बात पर ध्यान नही देती। न ही आदर करती और न ही जानती हुई वह मौन ही रहती है।

४८—तए ण ताओ अगपडियारियाओ अब्भितरियाओ दासचेडियाओ धारिणि देविं दोच्च पि तच्च पि एव वयासी—'किं ण तुमे देवाणुप्पिये! ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा जाव झियायसि?'

तब वे अगपरिचारिका आभ्यतर दासियाँ दूसरी बार और तीसरी बार इस प्रकार कहने लगी—हे देवानुप्रिये! क्या तुम जीर्ण-सी, जीर्ण शरीर वाली हो रही हो, यहाँ तक कि आर्तध्यान कर रही हो?

४९—तए ण धारिणी देवी ताहिं अगपडियारियाहिं अब्भितरियाहिं दासचेडियाहिं दोच्च पि तच्च पि एव वुत्ता समाणी णो आढाइ, णो परियाणाइ, अणाढायमाणी अपरियाणमाणी तुसिणीया सचिट्ठइ।

तत्पश्चात् धारिणी देवी अगपरिचारिका आभ्यन्तर दासियो द्वारा दूसरी बार और तीसरी बार भी इस प्रकार कहने पर न आदर करती है और न जानती है, अर्थात् उनकी बात पर ध्यान नही देती, न आदर करती हुई और न जानती हुई वह मौन रहती है।

५०—तए ण ताओ अगडियारियाओ अब्भितरियाओ दासचेडियाओ धारिणीए देवीए अणाढाइज्जमाणीओ अपरिजाणिज्जमाणीओ [illegible] समाणीओ धारिणीए देवीए अतियाओ पडिनिक्ख[illegible] जेणेव [illegible] उवागच्छति। उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं जाव कट्टु [illegible] वयासी—"एव खलु सामी! किं पि अज्ज धारिणी [illegible] जाव झियायति।"

तत्पश्चात् वे अगपरिचारिका [illegible] सी हुई, उसी [illegible] (व्याकुल) [illegible] कर श्रेणिक [illegible] आती हैं। [illegible] करके जय वि[illegible] और कहा [illegible] है— जीर्ण जैसी, [illegible] यावत् [illegible]

५१—तए ण से सेणिए राया तासि अगपडियारियाण अतिए एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म तहेव सभते समाणे सिग्घ तुरिअ चवल वेइय जेणेव धारिणी देवी तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता धारिणि देवि ओलुग्ग ओलुग्गसरीर जाव अट्टज्झाणोवगय झियायमाणि पासइ। पासित्ता एव वयासी—"कि ण तुमे देवाणुप्पिए! ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा जाव अट्टज्झाणोवगया झियायसि?"

तब श्रेणिक राजा उन अगपरिचारिकाओ से यह सुनकर, मन मे धारण करके, उसी प्रकार व्याकुल होता हुआ, त्वरा के साथ एव अत्यन्त शीघ्रता से जहाँ धारणी देवी थी, वहाँ आता है। आकर धारिणी देवी को जीर्ण-जैसी, जीण शरीर वाली यावत् आर्त्तध्यान से युक्त—चिन्ता करती देखता है। देखकर इस प्रकार कहता है—'देवानुप्रिये! तुम जीण जैसी, जीण शरीर वाली यावत् आर्त्तध्यान से युक्त होकर क्यो चिन्ता कर रही हो?'

५२—तए ण सा धारिणी देवी सेणिएण रण्णा एव वुत्ता समाणी नो आढाइ, जाव तुसिणीया सचिट्ठति।

धारिणी देवी श्रेणिक राजा के इस प्रकार कहने पर भी आदर नही करती—उत्तर नही देती, यावत् मौन रहती है।

५३—तए ण से सेणिए राया धारिणि देवि दोच्च पि तच्च पि एव वदासी—'कि ण तुमे देवाणुप्पिए! ओलुग्गा जाव झियायसि?'

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने धारिणी देवी से दूसरी वार और फिर तीसरी वार भी इसी प्रकार कहा—देवानुप्रिये तुम जीर्ण-सी होकर यावत् चिन्तित क्यो हो?

५४—तए ण सा धारिणी देवी सेणिएण रण्णा दोच्च पि तच्च पि एव वुत्ता समाणी णो आढाति, णो परिजाणाति, तुसिणीया सचिट्ठइ।

तत्पश्चात् धारिणी देवी श्रेणिक राजा के दूसरी वार और तीसरी वार भी इस प्रकार कहने पर आदर नहीं करती और नही जानती—मौन रहती है।

५५—तए ण सेणिए राया धारिणि देवि सवहसाविय करेइ, करित्ता एव वयासी—कि ण तुम देवाणुप्पिए! अहमेयस्स अट्ठस्स अणरिहे सवणयाए? ता ण तुम मम अयमेयारूव मणोमाणसिय दुक्ख रहस्सीकरेसि?'

तब श्रेणिक राजा धारिणी देवी को शपय दिलाता है और शपय दिलाकर कहता है—'देवानुप्रिये! क्या मैं तुम्हारे मन की बात सुनने के लिए अयोग्य हूँ, जिससे तुम अपने मन मे रहे हुए मानसिक दु ख को छिपाती हो?'

दोहद-निवेदन

५६—तए ण सा धारिणी देवी सेणिएण रण्णा सवहसाविया समाणी सेणिय राय एव वदासी—'एव खलु सामी! मम तस्स उरालस्स जाव महासुमिणस्स तिण्ह मासाण बहुपडिपुण्णाण अयमेयारूवे अकालमेहेसु दोहले पाउब्भूए—'धन्नाओ ण ताओ अम्मयाओ, कयत्थाओ ण ताओ अम्मयाओ, जाव[1] वेभारगिरिपायमूल आहिंडमाणीओ डोहल विणिन्ति। त जइ ण अहमवि जाव

१ प्र अ सूत्र ४४

दोहल विणिज्जामि । तए ण हं सामी ! अयमेयारूवंसि अकाल-दोहलंसि अविणिज्जमाणंसि ओलुग्गा जाव अट्टज्झाणोवगया झियायामि । एएण अहं कारणेण सामी ! ओलुग्गा जाव अट्टज्झाणोवगया झियायामि ।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा द्वारा शपथ सुनकर धारिणी देवी ने श्रेणिक राजा से इस प्रकार कहा—स्वामिन् ! मुझे वह उदार आदि पूर्वोक्त विशेषणों वाला महास्वप्न आया था । उसे आए तीन मास पूरे हो चुके हैं, अतएव इस प्रकार का अकाल-मेघ संबंधी दोहद उत्पन्न हुआ है कि वे माताएँ धन्य हैं और वे माताएँ कृतार्थ है, यावत् जो वैभार पर्वत की तलहटी में भ्रमण करती हुई अपने दोहद को पूर्ण करती हैं । अगर मैं भी अपने दोहद को पूर्ण करूं तो धन्य होऊँ । इस कारण हे स्वामिन् ! मैं इस प्रकार के इस दोहद के पूर्ण न होने से जीर्ण जैसी, जीर्ण शरीर वाली हो गई हूँ, यावत् आर्तध्यान करती हुई चिन्तित हो रही हूँ । स्वामिन् ! जीर्ण-सी—यावत आर्तध्यान से युक्त होकर चिन्ताग्रस्त होने का यही कारण है ।

५७—तए ण से सेणिए राया धारिणीए देवीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म धारिणि देवि एवं वदासी—'मा ण तुमं देवाणुप्पिए ! ओलुग्गा जाव झियाहि, अहं ण तहा करिस्सामि जहा ण तुब्भं अयमेयारूवस्स अकालदोहलस्स मणोरहसंपत्ती भविस्सइ' त्ति कट्टु धारिणि देवि इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुन्नाहिं मणामाहिं वग्गूहिं समासासेइ । समासासित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणामेव उवागच्छइ । उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाहिमुहे सन्निसन्ने । धारिणीए देवीए एयं अकालदोहलं बहूहिं आएहिं य उवाएहिं य उप्पत्तियाहि य वेणइयाहि य कम्मियाहि य पारिणामियाहि य चउव्विहाहिं बुद्धीहिं अणुचिंतेमाणे अणुचिंतेमाणे तस्स दोहलस्स आयं वा उवायं वा ठिइं वा उप्पत्तिं वा अविंदमाणे ओहयमणसंकप्पे जाव झियायइ ।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने धारिणी देवी से यह बात सुनकर और समझ कर, धारिणी देवी से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिये ! तुम जीर्ण शरीर वाली मत होओ, यावत् चिन्ता मत करो। मैं वैसा करूंगा अर्थात् कोई ऐसा उपाय करूंगा जिससे तुम्हारे इस अकाल-दोहद की पूर्ति हो जाएगी ।' इस प्रकार कहकर श्रेणिक ने धारिणी देवी को इष्ट (प्रिय), कान्त (इच्छित), प्रिय (प्रीति उत्पन्न करने वाली), मनोज्ञ (मनोहर) और मणाम (मन को प्रिय) वाणी से आश्वासन दिया। आश्वासन देकर जहाँ बाहर की उपस्थानशाला थी, वहाँ आया । आकर श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठा । धारिणी देवी के इस अकाल-दोहद की पूर्ति करने के लिए बहुतेरे आयों (लाभों) से, उपायों से, औत्पत्तिकी बुद्धि से, वैनयिक बुद्धि से, कार्मिक बुद्धि से, पारिणामिक बुद्धि से—इस प्रकार चारों तरह की बुद्धि से बार-बार विचार करने लगा । परन्तु विचार करने पर भी उस दोहद के लाभ को, उपाय को, स्थिति को और निष्पत्ति को समझ नहीं पाता, अर्थात् दोहदपूर्ति का कोई उपाय नहीं सूझता । अतएव श्रेणिक राजा के मन का संकल्प नष्ट हो गया और वह भी यावत् चिन्ताग्रस्त हो गया ।

अभयकुमार का आगमन

५८—तयाणंतरं अभए कुमारे ण्हाए कयबलिकम्मे जाव सव्वालंकारविभूसिए पायवंदए पहारेत्थ गमणाए ।

तदनन्तर अभयकुमार स्नान करके, बलिकर्म (गृहदेवता का पूजन) करके, यावत् [कौतुक, मंगल एवं प्रायश्चित्त करके] समस्त अलंकारों से विभूषित होकर श्रेणिक राजा के चरणों में वन्दना

करने के लिए जाने का विचार करता है—रवाना होता है।

५९—तए ण से अभयकुमारे जेणेव सेणिए राया तणेव उवागच्छइ, उवागच्छइत्ता सेणिय राय ओहयमणसकप्प जाव झियायमाण पासइ। पासइत्ता अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए (पत्थिए) मणोगते सकप्पे समुप्पज्जित्था।

तत्पश्चात् अभयकुमार श्रेणिक राजा के समीप आता है। आकर श्रेणिक राजा को देखता है कि इनके मन के सकल्प को आघात पहुँचा है। यह देखकर अभयकुमार के मन मे इस प्रकार का यह आध्यात्मिक अर्थात् आत्मा सबधी, चिन्तित, प्राथित (प्राप्त करने को इष्ट) और मनोगत (मन मे रहा हुआ) सकल्प उत्पन्न होता है—

६०—अन्नया य मम सेणिए राया एज्जमाण पासति, पासइत्ता आढाति, परिजाणाति, सक्कारेइ, सम्माणेइ, आलवति, सलवति, अद्धासणेण उवणिमतेति मत्थयसि अग्घाति, इयाणि मम सेणिए राया णो आढाति, णो परियाणाइ, णो सक्कारेइ, णो सम्माणेइ, णो इट्ठाहि कताहि पियाहि मणुन्नाहि ओरालाहि वग्गूहि आलवति, सलवति, नो अद्धासणेण उवणिमतेति, णो मत्थयसि अग्घाति य, कि पि ओहयमणसकप्पे झियायति। त भवियव्व ण एत्थ कारणेण। त सेय खलु मे सेणिय राय एयमट्ठ पुच्छित्तए। एव सपेहेइ, सपेहित्ता जेणामेव सेणिए राया तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहिय सिरसावत्त मत्थए अजलि कट्टु जएण विजएण वद्धावेइ, वद्धावइत्ता एव वयासी—

'अन्य समय श्रेणिक राजा मुझे आता देखते थे तो देखकर आदर करते, जानते, वस्त्रादि से सत्कार करते, आसनादि देकर सन्मान करते तथा आलाप-सलाप करते थे, आधे आसान पर बैठने के लिए निमत्रण करते और मेरे मस्तक को सू घते थे। किन्तु आज श्रेणिक राजा मुझे न आदर दे रहे हैं, न आया जान रहे हैं, न सत्कार करते हैं, न इष्ट कान्त प्रिय मनोज्ञ और उदार वचनो से आलाप-सलाप करते हैं, न अर्ध आसन पर बैठने के लिए निमन्त्रित करते हैं और न मस्तक को सू घते हैं। उनके मन के सकल्प को कुछ आघात पहुँचा है, अतएव चिन्तित हो रहे हैं। इसका कोई कारण होना चाहिए। मुझे श्रेणिक राजा से यह बात पूछना श्रेय (योग्य) है।' अभयकुमार इस प्रकार विचार करता है और विचार कर जहाँ श्रेणिक राजा थे, वही आता है। आकर दोनो हाथ जोडकर, मस्तक पर आवर्त्त, अजलि करके जय-विजय से वधाता है। वधाकर इस प्रकार कहता है—

६१—तुब्भे ण ताओ! अन्नया मम एज्जमाण पासित्ता आढाह, परिजाणह जाव मत्थयसि अग्घायह, आसणेण उवणिमतेह, इयाणि ताओ! तुब्भे मम नो आढाह जाव नो आसणेण उवणिमतेह। कि पि ओहयमणसकप्पा जाव झियायह। त भवियव्व ताओ! एत्थ कारणेण। तओ तुब्भे मम ताओ! एय कारण अगूहेमाणा असकेमाणा अनिण्हवेमाणा अपच्छाएमाणा जहाभूतमवितहमसदिद्ध एयमट्ठ-माइक्खह। तए ण ह तस्स कारणस्स अतगमण गमिस्सामि।

हे तात! आप अन्य समय मुझे आता देखकर आदर करते, जानते, यावत् मेरे मस्तक को सू घते थे और आसन पर बैठने के लिए निमन्त्रित करते थे, किन्तु तात! आज आप मुझे आदर नही दे रहे हैं, यावत् आसन पर बैठने के लिए निमन्त्रित नही कर रहे हैं और मन का सकल्प नष्ट

होने के कारण कुछ चिन्ता कर रहे हैं तो इसका कोई कारण होना चाहिए। तो हे तात ! आप इस कारण को छिपाए बिना, इष्टप्राप्ति में शंका रक्खे बिना, अपलाप किये बिना, दबाए बिना, जैसा का तैसा, सत्य एवं संदेहरहित कहिए। तत्पश्चात् मैं उस कारण का पार पाने का प्रयत्न करूंगा, अर्थात् आपकी चिन्ता के कारण को दूर करूंगा।

६२—तए सेणिए राया अभएणं कुमारेणं एवं वुत्ते समाणे अभय कुमारं एवं वयासी—एवं खलु पुत्ता ! तव चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए तस्स गब्भस्स दोसु मासेसु अइक्कंतेसु तइयमासे वट्टमाणे दोहलकालसमयंसि अयमेयारूवे दोहले पाउब्भवित्था -धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ तहेव निरवसेसं भाणियव्वं जाव विणिंति। तए णं अहं पुत्ता ! धारिणीए देवीए तस्स अकालदोहलस्स बहूहिं आएहि य उवाएहिं जाव उप्पत्तिं अविंदमाणे ओहयमणसंकप्पे जाव झियायामि, तुमं आगयं पि न याणामि। *तं एतेणं कारणेणं अहं पुत्ता ! ओहयमणसंकप्पे जाव झियामि।*

अभयकुमार के इस प्रकार कहने पर श्रेणिक राजा ने अभयकुमार से इस प्रकार कहा—पुत्र ! तुम्हारी छोटी माता धारिणी देवी की गर्भस्थिति हुए दो मास बीत गए और तीसरा मास चल रहा है। उसमें दोहद काल के समय उसे इस प्रकार का दोहद उत्पन्न हुआ है—वे माताएँ धन्य हैं, इत्यादि सब पहले की भांति ही कह लेना चाहिए, यावत् जो अपने दोहद को पूर्ण करती हैं। तब हे पुत्र ! मैं धारिणी देवी के उस अकाल-दोहद के आयों (लाभ), उपायों एवं उत्पत्ति का अर्थात् उसकी पूर्ति के उपायों को नहीं समझ पाया हूँ। इससे मेरे मन का संकल्प नष्ट हो गया है और मैं चिन्तायुक्त हो रहा हूँ। इसी से मुझे तुम्हारा आना भी नहीं जान पड़ा। अतएव पुत्र ! मैं इसी कारण नष्ट हुए मन संकल्प वाला होकर चिन्ता कर रहा हूँ।

अभय का आश्वासन

६३—तए णं से अभयकुमारे सेणियस्स रन्नो अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठ जाव हियए सेणियं रायं एवं वयासी—'मा णं तुब्भे ताओ ! ओहयमणसंकप्पा जाव झियायह। अहं णं तहा करिस्सामि, जहा णं मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयारूवस्स अकालदोहलस्स मणोरहसंपत्ती भविस्सइ' त्ति कट्टु सेणियं रायं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं जाव [पियाहिं मणुन्नाहिं मणामाहिं वग्गूहिं] समासासेइ।

तत्पश्चात् वह अभयकुमार, श्रेणिक राजा से यह अर्थ सुनकर और समझ कर हृष्ट-तुष्ट और आनन्दित-हृदय हुआ। उसने श्रेणिक राजा से इस भांति कहा—हे तात ! आप भग्नमनोरथ होकर चिन्ता न करें। मैं वैसा (कोई उपाय) करूंगा, जिससे मेरी छोटी माता धारिणी देवी के इस प्रकार दोहद के मनोरथ की पूर्ति होगी। इस प्रकार कह (अभयकुमार ने) इष्ट, कांत [यावत् प्रिय, मनोज्ञ एवं मनोहर वाणी से] श्रेणिक राजा को सान्त्वना दी।

६४—तए णं सेणिए राया अभएणं कुमारेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे जाव अभयकुमारं सक्कारेति सम्माणेति, सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेति।

(अ ८ १८

श्रेणिक राजा, अभयकुमार के इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट हुआ। वह अभयकुमार का सत्कार करता है, सन्मान करता है। सत्कार-सन्मान करके विदा करता है।

६५—तए ण से अभयकुमारे सक्कारिय-सम्माणिए पडिविसज्जिए समाणे सेणियस्स रन्नो अतियाओ पडिनिक्खमइ। पडिनिक्खमित्ता जेणामेव सए भवणे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणे निसन्ने।

तब (श्रेणिक राजा द्वारा) सत्कारित एव सन्मानित होकर विदा किया हुआ अभयकुमार श्रेणिक राजा के पास से निकलता है। निकल कर जहाँ अपना भवन है, वहाँ आता है। आकर वह सिंहासन पर बैठ गया।

अभय की देवाराधना

६६—तए ण तस्स अभयकुमारस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव [चिंतिए, पत्थिए मणोगए सकप्पे] समुप्पज्जित्था—नो खलु सक्का माणुस्सएण उवाएण मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अकालडोहलमणोरहसपत्ति करेत्तए, णन्नत्थ दिव्वेण उवाएण। अत्थि ण मज्झ सोहम्मकप्पवासी पुव्वसगतिए देवे महिड्ढीए जाव [महज्जुइए महापरक्कमे महाजसे महब्बले महाणुभावे] महासोक्खे। त सेय खलु मम पोसहसालाए पोसहियस्स बभचारिस्स उम्मुक्कमणि सुवण्णस्स ववगयमाला वन्नग-विलेवणस्स निक्खत्तसत्थ-मुसलस्स एगस्स अबीयस्स दब्भसथारोवगयस्स अट्ठमभत्त परिगिण्हित्ता पुव्वसगतिय देव मणसि करेमाणस्स विहरित्तए। तते ण पुव्वसगतिए देवे मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयारूवे अकालमेहेसु डोहल विणिहिइ।

तत्पश्चात् अभयकुमार को इस प्रकार यह आध्यात्मिक (आतरिक) विचार, चिन्तन, प्रार्थित या मनोगत सकल्प उत्पन्न हुआ—दिव्य अर्थात् दैवी सबधी उपाय के बिना केवल मानवीय उपाय से छोटी माता धारिणी देवी के अकाल-दोहद के मनोरथ की पूर्ति होना शक्य नही है। सौधर्म कल्प मे रहने वाला देव मेरा पूर्व का मित्र है, जो महान् ऋद्धिधारक यावत् (महान् द्युति-वाला, महापराक्रमी, महान् यशस्वी, महान् बलशाली, महानुभाव) महान् सुख भोगने वाला है। तो मेरे लिए यह श्रेयस्कर है कि मैं पौषधशाला मे पौषध ग्रहण करके, ब्रह्मचर्य धारण करके, मणि-सुवर्ण आदि के अलकारो का त्याग करके, माला वर्णक और विलेपन का त्याग करके, शस्त्र-मूसल आदि अर्थात् समस्त आरम्भ-समारम्भ को छोड कर, एकाकी (राग-द्वेष से रहित) और अद्वितीय (सेवक आदि की सहायता रहित) होकर, डाभ के सथारे पर स्थित होकर, अष्टमभक्त-तेला की तपस्या ग्रहण करके, पहले के मित्र देव का मन मे चिन्तन करता हुआ स्थित रहूँ। ऐसा करने से वह पूर्व का मित्र देव (यहाँ आकर) मेरी छोटी माता धारिणी देवी के अकाल-मेघ सबधी दोहद को पूर्ण कर देगा।

६७—एव सपेहेइ, सपेहित्ता जेणेव पोसहसाला तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोसहसाल पमज्जति, पमज्जित्ता उच्चार-पासवणभूमि पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता दब्भसथारग पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता दब्भसथारग दुरुहइ, दुरुहित्ता अट्ठमभत्त परिगिण्हइ, परिगिण्हित्ता पोसहसालाए पोसहिए बभयारी जाव पुव्वसगतिय देव मणसि करेमाणे करेमाणे चिट्ठइ।

अभयकुमार इस प्रकार विचार करता है। विचार करके जहाँ पौषधशाला है, वहाँ जाता है। जाकर पौषधशाला का प्रमार्जन करता है। उच्चार-प्रस्रवण की भूमि (मल-मूत्र त्यागने के स्थान) का प्रतिलेखन करता है। प्रतिलेखन करके डाभ के संथारे का प्रतिलेखन करता है। डाभ के संथारे का प्रतिलेखन करके उस पर आसीन होता है। आसीन होकर अष्टमभक्त तप ग्रहण करता है। ग्रहण करके पौषधशाला में पौषधयुक्त होकर, ब्रह्मचर्य अंगीकार करके पहले के मित्र देव का मन में पुनः पुनः चिन्तन करता है।

विवेचन—तेले की तपस्या अष्टमभक्त कहलाती है, क्योंकि पूर्ण रूप से इसे सम्पन्न करने के लिए आठ बार का भक्त-आहार त्यागना आवश्यक है। अष्टमभक्त प्रारंभ करने के पहले दिन एकाशन करना, तीन दिन के छह बार के आहार का त्याग करना और फिर अगले दिन भी एकाशन करना, इस प्रकार आठ बार का आहार त्यागना चाहिए। उपवास और बेला आदि के संबंध में भी यही समझना चाहिए। तभी चतुर्थभक्त, षष्ठभक्त आदि संज्ञाएँ वास्तविक रूप में सार्थक होती हैं।

देव का आगमन

६८—तए णं तस्स अभयकुमारस्स अट्ठमभत्ते परिणममाणे पुव्वसंगतिअस्स देवस्स आसणं चलति। तते णं पुव्वसंगतिए सोहम्मकप्पवासी देवे आसणं चलियं पासति, पासित्ता ओहिं पउंजति। तते णं तस्स पुव्वसंगतियस्स देवस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव[1] समुप्पज्जित्था—'एवं खलु मम पुव्वसंगतिए जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे दाहिणड्ढभरहे वासे रायगिहे नयरे पोसहसालाए अभए नामं कुमारे अट्ठमभत्तं परिगिण्हित्ता णं ममं मणसि करेमाणे करेमाणे चिट्ठति। तं सेयं खलु मम अभयस्स कुमारस्स अंतिए पाउब्भवित्तए।' एवं संपेहेइ, संपेहित्ता उत्तरपुरच्छिमं दिसीभागं अवक्कमति, अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणति, समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं निसिरति। तंजहा—

जब अभयकुमार का अष्टमभक्त तप प्रायः पूर्ण होने आया, तब पूर्वभव के मित्र देव का आसन चलायमान हुआ। तब पूर्वभव का मित्र सौधर्मकल्पवासी देव अपने आसन को चलित हुआ देखता है और देखकर अवधिज्ञान का उपयोग लगाता है। तब पूर्वभव के मित्र देव को इस प्रकार का यह आन्तरिक विचार उत्पन्न होता है—'इस प्रकार मेरा पूर्वभव का मित्र अभयकुमार जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, भारतवर्ष में, दक्षिणार्ध भरत में, राजगृह नगर में, पौषधशाला में अष्टमभक्त ग्रहण करके मन में बार-बार मेरा स्मरण कर रहा है। अतएव मुझे अभयकुमार के समीप प्रकट होना (जाना) योग्य है।' देव इस प्रकार विचार करके उत्तरपूर्व दिग्भाग (ईशानकोण) में जाता है और वैक्रियसमुद्घात करता है, अर्थात् उत्तर वैक्रिय शरीर बनाने के लिए जीव-प्रदेशों को बाहर निकालता है। जीव-प्रदेशों को बाहर निकाल कर संख्यात योजनों का दंड बनाता है। वह इस प्रकार—

६९—रयणाणं १ वइराणं २ वेरुलियाणं ३ लोहियक्खाणं ४ मसारगल्लाणं ५ हंसगब्भाणं ६ पुलगाणं ७ सोगंधियाणं ८ जोईरसाणं ९ अंकाणं १० अंजणाणं ११ रययाणं १२ जायरूवाणं १३ अंजणपुलयाणं १४ फलिहाणं १५ रिट्ठाणं १६ अहाबायरे पोग्गले परिसाडेइ, परिसाडित्ता

१. प्र. अ. सूत्र ६६

अहासुहुमे पोग्गले परिगिण्हति, परिगिण्हइत्ता अभयकुमारमणुकपमाणे देरे पुव्वभजणियनेह-पीइ-बहुमाण-जायसोगे, तओ विमाणवरपुण्डरियाओ रयणुत्तमाओ धरणियलगमणतुरियसजणितगयणपयारो वाघुण्णित विमल-कणग पयरग वडिसग-मउडुक्कडाडोवदसणिज्जो, अणेगमणि-कणग रयण-पहकरपरिमडित भत्तिचित्त विणिउत्तमणुगुणजणियहरिसे, पेंखोलमाण-वरललित-कु डलुज्जलियवयणगुणजनित सोमरूवे, उदितो विव कोमुदीनिसाए सणिच्छरगारउज्जलियमज्झभागत्थे णयणाणदो, सरयचदो, दिव्वोसहिपज्जलुज्जलियदसणाभिरामो उउलच्छिसमत्तजायसोहे पइट्ठगधुद्धयाभिरामो मेरुरिव नगवरो, विगुव्वियविचित्तवेसे, दीवसमुद्दाण असखपरिमाणनामधेज्जाण मज्झकारेण वीइवयमाणो, उज्जोयतो पभाए विमलाए जीवलोग, रायगिह पुरवर च अभयस्स य पास ओवयति दिव्वरूवधारी ।

(१) कर्केतन रत्न (२) वज्र रत्न (३) वैडूय रत्न (४) लोहिताक्ष रत्न (५) मसारगल्ल रत्न (६) हसगभ रत्न (७) पुलक रत्न (८) सौगधित रत्न (९) ज्योतिरस रत्न (१०) अक रत्न (११) अजन रत्न (१२) रजत रत्न (१३) जातरूप रत्न (१४) अजनपुलक रत्न (१५) स्फटिक रत्न और (१६) रिष्ट रत्न—इन रत्नो के यथा-बादर अर्थात् असार पुद्गलो का परित्याग करता है, परित्याग करके यथासूक्ष्म अर्थात् सारभूत पुद्गलो को ग्रहण करता है। ग्रहण करके (उत्तर वैक्रिय शरीर बनाता है। फिर अभयकुमार पर अनुकपा करता हुआ, पूवभव मे उत्पन्न हुई स्नेहजनित प्रीति और गुणानुराग के कारण (वियोग का विचार करके) वह खेद करने लगा। फिर उस देव ने उत्तम रचना वाले अथवा उत्तम रत्नमय विमान से निकलकर पृथ्वीतल पर जाने के लिए शीघ्र ही गति का प्रचार किया, अर्थात् वह शीघ्रतापूवक चल पडा। उस समय चलायमान होते हुए, निर्मल स्वण के प्रतर जैसे कर्णपूर और मुकुट के उत्कट आडम्बर से वह दशनीय लग रहा था। अनेक मणियो, सुवण और रत्नो के समूह से शोभित और विचित्र रचना वाले पहने हुए कटिसूत्र से उसे हर्ष उत्पन्न हो रहा था। हिलते हुए श्रेष्ठ और मनोहर कुण्डलो म उज्ज्वल हुई मुख की दीप्ति से उसका रूप बडा ही सौम्य हो गया। कार्तिकी पूर्णिमा की रात्रि मे, शनि और मगल के मध्य मे स्थित और उदयप्राप्त शारदनिशाकर के समान वह देव दर्शको के नयनो को आनन्द दे रहा था। तात्पर्य यह कि शनि और मगलग्रह के समान चमकते हुए दोनो कुण्डलो के बीच उसका मुख शरद ऋतु के चन्द्रमा के समान शोभायमान हो रहा था। दिव्य ओषधियो (जडी-बूटियो) के प्रकाश के समान मुकुट आदि के तेज से देदीप्यमान, रूप मे मनोहर, समस्त ऋतुओ की लक्ष्मी से वृद्धिगत शोभा वाले तथा प्रकृष्ट गध के प्रसार से मनोहर मेरुपवत के समान वह देव अभिराम प्रतीत होता था। उस देव ने ऐसे विचित्र वेष की विक्रिया की। असख्य सख्यक और असख्य नामो वाले द्वीपो और समुद्रो के मध्य मे होकर जाने लगा। अपनी निमल प्रभा से जीवलोक को तथा नगरवर राजगृह को प्रकाशित करता हुआ दिव्य रूपधारी देव अभयकुमार के पास आ पहुँचा।

७० – तए ण से देवे अतलिक्खपडिवन्ने दसद्धवण्णाइ सखिखिणियाइ पवरवत्थाइ परिहिए—(एक्को ताव एसो गमो, अण्णो वि गमो—) ताए उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए चडाए सीहाए उद्धुयाए जइणाए छेयाए दिव्वाए देवगतीए जेणामेव जबुद्दीवे दीवे, भारहे वासे, जेणामेव दाहिणड्ढभरहे रायगिहे नगरे पोसहसालाए अभए कुमारे तेणामेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता, अतलिक्खपडिवन्ने दसद्धवन्नाइ सखिखिणियाइ पवरवत्थाइ परिहिए – अभय कुमार एव वयासी—

तत्पश्चात् दस के आधे अर्थात् पांच वर्ण वाले तथा घुंघरू वाले उत्तम वस्त्रों को धारण किए हुए वह देव आकाश में स्थित होकर (अभयकुमार से इस प्रकार बोला—)

यह एक प्रकार का गम पाठ है। इसके स्थान पर दूसरा भी पाठ है। वह इस प्रकार है—

वह देव उत्कृष्ट, त्वरा वाली, चपल-कायिक, चपलता वाली, अति उत्कर्ष के कारण चण्ड—भयानक, दृढता के कारण सिंह जैसी, गर्व की प्रचुरता के कारण उद्धत, शत्रु को जीतने के कारण जय वाली, छेक अर्थात् निपुणता वाली और दिव्य देवगति से जहां जम्बूद्वीप था, भारतवर्ष था और जहां दक्षिणार्धभरत था, उसमें भी राजगृह नगर था और जहां पौषधशाला में अभयकुमार था, वहां आता है आकर के आकाश में स्थित होकर पांच वर्ण वाले एवं घुंघरू वाले उत्तम वस्त्रों को धारण किए हुए वह देव अभयकुमार से इस प्रकार कहने लगा—

७१—'अहं णं देवाणुप्पिया ! पुव्वसंगतिए सोहम्मकप्पवासी देवे महड्ढिए, जं णं तुमं पोसहसालाए अट्ठमभत्तं पगिण्हित्ता णं ममं मणसि करेमाणे चिट्ठसि, तं एस णं देवाणुप्पिया ! अहं इहं हव्वमागए। संदिसाहि णं देवाणुप्पिया ! किं करेमि ? किं दलामि ? किं पयच्छामि ? किं वा ते हियइच्छितं ?'

'हे देवानुप्रिय ! मैं तुम्हारा पूर्वभव का मित्र सौधर्मकल्पवासी महान् ऋद्धि का धारक देव हूं। क्योंकि तुम पौषधशाला में अष्टमभक्त तप ग्रहण करके मुझे मन में रखकर स्थित हो अर्थात् मेरा स्मरण कर रहे हो, इसी कारण हे देवानुप्रिय ! मैं शीघ्र यहां आया हूं। हे देवानुप्रिय ! बताओ तुम्हारा क्या इष्ट कार्य करूँ ? तुम्हें क्या दूं ? तुम्हारे किसी संबंधी को क्या दूं ? तुम्हारा क्या वाञ्छित क्या है ?

७०—तए णं से अभए कुमारे तं पुव्वसंगतियं देवं अंतलिक्खपडिवन्नं पासइ। पासित्ता हट्ठतुट्ठे पोसहं पारेइ, पारित्ता करयल० अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयारूवे अकालदोहले पाउब्भूते धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ ! तहेव पुव्वगमेणं जाव विणिज्जामि। तं णं तुमं देवाणुप्पिया ! मम चुल्लमाउयाए धारिणीए अयमेयारूवं अकालदोहलं विणेहि।

तत्पश्चात् अभयकुमार ने आकाश में स्थित पूर्वभव के मित्र उस देव को देखा। देखकर वह हृष्ट-तुष्ट हुआ। पौषध को पारा—पूर्ण किया। फिर दोनों हाथ मस्तक पर जोड़कर इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय ! मेरी छोटी माता धारिणी देवी को इस प्रकार का अकाल दोहद उत्पन्न हुआ है कि वे माताएँ धन्य हैं जो अपने अकाल मेघ-दोहद को पूर्ण करती हैं यावत् मैं भी अपने दोहद को पूर्ण करूँ।' इत्यादि पूर्व के समान सब कथन यहां समझ लेना चाहिए। 'सो हे देवानुप्रिय ! तुम मेरी छोटी माता धारिणी के इस प्रकार के दोहद को पूर्ण कर दो।'

अकाल-मेघविक्रिया

७३—तए णं से देवे अभएणं कुमारेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे अभयकुमारं एवं वयासी—'तुमं णं देवाणुप्पिया ! सुणिव्वुयवीसत्थे अच्छाहि। अहं णं तव चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए

अयमेयारूवं डोहलं विणेमीति' कट्टु अभयस्स कुमारस्स अंतियाओ पडिणिक्खमति, पडिणिक्खमित्ता उत्तरपुरच्छिमे णं वेभारपव्वए वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णति, समोहण्णइत्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं निसिरति, जाव दोच्चं पि वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णति, समोहण्णित्ता खिप्पामेव सगज्जियं सविज्जुयं सफुसियं तं पंचवण्णमेहणिणाओवसोहियं दिव्वं पाउससिरिं विउव्वेइ। विउव्वेइत्ता जेणेव अभए कुमारे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अभयं कुमारं एवं वयासी—

तत्पश्चात् वह देव अभयकुमार के ऐसा कहने पर हर्षित और संतुष्ट होकर अभयकुमार से बोला—देवानुप्रिय! तुम निश्चिन्त रहो और विश्वास रक्खो। मैं तुम्हारी लघु माता धारिणी देवी के इस प्रकार के इस दोहद की पूर्ति किए देता हूँ।' ऐसा कहकर अभयकुमार के पास से निकलता है। निकलकर उत्तरपूर्व दिशा में, वैभारगिरि पर जाकर वैक्रियसमुद्घात करता है। समुद्घात करके संख्यात योजन प्रमाण वाला दंड निकालता है, यावत् दूसरी बार भी वैक्रियसमुद्घात करता है और गर्जना से युक्त, बिजली से युक्त और जल-बिन्दुओं से युक्त पांच वर्ण वाले मेघों की ध्वनि से शोभित दिव्य वर्षा ऋतु की शोभा की विक्रिया करता है। विक्रिया करके जहाँ अभयकुमार था, वहाँ आता है। आकर अभयकुमार से इस प्रकार कहता है—

७४—एवं खलु देवाणुप्पिया! मए तव पियट्ठयाए सगज्जिया सफुसिया सविज्जुया दिव्वा पाउससिरी विउव्विया। तं विणेउ णं देवाणुप्पिया! तव चुल्लमाउया धारिणी देवी अयमेयारूवं अकालडोहलं।

देवानुप्रिय! मैंने तुम्हारे प्रिय के लिए—प्रसन्नता की खातिर गर्जनायुक्त, बिन्दुयुक्त और विद्युत्युक्त दिव्य वर्षा-लक्ष्मी की विक्रिया की है। अतः हे देवानुप्रिय! तुम्हारी छोटी माता धारिणी देवी अपने दोहद की पूर्ति करें।

दोहदपूर्ति

७५—तए णं से अभयकुमारे तस्स पुव्वसंगतियस्स देवस्स सोहम्मकप्पवासिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठे सयाओ भवणाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणामेव सेणिए राया तेणामेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता करयल० अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

तत्पश्चात् अभयकुमार उस सौधर्मकल्पवासी पूर्व के मित्र देव से यह बात सुन-समझ कर हर्षित एवं संतुष्ट होकर अपने भवन से बाहर निकलता है। निकलकर जहाँ श्रेणिक राजा बैठा था, वहाँ आता है। आकर मस्तक पर दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार कहता है—

७६—'एवं खलु ताओ! मम पुव्वसंगतिएणं सोहम्मकप्पवासिणा देवेणं खिप्पामेव सगज्जिया सविज्जुया (सफुसिया) पंचवन्नमेहनिनाओवसोहिआ दिव्वा पाउससिरी विउव्विया। तं विणेउ णं मम चुल्लमाउया धारिणी देवी अकालदोहलं।'

हे तात! मेरे पूर्वभव के मित्र सौधर्मकल्पवासी देव ने शीघ्र ही गर्जनायुक्त, बिजली से युक्त और (बूँदों सहित) पाँच रंगों के मेघों की ध्वनि से सुशोभित दिव्य वर्षाऋतु की शोभा की विक्रिया की है। अतः मेरी लघु माता धारिणी देवी अपने अकाल-दोहद की पूर्ति करें।

७७—तए णं से सेणिए राया अभयस्स कुमारस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ जाव कोडुंबियपुरिसे सद्दावेति सद्दावित्ता एवं वयासी—'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! रायगिहं नयरं सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु आसित्तसित्त जाव सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूयं करेह। करित्ता य मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।' तते णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पच्चप्पिणंति।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा, अभयकुमार से यह बात सुनकर और हृदय में धारण करके हर्षित व संतुष्ट हुआ। यावत् उसने कौटुम्बिक पुरुषों (सेवकों) को बुलवाया। बुलवाकर इस भांति कहा—देवानुप्रियो! शीघ्र ही राजगृह नगर में शृंगाटक (सिंघाड़े की आकृति के मार्ग), त्रिक (जहाँ तीन रास्ते मिलें वह मार्ग), चतुष्क (चौक) और चबूतरे आदि को सींच कर, यावत् उत्तम सुगंध से सुगंधित करके गंध की बट्टी के समान करो। ऐसा करके मेरी आज्ञा वापिस सौंपो। तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष आज्ञा का पालन करके यावत् उस आज्ञा को वापिस सौंपते हैं, अर्थात् आज्ञानुसार कार्य हो जाने की सूचना देते हैं।

७८—तए णं से सेणिए राया दोच्चं पि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! हय-गय-रह-जोहपवरकलितं चाउरंगिणिं सेन्नं सन्नाहेह, सेयणयं च गंधहत्थिं परिकप्पेह।'

ते वि तहेव जाव पच्चप्पिणंति।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा दूसरी बार कौटुम्बिक पुरुषों को बुलवाता है और बुलवाकर इस प्रकार कहता है—'देवानुप्रियो! शीघ्र ही उत्तम अश्व, गज, रथ तथा योद्धाओं (पदातियों) सहित चतुरंगी सेना को तैयार करो और सेचनक नामक गंधहस्ती को भी तैयार करो।'

वे कौटुम्बिक पुरुष भी आज्ञा पालन करके यावत् आज्ञा वापिस सौंपते हैं।

७९—तए णं से सेणिए राया जेणेव धारिणी देवी तेणामेव उवागच्छति। उवागच्छित्ता धारिणिं देविं एवं वयासी—'एवं खलु देवाणुप्पिए! सगज्जिया जाव [सविज्जुया सफुसिया दिव्वा] पाउससिरी पाउब्भूया, तं णं तुमं देवाणुप्पिए! एयं अकालदोहलं विणेहि।'

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा जहाँ धारिणी देवी थी, वहाँ आया। आकर धारिणी देवी से इस प्रकार बोला—'हे देवानुप्रिये! इस प्रकार तुम्हारी अभिलाषा के अनुसार गर्जना की ध्वनि, बिजली तथा बूंदाबांदी से युक्त दिव्य वर्षा ऋतु की सुषमा प्रादुर्भूत हुई है। अतएव हे देवानुप्रिये! तुम अपना अकाल-दोहद सम्पन्न करो।'

८०—तए णं सा धारिणी देवी सेणिएणं रन्ना एवं वुत्ता समाणी हट्ठतुट्ठ, जेणामेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुपविसइ। अणुपविसित्ता अंतो अंतेउरंसि ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ता किं ते वरपायपत्तणेउर जाव (मणिमेहल-हार-रइय-ओविय कडग-खुड्डय-विचित्त-वरवलयथंभियभुया) आगासफालियसमप्पभं अंसुयं नियत्था, सेयणयं गंधहत्थिं दुरूढा समाणी अमयमहियफेणपुंजसन्निगासाहिं सेयचामरवालवीयणीहिं वीइज्जमाणी वीइज्जमाणी संपत्थिया।

तत्पश्चात् वह धारिणी देवी श्रेणिक राजा के इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट हुई और जहाँ स्नानगृह था, उसी ओर आई। आकर स्नानगृह मे प्रवेश किया। प्रवेश करके अन्त पुर के अन्दर स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक, मगल और प्रायश्चित्त किया। फिर क्या किया? सो कहते हैं—पैरो मे उत्तम नूपुर पहने, (कमर मे मणिजटित करधनी, वक्षस्थल पर हार, हाथो में कडे, उगलियो मे अँगूठियाँ धारण की, बाजूबधो से उसकी भुजाए स्तब्ध हो गईं,) यावत् आकाश तथा स्फटिक मणि के समान प्रभा वाले वस्त्रो को धारण किया। वस्त्र धारण करके सेचनक नामक गधहस्ती पर आरुढ होकर, अमृतमथन से उत्पन्न हुए फेन के समूह के समान श्वेत चामर के बालो रूपी वीजने से बिंजाती हुई रवाना हुई।

८१—तए ण से सेणिए राया ण्हाए कयबलिकम्मे जाव (कयकोउय-मगल-पायच्छित्ते अप्पमहग्घाभरणालकियसरीरे) सस्सिरीए हत्थिखधवरगए सकोरटमल्लदामेण छत्तेण धरिज्जमाणेण चउचामराहि वीइज्जमाणे धारिणिं देविं पिट्ठओ अणुगच्छइ।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक, मगल, प्रायश्चित्त किया, अल्प किन्तु बहुमूल्य आभूषणो से शरीर को सुशोभित किया। सुसज्जित होकर, श्रेष्ठ गधहस्ती के स्कध पर आरुढ होकर, कोरट वृक्ष के फूलो की माला वाले छत्र को मस्तक पर धारण करके, चार चामरो से विंजाते हुए धारिणी देवी का अनुगमन किया।

८२—तए ण सा धारिणी देवी सेणिएण रण्णा हत्थिखधवरगएण पिट्ठतो पिट्ठतो समणुगम्ममाणमग्गा, हय-गय-रह जोह-कलियाए चाउरगिणीए सेणाए सद्धि सपरिवुडा महया भड-चडगर-वद-परिक्खित्ता सव्विड्ढीए सव्वजुईए जाव[1] दु दुभिनिग्घोसनादितरवेण रायगिहे नगरे सिंघाडग तिग-चउक्क-चच्चर जाव (चउम्मुह) महापहपहेसु नागरजणेण अभिनदिज्जमाणा अभिनदिज्जमाणा जेणामेव वेभारगिरिपव्वए तेणामेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता वेभारगिरिकडगतडपायमूले आरामेसु य उज्जाणेसु य, काणणेसु य, वणेसु य, वणसडेसु य, रुक्खेसु य, गुच्छेसु य, गुम्मेसु य, लयासु य, वल्लीसु य, कदरासु य, दरीसु य, चु ढीसु य, दहेसु य, कच्छेसु य, नदीसु य, सगमेसु य, विवरएसु य, अच्छमाणी य, पेच्छमाणी य, मज्जमाणी य, पत्ताणि य, पुप्फाणि य, फलाणि य, पल्लवाणि य, गिण्हमाणी य, माणेमाणी य, अग्घायमाणी य, परिभु जमाणी य, परिभाएमाणी य, वेभारगिरिपायमूले दोहल विणेमाणी सव्वओ समता आहिंडति। तए ण धारिणी देवी विणीतदोहला सपुन्नदोहला सपन्नदोहल्ला जाया यावि होत्था।

श्रेष्ठ हाथी के स्कध पर बैठे हुए श्रेणिक राजा धारिणी देवी के पीछे-पीछे चले। धारिणी-देवी अश्व, हाथी, रथ और योद्धाओ की चतुरगी सेना से परिवृत थी। उसके चारो ओर महान् सुभटो का समूह घिरा हुआ था। इस प्रकार सम्पूर्ण समृद्धि के साथ, सम्पूर्ण द्युति के साथ, यावत् दु दुभि के निर्घोष के साथ राजगृह नगर के शृ गाटक, त्रिक, चतुष्क और चत्वर आदि मे होकर यावत् चतुर्मु ख राजमार्ग मे होकर निकली। नागरिक लोगो ने पुन पुन उसका अभिनन्दन किया। तत्पश्चात् वह जहाँ वैभारगिरि पर्वत था, उसी ओर आई। आकर वैभारगिरि के कटकतट मे और

1 प्र अ सूत्र ४४

तलहटी में, दम्पतियों के क्रीडास्थान आरामों में, पुष्प-फल से सम्पन्न उद्यानों में, सामान्य वृक्षों से युक्त काननों में नगर से दूरवर्ती वनों में, एक जाति के वृक्षों के समूह वाले वनखण्डों में, वृक्षों में, मृन्ताकी आदि के गुच्छाओं में, बाग की झाड़ी आदि गुल्मों में, आम्र आदि की लताओं अर्थात् ... में, नागरवेल आदि की वल्लियों में, गुफाओं में, दरी (शृगाल आदि के रहने के गड्ढों में), चुन्दी (बिना खोदे आप ही बनी जल की तलैया) में, ह्रदों—तालाबों में, अल्प जल वाले कच्छों में, नदियों में नदियों के संगमों में और अन्य जलाशयों में, अर्थात् इन सबके आसपास खड़ी होती हुई, वहाँ के दृश्यों को देखती हुई, स्नान करती हुई, पत्रों, पुष्पों, फलों और पल्लवों (कोंपलों) को ग्रहण करती हुई, स्पर्श करके उनका मान करती हुई, पुष्पादिक को सूंघती हुई, फल आदि का भक्षण करती हुई और दूसरों को बांटती हुई, वैभारगिरि के समीप की भूमि में अपना दोहदपूर्ण करती हुई चारों ओर परिभ्रमण करने लगी। इस प्रकार धारिणी देवी ने दोहद को दूर किया, दोहद को पूर्ण किया और दोहद को सम्पन्न किया।

८३—तए णं सा धारिणी देवी सेयणगगंधहत्थिं दुरूढा समाणी सेणिएणं हत्थिखंधवरगएणं पिट्ठओ पिट्ठओ समणुगम्ममाणमग्गा हयगय जाव[1] रहेणं जेणेव रायगिहे नगरे तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता रायगिहं नगरं मज्झंमज्झेणं जेणामेव सए भवणे तेणामेव उवागच्छति। उवागच्छित्ता विउलाइं माणुस्साइं भोगभोगाइं जाव (पच्चणुभवमाणी) विहरति।

तत्पश्चात् धारिणी देवी सेचनक नामक गंधहस्ती पर आरूढ हुई। श्रेणिक राजा श्रेष्ठ हाथी के स्कंध पर बैठकर उसके पीछे-पीछे चलने लगे। अश्व हस्ती आदि से घिरी हुई वह जहाँ राजगृह नगर है, वहाँ आती है। राजगृह नगर के बीचोंबीच होकर जहाँ अपना भवन है, वहाँ आती है। वहाँ आकर मनुष्य सम्बन्धी विपुल भोग भोगती हुई विचरती है।

देव का विसर्जन

८४—तए णं से अभयकुमारे जेणामेव पोसहसाला तेणामेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता पुव्वसंगतियं देवं सक्कारेइ। सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेति।

तत्पश्चात् वह अभयकुमार जहाँ पौषधशाला है, वहीं आता है। आकर पूर्व के मित्र देव का सत्कार-सन्मान करके उसे विदा करता है।

८५—तए णं से देवे सगज्जियं पंचवण्णं मेहोवसोहियं दिव्वं पाउससिरिं पडिसाहरति, पडिसाहरित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए, तामेव दिसिं पडिगए।

तत्पश्चात् अभयकुमार द्वारा विदा किया हुआ वह देव गर्जना से युक्त पंचरंगी मेघों से सुशोभित दिव्य वर्षा लक्ष्मी का प्रतिसंहरण करता है, अर्थात् उसे समेट लेता है। प्रतिसंहरण करके जिस दिशा से प्रकट हुआ था उसी दिशा में चला गया, अपने स्थान पर गया।

गर्भ की सुरक्षा

८६—तए णं सा धारिणी देवी तंसि अकालदोहलंसि विणीयंसि सम्माणियदोहला तस्स

---

१ प्र. अ. सू. ८२

गब्भस्स अणुकंपणट्ठाए जयं चिट्ठति, जयं आसयति, जयं सुवति, आहारं पि य णं आहारेमाणी णाइतित्तं णातिकडुयं णातिकसायं णातिअंबिलं णातिमहुरं जं तस्स गब्भस्स हियं मियं पत्थयं देसे य काले य आहारं आहारेमाणी णाइचिंतं, णाइसोगं, णाइदेण्णं, णाइमोहं, णाइभयं, णाइपरित्तासं, ववगयचिंता-सोय-मोह-भय परित्तासा उदु भज्जमाण-सुहेहिं भोयण च्छायण-गंध-मल्लालंकारेहिं तं गब्भं सुहंसुहेणं परिवहति।

तत्पश्चात् धारिणी देवी ने अपने उस अकाल दोहद के पूर्ण होने पर दोहद को सम्मानित किया। वह उस गर्भ की अनुकम्पा के लिए, गर्भ को बाधा न पहुँचे इस प्रकार यतना—सावधानी से खडी होती, यतना से बैठती और यतना से शयन करती। आहार करती तो ऐसा आहार करती जो अधिक तीखा न हो, अधिक कटुक न हो, अधिक कसैला न हो, अधिक खट्टा न हो और अधिक मीठा भी न हो। देश और काल के अनुसार जो उस गर्भ के लिए हितकारक (बुद्धि-आयुष्य आदि का कारण) हो, मित (परिमित एवं इन्द्रियों के अनुकूल) हो, पथ्य (आरोग्यकारक) हो। वह अति चिन्ता न करती, अति शोक न करती, अति दैन्य न करती, अति मोह न करती, अति भय न करती और अति त्रास न करती। अर्थात् चिन्ता, शोक, दैन्य, मोह, भय और त्रास से रहित होकर सब ऋतुओं में सुखप्रद भोजन, वस्त्र, गंध, माला और अलंकार आदि से सुखपूर्वक उस गर्भ का वहन करने लगी।

मेघकुमार का जन्म

८७—तए णं सा धारिणी देवी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणं राइंदियाणं विइक्कंताणं अद्धरत्तकालसमयंसि सुकुमालपाणिपायं जाव[1] सव्वंगसुंदरंगं दारयं पयाया।

तत्पश्चात् धारिणी देवी ने नौ मास परिपूर्ण होने पर और साढे सात रात्रि-दिवस बीत जाने पर, अर्धरात्रि के समय, अत्यन्त कोमल हाथ-पैर वाले यावत् परिपूर्ण इन्द्रियों से युक्त शरीर वाले, लक्षणों और व्यंजनों से सम्पन्न, मान-उन्मान-प्रमाण से युक्त एवं सर्वांगसुन्दर शिशु का प्रसव किया।

८८—तए णं ताओ अंगपडियारियाओ धारिणिं देविं नवण्हं मासाणं जाव[2] दारयं पयायं पासंति। पासित्ता सिग्घं तुरियं चवलं वेइयं, जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सेणियं रायं जएणं विजएणं वद्धावेंति। वद्धावित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

तत्पश्चात् दासियों ने देखा कि धारिणी देवी ने नौ मास पूर्ण हो जाने पर यावत् पुत्र को जन्म दिया है। देख कर हर्ष के कारण शीघ्र, मन से त्वरा वाली, काय से चपल एवं वेग वाली वे दासियाँ श्रेणिक राजा के पास आती हैं। आकर श्रेणिक राजा को जय-विजय शब्द कह कर बधाई देती हैं। बधाई देकर, दोनों हाथ जोडकर, मस्तक पर आवर्तन करके, अंजलि करके इस प्रकार कहती है—

८९—एवं खलु देवाणुप्पिया! धारिणी देवी णवण्हं मासाणं जाव[3] दारगं पयाया। तं णं अम्हे देवाणुप्पियाणं पियं णिवेएमो, पियं भे भवउ।

---

१ सूत्र १५. २ सूत्र ८७ ३ सूत्र ८७

तलहटी मे, दम्पतियो के क्रीडास्थान आरामो मे, पुष्प फल से सम्पन्न उद्यानो मे, सामान्य वृक्षो मे युक्त काननो मे नगर मे दूरवर्ती वनो मे, एक जाति के वृक्षो के समूह वाले वनखण्डो मे, वृक्षो मे, वृन्ताकी आदि के गुच्छाओ मे, वास की झाडी आदि गुल्मो मे, आम्र आदि की लताओ अर्थात पौधो मे, नागरवेल आदि की वल्लियो मे, गुफाओ मे, दरी (शृगाल आदि के रहने के गड्ढा मे), चुण्डी (बिना खोदे आप ही बनी जल की तलैया) मे, ह्रदो—तालावो मे, अल्प जल वाले कच्छो मे, नदियो मे, नदियो के सगमो मे और अन्य जलाशयो मे, अर्थात् इन सबके आसपास खडी होती हुई, वहा के दृश्यों को देखती हुई, स्नान करती हुई, पत्रो, पुष्पो, फलो और पल्लवो (कोंपलो) को ग्रहण करती हुई स्पर्श करके उनका मान करती हुई, पुष्पादिक को सू घती हुई, फल आदि का भक्षण करती हुई और दूसरो को बाटती हुई, वैभारगिरि के समीप की भूमि मे अपना दोहदपूर्ण करती हुई चारो ओर परिभ्रमण करने लगी। इस प्रकार धारिणी देवी ने दोहद को दूर किया, दोहद को पूर्ण किया और दोहद को सम्पन्न किया।

८३—तए ण सा धारिणी देवी सेयणगगधहत्थि दुरूढा समाणी सेणिएण हत्थिखधवरगएण पिट्ठओ पिट्ठओ समणुगम्ममाणमग्गा हयगय जाव[1] रहेण जेणेव रायगिहे नगरे तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता रायगिह नगर मज्झ मज्झेण जेणामेव सए भवणे तेणामेव उवागच्छति। उवागच्छित्ता विउलाइ माणुस्साइ भोगभोगाइ जाव (पच्चणुभवमाणी) विहरति।

तत्पश्चात् धारिणी देवी सेचनक नामक गधहस्ती पर आरूढ हुई। श्रेणिक राजा श्रेष्ठ हाथी के स्कध पर बैठकर उसके पीछे-पीछे चलने लगे। अश्व हस्ती आदि से घिरी हुई वह जहाँ राजगृह नगर है, वहाँ आती है। राजगृह नगर के बीचोबीच होकर जहाँ अपना भवन है, वहाँ आती है। वहाँ आकर मनुष्य सम्बन्धी विपुल भोग भोगती हुई विचरती है।

देव का विसर्जन

८४—तए ण से अभयकुमारे जेणामेव पोसहसाला तेणामेव उवागच्छइ। उवागच्छइत्ता पुव्वसगतिय देव सक्कारेइ। सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेति।

तत्पश्चात् वह अभयकुमार जहा पौषधशाला है, वही आता है। आकर पूर्व के मित्र देव का सत्कार-सम्मान करके उसे विदा करता है।

८५—तए ण से देवे सगज्जिय पचवण्ण मेहोवसोहिय दिव्व पाउससिरिं पडिसाहरति, पडिसाहरित्ता जामेव दिसि पाउब्भूए, तामेव दिसि पडिगए।

तत्पश्चात् अभयकुमार द्वारा विदा किया हुआ वह देव गर्जना से युक्त पचरगी मेघो से सुशोभित दिव्य वर्षा-लक्ष्मी का प्रतिसहरण करता है, अर्थात् उसे समेट लेता है। प्रतिसहरण करके जिस दिशा से प्रकट हुआ था उसी दिशा मे चला गया, अर्थात् अपने स्थान पर गया।

गर्भ की सुरक्षा

८६—तए ण सा धारिणी देवी तसि अकालदोहलसि विणीयसि सम्माणियदोहला तस्स

१ प्र अ सूत्र ८२

गब्भस्स अणुकंपणट्ठाए जयं चिट्ठति, जयं आसयति, जयं सुवति, आहारं पि य णं आहारेमाणी णाइतित्तं णातिकडुयं णातिकसायं णातिअंबिलं णातिमहुरं जं तस्स गब्भस्स हियं मियं पत्थयं देसे य काले य आहारं आहारेमाणी णाइचिंतं, णाइसोगं, णाइदेण्णं, णाइमोहं, णाइभयं, णाइपरित्तासं, ववगयचिंता सोय-मोह-भय परित्तासा उदु भज्जमाण-सुहेहिं भोयण च्छायण गंध मल्लालंकारेहिं तं गब्भं सुहसुहेण परिवहति।

तत्पश्चात् धारिणी देवी ने अपने उस अकाल दोहद के पूर्ण होने पर दोहद का सम्मानित किया। वह उस गर्भ की अनुकम्पा के लिए, गर्भ को बाधा न पहुँचे इस प्रकार यतना—सावधानी से खडी होती, यतना से बैठती और यतना से शयन करती। आहार करती तो ऐसा आहार करती जो अधिक तीखा न हो, अधिक कटुक न हो, अधिक कसैला न हो, अधिक खट्टा न हो और अधिक मीठा भी न हो। देश और काल के अनुसार जो उस गर्भ के लिए हितकारक (बुद्धि-आयुष्य आदि का कारण) हो, मित (परिमित एवं इन्द्रियों के अनुकूल) हो, पथ्य (आरोग्यकारक) हो। वह अति चिन्ता न करती, अति शोक न करती, अति दैन्य न करती, अति मोह न करती, अति भय न करती और अति त्रास न करती। अर्थात् चिन्ता, शोक, दैन्य, मोह, भय और त्रास से रहित होकर सब ऋतुओं में सुखप्रद भोजन, वस्त्र, गंध, माला और अलंकार आदि से सुखपूर्वक उस गर्भ को वहन करने लगी।

मेघकुमार का जन्म

८७—तए णं सा धारिणी देवी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाण राइंदियाणं विइक्कंताणं अद्धरत्तकालसमयंसि सुकुमालपाणिपायं जाव[1] सव्वंगसुंदरंगं दारयं पयाया।

तत्पश्चात् धारिणी देवी ने नौ मास परिपूर्ण होने पर और साढे सात रात्रि-दिवस बीत जाने पर, अर्धरात्रि के समय, अत्यन्त कोमल हाथ-पैर वाले यावत् परिपूर्ण इन्द्रियों से युक्त शरीर वाले, लक्षणों और व्यंजनों से सम्पन्न, मान-उन्मान-प्रमाण से युक्त एवं सर्वांगसुन्दर शिशु का प्रसव किया।

८८—तए णं ताओ अंगपडियारियाओ धारिणिं देविं नवण्हं मासाणं जाव[2] दारयं पयायं पासंति। पासित्ता सिग्घं तुरियं चवलं वेइयं, जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सेणियं रायं जएणं विजएणं वद्धावेंति। वद्धावित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

तत्पश्चात् दासियों ने देखा कि धारिणी देवी ने नौ मास पूर्ण हो जाने पर यावत् पुत्र का जन्म दिया है। देख कर हर्ष के कारण शीघ्र, मन से त्वरा वाली, काय से चपल एवं वेग वाली वे दासियाँ श्रेणिक राजा के पास आती हैं। आकर श्रेणिक राजा को जय-विजय शब्द कह कर बधाई देती हैं। बधाई देकर, दोनों हाथ जोडकर, मस्तक पर आवर्त्तन करके, अंजलि करके इस प्रकार कहती हैं—

८९—एवं खलु देवाणुप्पिया! धारिणी देवी णवण्हं मासाणं जाव[3] दारगं पयाया। तं णं अम्हे देवाणुप्पियाणं पियं णिवेएमो, पियं भे भवउ।

१ सूत्र १५, २ सूत्र ८७ ३ सूत्र ८७

तए ण मे सेणिए राया तासि अगपडियारियाण अतिए एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ० ताओ अगपडियारियाओ महुरेहिं वयणेहिं विपुलेण य पुप्फगधमल्लालकारेण सक्कारेति, सम्माणेति, सक्कारित्ता सम्माणित्ता मत्थयधोयाओ करेति, पुत्ताणुपुत्तिय वित्ति कप्पेति, कप्पित्ता पडिविसज्जेति।

हे देवानुप्रिय ! धारिणी देवी ने नौ मास पूर्ण होने पर यावत् पुत्र का प्रसव किया है। सो हम देवानुप्रिय को प्रिय (समाचार) निवेदन करती है। आपको प्रिय हो !

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा उन दासियो के पास से यह अर्थ सुनकर और हृदय मे धारण करके हृष्ट-तुष्ट हुआ। उसने उन दासियो का मधुर वचनो से तथा विपुल पुष्पो, गधो, मालाओ और आभूषणो से सत्कार-सन्मान किया। सत्कार-सन्मान करके उन्हे मस्तकधौत किया अर्थात् दासीपन से मुक्त कर दिया। उन्हे ऐसी आजीविका कर दी कि उनके पौत्र आदि तक चलती रहे। इस प्रकार आजीविका करके विपुल द्रव्य देकर विदा किया।

विवेचन—प्राचीन काल मे इस देश मे दासप्रथा और दासीप्रथा प्रचलित थी। दास-दासिया की स्थिति लगभग पशुओ जैसी थी। उनका क्रय-विक्रय होता था। बाजार लगते थे। जीवन पर्यन्त उन्हे गुलाम होकर रहना पडता था। उनका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नही था। कोई विशिष्ट हर्ष का प्रसग हो और स्वामी प्रसन्न हो जाये तभी दासता अथवा दासीपन से उनको मुक्ति मिलती थी। राजा श्रेणिक का प्रसन्न होकर दासियो को दासीपन से मुक्त कर देना इसी प्रथा का सूचक है।

जन्मोत्सव

९०—तए ण से सेणिए राया कोडुबियपुरिसे सद्दावेति। सद्दावित्ता एव वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! रायगिह नगर आसत्ति जाव (सम्मज्जिओवलित्त सिंघाडग तिय-चउक्क-चच्चर चउम्मुह महापह-पहेसु आसित्त सित्त-सुइ-सम्मट्ठ रत्थतरावण वीहिय मचाइमचकलिय णाणाविहराग ऊसिय-ज्झय पडागाइपडाग-मडिय लाउल्लोइयमहिय गोसीस-सरस रत्तचदण दद्दर दिण्णपच गुलितल उवचियचदणकलस चदणघड-सुकय-तोरण-पडिदुवारदेसभाय आसित्तो सित्तविउल-वट्ट-वग्घारिय-मल्लदाम-कलाव पचवण्ण-सरस सुरभिमुक्क-पुप्फपु जोवयार-कलिय कालागुरु-पवर-कु दुरुक्क तुरुक्क धूव डज्झत मघमघेत-गधुद्धयाभिराम सुगधवर-गधिय गधवट्टिभूय नड-नटग-जल्ल-मल्ल-मुट्ठिय वेलवग पवग-कहग-पवग-लासग आइक्खग लख-मख-तूणइल्ल-तु बवीणिय अणेगतालायर) परिगीय करेह कारवेह य। करित्ता चारगपरिसोहण करेह। करित्ता माणुम्माण-वद्धण करेह। करित्ता एयमाणत्तिय पच्चप्पिणह। जाव पच्चप्पिणति।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाता है। बुलाकर इस प्रकार आदेश देता है—देवानुप्रियो ! शीघ्र ही राजगृह नगर मे सुगधित जल छिडको, यावत् उसका सम्मार्जन एव लेपन करो, शृङ्गाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख और राजमार्गों मे सिंचन करो, उन्हे शुचि करो, रास्ते, बाजार, वीथियो को साफ करो, उन पर मच और मचो पर मच बनाओ, तरह-तरह की ऊँची ध्वजाओ, पताकाओ और पताकाओ पर पताकाओ से शोभित करो, लिपा-पुता कर, गोशीर्ष चन्दन तथा सरस रक्तचन्दन के पाँचो उगलियो वाले हाथे लगाओ, चन्दन-चर्चित कलशो से उपचित करो, स्थान-स्थान पर, द्वारो पर चन्दन-घटो के तोरणो का निर्माण कराओ, विपुल गोलाकार मालाए लटकाओ, पाचो रगो के ताजा और सुगधित फूलो को बिखेरो, काले अगर, श्रेष्ठ कुन्दरु, लोभान

तथा धूप इस प्रकार जलाओ कि उनकी सुगध से सारा वातावरण मघमघा जाय, श्रेष्ठ सुगध के कारण नगर सुगध की गुटिका जैसा बन जाय, नट, नतक, जल्ल, मल्ल, मौष्टिक (मुक्केबाज), विडवक (विदूषक), कथाकार, प्लवक (तैराक), नृत्यकर्ता, आइक्खग—शुभाशुभ फल बताने वाले, बास पर चढ कर खेल दिखाने वाले, चित्रपट दिखाने वाले, तूणा—वीणा बजाने वाले, तालिया पीटने वाले आदि लोगो से युक्त करो एव सवत्र (मगल) गान कराओ। कारागार से कैदियो को मुक्त करो। तोल और नाप की वृद्धि करो। यह सब करके मेरी आज्ञा वापिस सौपो।

यावत् कौटुम्बिक पुरुष राजाज्ञा के अनुसार काय करके आज्ञा वापिस देते हैं।

९१—तए ण से सेणिए राया अट्ठारससेणीप्पसेणीओ सद्दावेति। सद्दावित्ता एव वयासी—'गच्छह ण तुब्भे देवाणुप्पिया! रायगिहे नगरे अब्भितरबाहिरिए उस्सुक्क उक्कर अभडप्पवेस अदडिमकुडडिम अधरिम अधारणिज्ज अणुद्धुयमुइग अमिलायमल्लदाम गणियावरणाडइज्जकलिय अणेगतालायराणुचरित पमुइयपक्कीलियाभिराम जहारिह ठिइवडिय दसदिवसिय करेह कारवेह य। करित्ता एयमाणत्तिय पच्चप्पिणह।'

ते वि करेन्ति, करित्ता तहेव पच्चप्पिणति।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा कुभकार आदि जाति रूप अठारह श्रेणियो को और उनके उपविभाग रूप अठारह प्रश्रेणियो को बुलाता है। बुलाकर इस प्रकार कहता है—देवानुप्रियो! तुम जाओ और राजगृह नगर के भीतर और बाहर दस दिन की स्थितिपतिका (कुलमर्यादा के अनुसार होने वाली पुत्रजन्मोत्सव की विशिष्ट रीति) कराओ। वह इस प्रकार है—दस दिनो तक शुल्क (चुगी) लेना बद किया जाय, गाया वगैरह का प्रतिवप लगने वाला कर माफ किया जाय, कुटुबियो-किसानो आदि के घर मे बेगार लेने आदि के राजपुरुषो का प्रवेश निषिद्ध किया जाय, दड (अपराध के अनुसार लिया जाने वाला द्रव्य) न लिया जाय, किसी को ऋणी न रहने दिया जाय, अर्थात् राजा की तरफ से सबका ऋण चुका दिया जाय, किसी देनदार को पकडा न जाय, ऐसी घोषणा कर दो तथा सवत्र मृदग आदि बाजे बजवाओ। चारो ओर विकसित ताजा फूलो की मालाएँ लटकाओ। गणिकाएँ जिनमे प्रधान हो ऐसे पात्रो से नाटक कराओ। अनेक तालाचरो (प्रेक्षाकारियो) से नाटक करवाओ। ऐसा करो कि लोग हर्षित होकर क्रीडा करें। इस प्रकार यथायोग्य दस दिन की स्थितिपतिका करो-कराओ मेरी यह आज्ञा मुझे वापिस सौपो।

राजा श्रेणिक का यह आदेश सुनकर वे इसी प्रकार करते हैं और राजाज्ञा वापिस करते हैं।

९२—तए ण से सेणिए राया बाहिरियाए उवट्ठाणसालाए सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सन्निसन्ने सइएहि य साहस्सिएहि य सयसाहस्सिएहि य जाएहि दाएहि भागेहि दलयमाणे दलयमाणे पडिच्छेमाणे पडिच्छेमाणे एव च ण विहरति।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा बाहर की उपस्थानशाला (सभाभवन) मे पूव की ओर मुख करके श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठा और सैकडो हजारो और लाखो के द्रव्य से याग (पूजा) किया एव दान दिया। उसने अपनी आय मे से अमुक भाग दिया और प्राप्त होने वाले द्रव्य को ग्रहण करता हुआ विचरने लगा।

अनेक संस्कार

९३—तए णं तस्स अम्मापियरो पढमे दिवसे जातकम्मं करेंति, करित्ता, बितियदिवसे, जागरियं करेन्ति, करित्ता ततियदिवसे चंदसूरदंसणियं करेन्ति, करित्ता एवामेव निव्वत्ते असुइजातकम्मकरणे संपत्ते बारसाहदिवसे विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेन्ति, उवक्खडावित्ता मित्त-णाइ णियग-सयण-संबंधि-परिजणं बलं च बहवे गणणायग- दंडणायग जाव (राईसर-तलवर-माडंबिय कोडुंबिय—मंति-महामंति-गणग-दोवारिय-अमच्च चेड-पीठमद्द-नगर निगम सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाह-दूय संधिवाल) आमंतेति।

तत्पश्चात् उस बालक के माता-पिता ने पहले दिन जातकर्म (नाल काटना आदि) किया। दूसरे दिन जागरिका (रात्रि-जागरण) किया। तीसरे दिन चन्द्र-सूर्य का दर्शन कराया। इस प्रकार अशुचि जातकर्म की क्रिया सम्पन्न हुई। फिर बारहवाँ दिन आया तो विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम वस्तुएँ तैयार करवाई। तैयार करवाकर मित्र, बन्धु आदि ज्ञाति, पुत्र आदि निजक जन, काका आदि स्वजन, श्वसुर आदि सम्बन्धी जन, दास आदि परिजन, सेना और बहुत से गणनायक, दंडनायक यावत् (राजा, राजकुमार, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, मंत्री, महामंत्री, गणक, दौवारिक, अमात्य, चेट, पीठमर्द, नगरवासी, निगमवासी, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह, दूत और संधिपाल इन सब) को आमंत्रण दिया।

९४—तओ पच्छा ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउयमंगलपायच्छित्ता सव्वालंकार विभूसिया महइमहालयंसि भोयणमंडवंसि तं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं मित्तणाइ०[1] गणणायग जाव सद्धिं आसाएमाणा विसाएमाणा परिभाएमाणा परिभुंजेमाणा एवं च णं विहरइ।

उसके पश्चात् स्नान किया, बलिकर्म किया, मसितिलक आदि कौतुक किया, यावत् समस्त अलंकारों से विभूषित हुए। फिर बहुत विशाल भोजन-मंडप में उस अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन का मित्र, ज्ञाति आदि तथा गणनायक आदि के साथ आस्वादन, विस्वादन, परस्पर विभाजन और परिभोग करते हुए विचरने लगे।

नामकरण संस्कार

९५—जिमियभुत्तुत्तरागया वि य णं समाणा आयंता चोक्खा परमसुइभूया तं मित्तनाइनियग सयणसंबंधिपरिजण०[2] गणणायग०[3] विपुलेणं पुप्फ-गंध-मल्लालंकारेणं सक्कारेंति संमाणेंति, सक्कारित्ता सम्माणित्ता एवं वयासी—'जम्हा णं अम्हं इमस्स दारगस्स गब्भत्थस्स चेव समाणस्स अकाले मेहेसु दोहले पाउब्भूए, तं होउ णं अम्हं दारए मेहे नामेणं मेहकुमारे।' तस्स दारगस्स अम्मापियरो अयमेयारूवं गोण्णं गुणनिप्फन्नं नामधेज्जं करेन्ति।

इस प्रकार भोजन करने के पश्चात् शुद्ध जल से आचमन (कुल्ला) किया। हाथ-मुख धोकर स्वच्छ हुए, परम शुचि हुए। फिर उन मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धीजन, परिजन आदि तथा गणनायक आदि का विपुल वस्त्र, गंध, माला और अलंकार से सत्कार किया, सम्मान किया। सत्कार-सन्मान करके इस प्रकार कहा—क्योंकि हमारा यह पुत्र जब गर्भ में स्थित था, तब इसकी

१ २ ३ सूत्र ९३

माता को अकाल-मेघ सम्बन्धी दोहद हुआ था। अतएव हमारे इस पुत्र का नाम मेघकुमार होना चाहिए। इस प्रकार माता-पिता ने गौण अर्थात् गुणनिष्पन्न नाम रक्खा।

मेघकुमार का लालन–पालन

९६—तए ण से मेहकुमारे पचधाईपरिग्गहिए। तजहा—खीरधाईए, मडणधाईए, मज्जणधाईए, कीलावणधाईए, अकधाईए। अन्नाहि य बहूहि खुज्जाहि चिलाइयाहि वामणि वडभि-बब्बरि-बउसि जोणियाहि पल्हविय ईसिणिय धोरुगिणि लासिय लउसिय दमिलि सिंहलि आरबि-पुलिंदि-पक्कणि बहलि मुरुडि सबरि पारसीहि णाणादेसीहि विदेसपरिमडियाहि इगित चितिय पत्थिय वियाणियाहि सदेसनेवत्थगहियवेसाहि निउणकुसलाहि विणीयाहि चेडियाचक्कवाल वरिसधर-कचुइअ-महयरगवद-परिक्खित्ते हत्थाओ हत्थ सहरिज्जमाणे, अकाओ अक परिभुज्जमाणे, परिगिज्जमाणे, चालिज्जमाणे, उवलालिज्जमाणे, रम्मसि मणिकोट्टिमतलसि परिमिज्जमाणे परिमिज्जमाणे णिव्वायणिव्वाघायसि गिरिकन्दरमल्लीणे व चपगपायवे सुहसुहेण वड्ढइ।

तत्पश्चात् मेघकुमार पाँच धायों द्वारा ग्रहण किया गया—पाच धाएँ उसका लालन-पोषण करने लगी। वे इस प्रकार थी—(१) क्षीरधात्री—दूध पिलाने वाली धाय, (२) मडनधात्री—वस्त्राभूषण पहनाने वाली धाय, (३) मज्जनधात्री—स्नान कराने वाली धाय, (४) क्रीडापनधात्री—खेल खिलाने वाली धाय और (५) अकधात्री—गोद मे लेने वाली धाय। इनके अतिरिक्त वह मेघकुमार अन्यान्य कुब्जा (कुबडी), चिलातिका (चिलात-किरात नामक अनार्य देश मे उत्पन्न), वामन (बौनी), वडभी (बडे पेट वाली), बबरी (बबर देश मे उत्पन्न), बकुश देश की, योनक देश की, पल्हविक देश की, ईसिनिक, धोरुकिन, ल्हासक देश की, लकुस देश की, द्रविड देश की, सिंहल देश की, अरब देश की, पुलिंद देश की, पक्कण देश की, पारस देश की, बहल देश की मुरुड देश की, शबर देश की, इस प्रकार नाना देशो की, परदेश—अपने देश से भिन्न राजगृह को सुशोभित करने वाली, इगित (मुख आदि की चेष्टा), चिन्तित (मानसिक विचार) और प्रार्थित (अभिलषित) को जानने वाली, अपने अपने देश के वेष को धारण करने वाली, निपुणो मे भी अतिनिपुण, विनययुक्त दासियो के द्वारा तथा स्वदेशीय दासियो द्वारा और वर्षधरो (प्रयोग द्वारा नपुसक बनाए हुए पुरुषो), कचुकियो और महत्तरको (अन्त पुर के कार्य की चिन्ता रखने वालो) के समुदाय से घिरा रहने लगा। वह एक के हाथ से दूसरे के हाथ मे जाता, एक की गोद से दूसरे की गोद मे जाता, गा-गाकर बहलाया जाता, उगली पकडकर चलाया जाता, क्रीडा आदि से लालन-पालन किया जाता एव रमणीय मणिजटित फर्श पर चलाया जाता हुआ वायुरहित और व्याघातरहित गिरिगुफा मे स्थित चम्पक वृक्ष के समान सुखपूर्वक बढने लगा।

९७—तए ण तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो अणुपुव्वेण नामकरण च पज्जेमण च एव चकमणग च चोलोवणय च महया महया इड्ढीसक्कारसमुदएण करिसु।

तत्पश्चात् उस मेघकुमार के माता-पिता ने अनुक्रम से नामकरण, पालने मे सुलाना, पैरो से चलाना, चोटी रखना, आदि सस्कार बडी-बडी ऋद्धि और सत्कारपूर्वक मानवसमूह के साथ सम्पन्न किए।

कलाशिक्षण

९८—तए णं तं मेहकुमारं अम्मापियरो सातिरेगट्ठवासजायगं चेव (गब्भट्ठमे वासे) सोहणंसि तिहिकरणमुहुत्तंसि कलायरियस्स उवणेन्ति। तते णं से कलायरिए मेहं कुमारं लेहाइयाओ गणितप्पहाणाओ सउणरुतपज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ सुत्तओ अ अत्थओ अ करणओ य सेहावेति, सिक्खावेति।

तत्पश्चात् मेघकुमार जब कुछ अधिक आठ वर्ष का हुआ अर्थात् गर्भ से आठ वर्ष का हुआ तब माता-पिता ने शुभ तिथि, करण और मुहूर्त में कलाचार्य के पास भेजा। तत्पश्चात् कलाचार्य ने मेघकुमार को, गणित जिनमें प्रधान है ऐसी, लेखा आदि शकुनिरुत (पक्षियों के शब्द) तक की बहत्तर कलाएँ सूत्र से, अर्थ और प्रयोग से सिद्ध करवाई तथा सिखलाई।

९९—तंजहा—(१) लेहं (२) गणियं (३) रूवं (४) नट्टं (५) गीयं (६) वाइयं (७) सरगयं (८) पोक्खरगयं (९) समतालं (१०) जूयं (११) जणवायं (१२) पासयं (१३) अट्ठावयं (१४) पोरेकच्चं (१५) दगमट्टियं (१६) अन्नविहिं (१७) पाणविहिं (१८) वत्थविहिं (१९) विलेवणविहिं (२०) सयणविहिं (२१) अज्जं (२२) पहेलियं (२३) मागहियं (२४) गाहं (२५) गीइयं (२६) सिलोयं (२७) हिरण्णजुत्तिं (२८) सुवन्नजुत्तिं (२९) चुन्नजुत्तिं (३०) आभरणविहिं (३१) तरुणीपडिकम्मं (३२) इत्थिलक्खणं (३३) पुरिसलक्खणं (३४) हयलक्खणं (३५) गयलक्खणं (३६) गोणलक्खणं (३७) कुक्कुडलक्खणं (३८) छत्तलक्खणं (३९) डंडलक्खणं (४०) असिलक्खणं (४१) मणिलक्खणं (४२) कागणिलक्खणं (४३) वत्थुविज्जं (४४) खंधारमाणं (४५) नगरमाणं (४६) वूहं (४७) पडिवूहं (४८) चारं (४९) पडिचारं (५०) चक्कवूहं (५१) गरुलवूहं (५२) सगडवूहं (५३) जुद्धं (५४) निजुद्धं (५५) जुद्धातिजुद्धं (५६) अट्ठिजुद्धं (५७) मुट्ठिजुद्धं (५८) बाहुजुद्धं (५९) लयाजुद्धं (६०) ईसत्थं (६१) छरुप्पवायं (६२) धणुव्वेयं (६३) हिरन्नपागं (६४) सुवन्नपागं (६५) सुत्तखेडं (६६) वट्टखेडं (६७) नालियाखेडं (६८) पत्तच्छेज्जं (६९) कडगच्छेज्जं (७०) सज्जीवं (७१) निज्जीवं (७२) सउणरुअमिति।

वे कलाएँ इस प्रकार हैं—(१) लेखन, (२) गणित, (३) रूप बदलना, (४) नाटक, (५) गायन, (६) वाद्य बजाना, (७) स्वर जानना, (८) वाद्य सुधारना, (९) समान ताल जानना, (१०) जुआ खेलना, (११) लोगों के साथ वाद-विवाद करना, (१२) पासों से खेलना, (१३) चौपड़ खेलना, (१४) नगर की रक्षा करना, (१५) जल और मिट्टी के संयोग से वस्तु का निर्माण करना, (१६) धान्य निपजाना, (१७) नया पानी उत्पन्न करना, पानी को संस्कार करके शुद्ध करना एवं उष्ण करना, (१८) नवीन वस्त्र बनाना, रंगना, सीना और पहनना, (१९) विलेपन की वस्तु को पहचानना, तैयार करना, लेप करना आदि, (२०) शय्या बनाना, शयन करने की विधि जानना आदि, (२१) आर्या छंद को पहचानना और बनाना, (२२) पहेलियाँ बनाना और बूझना, (२३) मागधिका अर्थात् मगध देश की भाषा में गाथा आदि बनाना, (२४) प्राकृत भाषा में गाथा आदि बनाना, (२५) गीति छंद बनाना (२६) श्लोक (अनुष्टुप् छंद) बनाना, (२७) सुवर्ण बनाना, उसके आभूषण बनाना, पहनना आदि (२८) नई चांदी बनाना, उसके आभूषण बनाना, पहनना आदि, (२९) चूर्ण- गुलाल अबीर आदि

बनाना और उनका उपयोग करना (३०) गहने घडना, पहनना आदि (३१) तरुणी की सेवा करना-प्रसाधन करना (३२) स्त्री के लक्षण जानना (३३) पुरुष के लक्षण जानना (३४) अश्व के लक्षण जानना (३५) हाथी के लक्षण जानना (३६) गाय-बैल के लक्षण जानना (३७) मुर्गों के लक्षण जानना (३८) छत्र-लक्षण जानना (३९) दड-लक्षण जानना (४०) खड्ग-लक्षण जानना (४१) मणि के लक्षण जानना (४२) काकणीरत्न के लक्षण जानना (४३) वास्तुविद्या-मकान-दुकान आदि इमारतो की विद्या (४४) सेना के पडाव के प्रमाण आदि जानना (४५) नया नगर बसाने आदि की कला (४६) व्यूह—मोर्चा बनाना (४७) विरोधी के व्यूह के सामने अपनी सेना का मोर्चा रचना (४८) सैन्यसचालन करना (४९) प्रतिचार—शत्रुसेना के समक्ष अपनी सेना को चलाना (५०) चक्रव्यूह—चाक के आकार मे मोर्चा बनाना (५१) गरुड के आकार का व्यूह बनाना (५२) शकटव्यूह रचना (५३) सामान्य युद्ध करना (५४) विशेषयुद्ध करना (५५) अत्यन्त विशेष युद्ध करना (५६) अट्ठि (यष्टि या अस्थि) से युद्ध करना (५७) मुष्टियुद्ध करना (५८) बाहुयुद्ध करना (५९) लतायुद्ध करना (६०) बहुत को थोडा और थोडे को बहुत दिखलाना (६१) खड्ग की मूठ आदि बनाना (६२) धनुष-बाण सबधी कौशल होना (६३) चादी का पाक बनाना (६४) सोने का पाक बनाना (६५) सूत्र का छेदन करना (६६) खेत जोतना (६७) कमल की नाल का छेदन करना (६८) पत्रछेदन करना (६९) कुडल आदि का छेदन करना (७०) मृत (मूर्छित) को जीवित करना (७१) जीवित को मृत (मृततुल्य) करना और (७२) काक घूक आदि पक्षियो की बोली पहचानना।

विवेचन—भारतवर्ष की प्रमुख तीनो धर्मपरम्पराओ के साहित्य मे कलाओ के उल्लेख उपलब्ध होते हैं। वैदिक परम्परा के रामायण, महाभारत, शुक्रनीति, वाक्यपदीय आदि प्रधान ग्रन्थो मे, बौद्ध परम्परा के ललितविस्तर मे कलाओ का वर्णन किया गया है। किन्तु इनकी सख्या सर्वत्र समान नही है। कही कलाओ की सख्या ६४ बतलाई गई है तो क्षेमेन्द्र ने अपने कलाविलास ग्रन्थ मे सौ से भी अधिक का वर्णन किया है। बौद्ध साहित्य मे इनकी सख्या ८६ कही गई है। जैनसाहित्य मे भी कलाओ की सख्या यद्यपि सर्वत्र समान नही है तथापि प्राय पुरुषो के लिए ७२ और महिलाओ के लिए ६४ कलाओ का ही उल्लेख मिलता है। सख्या मे यह जो भिन्नता है वह कोई आश्चर्य का विषय नही है, क्योकि कलाओ का सबध शिक्षण के साथ है और एक का दूसरी मे समावेश हो जाना साधारण बात है।

ध्यान देने योग्य तो यह है कि कलाओ का चयन कितनी दूरदृष्टि से किया गया है। कलाओ के नामो को ध्यानपूर्वक देखने से स्पष्ट विदित हो जाता है कि इनका अध्ययन सूत्र से, अर्थ से तथा अभ्यासपूर्वक करने से जीवन मे किस प्रकार की जागृति उत्पन्न हो जाती है। ये कलाएँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को स्पर्श करती हैं, इनके अध्ययन से जीवन की परिपूर्णता प्राप्त होती है। इनमे शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास की क्षमता निहित है। गीत, नृत्य जैसे मनोरजन के विषयो की भी उपेक्षा नही की गई है। कारीगरी सबधी समस्त शाखाओ का समावेश किया गया है तो युद्ध सबधी बारीकिया भी शामिल की गई है। इनमे गणित विषय को प्रधान माना गया है।

स्पष्ट है कि प्राचीन काल की शिक्षापद्धति जीवन के सर्वांगीण विकास मे अत्यन्त सहायक थी। इन कलाओ के स्वरूप को सन्मुख रखकर आज की शिक्षानीति निर्धारित की जाए तो वह बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

उस युग मे कलाशिक्षक का कितना सन्मान समाज मे था, यह तथ्य भी प्रस्तुत सूत्र से प्रकट होता है।

कलाचार्य को प्रतिदान

१००—तए ण से कलायरिए मेह कुमार लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउणिरुअपज्ज वसाणाओ बावत्तरिं कलाओ सुत्तओ य अत्थओ य करणओ य सिहावेति, सिक्खावेति, सिहावेत्ता सिक्खावेत्ता अम्मापिऊण उवणेति।

तए ण मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो तं कलायरिय मधुरेहिं वयणेहिं विपुलेण वत्थ-गंध मल्लालकारेण सक्कारेंति, सम्माणेंति सक्कारित्ता सम्माणित्ता विपुल जीवियारिह पीइदाण दलयति, दलइत्ता पडिविसज्जेन्ति।

तत्पश्चात् वह कलाचार्य, मेघकुमार को गणित-प्रधान, लेखन से लेकर शकुनिरुत पर्यन्त बहत्तर कलाएँ सूत्र (मूल पाठ) से, अर्थ से और प्रयोग से सिद्ध कराता है तथा सिखलाता है। सिद्ध करवाकर और सिखलाकर माता-पिता के पास वापिस ले जाता है।

तब मेघकुमार के माता-पिता ने कलाचार्य का मधुर वचनो से तथा विपुल वस्त्र, गध, माला और अलकारो से सत्कार किया, सन्मान किया। सत्कार-सन्मान करके जीविका के योग्य विपुल प्रीतिदान दिया। प्रीतिदान देकर उसे विदा किया।

१०१—तए ण मेहे कुमारे बावत्तरिकलापडिए णवगसुत्तपडिबोहिए अट्ठारस विहिप्पगार देसीभासा विसारए गीइरई गधव्वनट्टकुसले हयजोही गयजोही रहजोही बाहुजोही बाहुप्पमद्दी अल भोगसमत्थे साहसिए वियालचारी जाए यावि होत्था।

तब मेघकुमार बहत्तर कलाओ मे पडित हो गया। उसके नौ अग—दो कान, दो नेत्र, दो नासिका, जिह्वा, त्वचा और मन बाल्यावस्था के कारण जो सोये-से थे अर्थात् अव्यक्त चेतना वाले थे, वे जागृत से हो गये। अठारह प्रकार की देशी भाषाओ मे कुशल हो गया। वह गीति मे प्रीति वाला, गीत और नृत्य मे कुशल हो गया। वह अश्वयुद्ध रथयुद्ध और बाहुयुद्ध करने वाला बन गया। अपनी बाहुओ से विपक्षी का मर्दन करने मे समर्थ हो गया। भोग भोगने का सामर्थ्य उसमे आ गया। साहसी होने के कारण विकालचारी—आधी रात मे भी चल पडने वाला बन गया।

मेघकुमार का पाणिग्रहण

१०२—तए ण तस्स मेहकुमारस्स अम्मापियारो मेह कुमार बावत्तरिकलापडित जाव वियाल चारी जाय पासंति। पासित्ता अट्ठ पासायवडिंसए कारेन्ति अब्भुग्गयमुसियपहसिए विव मणि-कणग रयण भत्तिचित्ते, वाउद्धुतविजयवेजयती-पडागा-छत्ताइच्छत्तकलिए, तुगे, गगणतलमभिलघमाण सिहरे, जालतररयणपजरुम्मिलियव्व मणिकणगथूभियाए, वियसियसयपत्तपुडरीए, तिलयरयणद्ध चदच्चिए नानामणिमयदामालकिए, अतो बहिं च सण्हे तवणिज्जरुइलवालुयापत्थरे, सुहफासे सस्सि रीयरूवे पासाईए जाव (दरिसणिज्जे अभिरूवे) पडिरूवे।

तत्पश्चात् मेघकुमार के माता-पिता ने मेघकुमार को बहत्तर कलाओं में पंडित यावत् विकालचारी हुआ देखा। देखकर आठ उत्तम प्रासाद बनवाए। वे प्रासाद बहुत ऊँचे थे। अपनी उज्ज्वल कान्ति के समूह से हँसते हुए से प्रतीत होते थे। मणि, सुवर्ण और रत्नों की रचना से विचित्र थे। वायु से फहराती हुई और विजय को सूचित करने वाली वैजयन्ती पताकाओं से तथा छत्रातिछत्रों (एक दूसरे के ऊपर रहे हुए छत्रों) से युक्त थे। वे इतने ऊँचे थे कि उनके शिखर आकाशतल का उल्लंघन करते थे। उनकी जालियों के मध्य में रत्नों के पंजर ऐसे प्रतीत होते थे, मानो उनके नेत्र हों। उनमें मणियों और कनक की भूमिकाएँ (स्तूपिकाएँ) थीं। उनमें साक्षात् अथवा चित्रित किये हुए शतपत्र और पुण्डरीक कमल विकसित हो रहे थे। वे तिलक रत्नों एवं अर्द्ध चन्द्रों—एक प्रकार के सोपानों से युक्त थे, अथवा भित्तियों में चन्दन आदि के आलेख (हाथे) चर्चित थे। नाना प्रकार की मणिमय मालाओं से अलंकृत थे। भीतर और बाहर से चिकने थे। उनके आंगन में सुवर्णमय रुचिर वालुका बिछी थी। उनका स्पर्श सुखप्रद था। रूप बड़ा ही शोभन था। उन्हें देखते ही चित्त में प्रसन्नता होती थी। तावत् [वे महल दर्शनीय सुन्दर एवं] प्रतिरूप थे—अत्यन्त मनोहर थे।

१०३—एगं च णं महं भवणं कारेंति—अणेगखंभसयसन्निविट्ठं लीलट्ठियसालभंजियागं अब्भुग्गय-सुकय-वइरवेइया-तोरण-वररइय-सालभंजिया-सुसिलिट्ठ-विसिट्ठ-लट्ठ संठित-पसत्थ वेरुलिय-खंभ-नाणामणि-कणग रयणखचितउज्जलं बहुसम-सुविभत्त निचिय रमणिज्ज भूमिभागं ईहामिय०जाव[1] भत्तिचित्तं खंभुग्गय वइरवेइयापरिगयाभिरामं विज्जाहरजमलजुयलजुत्तं पिव अच्चीसहस्स मालणीयं रूवगसहस्सकलियं भिसमाणं भिब्भिसमाणं चक्खुल्लोयणलेसं सुहफासं सस्सिरीयरूवं कंचण रयणथूभियागं नाणाविहपंचवन्नघंटा-पडाग-परिमंडियग्गसिरं धवलमरीचिकवयं विणिम्मुयंतं लाउल्लोइयमहियं जाव[2] गंधवट्टिभूयं पासाईयं दरिसणिज्जं अभिरूवं पडिरूवं।

और एक महान् भवन (मेघकुमार के लिए) बनवाया गया। वह अनेक सैकड़ों स्तंभों पर बना हुआ था। उसमें लीलायुक्त अनेक पुतलियाँ स्थापित की हुई थीं। उसमें ऊँची और सुनिर्मित वज्ररत्न की वेदिका थी और तोरण थे। मनोहर निर्मित पुतलियों सहित उत्तम, मोटे एवं प्रशस्त वैडूर्य रत्न के स्तंभ थे, वे विविध प्रकार के मणियों, सुवर्ण तथा रत्नों से खचित होने के कारण उज्ज्वल दिखाई देते थे। उनका भूमिभाग बिलकुल सम, विशाल, पक्का और रमणीय था। उस भवन में ईहामृग, वृषभ, तुरग, मनुष्य, मकर आदि के चित्र चित्रित किए हुए थे। स्तंभों पर बनी वज्ररत्न की वेदिका से युक्त होने के कारण रमणीय दिखाई पड़ता था। समान श्रेणी में स्थित विद्याधरों के युगल यंत्र द्वारा चलते दीख पड़ते थे। वह भवन हजारों किरणों से व्याप्त और हजारों चित्रों से युक्त होने से देदीप्यमान और अतीव देदीप्यमान था। उसे देखते ही दर्शक के नयन उसमें चिपक-से जाते थे। उसका स्पर्श सुखप्रद था और रूप शोभासम्पन्न था। उसमें सुवर्ण, मणि एवं रत्नों की स्तूपिकाएँ बनी हुई थीं। उसका प्रधान शिखर नाना प्रकार की, पांच वर्णों की एवं घंटाओं सहित पताकाओं से सुशोभित था। वह चहुँ ओर देदीप्यमान किरणों के समूह को फैला रहा था। वह लिपा था, घुला था और चंदेवा से युक्त था। यावत् वह भवन गंध की वर्ती जैसा जान पड़ता था। वह चित्त को प्रसन्न करने वाला, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप था—अतीव मनोहर था।

१-२ प्र. अ. सूत्र ३१

१०४—तए णं तस्स मेहकुमारस्स अम्मापियरो मेहं कुमारं सोहणंसि तिहि-करण-नक्खत्त मुहुत्तंसि सरिसियाणं सरिसव्वयाणं सरिसत्तयाणं सरिसलावन्न रूव-जोव्वण-गुणोववेयाणं सरिसए हिन्तो रायकुलेहिन्तो आणिल्लियाणं पसाहणट्ठंग-अविहववहु-ओवयणमंगल-सुजंपियाहिं अट्ठहिं रायवरकण्णाहिं सद्धिं एगदिवसेणं पाणिं गिण्हाविंसु।

तत्पश्चात् मेघकुमार के माता-पिता ने मेघकुमार का शुभ तिथि, करण, नक्षत्र और मुहूर्त में शरीरपरिमाण से सदृश, समान उम्र वाली, समान त्वचा (कान्ति) वाली, समान लावण्य वाली, समान रूप (आकृति) वाली, समान यौवन और गुणों वाली तथा अपने कुल के समान राजकुलों से लाई हुई आठ श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ, एक ही दिन—एक ही साथ, आठों अंगों में अलंकार धारण करने वाली सुहागिन स्त्रियों द्वारा किये मंगलगान एवं दधि अक्षत आदि मांगलिक पदार्थों के प्रयोग द्वारा पाणिग्रहण करवाया।

प्रीतिदान

१०५—तए णं तस्स मेहस्स अम्मापियरो इमं एयारूवं पीइदाणं दलयइ-अट्ठ हिरण्णकोडीओ, अट्ठ सुवण्णकोडीओ, गाहानुसारेण भाणियव्वं जाव[1] पेसणकारियाओ, अन्नं च विपुलं धण-कणग रयण-मणि मोत्तिय-संख सिल-प्पवाल रत्तरयण संतसारसावतेज्जं अलाहि जाव आसत्तमाओ कुल वंसाओ पकामं दाउं पकामं भोत्तुं पकामं परिभाएउं।

तत्पश्चात् मेघकुमार के माता-पिता ने (उन आठ कन्याओं को) इस प्रकार प्रीतिदान दिया—आठ करोड़ हिरण्य (चांदी), आठ करोड़ सुवर्ण, आदि गाथाओं के अनुसार समझ लेना चाहिए, यावत् आठ-आठ प्रेक्षणकारिणी (नाटक करने वाली) अथवा पेषणकारिणी (पीसने वाली) तथा और भी विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मोती, शंख, मूंगा, रक्त रत्न (लाल) आदि उत्तम सारभूत द्रव्य दिया, जो सात पीढ़ी तक दान देने के लिये, भोगने के लिए, उपयोग करने के लिए और बँटवारा करके देने के लिए पर्याप्त था।

१०६—तए णं से मेहे कुमारे एगमेगाए भारियाए एगमेगं हिरण्णकोडिं दलयति, एगमेगं सुवन्नकोडिं दलयति, जाव एगमेगं पेसणकारिं दलयति, अन्नं च विपुलं धणकणगं जाव परिभाएउं दलयति।

तत्पश्चात् उस मेघकुमार ने प्रत्येक पत्नी को एक-एक करोड़ हिरण्य दिया, एक-एक करोड़ सुवर्ण दिया, यावत् एक-एक प्रेक्षणकारिणी या पेषणकारिणी दी। इसके अतिरिक्त अन्य विपुल धन कनक आदि दिया, जो यावत् दान देने, भोगोपभोग करने और बँटवारा करने के लिए सात पीढ़ियों तक पर्याप्त था।

विवेचन—इस विवाह-प्रसंग पर दी गई वस्तुओं की सूची को देखने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि गृहस्थी के उपयोग में आने वाली समस्त वस्तुएँ दी गई थीं, जिससे वे बिना किसी परेशानी के अपना काम चला सकें, उन्हें परमुखप्रेक्षी नहीं होना पड़े।

१०७—तए णं से मेहे कुमारे उप्पिं पासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं वरतरुणिसंप

---

[1] टीकाकार के मतानुसार य गाथाएँ उपलब्ध नहीं हैं। अन्य ग्रन्थों से दूसरी गाथाएँ उन्होंने उद्धृत की हैं। देखिए टीका पृ ४७ (सिद्धचक्रसाहित्यप्रचारकसमिति-संस्करण)।

उत्तेहिं बत्तीसइबद्धएहिं नाडएहिं उवगिज्जमाणे उवगिज्जमाणे उवलालिज्जमाणे उवलालिज्जमाणे सद्द फरिस-रस रूव-गध विउले माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभवमाणे विहरति।

तत्पश्चात् मेघकुमार श्रेष्ठ प्रासाद के ऊपर रहा हुआ, मानो मृदगो के मुख फूट रहे हो, इस प्रकार उत्तम स्त्रियो द्वारा किये हुए, बत्तीसबद्ध नाटको द्वारा गायन किया जाता हुआ तथा क्रीडा करता हुआ, मनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रूप और गध की विपुलता वाले मनुष्य सम्बन्धी कामभोगो को भोगता हुआ रहने लगा।

भगवान् का आगमन

१०८—तेण कालेण तेण समएण समणे भगव महावीरे पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे गामाणुगाम दूइज्जमाणे सुहसुहेणे विहरमाणे जेणामेव रायगिहे नगरे गुणसिलए चेइए जाव[1] विहरति।

उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर अनुक्रम से चलते हुए, एक गाव से दूसरे गाव जाते हुए, सुखे-सुखे विहार करते हुए, जहा राजगृह नगर था और जहा गुणशील नामक चैत्य था, यावत् [वहाँ पधारे। पधार कर यथोचित स्थान ग्रहण किया। ग्रहण करके] ठहरे।

१०९—तए ण से रायगिहे नगरे सिंघाडग तिग चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु महया बहुजणसद्दे ति वा (जणवूहे ति वा, जणबोले ति वा, जणकलकले ति वा, जणुम्मीति वा, जणुक्कलिया ति वा, जणसन्निवाए ति वा,) जाव[2] बहवे उग्गा भोगा जाव[3] रायगिहस्स नगरस्स मज्झमज्झेण एगदिसिं एगाभिमुहा निग्गच्छति। इम च ण मेहे कुमारे उप्पि पासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुयगमत्थएहिं जाव माणुस्सए कामभोगे भुजमाणे रायमग्ग च आलोएमाणे एव च ण विहरति।

तत्पश्चात् राजगृह नगर मे शृगाटक—सिंघाडे के आकार के मार्ग, तिराहे, चौराहे, चत्वर, चतुर्मुख पथ, महापथ आदि मे बहुत से लोगो का शोर होने लगा। यावत् [लोग इकट्ठे होने लगे, लोग अव्यक्त और व्यक्त वाणी मे बाते करने लगे, भीड हो गई, लोग इधर-उधर से आकर एक स्थान पर जमा होने लगे,] बहुतेरे उग्रकुल के, भोगकुल के तथा अन्य सभी लोग यावत् राजगृह नगर के मध्य भाग मे होकर एक ही दिशा मे, एक ही ओर मुख करके निकलने लगे। उस समय मेघकुमार अपने प्रासाद पर था। मानो मृदगो का मुख फूट रहा हो, इस प्रकार गायन किया जा रहा था। यावत् मनुष्य सबधी कामभोग भोग रहा था और राजमार्ग का अवलोकन करता-करता विचर रहा था।

मेघकुमार की जिज्ञासा

११०—तए ण से मेहे कुमारे ते बहवे उग्गे भोगे जाव[4] एगदिसाभिमुहे पासति पासित्ता कचुइज्जपुरिस सद्दावेति, सद्दावित्ता एव वयासी—'किं ण भो देवाणुप्पिया! अज्ज रायगिहे नगरे इदमहेति वा, खदमहेति वा, एव रुद्द सिव वेसमण-नाग-जक्ख भूय-नई-तलाय-रुक्ख-चेतिय-पव्वय-उज्जाण गिरिजत्ताइ वा? जओ ण बहवे उग्गा भोगा जाव[5] एगदिसिं एगाभिमुहा निग्गच्छति?'

तब वह मेघकुमार उन बहुतेरे उग्रकुलीन भोगकुलीन यावत् सब लोगो को एक ही दिशा मे

१ प्र अ सूत्र ८ २-३-४-५ औप सूत्र २७

मुख किये जाते देखता है। देखकर कचुकी पुरुष को बुलाता है और बुलाकर इस प्रकार कहता है—हे देवानुप्रिय ! क्या आज राजगृह नगर मे इन्द्र-महोत्सव है ? स्कद (कार्त्तिकेय) का महोत्सव है ? या रुद्र, शिव, वैश्रमण (कुबेर), नाग, यक्ष, भूत, नदी, तडाग, वृक्ष, चैत्य, पर्वत, उद्यान या गिरि (पर्वत) की यात्रा है ? जिससे बहुत से उग्र-कुल तथा भोग-कुल आदि के सब लोग एक ही दिशा मे और एक ही ओर मुख करके निकल रहे हैं ?'

कचुकी का निवेदन

१११—तए ण से कचुइज्जपुरिसे समणस्स भगवओ महावीरस्स गहियागमणपवित्तीए मेहं कुमार एव वयासी— नो खलु देवाणुप्पिया ! अज्ज रायगिहे नयरे इदमहेति वा जाव गिरिजत्ताओ वा, ज ण एए उग्गा जाव[1] एगदिसि एगाभिमुहा निग्गच्छति, एव खलु देवाणुप्पिया ! समणे भगव महावीरे आइगरे तित्थयरे इहमागते, इह सपत्ते, इह समोसढे, इह चेव रायगिहे नयरे गुणसिलए चेइए अहापडि० जाव विहरति ।

तब उस कचुकी पुरुष ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के आगमन का वृत्तान्त जानकर मेघकुमार को इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय ! आज राजगृह नगर मे इन्द्रमहोत्सव या यावत् गिरियात्रा आदि नही है कि जिसके निमित्त यह उग्रकुल के, भोगकुल के तथा अन्य सब लोग एक ही दिशा में, एकाभिमुख होकर जा रहे है। परन्तु देवानुप्रिय ! श्रमण भगवान् महावीर धर्म-तीर्थ की आदि करने वाले, तीर्थ की स्थापना करने वाले यहा आये हैं, पधार चुके हैं, समवसृत हुए हैं और इसी राजगृह नगर मे, गुणशील चैत्य मे यथायोग्य अवग्रह की याचना करके विचर रहे हैं।

११२—तए ण से मेहे कचुइज्जपुरिसस्स अतिए एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठे कोडुबियपुरिसे सद्दावेति, सद्दावित्ता एव वयासी—'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! चाउग्घट आसरह जुत्तामेव उवट्ठवेह ।'

तह त्ति उवणेंति ।

तत्पश्चात मेघकुमार कचुकी पुरुष से यह बात सुनकर एव हृदय मे धारण करके, हृष्ट-तुष्ट होता हुआ कौटुम्बिक पुरुषों को बुलवाता है और बुलवाकर इस प्रकार कहता है—हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही चार घटाओ वाले अश्वरथ को जोत कर उपस्थित करो ।

वे कौटुम्बिक पुरुष 'बहुत अच्छा' कह कर रथ जोत लाते हैं ।

मेघ की भगवत्-उपासना

११३—तए ण मेहे ण्हाए जाव[2] सव्वालकारविभूसिए चाउग्घट आसरह दुरूढे समाणे सकोरटमल्लदामेण छत्तेण धरिज्जमाणेण महया भड-चडगर विद-परियाल-सपरिवुडे रायगिहस्स नगरस्स मज्झमज्झेण निग्गच्छति । निग्गच्छित्ता जेणामेव गुणसिलए चेइए तेणामेव उवागच्छति । उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स छत्तातिछत्त पडागातिपडाग विज्जाहरचारणे जभए य

१-२ और सूत्र ९७

देवे ओवयमाणे उप्पयमाणे पासति । पासित्ता चाउग्घटाओ आसरहाओ पच्चोरुहति । पच्चोरुहित्ता समणं भगवं महावीर पचविहेण अभिगमेण अभिगच्छति । तजहा—

[१] सचित्ताण दव्वाण विउसरणयाए ।
[२] अचित्ताण दव्वाण अविउसरणयाए ।
[३] एगसाडियउत्तरासगकरणेण ।
[४] चक्खुप्फासे अजलिपग्गहेण ।
[५] मणसो एगत्तीकरणेण । जेणामेव समणे भगव महावीरे तेणामेव उवागच्छति । उवागच्छित्ता समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेति । करित्ता वदइ, णमसइ, वदित्ता णमसित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स णच्चासन्ने णाइदूरे सुस्सूसमाणे नमसमाणे पजलियउडे अभिमुहे विणएण पज्जुवासइ ।

तत्पश्चात् मेघकुमार ने स्नान किया । [कौतुक, मगल, प्रायश्चित्त आदि किया] सब अलकारो से विभूषित हुआ । फिर चार घटा वाले अश्वरथ पर आरूढ हुआ । कोरट वृक्ष के फूलो की माला वाले छत्र को धारण किया । सुभटो के विपुल समूह वाले परिवार से घिरा हुआ, राजगृह नगर के बीचो-बीच होकर निकला । निकलकर जहाँ गुणशील नामक चैत्य था, वहाँ आया । आकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के छत्र पर छत्र और पताकाओ पर पताका आदि अतिशयो को देखा तथा विद्याधरो, चारण मुनियो और जृ भक देवो को नीचे उतरते एव ऊपर चढते देखा । यह सब देखकर चार घटा वाले अश्वरथ से नीचे उतरा । उतर कर पाच प्रकार के अभिगम करके श्रमण भगवान् महावीर के सन्मुख चला । वह पाच अभिगम इस प्रकार हैं—

(१) पुष्प, पान आदि सचित्त द्रव्यो का त्याग ।
(२) वस्त्र, आभूषण आदि अचित्त द्रव्यो का अत्याग ।
(३) एक शाटिका (दुपट्टे) का उत्तरासग ।
(४) भगवान् पर दृष्टि पडते ही दोनो हाथ जोडना ।
(५) मन को एकाग्र करना ।

यह अभिग्रह करके जहा श्रमण भगवान् महावीर थे, वहा आया । आकर श्रमण भगवान् महावीर को दक्षिण दिशा से आरम्भ करके (तीन बार) प्रदक्षिणा की । प्रदक्षिणा करके भगवान् को स्तुति रूप वन्दन किया और काय से नमस्कार किया । वन्दन नमस्कार करके श्रमण भगवान् महावीर के अत्यन्त समीप नही और अति दूर भी नहीं, ऐसे समुचित स्थान पर बैठकर धर्मोपदेश सुनने की इच्छा करता हुआ, नमस्कार करता हुआ, दोनो हाथ जोडे, सन्मुख रह कर विनयपूर्वक प्रभु की उपासना करने लगा ।

भगवान् की देशना

११४—तए ण समणे भगव महावीरे मेहकुमारस्स तीसे य महतिमहालियाए परिसाए मज्झगए विचित्त धम्ममाइक्खइ, जहा जीवा बज्झति, मुच्चति, जह य सकिलिस्सति । धम्मकहा भाणियव्वा, जाव[1] परिसा पडिगया ।

1 औप. ७१-७९

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ने मेघकुमार को और उस महती परिषद् का परिषद् के मध्य में स्थित होकर विचित्र प्रकार के श्रुतधर्म और चारित्रधर्म का कथन किया। जिस प्रकार जीव कर्मों से बद्ध होते हैं, जिस प्रकार मुक्त होते है और जिस प्रकार सक्लेश को प्राप्त होते हैं, यह सब धर्मकथा औपपातिक सूत्र के अनुसार कह लेनी चाहिए। यावत् धर्मदेशना सुनकर परिषद् अर्थात् जन-समूह वापिस लौट गया।

प्रव्रज्या का सकल्प

११५—तए ण मेहे कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए धम्म सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ, करित्ता वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—'सद्दहामि ण भते! णिग्गथ पावयण एव पत्तयामि ण, रोएमि ण, अब्भुट्ठेमि ण भते! णिग्गथ पावयण, एवमेय' भते! तहमेय भते! अवितहमेय भते! इच्छियमेय भते! पडिच्छियमेय भते! इच्छियपडिच्छियमेय भते! से जहेव त तुब्भे वदह। ज नवर देवाणुप्पिया! अम्मापियरो आपुच्छामि, तओ पच्छा मु डे भवित्ता ण पव्वइस्सामि।'

'अहासुह देवाणुप्पिया! मा पडिबध करेह।'

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर के पास से मेघकुमार ने धर्म श्रवण करके और उसे हृदय मे धारण करके, हृष्ट-तुष्ट होकर श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार दाहिनी ओर से आरम्भ करके प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन नमस्कार करके इस प्रकार कहा—भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ, उसे सर्वोत्तम स्वीकार करता हूँ, मैं उस पर प्रतीति करता हूँ। मुझे निर्ग्रन्थ प्रवचन रुचता है, अर्थात् जिनशासन के अनुसार आचरण करने की अभिलाषा करता हू, भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन को अगीकार करना चाहता हूँ, भगवन्! यह ऐसा ही है (जैसा आप कहते हैं), यह उसी प्रकार का है, अर्थात् सत्य है। भगवन्! मैंने इसकी इच्छा की है, पुन-पुन इच्छा की है, भगवन्! यह इच्छित और पुन-पुन इच्छित है। यह वैसा ही है जैसा आप कहते हैं। विशेष बात यह है कि हे देवानुप्रिय! मैं अपने माता-पिता की आज्ञा ले लू, तत्पश्चात् मुण्डित होकर दीक्षा ग्रहण करूगा।'

भगवान् ने कहा—'देवानुप्रिय! जिसमे तुझे सुख उपजे वह कर, उसमे विलम्ब न करना।'

विवेचन—धर्म मुख्यत श्रवण का नहीं किन्तु आचरण का विषय है। अतएव धर्मश्रवण का फल तदनुकूल आचरण होना चाहिए। राजकुमार मेघ ने पहली बार धर्मदेशना श्रवण की और उसी समय उसमें आचरण की बलवती प्रेरणा जाग उठी। बड़े ही भावपूर्ण एव दृढ शब्दों में वह निर्ग्रन्थ प्रवचन के प्रति अपनी आन्तरिक श्रद्धा निवेदन करता है, सामान्य पाठक को उसमें पुनरुक्ति का आभास हो सकता है, किन्तु यह पुनरुक्ति दोष नहीं है, उसकी तीव्रतम भावना, प्रगाढ श्रद्धा और धर्म के प्रति सम्पूर्ण समर्पण की गहरी भावना की अभिव्यक्ति है।

मेघ जब भगवान् से प्रव्रज्या ग्रहण करने का विचार प्रकट करता है तो भगवान् उसे मन्तव्य

भाव का परिचय देते हैं जो उनके जीवन मे निरन्तर परिव्याप्त रहता था। एक राजकुमार और वह भी मगध का राजकुमार शिष्यत्व अगीकार करने को लालायित है, इससे भी भगवान् का समभाव अखडित ही रहता है। गुरु के लिए शिष्य बनाने का प्रयोजन क्या है? शिष्य बनाने से गुरु की एकान्त और एकाग्र साधना मे कुछ न कुछ व्याघात भी उत्पन्न हो सकता है, फिर भी साधु दो कारणो से किसी व्यक्ति को शिष्य रूप मे दीक्षित और स्वीकृत करते है—

(१) साधु विचार करता है कि यह भव्य आत्मा ससार-सागर से तिरने का अभिलाषी है। इसे पथप्रदर्शन की आवश्यकता है। पथप्रदर्शन के बिना बेचारा भटक जाएगा। इस प्रकार के विचार से करुणापूर्वक अपनी साधना मे विक्षेप सहन करके भी उसे शिष्य रूप मे ग्रहण कर लेते है।

(२) दूसरा कारण है शासन की निरन्तर प्रवृत्ति। गुरु-शिष्य की परम्परा चालू रहने से भगवान् का शासन चिरकाल तक चालू रहता है, इस परम्परा के बिना शासन चालू नही रह सकता।

यही कारण है कि भगवान् ने प्रथम तो 'जहासुह देवाणुप्पिया' कहकर मेघकुमार की इच्छा पर ही दीक्षित होना छोड दिया, फिर 'मा पडिबध करेह' कह कर दीक्षित होने के लिए हल्का सकेत भी कर दिया।

माता पिता के समक्ष सकल्पनिवेदन

११६—तए ण से मेहे कुमारे समण भगव महावीर वदति, नमसति, वदित्ता नमसित्ता जेणामेव चाउग्घटे आसरहे तेणामेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता चाउग्घट आसरह दुरूहइ, दुरूहित्ता महया भडचडगरपहकरेण रायगिहस्स नगरस्स मज्झमज्झेण जेणेव सए भवणे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घटाओ आसरहाओ पच्चोरुहइ। पच्चोरुहित्ता जेणामेव अम्मापियरो तेणामेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता अम्मापिऊण पायवडण करेइ। करित्ता एव वयासी—'एव खलु अम्म याओ! मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए धम्मे णिसते, से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए।'

तत्पश्चात् मेघकुमार ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन किया, अर्थात् उनकी स्तुति की, नमस्कार किया, स्तुति-नमस्कार करके जहाँ चार घटाओ वाला अश्वरथ था, वहा आया। आकर चार घटाओ वाले अश्व-रथ पर आरूढ हुआ। आरूढ होकर महान सुभटो और बडे समूह वाले परिवार के साथ राजगृह के बीचो-बीच होकर अपने घर आया। चार घटाओ वाले अश्व-रथ से उतरा। उतरकर जहा उसके माता-पिता थे, वही पहुचा। पहुचकर माता-पिता के पैरो मे प्रणाम किया। प्रणाम करके उसने इस प्रकार कहा—'हे माता-पिता! मैंने श्रमण भगवान् महावीर के समीप धर्म श्रवण किया है और मैंने उस धर्म की इच्छा की है, बार-बार इच्छा की है। वह मुझे रुचा है।'

११७—तए ण तस्स मेहस्स अम्मापियरो एव वयासी—'धन्नो सि तुम जाया! सपुन्नो सि तुम जाया! कयत्थो सि तुम जाया! ज ण तुमे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए धम्मे णिसते, से वि य ते धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए।'

तब मेघकुमार के माता-पिता इस प्रकार बोले—'पुत्र! तुम धन्य हो, पुत्र! तुम पूरे पुण्यवान् हो, हे पुत्र! तुम कृतार्थ हो कि तुमने श्रमण भगवान् महावीर के निकट धर्म श्रवण किया और वह धर्म तुम्हें इष्ट, पुन पुन इष्ट और रुचिकर भी हुआ है।'

११८—तए ण से मेहे कुमारे अम्मापियरो दोच्च पि तच्च पि एव वयासी—एव खलु अम्मयाओ ! मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए धम्मे निसते । से वि य ण मे धम्मे इच्छिए, पडिच्छिए, अभिरुइए । त इच्छामि ण अम्मयाओ ! तुब्भेहि अब्भणुन्नाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए मु डे भवित्ता ण आगाराओ अणगारिय पव्वइत्तए ।

तत्पश्चात् मेघकुमार माता-पिता से दूसरी बार और तीसरी बार इस प्रकार कहने लगा—'हे माता-पिता ! मैंने श्रमण भगवान् महावीर से धर्म श्रवण किया है । उस धर्म की मैंने इच्छा की है, बार-बार इच्छा की है, वह मुझे रुचिकर हुआ है । अतएव हे माता-पिता ! मैं आपकी अनुमति प्राप्त करके श्रमण भगवान् महावीर के समीप मुण्डित होकर, गृहवास त्याग कर अनगारिता की प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूँ—मुनिदीक्षा लेना चाहता हूँ ।

माता का शोक

११९—तए ण सा धारिणी देवी तमणिट्ठ अकत अप्पिय अमणुन्न अमणाम असुयपुव्व फरुस गिर सोच्चा णिसम्म इमेण एयारूवेण मणोमाणसिएण महया पुत्तदुक्खेण अभिभूता समाणी सेयागय रोमकूव पगलत विलीणगाया सोयभरपवेवियगी णित्तेया दीणविमणवयणा करयल मलिय व्व कमलमाला तक्खण-ओलुग्ग दुब्बलसरीरा लावन्नसुन्न निच्छाय-गयसिरीया पसिढिलभूसण पडतखुम्मिय सचुन्नियधवलवलय-पब्भट्ठउत्तरिज्जा सूमालविकिन्नकेसहत्था मुच्छावसणट्ठचेयगरुई परसुनियत्त व्व चपगलया निव्वत्तमहिम व्व इदलट्ठी विमुक्कसधिबधणा कोट्टिमतलसि सव्वगेहि धसत्ति पडिया ।

तब धारिणी देवी इस अनिष्ट (अनिच्छित), अप्रिय, अमनोज्ञ (अप्रशस्त) और अमणाम (मन को न रुचने वाली), पहले कभी न सुनी हुई, कठोर वाणी को सुनकर और हृदय में धारण करके महान् पुत्र-वियोग के मानसिक दु ख से पीडित हुई । उसके रोमकूपों में पसीना आकर अंगों से पसीना झरने लगा । शोक की अधिकता से उसके अंग कांपने लगे । वह निस्तेज हो गई । दीन और विमनस्क हो गई । हथेली से मली हुई कमल की माला के समान हो गई । 'मैं प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूँ' यह शब्द सुनने के क्षण में ही वह दु खी और दुर्बल हो गई । वह लावण्यरहित हो गई, कान्तिहीन हो गई, श्रीविहीन हो गई, शरीर दुर्बल होने से उसके पहने हुए अलंकार अत्यन्त ढीले हो गये, हाथों में पहने हुए उत्तम वलय खिसक कर भूमि पर जा पडे और चूर-चूर हो गये । उसका उत्तरीय वस्त्र खिसक गया । सुकुमार केशपाश बिखर गया । मूर्च्छा के वश होने से चित्त नष्ट हो गया—वह बेहोश हो गई । परशु से काटी हुई चंपकलता के समान तथा महोत्सव सम्पन्न हो जाने के पश्चात् इन्द्रध्वज के समान (शोभाहीन) प्रतीत होने लगी । उसके शरीर के जोड ढीले पड गये । ऐसी अवस्था होने से वह धारिणी देवी सब अंगों से धस् धडाम से पृथ्वीतल (फर्श) पर गिर पडी ।

माता-पुत्र का संवाद

१२०—तए ण सा धारिणी देवी ससभमोवत्तियाए तुरिय कचणभिगार-मुहविणिग्गय सीयलजल विमलधाराए परिसिचमाणा निव्वावियगायलट्ठी उक्खेवण-तालविट-वीयणग-जणियवाएण सफुसिएण अतेउरपरिजणेण आसासिया समाणी मुत्तावलिसन्निगासपवडतअसुधाराहि सिचमाणी

पओहरे कलुणविमणदीना रोयमाणी कदमाणी तिप्पमाणी सोयमाणी विलवमाणी मेह कुमार एव वयासी—

तत्पश्चात् वह धारिणी देवी, सभ्रम के साथ शीघ्रता से सुवणकलश के मुख से निकली हुई शीतल जल की निमल धारा मे सिचन की गई अर्थात् उस पर ठडा जल छिडका गया। अतएव उसका शरीर शीतल हो गया। उत्क्षेपक (एक प्रकार के बास के पखे) से, तालवृ त (ताड के पत्ते के पखे) से तथा वीजनक (जिसकी डडी अदर से पकडी जाय, ऐसे बाँस के पखे) से उत्पन्न हुई तथा जलकणो से युक्त वायु से अन्त पुर के परिजनो द्वारा उसे आश्वासन दिया गया। तब वह होश मे आई। तब धारिणी देवी मोतियो की लडी के समान अश्रुधार से अपने स्तनो को सीचने-भिगोने लगी। वह दयनीय, विमनस्क और दीन हो गई। वह रुदन करती हुई, क्रन्दन करती हुई, पसीना एव लार टपकाती हुई, हृदय मे शोक करती हुई और विलाप करती हुई मेघकुमार से इस प्रकार कहने लगी—

१२१—तुम सि ण जाया! अम्ह एगे पुत्ते इट्ठे कते पिए मणुन्ने मणामे थेज्जे वेसासिए सम्मए बहुमए अणुमए भडकरडगसमाणे रयणे रयणभूए जीवियउस्सासए, हिययाणदजणणे उबरपुप्फ व दुल्लभे सवणयाए किमग पुण पासणयाए? णो खलु जाया! अम्हे इच्छामो खणमवि विप्पओग सहित्तए। त भु जाहि ताव जाया! विपुले माणुस्सए कामभोगे जाव ताव वय जीवामो। तओ अच्छा अम्हेहि कालगएहि परिणयवए वड्डिय कुलवस-ततु-कज्जम्मि निरावयक्खे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए मु डे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइस्ससि।

हे पुत्र! तू हमारा इकलौता बेटा है। तू हमे इष्ट है, कान्त है, प्रिय है, मनोज्ञ है, मणाम है तथा धैय और विश्राम का स्थान है। काय करने मे सम्मत (माना हुआ) है, बहुत काय करने मे बहुत माना हुआ है और काय करने के पश्चात् भी अनुमत है। आभूषणो की पेटी के समान (रक्षण करने योग्य) है। मनुष्यजाति मे उत्तम होने के कारण रत्न है। रत्न रूप है। जीवन के उच्छ्वास के समान है। हमारे हृदय मे आनन्द उत्पन्न करने वाला है। गूलर के फूल के समान तेरा नाम श्रवण करना भी दुलभ है तो फिर दशन की तो बात ही क्या है। हे पुत्र! हम क्षण भर के लिए भी तेरा वियोग नही सहन करना चाहते। अतएव हे पुत्र! प्रथम तो जब तक हम जीवित है, तब तक मनुष्य सम्बन्धी विपुल काम-भोगो को भोग। फिर जब हम कालगत हो जाएँ और तू परिपक्व उम्र का हो जाय—तेरी युवावस्था पूण हो जाय, कुल-वश (पुत्र-पौत्र आदि) रूप ततु का काय वृद्धि को प्राप्त हो जाय, जब सासारिक काय की अपेक्षा न रहे, उस समय तू श्रमण भगवान् महावीर के पास मुण्डित होकर, गृहस्थी का त्याग करके प्रव्रज्या अगीकार कर लेना।'

१२२—तए ण से मेहे कुमारे अम्मापिऊहि एव वुत्ते समाणे अम्मापियर एव वयासी—'तहेव ण त अम्मयाओ! जहेव ण तुम्हे मम एव वदह—तुम सि ण जाया! अम्ह एगे पुत्ते, त चेव जाव निरावयक्खे समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पव्वइस्ससि—एव खलु अम्मयाओ माणुस्सए भवे अधुवे अणियए असासए वसणसउवद्दवाभिभूते विज्जुलयाचचले अणिच्चे जलबुब्बुयसमाणे कुसग्गजलबिंदुसन्निभे सझब्भरागसरिसे सुविणदसणोवमे सडण-पडण विद्धसणधम्मे पच्छा पुर च

ण अवस्सविप्पजहणिज्जे से के ण जाणइ अम्मयाओ ! के पुव्विं गमणाए ? के पच्छा गमणाए ? तं इच्छामि ण अम्मयाओ ! तुब्भेहि अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पव्वइत्तए।

तत्पश्चात् माता-पिता के इस प्रकार कहने पर मेघकुमार ने माता-पिता से कहा—'हे माता-पिता ! आप मुझसे यह जो कहते हैं कि—हे पुत्र ! तुम हमारे इकलौते पुत्र हो, इत्यादि सब पूर्ववत् कहना चाहिए, यावत् सांसारिक कार्य से निरपेक्ष होकर श्रमण भगवान् महावीर के समीप प्रव्रजित होना—सो ठीक है, परन्तु हे माता-पिता ! यह मनुष्यभव ध्रुव नही है अर्थात् सूर्योदय के समान नियमित समय पर पुन पुन प्राप्त होने वाला नही है, नियत नही है अर्थात् इस जीवन में उलटफेर होते रहते है, यह अशाश्वत है अर्थात् क्षण-विनश्वर है, तथा सैकडो व्यसनो एव उपद्रवो से व्याप्त है, बिजली की चमक के समान चचल है, अनित्य है, जल के बुलबुले के समान है, दूब की नोक पर लटकने वाले जलबिन्दु के समान है, सन्ध्यासमय के बादलों की लालिमा के सदृश है, स्वप्नदर्शन के समान है—अभी है और अभी नही है, कुष्ठ आदि से सडने, तलवार आदि से कटने और क्षीण होने के स्वभाव वाला है तथा आगे या पीछे अवश्य ही त्याग करने योग्य है। हे माता-पिता ! इसके अतिरिक्त कौन जानता है कि कौन पहले जाएगा (मरेगा) और कौन पीछे जाएगा ? अतएव हे माता-पिता ! मैं आपकी आज्ञा प्राप्त करके श्रमण भगवान् महावीर के निकट यावत् प्रव्रज्या अगीकार करना चाहता हूँ।'

१२३—तए ण त मेहं कुमारं अम्मापियरो एव वयासी—'इमाओ ते जाया ! सरिसियाओ सरिसत्तयाओ सरिसव्वयाओ सरिसलावण्णरूवजोव्वणगुणोववेयाओ सरिसेहिन्तो रायकुलेहिन्तो आणियल्लियाओ भारियाओ, त भुजाहि ण जाया ! एताहिं सद्धिं विपुले माणुस्सए कामभोगे, तओ पच्छा भुत्तभोगी समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पव्वइस्ससि।'

तत्पश्चात् माता-पिता ने मेघकुमार से इस प्रकार कहा—'हे पुत्र ! यह तुम्हारी भार्याएँ समान शरीर वाली, समान त्वचा वाली, समान वय वाली, समान लावण्य, रूप, यौवन और गुणों से सम्पन्न तथा समान राजकुलो से लाई हुई हैं। अतएव हे पुत्र ! इनके साथ विपुल मनुष्य सबधी कामभोगो को भोगो। तदनन्तर भुक्तभोग होकर श्रमण भगवान् महावीर के निकट यावत् दीक्षा ले लेना।

१२४—तए ण से मेहे कुमारे अम्मापियरं वयासी—'तहे ण अम्मयाओ ! जं णं तुब्भे मम एव वयह—'इमाओ ते जाया ! सरिसियाओ जाव समणस्स भगवओ महावीरस्स पव्वइस्ससि'—एव खलु अम्मयाओ ! माणुस्सगा कामभोगा असुई असासया वतासवा पित्तासवा खेलासवा सुक्कासवा सोणियासवा दुरुस्सासनीसासा दुरुयमुत्त-पुरीस-पूय-बहुपडिपुन्ना उच्चार-पासवण-खेल-जल्ल-सिंघाणग-वंत पित्त-सुक्क सोणितसभवा अधुवा अणियया असासया सडण-पडण विद्धसणधम्मा पच्छा पुरं च णं अवस्सविप्पजहणिज्जा। से के ण अम्मयाओ ! जाणति के पुव्विं गमणाए ? के पच्छा गमणाए ? त इच्छामि ण अम्मयाओ ! जाव पव्वइत्तए।'

तत्पश्चात् मेघकुमार ने माता-पिता से इस प्रकार कहा—हे माता-पिता ! आप मुझे यह जो कहते हैं कि—'हे पुत्र ! तेरी ये भार्याएँ समान शरीर वाली हैं इत्यादि, यावत् इनके साथ भोग भोगकर श्रमण भगवान् महावीर के समीप दीक्षा ले लेना, सो ठीक है, किन्तु हे माता-पिता ! मनुष्यों

के ये कामभोग अर्थात् कामभोग के आधारभूत नर-नारियो के शरीर
से वमन झरता है, पित्त झरता है, कफ झरता है, शुक्र झरना है तथा श
गदे उच्छ्वास-नि श्वास वाले है, खराब मूत्र, मल और पीव से परिपूर्ण
मल, वमन, पित्त, शुक्र और शोणित से उत्पन्न होने वाले हैं। यह ध्रुव न
हैं, सडने, पडने और विध्वस होने के स्वभाव वाले हैं और पहले या पीछे
हैं। हे माता-पिता ! कौन जानता है कि पहले कौन जायगा और प
माता-पिता ! मैं यावत् अभी दीक्षा ग्रहण करना चाहता हू ।'

१२५—तए ण त मेह कुमार अम्मापियरो एव वयासी—'इ
पिउपज्जयागए सुबहु हिरन्ने य सुवन्नेय कसे य दूसे य मणिमोत्तिए
सतसारसावतिज्जे य अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवसाओ पगाम
परिभाएउ, त अणुहोहि ताव जाव जाया ! विपुल माणुस्सग इड्ढि
अणुभूयकल्लाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए पव्वइस्ससि ।

तत्पश्चात् माता-पिता ने मेघकुमार से इस प्रकार कहा—हे
के पितामह और पिता के प्रपितामह से आया हुआ यह बहुत-सा हिरण्य
मणि, मोती, शख, सिला, मूगा, लाल-रत्न आदि सारभूत द्रव्य विद्यमा
पीढियो तक भी समाप्त न हो। इसका तुम खूब दान करो, स्वय भोग
जितना मनुष्यसम्बन्धी ऋद्धि-सत्कार का समुदाय है, उतना सब तुम
कल्याण होकर तुम श्रमण भगवान् महावीर के समक्ष दीक्षा ग्रहण कर ले

१२६—तए ण से मेहे कुमारे अम्मापियर एव वयासी—'त
वदह—'इमे ते जाया ! अज्जग-पज्जग पिउपज्जयागए जाव तओ पच्छा
एव खलु अम्मयाओ ! हिरन्ने य सुवण्णे य जाव सावतेज्जे अग्गिसा
दाइयसाहिए मच्चुसाहिए अग्गिसामन्ने जाव मच्चुसामन्ने सडण-पडण
अवस्सविप्पजहणिज्जे, से के ण जाणइ अम्मयाओ ! के जाव गमणाए
इत्तए ।'

तत्पश्चात् मेघकुमार ने माता-पिता से कहा—हे माता-पिता !
कि—'हे पुत्र ! यह दादा, पडदादा और पिता के पडदादा से आया हु
भोगो और फिर अनुभूत कल्याण होकर दीक्षा ले लेना,—परन्तु हे मा
यावत् स्वापतेय (द्रव्य) सब अग्निसाध्य है—इसे अग्नि भस्म कर सकती
अपहरण कर सकता है हिस्सेदार बटवारा कर सकते हैं और मृत्यु अ
है। इसी प्रकार यह द्रव्य अग्नि के लिए समान है, अर्थात् जसे द्रव्य उ
अग्नि का भी है और इसी तरह चोर, राजा, भागीदार और मृत्यु के लि
पडने और विध्वस्त होने के स्वभाव वाला है।

१२७—तए ण तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो जाहे नो संचाएइ मेह कुमार बहूहि विसयाणुलोमाहि आघवणाहि य पन्नवणाहि य सन्नवणाहि य विन्नवणाहि य, आघवित्तए वा पन्नवित्तए वा, सन्नवित्तए वा ताहे विसयपडिकूलाहि संजमभउव्वेयकारियाहि पन्नवणाहि पन्नवेमाणा एव वयासी—

तत्पश्चात् मेघकुमार के माता-पिता जब मेघकुमार को विषयों के अनुकूल आख्यापना (सामान्य रूप से प्रतिपादन करने वाली वाणी) से, प्रज्ञापना (विशेष रूप से प्रतिपादन करने वाली वाणी) से, संज्ञापना (संबोधन करने वाली वाणी) से, विज्ञापना (अनुनय-विनय करने वाली वाणी) से समझाने, बुझाने, संबोधित करने और मनाने में समर्थ नही हुए, तब विषयों के प्रतिकूल तथा संयम के प्रति भय और उद्वेग उत्पन्न करने वाली प्रज्ञापना से इस प्रकार कहने लगे—

१२८—एस ण जाया! निग्गथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे केवलिए पडिपुण्णे णेयाउए ससुद्धे सल्लगत्तणे सिद्धिमग्गे मुत्तिमग्गे निज्जाणमग्गे निव्वाणमग्गे सव्वदुक्खप्पहीणमग्गे, अहीव एगतदिट्ठीए, खुरो इव एगतधाराए, लोहमया इव जवा चावेयव्वा, वालुयाकवले इव निरस्साए, गगा इव महानदी पडिसोयगमणाए, महासमुद्दो इव भुयाहि दुत्तरे, तिक्ख चकमियव्वय गरुअ लबेयव्व, असिधार व्व सचरियव्व।

हे पुत्र! यह निर्ग्रन्थप्रवचन सत्य (सत्पुरुषों के लिए हितकारी) है, अनुत्तर (सर्वोत्तम) है, कैवलिक—सर्वज्ञकथित अथवा अद्वितीय है, प्रतिपूर्ण अर्थात् मोक्ष प्राप्त कराने वाले गुणों से परिपूर्ण है, नैयायिक अर्थात् न्याययुक्त या मोक्ष की ओर ले जाने वाला है, संशुद्ध अर्थात् सर्वथा निर्दोष है, शल्यकर्त्तन अर्थात् माया आदि शल्यों का नाश करने वाला है, सिद्धि का मार्ग है, मुक्तिमार्ग (पापों के नाश का उपाय) है, निर्याण का (सिद्धिक्षेत्र का) मार्ग है, निर्वाण का मार्ग है और समस्त दुःखों को पूर्णरूपेण नष्ट करने का मार्ग है। जैसे सर्प अपने भक्ष्य को ग्रहण करने में निश्चल दृष्टि रखता है, उसी प्रकार इस प्रवचन में दृष्टि निश्चल रखनी पड़ती है। यह छुरे के समान एक धार वाला है, अर्थात् इसमें दूसरी धार के समान अपवाद रूप क्रियाओं का अभाव है। इस प्रवचन के अनुसार चलना लोहे के जौ चबाना है। यह रेत के कवल के समान स्वादहीन है—विषय-सुख से रहित है। इसका पालन करना गंगा नामक महानदी के सामने पूर में तिरने के समान कठिन है, भुजाओं से महासमुद्र को पार करना है, तीखी तलवार पर आक्रमण करने के समान है, महाशिला जैसी भारी वस्तुओं को गले में बांधने के समान है, तलवार की धार पर चलने के समान है।

१२९—णो खलु कप्पइ जाया! समणाण निग्गथाण आहाकम्मिए वा, उद्देसिए वा, कीयगडे वा, ठविए वा, रइए वा, दुब्भिक्खभत्ते वा, कतारभत्ते वा, वद्दलियाभत्ते वा, गिलाणभत्ते वा, मूलभोयणे वा, कदभोयणे वा, फलभोयणे वा, बीयभोयणे वा, हरियभोयणे वा, भोत्तए वा पायए वा। तुम च ण जाया! सुहसमुचिए णो चेव ण दुहसमुचिए। नाल सीय, नाल उण्ह, नाल खुह, नाल पिवास, नाल वाइयपित्तियसिभियसन्निवाइयविविहे रोगायके उच्चावए गामकटए बावीस परीसहोवसग्गे उदिन्ने सम्म अहियासित्तए। भुजाहि ताव जाया! माणुस्सए कामभोगे, तओ पच्छा भुत्तभोगी समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पव्वइस्ससि।

हे पुत्र! निर्ग्रन्थ श्रमणों को आधाकर्मी आदि दोष, औद्देशिक (उद्देश कर बनाया हुआ),

स्थापित (साधु के लिए रख छोड़ा हुआ), रचित (मोदक आदि के चूर्ण को पुन साधु के लिए मोदक आदि रूप मे तैयार किया हुआ), दुर्भिक्षभक्त (साधु के लिए दुर्भिक्ष के समय बनाया हुआ भोजन), कान्तारभक्त (साधु के निमित्त अरण्य मे बनाया आहार), वदलिका भक्त (वर्षा के समय उपाश्रय मे आकर बनाया भोजन), ग्लानभक्त (रुग्ण गृहस्थ नीरोग होने की कामना से दे, वह भोजन), आदि दूषित आहार ग्रहण करना नही कल्पता है ।

इसी प्रकार मूल का भोजन, कद का भोजन, फल का भोजन, शालि आदि बीजो का भोजन अथवा हरित का भोजन करना भी नही कल्पता है ।

इसके अतिरिक्त हे पुत्र ! तू सुख भोगने योग्य है, दु ख सहने योग्य नही है । तू सर्दी सहने मे समर्थ नही, गर्मी सहने मे समर्थ नही है । भूख नही सह सकता, प्यास नही सह सकता, वात, पित्त, कफ और सन्निपात से होने वाले विविध रोगो (कोढ आदि) को तथा आतको (अचानक मरण उत्पन्न करने वाले शूल आदि) को, ऊँचे-नीचे इन्द्रिय-प्रतिकूल वचनो को, उत्पन्न हुए बाईस परीषहो को और उपसर्गो को सम्यक् प्रकार सहन नही कर सकता । अतएव हे लाल ! तू मनुष्य सम्बन्धी कामभोगो को भोग । बाद मे भुक्तभोग होकर श्रमण भगवान् महावीर के निकट प्रव्रज्या अगीकार करना ।

१३०—तए ण से मेहे कुमारे अम्मापिऊहिं एव वुत्ते समाणे अम्मापियर एव वयासी—तहेव ण त अम्मयाओ ! ज ण तुब्भे मम एव वयह—'एस ण जाया ! निग्गथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे० पुणरवि त चेव जाव तओ पच्छा भुत्तभोगी समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पव्वइस्ससि ।' एव खलु अम्मयाओ ! निग्गथे पावयणे कीवाण कायराण कापुरिसाण इहलोगपडिबद्धाण परलोग-निप्पिवासाण दुरणुचरे पाययजणस्स, णो चेव ण धीरस्स । निच्छियववसियस्स एत्थ किं दुक्कर करणयाए ? त इच्छामि ण अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पव्वइत्तए ।

तत्पश्चात् माता-पिता के इस प्रकार कहने पर मेघकुमार ने माता-पिता से इस प्रकार कहा—हे माता-पिता ! आप मुझे यह जो कहते हैं सो ठीक है कि—हे पुत्र ! यह निग्रन्थप्रवचन सत्य है, सर्वोत्तम है, आदि पूर्वोक्त कथन यहाँ दोहरा लेना चाहिए, यावत बाद मे भुक्तभोग होकर प्रव्रज्या अगीकार कर लेना । परन्तु हे माता-पिता ! इस प्रकार यह निग्रन्थप्रवचन क्लीब—हीन सहनन वाले, कायर—चित्त की स्थिरता से रहित, कुत्सित, इस लोक सम्बन्धी विषयसुख की अभिलाषा करने वाले, परलोक के सुख की इच्छा न करने वाले सामान्य जन के लिए ही दुष्कर है । धीर एव दृढ सकल्प वाले पुरुष को इसका पालन करना कठिन नही है । इसका पालन करने मे कठिनाई क्या है ? अतएव हे माता-पिता ! आपकी अनुमति पाकर मैं श्रमण भगवान् महावीर के निकट प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहता हूँ ।

एक दिवस का राज्य

१३१—तए ण त मेह कुमार अम्मापियरो जाहे नो सचाइति बहूहिं विसयाणुलोमाहि य विसयपडिकूलाहि य आघवणाहि य पन्नवणाहि य सन्नवणाहि य विन्नवणाहि य आघवित्तए वा, पन्नवित्तए वा सन्नवित्तए वा विन्नवित्तए वा, ताहे अकामए चेव मेह कुमार एव वयासी—'इच्छामो ताव जाया ! एगदिवसमवि ते रायसिरिं पासित्तए ।'

१२७—तए ण तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो जाहे नो सचाएइ मेह कुमार बहूहिं विसयाणुलोमाहिं आघवणाहि य पन्नवणाहि य सन्नवणाहि य विन्नवणाहि य, आघवित्तए वा पन्नवित्तए वा, सन्नवित्तए वा ताहे विसयपडिकूलाहिं सजमभउव्वेयकारियाहिं पन्नवणाहिं पन्नवेमाणा एव वयासी—

तत्पश्चात् मेघकुमार के माता-पिता जब मेघकुमार को विषयो के अनुकूल आख्यापना (सामान्य रूप से प्रतिपादन करने वाली वाणी) से, प्रज्ञापना (विशेष रूप से प्रतिपादन करने वाली वाणी) से, सज्ञापना (सबोधन करने वाली वाणी) से, विज्ञापना (अनुनय-विनय करने वाली वाणी) से समझाने, बुझाने, सबोधित करने और मनाने मे समर्थ नही हुए, तब विषयो के प्रतिकूल तथा सयम के प्रति भय और उद्वेग उत्पन्न करने वाली प्रज्ञापना से इस प्रकार कहने लगे—

१२८—एस ण जाया ! निग्गथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे केवलिए पडिपुन्ने णेयाउए ससुद्धे सल्लगत्तणे सिद्धिमग्गे मुत्तिमग्गे निज्जाणमग्गे निव्वाणमग्गे सव्वदुक्खप्पहीणमग्गे, अहीव एगतदिट्ठीए, खुरो इव एगतधाराए, लोहमया इव जवा चावेयव्वा, वालुयाकवले इव निरस्साए, गगा इव महानदी पडिसोयगमणाए, महासमुद्दो इव भुयाहिं दुत्तरे, तिक्ख चक्कमियव्वय गरुअ लबेयव्व, असिधार व्व सचरियव्व ।

हे पुत्र ! यह निर्ग्रन्थप्रवचन सत्य (सत्पुरुषो के लिए हितकारी) है, अनुत्तर (सर्वोत्तम) है, कैवलिक—सर्वज्ञकथित अथवा अद्वितीय है, प्रतिपूर्ण अर्थात् मोक्ष प्राप्त कराने वाले गुणा से परिपूर्ण है, नैयायिक अर्थात् न्याययुक्त या मोक्ष की ओर ले जाने वाला है, सशुद्ध अर्थात् सर्वथा निर्दोष है, शल्यकर्त्तन अर्थात् माया आदि शल्यो का नाश करने वाला है, सिद्धि का मार्ग है, मुक्तिमार्ग (पापों के नाश का उपाय) है, निर्याण का (सिद्धिक्षेत्र का) मार्ग है, निर्वाण का मार्ग है और समस्त दुखो का पूर्णरूपेण नष्ट करने का मार्ग है। जैसे सर्प अपने भक्ष्य को ग्रहण करने मे निश्चल दृष्टि रखता है, उसी प्रकार इस प्रवचन मे दृष्टि निश्चल रखनी पडती है। यह छुरे के समान एक धार वाला है, अर्थात् इसमे दूसरी धार के समान अपवाद रूप क्रियाओ का अभाव है। इस प्रवचन के अनुसार चलना लोहे के जौ चबाना है। यह रेत के कवल के समान स्वादहीन है—विषय सुख से रहित है। इसका पालन करना गगा नामक महानदी के सामने पूर मे तिरने के समान कठिन है, भुजाओ मे महासमुद्र को पार करना है, तीखी तलवार पर आक्रमण करने के समान है, महाशिला जैसी भारी वस्तुओ को गले मे बाधने के समान है, तलवार की धार पर चलने के समान है।

१२९—णो खलु कप्पइ जाया ! समणाण निग्गथाण आहाकम्मिए वा, उद्देसिए वा, कीयगडे वा, ठवियए वा, रइयए वा, दुब्भिक्खभत्ते वा, कतारभत्ते वा, वद्दलियाभत्ते वा, गिलाण भत्ते वा, मूलभोयणे वा, कदभोयणे वा, फलभोयणे वा, बीयभोयणे वा, हरियभोयणे वा, भोत्तए वा पायए वा। तुम च ण जाया ! सुहसमुचिए णो चेव ण दुहसमुचिए। णाल सीय, णाल उण्ह, णाल खुह, णाल पिवास, णाल वाइयपित्तियसिंभियसन्निवाइयविविहे रोगायके उच्चावए गाम कटए बावीस परीसहोवसग्गे उदिन्ने सम्म अहियासित्तए। भु जाहि ताव जाया ! माणुस्सए कामभोगे, तओ पच्छा भुत्तभोगी समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पव्वइस्ससि।

हे पुत्र ! निर्ग्रन्थ श्रमणो को आधाकर्मी औद्देशिक, क्रीतकृत (खरीद कर बनाया हुआ),

स्थापित (साधु के लिए रख छोडा हुआ), रचित (मोदक आदि के चूर्ण को पुन साधु के लिए मोदक आदि रूप मे तैयार किया हुआ), दुर्भिक्षभक्त (साधु के लिए दुर्भिक्ष के समय बनाया हुआ भोजन), कान्तारभक्त (साधु के निमित्त अरण्य मे बनाया आहार), वदलिका भक्त (वर्षा के समय उपाश्रय मे आकर बनाया भोजन), ग्लानभक्त (रुग्ण गृहस्थ नीरोग होने की कामना से दे, वह भोजन), आदि दूषित आहार ग्रहण करना नही कल्पता है।

इसी प्रकार मूल का भोजन, कद का भोजन, फल का भोजन, शालि आदि बीजो का भोजन अथवा हरित का भोजन करना भी नही कल्पता है।

इसके अतिरिक्त हे पुन! तू सुख भोगने योग्य है, दु ख सहने योग्य नही है। तू सर्दी सहने मे समर्थ नही, गर्मी सहने मे समर्थ नही है। भूख नही सह सकता, प्यास नही सह सकता, वात, पित्त, कफ और सन्निपात से होने वाले विविध रोगो (कोढ आदि) को तथा आतको (अचानक मरण उत्पन्न करने वाले शूल आदि) को, ऊँचे-नीचे इन्द्रिय-प्रतिकूल वचनो को, उत्पन्न हुए वाईस परीषहो को और उपसर्गो को सम्यक् प्रकार सहन नही कर सकता। अतएव हे लाल! तू मनुष्य सम्बन्धी कामभोगो को भोग। बाद मे भुक्तभोग होकर श्रमण भगवान् महावीर के निकट प्रव्रज्या अगीकार करना।

१३०—तए ण से मेहे कुमारे अम्मापिऊहिं एव वुत्ते समाणे अम्मापियर एव वयासी—तहेव ण त अम्मायाओ! ज ण तुब्भे मम एव वयह—'एस ण जाया! निग्गथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे० पुणरवि त चेव जाव तओ पच्छा भुत्तभोगी समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पव्वइस्ससि।' एव खलु अम्मयाओ! निग्गथे पावयणे कीवाण कायराण कापुरिसाण इहलोगपडिबद्धाण परलोग निप्पिवासाण दुरणुचरे पाययजणस्स, णो चेव ण धीरस्स। निच्छियववसियस्स एत्थ कि दुक्कर करणयाए? त इच्छामि ण अम्मयाओ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पव्वइत्तए।

तत्पश्चात् माता-पिता के इस प्रकार कहने पर मेघकुमार ने माता-पिता से इस प्रकार कहा—हे माता-पिता! आप मुझे यह जो कहते हैं सो ठीक है कि—हे पुत्र! यह निर्ग्रन्थप्रवचन सत्य है, सर्वोत्तम है, आदि पूर्वोक्त कथन यहाँ दोहरा लेना चाहिए, यावत् बाद मे भुक्तभोग होकर प्रव्रज्या अगीकार कर लेना। परन्तु हे माता-पिता! इस प्रकार यह निर्ग्रन्थप्रवचन क्लीब—हीन सहनन वाले, कायर—चित्त की स्थिरता से रहित, कुत्सित, इस लोक सम्बन्धी विषयसुख की अभिलाषा करने वाले, परलोक के सुख की इच्छा न करने वाले सामान्य जन के लिए ही दुष्कर है। धीर एव दृढ सकल्प वाले पुरुष को इसका पालन करना कठिन नही है। इसका पालन करने मे कठिनाई क्या है? अतएव हे माता पिता! आपकी अनुमति पाकर मैं श्रमण भगवान् महावीर के निकट प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहता हूँ।

एक दिवस का राज्य

१३१—तए ण त मेहं कुमारं अम्मापियरो जाहे नो सचाइति बहूहिं विसयाणुलोमाहिं य विसयपडिकूलाहि य आघवणाहि य पन्नवणाहिं य सन्नवणाहिं य विन्नवणाहिं य आघवित्तए या, पन्नवित्तए वा सन्नवित्तए वा विन्नवित्तए वा, ताहे अकामए चेव मेहं कुमारं एव वयासी—'इच्छामो ताव जाया! एगदिवसमवि ते रायसिरिं पासित्तए।'

तत्पश्चात् जब माता-पिता मेघकुमार को विषयों के अनुकूल और विषयों के प्रतिकूल बहुत सी आख्यापना, प्रज्ञापना और विज्ञापना से समझाने, बुझाने, सम्बोधन करने और विज्ञप्ति करने में समर्थ न हुए, तब इच्छा के बिना भी मेघकुमार से इस प्रकार बोले—'हे पुत्र ! हम एक दिन भी तुम्हारी राज्यलक्ष्मी देखना चाहते हैं। अर्थात् हमारी इच्छा है कि तुम एक दिन के लिए राजा बन जाओ।'

१३२—तए ण से मेहे कुमारे अम्मापियरमणुवत्तमाणे तुसिणीए सचिट्ठइ।

तब मेघकुमार माता-पिता (की इच्छा) का अनुसरण करता हुआ मौन रह गया।

राज्याभिषेक

१३३—तए ण सेणिए राया कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! मेहस्स कुमारस्स महत्थ महग्घ महरिह विउल रायाभिसेय उवट्ठवेह। तए ण ते कोडु बियपुरिसा जाव (महत्थ महग्घ महरिह विउल रायाभिसेय) उवट्ठवेंति।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों—सेवकों को बुलवाया और बुलवा कर ऐसा कहा—'देवानुप्रियो ! मेघकुमार का महान् अर्थ वाले, बहुमूल्य एव महान् पुरुषों के योग्य विपुल राज्याभिषेक (के योग्य सामग्री) तैयार करो।' तत्पश्चात् कौटुम्बिक पुरुषों ने यावत् (महार्थ, बहुमूल्य, महान् पुरुषों के योग्य, विपुल) राज्याभिषेक की सब सामग्री तैयार की।

१३४—तए ण सेणिए राया बहूहिं गणणायग दडणायगेहि य जाव[1] सपरिवुडे मेह कुमार अट्ठसएण सोवन्नियाण कलसाण, रुप्पमयाण कलसाण, सुवण्ण रुप्पमयाण कलसाण, मणिमयाण कलसाण, सुवन्न-मणिमयाण कलसाण, रुप्प-मणिमयाण कलसाण, सुवण्ण रुप्प-मणिमयाण कलसाण, भोमेज्जाण कलसाण सव्वोदएहिं सव्वमट्टियाहि सव्वपुप्फेहिं सव्वगधेहि सव्वमल्लेहिं सव्वोसहिहि य सिद्धत्थएहि य, सव्विड्ढीए सव्वजुईए सव्वबलेण जाव दु दुभि निग्घोस णादियरवेण महया महया रायाभिसेएण अभिसिचइ, अभिसिचित्ता करयल जाव परिग्गहिय दसनह सिरसावत्त मत्थए अजलि कट्टु एव वयासी—

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने बहुत से गणनायकों एव दडनायकों आदि से परिवृत होकर मेघकुमार को, एक सौ आठ सुवर्ण कलशों, इसी प्रकार एक सौ आठ चादी के कलशों, एक सौ आठ स्वर्ण-रजत के कलशों, एक सौ आठ मणिमय कलशों, एक सौ आठ स्वर्ण मणि के कलशों, एक सौ आठ रजत-मणि के कलशों, एक सौ आठ स्वर्ण-रजत-मणि के कलशों और एक सौ आठ मिट्टी के कलशों—इस प्रकार आठ सौ चौसठ कलशों मे सब प्रकार का जल भरकर तथा सब प्रकार की मृत्तिका से, सब प्रकार के पुष्पों से, सब प्रकार के गधों से, सब प्रकार की मालाओं से, सब प्रकार की औषधियों से तथा सरसों से उन्हें परिपूर्ण करके, सर्व समृद्धि, द्युति तथा सब सैन्य के साथ, दुदुभि के निर्घोष की प्रतिध्वनि के शब्दों के साथ उच्चकोटि के राज्याभिषेक से अभिषिक्त किया। अभिषेक करके श्रेणिक राजा ने दोनों हाथ जोड कर मस्तक पर अजलि घुमाकर यावत् इस प्रकार कहा—

१३५—'जय जय णदा ! जय जय भद्दा ! जय णदा भद्द ते, अजिय जिणेहि, जिय पालयाहि,

---

१ प्र सूत्र ३०

जियमज्झे वसाहि, अजिय जिणेहि सत्तुपक्ख, जिय च पालेहि मित्तपक्ख, जाव इदो इव देवाण, चमरो इव असुराण, धरणो इव नागाण, चदो इव ताराण, भरहो इव मणुयाण रायगिहस्स नगरस्स अन्नेसिं च बहूण गामागरनगर जाव खेड कब्बड-दोणमुह-मडव पट्टण-आसम निगम सवाह-सनिवेसाण आहेवच्च जाव पोरेवच्च सामित्त भट्टित्त महत्तरगत्त आणाईसरसेणावच्च कारेमाणे पालेमाणे महयाहय-नट्ट-गीत वाइय तती-तल ताल-तुडिय घण-मुइग-पडुप्पवाइयरवेण विउलाइ भोगभोगाइ भु ज-माणे विहराहि' त्ति कट्टु जयजयसद्द पउजति ।

तए ण से मेहे राया जाए महया जाव[1] विहरइ ।

'हे नन्द ! तुम्हारी जय हो, जय हो । हे भद्र ! तुम्हारी जय हो, जय हो । हे जगनन्द (जगत् को आनन्द देने वाले) ! तुम्हारा भद्र (कल्याण) हो । तुम न जीते हुए को जीतो और जीते हुए का पालन करो । जितो—आधारवानो के मध्य मे निवास करो । नही जीते हुए शत्रुपक्ष को जीतो । जीते हुए मित्रपक्ष का पालन करो । यावत् देवो मे इन्द्र, असुरो मे चमरेन्द्र, नागो मे धरण, ताराओ मे चन्द्रमा एव मनुष्यो मे भरत चक्री की भाति राजगृह नगर का तथा दूसरे बहुतेरे ग्रामो, आकरो, नगरो यावत् खेट, कर्बट, द्रोणमुख, मडब, पट्टन, आश्रम, निगम, सवाह और सन्निवेशो का आधिपत्य यावत् नेतृत्व आदि करते हुए विविध वाद्यो, गीत, नाटक आदि का उपयोग करते हुए विचरण करो ।' इस प्रकार कहकर श्रेणिक राजा ने जय-जयकार किया ।

तत्पश्चात् मेघ राजा हो गया और पर्वतो मे महाहिमवन्त की तरह शोभा पाने लगा ।

१३६ तए ण तस्स मेहस्स रण्णो अम्मापियरो एव वयासी—'भण जाया ! किं दलयामो ? किं पयच्छामो ? किं वा ते हियइच्छिए सामत्थे (मते) ?

तत्पश्चात् माता-पिता ने राजा मेघ से इस प्रकार कहा—'हे पुत्र ! बताओ, तुम्हारे किस अनिष्ट को दूर कर अथवा तुम्हारे इष्ट-जनो को क्या दें ? तुम्हे क्या दें ? तुम्हारे चित्त मे क्या चाह-विचार है ?

सयमोपकरण की माग

१३७ तए ण से मेहे राया अम्मापियर एव वयासी—'इच्छामि ण अम्मयाओ ! कुत्तियावणाओ रयहरण पडिग्गह च उवणेह, कासवय च सद्दावेह ।'

तब राजा मेघ ने माता पिता से इस प्रकार कहा—'हे माता-पिता ! मैं चाहता हूँ कि कुत्रिकापण (जिसके सब जगह की सब वस्तुए मिलती हैं, उस अलौकिक देवाधिष्ठित दुकान) से रजोहरण और पात्र मगवा दीजिए और काश्यप—नापित को बुलवा दीजिए ।

१३८ तए ण से सेणिए राया कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ । सद्दावेत्ता एव वयासी—'गच्छह ण तुब्भे देवाणुप्पिया ! सिरिघराओ तिन्नि सयसहस्साइ गहाय दोहिं सयसहस्सेहिं कुत्तियावणाओ रयहरण पडिग्गहग च उवणेह, सयसहस्सेण कासवय सद्दावेह ।'

तए ण ते कोडु बियपुरिसा सेणिएण रण्णा एव वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा सिरिघराओ तिन्नि

---

१ औपपातिक सूत्र १४

सयसहस्साइं गहाय कुत्तियावणाओ दोहिं सयसहस्सेहिं रयहरणं पडिग्गहं च उवणेन्ति, सयसहस्सेणं कासवयं सद्दावेन्ति।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने अपने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलवाया। बुलवाकर इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो! तुम जाओ, श्रीगृह (खजाने) से तीन लाख स्वर्ण-मोहरें लेकर दो लाख से कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र ले आओ तथा एक लाख देकर नाई को बुला लाओ।

तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष, राजा श्रेणिक के ऐसा कहने पर हृष्ट-तुष्ट होकर श्रीगृह से तीन लाख मोहरें लेकर कुत्रिकापण से, दो लाख से रजोहरण और पात्र लाये और एक लाख मोहरें देकर उन्होंने नाई को बुलवाया।

दीक्षा की तैयारी

१३९ तए णं से कासवए तेहिं कोडुंबियपुरिसेहिं सद्दाविए समाणे हट्ठे जाव (हट्ठतुट्ठ चित्तमाणंदिए जाव हरिसवसविसप्पमाणहियए) ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउयमंगलपायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं वत्थाइं मंगलाइं पवरपरिहिए अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे जेणेव सेणिए राया तेणामेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता सेणियं रायं करयलमंजलिं कट्टु एवं वयासी—'संदिसह णं देवाणुप्पिया! जं मए करणिज्जं।'

तए णं से सेणिए राया कासवयं एवं वयासी—'गच्छाहि णं तुमं देवाणुप्पिया! सुरभिणा गंधोदएणं णिक्के हत्थपाए पक्खालेह। सेयाए चउप्फालाए पोत्तीए मुहं बंधेत्ता मेहस्स कुमारस्स चउरंगुलवज्जे णिक्खमणपाउग्गे अग्गकेसे कप्पेहि।'

तत्पश्चात् कौटुम्बिक पुरुषो द्वारा बुलाया गया वह नाई हृष्ट तुष्ट हुआ यावत् उसका हृदय आनन्दित हुआ। उसने स्नान किया, बलिकर्म (गृहदेवता का पूजन) किया, मषी-तिलक आदि कौतुक, दही दूर्वा आदि मंगल एवं दुःस्वप्न का निवारण रूप प्रायश्चित्त किया। साफ और राजसभा में प्रवेश करने योग्य मांगलिक और श्रेष्ठ वस्त्र धारण किये। थोडे और बहुमूल्य आभूषणों से शरीर को विभूषित किया। फिर जहा श्रेणिक राजा था, वहाँ आया। आकर, दोनो हाथ जोडकर श्रेणिक राजा से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय! मुझे जो करना है, उसकी आज्ञा दीजिए।'

तब श्रेणिक राजा ने नाई से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय! तुम जाओ और सुगंधित गंधोदक से अच्छी तरह हाथ पैर धो लो। फिर चार तह वाले श्वेत वस्त्र से मुँह बाधकर मेघकुमार के बाल दीक्षा के योग्य चार अंगुल छोडकर काट दो।'

१४० तए णं से कासवए सेणिएणं रण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ जाव हियए जाव पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता सुरभिणा गंधोदएणं हत्थपाए पक्खालेइ, पक्खालित्ता सुद्धवत्थेणं मुहं बंधति, बंधित्ता परेण जत्तेणं मेहस्स कुमारस्स चउरंगुलवज्जे णिक्खमणपाउग्गे अग्गकेसे कप्पइ।

तत्पश्चात् वह नापित श्रेणिक राजा के ऐसा कहने पर हृष्ट-तुष्ट और आनन्दितहृदय हुआ। उसने यावत् श्रेणिक राजा का आदेश स्वीकार किया। स्वीकार करके सुगंधित गंधोदक से हाथ पैर धोए। हाथ पैर धोकर शुद्ध वस्त्र से मुँह बाँधा। बाँधकर बडी सावधानी से मेघकुमार के चार अंगुल छोड़कर दीक्षा के योग्य केश काटे।

१४१—तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स माया महरिहेणं हंसलक्खणेणं पडसाडएणं अग्गकेसे पडिच्छइ। पडिच्छित्ता सुरभिणा गंधोदएणं पक्खालेति, पक्खालित्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं चच्चाओ दलयति, दलइत्ता सेयाए पोत्तीए बंधेइ, बंधित्ता रयणसमुग्गयंसि पक्खिवइ, पक्खिवित्ता मंजूसाए पक्खिवइ, पक्खिवित्ता हार वारिधार-सिन्दुवार छिन्नमुत्तावलिपगासाइं अंसूइं विणिम्मुयमाणी विणिम्मुयमाणी रोयमाणी रोयमाणी कंदमाणी कंदमाणी विलवमाणी विलवमाणी एवं वयासी—'एस णं अम्हं मेहस्स कुमारस्स अब्भुदएसु य उस्सवेसु य पसवेसु य तिहीसु य छणेसु य जन्नेसु य पव्वणीसु य अपच्छिमे दरिसणे भविस्सइ त्ति कट्टु उस्सीसामूले ठवेइ।

उस समय मेघकुमार की माता ने उन केशों को बहुमूल्य और हंस के चित्र वाले उज्ज्वल वस्त्र में ग्रहण किया। ग्रहण करके उन्हें सुगंधित गंधोदक से धोया। फिर सरस गोशीर्ष चन्दन उन पर छिड़क कर उन्हें श्वेत वस्त्र में बाँधा। बाँध कर रत्न की डिबिया में रखा। रख कर उस डिबिया को मंजूषा (पेटी) में रखा। फिर जल की धार, निर्गुंडी के फूल एवं टूटे हुए मोतियों के हार के समान अश्रुधार प्रवाहित करती-करती, रोती-रोती, आक्रन्दन करती-करती और विलाप करती-करती इस प्रकार कहने लगी—'मेघकुमार के केशों का यह दर्शन राज्यप्राप्ति आदि अभ्युदय के अवसर पर, उत्सव (प्रियसमागम) के अवसर पर, प्रसव (पुत्रजन्म आदि) के अवसर पर, तिथियों के अवसर पर, इन्द्रमहोत्सव आदि के अवसर पर, नागपूजा आदि के अवसर पर तथा कार्तिकी पूर्णिमा आदि पर्वों के अवसर पर हमें अन्तिम दर्शन रूप होगा। तात्पर्य यह है कि इन केशों का दर्शन, केशरहित मेघकुमार का दर्शन रूप होगा।' इस प्रकार कहकर धारिणी ने वह पेटी अपने सिरहाने के नीचे रख ली।

१४२—तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो उत्तरावक्कमणं सीहासणं रयावेंति। मेहं कुमारं दोच्चं पि तच्चं पि सेयपीयएहिं कलसेहिं ण्हावेन्ति, ण्हावेत्ता, पम्हलसुकुमालाए गंधकासाइयाए गायाइं लूहेन्ति, लूहित्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं गायाइं अणुलिंपति, अणुलिंपित्ता नासानीसासवाय वोज्झं जाव [वरपट्टणुग्गय कुसलणरपसंसित अस्सलालापेलव छेयायरियकणगखचियंतकम्मं] हंसलक्खणं पडगसाडगं नियंसेंति, नियंसित्ता हारं पिणद्धंति, पिणद्धित्ता अद्धहारं पिणद्धंति, पिणद्धित्ता एगावलिं मुत्तावलिं कणगावलिं रयणावलिं पालंबं पायपलंबं कडगाइं तुडियाइं केऊराइं अंगयाइं दसमुद्दियाणंतयं कडिसुत्तयं कुंडलाइं चूडामणिं रयणुक्कडं मउडं पिणद्धंति, पिणद्धित्ता दिव्वं सुमणदामं पिणद्धंति, पिणद्धित्ता दद्दरमलयसुगंधिए गंधे पिणद्धंति।

तत्पश्चात् मेघकुमार के माता-पिता ने उत्तराभिमुख सिंहासन रखवाया। फिर मेघकुमार को दो-तीन बार श्वेत और पीत अर्थात् चाँदी और सोने के कलशों से नहलाया। नहला कर रोएँदार और अत्यन्त कोमल गंधकाषाय (सुगंधित कषायले रंग में रंगे) वस्त्र से उसके अंग पोंछे। पोंछ कर सरस गोशीर्ष चन्दन से शरीर पर विलेपन किया। विलेपन करके नासिका के निश्वास की वायु से भी उड़ने योग्य—अति बारीक [श्रेष्ठ पट्टन में निर्मित, कुशल जनों द्वारा प्रशंसित, अश्व के मुख से निकलने वाले फेन के समान कोमल, कुशल कारीगरों ने जिसके किनारे स्वर्ण-खचित किये हैं] तथा हंस-लक्षण वाला (हंस के चिह्न वाला अथवा हंस के सदृश श्वेत) वस्त्र पहनाया। पहना कर अठारह लड़ों का हार पहनाया, नौ लड़ों का अर्द्धहार पहनाया, फिर एकावली, मुक्तावली, कनकावली,

रत्नावली, प्रालव (कंठी) पादप्रलम्ब (पैरो तक लटकने वाला आभूषण), कड़े, त्रुटिक (भुजा का आभूषण), केयूर, अगद, दसो उगलियो मे दस मुद्रिकाएँ, कदोरा, कु डल, चूडामणि तथा रत्नजटित मुकुट पहनाये। यह सब अलकार पहनाकर पुष्पमाला पहनाई। फिर दर्दर मे पकाए हुए चन्दन के सुगन्धित तेल की गध शरीर पर लगाई।

विवेचन—दर्दर—मिट्टी के घडे का मुँह कपडे से बाँध कर अग्नि की आँच से तपाकर तयार किया गया तेल अत्यन्त सुगधयुक्त होता है और उसका गुणकारी तत्त्व प्राय सुरक्षित रहता है।

१४३—तए ण त मेह कुमार गठिय वेढिम पूरिम-सघाइमेण चउव्विहेण मल्लेण कप्परुक्खग पिव अलकियविभूसिय करेंति।

तत्पश्चात् मेघकुमार को सूत से गू थी हुई, पुष्प आदि से वेढी हुई, वास की सलाई आदि से पूरित की गई तथा वस्तु के योग से परस्पर सघात रूप की हुई—इस तरह चार प्रकार की पुष्प मालाओ से कल्पवृक्ष के समान अलकृत और विभूषित किया।

१४४—तए ण से सेणिए राया कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! अणेगखभसयसन्निविट्ठ लीलट्ठियसालभजियाग ईहामिग उसभ-तुरय नर-मगर विहग वालग-किन्नर-रुरु-सरभ-चमर कु जर-वणलय पउमलय भत्तिचित्त घटावलिमहुर-मणहरसर सुभ कत-दरिसणिज्ज निउणोचियमिसिमिसतमणि रयणघटियाजालपरिक्खित्त खभुग्गयवइरवेइयापरिगया भिराम विज्जाहरजमलजतजुत्त पिव अच्चीसहस्समालणीय रूवगसहस्सकलिय भिसमाण भिब्भिसमाण चक्खुल्लोयणलेस्स सुहफास सस्सिरीयरूव सिग्घ तुरिय चवल वेइय पुरिससहस्सवाहिणि सीय उवट्ठवेह।'

तत्पश्चात् राजा श्रेणिक ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और बुलाकर कहा—देवानुप्रिय! तुम शीघ्र ही एक शिविका तैयार करो जो अनेक—सकडो स्तभो से बनी हो, जिसमे क्रीडा करती हुई पुतलियाँ बनी हो, ईहामृग (भेडिया), वृषभ, तुरग—घोडा, नर, मगर, विहग, सर्प, किन्नर, रुरु (काले मृग), सरभ (अष्टापद), चमरी गाय, कुन्जर, वनलता और पद्मलता आदि के चित्रो की रचना से युक्त हो, जिससे घटियो के समूह के मधुर और मनोहर शब्द हो रहे हो, जो शुभ, मनोहर और दर्शनीय हो, जो कुशल कारीगरो द्वारा निर्मित देदीप्यमान मणियो और रत्नो की घु घरुओं के समूह से व्याप्त हो, स्तभ पर बनी हुई वेदिका से युक्त होने के कारण जो मनोहर दिखाई देती हो, जो चित्रित विद्याधर-युगलो से शोभित हो, चित्रित सूर्य की हजार किरणो से शोभित हो, इस प्रकार हजारो रूपो वाली, देदीप्यमान, अतिशय देदीप्यमान, जिसे देखते नेत्रो की तृप्ति न हो, जो सुखद स्पर्श वाली हो, सश्रीक स्वरूप वाली हो, शीघ्र त्वरित चपल और अतिशय चपल हो, अर्थात् जिसे शीघ्रतापूर्वक ले जाया जाये और जो एक हजार पुरुषो द्वारा वहन की जाती हो।

१४५—तए ण ते कोडु बियपुरिसा हट्ठतुट्ठा जाव उवट्ठवेंति। तए ण से मेहे कुमारे सीय दुरूहइ, दुरूहित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सन्निसन्ने।

वे कौटुम्बिक पुरुष हृष्ट-तुष्ट होकर यावत् शिविका (पालकी) उपस्थित करते हैं। तत्पश्चात्

मेघकुमार शिविका पर आरूढ हुआ और सिंहासन के पास पहुचकर पूर्वदिशा की ओर मुख करके बैठ गया।

१४६ तए ण तस्स मेहस्स कुमारस्स माया ण्हाया कयवलिकम्मा जाव अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा सीय दुरूहति। दुरूहित्ता मेहस्स कुमारस्स दाहिणे पासे भद्दासणसि निसीयति।

तए ण मेहस्स कुमारस्स अबधाई रयहरण च पडिग्गह च गहाय सीय दुरुहइ, दुरूहित्ता मेहस्स कुमारस्स वामे पासे भद्दासणसि निसीयति।

तत्पश्चात् जो स्नान कर चुकी है, वलिकर्म कर चुकी है यावत् अल्प और बहुमूल्य आभरणो से शरीर को अलकृत कर चुकी है, ऐसी मेघकुमार की माता उस शिविका पर आरूढ हुई। आरूढ होकर मेघकुमार के दाहिने पार्श्व मे भद्रासन पर बैठी।

तत्पश्चात् मेघकुमार की धायमाता रजोहरण और पात्र लेकर शिविका पर आरूढ होकर मेघकुमार के बाये पार्श्व मे भद्रासन पर बैठ गई।

१४७ तए ण तस्स मेहस्स कुमारस्स पिट्ठओ एगा वरतरुणी सिंगारागारचारुवेसा सगय-गय-हसिय-भणिय- चेट्ठिय विलास-सलावुल्लाव निउणजुत्तोवयारकुसला, आमेलग-जमल-जुयल वट्टिय-अब्भुन्नय-पीण रइय-सठियपओहरा, हिम रययकुदेन्दुपगास सकोरटमल्लदामधवल आयवत्त गहाय सलील ओहारेमाणी ओहारेमाणी चिट्ठइ।

तत्पश्चात् मेघकुमार के पीछे शृ गार के आगार रूप, मनोहर वेष वाली, सुन्दर गति, हास्य, वचन, चेष्टा, विलास, सलाप (पारस्परिक वार्तालाप), उल्लाप (वर्णन) करने मे कुशल, योग्य उपचार करने मे कुशल, परस्पर मिले हुए, समश्रेणी मे स्थित, गोल, ऊँचे, पुष्ट, प्रीतिजनक और उत्तम आकार के स्तनो वाली एक उत्तम तरुणी, हिम (बर्फ), चादी, कुन्दपुष्प और चन्द्रमा के समान प्रकाश वाले, कोरट के पुष्पो की माला से युक्त धवल छत्र को हाथो मे थामकर लीलापूर्वक खडी हुई।

१४८ तए ण तस्स मेहस्स कुमारस्स दुवे वरतरुणीओ सिंगारागारचारुवेसाओ जाव कुसलाओ सीय दुरुहति, दुरुहित्ता मेहस्स कुमारस्स उभओ पास नाणामणि-कणग रयण-महरिहतवणिज्जुज्जलविचित्तदडाओ चिल्लियाओ सुहुमवरदीहवालाओ सख-कुद-दग रयअ-महियफेणपु जसन्निगासाओ चामराओ गहाय सलील ओहारेमाणीओ ओहारेमाणीओ चिट्ठति।

तत्पश्चात मेघकुमार के समीप शृ गार के आगार के समान, सुदर रूप वाली, यावत् उचित उपचार करने मे कुशल दो श्रेष्ठ तरुणिया शिविका पर आरूढ हुई। आरूढ होकर मेघकुमार के दोनो पार्श्वो मे, विविध प्रकार के मणि सुवर्ण रत्न और महान् जनो के योग्य, अथवा बहुमूल्य तपनीयमय (रक्तवर्ण स्वर्ण वाले) उज्ज्वल एव विचित्र दडी वाले, चमचमाते हुए, पतले उत्तम और लम्बे बालो वाले, शख कुन्दपुष्प जलकण रजत एव मथन किये हुए अमृत के फेन के समान सफेद (श्वेत वर्ण वाले) दो चामर धारण करके लीलापूर्वक वीजती-वीजती हुई खडी हुई।

१४९ तए ण तस्स मेहकुमारस्स एगा वरतरुणी सिंगारागारचारुवेसा जाव कुसला सीय

जाव दुरेहइ । दुरुहित्ता मेहस्स कुमारस्स पुरतो पुरत्थिमेण चदप्पभ-वइर-वेरुलिय विमलदड तालविंट गहाय चिट्ठइ ।

तत्पश्चात् मेघकुमार के समीप शृ गार के आगार रूप यावत् उचित उपचार करने मे कुशल एक उत्तम तरुणी यावत् शिविका पर आरूढ हुई । आरूढ होकर मेघकुमार के पास पूर्व दिशा के सन्मुख चन्द्रकान्त मणि वज्ररत्न और वैडूर्यमय निमल दडी वाले पखे को ग्रहण करके खडी हुई ।

१५० तए ण तस्स मेहस्स कुमारस्स एगा वरतरुणी जाव सुरूवा सीय दुरूहइ, दुरुहित्ता मेहस्स कुमारस्स पुव्वदक्खिणेण सेय रययामय विमलसलिलपुन्न मत्तगयमहामुहाकिइसमाण भिंगार गहाय चिट्ठइ ।

तत्पश्चात् मेघकुमार के समीप एक उत्तम तरुणी यावत् सुन्दर रूप वाली शिविका पर आरूढ हुई । आरूढ होकर मेघकुमार से पूर्वदक्षिण—आग्नेय-दिशा मे श्वेत रजतमय निमल जल से परिपूर्ण, मदमाते, हाथी के बडे मुख के समान आकृति वाले भृ गार (झारी) को ग्रहण करके खडी हुई ।

१५१ तए ण तस्स मेहस्स कुमारस्स पिया कोडु बियपुरिसे, सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सरिसयाण सरिसत्तयाण सरिसव्वयाण एगाभरणगहियनिज्जोयाण कोडु बियवरतरुणाण सहस्स सद्दावेह ।' जाव सद्दावेंति ।'

तए ण कोडु बियवरतरुणपुरिसा सेणियस्स रन्नो कोडु बियपुरिसेहिं सद्दाविया समाणा हट्ठा ण्हाया जाव एगाभरणगहियनिज्जोया जेणामेव सेणिए राया तेणामेव उवागच्छति । उवागच्छित्ता सेणिय राय एव वयासी—'सदिसह ण देवाणुप्पिया ! ज ण अम्हेहिं करणिज्ज ।'

तत्पश्चात् मेघकुमार के माता-पिता ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया । बुला कर इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो ! शीघ्र ही एक सरीखे, एक सरीखी त्वचा (कान्ति) वाले, एक सरीखी उम्र वाले तथा एक सरीखे आभूषणो से समान वेष धारण करने वाले एक हजार उत्तम तरुण कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाओ ।' यावत् उन्होंने एक हजार पुरुषो को बुलाया ।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा के कौटुम्बिक पुरुषो द्वारा बुलाये गये वे एक हजार श्रेष्ठ तरुण सेवक हृष्ट-तुष्ट हुए । उन्होंने स्नान किया, यावत् एक-से आभूषण पहनकर समान पोशाक पहनी । फिर जहाँ श्रेणिक राजा था, वहाँ आये । आकर श्रेणिक राजा से इस प्रकार बोले—हे देवानुप्रिय ! हमे जो करने योग्य है, उसके लिए आज्ञा दीजिए ।

१५२ तए ण से सेणिए त कोडु बियवरतरुणसहस्स एव वयासी—'गच्छह ण देवाणुप्पिया ! मेहस्स कुमारस्स पुरिससहस्सवाहिणि सीय परिवहेह ।

तए ण त कोडु बियवरतरुणसहस्स सेणिएण रण्णा एवं वुत्त सत हट्ठ तुट्ठ तस्स मेहस्स कुमारस्स पुरिससहस्सवाहिणि सीय परिवहति ।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने उन एक हजार उत्तम तरुण कौटुम्बिक पुरुषो से कहा—

देवानुप्रियो ! तुम जाओ और हजार पुरुषो द्वारा वहन करने योग्य मेघकुमार की पालकी को वहन करो।

तत्पश्चात् वे उत्तम तरुण हजार कौटुम्बिक पुरुष श्रेणिक राजा के इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट हुए और हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य मेघकुमार की शिविका को वहन करने लगे।

१५३ तए ण तस्स मेहस्स कुमारस्स पुरिससहस्सवाहिणिं सीस दुरूढस्स समाणस्स इमे अट्ठट्ठमगलया तप्पढमयाए पुरतो अहाणुपुव्वीए सपट्ठिया । तजहा—(१) सोत्थिय (२) सिरिवच्छ (३) नदियावत्त (४) वद्धमाणग (५) भद्दासण (६) कलस (७) मच्छ (८) दप्पणया जाव[१] बहवे अत्यत्थिया जाव कामत्थिया भोगत्थिया लाभत्थिया किब्बिसिया कारोडिया कारवाहिया सखिया चक्किया नगलिका मुहमगलिया वद्धमाणा पूसमाणया खडियगणा ताहि इट्ठाहि जाव[२] अणवरय अभिणदता य एव वयासी—

तत्पश्चात् पुरुषसहस्रवाहिनी शिविका पर मेघकुमार के आरूढ होने पर, उसके आगे सर्वप्रथम यह आठ मगलद्रव्य अनुक्रम से चले अर्थात् चलाये गये। वे इस प्रकार हैं—(१) स्वस्तिक (२) श्रीवत्स (३) नदावर्त्त (४) वर्धमान (सिकोरा या पुरुषारूढ पुरुष या पाँच स्वस्तिक या विशेष प्रकार का प्रासाद) (५) भद्रासन (६) कलश (७) मत्स्य और (८) दर्पण। बहुत से धन के अर्थी (याचक) जन, कामार्थी, भोगार्थी, लाभार्थी, भाड आदि, कापालिक अथवा ताम्बूलवाहक, करों से पीडित, शख बजाने वाले, चाक्रिक—चक्र नामक शस्त्र हाथ में लेने वाले या कुभार तेली आदि, नागलिक—गले में हल के आकार का स्वर्णाभूषण पहनने वाले, मुखमागलिक—मीठी मीठी बातें करने वाले, वधमान—अपने कधे पर पुरुष को बिठाने वाले, पूष्यमानव—मागध—स्तुतिपाठक, खण्डिकगण—छात्रसमुदाय उसको इष्ट प्रिय मधुर वाणी से अभिनन्दन करते हुए कहने लगे—

१५४ 'जय जय णदा ! जय जय भद्दा ! जयणदा ! भद्द ते, अजियाइ जिणाहि इदियाइ, जिय च पालेहि समणधम्म, जियविग्घोऽवि य वसाहि त देव ! सिद्धिमज्झे, निहणाहि रागद्दोसमल्ले तवेण धिइधणियबद्धकच्छे, मद्दाहि य अट्ठकम्मसत्तू झाणेण उत्तमेण सुक्केण अप्पमत्तो, पावय वितिमिरमणुत्तर केवल नाण, गच्छ य मोक्ख परमपय सासय च अयल हता परीसहचमु ण अभीओ परीसहोवसग्गाण, धम्मे ते अविग्घ भवउ' त्ति कट्टु पुणो पुणो मगलजयजयसद्द पउजति।

हे नन्द ! जय हो, जय हो, हे, भद्र जय हो, जय हो ! हे जगत् को आनन्द देने वाले ! तुम्हारा कल्याण हो। तुम नही जीती हुई पाँच इन्द्रियों को जीतो और जीते हुए (प्राप्त किये) साधुधर्म का पालन करो। हे देव ! विघ्नों को जीत कर सिद्धि मे निवास करो। धैर्यपूर्वक कमर कस कर, तप के द्वारा राग द्वेष रूपी मल्लो का हनन करो। प्रमादरहित होकर उत्तम शुक्लध्यान के द्वारा आठ कर्म रूपी शत्रुओ का मर्दन करो। अज्ञानाधकार से रहित सर्वोत्तम केवलज्ञान को प्राप्त करो। परीषह रूपी सेना का हनन करो, परीषहो और उपसर्गों से निडर होकर शाश्वत एव अचल परमपद रूप मोक्ष को प्राप्त करो। तुम्हारे धर्मसाधन मे विघ्न न हो। इस प्रकार कह कर वे पुन पुन मगलमय 'जयजय' शब्द का प्रयोग करने लगे।

---

१ औप ६४-६८ २ प्र अ १८

जाव दुरुहइ। दुरुहित्ता मेहस्स कुमारस्स पुरतो पुरत्थिमेण चदप्पभ-वइर-वेरुलिय विमलदड तालविंट गहाय चिट्ठइ।

तत्पश्चात् मेघकुमार के समीप शृंगार के आगार रूप यावत् उचित उपचार करने मे कुशल एक उत्तम तरुणी यावत् शिविका पर आरूढ हुई। आरूढ होकर मेघकुमार के पास पूर्व दिशा के सन्मुख चन्द्रकान्त मणि वज्ररत्न और वैडूर्यमय निमल दडी वाले पखे को ग्रहण करके खडी हुई।

१५० तए ण तस्स मेहस्स कुमारस्स एगा वरतरुणी जाव सुरूवा सीय दुरुहइ, दुरुहित्ता मेहस्स कुमारस्स पुव्वदक्खिणेण सेय रययामय विमलसलिलपुन्न मत्तगयमहामुहाकिइसमाण भिगार गहाय चिट्ठइ।

तत्पश्चात् मेघकुमार के समीप एक उत्तम तरुणी यावत् सुन्दर रूप वाली शिविका पर आरूढ हुई। आरूढ होकर मेघकुमार से पूर्वदक्षिण—आग्नेय-दिशा मे श्वेत रजतमय निमल जल मे परिपूर्ण, मदमाते, हाथी के बडे मुख के समान आकृति वाले भृंगार (भारी) को ग्रहण करके खडी हुई।

१५१ तए ण तस्स मेहस्स कुमारस्स पिया कोडु बियपुरिसे, सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! सरिसयाण सरिसत्तयाण सरिसव्वयाण एगाभरणगहियनिज्जोयाण कोडु बियवरतरुणाण सहस्स सद्दावेह।' जाव सद्दावेंति।'

तए ण कोडु बियवरतरुणपुरिसा सेणियस्स रन्नो कोडु बियपुरिसेहिं सद्दाविया समाणा हट्ठा ण्हाया जाव एगाभरणगहियनिज्जोया जेणामेव सेणिए राया तेणामेव उवागच्छंति। उवागच्छित्ता सेणिय राय एव वयासी—'सदिसह ण देवाणुप्पिया! ज ण अम्हेहिं करणिज्ज।'

तत्पश्चात् मेघकुमार के माता-पिता ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो! शीघ्र ही एक सरीखे, एक सरीखी त्वचा (कान्ति) वाले, एक सरीखी उम्र वाले तथा एक सरीखे आभूषणो से समान वेष धारण करने वाले एक हजार उत्तम तरुण कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाओ।' यावत् उन्होंने एक हजार पुरुषो को बुलाया।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा के कौटुम्बिक पुरुषो द्वारा बुलाये गये वे एक हजार श्रेष्ठ तरुण सेवक हृष्ट-तुष्ट हुए। उन्होने स्नान किया, यावत् एक-से आभूषण पहनकर समान पोशाक पहनी। फिर जहाँ श्रेणिक राजा था, वहाँ आये। आकर श्रेणिक राजा से इस प्रकार बोले—हे देवानुप्रिय! हमें जो करने योग्य है, उसके लिए आज्ञा दीजिए।

१५२ तए ण से सेणिए त कोडु बियवरतरुणसहस्स एव वयासी—'गच्छह ण देवाणुप्पिया! मेहस्स कुमारस्स पुरिससहस्सवाहिणि सीय परिवहेह।

तए ण त कोडु बियवरतरुणसहस्स सेणिएण रण्णा एव वुत्त सत हट्ठ तुट्ठ तस्स मेहस्स कुमारस्स पुरिससहस्सवाहिणि सीय परिवहति।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने उन एक हजार उत्तम तरुण कौटुम्बिक पुरुषो से कहा—

देवानुप्रियो ! तुम जाओ और हजार पुरुषो द्वारा वहन करने योग्य मेघकुमार की पालकी को वहन करो।

तत्पश्चात् वे उत्तम तरुण हजार कौटुम्बिक पुरुष श्रेणिक राजा के इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट हुए और हजार पुरुषो द्वारा वहन करने योग्य मेघकुमार की शिविका को वहन करने लगे।

१५३ तए ण तस्स मेहस्स कुमारस्स पुरिससहस्सवाहिणि सीस दुरूढस्स समाणस्स इमे अट्ठट्ठमगलया तप्पढमयाए पुरतो अहाणुपुव्वीए सपट्ठिया। तजहा—(१) सोत्थिय (२) सिरिवच्छ (३) नदियावत्त (४) वद्धमाणग (५) भद्दासण (६) कलस (७) मच्छ (८) दप्पणया जाव[1] बहवे अत्थत्थिया जाव कामत्थिया भोगत्थिया लाभत्थिया किब्बिसिया कारोडिया कारवाहिया सखिया चक्किया नगलिका मुहमगलिया वद्धमाणा पूसमाणया खडियगणा ताहि इट्ठाहि जाव[2] अणवरय अभिणदता य एव वयासी—

तत्पश्चात् पुरुषसहस्रवाहिनी शिविका पर मेघकुमार के आरूढ होने पर, उसके सामने सर्वप्रथम यह आठ मगलद्रव्य अनुक्रम से चले अर्थात् चलाये गये। वे इस प्रकार हैं—(१) स्वस्तिक (२) श्रीवत्स (३) नदावर्त्त (४) वर्धमान (सिकोरा या पुरुषारूढ पुरुष या पाच स्वस्तिक या विशेष प्रकार का प्रासाद) (५) भद्रासन (६) कलश (७) मत्स्य और (८) दर्पण। बहुत से धन के अर्थी (याचक) जन, कामार्थी, भोगार्थी, लाभार्थी, भाड आदि, कापालिक अथवा ताम्बूलवाहक, करों से पीडित, शख बजाने वाले, चाक्रिक—चक्र नामक शस्त्र हाथ मे लेने वाले या कुभार तेली आदि, नागलिक—गले मे हल के आकार का स्वर्णाभूषण पहनने वाले, मुखमागलिक—मीठी-मीठी बातें करने वाले, वर्धमान—अपने कधे पर पुरुष को बिठाने वाले, पूष्यमानव—मागध—स्तुतिपाठक, खण्डिक-गण—छात्रसमुदाय उसको इष्ट प्रिय मधुर वाणी से अभिनन्दन करते हुए कहने लगे—

१५४ 'जय जय णदा ! जय जय भद्दा ! जयणदा ! भद्द ते, अजियाइ जिणाहि इदियाइ, जिय च पालेहि समणधम्म, जियविग्घोऽवि य वसाहि त देव ! सिद्धिमज्झे, निहणाहि रागदोसमल्ले तवेण धिइधणियबद्धकच्छे, मद्दाहि य अट्ठकम्मसत्तू झाणेण उत्तमेण सुक्केण अप्पमत्तो, पावय वितिमिर-मणुत्तर केवल नाण, गच्छ य मोक्ख परमपय सासय च अयल हता परीसहचमु ण अभीओ परीसहोवसग्गाण, धम्मे ते अविग्घ भवउ' त्ति कट्टु पुणो पुणो मगलजयजयसद्द पउजति।

हे नन्द ! जय हो, जय हो, हे, भद्र जय हो, जय हो ! हे जगत् को आनन्द देने वाले ! तुम्हारा कल्याण हो। तुम नही जीती हुई पाँच इन्द्रियो को जीतो और जीते हुए (प्राप्त किये) साधुधर्म का पालन करो। हे देव ! विघ्नो को जीत कर सिद्धि मे निवास करो। धैर्यपूर्वक कमर कस कर, तप के द्वारा राग द्वेष रूपी मल्लो का हनन करो। प्रमादरहित होकर उत्तम शुक्लध्यान के द्वारा आठ कर्म रूपी शत्रुओ का मदन करो। अज्ञानान्धकार से रहित सर्वोत्तम केवलज्ञान को प्राप्त करो। परीषह रूपी सेना का हनन करके, परीषहो और उपसर्गों से निर्भय होकर शाश्वत एव अचल परमपद रूप मोक्ष को प्राप्त करो। तुम्हारे धर्मसाधन मे विघ्न न हो। इस प्रकार कह कर वे पुन पुन मगलमय 'जयजय' शब्द का प्रयोग करने लगे।

---

१ औप ६४-६८ २ प्र अ १८

१५५ तए ण से मेहे कुमारे रायगिहस्स नगरस्स मज्झमज्झेण निग्गच्छइ। निगच्छित्ता जेणेव गुणसिलए चेइए तेणामेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता पुरिससहस्सवाहिणीओ सीयाओ पच्चोरुहइ।

तत्पश्चात् मेघकुमार राजगृह के बीचों-बीच होकर निकला। निकल कर जहा गुणशील चैत्य था, वहा आया आकर पुरुषसहस्रवाहिनी पालकी से नीचे उतरा।

१५६ तए ण तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो मेह कुमार पुरओ कटटु जेणामेव समणे भगव महावीरे तेणामेव उवागच्छति। उवागच्छित्ता समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेन्ति। करित्ता वदति, नमसति, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—

'एस ण देवाणुप्पिया! मेहे कुमारे अम्ह एगे पुत्ते (इट्ठे कते जाव पिये मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए सम्मए बहुमए अणुमए भडकरडगसमाणे रयणे रयणभूए) जीवियऊसासए हिययणदिजणए उबरपुप्फमिव दुल्लहे सवणयाए किमग पुण दरिसणयाए? से जहानामए उप्पलेइ वा, पउमेइ वा, कुमुदेइ वा, पके जाए जले सवड्ढिए नोवलिप्पइ पकरएण, णोवलिप्पइ जलरएण, एवामेव मेहे कुमारे कामेसु जाए भोगेसु सवुड्ढे, नोवलिप्पइ कामरएण, नोवलिप्पइ भोगरएण, एस ण देवाणुप्पिया! ससार-भउव्विग्गे, भीए जम्मणजरमरणाण, इच्छइ देवाणुप्पियाण अतिए मु डे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइत्तए। अम्हे ण देवाणुप्पियाण सिस्सभिक्ख दलयामो। पडिच्छतु ण देवाणुप्पिया! सिस्सभिक्ख।

तत्पश्चात् मेघकुमार के माता-पिता मेघकुमार को आगे करके जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे, वहा आते है। आकर श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार दक्षिण तरफ से आरम्भ करके प्रदक्षिणा करते हैं। करके वन्दन करते हैं, नमस्कार करते हैं। वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार कहते हैं—

हे देवानुप्रिये! यह मेघकुमार हमारा इकलौता पुत्र है। (यह हमे इष्ट है, कान्त है, प्रिय, मनोज्ञ, मणाम—विश्वासपात्र, सम्मत, बहुमत, अनुमत, आभूषणो के पिटारे के समान, रत्न (रत्न जैसा) प्राणों के समान और उच्छ्वास के समान है। हृदय को आनन्द प्रदान करने वाला है। गूलर के पुष्प के समान इसका नाम श्रवण करना भी दुर्लभ है तो दर्शन की बात क्या है? जैसे उत्पल (नील कमल), पद्म (सूर्यविकासी कमल) अथवा कुमुद (चन्द्रविकासी कमल) कीच मे उत्पन्न होता है और जल मे वृद्धि पाता है, फिर भी पक की रज मे अथवा जल की रज (कण) स लिप्त नही होता, इसी प्रकार मेघकुमार कामो मे उत्पन्न हुआ और भोगो मे वृद्धि पाया है, फिर भी काम-रज से लिप्त नही हुआ, भोगरज मे लिप्त नही हुआ। हे देवानुप्रिय! यह मेघकुमार ससार के भय से उद्विग्न हुआ है और जन्म जरा मरण से भयभीत हुआ है। अत देवानुप्रिय (आप) के समीप मु डित होकर, गृहत्याग करके साधुत्व की प्रव्रज्या अगीकार करना चाहता है। हम देवानुप्रिय को शिष्यभिक्षा देते हैं। हे देवानुप्रिय! आप शिष्यभिक्षा अगीकार कीजिए।

१५७ तए ण से समणे भगव महावीरे मेहस्स कुमारस्स अम्मापिऊहि एव वुत्ते समाणे एयमट्ठ सम्म पडिसुणेइ।

तए ण से मेहे कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतियाओ उत्तरपुरच्छिम दिसिभाग अवक्कमइ। अवक्कमित्ता सयमेव आभरण मल्लालकार ओमुयइ।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ने मेघकुमार के माता-पिता द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर इस अर्थ (बात) को सम्यक् प्रकार से स्वीकार किया।

तत्पश्चात् मेघकुमार श्रमण भगवान् महावीर के पास से उत्तरपूर्व अर्थात् ईशान दिशा के भाग मे गया। जाकर स्वय ही आभूषण, माला और अलकार (वस्त्र) उतार डाले।

१५८ तए ण से मेहकुमारस्स माया हसलक्खणेण पडसाडएण आभरण-मल्लालकार पडिच्छइ। पडिच्छित्ता हार-वारिधार सिंदुवार छिन्नमुत्तावलिपगासाइ असूणि विणिम्मुयमाणी विणिम्मुयमाणी रोयमाणी रोयमाणी कदमाणी कदमाणी विलवमाणी विलवमाणी एव वयासी—

'जइयव्व जाया! घडियव्व जाया! परक्कमियव्व जाया! अस्सि च ण अट्ठे नो पमाएयव्व। अम्ह पि ण एसेव मग्गे भवउ' त्ति कट्टु मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो समण भगव महावीर वदति नमसति, वदित्ता नमसित्ता जामेव दिसि पाउब्भूया तामेव दिसि पडिगया।

तत्पश्चात् मेघकुमार की माता ने हस के लक्षण वाले अर्थात् धवल और मृदुल वस्त्र मे आभूषण, माल्य और अलकार ग्रहण किये। ग्रहण करके हार, जल की धारा, निगुंडी के पुष्प और टूटे हुए मुक्तावली-हार के समान अश्रु टपकाती हुई, रोती-रोती, आक्रन्दन करती-करती और विलाप करती-करती इस प्रकार कहने लगी—

'हे लाल! प्राप्त चारित्रयोग मे यतना करना, हे पुत्र! अप्राप्त चारित्रयोग के लिए घटना करना—प्राप्त करने का यत्न करना, हे पुत्र! पराक्रम करना। सयम-साधना मे प्रमाद न करना, 'हमारे लिए भी यही मार्ग हो', अर्थात् भविष्य मे हमे भी सयम अगीकार करने का सुयोग प्राप्त हो।

इस प्रकार कह कर मेघकुमार के माता-पिता ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन नमस्कार किया। वन्दन नमस्कार करके जिस दिशा से आये थे, उसी दिशा मे लौट गये।

प्रवज्याग्रहण

१५९—तए ण से मेहे कुमारे सयमेव पचमुट्ठिय लोय करेइ। करित्ता जेणामेव समणे भगव महावीरे तेणामेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ। करित्ता वदइ, नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—

'आलित्ते ण भते! लोए, पलित्ते ण भते! लोए, आलित्तपलित्ते ण भते! लोए जराए मरणेण य। से जहानामए केई गाहावई आगारसि झियायमाणसि जे तत्थ भडे भवइ अप्पभारे मोल्लगुरुए, त गहाय आयाए एगत अवक्कमइ, एस मे णित्थारिए समाणे पच्छा पुरा हियाए सुहाए खमाए णिस्सेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ। एवामेव मम वि एगे आयाभडे इट्ठे कते पिए मणुन्ने मणामे, एस मे णित्थारिए समाणे ससारवोच्छेयकरे भविस्सइ। त इच्छामि ण देवाणुप्पियाहिं सयमेव पव्वावियं, सयमेव, मुडावियं, सेहावियं, सिक्खावियं, सयमेव आयार गोयर विणय-वेणइय-चरण-करण-जाया मायावत्तिय धम्ममाइक्खियं।'

तत्पश्चात् मेघकुमार ने स्वय ही पचमुष्टिक लोच किया। लोच करके जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे, वहाँ आया। आकर श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार दाहिनी ओर से आरम्भ करके प्रदक्षिणा की। फिर वन्दन-नमस्कार किया और कहा—

भगवन्! यह ससार जरा और मरण से (जरा-मरण रूप अग्नि से) आदीप्त है, यह ससार प्रदीप्त है। हे भगवन्! यह ससार आदीप्त-प्रदीप्त है। जैसे कोई गाथापति अपने घर में आग लग जाने पर, उस घर में जो अल्प भार वाली और बहुमूल्य वस्तु होती है उसे ग्रहण करके स्वय एकान्त में चला जाता है। वह सोचता है कि 'अग्नि में जलने से बचाया हुआ यह पदार्थ मेरे लिए आगे-पीछे हित के लिए, सुख के लिए, क्षमा (समर्थता) के लिए, कल्याण के लिए और भविष्य में उपयोग के लिए होगा। इसी प्रकार मेरा भी यह एक आत्मा रूपी भाड (वस्तु) है, जो मुझे इष्ट है, कान्त है, प्रिय है, मनोज्ञ है और अतिशय मनोहर है। इस आत्मा को मैं निकाल लूंगा—जरा-मरण की अग्नि में भस्म होने से बचा लूंगा, तो यह ससार का उच्छेद करने वाला होगा। अतएव मैं चाहता हूं कि देवानुप्रिय (आप) स्वय ही मुझे प्रव्रजित करें—मुनिवेष प्रदान करें, स्वय ही मुझे मुंडित करें—मेरा लोच करें, स्वय ही प्रतिलेखन आदि सिखावें, स्वय ही सूत्र और अर्थ प्रदान करके शिक्षा दें, स्वय ही ज्ञानादिक आचार, गोचरी, विनय, वैनयिक (विनय का फल), चरणसत्तरी, करणसत्तरी, सयम-यात्रा और मात्रा (भोजन का परिमाण) आदि स्वरूप वाले धर्म का प्ररूपण करें।

विवेचन—मूलपाठ में आये चरणसत्तरी और करणसत्तरी का तात्पर्य है चरण के सत्तर भेद और करण के सत्तर भेद। साधु जिन नियमों का निरन्तर सेवन करते हैं, उनको चरण या चरणगुण कहते हैं और प्रयोजन होने पर जिनका सेवन किया जाता है, वे करण या करणगुण कहलाते हैं। चरण के सत्तर भेद इस प्रकार हैं—

> वय-समणधम्म-सजम-वेयावच्च च बमगुत्तीओ।
> नाणाइतिय तव-कोहनिग्गहाइ चरणमेय॥
>
> —ओघनियुक्तिभाष्य, गाथा २

अर्थात् पाच महाव्रत, दस प्रकार का क्षमा आदि श्रमणधर्म, सतरह प्रकार का सयम, आचार्य आदि का दस प्रकार का वैयावृत्य, नौ ब्रह्मचर्यगुप्तियाँ, तीन ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना, बारह प्रकार का तप, चार प्रकार का कषायनिग्रह।

करण के सत्तर भेद इस प्रकार है—

> पिंडविसोही समिई, भावण-पडिमा य इदियनिरोहो।
> पडिलेहण-गुत्तीओ, अभिग्गहा चेव करण तु॥
>
> —ओघनियुक्तिभाष्य, गाथा ३

आहार, वस्त्र, पात्र और शय्या (उपाश्रय) की विशुद्ध गवेषणा, पांच समितियाँ, अनित्यता आदि बारह भावनाएँ, बारह प्रतिमाएँ, पांच इन्द्रियनिग्रह, पच्चीस प्रकार की प्रतिलेखना, तीन गुप्तियां और चार प्रकार के अभिग्रह।

१६०—तए ण समणे भगव महावीरे सयमेव पव्वावेइ, सयमेव आयार जाव धम्ममाइक्खइ—'एव देवाणुप्पिया! गतव्व चिट्ठियव्व निसीयव्व तुयट्टियव्व भुजियव्व भासियव्व, एव उट्ठाए उट्ठाय पाणेहिं भूएहि जीवेहि सत्तेहि सजमेण सजमियव्व, अस्सि च ण अट्ठे णो पमाएयव्व।'

तए ण से मेहे कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए इम एयारूव धम्मिय उवएस

णिसम्म सम्म पडिवज्जइ। तमाणाए तह गच्छइ, तह चिट्ठइ, जाव उट्ठाए उट्ठाय पाणेहिं भूएहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमइ।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ने मेघकुमार को स्वय ही प्रव्रज्या प्रदान की और स्वय ही यावत् आचार-गोचर आदि धर्म की शिक्षा दी। वह इस प्रकार—हे देवानुप्रिय! इस प्रकार—पृथ्वी पर युग मात्र दृष्टि रखकर चलना चाहिए, इस प्रकार—निर्जीव भूमि पर खड़ा होना चाहिए, इस प्रकार—भूमि की प्रमार्जना करके बैठना चाहिए, इस प्रकार—सामायिक का उच्चारण करके शरीर की प्रमार्जना करके शयन करना चाहिए, इस प्रकार—वेदना आदि कारणों से निर्दोष आहार करना चाहिए, इस प्रकार—हित-मित और मधुर भाषण करना चाहिए। इस प्रकार—अप्रमत्त एव सावधान होकर प्राण (विकलेन्द्रिय), भूत (वनस्पतिकाय), जीव (पचेन्द्रिय) और सत्त्व (शेष एकेन्द्रिय) की रक्षा करके सयम का पालन करना चाहिए। इस विषय मे तनिक भी प्रमाद नही करना चाहिए।

तत्पश्चात् मेघकुमार ने श्रमण भगवान् महावीर के निकट इस प्रकार का धर्म सम्बन्धी यह उपदेश सुनकर और हृदय मे धारण करके सम्यक् प्रकार से उसे अगीकार किया। वह भगवान् की आज्ञा के अनुसार गमन करता, उसी प्रकार बैठता यावत् उठ उठ कर अर्थात् प्रमाद और निद्रा त्याग करके प्राणो, भूतो, जीवो और सत्त्वो की यतना करके सयम का आराधन करने लगा।

मेघकुमार का उद्वेग

१६१—ज दिवस च ण मेहे कुमारे मुडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, तस्स ण दिवसस्स पच्चावरण्हकालसमयसि समणाण निग्गथाण अहाराइणियाए सेज्जासथारएसु विभज्जमाणेसु मेहकुमारस्स दारमूले सेज्जासथारए जाए यावि होत्था।

तए ण समणा निग्गथा पुव्वरत्तावरत्तकालसमयसि वायणाए पुच्छणाए परियट्टणाए धम्माणुजोगचिंताए य उच्चारस्स य पासवणस्स य अइगच्छमाणा य निग्गच्छमाणा य अप्पेगइया मेहं कुमार हत्थेहिं सघट्टति, एव पाएहिं, सीसे पोट्टे कायसि, अप्पेगइया ओलडेंति, अप्पेगइया पोलडेंति, अप्पेगइया पायरयरेणुगुडिय करेन्ति। एव महालिय च ण रयणिं मेहे कुमारे णो सचाएइ खणमवि अच्छि निमीलित्तए।

जिस दिन मेघकुमार ने मुडित होकर गृहवास त्याग कर चारित्र अगीकार किया, उसी दिन के सन्ध्याकाल मे रात्निक क्रम से अर्थात् दीक्षापर्याय के अनुक्रम से, श्रमण निर्ग्रन्थो के शय्या-सस्तारको का विभाजन करते समय मेघकुमार का शय्या-सस्तारक द्वार के समीप हुआ।

तत्पश्चात् श्रमण निर्ग्रन्थ अर्थात् अन्य मुनि रात्रि के पहले और पिछले समय मे वाचना के लिए, पृच्छना के लिए, परावर्तन (श्रुत की आवृत्ति) के लिए, धर्म के व्याख्यान का चिन्तन करने के लिए, उच्चार (बडी नीति) के लिए एव प्रस्रवण (लघु नीति) के लिए प्रवेश करते थे और बाहर निकलते थे। उनमे से किसी किसी साधु के हाथ का मेघकुमार के साथ सघट्टन हुआ, इसी प्रकार किसी के पैर की मस्तक से और किसी के पैर की पेट से टक्कर हुई। कोई-कोई मेघकुमार को लाघ कर निकले और किसी किसी ने दो-तीन बार लाघा। किसी किसी ने अपने पैरो की रज से उसे भर दिया या पैरो के वेग से उडती हुई रज से वह भर गया। इस प्रकार लम्बी रात्रि मे मेघकुमार क्षण भर भी आख बद नहीं कर सका।

१६२– तए ण तस्स मेहस्स कुमारस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव [चिंतिए पत्थिए मणोगते सकप्पे] समुप्पज्जित्था—'एव खलु अह सेणियस्स रन्नो पुत्ते, धारिणीए देवीए अत्तए मेहे जाव[1] सवणयाए, त जया ण अह अगारमज्झे वसामि, तया ण मम समणा निग्गथा आढायति, परिजाणति, सक्कारेंति, समाणेंति अट्ठाइ हेऊइ पसिणाइ कारणाइ वागरणाइ आइक्खति, इट्ठाहि कताहिं वग्गूहिं आलवेन्ति, सलवेन्ति, जप्पभिइ च ण अह मु डे भवित्ता अगाराणो अणगारिय पव्वइए, तप्पभिइ च ण मम समणा नो आढायति जाव नो सलवन्ति । अदुत्तर च ण मम समणा निग्गथा राओ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयसि वायणाए पुच्छणाय जाव[2] महालिय च ण रत्ति नो सचाएमि अच्छि निमिलावेत्तए । त सेय खलु मज्झ कल्ल पाउप्पभायाए रयणीए जाव[3] तेयसा जलते समण भगव महावीर आपुच्छित्ता पुणरवि अगारमज्झे वसित्तए' त्ति कट्टु एव सपेहेइ । सपेहित्ता अट्टदुहट्टवसट्ट माणसगए णिरयपडिरूविय च ण त रयणि खवेइ, खवित्ता कल्ल पाउप्पभायाए सुविमलाए रयणीए[4] जाव तेयसा जलते जेणेव समणे भगव महावीरे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ । करित्ता वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता जाव[5] पज्जुवासइ ।

तब मेघकुमार के मन मे इस प्रकार का अध्यवसाय [चिन्तन, प्रार्थित एव मानसिक सकल्प] उत्पन्न हुआ—'मैं श्रेणिक राजा का पुत्र और धारिणी देवी का आत्मज (उदरजात) मेघकुमार हूँ । अर्थात् [इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ मणाम हूँ, मेरा दर्शन तो दूर] गूलर के पुष्प के समान मेरा नाम श्रवण करना भी दुर्लभ है । जब मैं घर मे रहता था, तब श्रमण निग्रन्थ मेरा आदर करते थे, 'यह कुमार ऐसा है' इस प्रकार जानते थे, सत्कार-सन्मान करते थे, जीवादि पदार्थों को, उन्हे सिद्ध करने वाले हेतुओ को, प्रश्नो को, कारणो को और व्याकरणो (प्रश्न के उत्तरो) को कहते थे और बार-बार कहते थे । इष्ट और मनोहर वाणी से मेरे साथ आलाप-सलाप करते थे । किन्तु जब से मैंने मु डित होकर, गृहवास से निकलकर साधु दीक्षा अगीकार की है, तब से लेकर साधु मेरा आदर नही करते, यावत् आलाप-सलाप नही करते । तिस पर भी वे श्रमण निग्रन्थ पहली और पिछली रात्रि के समय वाचना, पृच्छना आदि के लिए जाते-आते मेरे सस्तारक को लाघते हैं और मैं इतनी लम्बी रात भर मे आँख भी न मीच सका । अतएव कल रात्रि के प्रभात रूप होने पर यावत् तेज जाज्वल्यमान होने पर (सूर्योदय के पश्चात्) श्रमण भगवान् महावीर से आज्ञा लेकर पुन गृहवास मे वसना ही मेरे लिए अच्छा है ।' मेघकुमार ने ऐसा विचार किया । विचार करके आर्त्तध्यान के कारण दु ख से पीडित और विकल्प युक्त मानस को प्राप्त होकर मेघकुमार ने वह रात्रि नरक की भाँति व्यतीत की । रात्रि व्यतीत करके प्रभात होने पर, सूर्य के तेज से जाज्वल्यमान होने पर, जहा श्रमण भगवान् महावीर थे, वहाँ आया । आकर तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की । प्रदक्षिणा करके भगवान् को वन्दन किया, नमस्कार किया । वन्दन नमस्कार करके यावत् (न बहुत निकट, न बहुत दूर—समुचित स्थान पर स्थित होकर विनयपूर्वक) भगवान् की पर्युपासना करने लगा ।

विवेचन—साधु-सस्था साम्यवाद की सजीव प्रतीक है । उसमे गृहस्थावस्था की सम्पन्नता असम्पन्नता के आधार पर किसी भी प्रकार का भेद नहीं होता । आगमो मे उल्लेख मिलता है कि चक्रवर्ती सम्राट के दास का भी दास यदि पहले दीक्षित हो चुका है और उसके पश्चात् स्वय चक्रवर्ती दीक्षित होता है तो वह उस पर्यायज्येष्ठ पूर्वावस्था के दास के दास को भी उसी प्रकार

१ प्र अ सूत्र १४६   २ प्र अ सूत्र १६१   ३-४ प्र अ सूत्र २८,   ५ प्र अ सूत्र ११३,

वन्दन-नमस्कार करता है जैसे अन्य ज्येष्ठ मुनियों को। इस प्रकार साधु की दृष्टि में भौतिक सम
का मूल्य नहीं होता, केवल आत्मिक वैभव—रत्नत्रय का ही महत्त्व होता है। इसी नीति के अनु
मेघ मुनि को सोने के लिए स्थान दिया गया था।

१६३—तए ण 'मेहा' इ समणे भगव महावीरे मेह कुमार एव वयासी—'से णूण तुम मेह
राओ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयसि समणेहिं निग्गथेहिं वायणाए पुच्छणाए जाव[1] महालिय च ण
णो सचाएमि मुहुत्तमवि अच्छि निमीलावेत्तए' तए ण तुब्भ मेहा! इमे एयारूवे अज्झत्थि
समुप्पज्जित्था—'जया ण अह अगारमज्झे वसामि तया ण मम समणा निग्गथा आढायति ज
परियाणति, जप्पभिइ च ण मुडे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वयामि, तप्पभिइ च ण
समणा णो आढायति, जाव[3] नो परियाणति। अदुत्तर च ण समणा निग्गथा राओ अप्पेग
वायणाए जाव पाय रय-रेणुगु डिय करेन्ति। त सेय खलु मम कल्ल पाउप्पभायाए समण भगव महाव
आपुच्छित्ता पुणरवि अगारमज्झे आवसित्तए' त्ति कट्टु एव सपेहेसि। सपेहित्ता अट्टदुहट्टवस
माणसे जाव णिरयपडिरूविय च ण त रयणि खवेसि। खवित्ता जेणामेव अह तेणामेव हव्वमाग
से नूण मेहा! एस अट्ठे समट्ठे?'

'हता अट्ठे समट्ठे।'

तत्पश्चात् 'हे मेघ' इस प्रकार सम्बोधन करके श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने मेघकु
से इस प्रकार कहा—'हे मेघ! तुम रात्रि के पहले और पिछले काल के अवसर पर, श्रमण निर्ग्र
के वाचना पृच्छना आदि के लिए आवागमन करने के कारण, लम्बी रात्रि पर्यन्त थोडी देर के लि
भी आँख नहीं मीच सके। मेघ! तब तुम्हारे मन में इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ—जब
गृहवास में निवास करता था, तब श्रमण निर्ग्रन्थ मेरा आदर करते थे यावत् मुझे जानते थे, पर
जब से मैंने मुडित होकर, गृहवास से निकल कर साधुता की दीक्षा ली है, तब से श्रमण निर्ग्रन्थ
मेरा आदर करते हैं, न मुझे जानते हैं। इसके अतिरिक्त श्रमण रात्रि में कोई वाचना के लिए या
(पृच्छना आदि के लिए) आते जाते मेरे बिस्तर को लाघते हैं यावत मुझे पैरों की रज से भरने
अतएव मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि कल प्रभात होने पर श्रमण भगवान् महावीर से पूछ कर
पुन गृहवास में बसने लगूँ।' तुमने इस प्रकार का विचार किया है। विचार करके आर्त्तध्यान
कारण दुख से पीडित एव सकल्प-विकल्प से युक्त मानस वाले होकर नरक की तरह (वेदना
रात्रि व्यतीत की है। रात्रि व्यतीत करके शीघ्रतापूर्वक मेरे पास आए हो! हे मेघ! यह अर्थ स
है—मेरा यह कथन सत्य है?'

मेघकुमार ने उत्तर दिया—जी हाँ, यह अर्थ समर्थ है—प्रभो! आपका कथन यथार्थ है

प्रतिबोध : पूर्वभवकथन

१६४—एव खलु मेहा! तुम इओ तच्चे अईए भवग्गहणे वेयड्ढगिरिपायमूले वणयरे
णिव्वत्तियणामधेज्जे सेए सखदलउज्जल विमल निम्मल-दहिघण-गोखीरफेण-रयणियर (दगर
रययणियर) प्पयासे सत्तुस्सेहे णवायए दसपरिणाहे सत्तगपइट्ठिए सोमे समिए सुरूवे पुरतो उद
समूसियसिरे सुहासणे पिट्ठओ वराहे अयाकुच्छी अच्छिद्दकुच्छी अलबकुच्छी पलबलबोदराहरक

१ प्र अ सूत्र १६१   २-३ प्र अ सूत्र १६१

घणुपट्ठागिइ-विसिट्ठपुट्ठे अल्लीण-पमाणजुत्त वट्टिया-पीवर-गत्तावरे अल्लीण पमाणजुत्तपुच्छे पडिपुन्न सुचारु-कुम्मचलणे पंडुर-सुविसुद्ध-निद्ध णिरुवहय विसतिनहे छद्दंते सुमेरुप्पभे नाम हत्थिराया होत्था ।

भगवान् बोले—हे मेघ ! इससे पहले अतीत तीसरे भव मे वैताढ्य पर्वत के पादमूल मे (तलहटी मे) तुम गजराज थे । वनचरो ने तुम्हारा नाम 'सुमेरप्रभ' रक्खा था । उस सुमेरप्रभ का वर्ण श्वेत था । शख के दल (चूर्ण) के समान उज्ज्वल, विमल, निर्मल, दही के थक्के के समान, गाय के दूध के फेन के समान (या गाय के दूध और समुद्र के फेन के समान) और चन्द्रमा के समान (या जलकण और चाँदी के समूह के समान) रूप था । वह सात हाथ ऊँचा और नौ हाथ लम्बा था । मध्यभाग दस हाथ के परिमाण वाला था । चार पैर, सूड, पूछ और जननेन्द्रिय—यह सात अग प्रतिष्ठित अर्थात् भूमि को स्पर्श करते थे । सौम्य, प्रमाणोपेत अगो वाला, सुन्दर रूप वाला, आगे से ऊँचा, ऊँचे मस्तक वाला, शुभ या सुखद आसन (स्कन्ध आदि) वाला था । उसका पिछला भाग वराह (शूकर) के समान नीचे झुका हुआ था । इसकी कूख बकरी की कूख जैसी थी और वह छिद्रहीन थी—उसमे गड्हा नही पडा था तथा लम्बी नही थी । वह लम्बे उदर वाला, लम्बे होठ वाला और लम्बी सूड वाला था । उसकी पीठ खीचे हुए धनुष के पृष्ठ जैसी आकृति वाली थी । उसके अन्य अवयव भलीभाँति मिले हुए, प्रमाणयुक्त, गोल एव पुष्ट थे । पूछ चिपकी हुई तथा प्रमाणोपेत थी । पैर कछुए जसे परिपूर्ण और मनोहर थे । बीसो नाखून श्वेत, निर्मल, चिकने और निरुपहत थे । छह दांत थे ।

१६५—तत्थ णं तुमं मेहा ! बहूहिं हत्थीहि य हत्थिणीहि य लोट्टएहि य लोट्टियाहि य कलभेहि य कलभियाहि य सद्धिं संपरिवुडे हत्थिसहस्सणायए देसए पागट्ठी पट्ठवए जूहवई वंदपरिवड्ढए अन्नेसिं च बहूणं एकल्लाणं हत्थिकलभाणं आहेवच्चं जाव पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणाईसर-सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे विहरसि ।

हे मेघ ! वहा तुम बहुत से हाथियो, हथिनियो, लोट्टको (कुमार अवस्था वाले हाथियो), लोट्टिकाओ, कलभो (हाथी के बच्चो) और कलभिकाओ से परिवृत होकर एक हजार हाथियो के नायक, मार्गदर्शक, अगुवा, प्रस्थापक (काम मे लगाने वाले), यूथपति और यूथ की वृद्धि करने वाले थे । इनके अतिरिक्त अन्य बहुत-से अकेले हाथी के बच्चो का आधिपत्य करते हुए, स्वामित्व, नेतृत्व करते हुए एव उनका पालन-रक्षण करते हुए विचरण कर रहे थे ।

१६६—तए णं तुमं मेहा ! णिच्चप्पमत्ते सइं पललिए कंदप्परई मोहणसीले अवितण्हे कामभोगतिसिए बहूहिं हत्थीहि य जाव संपरिवुडे वेयड्ढगिरिपायमूले गिरीसु य, दरीसु य, कुहरेसु य, कंदरासु य, उज्झरेसु य, निज्झरेसु य, वियरएसु य, गड्डासु य, पल्ललेसु य, चिल्ललेसु य, कडएसु य, कडयपल्ललेसु य, तडीसु य, वियडीसु य, टंकेसु य, कूडेसु य, सिहरेसु य, पब्भारेसु य, मंचेसु य, मालेसु य, काणणेसु य, वणेसु य, वणसंडेसु य, वणराईसु य, नदीसु य, नदीकच्छेसु य, जूहेसु य, संगमेसु य, वावीसु य, पोक्खरिणीसु य, दीहियासु य, गुंजालियासु य, सरेसु य, सरपंतियासु य, सरसरपंतियासु य, वणयरेहिं दिन्नवियारे बहूहिं हत्थीहि य जाव सद्धिं संपरिवुडे बहुविहतरुपल्लवपउरपाणियतणे निब्भए निरुव्विग्गे सुहंसुहेण विहरसि ।

हे मेघ ! तुम निरन्तर मस्त, सदा क्रीडापरायण, कन्दर्परति-क्रीडा करने मे प्रीति वाले,

मैथुनप्रिय, कामभोग से अतृप्त और कामभोग की तृष्णा वाले थे। बहुत से हाथियो वगैरह से परिवृत होकर वैताढ्य पर्वत के पादमूल मे, पर्वतो मे, दरियो (विशेष प्रकार की गुफाओ) मे, कुहरा (पर्वतो के अन्तरो) मे, कदराओ मे, उज्झरो (प्रपातो), झरनो मे, विदरो (नहरो) मे, गड्ढो मे, पल्वलो (तलैयो) मे, चिल्ललो (कीचड वाली तलैयो) मे, कटक (पर्वतो के तटो) मे, कटपल्लवो (पर्वत की समीपवर्त्ती तलैयो) मे, तटो मे, अटवी मे, टको (विशेष प्रकार के पर्वतो) मे, कूटो (नीचे चौडे और ऊपर सँकडे पर्वतो) मे, पर्वत के शिखरो पर, प्राग्भारो (कुछ झुके हुए पर्वतो के भागो) मे, मचो (नदी आदि को पार करने के लिए पाटा डाल कर बनाए हुए कच्चे पुलो) पर, काननो मे, वनो (एक जाति के वृक्षो वाले बगीचो) मे, वनखडो (अनेक जातीय वृक्षो वाले प्रदेशो) मे, वनो की श्रेणिया मे, नदियो मे, नदीकक्षो (नदी के समीपवर्त्ती वनो) मे, यूथो (वानर आदिको के निवास स्थानो) मे, नदियो के सगमस्थलो मे, वापियो (चौकोर बावडियो) मे, पुष्करणियो (गोल या कमलो वाली बावडियो) मे, दीर्घिकाओ (लम्बी बावडियो) मे, गुजालिकाओ (वक्र बावडियो) मे, सरोवरो मे, सरोवरो की पक्तियो मे, सर—सर पक्तिया (जहाँ एक सर से दूसरे सर मे पानी जाने का मार्ग बना हो ऐसे सरो की पक्तियो) मे, वनचरो द्वारा तुम्हे विचार (विचरण करने की छूट) दी गई थी। ऐसे तुम बहुसख्यक हाथियो आदि के साथ, नाना प्रकार के तरुपल्लवो, पानी और घास का उपयोग करते हुए निर्भय, और उद्वेगरहित होकर सुख के साथ विचरते थे—रहते थे।

१६७—तए ण तुम मेहा ! अन्नया कयाई पाउस वरिसारत्त-सरय हेमत-वसतेसु कमेण पचसु उउसु समइक्कतेसु, गिम्हकालसमयसि जेट्ठामुलमासे, पायवघससमुट्ठिएण सुक्कतण पत्त-कयवर-मारुत सजोगदीविएण महाभयकरेण हुयवहेण वणदवजालासपलित्तेसु वणतेसु, धूमाउलासु दिसासु, महावायवेगेण सघट्टिएसु छिन्नजालेसु आवयमाणेसु, पोल्लरुक्खेसु अतो अतो झियायमाणेसु मयकुहियविणिविट्ठकिमियकद्दमनदीवियरगजिण्णपाणीयतेसु वणतेसु भिगारक-दीण कदिय रवेसु, खर-फरुस अणिट्ठ रिट्ठवाहित विद्दुमग्गेसु दुमेसु, तण्हावस मुक्क पक्ख-पयडियजिब्भ तालुयअसपुडितत्तु ड-पक्खिसघेसु ससतेसु, गिम्ह-उम्ह उण्हवाय-खरफरुसचडमारुय सुक्कतण पत्तकयरवाउलि भमतदित्त सभतसावयाउल मिगतण्हावद्धचिण्हपट्टेसु गिरिवरेसु, सवट्टिएसु तत्थ-मिय पसव-सिरीसवेसु, अवदालियवयणविवरणिल्लालियग्गजीहे, महततु बइयपुन्नकन्ने, सकुचियथोर-पीवरकरे, ऊसियलगूले, पीणाइयविरसरडियसद्देण फोडयतेव अबरतल, पायदद्दरएण कपयतेव मेइणितल, विणिम्मुयमाणे य सीयार, सव्वओ समता वल्लिवियाणाइ छिदमाणे, रुक्खसहस्साइ तत्थ सुबहूणि णोल्लायते विणट्ठरट्ठे व्व णरवरिन्दे, वायाइद्धे व्व पोए, मडलवाए व्व परिब्भमते, अभिक्खण अभिक्खण लिडणियर पमु चमाणे पमु चमाणे, बहूहि हत्थीहि य जाव सद्धि दिसोदिसि विप्पलाइत्था।

तत्पश्चात् एक बार कदाचित प्रावट्, वर्षा, शरद् हेमन्त और वसन्त, इन पाच ऋतुओ के क्रमश व्यतीत हो जाने पर ग्रीष्म ऋतु का समय आया। तब ज्येष्ठ मास मे, वृक्षो की आपस की रगड से उत्पन्न हुई तथा सूखे घास, पत्ता और कचरे मे एव वायु के वेग से प्रदीप्त हुई अत्यन्त भयानक अग्नि से उत्पन्न वन के दावानल की ज्वालाओ मे वन का मध्य भाग सुलग उठा। दिशाएँ धुएँ से व्याप्त हो गई। प्रचण्ड वायु वेग से अग्नि की ज्वालाएँ टूट जाने लगी और चारो ओर गिरने लगी। पोले वृक्ष भीतर ही भीतर जलने लगे। वन प्रदेशो के नदी-नालो का जल मृत मृगादिक के शवो से

१ प्र अ सूत्र १६५

घणुपट्ठागिइ-विसिट्ठपुट्ठे अल्लीण-पमाणजुत्त-वट्टिया पीवर-गत्तावरे अल्लीण पमाणजुत्तपुच्छे पडिपुन्न-सुचारु-कुम्मचलणे पंडुर-सुविसुद्ध-निद्ध णिरुवहय विंसतिनहे छद्दंते सुमेरुप्पभे नाम हत्थिराया होत्था ।

भगवान् बोले—हे मेघ ! इससे पहले अतीत तीसरे भव में वैताढ्य पर्वत के पादमूल में (तलहटी में) तुम गजराज थे । वनचरों ने तुम्हारा नाम 'सुमेरुप्रभ' रक्खा था । उस सुमेरुप्रभ का वर्ण श्वेत था । शंख के दल (चूर्ण) के समान उज्ज्वल, विमल, निर्मल, दही के थक्के के समान, गाय के दूध के फेन के समान (या गाय के दूध और समुद्र के फेन के समान) और चन्द्रमा के समान (या जलकण और चांदी के समूह के समान) रूप था । वह सात हाथ ऊँचा और नौ हाथ लम्बा था । मध्यभाग दस हाथ के परिमाण वाला था । चार पैर, सूंड, पूंछ और जननेन्द्रिय—यह सात अंग प्रतिष्ठित अर्थात् भूमि को स्पर्श करते थे । सौम्य, प्रमाणोपेत अंगों वाला, सुन्दर रूप वाला, आगे से ऊँचा, ऊँचे मस्तक वाला, शुभ या सुखद आसन (स्कन्ध आदि) वाला था । उसका पिछला भाग वराह (शूकर) के समान नीचे झुका हुआ था । इसकी कूख बकरी की कूख जैसी थी और वह छिद्रहीन थी—उसमें गड्ढा नहीं पड़ा था तथा लम्बी नहीं थी । वह लम्बे उदर वाला, लम्बे होठ वाला और लम्बी सूंड वाला था । उसकी पीठ खींचे हुए धनुष के पृष्ठ जैसी आकृति वाली थी । उसके अन्य अवयव भलीभाँति मिले हुए, प्रमाणयुक्त, गोल एवं पुष्ट थे । पूंछ चिपकी हुई तथा प्रमाणोपेत थी । पैर कछुए जैसे परिपूर्ण और मनोहर थे । बीसों नाखून श्वेत, निर्मल, चिकने और निरुपहत थे । छह दांत थे ।

१६५—तत्थ णं तुमं मेहा ! बहूहिं हत्थीहि य हत्थिणीहि य लोट्टएहि य लोट्टियाहि य कलभेहि य कलभियाहि य सद्धिं संपरिवुडे हत्थिसहस्सणायए देसए पागट्ठी पट्ठवए जूहवई वंदपरिवड्ढए अन्नेसिं च बहूणं एकल्लाणं हत्थिकलभाणं आहेवच्चं जाव पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणाईसर-सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे विहरसि ।

हे मेघ ! वहाँ तुम बहुत से हाथियों, हथिनियों, लोट्टकों (कुमार अवस्था वाले हाथियों), लोट्टिकाओं, कलभों (हाथी के बच्चों) और कलभिकाओं से परिवृत होकर एक हजार हाथियों के नायक, मार्गदर्शक, अगुवा, प्रस्थापक (काम में लगाने वाले), यूथपति और यूथ की वृद्धि करने वाले थे । इनके अतिरिक्त अन्य बहुत-से अकेले हाथी के बच्चों का आधिपत्य करते हुए, स्वामित्व, नेतृत्व करते हुए एवं उनका पालन-रक्षण करते हुए विचरण कर रहे थे ।

१६६—तए णं तुमं मेहा ! णिच्चप्पमत्ते सइं पललिए कंदप्परई मोहणसीले अवितण्हे कामभोगतिसिए बहूहिं हत्थीहि य जाव संपरिवुडे वेयड्ढगिरिपायमूले गिरीसु य, दरीसु य, कुहरेसु य, कंदरासु य, उज्झरेसु य, निज्झरेसु य, वियरएसु य, गड्डासु य, पल्ललेसु य, चिल्ललेसु य, कडएसु य, कडयपल्ललेसु य, तडीसु य, वियडीसु य, टंकेसु य, कूडेसु य, सिहरेसु य, पब्भारेसु य, मंचेसु य, मालेसु य, काणणेसु य, वणेसु य, वणसंडेसु य, वणराईसु य, नदीसु य, नदीकच्छेसु य, जूहेसु य, संगमेसु य, वावीसु य, पोक्खरिणीसु य, दीहियासु य, गुंजालियासु य, सरेसु य, सरपंतियासु य, सरसरपंतियासु य, वणयरेहिं दिन्नवियारे बहूहिं हत्थीहि य जाव सद्धिं संपरिवुडे बहुविहतरुपल्लवपउरपाणियतणे निब्भए निरुव्विग्गे सुहंसुहेण विहरसि ।

हे मेघ ! तुम निरन्तर मस्त, सदा क्रीडापरायण, कंदर्परति-क्रीडा करने में प्रीति वाले,

मैथुनप्रिय, कामभोग से अतृप्त और कामभोग की तृष्णा वाले थे। बहुत से हाथियों वगैरह से परिवृत होकर वैताढ्य पर्वत के पादमूल में, पर्वतों में, दरियों (विशेष प्रकार की गुफाओं) में, कुहरों (पर्वतों के अन्तरों) में, कन्दराओं में, उज्झरों (प्रपातों), झरनों में, विदरों (नहरों) में, गड्ढों में, पल्वलों (तलैयों) में, चिल्ललों (कीचड़ वाली तलैयों) में, कटक (पर्वतों के तटों) में, कटपल्लवों (पर्वत की समीपवर्ती तलैयों) में, तटों में, अटवी में, टंकों (विशेष प्रकार के पर्वतों) में, कूटों (नीचे चौड़े और ऊपर सँकड़े पर्वतों) में, पर्वत के शिखरों पर, प्राग्भारों (कुछ झुके हुए पर्वतों के भागों) में, मंचों (नदी आदि को पार करने के लिए पाटा डाल कर बनाए हुए कच्चे पुलों) पर, काननों में, वनों (एक जाति के वृक्षों वाले बगीचों) में, वनखंडों (अनेक जातीय वृक्षों वाले प्रदेशों) में, वनों की श्रेणियों में, नदियों में, नदीकक्षों (नदी के समीपवर्ती वनों) में, यूथों (वानर आदिकों के निवास स्थानों) में, नदियों के संगमस्थलों में, वापियों (चौकोर बावड़ियों) में, पुष्करणियों (गोल या कमलों वाली बावड़ियों) में, दीर्घिकाओं (लम्बी बावड़ियों) में, गुंजालिकाओं (वक्र बावड़ियों) में, सरोवरों में, सरोवरों की पंक्तियों में, सर-सर पंक्तियों (जहाँ एक सर से दूसरे सर में पानी जाने का मार्ग बना हो ऐसे सरों की पंक्तियों) में, वनचरों द्वारा तुम्हें विचार (विचरण करने की छूट) दी गई थी। ऐसे तुम बहुसंख्यक हाथियों आदि के साथ, नाना प्रकार के तरुपल्लवों, पानी और घास का उपयोग करते हुए निर्भय, और उद्वेगरहित होकर सुख के साथ विचरते थे—रहते थे।

१६७—तए णं तुमं मेहा ! अन्नया कयाई पाउस-वरिसारत्त-सरय हेमंत-वसंतेसु कमेण पंचसु उउसु समइक्कंतेसु, गिम्हकालसमयंसि जेट्ठामूलमासे, पायवघंससमुट्ठिएणं सुक्कतण-पत्त-कयवर-मारुत संजोगदीविएणं महाभयकरेणं हुयवहेणं वणदवजालासंपलित्तेसु वणंतेसु, धूमाउलासु दिसासु, महावायवेगेणं संघट्टिएसु छिन्नजालेसु आवयमाणेसु, पोल्लरुक्खेसु अंतो अंतो झियायमाणेसु मयकुहियविणिविट्ठकिमियकद्दमनदीवियरगजिण्णपाणीयंतेसु वणंतेसु भिंगारक-दीण-कंदिय रवेसु, खर-फरुस-अणिट्ठ रिट्ठवाहित विद्दुमग्गेसु दुमेसु, तण्हावस मुक्क पक्ख-पयडियजिब्भ तालुयअसंपुडिततुंड पक्खिसंघेसु ससंतेसु, गिम्ह-उम्ह-उण्हवाय खरफरुसचंडमारुय सुक्कतण-पत्तकयरवाउलि भमंतदित्त संभंतसावयाउल मिगतण्हाबद्धचिण्हपट्टेसु गिरिवरेसु, संवट्टिएसु तत्थ मिय पसव सिरीसवेसु, अवदालियवयणविवरणिल्लालियग्गजीहे, महंततुंबइयपुन्नकन्ने, संकुचियथोर-पीवरकरे, ऊसियलंगूले, पीणाइयविरसरडियसद्देणं फोडयंतेव अंबरतलं, पायदद्दरएणं कंपयंतेव मेइणितलं, विणिम्मुयमाणे य सीयारं, सव्वओ समंता वल्लिवियाणाइं छिंदमाणे, रुक्खसहस्साइं तत्थ सुबहूणि णोल्लायंते विणट्ठरट्ठे व्व णरवरिन्दे, वायाइद्धे व्व पोए, मंडलवाए व्व परिब्भमंते, अभिक्खणं अभिक्खणं लिंडणियरं पमुंचमाणे पमुंचमाणे, बहूहिं हत्थीहि य जाव सद्धिं दिसोदिसिं विप्पलाइत्था।

तत्पश्चात् एक बार कदाचित प्रावृट्, वर्षा, शरद् हेमन्त और वसन्त, इन पांच ऋतुओं के क्रमश व्यतीत हो जाने पर ग्रीष्म ऋतु का समय आया। तब ज्येष्ठ मास में, वृक्षों की आपस की रगड़ से उत्पन्न हुई तथा सूखे घास, पत्तों और कचरे से एवं वायु के वेग से प्रदीप्त हुई अत्यन्त भयानक अग्नि से उत्पन्न वन के दावानल की ज्वालाओं से वन का मध्य भाग सुलग उठा। दिशाएँ धुएँ से व्याप्त हो गईं। प्रचण्ड वायु वेग से अग्नि की ज्वालाएँ टूट जाने लगीं और चारों ओर गिरने लगीं। पोले वृक्ष भीतर ही भीतर जलने लगे। वन प्रदेशों के नदी-नालों का जल मृत मृगादिक के शवों से

१ प्र अ सूत्र १६५

सडने लगा—खगार हो गया। उनका कीचड कीडो से व्याप्त हो गया। उनके किनारो का पानी सूख गया। भृंगारक पक्षी दीनता पूर्वक आक्रन्दन करने लगे। उत्तम वृक्षो पर स्थित काक अत्यन्त कठोर और अनिष्ट शब्द काव-काव करने लगे। उन वृक्षो के अग्रभाग अग्निकणो के कारण मूंगे के समान लाल दिखाई देने लगे। पक्षियो के समूह प्यास से पीडित होकर पख ढीले करके, जिह्वा एव तालु को बाहर निकाल करके तथा मुंह फाडकर सासें लेने लगे। ग्रीष्मकाल की उष्णता, सूर्य के ताप, अत्यन्त कठोर एव प्रचड वायु तथा सूखे घास के पत्तो और कचरे से युक्त बवडर के कारण भाग-दौड करने वाले, मदोन्मत्त एव घबराए सिह आदि श्वापदो के कारण पर्वत आकुल-व्याकुल हो उठे। ऐसा प्रतीत होने लगा मानो उन पर्वतो पर मृगतृष्णा रूप पट्टबध बधा हो। त्रास को प्राप्त मृग, अन्य पशु और सरीसृप इधर-उधर तडफने लगे।

इस भयानक अवसर पर, हे मेघ! तुम्हारा अर्थात् तुम्हारे पूर्वभव के सुमेरुप्रभ नामक हाथी का मुख-विवर फट गया। जिह्वा का अग्रभग बाहर निकल आया। बडे-बडे दानो कान भय से स्तब्ध और व्याकुलता के कारण शब्द ग्रहण करने मे तत्पर हुए। बडी और मोटी सूंड सिकुड गई। उसने पूंछ ऊँची करली। पीना (मड्डा) के समान विरस अरटि के शब्द-चीत्कार से वह आकाशतल को फोडता हुआ सा, सीत्कार करता हुआ, चहुँ ओर सवत्र वेलो के समूह को छेदता हुआ, त्रस्त और बहुसख्यक सहस्रो वृक्षो का उखाडता हुआ, राज्य से भ्रष्ट हुए राजा के समान, वायु से डोलते हुए जहाज के समान और बवडर (वगडूरे) के समान इधर-उधर भ्रमण करता हुआ एव बार-बार लीडी त्यागता हुआ, बहुत-से हाथियो, (हथिनियो, लोट्टको, लोट्टिकाओ, कलभो तथा कलभिकाओ) के साथ दिशाओ और विदिशाओ मे इधर-उधर भागदौड करने लगा।

१६८—तत्थ ण तुम मेहा! जुन्ने जराजज्जरियदेहे आउरे झझिए पिवासिए दुब्बले किलंते नट्ठसुइए मूढदिसाए सयाओ जूहाओ विप्पहूणे वणदवजालापरद्धे उण्हेण य, तण्हाए य, छुहाए य परब्भाहए समाणे भीए तत्थे तसिए उव्विग्गे सजायभए सव्वओ समता आधावमाणे परिधावमाणे एग च ण मह सर अप्पोदय पकबहुल अतित्थेण पाणियपाए उइन्नो।

हे मेघ! तुम वहा जीर्ण, जरा से जर्जरित देह वाले, व्याकुल, भूखे, प्यासे, दुर्बल, थके मादे, बहिरे तथा दिङ्मूढ होकर अपने यूथ (झुड) से बिछुड गये। वन के दावानल की ज्वालाओ से पराभूत हुए। गर्मी से, प्यास से और भूख से पीडित होकर भय से घबरा गए, त्रस्त हुए। तुम्हारा आनन्द-रस शुष्क हो गया। इस विपत्ति से कैसे छुटकारा पाऊँ, ऐसा विचार करके उद्विग्न हुए। तुम्हे पूरी तरह भय उत्पन्न हो गया। अतएव तुम इधर-उधर दौडने और खूब दौडने लगे। इसी समय अल्प जलवाला और कीचड की अधिकता वाला एक बडा सरोवर तुम्हे दिखाई दिया। उसमे पानी पीने के लिए बिना घाट के ही तुम उतर गए।

१६९- तत्थ ण तुम मेहा! तीरमइगए पाणिय असपत्ते अतरा चेव सेयसि विसन्ने।

तत्थ ण तुम मेहा! पाणिय पाइस्सामि त्ति कट्टु हत्थ पसारेसि, से वि य ते हत्थे उदग न पावेइ। तए ण तुम मेहा! पुणरवि काय पच्चुद्धरिस्सामि त्ति कट्टु बलियतराय पकसि खुत्ते।

हे मेघ! वहां तुम किनारे से तो दूर चले गए परन्तु पानी तक न पहुँच पाए और बीच ही मे कीचड मे फस गए।

हे मेघ ! 'मैं पानी पीऊँ' ऐसा सोचकर वहाँ तुमने अपनी सूंड फैलाई, मगर तुम्हारी सूंड भी पानी न पा सकी। तब हे मेघ ! तुमने पुनः 'शरीर को कीचड़ से बाहर निकालूं' ऐसा विचार कर जोर मारा तो कीचड़ में और गाढ़े फँस गये।

१७०—तए णं तुमं मेहा ! अन्नया कयाइ एगे चिरनिज्जूढे गयवरजुवाणए सयाओ जूहाओ कर-चरण-दंतमुसल-प्पहारेहिं विप्परद्धे समाणे तं चेव महद्दहं पाणीयं पाएउं समोयरेइ।

तए णं से कलभए तुमं पासति, पासित्ता तं पुव्ववेरं समरइ। समरित्ता आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे जेणेव तुमं तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता तुमं तिक्खेहिं दंतमुसलेहिं तिक्खुत्तो पिट्ठओ उच्छुभइ। उच्छुभित्ता पुव्ववेरं निज्जाएइ। निज्जाइत्ता हट्ठतुट्ठे पाणियं पियइ। पिइत्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

तत्पश्चात् हे मेघ ! एक बार कभी तुमने एक नौजवान श्रेष्ठ हाथी को सूंड, पैर और दाँत रूपी मूसलों से प्रहार करके मारा था और अपने झुंड में से बहुत समय पूर्व निकाल दिया था। वह हाथी पानी पीने के लिए उसी सरोवर में उतरा।

उस नौजवान हाथी ने तुम्हें देखा। देखते ही उसे पूर्व वैर का स्मरण हो आया। स्मरण आते ही उसमें क्रोध के चिह्न प्रकट हुए। उसका क्रोध बढ़ गया। उसने रौद्र रूप धारण किया और वह क्रोधाग्नि से जल उठा। अतएव वह तुम्हारे पास आया। आकर तीक्ष्ण दाँत रूपी मूसलों से तीन बार तुम्हारी पीठ बींध दी और बींध कर पूर्व वैर का बदला लिया। बदला लेकर हृष्ट-तुष्ट होकर पानी पीया। पानी पीकर जिस दिशा से प्रकट हुआ था—आया था, उस दिशा में वापिस लौट गया।

१७१—तए णं तव मेहा ! सरीरगंसि वेयणा पाउब्भवित्था उज्जला विउला तिउला कक्खडा जाव [पगाढा चंडा दुक्खा] दुरहियासा, पित्तज्जरपरिगयसरीरे दाहवक्कंतीए यावि विहरित्था।

तए णं तुमं मेहा ! तं उज्जलं जाव [विउलं कक्खडं पगाढं चंडं दुक्खं] दुरहियासं सत्तराइंदियं वेयणं वेएसि, सवीसं वाससयं परमाउं पालइत्ता अट्टवसट्टदुहट्टे कालमासे कालं किच्चा इहेव जंबुद्दीवे भारहे वासे दाहिणड्ढभरहे गंगाए महाणदीए दाहिणे कूले विंझगिरिपायमूले एगेणं मत्तवरगंधहत्थिणा एगाए गयवरकरेणूए कुच्छिंसि गयकलभए जणिए। तए णं सा गयकलभिया णवण्हं मासाणं वसंतमासम्मि तुमं पयाया।

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम्हारे शरीर में वेदना उत्पन्न हुई। वह वेदना ऐसी थी कि तुम्हें तनिक भी चैन न थी, वह सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त थी और त्रितुला थी (मन वचन काय की तुलना करने वाली थी, अर्थात् उस वेदना में तुम्हारे तीनों योग तन्मय हो रहे थे)। वह वेदना कठोर यावत् बहुत ही प्रचण्ड थी, दुस्सह थी। उस वेदना के कारण तुम्हारा शरीर पित्त-ज्वर से व्याप्त हो गया और शरीर में दाह उत्पन्न हो गया। उस समय तुम इस बुरी हालत में रहे।

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम उस उज्ज्वल-बेचैन बना देने वाली यावत् [विपुल, कर्कश, प्रगाढ, प्रचंड, दुःखमय एवं दुस्सह वेदना को सात दिन-रात पर्यन्त भोग कर, एक सौ बीस वर्ष की आयु भोगकर, आर्त्तध्यान के वशीभूत एवं दुःख से पीड़ित हुए। तुम कालमास में (मृत्यु के अवसर पर) काल

करके, इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में, दक्षिणार्ध भरत में, गंगा नामक महानदी के दक्षिणी किनारे पर, विन्ध्याचल के समीप एक मदोन्मत्त श्रेष्ठ गंधहस्ती से, एक श्रेष्ठ हथिनी की कूख में हाथी के बच्चे के रूप में उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् उस हथिनी ने नौ मास पूर्ण होने पर वसन्त मास में तुम्हें जन्म दिया।

१७२—तए णं तुमं मेहा! गब्भवासाओ विप्पमुक्के समाणे गयकलभए यावि होत्था, रत्तुप्पलरत्तसूमालए जासुमणा-रत्तपारिजत्तय-लक्खारस-सरसकुंकुम-संझब्भरागवन्ने इट्ठे णियस्स जूहवइणो गणियायारकणेर कोत्थ-हत्थी अणेगहत्थिसयसंपरिवुडे रम्मेसु गिरिकाणणेसु सुहंसुहेणं विहरसि।

तत्पश्चात् हे मेघ! तुम गर्भावास से मुक्त होकर गजकलभक (छोटे हाथी) भी हो गए। लाल कमल के समान लाल और सुकुमार हुए। जवाकुसुम, रक्त वर्ण पारिजात नामक वृक्ष के पुष्प, लाख के रस, सरस कुंकुम और सन्ध्याकालीन बादलों के रंग के समान रक्तवर्ण हुए। अपने यूथपति के प्रिय हुए। गणिकाओं जैसी युवती हथिनियों के उदर-प्रदेश में अपनी सूंड डालते हुए काम-क्रीडा में तत्पर रहने लगे। इस प्रकार सैकड़ों हाथियों से परिवृत होकर तुम पर्वत के रमणीय काननों में सुखपूर्वक विचरने लगे।

१७३—तए णं तुमं मेहा! उम्मुक्कबालभावे जोव्वणगमणुपत्ते जूहवइणा कालधम्मुणा संजुत्तेणं तं जूहं सयमेव पडिवज्जसि।

हे मेघ! तुम बाल्यावस्था को पार करके यौवन को प्राप्त हुए। फिर यूथपति के कालधर्म को प्राप्त होने पर—मर जाने पर, तुम स्वयं ही उस यूथ को वहन करने लगे अर्थात् यूथपति हो गये।

१७४—तए णं तुमं मेहा! वणयरेहिं निव्वत्तियनामधेज्जे जाव[1] चउदंते मेरुप्पभे हत्थिरयणे होत्था। तत्थ णं तुमं मेहा! सत्तंगपइट्ठिए तहेव जाव[2] पडिरूवे। तत्थ णं तुमं मेहा सत्तसइयस्स जूहस्स आहेवच्चं जाव[3] अभिरमेत्था।

तत्पश्चात् हे मेघ! वनचरों ने तुम्हारा नाम मेरुप्रभ रखा। तुम चार दाँतों वाले हस्तिरत्न हुए। हे मेघ! तुम सात अंगों से भूमि का स्पर्श करने वाले, आदि पूर्वोक्त विशेषणों से युक्त यावत् सुन्दर रूप वाले हुए। हे मेघ! तुम वहाँ सात सौ हाथियों के यूथ का अधिपतित्व, स्वामित्व, नेतृत्व आदि करते हुए तथा उनका पालन करते हुए अभिरमण करने लगे।

हस्ती-भव में जातिस्मरण

१७५—तए णं तुमं अन्नया कयाइ गिम्हकालसमयंसि जेट्ठामूले वणदव-जालापलित्तेसु वणंतेसु सुधूमाउलासु दिसासु जाव[4] मंडलवाए व्व परिब्भमंते भीए तत्थे जाव[5] संजायभए बहूहिं हत्थीहि य जाव कलभियाहि य सद्धिं संपरिवुडे सव्वओ समंता दिसोदिसिं विप्पलाइत्था।

---

१ प्र अ सूत्र १६४ २ प्र अ १६४ ३ प्र अ १६५ ४ प्र अ १६७ ५ प्र अ १६८

तए ण तव मेहा ! त वणदव पासित्ता अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव[1] समुप्पज्जित्था—'कहि ण मन्ने मए अयमेयारूवे अग्गिसभवे अणुभूयपुव्वे ।' तए ण तव मेहा ! लेस्साहि विसुज्झमाणीहि अज्झवसाणेण सोयणेण, सुभेण परिणामेण, तयावरणिज्जाण कम्माण खओवसमेण, ईहापोह-मग्गण-गवेसण करेमाणस्स सन्निपुव्वे जाइसरणे समुप्पज्जित्था ।

तब एक बार कभी ग्रीष्मकाल के अवसर पर ज्येष्ठ मास मे, वन के दावानल की ज्वालाओ से वन-प्रदेश जलने लगे । दिशाएँ धूम से व्याप्त हो गईं । उस समय तुम बवण्डर की तरह इधर-उधर भागदौड करने लगे । भयभीत हुए, व्याकुल हुए और बहुत डर गए । तब बहुत से हाथियो यावत् हथिनियो आदि के साथ, उनसे परिवृत होकर, चारो ओर एक दिशा से दूसरी दिशा मे भागे ।

हे मेघ ! उस समय उस वन के दावानल को देखकर तुम्हे इस प्रकार का अध्यवसाय, चिंतन एव मानसिक विचार उत्पन्न हुआ— 'लगता है जैसे इस प्रकार की अग्नि की उत्पत्ति मैंने पहले भी कभी अनुभव की है ।' तत्पश्चात् हे मेघ ! विशुद्ध होती हुई लेश्याओ, शुभ अध्यवसाय, शुभ परिणाम और जातिस्मरण को आवृत करने वाले (मतिज्ञानावरण) कर्मों का क्षयोपशम होने मे ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेषणा करते हुए तुम्हे सज्ञी जीवो को प्राप्त होने वाला जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न हुआ ।

१७६—तए ण तुम मेहा ! एयमट्ठ सम्म अभिसमेसि—'एव खलु मया आईए दोच्चे भवग्गहणे इहेव जबुद्दीवे भारहे वासे वेयड्ढगिरिपायमूले जाव[2] तत्थ ण मया अयमेयारूवे अग्गिसभवे समणुभूए ।' तए ण तुम मेहा ! तस्सेव दिवसस्स पच्चावरण्हकाल समयसि नियएण जूहेण सद्धि समन्नागए यावि होत्था । तए ण तुम मेहा ! सत्तुस्सेहे जाव[3] सन्निजाइस्सरणे चउद्द ते मेरुप्पभे नाम हत्थी होत्था ।

तत्पश्चात् मेघ ! तुमने यह अर्थ—वृत्तान्त सम्यक् प्रकार से जान लिया कि—'निश्चय ही मैं व्यतीत हुए दूसरे भव मे, इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे, भरतक्षेत्र मे, वैताढ्य पर्वत की तलहटी मे सुखपूर्वक विचरता था । वहाँ इस प्रकार का महान् अग्नि का सभव-प्रादुर्भाव मैंने अनुभव किया है ।' तदनन्तर हे मेघ ! तुम उस भव मे उसी दिन के अन्तिम प्रहर तक अपने यूथ के साथ विचरण करते थे । हे मेघ ! उसके बाद शत्रु हाथी की मार से मृत्यु को प्राप्त होकर दूसरे भव मे सात हाथ ऊँचे यावत् जातिस्मरण से युक्त, चार दाँत वाले मेरुप्रभ नामक हाथी हुए ।

१७७—तए ण तुज्झ मेहा ! अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—'त सेय खलु मम इयाणि गगाए महानदीए दाहिणिल्लसि कूलसि विझगिरिपायमूले दवग्गिसजायकारणट्ठा सएण जूहेण महालय मडल घाइत्तए' त्ति कट्टु एव सपेहेसि । सपेहित्ता सुह सुहेण विहरसि ।

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम्हे इस प्रकार का अध्यवसाय-चिन्तन, सकल्प उत्पन्न हुआ कि—'मेरे लिए यह श्रेयस्कर है कि इस समय गगा महानदी के दक्षिणी किनारे पर विन्ध्याचल की तलहटी मे दावानल से रक्षा करने के लिए अपने यूथ के साथ बडा मडल बनाऊँ ।' इस प्रकार विचार करके तुम सुखपूर्वक विचरने लगे ।

---

१ प्र अ १६२ २ प्र अ १६६ ३ प्र अ १६४

मंडल निर्माण

१७८—तए णं तुमं मेहा ! अन्नया पढमपाउसंसि महावुट्ठिकायंसि सन्निवइयंसि गंगाए महानदीए अदूरसामंते बहूहिं हत्थीहिं जाव[1] कलभियाहिं य सत्तहिं य हत्थिसएहिं संपरिवुडे एगं महं जोयणपरिमंडलं महइमहालयं मंडलं घाएसि। जं तत्थ तणं वा पत्तं वा कट्ठं वा कंटए वा लया वा वल्ली वा खाणुं वा रुक्खे वा खुवे वा, तं सव्वं तिक्खुत्तो आहुणिय आहुणिय पाएण उट्ठवेसि, हत्थेणं गेण्हसि, एगंते एडेसि।

तए णं तुमं मेहा! तस्सेव मंडलस्स अदूरसामंते गंगाए महानईए दाहिणिल्ले कूले विंझगिरिपायमूले गिरिसु य जाव[2] विहरसि।

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुमने एक बार कभी प्रथम वर्षाकाल में खूब वर्षा होने पर गंगा महानदी के समीप बहुत-से हाथियों यावत् हथिनियों से अर्थात् सात सौ हाथियों से परिवृत होकर एक योजन परिमित बड़े घेरे वाला विशाल मंडल बनाया। उस मंडल में जो कुछ भी घास, पत्ते, काष्ठ, कांटे लता, बेल, ठूंठ, वृक्ष या पौधे आदि थे, उन सबको तीन बार हिला कर पैर से उखाड़ा, सूंड से पकड़ा और एक ओर ले जाकर डाल दिया।

हे मेघ ! तत्पश्चात् तुम उसी मंडल के समीप गंगा महानदी के दक्षिणी किनारे, विन्ध्याचल के पादमूल में, पर्वत आदि पूर्वोक्त स्थानों में विचरण करने लगे।

१७९—तए णं मेहा ! अन्नया कयाइ मज्झिमए वरिसारत्तंसि महावुट्ठिकायंसि सन्निवइयंसि जेणेव से मंडले तेणेव उवागच्छसि। उवागच्छित्ता दोच्चं पि मंडलं घाएसि। एवं चरिमे वासारत्तंसि महावुट्ठिकायंसि सन्निवइयमाणंसि जेणेव से मंडले तेणेव उवागच्छसि, उवागच्छित्ता तच्चं पि मंडलघायं करेसि। जं तत्थ तणं वा जाव[3] सुहंसुहेणं विहरसि।

तत्पश्चात् हे मेघ ! किसी अन्य समय मध्य वर्षा ऋतु में खूब वर्षा होने पर तुम उस स्थान पर गए जहाँ मंडल था। वहाँ जाकर दूसरी बार उस मंडल को ठीक तरह साफ किया। इसी प्रकार अन्तिम वर्षा-रात्रि में भी घोर वृष्टि होने पर जहाँ मंडल था, वहाँ गए। जाकर तीसरी बार उस मंडल को साफ किया। वहाँ जो भी घास, पत्ते, काष्ठ, कांटे, लता, बेलें ठूंठ, वृक्ष या पौधे उगे थे, उन सबको उखाड़ कर सुखपूर्वक विचरण करने लगे।

१८०—अह मेहा ! तुमं गइंदभावम्मि वट्टमाणो कमेणं नलिणिवणविवहणगरे हेमंते कुंदलोद्ध-उद्धत-तुसारपउरम्मि अइक्कंते, अहिणवे गिम्हसमयंसि पत्ते, वियट्टमाणो वणेसु वणकरेणु-विविह-दिण्ण-कयपंसुघाओ तुमं उउय-कुसुम कयचामर-कन्नपूर-परिमंडियाभिरामो मयवस-विगसंत-कड-तडकिलिन्न-गंधमदवारिणा सुरभिजणियगंधो करेणुपरियारिओ उउ-समत्त-जणियसोभो काले दिणयरकरपयंडे परिसोसिय-तरुवर-सिहर-भीमतर-दंसणिज्जे भिंगाररवंतभेरवरवे णाणाविहपत्त-कट्ठ-तण-कयवरुद्धत-पइमारुयाइद्ध-णहयल-दुमगणे वाउलियादारुणतरे तण्हावस-दोसदूसिय-भमंत-विविह-सावय-समाउले भीमदरिसणिज्जे वट्टंते दारुणम्मि गिम्हे मारुयवसपसर-पसरियवियंभिएणं अब्भहिय-भीम-भेरव-रव-प्पगारेणं महुधारा-पडिय-सित्त-उद्धायमाण-धगधगंत-सद्दुद्धुएणं दित्ततरसफु-

1. प्र. अ. १६४ 2. प्र. अ. १६६ 3. प्र. अ. १७८

लिंगेण धूममालाउलेण सावय-सयतकरणेण अब्महियवणदवेण जालालोवियनिरुद्धधूमकारभीओ आयवालोयमहततु बइयपुन्नकण्णो आकु चियथोर-पीवरकरो भयवस भयतदित्तनयणो वेगेण महामेहो व्व पवणोल्लियमहल्लरुवो, जेणेव कओ ते पुरा दवग्गिभयभीयहियएण अवगयतणप्पएसरुक्खो रुक्खो द्देसो दवग्गिसताणकारणट्ठाए जेणेव मडले तेणेव पहारेत्थ गमणाए। एयक्को ताव एस गमो।

हे मेघ! तुम गजेन्द्र पर्याय मे वत्त रहे थे कि अनुक्रम से कमलिनियो के वन का विनाश करने वाला, कुद और लोध्र के पुष्पो की समृद्धि से सम्पन्न तथा अत्यन्त हिम वाला हेमन्त ऋतु व्यतीत हो गया और अभिनव ग्रीष्म काल आ पहुँचा। उस समय तुम वनो मे विचरण कर रहे थे। वहा क्रीडा करते समय वन की हथिनियाँ तुम्हारे ऊपर विविध प्रकार के कमलो एव पुष्पो का प्रहार करती थी। तुम उस ऋतु मे उत्पन्न पुष्पो के बने चामर जैसे कण के आभूषणो से मडित और मनोहर थे। मद के कारण विकसित गडस्थलों को आद्र करने वाले तथा झरते हुए सुगन्धित मदजल से तुम सुगन्धमय बन गये थे। हथिनियो से घिरे रहते थे। सब तरह से ऋतु सम्बन्धी शोभा उत्पन्न हुई थी। उस ग्रीष्म-काल मे सूय की प्रखर किरणे पड रही थी। उस ग्रीष्मऋतु ने श्रेष्ठ वृक्षो के शिखरो को अत्यन्त शुष्क बना दिया था। वह बडा ही भयकर प्रतीत होता था। शब्द करने वाले भृगार नामक पक्षी भयानक शब्द कर रहे थे। पत्र, काष्ठ, तृण और कचरे को उडाने वाले प्रतिकूल पवन से आकाशतल और वृक्षो का समूह व्याप्त हो गया था। वह ववण्डरो के कारण भयानक दीख पडता था। प्यास के कारण उत्पन्न वेदनादि दोषो से ग्रस्त हुए और इसी कारण इधर-उधर भटकते हुए श्वापदो (शिकारी जगली पशुओ) मे युक्त था। देखने मे ऐसा भयानक ग्रीष्मऋतु, उत्पन्न हुए दावानल के कारण और अधिक दारुण हो गया।

वह दावानल वायु के सचार के कारण फैला हुआ और विकसित हुआ था। उसके शब्द का प्रकार अत्यधिक भयकर था। वृक्षो से गिरने वाले मधु की धाराओ से सिञ्चित होने कारण वह अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त हुआ था, धधकने की ध्वनि से परिव्याप्त था। वह अत्यन्त चमकती हुई चिनगारियो से युक्त और धूम की कतार से व्याप्त था। सैकडो श्वापदो के प्राणो का अन्त करने वाला था। इस प्रकार तीव्रता को प्राप्त दावानल के कारण वह ग्रीष्मऋतु अत्यन्त भयङ्कर दिखाई देती थी।

हे मेघ! तुम उस दावानल की ज्वालाओ से आच्छादित हो गये, रुक गये—इच्छानुसार गमन करने मे असमथ हो गये। धुएँ के कारण उत्पन्न हुए अधकार से भयभीत हो गये। अग्नि के ताप को देखने से तुम्हारे दोनो कान अरघट्ट के तुब के समान स्तब्ध रह गये। तुम्हारी मोटी और बडी सूड सिकुड गई। तुम्हारे चमकते हुए नेत्र भय के कारण इधर-उधर फिरने—देखने लगे। जैसे वायु के कारण महामेघ का विस्तार हो जाता है, उसी प्रकार वेग के कारण तुम्हारा स्वरूप विस्तृत दिखाई देने लगा। पहले दावानल के भय से भीतहृदय होकर दावानल से अपनी रक्षा करने के लिए, जिस दिशा मे तृण के प्रदेश (मूल आदि) और वृक्ष आदि हटाकर सफाचट प्रदेश बनाया था और जिधर वह मडल बनाया था, उधर ही जाने का तुमने विचार किया। वही जाने का निश्चय किया।

यह एक गम है, अर्थात् किसी-किसी आचाय के मतानुसार इस प्रकार का पाठ है।

(दूसरा गम इस प्रकार है, अर्थात् अन्य आचाय के मतानुसार पूर्वोक्त पाठ के स्थान पर यह पाठ है जो आगे दिया जा रहा है—)

१८१—तए ण तुम मेहा ! अन्नया कयाइ कमेण पचसु उउसु समइक्कतेसु गिम्हकालसमयसि जेट्ठामूले मासे पायव-सघस-समुट्ठिएण जाव सवट्टिएसु मिय-पसु-पक्खि-सिरीसिवेसु दिसोदिसि विप्पलायमाणेसु तेहिं बहूहिं हत्थीहिं य सद्धिं जेणेव मडले तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

हे मेघ ! किसी अन्य समय पाच ऋतुएँ व्यतीत हो जाने पर ग्रीष्मकाल के अवसर पर ज्येष्ठ मास मे, वृक्षो की परस्पर की रगड मे उत्पन्न दावानल के कारण यावत् अग्नि फैल गई और मृग, पशु, पक्षी तथा सरीसृप आदि भाग-दौड करने लगे । तब तुम बहुत-से हाथियो आदि के साथ जहाँ वह मडल था, वहाँ जाने के लिए दौडे ।

१८२—तत्थ ण अण्णे बहवे सीहा य, वग्घा य, विगया, दीविया, अच्छा य, रिछतरच्छा य, पारासरा य, सरभा य, सियाला, विराला, सुणहा, कोला, ससा, कोकतिया, चित्ता, चिल्लला, पुव्वपविट्ठा, अग्गिभयविद्दुया एगयओ बिलधम्मेण चिट्ठति ।

तए ण तुम मेहा ! जेणेव से मडले तेणेव उवागच्छसि, उवागच्छित्ता तेहिं बहूहिं सीहेहिं जाव चिल्ललएहिं य एगयओ बिलधम्मेण चिट्ठसि ।

उस मडल मे अन्य बहुत से सिंह, बाघ, भेडिया, द्वीपिक (चीते), रीछ, तरच्छ, पारासर, शरभ, शृगाल, विडाल, श्वान, शूकर, खरगोश, लोमडी, चित्र और चिल्लल आदि पशु अग्नि के भय से घबरा कर पहले ही आ घुसे थे और एक साथ बिलधर्म से रहे हुए थे अर्थात् जैसे एक बिल मे बहुत से मकोडे ठसाठस भरे रहते हैं, उसी प्रकार उस मडल मे भी पूर्वोक्त प्राणी ठसाठस भरे थे ।

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम जहाँ मडल था, वहाँ आये और आकर उन बहुसख्यक सिंह यावत् चिल्लल आदि के साथ एक जगह बिलधर्म से ठहर गये ।

अनुकम्पा का फल

१८३—तए ण तुम मेहा ! पाएण गत्त कडुइस्सामि त्ति कट्टु पाए उक्खित्ते, तसि च ण अतरसि अन्नेहिं बलवतेहिं सत्तेहिं पणोलिज्जमाणे पणोलिज्जमाणे ससए अणुपविट्ठे ।

तए ण तुम मेहा ! गाय कडुइत्ता पुणरवि पाय पडिनिक्खमिस्सामि त्ति कट्टु त ससय अणुपविट्ठ पाससि, पासित्ता पाणाणुकपयाए भूयाणुकपयाए जीवाणुकपयाए सत्ताणुकपयाए से पाए अतरा चेव सधारिए, नो चेव ण णिक्खित्ते ।

तए ण मेहा ! ताए पाणाणुकपयाए जाव सत्ताणुकपयाए ससारे परित्तीकए, माणुस्साउए निबद्धे ।

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुमने 'पर से शरीर खुजाऊँ' ऐसा सोचकर एक पर ऊपर उठाया । इसी समय उस खाली हुई जगह मे, अन्य बलवान् प्राणियो द्वारा प्रेरित—धकियाया हुआ एक शशक प्रविष्ट हो गया ।

तब हे मेघ ! तुमने पर खुजा कर सोचा कि मैं पैर नीचे रखूं, परन्तु शशक को पर की जगह मे घुसा हुआ देखा । देखकर द्वीन्द्रियादि प्राणो की अनुकम्पा से, वनस्पति रूप भूतो की अनुकम्पा से पचेन्द्रिय जीवो की अनुकम्पा से तथा वनस्पति के सिवाय शेष चार स्थावर सत्वो की अनुकम्पा से वह पैर अधर ही उठाए रखा, नीचे नही रखा ।

हे मेघ! तब उस प्राणानुकम्पा यावत् (भूतानुकम्पा, जीवानुकम्पा तथा) सत्त्वानुकम्पा से तुमने ससार परीत किया और मनुष्यायु का बन्ध किया।

विवेचन--साधारणतया प्राण, भूत, जीव और सत्त्व शब्द एकार्थक हैं तथापि प्रत्येक शब्द की एक विशिष्ट प्रकृति होती है और उस पर गहराई से विचार करने पर एकार्थक शब्द भी भिन्न-भिन्न अर्थ वाले प्रतीत होने लगते हैं। इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं रूढि अथवा परिभाषा के अनुसार भी शब्दो का विशिष्ट अर्थ नियत होता है। प्राण, भूत आदि शब्दो का यहाँ जो विशिष्ट अर्थ किया गया है वह शास्त्रीय रूढि के आधार पर समझना चाहिए। ऐसा न किया जाय तो सूत्र मे प्रयुक्त 'भूयानुकम्पाए' आदि तीन शब्द निरर्थक हो जाएँगे। किन्तु यह भी स्मरण रखना चाहिए कि आगमो मे क्वचित विभिन्न देशीय शिष्यो की सुगमता के लिए पर्यायवाचक शब्दो का प्रयोग भी उपलब्ध होता है।

जीवानुकम्पा एक शुभ भाव है—पुण्य रूप परिणाम है। वह शुभकर्म के बन्ध का कारण होता है। यही कारण है, जिससे मेरुप्रभ हाथी ने मनुष्यायु का बन्ध किया जो एक शुभ कर्म-प्रकृति है।

शशक एक कोमल काया वाला छोटे कद का प्राणी है—भोला और भद्र। उसे देखते ही सहज रूप मे प्रीति उपजती है। आगमोक्त विभाजन के अनुसार शशक पचेन्द्रिय होने से जीव की गणना मे आता है। उसकी अनुकम्पा जीवानुकम्पा कही जा सकती है। हाथी के चित्त मे उसी के प्रति अनुकम्पा उत्पन्न हुई थी। फिर मूल पाठ मे प्राणानुकम्पा, भूतानुकम्पा और सत्त्वानुकम्पा के उत्पन्न होने का उल्लेख कैसे आ गया? इस प्रश्न का समाधान यह प्रतीत होता है कि शशक के निमित्त से अनुकम्पा का जो भाव उत्पन्न हुआ, वह शशक तक ही सीमित नही रहा—विकसित हो गया व्यापक बनता गया और समस्त प्राणियो तक फैल गया। उसी व्यापक दया-भावना की अवस्था मे हाथी ने मनुष्यायु का बध किया।

१८४—तए ण से वणदवे अड्डाइज्जाइ राइदियाइ त वण झामेइ, झामेत्ता निट्ठिए, उवरए, उवसते, विज्झाए यावि होत्था।

तत्पश्चात् वह दावानल अढाई अहोरात्र पर्यन्त उस वन को जला कर पूर्ण हो गया, उपरत हो गया, उपशान्त हो गया और बुझ गया।

१८५—तए ण ते बहवे सीहा य जाव चिल्लला य त वणदव निट्ठिय जाव विज्झाय पासति, पासित्ता अग्गिभयविप्पमुक्का तण्हाए य छुहाए य परब्भाहया समाणा तओ मडलाओ पडिनिक्खमति। पडिनिक्खमित्ता सव्वओ समता विप्पसरित्था।

तब उन बहुत से सिंह यावत् चिल्ललक आदि पूर्वोक्त प्राणियो ने उन वन-दावानल को पूरा हुआ यावत् बुझा हुआ देखा और देखकर वे अग्नि के भय से मुक्त हुए। वे प्यास एव भूख से पीडित होते हुए उस मडल से बाहर निकले और निकल कर सब दिशाओ और विदिशाओ फैल गये।

१८६—तए ण तुम मेहा! जुन्ने जराजज्जरियदेहे सिढिलवलितयापिणिद्धगत्ते दुब्बले किलते

जु जिए पिवासिए अत्थामे अबले अपरक्कमे अचंकमणे वा ठाणुखंडे वेगेण विप्पसरिस्सामि त्ति कट्टु पाए पसारेमाणे विज्जुहए विव रययगिरिपब्भारे धरणियलंसि सव्वंगेहिं य सन्निवइए।

हे मेघ ! उस समय तुम जीर्ण, जरा से जर्जरित शरीर वाले, शिथिल एवं सलों वाली चमड़ी से व्याप्त गात्र वाले दुर्बल, थके हुए, भूखे-प्यासे, शारीरिक शक्ति से हीन, सहारा न होने से निबल, सामर्थ्य से रहित और चलने फिरने की शक्ति से रहित एवं ठूंठ की भांति स्तब्ध रह गये। 'मैं वेग से चलूँ' ऐसा विचार कर ज्यों ही पैर पसारा कि विद्युत् से आघात पाये हुए रजतगिरि के शिखर के समान सभी अंगों से तुम धड़ाम से धरती पर गिर पड़े।

पुनर्जन्म

१८७—तए णं तव मेहा ! सरीरगंसि वेयणा पाउब्भूया उज्जला जाव (विउला कक्खडा पगाढा चंडा दुक्खा दुरहियासा। पित्तज्जरपरिगयसरीरे) दाहवक्कंतीए यावि विहरसि। तए णं तुमं मेहा ! तं उज्जलं जाव दुरहियासं तिन्नि राइंदियाइं वेयणं वेएमाणे विहरित्ता एगं वाससयं परमाउं पालइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे रायगिहे नयरे सेणियस्स रन्नो धारिणीए देवीए कुच्छिंसि कुमारत्ताए पच्चायाए।

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम्हारे शरीर में उत्कट [विपुल, कर्कश—कठोर, प्रगाढ, दुःखमय और दुस्सह] वेदना उत्पन्न हुई। शरीर पित्तज्वर से व्याप्त हो गया और शरीर में जलन होने लगी। तुम ऐसी स्थिति में रहे। तब हे मेघ ! तुम उस उत्कट यावत् दुस्सह वेदना को तीन रात्रि-दिवस पर्यन्त भोगते रहे। अन्त में सौ वर्ष की पूर्ण आयु भोगकर इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भारतवर्ष में राजगृह नगर में श्रेणिक राजा की धारिणी देवी की कूख में कुमार के रूप में उत्पन्न हुए।

मृदु उपालंभ

१८८—तए णं तुमं मेहा ! आणुपुव्वेणं गब्भवासाओ निक्खंते समाणे उम्मुक्कबालभावे जोव्वणगमणुपत्ते मम अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए। तं जइ जाव तुमं मेहा ! तिरिक्खजोणिय-भावमुवागएणं अप्पडिलद्ध-सम्मत्तरयणलंभेणं से पाए पाणाणुकंपयाए जाव अंतरा चेव संधारिए, नो चेव णं निक्खित्ते, किमंग पुण तुमं मेहा ! इयाणिं विपुलकुलसमुब्भवे णं निरुवहय सरीर-दंतलद्धपंचिदिए णं एवं उट्ठाण-बल-वीरिय-पुरिसगार-परक्कम-संजुत्ते णं मम अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे समणाणं निग्गंथाणं राओ पुव्वरत्तावरत्तकाल समयंसि वायणाए जाव धम्माणुओगचिंताए य उच्चारस्स वा पासवणस्स वा अइगच्छमाणाण य निग्गच्छमाणाण य हत्थसंघट्टणाणि य पायसंघट्टणाणि य जाव रयरेणुगुंडणाणि य नो सम्मं सहसि खमसि, तितिक्खसि, अहियासेसि ?

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम अनुक्रम से गर्भवास से बाहर आये—तुम्हारा जन्म हुआ। बाल्यावस्था से मुक्त हुए और युवावस्था को प्राप्त हुए। तब मेरे निकट मुंडित होकर गृहवास से (मुक्त हो) अनगार हुए। तो हे मेघ ! जब तुम तिर्यंचयोनि रूप पर्याय को प्राप्त थे और जब तुम्हें सम्यक्त्व-रत्न का लाभ भी नहीं हुआ था, उस समय भी तुमने प्राणियों की अनुकम्पा से प्रेरित होकर

यावत् अपना पैर अधर ही रखा था, नीचे नही टिकाया था, तो फिर हे मेघ ! इस जन्म मे तो तुम विशाल कुल मे जन्मे हो, तुम्हे उपघात से रहित शरीर प्राप्त हुआ है। प्राप्त हुई पाचो इन्द्रियो का तुमने दमन किया है और उत्थान (विशिष्ट शारीरिक चेष्टा), वल (शारीरिक शक्ति), वीर्य (आत्मवल), पुरुषकार (विशेष प्रकार का अभिमान) और पराक्रम (काय को सिद्ध करने वाले पुरुषार्थ) से युक्त हो और मेरे समीप मु डित होकर गृहवास का त्याग कर अगेही वने हो, फिर भी पहली और पिछली रात्रि के समय श्रमण निर्ग्रन्थ वाचना के लिए यावत् धर्मानुयोग के चिन्तन के लिए तथा उच्चार-प्रस्रवण के लिए आते-जाते थे, उस समय तुम्हे उनके हाथ का स्पर्श हुआ, पैर का स्पश हुआ, यावत् रजकणो से तुम्हारा शरीर भर गया, उसे तुम सम्यक् प्रकार से सहन न कर सके! विना क्षुब्ध हुए सहन न कर सके ! अदीनभाव से तितिक्षा न कर सके ! और शरीर को निश्चल रख कर सहन न कर सके !

१८९—तए ण तस्स मेहस्स अणगारस्स, समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म सुभेहि परिणामेहि, पसत्थेहि अज्झवसाणेहि, लेस्साहि विसुज्झमाणीहि, तयावर-णिज्जाण कम्माण खओवसमेण ईहापोह-मग्गण-गवेसण करेमाणस्स सन्निपुव्वे जाइसरणे समुप्पन्ने। एयमट्ठ सम्म अभिसमेइ।

तत्पश्चात् मेघकुमार अनगार को श्रमण भगवान् महावीर के पास से यह वृत्तान्त सुन-समझ कर, शुभ परिणामो के कारण, प्रशस्त अध्यवसायो के कारण, विशुद्ध होती हुई लेश्याओ के कारण और जातिस्मरण को आवृत करने वाले ज्ञानावरणकर्म के क्षयोपशम के कारण, ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेषणा करते हुए, सज्ञी जीवो को प्राप्त होने वाला जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न हुआ। उससे मेघ मुनि ने अपना पूर्वोक्त वृत्तान्त सम्यक् प्रकार से जान लिया।

पुन प्रव्रज्या

१९०—तए ण से मेहे कुमारे समणेण भगवया महावीरेण सभारियपुव्वभवे दुगुणाणीय सवेगे आणदसुपुन्नमुहे हरिसवसेण धाराहयकदवक पिव समुस्ससियरोमकूवे समण भगव महावीर वदइ, नमसइ, वदित्ता, नमसित्ता एव वयासी—'अज्जप्पभिई ण भते ! मम दो अच्छीणि मोत्तूण अवसेसे काए समणाण निग्गथाण निसट्ठे' त्ति कट्टु पुणरवि समण भगव महावीर वदइ, नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—'इच्छामि ण भते ! इयाणि सयमेव दोच्च पि पव्वाविय, सयमेव मु डाविय जाव[1] सयमेव आयारगोयर जायामायावत्तिय धम्ममाइक्खिय।'

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर के द्वारा मेघकुमार को पूव वृत्तान्त स्मरण करा देने से दुगुना सवेग प्राप्त हुआ। उसका मुख आनद के आसुओ मे परिपूर्ण हो गया। हर्ष के कारण मेघधारा से आहत कदवपुष्प की भाति उसके रोम विकसित हो गये। उसने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन किया, नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'भते ! आज से मैंने अपने दोनो नेत्र छोड कर शेष समस्त शरीर श्रमण निर्ग्रन्थो के लिए समर्पित किया।' इस प्रकार कह कर मेघकुमार ने पुन श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-

१ प्र अ सूत्र १५९

नमस्कार करके इस भाँति कहा—'भगवन् ! मेरी इच्छा है कि अब आप स्वयं ही दूसरी बार मुझे प्रव्रजित करें, स्वयं ही मुंडित करें, यावत् स्वयं ही ज्ञानादिक आचार, गोचर—गोचरी के लिए भ्रमण यात्रा—पिण्डविशुद्धि आदि संयमयात्रा तथा मात्रा—प्रमाणयुक्त आहार ग्रहण करना, इत्यादि स्वरूप वाले श्रमणधर्म का उपदेश दें।'

१९१—तए णं समणे भगवं महावीरे मेहं सयमेव पव्वावेइ जाव जायामायावत्तियं धम्ममाइक्खइ—'एवं देवाणुप्पिया ! गंतव्वं, एवं चिट्ठियव्वं एवं णिसीयव्वं, एवं तुयट्टियव्वं, एवं भुंजियव्वं, एवं भासियव्वं, उट्ठाय उट्ठाय पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं संजमेणं संजमियव्वं।'

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ने मेघकुमार को स्वयमेव पुनः दीक्षित किया, यावत् स्वयमेव यात्रा-मात्रा रूप धर्म का उपदेश दिया। कहा—'हे देवानुप्रिय ! इस प्रकार गमन करना चाहिए अर्थात् युगपरिमित भूमि पर दृष्टि रख कर चलना चाहिए। इस प्रकार अर्थात् पृथ्वी का प्रमार्जन करके खड़ा होना चाहिए, इस प्रकार अर्थात् भूमि का प्रमार्जन करके बैठना चाहिए, इस प्रकार अर्थात् शरीर एवं भूमि का प्रमार्जन करके शयन करना चाहिए, इस प्रकार अर्थात् निर्दोष आहार करना चाहिए और इस प्रकार अर्थात् भाषासमितिपूर्वक बोलना चाहिए। सावधान रह रह कर प्राणों, भूतों, जीवों और सत्त्वों की रक्षा रूप संयम में प्रवृत्त रहना चाहिए। तात्पर्य यह है कि मुनि को प्रत्येक क्रिया यतना के साथ करना चाहिए।

१९२—तए णं से मेहे समणस्स भगवओ महावीरस्स अयमेयारूवं धम्मियं उवएसं सम्मं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता तह चिट्ठइ जाव संजमेणं संजमइ।

तए णं से मेहे अणगारे जाइ इरियासमिए, अणगारवण्णओ भाणियव्वो।

तत्पश्चात् मेघ मुनि ने श्रमण भगवान् महावीर के इस प्रकार के इस धार्मिक उपदेश को सम्यक् प्रकार से अंगीकार किया। अंगीकार करके उसी प्रकार वर्त्ताव करने लगे यावत् संयम में उद्यम करने लगे।

तब मेघ ईर्यासमिति आदि से युक्त अनगार हुए। यहाँ औपपातिकसूत्र के अनुसार अनगार का समस्त वर्णन कहना चाहिए।

विवेचना—औपपातिकसूत्र में वर्णित अनगार के स्वरूप का संक्षिप्त सार इस प्रकार है—

'ईर्या आदि पाँचों समितियों के अतिरिक्त मनसमिति, वचनसमिति, कायसमिति से युक्त, तीन गुप्तियों से गुप्त, इन्द्रियों का गोपन करने वाला—इन्द्रियविषयों में राग-द्वेषरहित, गुप्तिओं (उपवासों) सहित ब्रह्मचर्यपालक, त्यागी, लज्जाशील, धन्य, क्षमाशील, जितेन्द्रिय, शोधित (शोधित), निदानविहीन, उत्कंठा कुतूहल की वृत्ति से रहित, अक्रोधी, श्रमणधर्म में सम्यक् प्रकार से रत, दान्त और निर्ग्रन्थप्रवचन को सम्मुख रख कर विचरने वाला जो होता है, वही सच्चा साधु है।'

१९३—तए णं से मेहे अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए एयारूवाणं थेराणं सामाइयमाइयाणि एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठ-ट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मास-द्धमासखमणेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तत्पश्चात् उन मेघ मुनि ने श्रमण भगवान् महावीर के निकट रह कर तथा प्रकार के स्थविर मुनियो से सामायिक से आरम्भ करके ग्यारह अगशास्त्रो का अध्ययन किया। अध्ययन करके बहुत से उपवास, वेला, तेला, पचौला आदि से तथा अर्धमासखमण एव मासखमण आदि तपस्या से आत्मा को भावित करते हुए वे विचरने लगे।

विहार और प्रतिमावहन

१९४—तए ण समणे भगव महावीरे रायगिहाओ नगराओ गुणसिलाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ। पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहार विहरइ।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर राजगृह नगर से, गुणशीलक चैत्य से निकले। निकल कर बाहर जनपदो मे विहार करने लगे—विचरने लगे।

१९५—तए ण से मेहे अणगारे अन्नया कयाइ समण भगव महावीर वदइ, नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—'इच्छामि ण भते! तुब्भेहि अब्भणुन्नाए समाणे मासिय भिक्खुपडिम उवसपज्जित्ता ण विहरित्तए।

'अहासुह देवाणुप्पिया! मा पडिबध करेह।'

तत्पश्चात् उन मेघ अनगार ने किसी अन्य समय श्रमण भगवान् महावीर की वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'भगवन्! मैं आपकी अनुमति पाकर एक मास की मर्यादा वाली भिक्षुप्रतिमा को अगीकार करके विचरने की इच्छा करता हूँ।'

भगवान् ने कहा—'देवानुप्रिय! तुम्हे जैसा सुख उपजे वैसा करो। प्रतिबन्ध, अर्थात् इच्छित कार्य का विघात न करो—विलम्ब न करो।'

१९६—तए ण से मेहे समणेण भगवया महावीरेण अब्भणुन्नाए समाणे मासिय भिक्खुपडिम उवसपज्जित्ता ण विहरइ। मासिय भिक्खुपडिम अहासुत्त अहाकप्प अहामग्ग सम्म काएण फासेइ, पालेइ, सोहेइ, तीरेइ, किट्टेइ, सम्म काएण फासित्ता पालित्ता सोहेत्ता तीरेत्ता किट्टेत्ता पुणरवि समण भगव महावीर वदइ, नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर द्वारा अनुमति पाए हुए मेघ अनगार एक मास की भिक्षुप्रतिमा अगीकार करके विचरने लगे। एक मास की भिक्षुप्रतिमा को यथासूत्र—सूत्र के अनुसार, कल्प (आचार) के अनुसार, मार्ग (ज्ञानादि मार्ग या क्षायोपशमिक भाव) के अनुसार सम्यक् प्रकार से काय से ग्रहण किया, निरन्तर सावधान रहकर उसका पालन किया, पारणा के दिन गुरु को देकर शेष बचा भोजन करके शोभित किया, अथवा अतिचारो का निवारण करके शोधन किया, प्रतिमा का काल पूर्ण हो जाने पर भी किंचित् काल अधिक प्रतिमा मे रहकर तीर्ण किया, पारण के दिन प्रतिमा सम्बन्धी कार्यों का कथन करके कीर्त्तन किया। इस प्रकार समीचीन रूप से काया से स्पर्श करके, पालन करके, शोभित या शोधित करके, तीर्ण करके एव कीर्त्तन करके पुन श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

१९७—'इच्छामि ण भते! तुब्भेहि अब्भणुन्नाए समाणे दोमासिय भिक्खुपडिम उवसपज्जित्ता ण विहरित्तए।'

'अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह ।'

जहा पढमाए अभिलावो तहा दोच्चाए तच्चाए चउत्थाए पंचमाए छम्मासियाए सत्त-
सियाए पढमसत्तराइंदियाए दोच्चसत्तराइंदियाए तइयसत्तराइंदियाए अहोराइंदियाए
एगराइंदियाए वि ।

'भगवन् ! आपकी अनुमति प्राप्त करके मैं दो मास की भिक्षुप्रतिमा अंगीकार कर
विचरना चाहता हूँ ।'

भगवान् ने कहा—'देवानुप्रिय ! जैसे सुख उपजे वैसा करो । प्रतिबन्ध मत करो ।'

जिस प्रकार पहली प्रतिमा में आलापक कहा है, उसी प्रकार दूसरी प्रतिमा दो मास की,
तीसरी तीन मास की, चौथी चार मास की, पाँचवीं पांच मास की, छठी छह मास की, सातवीं मा
मास की, फिर पहली अर्थात् आठवीं सात अहोरात्र की दूसरी अर्थात् नौवीं भी सात अहोरात्र की
तीसरी अर्थात् दसवीं भी सात अहोरात्र की और ग्यारहवीं तथा बारहवीं प्रतिमा एक एक अहोरा
की कहना चाहिए । (मेघमुनि ने इन सब प्रतिमाओं का यथाविधि पालन किया ।)

उग्र तपश्चरण

१९७—तए णं से मेहे अणगारे बारस भिक्खुपडिमाओ सम्मं काएणं फासेत्ता पालेत्ता सोहेत्ता
तीरेत्ता किट्टेत्ता पुणरवि वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—'इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं
अब्भणुण्णाए समाणे गुणरयणसंवच्छरं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए ।

'अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह ।

तत्पश्चात् मेघ अनगार ने बारहों भिक्षुप्रतिमाओं का सम्यक् प्रकार से काय से स्पर्श करके
पालन करके, शोधन करके, तीर्ण करके और कीर्तन करके पुनः श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन
नमस्कार किया । वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—भगवन् ! मैं आपकी आज्ञा प्राप्त करके
गुणरत्नसंवत्सर नामक तपश्चरण अंगीकार करना चाहता हूँ ।'

भगवान् बोले—हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख उपजे वैसा करो । प्रतिबन्ध मत करो ।'

विवेचन—गुणरत्नसंवत्सर नामक तप में तेरह मास और सत्तरह दिन उपवास के होते हैं
और तिहत्तर दिन पारणा के । इस प्रकार सोलह मास में इस तप का अनुष्ठान किया जाता है ।
तपस्या का यंत्र इस प्रकार है—

मास	तप	तपोदिन	पारणादिवस	कुल दिन
१	उपवास	१५	१५	३०
२	बेला	२०	१०	३०
३	तेला	२४	८	३२
४	चोला	२४	६	३०
५	पचोला	२५	५	३०
६	छह उपवास	२४	४	२८
७	सात उपवास	२१	३	२४

८	आठ उपवास	२४	३	२७
९	नौ उपवास	२७	३	३०
१०	दस उपवास	३०	३	३३
११	ग्यारह उपवास	३३	३	३६
१२	बारह उपवास	२४	२	२६
१३	तेरह उपवास	२६	२	२८
१४	चौदह उपवास	२८	२	३०
१५	पद्रह उपवास	३०	२	३२
१६	सोलह उपवास	३२	२	३४
		४०७	७३	४८०

जिस मास मे जितने दिन कम हैं, उससे अगले मास मे से उतने दिन अधिक समझ लेने चाहिए। इसी प्रकार जिस मास मे अधिक हैं, उसके दिन अगले मास मे सम्मिलित कर देने चाहिए।

१९९—तए ण से मेहे अणगारे पढम मास चउत्थ चउत्थेण अणिक्खित्तेण तवोकम्मेण दिया ठाणुक्कुडुए सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे रत्ति वीरासणेण अवाउडएण।

दोच्च मास अणिक्खित्तेण तवोकम्मेण दिया ठाणुक्कुडए सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे, रत्ति वीरासणेण अवाउडएण। तच्च मास अट्ठम अट्ठमेण अणिक्खित्तेण तवोकम्मेण, दिया ठाणुक्कुडए सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे रत्ति वीरासणेण उवाउडएण।

चउत्थ मास दसमदसमेण अणिक्खित्तेण तवोकम्मेण दिया ठाणुक्कुडुए सूराभिमूहे आयावणभूमीए आयावेमाणे रत्ति वीरासणेण अवाउडएण। पचम मास दुवालसमदुवालसमेण अणिक्खित्तेण तवोकम्मेण दिया ठाणुक्कुडुए सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे रत्ति वीरासणेण अवाउडएण। एव खलु एएण अभिलावेण छट्ठे चोद्दसमचोद्दसमेण, सत्तमे सोलसमसोलसमेण, अट्ठमे अट्ठारसम अट्ठारसमेण, नवमे वीसतिमवीसतिमेण, दसमे बावीसइमबावीसइमेण, एक्कारसमे चउवीसइमचउवीसइमेण, बारसमे छव्वीसइमछव्वीसइमेण, तेरसमे अट्ठावीसइमअट्ठावीसइमेण, चोद्दसमे तीसइमतीसइमेण, पचदसमे बत्तीसइमबत्तीसइमेण, सोलसमे मासे चउत्तीसइमचउत्तीसइमेण अणिक्खित्तेण तवोकम्मेण दिया ठाणुक्कुडुएण सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे राइ वीरासणेण य अवाउएण य।

तत्पश्चात् मेघ अनगार पहले महीने मे निरन्तर चतुथभक्त अर्थात् एकान्तर उपवास की तपस्या के साथ विचरने लगे। दिन मे उत्कट (गोदोहन) आसन से रहते और आतापना लेने की भूमि मे सूय के सन्मुख आतापना लेते। रात्रि मे प्रावरण (वस्त्र) से रहित होकर वीरासन से स्थित रहते थे।

इसी प्रकार दूसरे महीने निरन्तर षष्ठभक्त तप—बेला, तीसरे महीने अष्टमभक्त (तेला) तथा चौथे मास मे दशमभक्त (चौला) तप करते हुए विचरने लगे। दिन मे उत्कट आसन से स्थित रहते, सूर्य के सामने आतापना भूमि मे आतापना लेते और रात्रि मे प्रावरण रहित होकर वीरासन से रहते।

पाँचवें मास में द्वादशम-द्वादशम (पचोले पचोले) का निरन्तर तप करने लगे। दिन में उकडू आसन से स्थिर होकर, सूर्य के सन्मुख आतापनाभूमि में आतापना लेते और रात्रि में प्रावरण रहित होकर वीरासन से रहते थे।

इसी प्रकार से आतापना के साथ छठे मास में छह छह उपवास का, सातवें मास में सात सात उपवास का, आठवें मास में आठ-आठ उपवास का, नौवें मास में नौ-नौ उपवास का, दसवें मास में दस दस उपवास का, ग्यारहवें मास में ग्यारह-ग्यारह उपवास का, बारहवें मास में बारह-बारह उपवास का तेरहवें मास में तेरह-तेरह उपवास का, चौदहवें मास में चौदह-चौदह उपवास का, पन्द्रहवें मास में पन्द्रह-पन्द्रह उपवास का और सोलहवें मास में सोलह-सोलह उपवास का निरन्तर तप करते हुए विचरने लगे। दिन में उकडू आसन से सूर्य के सन्मुख आतापनाभूमि में आतापना लेते थे और रात्रि में प्रावरणरहित होकर वीरासन से स्थित रहते थे।

विवेचन—दोनों पैर पृथ्वी पर टेक कर सिंहासन या कुर्सी पर बैठ जाये और बाद में सिंहासन या कुर्सी हटा ली जाये तो जो आसन बनता है वह वीरासन कहलाता है।

२००—तए णं से मेहे अणगारे गुणरयणसंवच्छरं तवोकम्मं अहासुत्तं जाव[1] सम्मं काएणं फासेइ, पालेइ, सोहेइ, तीरेइ, किट्टेइ, अहासुत्तं अहाकप्पं जाव किट्टेत्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता बहूहिं छट्ठट्ठमदसमदुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

इस प्रकार मेघ अनगार ने गुणरत्नसंवत्सर नामक तप कर्म का सूत्र के अनुसार, कल्प के अनुसार तथा मार्ग के अनुसार सम्यक् प्रकार से काय द्वारा स्पर्श किया, पालन किया, शोधित या शोभित किया तथा कीर्तित किया। सूत्र के अनुसार और कल्प के अनुसार यावत् कीर्तन करके श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन किया, नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके बहुत से षष्ठभक्त, अष्टभक्त, दशमभक्त, द्वादशभक्त आदि तथा अर्धमासखमण एवं मासखमण आदि विविध प्रकार के तपश्चरण करके आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

२०१—तए णं से मेहे अणगारे तेणं उरालेणं विपुलेणं सस्सिरीएणं पयत्तेणं पग्गहिएणं कल्लाणेणं सिवेणं धन्नेणं मंगल्लेणं उदग्गेणं उदारएणं उत्तमेणं महाणुभावेणं तवोकम्मेणं सुक्के भुक्खे लुक्खे निम्मंसे निस्सोणिए किडिकिडियाभूए अट्ठिचम्मावणद्धे किसे धमणिसंतए जाए यावि होत्था।

जीवंजीवेण गच्छइ, जीवंजीवेण चिट्ठइ, भासं भासित्ता गिलायइ, भासं भासमाणे गिलायइ, भासं भासिस्सामि त्ति गिलायइ।

तत्पश्चात् मेघ अनगार उस उराल—प्रधान, विपुल—दीर्घकालीन होने के कारण विस्तीर्ण, सश्रीक—शोभासम्पन्न, गुरु द्वारा प्रदत्त अथवा प्रयत्नसाध्य, बहुमानपूर्वक गृहीत, कल्याणकारी—नीरोगताकारक, शिव—मुक्ति के कारण, धन्य—धन प्रदान करने वाला, मांगल्य—पापविनाशक, उदग्र—तीव्र, उदार—निष्काम होने के कारण औदार्य वाले, उत्तम—अज्ञानान्धकार से रहित और सम्यक् प्रभाव वाले

1. प्र. अ. सूत्र १९९

तप कर्म से शुष्क-नीरस शरीर वाले, भूखे, रुक्ष, मासरहित और रुधिररहित हो गए। उठते बैठते उनके हाड कडकडाने लगे। उनकी हड्डियाँ केवल चमडे से मढी रह गईं। शरीर कृश और नसो से व्याप्त हो गया।

वह अपने जीव के बल से ही चलते एव जीव के बल से ही खडे रहते। भाषा बोलकर थक जाते, बात करते-करते थक जाते, यहा तक कि 'मैं बोलूगा' ऐसा विचार करते ही थक जाते थे। तात्पर्य यह है कि पूर्वोक्त उग्र तपस्या के कारण उनका शरीर अत्यन्त ही दुर्बल हो गया था।

२०२—से जहानामए इगालसगडियाइ वा, कट्ठसगडियाइ वा, पत्तसगडियाइ वा, तिल-सगडियाइ वा, एरडकट्ठसगडियाइ वा, उण्हे दिन्ना सुक्का समाणी ससद्द गच्छइ, ससद्द चिट्ठइ, एवामेव मेहे अणगारे ससद्द गच्छइ, ससद्द चिट्ठइ, उवचिए तवेण, अवचिए मससोणिएण, हुयासणे इव भासरासिपरिच्छन्ने, तवेण तेएण तवतेयसिरीए अईव अईव उवसोभेमाणे उवसोभेमाणे चिट्ठइ।

जैसे कोई कोयले से भरी गाडी हो, लकडियो से भरी गाडी हो, सूखे पत्तो से भरी गाडी हो, तिलो (तिल के डठलो) से भरी गाडी हो, अथवा एरड के काष्ठ से भरी गाडी हो, धूप मे डाल कर सुखाई हुई हो, अर्थात् कोयला, लकडी, पत्ते आदि खूब सुखा लिये गये हो और फिर गाडी मे भर गये हो, तो वह गाडी खडखड की आवाज करती हुई चलती है और आवाज करती हुई ठहरती है, उसी प्रकार मेघ अनगार हाडो की खडखडाहट के साथ चलते थे और खडखडाहट के साथ खडे रहते थे। वह तपस्या से तो उपचित—वृद्धिप्राप्त थे, मगर मास और रुधिर से अपचित—ह्रास को प्राप्त हो गये थे। वह भस्म के समूह से आच्छादित अग्नि की तरह तपस्या के तेज से देदीप्यमान थे। वह तपस्तेज की लक्ष्मी से अतीव शोभायमान हो रहे थे।

२०३—तेण कालेण तेण समएण समणे भगव महावीरे आइगरे तित्थयरे जाव[1] पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे, गामाणुगाम दूइज्जमाणे सुहसुहेण विहरमाणे, जेणामेव रायगिहे नगरे जेणामेव गुणसिलए चेइए तेणामेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता अहापडिरूव उग्गह उग्गिण्हित्ता सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरइ।

उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर धर्म की आदि करने वाले, तीर्थ की स्थापना करने वाले, यावत् अनुक्रम से चलते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम को पार करते हुए, सुख-पूर्वक विहार करते हुए, जहा राजगृह नगर था और जहाँ गुणशील चैत्य था, उसी जगह पधारे। पधार कर यथोचित अवग्रह (उपाश्रय) की आज्ञा लेकर सयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

समाधिमरण

२०४—तए ण तस्स मेहस्स अणगारस्स राओ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयसि धम्मजागरिय जागरमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव (चिंतिए पत्थिए मणोगए सकप्पे) समुप्पज्जित्था—

'एव खलु अह इमेण उरालेण तहेव जाव[2] भास भासिस्सामि त्ति गिलामि, त अत्थि ता मे

---

१ प्र अ सूत्र ८, २ प्र अ सूत्र २०१

पाँचवें मास में द्वादशम-द्वादशम (पचोले पचोले) का निरंतर तप करने लगे। दिन में उत्कटु आसन से स्थिर होकर, सूर्य के सम्मुख आतापनाभूमि में आतापना लेते और रात्रि में प्रावरण रहित होकर वीरासन से रहते थे।

इसी प्रकार के आतापन के साथ छठे मास में छह-छह उपवास का, सातवें मास में सात-सात उपवास का, आठवें मास में आठ-आठ उपवास का, नौवें मास में नौ-नौ उपवास का, दसवें मास में दस दस उपवास का, ग्यारहवें मास में ग्यारह-ग्यारह उपवास का, बारहवें मास में बारह-बारह उपवास का, तेरहवें मास में तेरह-तेरह उपवास का, चौदहवें मास में चौदह-चौदह उपवास का, पन्द्रहवें मास में पन्द्रह-पन्द्रह उपवास का और सोलहवें मास में सोलह-सोलह उपवास का निरन्तर तप करते हुए विचरने लगे। दिन में उत्कटु आसन से सूर्य के सम्मुख आतापनाभूमि में आतापना लेते थे और रात्रि में प्रावरणरहित होकर वीरासन से स्थित रहते थे।

विवेचन—दोनों पैर पृथ्वी पर टेक कर सिंहासन या कुर्सी पर बैठ जाये और बाद में सिंहासन या कुर्सी हटा ली जाये तो जो आसन बनता है वह वीरासन कहलाता है।

२००—तए णं से मेहे अणगारे गुणरयणसंवच्छरं तवोकम्मं अहासुत्तं जाव[1] सम्मं काएणं फासेइ, पालेइ, सोहेइ, तीरेइ, किट्टेइ, अहासुत्तं अहाकप्पं जाव किट्टेत्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता बहूहिं छट्ठट्ठमदसमदुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

इस प्रकार मेघ अनगार ने गुणरत्नसंवत्सर नामक तप कर्म का सूत्र के अनुसार, कल्प के अनुसार तथा मार्ग के अनुसार सम्यक् प्रकार से काय द्वारा स्पर्श किया, पालन किया, शोधित या शोभित किया तथा कीर्तित किया। सूत्र के अनुसार और कल्प के अनुसार यावत् कीर्तन करके श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना किया, नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके बहुत से षष्ठभक्त, अष्टभक्त दशमभक्त, द्वादशभक्त आदि तथा अर्धमासखमण एवं मासखमण आदि विविध प्रकार के तपश्चरण करके आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

२०१—तए णं से मेहे अणगारे तेणं उरालेणं विपुलेणं सस्सिरीएणं पयत्तेणं पग्गहिएणं कल्लाणेणं सिवेणं धन्नेणं मंगल्लेणं उदग्गेणं उदारएणं उत्तमेणं महाणुभावेणं तवोकम्मेणं सुक्के भुक्खे लुक्खे निम्मंसे निस्सोणिए किडिकिडियाभूए अट्ठिचम्मावणद्धे किसे धमणिसंतए जाए यावि होत्था।

जीवंजीवेण गच्छइ, जीवंजीवेणं चिट्ठइ, भासं भासित्ता गिलायइ, भासं भासमाणे गिलायइ, भासं भासिस्सामि त्ति गिलायइ।

तत्पश्चात् मेघ अनगार उस उराल—प्रधान, विपुल—दीर्घकालीन होने के कारण विस्तीर्ण, सश्रीक—शोभासम्पन्न, गुरु द्वारा प्रदत्त अथवा प्रयत्नसाध्य, बहुमानपूर्वक गृहीत, कल्याणकारी—नीरोगताजनक, शिव—मुक्ति के कारण, धन्य—धन प्रदान करने वाले, मांगल्य—पापविनाशक, उदग्र—तीव्र, उदार—निष्काम होने के कारण औदार्य वाले, उत्तम—अज्ञानान्धकार से रहित और महान् प्रभाव वाले

[1] प्र. अ. सूत्र १९१

तप कर्म से शुष्क-नीरस शरीर वाले, भूखे, रुक्ष, मासरहित और रुधिररहित हो गए। उठते बैठते उनके हाड कडकडाने लगे। उनकी हड्डियाँ केवल चमडे से मढी रह गईं। शरीर कृश और नसो से व्याप्त हो गया।

वह अपने जीव के बल से ही चलते एव जीव के बल से ही खडे रहते। भाषा बोलकर थक जाते, बात करते-करते थक जाते, यहा तक कि 'मैं बोलू गा' ऐसा विचार करते ही थक जाते थे। तात्पर्य यह है कि पूर्वोक्त उग्र तपस्या के कारण उनका शरीर अत्यन्त ही दुबल हो गया था।

२०२—से जहानामए इगालसगडियाइ वा, कट्ठसगडियाइ वा, पत्तसगडियाइ वा, तिल-सगडियाइ वा, एरडकट्ठसगडियाइ वा, उण्हे दिन्ना सुक्का समाणी ससद्द गच्छइ, ससद्द चिट्ठइ, एवामेव मेहे अणगारे ससद्द गच्छइ, ससद्द चिट्ठइ, उवचिए तवेण, अवचिए मससोणिएण, हुयासणे इव भासरासिपरिच्छन्ने, तवेण तेएण तवतेयसिरीए अईव अईव उवसोभेमाणे उवसोभेमाणे चिट्ठइ।

जसे कोई कोयले से भरी गाडी हो, लकडियो से भरी गाडी हो, सूखे पत्तो से भरी गाडी हो, तिलो (तिल के डठलो) से भरी गाडी हो, अथवा एरड के काष्ठ से भरी गाडी हो, धूप मे डाल कर सुखाई हुई हो, अर्थात् कोयला, लकडी, पत्ते आदि खूब सुखा लिये गये हो और फिर गाडी मे भरे गये हो, तो वह गाडी खडखड की आवाज करती हुई चलती है और आवाज करती हुई ठहरती है, उसी प्रकार मेघ अनगार हाडो की खडखडाहट के साथ चलते थे और खडखडाहट के साथ खडे रहते थे। वह तपस्या से तो उपचित—वृद्धिप्राप्त थे, मगर मास और रुधिर से अपचित—ह्रास को प्राप्त हो गये थे। वह भस्म के समूह से आच्छादित अग्नि की तरह तपस्या के तेज से देदीप्यमान थे। वह तपस्तेज की लक्ष्मी से अतीव शोभायमान हो रहे थे।

२०३—तेण कालेण तेण समएण समणे भगव महावीरे आइगरे तित्थयरे जाव[1] पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे, गामाणुगाम दूइज्जमाणे सुहसुहेण विहरमाणे, जेणामेव रायगिहे नगरे जेणामेव गुणसिलए चेइए तेणामेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता अहापडिरूव उग्गह उग्गिण्हित्ता सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरइ।

उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर धम की आदि करने वाले, तीथ की स्थापना करने वाले, यावत् अनुक्रम से चलते हुए, एक ग्राम मे दूसरे ग्राम को पार करते हुए, सुख-पूवक विहार करते हुए, जहा राजगृह नगर था और जहा गुणशील चैत्य था, उसी जगह पधारे। पधार कर यथोचित अवग्रह (उपाश्रय) की आज्ञा लेकर सयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

समाधिमरण

२०४—तए ण तस्स मेहस्स अणगारस्स राओ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयसि धम्मजागरिय जागरमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव (चितिए पत्थिए मणोगए सकप्पे) समुप्पज्जित्था—

'एव खलु अह इमेण उरालेण तहेव जाव[2] भास भासिस्सामि त्ति गिलामि, त अत्थि ता मे

१ प्र अ सूत्र ८, २ प्र अ सूत्र २०१

उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे सद्धा धिई संवेगे तं जाव ता मे अत्थि उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे सद्धा धिई संवेगे जाव य मे धम्मायरिए धम्मोवएसए समणे भगवं महावीरे जिणे सुहत्थी विहरइ, ताव ताव मे सेयं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव[1] तेयसा जलंते सूरे समणं भगवं महावीरं वंदित्ता नमंसित्ता समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुन्नायस्स समाणस्स सयमेव पंच महव्वयाइं आरुहित्ता गोयमाइए समणे निग्गंथे निग्गंथीओ य खामेत्ता तहारूवेहिं कडाईहिं थेरेहिं सद्धिं विउलं पव्वयं सणियं सणियं दुरूहित्ता सयमेव मेहघणसन्निगासं पुढविसिलापट्टयं पडिलेहित्ता संलेहणाझूसणाए झूसियस्स भत्तपाणपडियाइक्खियस्स पाओवगयस्स कालं अणवकंखमाणस्स विहरित्तए।

तत्पश्चात् उन मेघ अनगार को रात्रि में, पूर्व रात्रि और पिछली रात्रि के समय अर्थात् मध्य रात्रि में धर्म-जागरण करते हुए इस प्रकार का अध्यवसाय [चिन्तन, प्रार्थित एवं मानसिक संकल्प] उत्पन्न हुआ—

'इस प्रकार मैं इस प्रधान तप के कारण, इत्यादि पूर्वोक्त सब कथन यहाँ कहना चाहिए, यावत् 'भाषा बोलूंगा' ऐसा विचार आते ही थक जाता हूँ,' तो अभी मुझ में उठने की शक्ति है, बल, वीर्य, पुरुषकार, पराक्रम, श्रद्धा, धृति और संवेग है, तो जब तक मुझ में उत्थान, कार्य करने की शक्ति, बल, वीर्य, पुरुषकार, पराक्रम, श्रद्धा, धृति और संवेग है तथा जब तक मेरे धर्माचार्य धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर गन्धहस्ती के समान जिनेश्वर विचर रहे हैं, तब तक, कल रात्रि के प्रभात रूप में प्रकट होने पर यावत् सूर्य के तेज से जाज्वल्यमान होने पर अर्थात् सूर्योदय होने पर मैं श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना और नमस्कार करके, श्रमण भगवान् महावीर की आज्ञा लेकर स्वयं ही पांच महाव्रतों को पुनः अंगीकार करके गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थों तथा निर्ग्रन्थियों से क्षमायाचना करके तथारूपधारी एवं योगवहन आदि क्रियाएँ जिन्होंने की हैं, ऐसे स्थविर साधुओं के साथ धीरे-धीरे, विपुलाचल पर आरूढ होकर स्वयं ही सघन मेघ के सदृश (कृष्णवर्ण के) पृथ्वीशिलापट्टक का प्रतिलेखन करके, संलेखना स्वीकार करके, आहार पानी का त्याग करके पादपोपगमन अनशन धारण करके मृत्यु की भी आकांक्षा न करता हुआ विचरूँ'।

विवेचन—समाधिमरण अनशन के तीन प्रकार हैं—(१) भक्तप्रत्याख्यान, (२) इंगितमरण और (३) पादपोपगमन। जिस समाधिमरण में साधक स्वयं शरीर की सार-संभाल करता है और दूसरों की भी सेवा स्वीकार कर सकता है, वह भक्तप्रत्याख्यान कहलाता है। इंगितमरण स्वीकार करने वाला स्वयं तो शरीर की सेवा करता है किन्तु किसी अन्य की सहायता अंगीकार नहीं करता। भक्तप्रत्याख्यान की अपेक्षा इसमें अधिक साहस और धैर्य की आवश्यकता होती है। किन्तु पादपोपगमन समाधिमरण तो साधना की चरम सीमा की कसौटी है। उसमें शरीर की सार-संभाल न स्वयं की जाती है, न दूसरों के द्वारा कराई जाती है। उसे अंगीकार करने वाला साधक समस्त शारीरिक चेष्टाओं का परित्याग करके पादप—वृक्ष की कटी हुई शाखा के समान निश्चेष्ट निश्चल हो जाता है। अतएव धैर्यवान् सत्त्वशील और साहसी साधक ही इस समाधिमरण को स्वीकार करते हैं।

समाधिमरण साधनामय जीवन की चरम और परम परिणति है। शास्त्रों में अनेक प्रकार

---

१. द्र. अ. सूत्र २८

पर स्वर्ण-कलश आरोपित करने के समान है। जीवन-पर्यन्त आन्तरिक शत्रुओ के साथ किए ग संग्राम मे अन्तिम रूप से विजय प्राप्त करने का महान् अभियान है। इस अभियान के समय वी साधक मृत्यु के भय से सर्वथा मुक्त हो जाता है—

संसारासक्तचित्तानां मृत्युर्भीत्यै भवेन्नृणाम्।
मोदायते पुन सोऽपि ज्ञान वैराग्यवासिनाम्॥

जिनका मन संसार मे—संसार के राग-रंग मे उलझा होता है, उन्हे ही मृत्यु भयङ्कर जा पडती है, परन्तु जिनकी अन्तरात्मा सम्यग्ज्ञान और वैराग्य से वासित होती है, उनके लिए व आनन्द का कारण बन जाती है।

साधक की विचारणा तो विलक्षण प्रकार की होती है। वह विचार करता है—

कृमिजालशताकीर्णे जर्जरे देहपञ्जरे।
भिद्यमाने न भेत्तव्य यतस्त्व ज्ञानविग्रह॥

सैकडो कीडो के समूहो से व्याप्त शरीर रूपी पिंजरे का नाश होता है तो भले हो। इसके विनाश से मुझे भयभीत होने की क्या आवश्यकता है! इससे मेरा क्या बिगडता है! यह जड शरीर मेरा नही है। मेरा असली शरीर ज्ञान है—मैं ज्ञानविग्रह हूँ। वह मुझ से कदापि पृथक् नही हो सकता।

समाधिमरण के काल मे होने वाली साधक की भावना को व्यक्त करने के लिए कहा गया है—

एगोऽहं नत्थि मे कोइ, नाहमन्नस्स कस्सइ।
एवमदीणमनसो अप्पाणमणुसासइ॥
एगो मे सासओ अप्पा नाणदंसणसंजुओ।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा॥
संजोगमूला जीवेण पत्ता दुक्खपरम्परा।
तम्हा संजोगसंबंध सव्व तिविहेण वोसरिअ॥

मैं एकाकी हूँ। मेरे सिवाय मेरा कोई नही है, मैं भी किसी अन्य का नही हूँ। इस प्रकार के विचार से प्रेरित होकर, दीनता का परित्याग करके अपनी आत्मा को अनुशासित करे। यह भी सोचे—ज्ञान और दर्शनमय एकमात्र शाश्वत आत्मा ही मेरा है। इसके अतिरिक्त संसार के समस्त पदार्थ मुझ से भिन्न हैं—संयोग से प्राप्त हो गये हैं और बाह्य पदार्थों के इस संयोग के कारण ही जीव को दु खो की परम्परा प्राप्त हुई है—अनादिकाल से एक के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा जो दु ख उपस्थित होता रहता है, उसका मूल और मुख्य कारण पर-पदार्थों के साथ आत्मा का संयोग ही है। अब इस परम्परा का अन्त करने के लिए मैंने, मन वचन, काय से इस संयोग का त्याग कर दिया है।

इस प्रकार की आन्तरिक प्रेरणा से प्रेरित होकर साधक समाधिमरण अंगीकार करता है किन्तु मानवजीवन अत्यन्त दुर्लभ है। आगम मे चार दुर्लभ उपलब्धियां कही गई हैं। मानव

जीवन उनमें परिगणित है। देवता भी इस जीवन की कामना करते हैं। अतएव निष्कारण, जब मन में उमंग उठी तभी इसका अंत नहीं किया जा सकता। संयमशील साधक मनुष्यशरीर के माध्यम से आत्महित सिद्ध करता है और उसी उद्देश्य से इसका संरक्षण भी करता है। परन्तु जब ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाय कि जिस ध्येय की पूर्ति के लिए शरीर का संरक्षण किया जाता है उस ध्येय की पूर्ति उससे न हो सके, बल्कि उस ध्येय की पूर्ति में बाधा बन जाए तब उसका परित्याग कर देना ही श्रेयस्कर होता है। प्राणान्तकारी कोई उपसर्ग आ जाए, दुर्भिक्ष के कारण जीवन का अन्त समीप जान पड़े, वृद्धावस्था अथवा असाध्य रोग उत्पन्न हो जाय तो इस अवस्था में हाय-हाय करते हुए—आर्त्तध्यान के वशीभूत होकर प्राण त्यागने की अपेक्षा समाधिपूर्वक स्वेच्छा से शरीर को त्याग दें। ऐसा करने से पूर्ण शान्ति और अखण्ड समभाव बना रहता है।

समाधिमरण अंगीकार करने से पूर्व साधक को यदि अवसर मिलता है तो वह उसके लिए तैयारी कर लेता है। वह तैयारी संलेखना के रूप में होती है। काय और कषायों का कृश और कृशतर करना संलेखना है। कभी-कभी यह तैयारी बारह वर्ष पहले से प्रारंभ हो जाती है।

ऐसी स्थिति में समाधिमरण को आत्मघात समझना विचारहीनता है। पर-घात की भांति आत्मघात भी जिनागम के अनुसार घोर पाप है—नरक का कारण है। आत्मघात कषाय के तीव्र आवेश में किया जाता है जब कि समाधिमरण कषायों की उपशान्ति होने पर उच्चकोटि के समभाव की अवस्था में ही किया जा सकता है।

मेघ मुनि का शरीर जब संयम में पुरुषार्थ करने में सहायक नहीं रहा तब उन्होंने पादपोपगमन समाधिमरण ग्रहण किया और उस जर्जरित देह से जीवन का अन्तिम लाभ प्राप्त किया।

२०५—एवं संपेहेइ संपेहित्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव[1] जलंते जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता नच्चासन्ने नाइदूरे सुस्सूसमाणे नमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासइ।

मेघ मुनि ने इस प्रकार विचार किया। विचार करके दूसरे दिन रात्रि के प्रभात रूप में परिणत होने पर यावत् सूर्य के जाज्वल्यमान होने पर जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे, वहाँ पहुँचे। पहुँचकर श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार, दाहिनी ओर से आरम्भ करके प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके न बहुत समीप और न बहुत दूर योग्य स्थान पर रह कर भगवान् की सेवा करते हुए, नमस्कार करते हुए, सन्मुख विनय के साथ दोनों हाथ जोड़कर उपासना करने लगे। अर्थात् बैठ गए।

२०६—मेहे त्ति समणे भगवं महावीरे मेहं अणगारं एवं वयासी—'से नूणं तव मेहा! राओ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव (चिंतिए,

---

१ प्र. अ. सूत्र २८

पत्थिए मणोगए सकप्पे) समुप्पज्जित्था—एव खलु अह इमेण ओरालेण जाव जेणेव अह तेणेव हव्वमागए। से णूण मेहा! अट्ठे समट्ठे?'

'हता अत्थि।'

'अहासुह देवाणुप्पिया! मा पडिबध करेह।'

'हे मेघ!' इस प्रकार सबोधन करके श्रमण भगवान् महावीर ने मेघ अनगार से इस भाँति कहा—'निश्चय ही हे मेघ! रात्रि मे, मध्यरात्रि के समय, धर्म-जागरणा जागते हुए तुम्हे इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ है कि—इस प्रकार निश्चय ही मैं इस प्रधान तप के कारण दुबल हो गया हूँ, इत्यादि पूर्वोक्त यहा कह लेना चाहिए यावत् तुम तुरन्त मेरे निकट आये हो। हे मेघ! क्या यह अथ समथ है? अर्थात् यह बात सत्य है?'

मेघ मुनि बोले—'जी हाँ, यह अर्थ समर्थ है।'

तब भगवान् ने कहा—'देवानुप्रिय! जैसे सुख उपजे वैसा करो। प्रतिबध न करो।'

२०७—तए ण से मेहे अणगारे समणेण भगवया महावीरेण अब्भणुन्नाए समाणे हट्ठ जाव हियाए उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठाए उट्ठेत्ता समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ, करित्ता वदइ, नमसइ, वदित्ता नमसित्ता सयमेव पच महव्वयाइ आरुहेइ, आरुहित्ता गोयमाइ समणे निग्गथे निग्गथीओ य खामेई, खामेत्ता य तहारूवेहिं कडाईहिं थेरेहिं सद्धि विपुल पव्वय सणिय सणिय दुरूहइ, दुरूहित्ता सयमेव मेहघणसन्निगास पुढविसिलापट्टय पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता उच्चार-पासवणभूमि पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता दब्भसथारग सथरइ, सथरित्ता दब्भसथारग दुरूहइ, दुरूहित्ता पुरत्थाभिमुहे सपलियकनिसन्ने करयलपरिग्गहिय सिरसावत्त मत्थए अजलि कट्टु वयासी—

नमोऽत्थु ण अरिहताण भगवताण जाव[1] सपत्ताण, णमोऽत्थु ण समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव सपाविउकामस्स मम धम्मायरियस्स। वदामि ण भगवत तत्थगय इहगए, पासइ मे भगव तत्थगए इहगय' ति कट्टु वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—

तत्पश्चात् मेघ अनगार श्रमण भगवान् महावीर की आज्ञा प्राप्त करके हृष्ट-तुष्ट हुए। उनके हृदय मे आनन्द हुआ। वह उत्थान करके उठे और उठकर श्रमण भगवान् महावीर को तीन वार दक्षिण दिशा से आरम्भ करके प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके स्वय ही पाँच महाव्रतो का उच्चारण किया और गौतम आदि साधुओ को तथा साध्वियो को खमाया। खमा कर तथारूप (चारित्रवान्) और योगवहन आदि किये हुए स्थविर सन्तो के साथ धीरे-धीरे विपुल नामक पवत पर आरूढ हुए। आरूढ होकर स्वय ही सघन मेघ के समान पृथ्वी-शिलापट्टक की प्रतिलेखना की। प्रतिलेखना करके दर्भ का सथारा बिछाया और उस पर आरूढ हो गये। पूव दिशा के सन्मुख पद्मासन से बैठकर, दोनो हाथ जोडकर और उन्हे मस्तक से स्पश करके (अजलि करके) इस प्रकार बोले—

'अरिहन्त भगवानो को यावत् सिद्धि को प्राप्त सब तीर्थकरो को नमस्कार हो। मेरे धर्माचार्य

१-२ प्र अ सूत्र २८

यावत् सिद्धिगति को प्राप्त करने के इच्छुक श्रमण भगवान् महावीर को नमस्कार हो। वहाँ (गुणशील चैत्य में) स्थित भगवान् को यहाँ (विपुलाचल पर) स्थित मैं वन्दना करता हूँ। वहाँ स्थित भगवान् यहाँ स्थित मुझको देखें। इस प्रकार कहकर भगवान् को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

२०८—पुव्विं पि य णं मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए सव्वे पाणाइवाए पच्चक्खाए, मुसावाए अदिन्नादाणे मेहुणे परिग्गहे कोहे माणे माया लोहे पेज्जे दोसे कलहे अब्भक्खाणे पेसुन्ने परपरिवाए अरई-रई मायामोसे मिच्छादंसणसल्ले पच्चक्खाए।

इयाणिं पि य णं अहं तस्सेव अंतिए सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जाव मिच्छादंसणसल्लं पच्चक्खामि। सव्वं असण-पाण-खाइम-साइमं चउव्विहं पि आहारं पच्चक्खामि जावज्जीवाए। जं पि य इमं सरीरं इट्ठं कंतं पियं जाव[1] (मणुण्णं मणामं थेज्जं वेसासियं सम्मयं बहुमयं अणुमयं भंडकरंडगसमाणं, मा णं सीयं, मा णं उण्हं, मा णं खुहा, मा णं पिवासा, मा णं चोरा, मा णं वाला मा णं दंसा, मा णं मसगा, मा णं वाइय-पित्तिय-संभिय-सण्णिवाइय) विविहा रोगायंका परीसहोवसग्गा फुसंतीति कट्टु एयं पि य णं चरमेहिं ऊसासनिस्सासेहिं वोसिरामि त्ति कट्टु संलेहणा-झूसणा-झूसिए भत्तपाणपडियाइक्खिए पाओवगए कालं अणवकंखमाणे विहरइ।

पहले भी मैंने श्रमण भगवान् महावीर के निकट समस्त प्राणातिपात का त्याग किया है, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान (मिथ्या दोषारोपण करना), पैशुन्य (चुगली), परपरिवाद (पराये दोषों का प्रकाशन), धर्म में अरति, अधर्म में रति, मायामृषा (वेष बदल कर ठगाई करना) और मिथ्यादर्शनशल्य, इन सब अठारह पापस्थानों का प्रत्याख्यान किया है।

अब भी मैं उन्हीं भगवान् के निकट सम्पूर्ण प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करता हूँ, यावत् मिथ्यादर्शनशल्य का प्रत्याख्यान करता हूँ तथा सब प्रकार के अशन, पान, खादिम और स्वादिम का चारों प्रकार के आहार का आजीवन प्रत्याख्यान करता हूँ। और यह शरीर जो इष्ट है, कान्त (मनोहर) है और प्रिय है, यावत् [मनोज्ञ, मणाम (अतीव मनोज्ञ), धैर्यपात्र, विश्वासपात्र, सम्मत, बहुमत, अनुमत, आभूषणों के पिटारे जैसा है, इसे शीत, उष्ण, क्षुधा, पिपासा, चोर, सर्प, डांस, मच्छर आदि की बाधा न हो, वात पित्त एवं कफ सम्बन्धी] विविध प्रकार के रोग, दुःसाध्य आतंक बाईस परीषह और उपसर्ग स्पर्श न करें, ऐसी रक्षा की है, इस शरीर का भी मैं अन्तिम श्वासोच्छ्वास पर्यन्त परित्याग करता हूँ।'

इस प्रकार कहकर संलेखना को अंगीकार करके, भक्त-पान का त्याग करके पादोपगमन समाधिमरण अंगीकार कर मृत्यु की भी कामना न करते हुए मेघ मुनि विचरने लगे।

२०९—तए णं ते थेरा भगवंतो मेहस्स अणगारस्स अगिलाए वेयावडियं करेंति।

तब वे स्थविर भगवन्त ग्लानिरहित होकर मेघ अनगार की वैयावृत्य करने लगे।

---

१ [illegible]

२१०—तए ण से मेहे अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाण थेराण अतिए सामाइयमाइयाइ एक्कारसअगाइ अहिज्जित्ता बहुपडिपुन्नाइ दुवालसवरिसाइ सामन्नपरियाग पाउणित्ता मासियाए सलेहणाए अप्पाण झोसेत्ता सट्ठि भत्ताइ अणसणाए छेएत्ता आलोइयपडिक्कते उद्धियसल्ले समाहिपत्ते आणुपुव्वेण कालगए ।

तत्पश्चात् वह मेघ अनगार श्रमण भगवान् महावीर के तथारूप स्थविरो के सन्निकट सामायिक आदि ग्यारह अगो का अध्ययन करके, लगभग बारह वर्ष तक चारित्र पर्याय का पालन करके, एक मास की सलेखना के द्वारा आत्मा (अपने शरीर) को क्षीण करके, अनशन से साठ भक्त छेद कर अर्थात् तीस दिन उपवास करके, आलोचना प्रतिक्रमण करके, माया, मिथ्यात्व और निदान शल्यो को हटाकर समाधि को प्राप्त होकर अनुक्रम से कालधर्म को प्राप्त हुए ।

२११—तए ण थेरा भगवन्तो मेह अणगार आणुपुव्वेण कालगय पासेन्ति । पासित्ता परिनिव्वाणवत्तिय काउस्सग्ग करेंति, करित्ता मेहस्स आयारभडय गेण्हति । गेण्हित्ता विउलाओ पव्वयाओ सणिय सणिय पच्चोरुहति । पच्चोरुहित्ता जेणामेव गुणसिलए चेइए जेणामेव समणे भगव महावीरे तेणामेव उवागच्छति । उवागच्छित्ता समण भगव महावीर वदति नमसति, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—

तत्पश्चात् मेघ अनगार के साथ गये हुए स्थविर भगवतो ने मेघ अनगार को क्रमश कालगत देखा । देखकर परिनिर्वाणनिमित्तक (मुनि के मृत देह को परठने के कारण से किया जाने वाला) कायोत्सग किया । कायोत्सग करके मेघ मुनि के उपकरण ग्रहण किये और विपुल पवत से धीरे-धीरे नीचे उतरे । उतर कर जहाँ गुणशील चैत्य था और जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे वही पहुँचे । पहुँच कर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना की, नमस्कार किया । वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार बोले—

२१२—एव खलु देवाणुप्पियाण अतेवासी मेहे अणगारे पगइभद्दए जाव (पगइउवसते पगइपतणुकोह-माण-माया लोहे मिउमद्दवसपण्णे अल्लीणे) विणीए । से ण देवाणुप्पिएहिं अब्भणुन्नाए समाणे गोयमाइए समणे निग्गथे निग्गथीओ य खामेत्ता अम्हेहिं सद्धि विउल पव्वय सणिय सणिय दुरुहइ । दुरूहित्ता सयमेव मेघघणसन्निगास पुढविसिलापट्टय पडिलेहेइ । पडिलेहित्ता भत्तपाण-पडियाइक्खित आणुपुव्वेण कालगए । एस ण देवाणुप्पिया ! मेहस्स अणगारस्स आयारभडए ।

आप देवानुप्रिय के अन्तेवासी (शिष्य) मेघ अनगार स्वभाव से भद्र और यावत् [स्वभावत उपशात, स्वभावत मद क्रोध, मान, माया, लोभ वाले, अतिशय मृदु, सयमलीन एव] विनीत थे । वह देवानुप्रिय (आप) से अनुमति लेकर गौतम आदि साधुओ और साध्वियो को खमा कर हमारे साथ विपुल पवत पर धीरे-धीरे आरूढ हुए । आरूढ होकर स्वय ही सघन मेघ के समान कृष्णवण पृथ्वीशिलापट्टक का प्रतिलेखन किया । प्रतिलेखन करके भक्त-पान का प्रत्याख्यान कर दिया और अनुक्रम से कालधम को प्राप्त हुए । हे देवानुप्रिय ! यह है मेघ अनगार के उपकरण ।

पुनर्जन्म निरूपण

२१३—भते त्ति भगव गोयमे समण भगव महावीर वदइ, नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—'एव खलु देवाणुप्पियाण अन्तेवासी मेहे णाम अणगारे, से ण मेहे अणगारे कालमासे काल किच्चा कहिं गए ? कहिं उववन्ने ?

'भगवन् !' इस प्रकार कह कर भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना की नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय के अन्तेवासी मेघ अनगार थे। भगवन् ! वह मेघ अनगार काल-मास में अर्थात् मृत्यु के अवसर पर काल करके किस गति में गए ? और किस जगह उत्पन्न हुए ?

२१४—'गोयमाइ' समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी—'एवं खलु गोयमा ! मम अन्तेवासी मेहे णामं अणगारे पगइभद्दए जाव[1] विणीए। से णं तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ। अहिज्जित्ता बारस भिक्खुपडिमाओ गुणरयणसंवच्छरं तवोकम्मं काएणं फासेत्ता जाव[2] किट्टेत्ता मए अब्भणुण्णाए समाणे गोयमाइ थेरे खामेइ। खामित्ता तहारूवेहिं जाव (कडाईणेहिं) विउलं पव्वयं दुरूहइ। दुरूहित्ता दब्भसंथारगं संथरइ। संथरित्ता दब्भसंथारोवगए सयमेव पंचमहव्वए उच्चारेइ। बारस वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता आलोइयपडिक्कन्ते उद्धियसल्ले समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा उड्ढं चंदिम-सूर-गहगण-नक्खत्त-तारारूवाणं बहूइं जोयणाइं बहूइं जोयणसयाइं, बहूइं जोयणसहस्साइं, बहूइं जोयणसयसहस्साइं, बहूइं जोयणकोडीओ, बहूइं जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंद-बंभ-लंतग-महासुक्क-सहस्सारा-णय-पाणया-रण-च्चुए तिण्णि य अट्ठारसुत्तरे गेवेज्जविमाणावाससए वीइवइत्ता विजए महाविमाणे देवत्ताए उववण्णे।

'हे गौतम !' इस प्रकार कह कर श्रमण भगवान् महावीर ने भगवान् गौतम से इस प्रकार कहा—हे गौतम ! मेरा अन्तेवासी मेघ नामक अनगार प्रकृति से भद्र यावत् विनीत था। उसने तथारूप स्थविरों से सामायिक से प्रारम्भ करके ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। अध्ययन करके बारह भिक्षु-प्रतिमाओं का और गुणरत्नसंवत्सर नामक तप का काय से स्पर्श करके यावत् कीर्तन करके, मेरी आज्ञा लेकर गौतम आदि स्थविरों को खमाया। खमाकर तथारूप यावत् स्थविरों के साथ विपुल पर्वत पर आरोहण किया। दर्भ का संथारा बिछाया। फिर दर्भ के संथारे पर स्थित होकर स्वयं ही पांच महाव्रतों का उच्चारण किया, बारह वर्ष तक साधुत्व पर्याय का पालन करके एक मास की संलेखना से अपने शरीर को क्षीण करके, साठ भक्त अनशन से छेदन करके, आलोचना प्रतिक्रमण करके, शल्यों को निर्मूल करके समाधि को प्राप्त होकर, काल मास में मृत्यु को प्राप्त करके, ऊपर चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारा रूप ज्योतिश्चक्र से बहुत योजन, बहुत सैकड़ों योजन, बहुत हजार योजन, बहुत लाख योजन, बहुत करोड़ योजन और बहुत कोड़ाकोड़ी योजन लांघकर, ऊपर जाकर सौधर्म ईशान सनत्कुमार माहेन्द्र ब्रह्मलोक लान्तक महाशुक्र सहस्रार आनत प्राणत आरण और अच्युत देवलोकों तथा तीन सौ अठारह नवग्रैवेयक के विमानावासों को लांघ कर वह विजय नामक अनुत्तर महाविमान में देव के रूप में उत्पन्न हुआ है।

२१५—तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। तत्थ णं मेहस्स वि देवस्स तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

---

१. अ. सूत्र २१०   २. अ. सूत्र १९९

उस मिजय नामक अनुत्तर विमान मे किन्ही-किन्ही देवो की तेतीस सागरोपम की स्थिति कही है। उसमे मेघ नामक देव की भी तेतीस सागरोपम की स्थिति है।

२१६—एस ण भते ! मेहे देवे ताओ देवलोयाओ आउक्खएण, ठिइक्खएण, भवक्खएण अणतर चय चइत्ता कहि गच्छिहिइ ? कहि उववज्जिहिइ ?

गौतम स्वामी ने पुन प्रश्न किया—भगवन् ! वह मेघ देव देवलोक से आयु का अर्थात् आयु-कर्म के दलिको का क्षय करके, आयुकर्म की स्थिति का वेदन द्वारा क्षय करके तथा भव का अर्थात् देवभव के कारणभूत कर्मो का क्षय करके तथा देवभव के शरीर का त्याग करके अथवा देवलोक से च्यवन करके किस गति मे जाएगा ? किस स्थान पर उत्पन्न होगा ?

अन्त मे सिद्धि

२१७- गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ, बुज्झिहिइ, मुच्चिहिइ, परिनिव्वाहिइ, सव्वदुक्खाणमत काहिइ।

भगवान् ने उत्तर दिया—हे गौतम ! महाविदेह वर्ष मे (जन्म लेकर) सिद्धि प्राप्त करेगा—समस्त मनोरथो को सम्पन्न करेगा, केवलज्ञान से समस्त पदार्थों को जानेगा, समस्त कर्मो से मुक्त होगा और परिनिर्वाण प्राप्त करेगा, अथात् कर्मजनित समस्त विकारो से रहित हो जाने के कारण स्वस्थ होगा और समस्त दु खो का अन्त करेगा।

२१८—एव खलु जबू ! समणेण भगवया महावीरेण आइगरेण तित्थयरेण जाव सपत्तेण अप्पोपालभनिमित्त पढमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते त्ति बेमि ॥

॥ पढम अज्झयण समत्त ॥

श्री सुधर्मा स्वामी अपने प्रधान शिष्य जम्बू स्वामी कहते हैं—इस प्रकार हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर ने, जो प्रवचन की आदि करने वाले, तीर्थ की सस्थापना करने वाले यावत् मुक्ति को प्राप्त हुए हैं, आप्त (हितकारी) गुरु को चाहिए कि अविनीत शिष्य को उपालभ दे, इस प्रयोजन से प्रथम ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ कहा है। ऐसा मैं कहता हूँ—अर्थात् तीर्थङ्कर भगवान ने जैसा फर्माया है, वैसा ही मैं तुमसे कहता हूँ।

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

द्वितीय अध्ययन : संघाट

सार : संक्षेप

साधना के क्षेत्र में प्रबल से प्रबल बाधा आसक्ति है। आसक्ति वह मनोभाव है, जो आत्मा को पर-पदार्थों की ओर लालायित बनाता है, आकर्षित करता है और आत्मानन्द की ओर से विमुख करता है। साधना में एकाग्रता के साथ तल्लीन रहने के लिए आसक्ति को त्याग देना आवश्यक है, स्पर्श, रस, गंध, रूप और शब्द जब इन्द्रियों के माध्यम से आत्मा ग्रहण करता अथवा जानता है तब मन उस जानने के साथ राग-द्वेष का विष मिला देता है। इस कारण आत्मा में 'यह इष्ट है, यह अनिष्ट है' इस प्रकार का विकल्प उत्पन्न होता है। इष्ट प्रतीत होने पर उस विषय को प्राप्त करने के लिए उत्सुक हो जाता है। उसका समत्वयोग खण्डित हो जाता है, समाधिभाव विलीन हो जाता है और वैराग्य नष्ट हो जाता है। ऐसी स्थिति में साधक अपनी मर्यादा से पतित हो जाता है और कभी-कभी उसके पतन की सीमा नहीं रहती।

आसक्ति के इन खतरों को ध्यान में रख कर शास्त्रकारों ने अनेक प्रकार से आसक्ति त्याग का उपदेश दिया। आत्मा से प्रत्यक्ष पृथक् दीखने वाले पदार्थों की बात जाने दीजिए, अपने शरीर के प्रति भी आसक्ति न रखने का विधान किया है। कहा है—

अवि अप्पणो वि देहमि, नायरति ममाइय।

मुनिजन अपने शरीर पर भी ममत्व नहीं रखते।

कहा जा सकता है—यदि शरीर के प्रति ममता नहीं है तो आहार पानी आदि द्वारा उसका पालण-पोषण क्यों करते हैं? इस प्रश्न के समाधान के लिए ही इस अध्ययन की रचना की गई है और एक सुन्दर उदाहरण द्वारा समाधान किया गया है। दृष्टान्त का सार इस प्रकार है—

राजगृह नगर में धन्य सार्थवाह था। उसकी पत्नी का नाम भद्रा था। धन्य समृद्धिशाली था, प्रतिष्ठाप्राप्त था किन्तु निस्सन्तान था। उसकी पत्नी ने अनेक देवताओं की मानता की [illegible] तब उसे एक पुत्र की प्राप्ति हुई। देवों का दत्त समझ कर उसका नाम 'देवदत्त' रक्खा गया।

देवदत्त कुछ बड़ा हुआ तो एक दिन भद्रा ने उसे स्नान करवा कर और अनेक प्रकार के आभूषणों से सिंगार कर अपने दास चेटक पंथक को खिलाने के लिए दे दिया। पंथक उसे ले गया और उसे एक स्थान पर बिठाकर स्वयं बालकों के साथ [illegible] लगा। [illegible] हो गया। इस बीच राजगृह का निवासी [illegible] घूमता-फिरता [illegible] पहुँचा और आभूषण-मण्डित बालक [illegible] उठाकर [illegible] आभूषण उतार लिए और उस [illegible] दिया।

जब पंथक को भान हुआ [illegible]

कैसे मिलता ! रोता-रोता पथक घर गया। धन्य सार्थवाह ने भी खोज की किन्तु जब बालक का कुछ भी पता न लगा तब वह नगर-रक्षको (पुलिस-दल) के पास पहुँचा। नगर-रक्षक खोजते-खोजते वही जा पहुँचे जहाँ वह अन्धकूप था—जिसमे बालक का शव पडा था। शव को देखकर सब के मुख से अचानक 'हाय-हाय' शब्द निकल पडा।

पैरो के निशान देखते-देखते नगर-रक्षक आगे बढे तो विजय चोर पास के सघन झाडियो वाले प्रदेश मे (मालुकाकच्छ मे) छिपा मिल गया। पकडा, खूब मार मारी, नगर मे घुमाया और कारागार मे डाल दिया।

कुछ समय के पश्चात् किसी के चुगली खाने पर एक साधारण अपराध पर धन्य साथवाह को भी उसी कारागार मे बन्द किया गया। विजय चोर और धन्य साथवाह—दोनो को एक साथ बेडी मे डाल दिया।

सार्थवाहपत्नी भद्रा ने धन्य के लिये विविध प्रकार का भोजन-पान कारागार मे भेजा। धन्य साथवाह जब उसका उपभोग करने बैठा तो विजय चोर ने उसका कुछ भाग मागा। किन्तु धन्य अपने पुत्रघातक शत्रु को आहार-पानी कैसे खिला-पिला सकता था ? उसने देने से इन्कार कर दिया।

कुछ समय पश्चात् धन्य सार्थवाह को मल-मूत्र विसर्जन की बाधा उत्पन्न हुई। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, विजय चोर और धन्य एक साथ बेडी मे जकडे थे। एक के बिना दूसरा चल-फिर नही सकता था। मल मूत्र विसर्जन के लिए दोनो का साथ जाना अनिवार्य था। जब साथवाह ने विजय चोर से साथ चलने को कहा तो वह अकड गया। बोला—तुमने भोजन किया है, तुम्हीं जाओ। मैं भूखा-प्यासा मर रहा हूँ, मुझे बाधा नही है। मैं नही जाता।

धन्य विवश हो गया। थोडे समय तक उसने बाधा रोकी, पर कब तक रोकता ? अन्तत अनिच्छापूर्वक भी उसे विजय चोर को आहार-पानी मे से कुछ भाग देने का वचन देना पडा। अन्य कोई मार्ग नही था। जब दूसरी बार भोजन आया तो धन्य ने उसका कुछ भाग विजय चोर को दिया।

दास चेटक पथक आहार लेकर कारागार जाता था। उसे यह देखकर दु ख हुआ। घर जाकर उसने भद्रा साथवाही को यह घटना सुनाई। कहा—'साथवाह आपके भेजे भोजन-पान का हिस्सा विजय चोर को देते है।' यह जान कर भद्रा के क्रोध का पार न रहा। पुत्र की क्रूरतापूर्वक हत्या करने वाले पापी चोर को भोजन-पान देकर उसका पालन-पोषण करना ! माता का हृदय घोर वेदना से व्याप्त हो गया। प्रतिदिन यही क्रम चलने लगा।

कुछ काल के पश्चात् धन्य साथवाह को कारागार से मुक्ति मिली। जब वह घर पहुँचा तो सभी ने उसका स्वागत-सत्कार किया किन्तु उसकी पत्नी भद्रा ने बात भी नही की। वह पीठ फेर कर उदास, खिन्न बैठी रही। यह देखकर साथवाह बोला—भद्रे, क्या तुम्हे मेरी कारागार से मुक्ति अच्छी नही लगी ? क्या कारण है कि तुम विमुख होकर अपनी अप्रसन्नता प्रकट कर रही हो ?

तथ्य से अनजान भद्रा ने कहा—मुझे प्रसन्नता, आनन्द और सन्तोष कैसे हो सकता है जब कि आपने मेरे लाडले बेटे के हत्यारे वैरी—विजय चोर को आहार-पानी में से हिस्सा दिया है ?

धन्य सार्थवाह भद्रा के कोप का कारण समझ गया। समग्र परिस्थिति समझाते हुए उसने स्पष्टीकरण किया—देवानुप्रिये ! मैंने उस वैरी को हिस्सा तो दिया है मगर धर्म समझ कर, कर्त्तव्य समझ कर, न्याय अथवा प्रत्युपकार समझ कर नहीं दिया, केवल मल-मूत्र की बाधानिवृत्ति में सहायक बने रहने के उद्देश्य से ही दिया है।

यह स्पष्टीकरण सुनकर भद्रा को सन्तोष हुआ। वह प्रसन्न हुई। विजय चोर अपने घोर पापों का फल भुगतने के लिए नरक का अतिथि बना। धन्य सार्थवाह कुछ समय पश्चात् धर्मघोष स्थविर से मुनिदीक्षा अंगीकार करके अन्त में स्वर्गवासी हुआ।

तात्पर्य यह है कि जैसे धन्य सार्थवाह ने ममता या प्रीति के कारण विजय चोर को आहार नहीं दिया किन्तु शारीरिक बाधा की निवृत्ति के लिए दिया, उसी प्रकार निर्ग्रन्थ मुनि शरीर के प्रति आसक्ति के कारण आहार-पानी से उसका पोषण नहीं करते, मात्र शरीर की सहायता से सम्यग्ज्ञान, दर्शन और चारित्र की रक्षा एवं वृद्धि के उद्देश्य से ही उसका पालन-पोषण करते हैं। विस्तार के लिए देखिये पूरा अध्ययन।

बीयं अज्झयणं : संघाडे

श्री जम्बू की जिज्ञासा

१—जइ ण भंते ! समणेण भगवया महावीरेण पढमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते, बिइयस्स ण भंते ! नायज्झयणस्स के अट्ठे पन्नत्ते ?

श्री जम्बू स्वामी, श्री सुधर्मा स्वामी से प्रश्न करते हैं—'भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने प्रथम ज्ञाताध्ययन का यह (आपके द्वारा प्रतिपादित पूर्वोक्त) अर्थ कहा है, तो भगवन् ! द्वितीय ज्ञाताध्ययन का क्या अथ कहा है ?

श्री सुधर्मा द्वारा समाधान

२—एव खलु जम्बू ! तेण कालेण तेण समएण रायगिहे णाम नयरे होत्था, वन्नओ ।[1] तत्थ ण रायगिहे णयरे सेणिए राया होत्था महया० वण्णओ ।[2] तस्स ण रायगिहस्स नगरस्स बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए गुणसिलए नाम चेइए होत्था, वन्नओ ।[3]

श्री सुधर्मा स्वामी, जम्बू स्वामी के प्रश्न का उत्तर देते हुए, द्वितीय अध्ययन के अर्थ की भूमिका प्रतिपादित करते हैं—हे जम्बू ! उस काल—चौथे आरे के अन्त मे और उस समय मे—जब भगवान् इस भूमि पर विचरते थे, राजगृह नामक नगर था। उसका वणन औपपातिक-सूत्र के अनुसार कह लेना चाहिए। उस राजगृह नगर मे श्रेणिक राजा था। वह महान् हिमवन्त पवत के समान था, इत्यादि वणन भी औपपातिक सूत्र से समझ लेना चाहिए। उस राजगृह नगर से बाहर उत्तरपूव दिशा मे—ईशान कोण मे—गुणशील नामक चैत्य था। उसका वर्णन भी औपपातिक सूत्र के अनुसार ही कह लेना चाहिए।

३—तस्स ण गुणसिलयस्स चेइयस्स अदूरसामंते एत्थ ण महं एगे पडिय जिण्णुज्जाणे यावि होत्था, विणट्ठदेवकुले परिसाडियतोरणघरे नाणाविहगुच्छ गुम्म-लया-वल्लि-वच्छ-च्छाइए अणेग वालसयसकणिज्जे यावि होत्था।

उस गुणशील चैत्य से न बहुत दूर न अधिक समीप, एक भाग मे गिरा हुआ जीर्ण उद्यान था। उस उद्यान का देवकुल विनष्ट हो चुका था। उस के द्वारो आदि के तोरण और दूसरे गृह भग्न हो गये थे। नाना प्रकार के गुच्छो, गुल्मो (बास आदि की झाडियो), अशोक आदि की लताओ, ककडी आदि की वेलो तथा आम्र आदि के वृक्षो से वह उद्यान व्याप्त था। सैकडो सर्पो आदि के कारण वह भय उत्पन्न करता था—भयकर जान पडता था।

४—तस्स ण जिन्नुज्जाणस्य बहुमज्झदेसभाए एत्थ ण महं एगे भग्गकूवए यावि होत्था।

उस जीण उद्यान के बहुमध्यदेश भाग मे—बीचो-बीच एक टूटा-फूटा बडा कूप भी था।

---

१ औपपातिक सूत्र, ३ २ औप० सूत्र ६ ३ औप० २

तथ्य से अनजान भद्रा ने कहा—मुझे प्रसन्नता, आनन्द और सन्तोष कैसे हो सकता है जब कि आपने मेरे लाडले बेटे के हत्यारे वैरी—विजय चोर को आहार-पानी में से हिस्सा दिया है ?

धन्य सार्थवाह भद्रा के कोप का कारण समझ गया। समग्र परिस्थिति समझाते हुए उसने स्पष्टीकरण किया—देवानुप्रिये ! मैंने उस वैरी को हिस्सा तो दिया है मगर धर्म समझ कर, कर्त्तव्य समझ कर, न्याय अथवा प्रत्युपकार समझ कर नहीं दिया, केवल मल-मूत्र की बाधानिवृत्ति में सहायक बने रहने के उद्देश्य से ही दिया है।

यह स्पष्टीकरण सुनकर भद्रा को सन्तोष हुआ। वह प्रसन्न हुई। विजय चोर अपने घोर पापों का फल भुगतने के लिए नरक का अतिथि बना। धन्य सार्थवाह कुछ समय पश्चात् धर्मघोष स्थविर से मुनिदीक्षा अंगीकार करके अन्त में स्वर्ग-वासी हुआ।

तात्पर्य यह है कि जैसे धन्य सार्थवाह ने ममता या प्रीति के कारण विजय चोर को आहार नहीं दिया किन्तु शारीरिक बाधा की निवृत्ति के लिए दिया, उसी प्रकार निर्ग्रन्थ मुनि शरीर के प्रति आसक्ति के कारण आहार-पानी से उसका पोषण नहीं करते, मात्र शरीर की सहायता से सम्यग्ज्ञान, दर्शन और चारित्र की रक्षा एवं वृद्धि के उद्देश्य से ही उसका पालन पोषण करते हैं। विस्तार के लिए देखिये पूरा अध्ययन।



बीयं अज्झयणं : संघाडे

श्री जम्बू की जिज्ञासा

१—जइ ण भते ! समणेण भगवया महावीरेण पढमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते, बिइयस्स ण भते ! नायज्झयणस्स के अट्ठे पन्नत्ते ?

श्री जम्बू स्वामी, श्री सुधर्मा स्वामी से प्रश्न करते है—'भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने प्रथम ज्ञाताध्ययन का यह (आपके द्वारा प्रतिपादित पूर्वोक्त) अर्थ कहा है, तो भगवन् ! द्वितीय ज्ञाताध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

श्री सुधर्मा द्वारा समाधान

२—एव खलु जबू ! तेण कालेण तेण समएण रायगिहे णाम नयरे होत्था, वन्नओ ।[1] तत्थ ण रायगिहे णयरे सेणिए राया होत्था महया० वण्णओ ।[2] तस्स ण रायगिहस्स नगरस्स बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए गुणसिलए नाम चेइए होत्था, वन्नओ ।[3]

श्री सुधर्मा स्वामी, जम्बू स्वामी के प्रश्न का उत्तर देते हुए, द्वितीय अध्ययन के अर्थ की भूमिका प्रतिपादित करते हैं—हे जम्बू ! उस काल—चौथे आरे के अन्त मे और उस समय मे—जब भगवान् इस भूमि पर विचरते थे, राजगृह नामक नगर था। उसका वर्णन औपपातिक-सूत्र के अनुसार कह लेना चाहिए। उस राजगृह नगर मे श्रेणिक राजा था। वह महान् हिमवन्त पर्वत के समान था, इत्यादि वर्णन भी औपपातिक सूत्र से समझ लेना चाहिए। उस राजगृह नगर से बाहर उत्तरपूर्व दिशा मे—ईशान कोण मे—गुणशील नामक चैत्य था। उसका वर्णन भी औपपातिक सूत्र के अनुसार ही कह लेना चाहिए।

३—तस्स ण गुणसिलयस्स चेइयस्स अदूरसामते एत्थ ण मह एगे पडिय जिण्णुज्जाणे यावि होत्था, विणट्ठदेवकुले परिसाडियतोरणघरे नाणाविहगुच्छ गुम्म-लया-वल्लि-वच्छ-च्छाइए अणेग वालसयसकणिज्जे यावि होत्था ।

उस गुणशील चैत्य से न बहुत दूर न अधिक समीप, एक भाग मे गिरा हुआ जीर्ण उद्यान था। उस उद्यान का देवकुल विनष्ट हो चुका था। उस के द्वारो आदि के तोरण और दूसरे गृह भग्न हो गये थे। नाना प्रकार के गुच्छो, गुल्मो (बास आदि की झाडियो), अशोक आदि की लताओ, ककडी आदि की बेलो तथा आम्र आदि के वृक्षो से वह उद्यान व्याप्त था। सैकडो सर्पो आदि के कारण वह भय उत्पन्न करता था—भयकर जान पडता था।

४—तस्स ण जिन्नुज्जाणस्य बहुमज्झदेसभाए एत्थ ण मह एगे भग्गकूवए यावि होत्था ।

उस जीर्ण उद्यान के बहुमध्यदेश भाग मे—बीचो-बीच एक टूटा-फूटा बडा कूप भी था।

---

१ औपपातिक सूत्र, ३   २ औप० सूत्र ६   ३ औप० २

तथ्य से अनजान भद्रा ने कहा—मुझे प्रसन्नता, आनन्द और सन्तोष कैसे हो सकता है जब कि आपने मेरे लाडले बेटे के हत्यारे वैरी—विजय चोर को आहार-पानी मे से हिस्सा दिया है ?

धन्य सार्थवाह भद्रा के कोप का कारण समझ गया। समग्र परिस्थिति समझाते हुए उसने स्पष्टीकरण किया—देवानुप्रिये ! मैंने उस वैरी को हिस्सा तो दिया है मगर धर्म समझ कर, कर्त्तव्य समझ कर, न्याय अथवा प्रत्युपकार समझ कर नही दिया, केवल मल-मूत्र की बाधानिवृत्ति मे सहायक बने रहने के उद्देश्य से ही दिया है।

यह स्पष्टीकरण सुनकर भद्रा को सन्तोष हुआ। वह प्रसन्न हुई। विजय चोर अपने घोर पापो का फल भुगतने के लिए नरक का अतिथि बना। धन्य सार्थवाह कुछ समय पश्चात् धर्मघोष स्थविर से मुनिदीक्षा अगीकार करके अन्त मे स्वर्ग-वासी हुआ।

तात्पर्य यह है कि जैसे धन्य सार्थवाह ने ममता या प्रीति के कारण विजय चोर को आहार नही दिया किन्तु शारीरिक बाधा की निवृत्ति के लिए दिया, उसी प्रकार निर्ग्रन्थ मुनि शरीर के प्रति आसक्ति के कारण आहार-पानी से उसका पोषण नही करते, मात्र शरीर की सहायता से सम्यग्ज्ञान, दर्शन और चारित्र की रक्षा एव वृद्धि के उद्देश्य से ही उसका पालन पोषण करते हैं। विस्तार के लिए देखिये पूरा अध्ययन।



बीयं अज्झयणं : संघाडे

श्री जम्बू की जिज्ञासा

१—जइ ण भते ! समणेण भगवया महावीरेण पढमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते, बिइयस्स ण भते ! नायज्झयणस्स के अट्ठे पन्नत्ते ?

श्री जम्बू स्वामी, श्री सुधर्मा स्वामी से प्रश्न करते है—'भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने प्रथम ज्ञाताध्ययन का यह (आपके द्वारा प्रतिपादित पूर्वोक्त) अर्थ कहा है, तो भगवन् ! द्वितीय ज्ञाताध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

श्री सुधर्मा द्वारा समाधान

२—एव खलु जबू ! तेण कालेण तेण समएण रायगिहे णाम नयरे होत्था, वन्नओ ।[1] तत्थ ण रायगिहे णयरे सेणिए राया होत्था महया० वण्णओ ।[2] तस्स ण रायगिहस्स नगरस्स बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए गुणसिलए नाम चेइए होत्था, वन्नओ ।[3]

श्री सुधर्मा स्वामी, जम्बू स्वामी के प्रश्न का उत्तर देते हुए, द्वितीय अध्ययन के अर्थ की भूमिका प्रतिपादित करते हैं—हे जम्बू ! उस काल—चौथे आरे के अन्त मे और उस समय मे—जब भगवान् इस भूमि पर विचरते थे, राजगृह नामक नगर था। उसका वर्णन औपपातिक-सूत्र के अनुसार कह लेना चाहिए। उस राजगृह नगर मे श्रेणिक राजा था। वह महान् हिमवन्त पर्वत के समान था, इत्यादि वर्णन भी औपपातिक सूत्र से समझ लेना चाहिए। उस राजगृह नगर से बाहर उत्तरपूर्व दिशा मे—ईशान कोण मे—गुणशील नामक चैत्य था। उसका वर्णन भी औपपातिक सूत्र के अनुसार ही कह लेना चाहिए।

३—तस्स ण गुणसिलयस्स चेइयस्स अदूरसामते एत्थ ण मह एगे पडिय जिण्णुज्जाणे यावि होत्था, विणट्ठदेवकुले परिसाडियतोरणघरे नाणाविहगुच्छ गुम्म-लया वल्लि-वच्छ-च्छाइए अणेग-वालसयसकणिज्जे यावि होत्था ।

उस गुणशील चैत्य से न बहुत दूर न अधिक समीप, एक भाग मे गिरा हुआ जीर्ण उद्यान था। उस उद्यान का देवकुल विनष्ट हो चुका था। उस के द्वारो आदि के तोरण और दूसरे गृह भग्न हो गये थे। नाना प्रकार के गुच्छो, गुल्मो (बास आदि की झाडियो), अशोक आदि की लताओ, ककडी आदि की बेलो तथा आम्र आदि के वृक्षो से वह उद्यान व्याप्त था। सैकडो सर्पों आदि के कारण वह भय उत्पन्न करता था—भयकर जान पडता था।

४—तस्स ण जिन्नुज्जाणस्य बहुमज्झदेसभाए एत्थ ण मह एगे भग्गकूवए यावि होत्था ।

उस जीर्ण उद्यान के बहुमध्यदेश भाग मे—बीचो-बीच एक टूटा-फूटा बडा कूप भी था।

---

१ औपपातिक सूत्र, ३ २ औप० सूत्र ६ ३ औप० २

५—तस्स णं मग्गकूवस्स अदूरसामंते एत्थ णं महं एगे मालुयाकच्छए यावि होत्था, किण्हे किण्होभासे जाव [नीले नीलोभासे हरिए हरिओभासे सीए सीओभासे णिद्धे णिद्धोभासे तिव्वे तिव्वोभासे, किण्हे किण्हच्छाए नीले नीलच्छाए हरिए हरियच्छाए, सीए सीयच्छाए, णिद्धे णिद्धच्छाए, तिव्वे तिव्वच्छाए, घण-कडिअकडिच्छाए] रम्मे महामेहनिउरंबभूए बहूहिं रुक्खेहि य गुच्छेहि य गुम्मेहि य लयाहि य वल्लीहि य तणेहि य कुसेहि य खाणुएहि य संछन्ने पलिच्छन्ने अंतो झुसिरे बाहिं गंभीरे अणेगवालसयसंकणिज्जे यावि होत्था।

उस भग्न कूप से न अधिक दूर न अधिक समीप, एक जगह एक बड़ा मालुकाकच्छ था। वह अंजन के समान कृष्ण वर्ण वाला था और कृष्ण-प्रभा वाला था—देखने वालों को कृष्ण वर्ण ही दिखाई देता था, यावत् [मयूर की गर्दन के समान नील था, नील-प्रभा वाला था, तोते की पूंछ के समान हरित और हरित-प्रभा वाला था। वल्ली आदि से व्याप्त होने के कारण शीत स्पर्श वाला था और शीत-स्पर्श वाला ही प्रतीत होता था। वह रूक्ष नहीं बल्कि स्निग्ध था एवं स्निग्ध ही प्रतीत होता था। उसके वर्णादि गुण प्रकर्षवान् थे। वह कृष्ण होते हुए कृष्ण छाया वाला, इसी प्रकार नील, नील छाया वाला, हरित, हरित छाया वाला, शीत, शीत छाया वाला, तीव्र, तीव्र छाया वाला, और अत्यन्त सघन छाया वाला था] रमणीय और महामेघों के समूह जैसा था। वह बहुत-से वृक्षों, गुच्छों गुल्मों, लताओं, बेलों, तृणों, कुशों (दर्भ) और ठूंठों से व्याप्त था और चारों ओर से आच्छादित था। वह अन्दर से पोला अर्थात् विस्तृत था और बाहर से गंभीर था, अर्थात् अन्दर दृष्टि का संचार न हो सकने के कारण सघन था। अनेक सैकड़ों हिंसक पशुओं अथवा सर्पों के कारण शंकाजनक था।

विवेचन—मालुक, वृक्ष की एक जाति है। उसके फल में एक ही गुठली होती है। अथवा मालुक का अर्थ ककड़ी, फूटककड़ी आदि भी होता है। उनकी झाड़ी मालुकाकच्छ कहलाती है।

कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी वस्तु का असली वर्ण अन्य प्रकार का होता है किन्तु बहुत समीपता अथवा बहुत दूरी के कारण वह वर्ण अन्य—भिन्न प्रकार का भासित—प्रतीत होता है। मालुकाकच्छ के विषय में ऐसा नहीं था। वह जिस वर्ण का था उसी वर्ण का भान पड़ता था। यही प्रकट करने के लिए यहाँ कहा गया है कि वह कृष्ण वर्ण वाला और कृष्णप्रभा वाला था, आदि।

६—तत्थ णं रायगिहे नगरे धण्णे नामं सत्थवाहे अड्ढे दित्ते जाव [वित्थिण्ण विउल सयणासण भवण-जाण-वाहणाइण्णे बहुदासी-दास-गो-महिस-गवेलगप्पभूए बहुधण-बहुजायरूव रयए आओग-पओग संपउत्ते विच्छड्डिय-] विउलभत्तपाणे। तस्स णं धन्नस्स सत्थवाहस्स भद्दा नामं भारिया होत्था, सुकुमालपाणिपाया अहीणपडिपुण्णपंचिंदियसरीरा लक्खण-वंजणगुणोववेया माणुम्माणप्पमाण-पडिपुण्णसुजायसव्वंगसुंदरंगी ससिसोमागारा कंता पियदंसणा सुरूवा करयलपरिमियतिवलियमज्झा कुंडलुल्लिहियगंडलेहा कोमुइरयणियरपडिपुण्णसोमवयणा सिंगारागारचारुवेसा जाव [संगय-गय-हसिय भणिय विहिय विलास-सललिय-संलाव निउण-जुत्तोवयार-कुसल पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा] पडिरूवा वंझा अवियाउरी जाणुकोप्परमाया यावि होत्था।

राजगृह नगर में धन्य नामक सार्थवाह था। वह समृद्धिशाली था, तेजस्वी था, [उसके यहाँ विस्तीर्ण एवं विपुल शय्या, आसन, यान तथा वाहन थे, बहुसंख्यक दास, दासी, गायें, भैंसें तथा

बकरियां थी, वहुत धन, सोना एव चादी थी, उसके यहाँ खूब लेन-देन होता था] घर में बहुत-सा भोजन-पानी तैयार होता था।

उस धन्य सार्थवाह की पत्नी का नाम भद्रा था। उसके हाथ पैर सुकुमार थे। पाँचों इन्द्रियाँ हीनता से रहित परिपूर्ण थी। वह स्वस्तिक आदि लक्षणो तथा तिल मसा आदि व्यजनो के गुणो से युक्त थी। मान, उन्मान और प्रमाण से परिपूर्ण थी। अच्छी तरह उत्पन्न हुए—सुन्दर सब अवयवो के कारण वह सुदरागो थी। उसका आकार चन्द्रमा के समान सौम्य था। वह अपने पति के लिए मनोहर थी। देखने मे प्रिय लगती थी। सुरूपवती थी। मुट्ठी मे समा जाने वाला उसका मध्य भाग (कटिप्रदेश) त्रिवलि से सुशोभित था। कुण्डलों से उसके गडस्थलो की रेखा घिसती रहती थी। उसका मुख पूर्णिमा के चन्द्र के समान सौम्य था। वह शृगार का आगार थी। उसका वेष सुन्दर था। यावत् [उसकी चाल, उसका हँसना तथा बोलना सुसगत था—मर्यादानुसार था, उसका विलास, आलाप-सलाप, उपचार—सभी कुद्ध सस्कारिता के अनुरूप था। उसे देखकर प्रसन्नता होती थी। वह वस्तुत दर्शनीय थी, सुन्दर थी] वह प्रतिरूप थी—उसका रूप प्रत्येक दर्शक को नया-नया ही दिखाई देता था। मगर वह वन्ध्या थी, प्रसव करने के स्वभाव से रहित थी। जानु (घुटनो) और कूर्पर (कोहनी) की ही माता थी, अर्थात् सन्तान न होने से जानु और कूर्पर ही उसके स्तनो का स्पर्श करते थे या उसकी गोद मे जानु और कूपर ही स्थित होते थे—पुत्र नही।

७—तस्स ण धण्णस्स सत्यवाहस्स पथए नाम दासचेडे होत्था, सव्वगसुदरगे मसोवचिए बालकीलावणकुसले यावि होत्था।

उस धन्य साथवाह का पथक नामक एक दास-चेटक था। वह सर्वांग-सुन्दर था, माँस मे पुष्ट था और वालको को खेलाने मे कुशल था।

८—तए ण से धण्णे सत्थवाहे रायगिहे नयरे बहूण नगरनिगमसेट्ठिसत्थवाहाण अट्ठारसण्ह य सेणिप्पसेणीण बहुसु कज्जेसु य कुडु बेसु य मतेसु य जाव[1] चक्खुभूए यावि होत्था। नियगस्स वि य ण कुडु बस्स बहुसु य कज्जेसु जाव चक्खुभूए यावि होत्था।

वह धन्य सार्थवाह राजगृह नगर मे वहुत से नगर के व्यापारियो, श्रेष्ठियो और साथवाहो के तथा अठारहो श्रेणियो (जातियो) और प्रश्रेणियो (उपजातियो) के वहुत से कार्यों मे, कुटुम्बो मे—कुटुम्ब सम्बन्धी विषयो मे और मन्त्रणाओ में यावत चक्षु के समान मार्गदर्शक था और अपने कुटुम्ब मे भी वहुत से कार्यो मे यावत् चक्षु के समान था।

९—तत्थ ण रायगिहे नगरे विजए नाम तक्करे होत्था, पावे चडालरूवे भीमतररुद्दकम्मे आरुसिय दित्त रत्त-नयणे खर-फरुस महल्ल विगय-बीभत्थदाढिए असपुडियउट्ठे उद्धय-पइन्न-लबत-मुद्धए भमर-राहुवन्ने निरणुक्कोसे निरणुतावे दारुणे पइभए निससइए निरणुकपे अहिव्व एगतदिट्ठिए, खुरे व एगतधाराए, गिद्धेव आमिसतल्लिच्छे अग्गिमिव सव्वभक्खी, जलमिव सव्वगाही, उक्कचण-माया-नियडि-कूडकवड-साइ-सपओगबहुले, चिरनगरविणट्ठ-दुट्ठसीलायारचरित्ते, जूयपसगी, मज्ज-

1 प्र अ सूत्र १५

पसगी भोज्जपसगी, मसपसगी, दारुणे, हिययदारए, साहसिए, सधिच्छेयए, उवहिए, विस्सभघाई, आलीयगतित्थभेय-लहुहत्थसपउत्ते, परस्स दव्वहरणम्मि निच्च अणुबद्धे, तिव्ववेरे।

रायगिहस्स नगरस्स बहुणि अइगमणाणि य निग्गमणाणि य दाराणि य अवदाराणि य छिंडिओ य खडिओ य नगरनिद्धमणाणि य सवट्टणाणि य निव्वट्टणाणि य जूयखलयाणि य पाणागाराणि य वेसागाराणि य तद्दारट्ठाणाणि (तक्करट्ठाणाणि) य तक्करघराणि य सिंघाडगाणि य तियाणि य चउक्काणि य चच्चराणि य नागघराणि य भूयघराणि य जक्खदेउलाणि य सभाणि य पवाणि य पाणियसालाणि य सुन्नघराणि य आभोएमाणे आभोएमाणे मग्गमाणे गवेसमाणे, बहुजणस्स छिद्देसु य विसमेसु य विहुरेसु य वसणेसु य अब्भुदएसु य उस्सवेसु य पसवेसु य तिहीसु य छणेसु य जन्नेसु य पव्वणीसु य मत्तपमत्तस्स य वक्खित्तस्स य वाउलस्स य सुहियस्स दुक्खियस्स य विदेसत्थस्स य विप्पवसियस्स य मग्ग च छिद्द च विरह च अन्तर च मग्गमाणे गवेसमाणे एव च ण विहरइ।

उस राजगृह मे विजय नामक एक चोर था। वह पाप कर्म करने वाला, चाण्डाल के समान रूप वाला, अत्यन्त भयानक और क्रूर कर्म करने वाला था। क्रुद्ध हुए पुरुष के समान देदीप्यमान और लाल उसके नेत्र थे। उसकी दाढी या दाढे अत्यन्त कठोर, मोटी, विकृत और बीभत्स (डरावनी) थी। उसके होठ आपस मे मिलते नही थे, अर्थात् दांत बडे और बाहर निकले हुए थे और होठ छोटे थे। उसके मस्तक के केश हवा से उडते रहते थे, बिखरे रहते थे और लम्बे थे। वह भ्रमर और राहु के समान काला था। वह दया और पश्चात्ताप से रहित था। दारुण (रौद्र) था और इसी कारण भय उत्पन्न करता था। वह नृशस—नरसघातक था। उसे प्राणियो पर अनुकम्पा नही थी। वह साँप की भाँति एकान्त दृष्टि वाला था, अर्थात् किसी भी कार्य के लिए पक्का निश्चय कर लेता था। वह छुरे की तरह एक धार वाला था, अर्थात् जिसके घर चोरी करने का निश्चय करता उसी मे पूरी तरह सलग्न हो जाता था। वह गिद्ध की तरह मास का लोलुप था और अग्नि के समान सर्वभक्षी था अर्थात जिसकी चोरी करता, उसका सर्वस्व हरण कर लेता था। जल के समान सर्वग्राही था, अर्थात् नजर पर चढी सब वस्तुओ का अपहरण कर लेता था। वह उत्कचन मे (हीन गुण वाली वस्तु को अधिक मूल्य लेने के लिए उत्कृष्ट गुण वाली बताने मे), वचन (दूसरा को ठगने) मे, माया (पर को धोखा देने की बुद्धि) मे, निकृति (बगुला के समान ढोग करने मे), कूट मे अर्थात् तोल-नाप को कम ज्यादा करने मे और कपट करने मे अर्थात् वेष और भाषा को बदलने मे अति निपुण था। साति सप्रयोग मे अर्थात् उत्कृष्ट वस्तु मे मिलावट करने मे भी निपुण था या अविश्वास करने मे चतुर था। वह चिरकाल से नगर मे उपद्रव कर रहा था। उसका शील, आचार और चरित्र अत्यन्त दूषित था। वह द्यूत मे आसक्त था, मदिरापान मे अनुरक्त था, अच्छा भोजन करने मे गृद्ध था और मास मे लोलुप था। लोगो के हृदय को विदारण कर देने वाला, साहसी अर्थात् परिणाम का विचार न करके कार्य करने वाला, सेंध लगाने वाला, गुप्त कार्य करने वाला, विश्वासघाती और आग लगा देने वाला था। तीर्थ रूप देवद्रोणी (देवस्थान) आदि का भेदन करके उसमे से द्रव्य हरण करने वाला और हस्तलाघव वाला था। पराया द्रव्य हरण करने मे सदैव तैयार रहता था तीव्र वैर वाला था।

वह विजय चोर राजगृह नगर के बहुत से प्रवेश करने के मार्गों, निकलने के मार्गों, दरवाजो, पीछे की खिडकियों, छेडियों, किलो की छोटी खिडकियो, मोरियो, रास्ते मिलने की जगहो, रास्ते

अलग-अलग होने के स्थाना, जुआ के अखाडो, मदिरापान के अड्डो, वेश्या के घरो, उनके घरो के द्वारो (चोरो के अड्डो), चोरो के घरो, शृ गाटको—सिघाडे के आकार के मार्गों, तीन माग मिलने के स्थानो, चौको, अनेक माग मिलने के स्थानो, नागदेव के गृहो, भूतो के गृहो, यक्षगृहों, सभास्थानो, प्याउओ, दुकानो ओर शून्यगृहो को देखता फिरता था। उनकी मागणा करता था—उनके विद्यमान गुणो का विचार करता था, उनकी गवेपणा करता था, अर्थात् थोडे जनो का परिवार हो तो चोरो करने मे सुविधा हो, ऐसा विचार किया करता था। विपम-रोग की तीव्रता, इप्ट जनो के वियोग, व्यसन—राज्य आदि की ओर से आये हुए सकट, अभ्युदय—राज्यलक्ष्मी आदि के लाभ, उत्सवो, प्रसव-पुत्रादि के लाभ, मदन त्रयोदशी आदि तिथियो, क्षण—बहुत लोको के भोज आदि के प्रसगो, यज्ञ—नाग आदि की पूजा, कौमुदी आदि पर्वणी मे, अर्थात् इन सब प्रसगो पर बहुत से लोग मद्यपान से मत्त हो गए हो, प्रमत्त हुए हो, अमुक काय मे व्यस्त हो, विविध कार्यो मे आकुल-व्याकुल हो, सुख मे हो, दु ख मे हो, परदेश गये हो, परदेश जाने की तयारी मे हो ऐसे अवसरा पर वह लोगो के छिद्र का, विरह (एकान्त) का और अन्तर (अवसर) का विचार करता और गवेपणा करता रहता था।

१०—बहिया वि य ण रायगिहस्स नगरस्स आरामेसु य, उज्जाणेसु य वावि पोक्खरिणी-दीहिया गु जालिया-सरेसु य सरपतिसु य सरसरपतियासु य जिण्णुज्जाणेसु य भग्गकूवएसु य मालुया कच्छएसु य सुसाणेसु य गिरिकन्दर-लेण उवट्ठाणेसु य बहुजणस्स छिद्दे सु य जाव अन्तर मग्गमाणे गवेसमाणे एव च ण विहरइ।

वह विजय चोर राजगृह नगर के बाहर भी आरामो मे अर्थात् दम्पती के क्रीडा करने के लिए माधवीलतागृह आदि जहाँ बने हो ऐसे बगीचो मे, उद्यानो मे अर्थात् पुष्पो वाले वृक्ष जहाँ हो और लोग जहा जाकर उत्सव मनाते हो ऐसे बागो मे, चौकोर बावडियो मे, कमल वाली पुष्करिणियो मे, दीर्घिकाओ (लम्बी बावडियो) मे, गु जालिकाओ (बाकी बावडियो) मे, सरोवरो मे, सरोवरो की पक्तियो मे, सर-सर पक्तियो (एक तालाब का पानी दूसरे तालाब मे जा सके, ऐसे सरोवरो की पक्तियो) मे, जीर्ण उद्यानो मे, भग्न कूपो मे, मालुकाकच्छो की झाडियो मे, श्मशानो मे, पर्वत की गुफाओ मे, लयनो अर्थात् पर्वतस्थित पापाणगृहो मे तथा उपस्थानो अर्थात् पवत पर स्थित पापाण-मडपो मे उपयु क्त बहुत लोगो के छिद्र आदि देखता रहता था।

११—तए ण तीसे भद्दाए भारियाए अन्नया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकाल-समयसि कुडु बजागरिय जागरमाणीए अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव (चिंतिए पत्थिए मणोगए सकप्पे) समुप्पज्जित्था—

'अह धन्नेण सत्थवाहेण सद्धि बहूणि वासाणि सद्द फरिस रस-गध रूवाणि माणुस्सयाइ कामभोगाइ पच्चणुभवमाणी विहरामि। नो चेव ण अह दारग वा दारिय वा पयायामि।

त धन्नाओ ण ताओ अम्मयाओ जाव [सपुण्णाओ ण ताओ अम्मयाओ, कयत्थाओ, ण ताओ अम्मयाओ, कयपुण्णाओ ण ताओ, अम्मयाओ, कयलक्खणाओ ण ताओ अम्मयाओ, कयविहवाओ ण ताओ अम्मयाओ] सुलद्धे ण माणुस्सए जम्मजीवियफले तासि अम्मयाण, जासि मन्ने णियगकुच्छि सभूयाइ थणदुद्धलुद्धयाइ महुरसमुल्लावगाइ मम्मणपयपियाइ थणमूला कक्खदेसमाग अभिसरमाणाइ मुद्धयाइ थणय पिबति। तओ य कोमलकमलोवमेहि हत्थेहि गिण्हिऊण उच्छगे निवेसियाइ देति समुल्लावए पिए सुमहुरे पुणो पुणो मजुलप्पभणिए।

त अह ण अधन्ना अपुन्ना अलक्खणा अकयपुन्ना एत्तो एगमवि न पत्ता ।'

धन्य सार्थवाह की भार्या भद्रा एक बार कदाचित् मध्यरात्रि के समय कुटुम्ब सम्बन्धी चिन्ता कर रही थी कि उसे इस प्रकार का विचार [चिन्तन, अभिलाप एव मानसिक सकल्प] उत्पन्न हुआ--

बहुत वर्षों से मैं धन्य सार्थवाह के साथ शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध और रूप यह पांचो प्रकार के मनुष्य सम्बन्धी कामभोग भोगती हुई विचर रही हूँ, परन्तु मैंने एक भी पुत्र या पुत्री को जन्म नहीं दिया ।

वे माताएँ धन्य हैं, यावत् [वे माताएँ प्रशस्त पुण्य वाली हैं, वे माताएँ कृतार्थ हैं--पूर्ण मनोरथ वाली हैं, वस्तुत उन माताओ ने पुण्य उपार्जन किया है, उन माताओ के लक्षण सार्थक हुए हैं और वे माताएँ वैभवशालिनी हैं], उन माताओं को मनुष्य-जन्म और जीवन का प्रशस्त--भला फल प्राप्त हुआ है, जो माताएँ, मैं मानती हूँ कि, अपनी कोख से उत्पन्न हुए, स्तनो का दूध पीने में लुब्ध, मीठे बोल बोलने वाले, तुतला-तुतला कर बोलने वाले और स्तन के मूल से कांख के प्रदेश की ओर सरकने वाले मुग्ध बालको को स्तनपान कराती हैं और फिर कमल के समान कोमल हाथो से उन्हें पकड़ कर अपनी गोद मे बिठलाती हैं और बार-बार अतिशय प्रिय वचन वाले मधुर उल्लाप देती हैं।

मैं अधन्य हूँ, पुण्यहीन हूँ, कुलक्षणा हूँ और पापिनी हूँ कि इनमें से एक भी (विशेषण) न पा सकी ।

१२--त सेय मम कल्ल पाउप्पभायाए रयणीए जाव[1] जलते धण्ण सत्यवाह आपुच्छित्ता धण्णेण सत्यवाहेण अब्भणुन्नाया समाणी सुबहु विउल असण पाण खाइम साइम उवक्खडावेत्ता सुबहु पुप्फ-वत्थ-गध-मल्लालकार गहाय बहूहि मित्त नाइ नियग-सयण-सबधी-परिजण-महिलाहि सद्धि सपरिवुडा जाइ इमाइ रायगिहस्स नगरस्स बहिया णागाणि य भूयाणि य जक्खाणि य इदाणि य खदाणि य रुद्दाणि य सिवाणि य वेसमणाणि य तत्य ण बहूण नागपडिमाण य जाव वेसमणपडिमाण य महरिह पुप्फच्चणिय करेत्ता जाणुपायपडियाए एव वइत्तए--जइ ण अह देवाणुप्पिया ! दारग वा दारिग वा पयायामि, तो ण अह तुब्भ जाय च दाय च भाय च अक्खयणिहि च अणुवड्ढेमि त्ति कट्टु उवाइय उवाइत्तए ।

अतएव मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि कल रात्रि के प्रभात रूप में प्रकट होने पर और सूर्योदय होने पर धन्य सार्थवाह से पूछ कर, धन्य सार्थवाह की आज्ञा प्राप्त करके मैं बहुत सा अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार तयार कराके बहुत-से पुष्प वस्त्र गधमाला और अलकार ग्रहण करके, बहुसख्यक मित्र, ज्ञातिजनों, निजजनो, स्वजनो, सम्बन्धियो और परिजनो की महिलाओं के साथ--उनसे परिवृत होकर, राजगृह नगर के बाहर जो नाग, भूत, यक्ष, इन्द्र, स्कन्द, रुद्र, शिव और वैश्रमण आदि देवों के आयतन हैं और उनमें जो नाग की प्रतिमा यावत् वैश्रमण की प्रतिमाएँ हैं, उनकी बहुमूल्य पुष्पादि से पूजा करके घुटने और पैर झुका कर अर्थात् उनको नमस्कार करके इस प्रकार कहूँ--'हे देवानुप्रिय ! यदि मैं एक भी पुत्र या पुत्री को जन्म दूंगी तो मैं तुम्हारी पूजा करूंगी, पर्व के दिन दान दूंगी, भाग--द्रव्य के लाभ का हिस्सा दूंगी और तुम्हारी अक्षय निधि की वृद्धि करूंगी ।' इस प्रकार अपनी इष्ट वस्तु की याचना करूँ ।

---

१ प्र अ सूत्र १८

१३—एव सपेहेइ, सपेहित्ता कल्ल जाव' जलते जेणामेव धण्ण
उवागच्छित्ता एव वयासी—एव खलु अह देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं
समुल्लावए सुमहुरे पुणो पुणो मजुलप्पभणिए । त ण अह अहन्ना अपु
न पत्ता । त इच्छामि ण देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया
अणुवड्ढेमि, उवाइय करेत्तए ।

भद्रा ने इस प्रकार विचार किया । विचार करके दूसरे
धन्य सार्थवाह थे, वही आई । आकर इस प्रकार बोली—

देवानुप्रिय ! मैंने आपके साथ बहुत वर्षों तक कामभोग भो
को जन्म नही दिया । अन्य स्त्रियाँ बार-बार अति मधुर वचन वा
की लोरियाँ गाती हैं, किन्तु मैं अधन्य, पुण्य-हीन और लक्षणहीन
एक भी विशेषण न पा सकी । तो हे देवानुप्रिय ! मैं चाहती हूँ कि
आदि तैयार कराकर नाग आदि की पूजा करूँ यावत् उनकी
मनौती मनाऊँ । (पूर्व सूत्र के अनुसार यहाँ भी सब कह लेना चाहिए

पति की अनुमति

१४—तए ण धण्णे सत्यवाहे भद्द भारिय एव वयासी—
एस चेव मणोरहे—कह ण तुम दारग वा दारिय वा पयाएज्जासि
अणुजाणाइ ।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने भद्रा भार्या से इस प्रकार क
मेरा भी यही मनोरथ है कि किसी प्रकार तुम पुत्र या पुत्री का प्र
कह कर भद्रा सार्थवाही को उस अर्थ की अर्थात् नाग, भूत, यक्ष
दे दी ।

देवो की पूजा

१५—तए ण सा भद्दा सत्यवाही धण्णेण सत्यवाहेण अब्
हयहियया विपुल असण-पाण-खाइम-साइम उवक्खडावेइ । उवक्खडा
लकार गेण्हइ । गेण्हित्ता सयाओ गिहाओ निग्गच्छइ । निग्गच्छि
निग्गच्छइ । निग्गच्छित्ता जेणेव पोक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ । उव
पुप्फ जाव मल्लालकार ठवेइ । ठवित्ता पुक्खरिणि ओगाहेइ । ओगा
करेइ, करित्ता ण्हाया कयबलिकम्मा उल्लपडसाडिगा जाइ तत्थ उ
णलिणाइ सुभगाइ सोगधियाइ पोडरीयाइ महापोडरीयाइ सयवत्त
गिण्हित्ता पुक्खरिणीओ पच्चोरुहइ । पच्चोरुहित्ता त सुबहु पुप्फगध

वेसमणपडिमाण य आलोए पणाम करइ, ईसिं पच्चुन्नमइ । पच्चुन्नमित्ता लोमहत्थगं परामुसइ, परामुसित्ता नागपडिमाओ य जाव वेसमणपडिमाओ य लोमहत्थेण पमज्जइ, उदगधाराए अब्भुक्खेइ। अब्भुक्खित्ता पम्हलसुकुमालाए गंधकासाईए गायाइं लूहेइ । लूहित्ता महरिहं वत्थारुहणं च मल्लारुहणं च गंधारुहणं च चुन्नारुहणं च वन्नारुहणं च करेइ। करित्ता धूवं डहइ, डहित्ता जाणुपायवडिया पंजलिउडा एवं वयासी—'जइ णं अहं दारगं वा दारिगं वा पयायामि तो णं अहं जाय य जाव अणुवुड्ढेमि त्ति कट्टु उवाइयं करेइ, करित्ता जेणेव पोक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ । उवागच्छित्ता विपुलं असणपाणखाइमसाइमं आसाएमाणी जाव (विसाएमाणी परिभाएमाणी परिभुंजेमाणी एवं च णं) विहरइ । जिमिया जाव (भुत्तुत्तरागया वि य णं समाणा आयंता चोक्खा परम) सुइभूया जेणेव सए गिहे तेणेव उवागया ।

तत्पश्चात् वह भद्रा सार्थवाही धन्य सार्थवाह से अनुमति प्राप्त करके हृष्ट तुष्ट यावत् प्रफुल्लितहृदय होकर विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तैयार कराती है । तैयार कराकर बहुत-से गंध, वस्त्र, माला और अलंकारों को ग्रहण करती है और फिर अपने घर से बाहर निकलती है । राजगृह नगर के बीचों-बीच होकर निकलती है । निकलकर जहाँ पुष्करिणी थी, वहीं पहुँचती है । वहा पहुँच कर उसने पुष्करिणी के किनारे बहुत से पुष्प, गंध, वस्त्र, मालाएँ और अलंकार रख दिए । रख कर पुष्करिणी में प्रवेश किया, जलमज्जन किया, जलक्रीड़ा की, स्नान किया और बलिकर्म किया । तत्पश्चात् ओढने-पहनने के दोनों गीले वस्त्र धारण किये हुए भद्रा सार्थवाही ने वहाँ जो उत्पल-कमल, पद्म, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगंधिक, पुंडरीक, महापुंडरीक, शतपत्र और सहस्र पत्र-कमल थे उन सबको ग्रहण किया । फिर पुष्करिणी से बाहर निकली । निकल कर पहले रखे हुए बहुत-से पुष्प, गंध माला आदि लिए और उन्हें लेकर जहाँ नागागृह था यावत् वैश्रमणगृह था, वहाँ पहुँची । पहुँच कर उनमें स्थित नाग की प्रतिमा यावत् वैश्रमण की प्रतिमा पर दृष्टि पड़ते ही उन्हें नमस्कार किया । कुछ नीचे झुकी । मोर-पिच्छी लेकर उसने नाग-प्रतिमा यावत् वैश्रमण प्रतिमा का प्रमार्जन किया । जल की धार छोड़कर अभिषेक किया । अभिषेक करके रुएँदार और कोमल कषाय-रंग वाले सुगंधित वस्त्र से प्रतिमा के अंग पोंछे । पोंछकर बहुमूल्य वस्त्रों का आरोहण किया—वस्त्र पहनाए, पुष्पमाला पहनाई, गंध का लेपन किया, चूर्ण चढाया और शोभाजनक वर्ण का स्थापन किया, यावत् धूप जलाई । तत्पश्चात् घुटने और पैर टेक कर, दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा—

'अगर मैं पुत्र या पुत्री को जन्म दूंगी तो मैं तुम्हारी याग—पूजा करूंगी, यावत् अक्षयनिधि की वृद्धि करूंगी ।' इस प्रकार भद्रा सार्थवाही मनौती करके जहाँ पुष्करिणी थी, वहाँ आई और विपुल अशन, पान, खादिम एवं स्वादिम आहार का आस्वादन करती हुई यावत् विचरने लगी । भोजन करने के पश्चात् शुचि होकर अपने घर आ गई ।

पुत्र-प्राप्ति

१६—अदुत्तरं च णं भद्दा सत्थवाही चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुन्नमासिणीसु विउलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडेइ, उवक्खडित्ता बहवे नागा य जाव[1] वेसमणा य उवायमाणी नमंसमाणी जाव एवं च णं विहरइ ।

---

१ द्वि. अ. सूत्र १२

तए ण सा भद्दा सत्यवाही अन्नया कयाइ केणइ कालतरेण आवन्नसत्ता जाया यावि होत्था ।

तत्पश्चात् भद्रा सार्थवाही चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन विपुल अशन, पान, खादिम और भोजन तयार करती। तैयार करके बहुत से नाग यावत् वैश्रमण देवो की मनौती करती—भोग चढाती थी और उन्हे नमस्कार किया करती थी।

तत्पश्चात् वह भद्रा सार्थवाही कुछ समय व्यतीत हो जाने पर एकदा कदाचित् गर्भवती हो गई।

१७—तए ण तीसे भद्दाए सत्यवाहीए दोसु मासेसु वीइक्कतेसु तइए मासे वट्टमाणे इमेयारूवे दोहले पाउब्भूए—धन्नाओ ण ताओ अम्मयाओ जाव[1] कयलक्खणाओ ण ताओ अम्मयाओ, जाओ ण विउल असण-पाण खाइम-साइम सुबहुय पुप्फ-वत्थ-गध मल्लालकार गहाय मित्त नाइ-नियग-सयण-सबधि परियण-महिलियाहि य सद्धि सपरिवुडाओ रायगिह नगर मज्झमज्झेण निग्गच्छति । निग्गच्छित्ता जेणेव पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छति । उवागच्छित्ता पोक्खरिणि ओगाहिति, ओगाहित्ता ण्हायाओ कयबलिकम्माओ सव्वालकारविभूसियाओ विपुल असण पाण-खाइम-साइम आसाएमाणीओ जाव (विसाएमाणीओ परिभाएमाणीओ) पडिभु जेमाणीओ दोहल विणेन्ति । एव सपेहेइ, सपेहित्ता कल्ल जाव[2] जलते जेणेव धण्णे सत्यवाहे तेणेव उवागच्छइ । उवागच्छित्ता धण्ण सत्यवाह एव वयासी—'एव खलु देवाणुप्पिया ! मम तस्स गब्भस्स जाव (दोसु मासेसु वीइक्कतेसु तइए मासे वट्टमाणे इमेयारूवे दोहले पाउब्भूए—धन्नाओ ण ताओ अम्मयाओ जाव दोहल) विणेंति, त इच्छामि ण देवाणुप्पिया ! तुब्भेहि अब्भणुन्नाया समाणी जाव विहरित्तए ।

'अहासुह देवाणुप्पिए ! मा पडिबध करेह ।'

तत्पश्चात् भद्रा सार्थवाही को (गर्भवती हुए) दो मास बीत गये । तीसरा मास चल रहा था, तव इस प्रकार का दोहद उत्पन्न हुआ—'वे माताएँ धन्य है, यावत् (पुण्यशालिनी है, कृतार्थ हैं) तथा वे माताएँ शुभ लक्षण वाली है जो विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम—यह चार प्रकार का आहार तथा बहुत-सारे पुष्प, वस्त्र, गध और माला तथा अलकार ग्रहण करके मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी और परिजनो की स्त्रियो के साथ परिवृत होकर राजगृह नगर के बीचोंबीच होकर निकलती हैं । निकल कर जहा पुष्करिणी है वहाँ आती हैं, आकर पुष्करिणी मे अवगाहन करती हैं, अवगाहन करके स्नान करती है, बलिकर्म करती है और सब अलकारो से विभूषित होती हैं । फिर विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार का आस्वादन करती हुई, विशेष आस्वादन करती हुई, विभाग करती हुई तथा परिभोग करती हुई अपने दोहद को पूर्ण करती है ।' इस प्रकार भद्रा सार्थवाह ने विचार किया । विचार करके कल—दूसरे दिन प्रात काल सूर्योदय होने पर धन्य सार्थवाह के पास आई । आकर धन्य सार्थवाह से इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय ! मुझे उस गर्भ के प्रभाव से ऐसा दोहद उत्पन्न हुआ है कि वे माताएँ धन्य है और सुलक्षणा है जो अपने दोहद को पूर्ण करती हैं, आदि । अतएव हे देवानुप्रिय ! आपकी आज्ञा हो तो मैं भी दोहद पूर्ण करना चाहती हूँ ।

सार्थवाह ने कहा—हे देवानुप्रिये ! जिस प्रकार सुख उपजे वैसा करो । उसमे ढील मत करो ।

---

१ द्वि अ सूत्र ११ २ प्र अ सूत्र २८

१८—तए णं सा भद्दा सत्थवाही धण्णेणं सत्थवाहेणं अब्भणुण्णाया समाणी हट्ठतुट्ठा जाव विउलं असणपाणखाइमसाइमं जाव उवक्खडावेइ, उवक्खडावेत्ता ण्हाया जाव (उल्लपडसाडगा) उल्लपडसाडगा जेणेव णागघरए जाव[1] धूवं डहइ। डहित्ता पणामं करेइ, पणामं करेत्ता जेणेव पोक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ। तए णं ताओ मित्त-णाइ जाव नगरमहिलाओ भद्दं सत्थवाहिं सव्वालंकार-विभूसियं करेइ।

तए णं सा भद्दा सत्थवाही ताहिं मित्त-णाइ नियग-सयण-संबंधि-परिजण णगरमहिलियाहिं सद्धिं तं विउलं असणपाणखाइमसाइमं जाव परिभुंजेमाणी य दोहलं विणेइ। विणित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह से आज्ञा पाई हुई भद्रा सार्थवाही हृष्ट-तुष्ट हुई। यावत् विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तैयार करके यावत् स्नान तथा बलिकर्म करके यावत् पहनने और ओढ़ने का गीला वस्त्र धारण करके जहाँ नागायतन आदि थे, वहाँ आई। यावत् धूप जलाई तथा बलिकर्म एवं प्रणाम किया। प्रणाम करके जहाँ पुष्करिणी थी, वहाँ आई। आने पर उन मित्र, ज्ञाति यावत् नगर की स्त्रियों ने भद्रा सार्थवाही को सब आभूषणों से अलंकृत किया।

तत्पश्चात् भद्रा सार्थवाही ने उन मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी, परिजन एवं नगर की स्त्रियों के साथ विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम का यावत् परिभोग करके अपने दोहद को पूर्ण किया। पूर्ण करके जिस दिशा से वह आई थी, उसी दिशा में लौट गई।

पुत्र-प्रसव

१९—तए णं सा भद्दा सत्थवाही संपुण्णडोहला जाव[2] तं गब्भं सुहंसुहेणं परिवहइ।

तए णं सा भद्दा सत्थवाही णवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाण राइंदियाणं सुकुमाल पाणि-पायं जाव सव्वंगसुंदरं दारगं पयाया।

तत्पश्चात् भद्रा सार्थवाही दोहद पूर्ण करके सभी कार्य सावधानी से करती तथा पथ्य भोजन करती हुई यावत् उस गर्भ को सुखपूर्वक वहन करने लगी।

तत्पश्चात् उस भद्रा सार्थवाही ने नौ मास सम्पूर्ण हो जाने पर और साढ़े सात दिन रात व्यतीत हो जाने पर सुकुमार हाथों पैरों वाले बालक का प्रसव किया।

देवदत्त-नामकरण

२०—तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो पढमे दिवसे जायकम्मं करेंति, करित्ता तहेव जाव[1] विउलं असणपाणखाइमसाइमं उवक्खडावेंति, उवक्खडावित्ता तहेव मित्तणाइ० भोयावेत्ता अयमेयारूवं गोण्णं गुणनिप्फण्णं नामधेज्जं करेंति—'जम्हा णं अम्हं इमे दारए बहूणं नागपडिमाण य जाव[1] वेसमणपडिमाण य उवाइयलद्धे णं तं होउ णं अम्हं इमे दारए देवदिन्ननामेणं।'

तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो नाम च [illegible] य अणुवड्ढेंति।

तत्पश्चात् उस बालक के [illegible] [illegible] सत्कार किया। करके उसी प्रकार यावत् (दूसरे दिन [illegible] [illegible] सोत्साह किया। [illegible]

1. द्वि. अ. सूत्र १४   2. प्र. अ. सूत्र [illegible]   सूत्र

सम्बन्धी अशुचि दूर हो जाने पर बारहवें दिन विपुल) अशन, पान, खादिम
तैयार करवाया। तैयार करवाकर उसी प्रकार मित्र ज्ञाति जनो आदि को भोज
का गौण अर्थात् गुणनिष्पन्न नाम रखा—क्योकि हमारा यह पुत्र बहुत-सी
[भूत, यक्ष, इन्द्र, स्कन्द, रुद्र, शिव] तथा वैश्रमण प्रतिमाओ की मनौती करने
कारण हमारा यह पुत्र 'देवदत्त' नाम से हो, अर्थात् इसका नाम 'देवदत्त' रखा जा

तत्पश्चात् उस बालक के माता-पिता ने उन देवताओ की पूजा की, उ
धन का विभाग किया और अक्षयनिधि की वृद्धि की अर्थात् मनौती के रूप मे पह
था उसे पूरा किया।

पुत्र का अपहरण

२१—तए ण से पथए दासचेडए देवदिन्नस्स दारगस्स बालग्गाही जाए
कडीए गेण्हइ, गेण्हित्ता बहूहिं डिमएहि य डिमयाहि य दारएहि य दारियाहि य कुमारे
य सद्धि सपरिवुडे अभिरमइ।

तत्पश्चात् वह पथक नामक दास चेटक देवदत्त बालक का बालग्राही (ब
वाला) नियुक्त हुआ। वह बालक देवदत्त को कमर मे लेता और लेकर बहुत-से बच
बालको, बालिकाओ, कुमारो और कुमारियो के साथ, उनसे परिवृत होकर खेलता रह

२२—तए ण सा भद्दा सत्थवाही अन्नया कयाइ देवदिन्न दारय ण्हाय कयबलिकम्म
मगलपायच्छित्त सव्वालकारविभूसिय करेइ। पथयस्स दासचेडयस्स हत्थयसि दलयइ।

तए ण पथए दासचेडए भद्दाए सत्थवाहीए हत्थाओ देवदिन्न दारय कडीए गेण्
सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ। पडिणिक्खमित्ता बहूहिं डिभएहि य डिंभियाहि य जा
दारियाहिं कुमारेहिं) कुमारियाहि य सद्धि सपरिवुडे जेणेव रायमग्गे तेणेव उवागच्छइ। उ
देवदिन्न दारग एगते ठावेइ। ठावित्ता बहूहिं डिमएहि य जाव कुमारियाहि य सद्धि सपरि
यावि होत्था विहरइ।

तत्पश्चात् भद्रा सार्थवाही ने किसी समय स्नान किये हुए, बलिकर्म, कौतुक, म
प्रायश्चित किये हुए तथा समस्त अलङ्कारो से विभूषित हुए देवदत्त बालक का दास चेटक
हाथ मे सौपा।

पथक दास चेटक ने भद्रा सार्थवाही के हाथ से देवदत्त बालक को लेकर अपनी कटि
किया। ग्रहण करके वह अपने घर से बाहर निकला। बाहर निकल कर बहुत-से बालको, बालि
बच्चा, बच्चिओ, कुमारो और कुमारिकाओ से परिवृत होकर राजमार्ग मे आया। आकर
बालक को एकान्त मे—एक ओर बिठला दिया। बिठला कर बहुसख्यक बालको यावत् कुमारि
के साथ, (देवदत्त की ओर से) असावधान होकर खेलने लगा—खेलने मे मगन हो गया।

हत्या

२३—इम च ण विजए तक्करे रायगिहस्स नगरस्स बहूणि दाराणि य अवदाराणि य

जाव[1] आभोएमाणे मग्गेमाणे गवेसेमाणे जेणेव देवदिन्ने दारए तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता देवदिन्नं दारगं सव्वालंकारविभूसियं पासइ। पासित्ता देवदिन्नस्स दारगस्स आभरणालंकारेसु मुच्छिए गढिए गिद्धे अज्झोववन्ने पंथयं दासचेडं पमत्तं पासइ। पासित्ता दिसालोयं करेइ। करेत्ता देवदिन्नं दारगं गेण्हइ। गेण्हित्ता कक्खंसि अल्लियावेइ। अल्लियावित्ता उत्तरिज्जेण पिहेइ। पिहेत्ता सिग्घं तुरियं चवलं वेइयं रायगिहस्स नगरस्स अववारेण निग्गच्छइ। निग्गच्छित्ता जेणेव जिण्णुज्जाणे, जेणेव भग्गकूवए तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता देवदिन्नं दारयं जीवियाओ ववरोवेइ। ववरोवित्ता आभरणालंकारं गेण्हइ। गेण्हित्ता देवदिन्नस्स दारगस्स सरीरयं निप्पाणं निच्चेट्ठं जीवियविप्पजढं भग्गकूवए पक्खिवइ। पक्खिवित्ता जेणेव मालुयाकच्छए तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता मालुयाकच्छयं अणुपविसइ। अणुपविसित्ता निच्चले निप्फंदे तुसिणीए दिवसं खिवेमाणे चिट्ठइ।

इसी समय विजय चोर राजगृह नगर के बहुत-से द्वारों एवं अपद्वारों आदि को यावत् पूर्वोक्त कथनानुसार देखता हुआ, उनकी मार्गणा करता हुआ, गवेषणा करता हुआ, जहाँ देवदत्त बालक था, वहाँ आ पहुँचा। आकर देवदत्त बालक को सभी आभूषणों से भूषित देखा। देखकर बालक देवदत्त के आभरणों और अलंकारों में मूर्छित (आसक्त—विवेकहीन) हो गया, ग्रथित (लोभ से ग्रस्त) हो गया, गृद्ध (आकांक्षायुक्त) हो गया और अध्युपपन्न (उनमें अत्यन्त तन्मय) हो गया। उसने दास चेटक पंथक को बेखबर देखा और चारों ओर दिशाओं का अवलोकन किया—इधर-उधर देखा। फिर बालक देवदत्त को उठाया और उठाकर कांख में दबा लिया। ओढ़ने के कपड़े से छिपा लिया—ढँक लिया। फिर शीघ्र, त्वरित, चपल और उतावल के साथ राजगृह नगर के अपद्वार से बाहर निकल गया। निकल कर जहाँ पूर्ववर्णित जीर्ण उद्यान और जहाँ टूटा-फूटा कुआ था, वहाँ पहुँचा। वहाँ पहुँच कर देवदत्त बालक को जीवन से रहित कर दिया। उसे निर्जीव करके उसके सब आभरण और अलंकार ले लिये। फिर बालक देवदत्त के प्राणहीन और चेष्टाहीन एवं निर्जीव शरीर को उस भग्न कूप में पटक दिया। इसके बाद वह मालुकाकच्छ में घुस गया और निश्चल अर्थात् गमनागमनरहित, निस्पन्द—हाथों-पैरों को भी न हिलाता हुआ, और मौन रहकर दिन समाप्त होने की राह देखने लगा।

विवेचन—बालक निसर्ग से ही सुन्दर और मनोमोहक होते हैं। उनका निर्विकार भोला चेहरा मन को अनायास ही अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। मगर खेद है कि विवेकहीन माता-पिता उनके प्राकृतिक सौन्दर्य से सन्तुष्ट न होकर उन्हें आभूषणों से सजाते हैं। इसमें अपनी श्रीमन्ताई प्रकट करने का अहंकार भी छिपा रहता है। किन्तु वे नहीं जानते कि ऊपर से लादे हुए आभूषणों से सहज सौन्दर्य विकृत होता है और साथ ही बालक के प्राण संकट में पड़ते हैं।

कैसे-कैसे मनोरथों और कितनी-कितनी मनौतियों के पश्चात् जन्मे हुए बालक को आभूषणों की बदौलत प्राण त्यागने पड़े।

आधुनिक युग में तो मनुष्य के प्राण हरण करना सामान्य-सी बात हो गई है। आभूषणों के कारण अनेकों को प्राणों से हाथ धोना पड़ता है। फिर भी आश्चर्य है कि लोगों का, विशेषतः महिलाओं का आभूषण-मोह छूट नहीं सका है। प्रस्तुत घटना का शास्त्र में उल्लेख होना बहुत उपदेशप्रद है।

---

१ द्वि. अ. सूत्र ९

२४—तए ण से पथए दासचेडे तओ मुहुत्ततरस्स जेणेव देवदिन्ने दारए ठविए तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता देवदिन्न दारय तसि ठाणसि अपासमाणे रोयमाणे कदमाणे विलवमाणे देवदिन्नदारगस्स सव्वओ समता मग्गणगवेसण करेइ। करित्ता देवदिन्नस्स दारगस्स कत्थइ सुइ वा खुइ वा पउत्ति वा अलभमाणे जेणेव सए गिहे, जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता धण्ण सत्थवाह एव वयासी—'एव खलु सामी! भद्दा सत्थवाही देवदिन्न दारय ण्हाय जाव[१] मम हत्थसि दलयइ। तए ण अह देवदिन्न दारय कडीए गिण्हामि। गिण्हित्ता जाव[२] मग्गणगवेसण करेमि, त न णज्जइ ण सामी! देवदिन्ने दारए केणइ णीए वा अवहिए वा अवखित्ते वा। पायवडिए धण्णस्स सत्थवाहस्स एयमट्ठ निवेदेइ।

तत्पश्चात् वह पथक नामक दास चेटक थोडी देर बाद जहाँ बालक देवदत्त को बिठलाया था, वहाँ पहुचा। पहुँचने पर उसने देवदत्त बालक को उस स्थान पर न देखा। तब वह रोता, चिल्लाता, विलाप करता हुआ सब जगह उसकी ढू ढ खोज करने लगा। मगर कही भी उसे बालक देवदत्त की खबर न लगी, छीक वगैरह का शब्द न सुनाई दिया, न पता चला। तब वह जहाँ अपना घर था और जहा धन्य सार्थवाह था, वहाँ पहुँचा। पहुँच कर धन्य सार्थवाह से इस प्रकार कहने लगा—स्वामिन्! भद्रा सार्थवाही ने स्नान किए, बलिकर्म किये हुए, कौतुक, मगल, प्रायश्चित्त किए हुए और सभी अलकारो से विभूषित बालक को मेरे हाथ मे दिया था। तत्पश्चात् मैने बालक देवदत्त को कमर म ले लिया। लेकर (बाहर ले गया, एक जगह बिठलाया। थोडी देर बाद वह दिखाई नही दिया) यावत् सब जगह उसकी ढू ढ खोज की, परन्तु नही मालूम स्वामिन्! कि देवदत्त बालक को कोई मित्रादि अपने घर लेगया है, चोर ने उसका अपहरण कर लिया है अथवा किसी ने ललचा लिया है? इस प्रकार धन्य सार्थवाह के पैरो मे पडकर उसने यह वृत्तान्त निवेदन किया।

२५—तए ण से धण्णे सत्थवाहे पथयदासचेडगस्स एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म तेण य महया पुत्तसोएणाभिभूए समाणे परसुणियत्ते व चपगपायवे धसत्ति धरणीयलसि सव्वगेहि सनिवडिए।

धन्य सार्थवाह पथक दास चेटक की यह बात सुनकर और हृदय मे धारण करके महान् पुत्र-शोक से व्याकुल होकर, कुल्हाडे से काटे हुए चम्पक वृक्ष की तरह पृथ्वी पर सब अगो से धडाम से गिर पडा—मूर्छित हो गया।

गवेषणा

२६—तए ण से धण्णे सत्थवाहे तओ मुहुत्ततरस्स आसत्थे पच्छागयपाणे देवदिन्नस्स दारगस्स सव्वओ समता मग्गणगवेसण करेइ। देवदिन्नस्स दारगस्स कत्थइ सुइ वा खुइ वा पउत्ति वा अलभमाणे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता महत्थ पाहुड गेण्हइ। गेण्हित्ता जेणेव नगरगुत्तिया तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता त महत्थ पाहुड उवणेइ, उवणइत्ता एव वयासी—एव खलु देवाणुप्पिया! मम पुत्ते भद्दाए भारियाए अत्तए देवदिन्ने नाम दारए इट्ठे जाव[३] उवरपुप्फ पिव दुल्लहे सवणयाए किमग पुण पासणयाए?

---

१ द्वि अ सूत्र २२ २ द्वि अ सूत्र २२ ३ प्र अ सूत्र १२१

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह थोड़ी देर बाद आश्वस्त हुआ—होश में आया, उसके प्राण मानों वापिस लौटे, उसने देवदत्त बालक की सब ओर ढूंढ-खोज की, मगर कहीं भी देवदत्त बालक का पता न चला, छींक आदि का शब्द भी न सुन पड़ा और न समाचार मिला। तब वह अपने घर पर आया। आकर बहुमूल्य भेंट ली और जहाँ नगररक्षक—कोतवाल आदि थे, वहाँ पहुँच कर वह बहुमूल्य भेंट उनके सामने रखी और इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो! मेरा पुत्र और भद्रा भार्या का आत्मज देवदत्त नामक बालक हमें इष्ट है, यावत् (कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनोरम है,) गूलर के फूल के समान उसका नाम श्रवण करना भी दुर्लभ है तो फिर दर्शन का तो कहना ही क्या है!

२७—तए णं सा भद्दा देवदिन्नं ण्हायं सव्वालंकारविभूसियं पंथगस्स हत्थे दलयइ, जाव पायवडिए तं मम निवेदेइ। तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया! देवदिन्नदारगस्स सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं कयं (करित्तए-करेह)।

धन्य सार्थवाह ने आगे कहा—भद्रा ने देवदत्त को स्नान करा कर और समस्त अलंकारों से विभूषित करके पंथक के हाथ में सौंप दिया। यावत् पंथक ने मेरे पैरों में गिर कर मुझसे निवेदन किया। (किस प्रकार पंथक बालक को बाहर ले गया, उसे एक स्थान पर बिठाकर स्वयं खेल में बेभान हो गया, इत्यादि पिछला सब वृत्तान्त यहाँ दोहरा लेना चाहिए) तो हे देवानुप्रियो! मैं चाहता हूँ कि आप देवदत्त बालक की सब जगह मार्गणा-गवेषणा करें।

विवेचन—यहाँ यह उल्लेखनीय है कि धन्य सार्थवाह नगररक्षकों के समक्ष अपने पुत्र के गुम हो जाने की फरियाद लेकर जाता है तो बहुमूल्य भेंट साथ ले जाता है और नगररक्षकों के सामने वह भेंट रखकर फरियाद करता है। अन्यत्र भी आगमिक कथाओं में इसी प्रकार का उल्लेख मिलता है। इससे प्रतीत होता है कि रिश्वत का रोग आधुनिक युग की देन नहीं है, यह प्राचीन काल में भी था और सभी समयों में इसका अस्तित्व रहा है। अन्यथा ऐसे विषय में भेंट की क्या आवश्यकता थी? गुम हुए बालक की खोजना नगररक्षकों का कर्त्तव्य है। राजा अथवा शासन की ओर से उनकी नियुक्ति ही इस कार्य के लिए थी।

धन्य कोई सामान्य जन नहीं था, सार्थवाह था। सार्थवाह का समाज में उच्च एवं प्रतिष्ठित स्थान होता है। जब उस जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति को भी भेंट (रिश्वत) देनी पड़ी तो साधारण जनों की क्या स्थिति होती होगी, यह समझना कठिन नहीं।

२८—तए णं ते नगरगोत्तिया धण्णेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणा सन्नद्धबद्धवम्मियकवया उप्पीलियसरासणपट्टिया जाव (पिणद्धगेविज्जा आविद्धविमलवरचिंधपट्टा) गहियाउहपहरणा धण्णेणं सत्थवाहेणं सद्धिं रायगिहस्स नगरस्स बहूणि अइगमणाणि य जाव[1] पवासु य मग्गणगवेसणं करेमाणा रायगिहाओ नगराओ पडिणिक्खमंति। पडिणिक्खमित्ता जेणेव जिण्णुज्जाणे जेणेव भग्गकूवए तेणेव उवागच्छंति। उवागच्छित्ता देवदिन्नस्स दारगस्स सरीरगं निप्पाणं निच्चेट्ठं जीवविप्पजढं पासंति। पासित्ता हा हा अहो अकज्जमिति कट्टु देवदिन्नं दारयं भग्गकूवाओ उत्तारेंति। उत्तारित्ता धण्णस्स सत्थवाहस्स हत्थे णं दलयंति।

---

१ द्वि. अ. सूत्र ९

तत्पश्चात् उन नगररक्षको ने धन्य सार्थवाह के ऐसा कहने पर कवच (बख्तर) तैयार किया, उसे कसो से बाँधा और शरीर पर धारण किया। धनुष रूपी पट्टिका पर प्रत्यचा चढाई अथवा भुजाओ पर पट्टा बाँधा। आयुध (शस्त्र) और प्रहण (दूर से चलाए जाने वाले तीर आदि) ग्रहण किये। फिर धन्य सार्थवाह के साथ राजगृह नगर के बहुत-से निकलने के मार्गो यावत् दरवाजो, पीछे की खिडकियो, छेडियो, किले की छोटी खिडकियो, मोरियो, रास्ते मिलने की जगहो, रास्ते अलग-अलग होने के स्थानो, जुआ के अखाडो, मदिरापान के स्थानो, वेश्या के घरो, उनके घरो के द्वारो (चोरो के अड्डो) चोरो के घरो, शृ गाटको—सिघाडे के आकार के मार्गो, तीन मार्ग मिलने के स्थानो, चौको, अनेक माग मिलने के स्थानो, नागदेव के गृहो, भूतो के गृहो, यक्षगृहो, सभास्थानो, प्याउओ आदि मे तलाश करते-करते राजगृह नगर मे बाहर निकले। निकल कर जहा जीण उद्यान था और जहा भग्न कूप था, वहा आये। आकर उस कूप मे निष्प्राण, निश्चेष्ट एव निर्जीव देवदत्त का शरीर देखा, देख कर 'हाय, हाय' 'अहो अकाय !' इस प्रकार कह कर उन्होने देवदत्त कुमार को उस भग्न कूप से बाहर निकाला और धन्य सार्थवाह के हाथो मे सौप दिया।

विजय चोर का निग्रह

२९—तए ण ते नगरगुत्तिया विजयस्स तक्करस्स पयमग्गमणुगच्छमाणा जेणेव मालुयाकच्छए तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता मालुयाकच्छय अणुपविसति, अणुपविसित्ता विजय तक्कर ससक्ख सहोड सगेवेज्ज जीवग्गाह गिण्हति। गिण्हित्ता अट्ठि-मुट्ठि-जाणु-कोप्पर-पहारसभग्गमहियगत्त करेति। करित्ता अवाउडबधण करेति। करित्ता देवदिन्नस्स दारगस्स आभरण गेण्हति। गेण्हित्ता विजयस्स तक्करस्स गीवाए बधति, बधित्ता मालुयाकच्छयाओ पडिनिक्खमति। पडिणिक्खमित्ता जेणेव रायगिहे नगरे तेणेव उवागच्छति। उवागच्छित्ता रायगिह नगर अणुपविसति। अणुपविसित्ता रायगिहे नगरे सिघाडग-तिय-चउक्क चच्चर-महापह-पहेसु कसप्पहारे य लयप्पहारे य छिवापहारे य निवाएमाणा निवाएमाणा छार च धूलिं च कयवर च उवरिं पक्किरमाणा पक्किरमाणा महया महया सद्देण उग्घोसेमाणा एव वदति—

तत्पश्चात् वे नगररक्षक विजय चोर के पैरो के निशानो का अनुसरण करते हुए मालुका-कच्छ मे पहुचे। उसके भीतर प्रविष्ट हुए। प्रविष्ट होकर विजय चोर को पचो की साक्षीपूर्वक, चोरी के माल के साथ, गदन मे बाधा और जीवित पकड लिया। फिर अस्थि (हड्डी की लकडी), मुष्टि से घुटनो और कोहनियो आदि पर प्रहार करके शरीर को भग्न और मथित कर दिया—ऐसी मार मारी कि उसका सारा शरीर ढीला पड गया। उसकी गदन और दोनो हाथ पीठ की तरफ बाँध दिए। फिर बालक देवदत्त के आभरण कब्जे मे किये। तत्पश्चात् विजय चोर को गदन से बाँधा और मालुकाकच्छ से बाहर निकले। निकल कर जहाँ राजगृह नगर था, वहाँ आये। वहाँ आकर राजगृह नगर मे प्रविष्ट हुए और नगर के त्रिक, चतुष्क, चत्वर एव महापथ आदि मार्गो मे कोडो के प्रहार, छडियो के प्रहार, छिव (कबा) के प्रहार करते करते और उसके ऊपर राख, धूल और कचरा डालते हुए तेज आवाज से घोपित करते हुए इस प्रकार कहने लगे—

३०—'एस ण देवाणुप्पिया ! विजए नाम तक्करे जाव' [1] गिद्धे विव आमिसभक्खी बालघायए,

---

१ द्वि अ सूत्र ९

बालमारए, त नो खलु देवाणुप्पिया ! एयस्स केइ राया वा रायपुत्ते वा रायमच्चे वा अवरज्झइ। एत्थट्ठे अप्पणो सयाइ कम्माइ अवरज्झति' ति कट्टु जेणामेव चारगसाला तेणामेव उवागच्छति। उवागच्छित्ता हडिबधण करेन्ति, करित्ता भत्तपाणनिरोह करेंति, करित्ता तिसझ कसप्पहारे य जाव[1] निवाएमाणा निवाएमाणा विहरंति।

हे देवानुप्रियो ! (लोगो !) यह विजय नामक चोर है। यह गीध के समान मांसभक्षी, बालघातक है, बालक का हत्यारा है। हे देवानुप्रियो ! कोई राजा, राजपुत्र अथवा राजा का अमात्य इसके लिए अपराधी नही है—कोई निष्कारण ही इसे दड नही दे रहा है। इस विषय मे इसका अपना किये कुकर्म ही अपराधी है।' इस प्रकार कहकर जहाँ चारकशाला (कारागार) थी, वहाँ पहुँचे, वहाँ पहुँच कर उसे बेडियो से जकड दिया। भोजन-पानी बद कर दिया। तीनो सध्याकाला मे—प्रात, मध्याह्न और सूर्यास्त के समय, चाबुको, छडियो और कबा आदि के प्रहार करने लगे।

देवदत्त का अन्तिम सस्कार

३१—तए ण से धण्णे सत्यवाहे मित्त-नाइ-नियग-सयण-सबधि परियणेण सद्धि रोयमाणे कंदमाणे जाव (विलवमाणे) देवदिन्नस्स दारगस्स सरीरस्स महया इड्ढीसक्कारसमुदएण नीहरण करेंति। करित्ता बहूइ लोइयाइ मयगकिच्चाइ करेंति, करित्ता केणइ कालतरेण अवगयसोए जाए यावि होत्था।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सबधी और परिवार के साथ रोते रोते, आक्रदन करते-करते, यावत् विलाप करते-करते बालक देवदत्त के शरीर का महान् ऋद्धि सत्कार के समूह के साथ नीहरण किया, अर्थात् अग्नि-सस्कार के लिये श्मशान मे ले गया। अनेक लौकिक मृतकृत्य—मृतक सबधी अनेक लोकाचार किये। तत्पश्चात् कुछ समय व्यतीत हो जाने पर वह उस शोक से रहित हो गया।

धन्य सार्थवाह का निग्रह

३२—तए ण से धण्णे सत्यवाहे अन्नया कयाइ लहुसयसि रायावराहसि सपलत्ते जाए यावि होत्था। तए ण से नगरगुत्तिया धण्ण सत्यवाह गेण्हति, गेण्हित्ता जेणेव चारगे तेणेव उवागच्छति। उवागच्छित्ता चारग अणुपवेसति, अणुपवेसित्ता विजएण तक्करेण सद्धि एगयओ हडिबधण करेंति।

तत्पश्चात् किसी समय धन्य सार्थवाह को चुगलखोरों ने छोटा-सा राजकीय अपराध लगा दिया। तब नगररक्षको ने धन्य सार्थवाह को गिरफ्तार कर लिया। गिरफ्तार करके कारागार में ले गये। ले जाकर कारागार मे प्रवेश कराया और प्रवेश कराके विजय चोर के साथ एक ही बेडी में बांध दिया।

---

1. अ. ३ सूत्र २१

धन्य के घर से भोजन

३३—तए ण सा भद्दा भारिया कल्ल जाव[1] जलते विपुल असण-पाण-खाइम साइम उवक्खडेइ उवक्खडित्ता भोयणपिडय करेइ, करिता भायणाइ पक्खिवइ, पक्खिवित्ता लछियमुद्दिय करेइ। करित्ता एग च सुरभिवारिपडिपुण्ण दगवारय करेइ। करित्ता पथय दासचेड सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'गच्छ ण तुम देवाणुप्पिया! इम विपुल असण-पाण-खाइम-साइम गहाय चारगसालाए धन्नस्स सत्यवाहस्स उवणेहि।'

भद्रा भार्या ने अगले दिन यावत् सूर्य के जाज्वल्यमान होने पर विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन तैयार किया। भोजन तैयार करके भोजन रखने का पिटक (वास की छावडी) ठीक-ठाक किया और उसमे भोजन के पात्र रख दिये। फिर उस पिटक को लाछित और मुद्रित कर दिया, अर्थात् उस पर रेखा आदि के चिह्न वना दिये और मोहर लगा दी। सुगधित जल से परिपूण छोटा-सा घडा तैयार किया। फिर पथक दास चेटक को आवाज दी और कहा—'हे देवानुप्रिय! तू जा। यह विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम लेकर कारागार मे धन्य साथवाह के पास ले जा।'

३४—तए ण से पथए भद्दाए सत्यवाहीए एव वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे त भोयणपिडय त च सुरभि-वरवारिपडिपुण्ण दगवारय गेण्हइ। गेण्हित्ता सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमइ। पडिनिक्खमित्ता रायगिहे नगरे मज्झमज्झेण जेणेव चारगसाला, जेणेव धन्ने सत्यवाहे तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता भोयणपिडय ठावेइ, ठावेत्ता उल्लछइ, उल्लछित्ता भायणाइ गेण्हइ। गेण्हित्ता भायणाइ धोवेइ, धोवित्ता हत्यसोय दलयइ दलइत्ता धण्ण सत्यवाह तेण विपुलेण असण-पाण खाइम-साइमेण परिवेसेइ।

तत्पश्चात् पथक ने भद्रा साथवाही के इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट होकर उस भोजन-पिटक को और उत्तम सुगधित जल से परिपूर्ण घट को ग्रहण किया। ग्रहण करके अपने घर से निकला। निकल कर राजगृह के मध्य मार्ग मे होकर जहाँ कारागार था और जहाँ धन्य साथवाह था, वहा पहुँचा। पहुँच कर भोजन का पिटक रख दिया। उसे लाछन और मुद्रा से रहित किया, अर्थात् उस पर वना हुआ चिह्न हटाया और मोहर हटा दी। फिर भोजन के पात्र लिए, उन्हे धोया और फिर हाथ धोने का पानी दिया। तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह को वह विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन परोसा।

भोजन मे से विभाग

३५—तए ण से विजए तक्करे धण्णं सत्यवाह एव वयासी—'तुम णं देवाणुप्पिया! मम एयाओ विपुलाओ असण पाण खाइम-साइमाओ सविभाग करेहि।'

तए ण से धण्णे सत्यवाहे विजय तक्कर एव वयासी—'अवियाइ अह विजया! एय विपुल असण-पाण-खाइम-साइम कायाणं वा सुणगाण वा वलएज्जा, उक्कुरुडियाए वा ण छड्डेज्जा, नो चेव ण

[1] प्र अ सूत्र २८

तव पुत्तघायगस्स पुत्तमारगस्स अरिस्स वेरियस्स पडिणीयस्स पच्चामित्तस्स एत्तो विपुलाओ असण-पाण-खाइम-साइमाओ संविभागं करेज्जामि।'

उस समय विजय चोर ने धन्य सार्थवाह से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय ! तुम मुझे इस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन में से संविभाग करो—हिस्सा दो।'

तब धन्य सार्थवाह ने उत्तर में विजय चोर से इस प्रकार कहा—'हे विजय ! भले ही मैं यह विपुल अशन पान, खादिम और स्वादिम कागों और कुत्तों को दे दूंगा अथवा उकरड़े में फेंक दूंगा परन्तु तुझ पुत्रघातक, पुत्रहन्ता, शत्रु, वैरी (सानुबंध वैर वाले), प्रतिकूल आचरण करने वाला एवं प्रत्यमित्र—प्रत्येक बातों में विरोधी को इस अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य में से संविभाग नहीं करूँगा।

३६—तए णं धण्णे सत्थवाहे तं विउलं असण-पाण-खाइम-साइमं आहारेई। आहारित्ता तं पंथयं पडिविसज्जेइ। तए णं से पंथए दासचेडे तं भोयणपिडगं गिण्हइ, गिण्हित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

इसके बाद धन्य सार्थवाह ने उस विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का आहार किया। आहार करके पंथक को लौटा दिया—रवाना कर दिया। पंथक दास चेटक ने भोजन का वह पिटक लिया और लेकर जिस ओर से आया था, उसी ओर लौट गया।

३७—तए णं तस्स धण्णस्स सत्थवाहस्स तं विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं आहारियस्स समाणस्स उच्चार-पासवणेणं उव्वाहित्था।

तए णं से धण्णे सत्थवाहे विजयं तक्करं एवं वयासी--एहि ताव विजया ! एगंतमवक्कमामो जेण अहं उच्चारपासवणं परिट्ठवेमि।

तए णं से विजए तक्करे धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी—तुब्भं देवाणुप्पिया ! विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं आहारियस्स अत्थि उच्चारे वा पासवणे वा, ममं णं देवाणुप्पिया ! इमेहिं बहूहिं कसप्पहारेहि य जाव लयापहारेहि य तण्हाए य छुहाए य परब्भवमाणस्स णत्थि केइ उच्चारे वा पासवणे वा, तं छंदेणं तुमं देवाणुप्पिया ! एगंते अवक्कमित्ता उच्चारपासवणं परिट्ठवेहि।

विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन करने के कारण धन्य सार्थवाह को मल-मूत्र की बाधा उत्पन्न हुई।

तब धन्य सार्थवाह ने विजय चोर से कहा—विजय ! चलो, एकान्त में चलें, जिससे मैं मल-मूत्र का त्याग कर सकूँ।

तब विजय चोर ने धन्य सार्थवाह से कहा—देवानुप्रिय ! तुमने विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम का आहार किया है, अतएव तुम्हें मल और मूत्र की बाधा उत्पन्न हुई है। देवानुप्रिय ! मैं तो इन बहुत चाबुकों के प्रहारों से यावत् लता के प्रहारों से तथा प्यास और भूख से पीड़ित हो रहा हूँ। मुझे मल-मूत्र की बाधा नहीं है। देवानुप्रिय ! जाने की इच्छा हो तो तुम्हीं एकान्त में जाकर मल-मूत्र का त्याग करो। (मैं तुम्हारे साथ नहीं चलूँगा)।

३८—तए ण धण्णे सत्थवाहे विजएण तक्करेण एव वुत्ते समाणे तुसिणीए सचिट्ठइ। तए ण से धण्णे सत्थवाहे मुहुत्ततरस्स बलियतराग उच्चारपासवणेण उव्वाहिज्जमाणे विजय तक्कर एव वयासी—एहि ताव विजया! जाव अवक्कमामो।

तए ण से विजए धण्ण सत्थवाह एव वयासी—'जइ ण तुम देवाणुप्पिया! तओ विपुलाओ असण-पाण-खाइम-साइमाओ सविभाग करेहि, ततो ह तुम्हेहि सद्धि एगत अवक्कमामि।'

धन्य साथवाह विजय चोर के इस प्रकार कहने पर मौन रह गया। इसके बाद थोडी दर मे धन्य सार्थवाह उच्चार-प्रस्रवण की अति तीव्र बाधा से पीडित होता हुआ विजय चोर से फिर कहने लगा—विजय, चलो, यावत् एकान्त मे चलें।

तब विजय चोर ने धन्य सार्थवाह से कहा—देवानुप्रिय! यदि तुम उस विपुल अशन, पान खादिम और स्वादिम मे से सविभाग करो अर्थात् मुझे हिस्सा देना स्वीकार करो तो मैं तुम्हारे साथ एकान्त मे चलूँ।

३९—तए ण से धण्णे सत्थवाहे विजय एव वयासी—'अह ण तुब्भ तओ विउलाओ असण पाण खाइम-साइमाओ सविभाग करिस्सामि।'

तए ण से विजए धण्णस्स सत्थवाहस्स एयमट्ठ पडिसुणेइ। तए ण से विजए धण्णेण सद्धि एगते अवक्कमेइ, उच्चारपासवण परिट्ठवेइ, आयते चोक्खे परमसुइभूए तमेव ठाण उवसकमित्ता ण विहरइ।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने विजय से कहा—मैं तुम्हे उस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम मे से सविभाग करूँगा—हिस्सा दूँगा।

तत्पश्चात् विजय ने धन्य साथवाह के इस अर्थ को स्वीकार किया। फिर विजय, धन्य साथवाह के साथ एकान्त मे गया। धन्य साथवाह ने मल-मूत्र का परित्याग किया। फिर जल से स्वच्छ और परम शुचि हुआ। लौटकर अपने उसी स्थान पर आ गया।

४०—तए ण सा भद्दा कल्ल जाव[1] जलते विउल असण-पाण खाइम साइम जाव[2] परिवेसेइ। तए ण से धण्णे सत्थवाहे विजयस्स तक्करस्स तओ विउलाओ असण पाण खाइम-साइमाओ सविभाग करेइ। तए ण से धण्णे सत्थवाहे पथय दासचेड विसज्जेइ।

तत्पश्चात् भद्रा साथवाही ने दूसरे दिन सूर्य के देदीप्यमान होने पर विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तैयार करके (पहले की तरह) पथक के साथ भेजा। यावत् पथक ने धन्य को जिमाया। तब धन्य साथवाह ने विजय चोर को उस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम मे से भाग दिया। तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने पथक दास चेटक को रवाना कर दिया।

भद्रा का कोप

४१—तए ण से पथए भोयणपिडय गहाय चारगाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता रायगिह नगर मज्झमज्झेण जेणेव सए गेहे, जेणेव भद्दा भारिया, तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता भद्द

१ प्र अ सूत्र २८ २ प्र अ सूत्र ३३-३४

सत्यवाहिं एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिए ! धण्णे सत्यवाहे तव पुत्तघायगस्स जाव पच्चामित्तस्स ताओ विउलाओ असण-पाण-खाइम-साइमाओ संविभागं करेइ।

तए णं सा भद्दा सत्थवाही पंथयस्स दासचेडयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा आसुरत्ता रुट्ठा जाव (कुविया) मिसिमिसेमाणा धण्णस्स सत्थवाहस्स पओसमावज्जइ।

पंथक भोजन-पिटक लेकर कारागार से बाहर निकला। निकलकर राजगृह नगर के बीचों-बीच होकर जहाँ अपना घर था और जहाँ भद्रा भार्या थी वहाँ पहुँचा। वहाँ पहुँचकर उसने भद्रा सार्थवाही से कहा—देवानुप्रिये ! धन्य सार्थवाह ने तुम्हारे पुत्र के घातक यावत् [पुत्रहन्ता, शत्रु, वैरी (सानुबन्ध वैर वाले), प्रतिकूल आचरण करने वाले] दुश्मन को उस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम में से हिस्सा दिया है।

तब भद्रा सार्थवाही दास चेटक पंथक के मुख से यह अर्थ सुनकर तत्काल लाल हो गई, रुष्ट हुई [कुपित हुई] यावत् मिसमिसाती हुई धन्य सार्थवाह पर प्रद्वेष करने लगी।

धन्य का छुटकारा

४२—तए णं धण्णे सत्थवाहे अन्नया कयाइ मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणेणं सएण य अत्थसारेणं रायकज्जाओ अप्पाणं मोयावेइ। मोयावित्ता चारगसालाओ पडिनिक्खमइ। पडिनिक्खमित्ता जेणेव अलंकारियसभा तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता अलंकारियकम्मं करेइ। करित्ता जेणेव पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता अहधोयमट्टियं गेण्हइ। गेण्हित्ता पोक्खरिणिं ओगाहेइ। ओगाहित्ता जलमज्जणं करेइ। करित्ता ण्हाए कयबलिकम्मे जाव (कयकोउयमंगल-पायच्छित्ते सव्वालंकारविभूसिए) रायगिहं नगरं अणुपविसइ। अणुपविसित्ता रायगिहस्स नगरस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गिहे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह को किसी समय मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी और परिवार के लोगों ने अपने (धन्य सार्थवाह के) सारभूत अर्थ से—जुर्माना चुका करके राजदण्ड से मुक्त कराया। मुक्त होकर वह कारागार से बाहर निकला। निकल कर जहाँ आलंकारिक सभा (हजामत बनवाना, नाखून कटवाना आदि शरीर-शृंगार करने की नाई की दुकान) थी, वहाँ पहुँचा। पहुँच कर आलंकारिक-कर्म किया। फिर जहाँ पुष्करिणी थी, वहाँ गया। जाकर नीचे की धोने की मिट्टी ली और पुष्करिणी में अवगाहन किया, जल में मज्जन किया, स्नान किया, बलिकर्म किया, यावत् [कौतुक, मंगल, प्रायश्चित्त किया] फिर राजगृह में प्रवेश किया। राजगृह नगर के मध्य में होकर जहाँ अपना घर था वहाँ जाने के लिए रवाना हुआ।

धन्य का सत्कार

४३—तए णं धण्णं सत्थवाहं एज्जमाणं पासित्ता रायगिहे नगरे बहवे नियग-सेट्ठि-सत्थवाह-पभइओ आढंति, [illegible] सक्कारेंति, सम्माणेंति, अब्भुट्ठेंति, सरीरकुसलं पुच्छंति।

तए ण से धण्णे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता जावि य से तत्थ बाहिरिया परिसा भवइ, तजहा—दासाइ वा, पेस्साइ वा, भियगाइ वा भाइल्लगाइ वा, से वि य ण धण्ण सत्थवाह एज्जत पासइ, पासित्ता पायवडियाए खेमकुसल पुच्छति।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह को आता देखकर राजगृह नगर के बहुत-से आत्मीय जनो, श्रेष्ठी जनो तथा सार्थवाह आदि ने उसका आदर किया, सन्मान से बुलाया, वस्त्र आदि से सत्कार किया नमस्कार आदि करके सम्मान किया, खडे होकर मान किया और शरीर की कुशल पूछी।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह अपने घर पहुचा। वहाँ जो बाहर की सभा थी, जैसे—दास (दासीपुत्र), प्रेष्य (काम-काज के लिए बाहर भेजे जाने वाले नौकर), भृतक (जिनका बाल्यावस्था से पालन-पोषण किया हो) और व्यापार के हिस्सेदार, उन्होने भी धन्य सार्थवाह को आता देखा। देख कर परो मे गिर कर क्षेम, कुशल की पृच्छा की।

४४—जावि य से तत्थ अब्भत्तरिया परिसा भवइ, तजहा—मायाइ वा, पियाइ वा, भायाइ वा, भगिणीइ वा, सावि य ण धण्ण सत्थवाह एज्जमाण पासइ, पासित्ता आसणाओ अब्भुट्ठेइ। अब्भुट्ठेत्ता कठाकठिय अवयासिय बाहप्पमोक्खण करेइ।

वहा जो आभ्यन्तर सभा थी, जैसे कि माता, पिता, भाई, बहिन आदि, उन्होने भी धन्य सार्थवाह को आता देखा। देखकर वे आसन से उठ खडे हुए, उठकर गले से गला मिलाकर उन्होने हर्ष के आसू बहाये।

भद्रा के कोप का उपशमन

४५—तए ण से धण्ण सत्थवाहे जेणेव भद्दा भारिया तेणेव उवागच्छइ। तए ण सा भद्दा सत्थवाही धण्ण सत्थवाह एज्जमाण पासइ, पासित्ता णो आढाइ, नो परियाणाइ, अणाढायमाणी अपरिजाणमाणी तुसिणीया परम्मुही सचिट्ठइ।

तए ण से धण्णे सत्थवाहे भद्द भारिय एव वयासी—कि ण तुब्भ देवाणुप्पिए, न तुट्ठी वा, न हरिसे वा, नाणदे वा? ज मए सएण अत्थसारेण रायकज्जाओ अप्पाण विमोइए।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह भद्रा भार्या के पास गया। भद्रा सार्थवाह ने धन्य सार्थवाह को अपनी ओर आता देखा। देखकर न उसने आदर किया, न मानो जाना। न आदर करती हुई और न जानती हुई वह मौन रह कर और पीठ फेर कर (विमुख होकर) बैठी रही।

तब धन्य सार्थवाह ने अपनी पत्नी भद्रा से इस प्रकार कहा—देवानुप्रिये! मेरे आने से तुम्हे सन्तोष क्यो नही है? हर्ष क्यो नही है? आनन्द क्यो नही है? मैंने अपने सारभूत अर्थ से राजकार्य (राजदड) से अपने आपको छुडाया है।

४६—तए ण भद्दा धण्ण सत्थवाह एव वयासी—'कह ण देवाणुप्पिया! मम तुट्ठी वा जाव (हरिसे वा) आणदे वा भविस्सइ, जेण तुम मम पुत्तघायगस्स जाव पच्चामित्तस्स तओ विपुलाओ असण पाण-खाइम साइमाओ सविभाग करेसि?

तब भद्रा ने धन्य सार्थवाह से इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय! मुझे क्यो सन्तोष, हर्ष और

सत्थवाहिं एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिए! धण्णे सत्थवाहे तव पुत्तघायगस्स जाव[1] पच्चामित्तस्स ताओ विउलाओ असण-पाण खाइम-साइमाओ संविभागं करेइ।

तए णं सा भद्दा सत्थवाही पंथयस्स दासचेडयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा आसुरुत्ता रुट्ठा जाव (कुविया) मिसिमिसेमाणा धण्णस्स सत्थवाहस्स पओसमावज्जइ।

पंथक भोजन-पिटक लेकर कारागार से बाहर निकला। निकलकर राजगृह नगर के बीचों-बीच होकर जहाँ अपना घर था और जहाँ भद्रा भार्या थी वहाँ पहुँचा। वहाँ पहुँचकर उसने भद्रा सार्थवाही से कहा—देवानुप्रिये! धन्य सार्थवाह ने तुम्हारे पुत्र के घातक यावत् [पुत्रहन्ता, शत्रु, वैरी (सानुबन्ध वैर वाले), प्रतिकूल आचरण करने वाले] दुश्मन को उस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम में से हिस्सा दिया है।

तब भद्रा सार्थवाही दास चेटक पंथक के मुख से यह अर्थ सुनकर तत्काल लाल हो गई, रुष्ट हुई [कुपित हुई] यावत् मिसमिसाती हुई धन्य सार्थवाह पर प्रद्वेष करने लगी।

धन्य का छुटकारा

४२—तए णं धण्णे सत्थवाहे अन्नया कयाइं मित्त-नाइ नियग सयण-संबंधि परिजणेणं सएण य अत्थसारेणं रायकज्जाओ अप्पाणं मोयावेइ। मोयावित्ता चारगसालाओ पडिनिक्खमइ। पडिनिक्खमित्ता जेणेव अलंकारियसभा तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता अलंकारियकम्मं करेइ। करित्ता जेणेव पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता अहधोयमट्टियं गेण्हइ। गेण्हित्ता पोक्खरिणिं ओगाहेइ। ओगाहित्ता जलमज्जणं करेइ। करित्ता ण्हाए कयबलिकम्मे जाव (कयकोउयमंगल पायच्छित्ते सव्वालंकारविभूसिए) रायगिहं नगरं अणुपविसइ। अणुपविसित्ता रायगिहस्स नगरस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गिहे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह को किसी समय मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी और परिवार के लोगों ने अपने (धन्य सार्थवाह के) सारभूत अर्थ से—जुर्माना चुका करके राजदण्ड से मुक्त कराया। मुक्त होकर वह कारागार से बाहर निकला। निकल कर जहाँ आलंकारिक सभा (हजामत बनवाना, नाखून कटवाना आदि शरीर-शृंगार करने की नाई की दुकान) थी, वहाँ पहुँचा। पहुँच कर आलंकारिक-कर्म किया। फिर जहाँ पुष्करिणी थी, वहाँ गया। जाकर नीचे की धोने की मिट्टी ली और पुष्करिणी में अवगाहन किया, जल से मज्जन किया, स्नान किया, बलिकर्म किया, यावत् [कौतुक, मंगल, प्रायश्चित किया] फिर राजगृह में प्रवेश किया। राजगृह नगर के मध्य में होकर जहाँ अपना घर था वहाँ जाने के लिए रवाना हुआ।

धन्य का सत्कार

४३—तए णं धण्णं सत्थवाहं एज्जमाणं पासित्ता रायगिहे नगरे बहवे नियग-सेट्ठि-सत्थवाह पभइओ आढंति, परिजाणंति, सक्कारेंति, सम्माणेंति, अब्भुट्ठेंति, सरीरकुसलं पुच्छंति।

---

१ द्वि. अ. सूत्र ३५

तए ण से धण्णे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ । उवागच्छित्ता जावि य से तत्थ बाहिरिया परिसा भवइ, तजहा—दासाइ वा, पेस्साइ वा, भियगाइ वा भाइल्लगाइ वा, से वि य ण धण्ण सत्थवाह एज्जत पासइ, पासित्ता पायवडियाए खेमकुसल पुच्छति ।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह को आता देखकर राजगृह नगर के बहुत-से आत्मीय जनो, श्रेष्ठी जनो तथा सार्थवाह आदि ने उसका आदर किया, सन्मान से बुलाया, वस्त्र आदि से सत्कार किया नमस्कार आदि करके सन्मान किया, खडे होकर मान किया और शरीर की कुशल पूछी ।

तत्पश्चात् धन्य साथवाह अपने घर पहुचा । वहा जो बाहर की सभा थी, जैसे—दास (दासीपुत्र), प्रेष्य (काम-काज के लिए बाहर भेजे जाने वाले नौकर), भृतक (जिनका बाल्यावस्था से पालन-पोषण किया हो) और व्यापार के हिस्सेदार, उन्होने भी धन्य साथवाह को आता देखा । देख कर पैरो मे गिर कर क्षेम, कुशल की पृच्छा की ।

४४—जावि य से तत्थ अब्भत्तरिया परिसा भवइ, तजहा—मायाइ वा, पियाइ वा, भायाइ वा, भगिणीइ वा, सावि य ण धण्ण सत्थवाह एज्जमाण पासइ, पासित्ता आसणाओ अब्भुट्ठेइ । अब्भुट्ठेत्ता कठाकठिय अवयासिय बाहप्पमोक्खण करेइ ।

वहा जो आभ्यन्तर सभा थी, जैसे कि माता, पिता, भाई, बहिन आदि, उन्होने भी धन्य सार्थवाह को आता देखा । देखकर वे आसन से उठ खडे हुए, उठकर गले से गला मिलाकर उन्होने हर्ष के आँसू बहाये ।

भद्रा के कोप का उपशमन

४५—तए ण से धण्ण सत्थवाहे जेणेव भद्दा भारिया तेणेव उवागच्छइ । तए ण सा भद्दा सत्थवाही धण्ण सत्थवाह एज्जमाण पासइ, पासित्ता णो आढाइ, नो परियाणाइ, अणाढायमाणी अपरिजाणमाणी तुसिणीया परम्मुही सचिट्ठइ ।

तए ण से धण्णे सत्थवाहे भद्द भारिय एव वयासी—किं ण तुब्भ देवाणुप्पिए, न तुट्ठी वा, न हरिसे वा, नाणदे वा ? ज मए सएण अत्थसारेण रायकज्जाओ अप्पाण विमोइए ।

तत्पश्चात् धन्य साथवाह भद्रा भार्या के पास गया । भद्रा सार्थवाह ने धन्य साथवाह को अपनी ओर आता देखा । देखकर न उसने आदर किया, न मानो जाना । न आदर करती हुई और न जानती हुई वह मौन रह कर और पीठ फेर कर (विमुख होकर) बैठी रही ।

तब धन्य साथवाह ने अपनी पत्नी भद्रा से इस प्रकार कहा—देवानुप्रिये ! मेरे आने से तुम्हे सन्तोष क्यो नही है ? हर्ष क्यो नही है ? आनन्द क्यो नही है ? मैने अपने सारभूत अर्थ से राजकार्य (राजदड) से अपने आपको छुडाया है ।

४६—तए ण भद्दा धण्ण सत्थवाह एव वयासी—'कह ण देवाणुप्पिया ! मम तुट्ठी वा जाव (हरिसे वा) आणदे वा भविस्सइ, जेण तुम मम पुत्तघायगस्स जाव पच्चामित्तस्स तओ विपुलाओ असण-पाण खाइम साइमाओ सविभाग करेसि ?

तब भद्रा ने धन्य सार्थवाह से इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय ! मुझे क्यो सन्तोष, हर्ष और

तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता वदइ, नमसइ। तए ण थेरा धण्णस्स विचित्त धम्ममाइक्खति।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह को बहुत लोगो से यह अर्थ (वृत्तान्त) सुनकर और समझकर ऐसा अध्यवसाय, अभिलाप, चिन्तन एव मानसिक सकल्प उत्पन्न हुआ—'उत्तम जाति से सम्पन्न स्थविर भगवान् यहाँ आये है, यहाँ प्राप्त हुए है—आ पहुँचे हैं।। तो मैं जाऊँ, स्थविर भगवान् को वन्दन करूँ, नमस्कार करूँ।'

इस प्रकार विचार करके धन्य ने स्नान किया, (बलिकर्म किया, कौतुक मगल प्रायश्चित्त किया) यावत् शुद्ध—साफ तथा सभा में प्रवेश करने योग्य उत्तम मागलिक वस्त्र धारण किये। फिर पैदल चल कर जहाँ गुणशील चैत्य था और जहाँ स्थविर भगवान् थे, वहाँ पहुँचा। पहुँच कर उन्हे वन्दना की, नमस्कार किया। तत्पश्चात् स्थविर भगवान् ने धन्य सार्थवाह को विचित्र धर्म का उपदेश दिया, अर्थात् ऐसे धर्म का उपदेश दिया जो जिनशासन के सिवाय अन्यत्र सुलभ नही है।

धन्य की प्रव्रज्या और स्वर्गप्राप्ति

५२—तए ण से धण्णे सत्थवाहे धम्म सोच्चा एव वयासी—सद्दहामि ण भते! निग्गथ पावयण। (पत्तियामि ण भते! निग्गथ पावयण। रोएमि ण भते! निग्गथ पावयण। अब्भुट्ठेमि ण भते! निग्गथ पावयण। एवमेय भते! तहमेय भते! अवितहमेय भते। इच्छियमेय भते! पडिच्छियमेय भते! इच्छिय-पडिच्छियमेय भते! से जहेय तुब्भे वयहत्ति कट्टु थेरे भगवते वदइ नमसइ वदित्ता नमसित्ता) जाव पव्वइए। जाव बहूणि वासाणि सामण्ण-परियाग पाउणित्ता, भत्त पच्चक्खाइत्ता मासियाए सलेहणाए सट्ठि भत्ताइ अणसणाए छेदेइ छेदित्ता कालमासे काल किच्चा सोहम्मे कप्पे देवत्ताए उववन्ने।

तत्थ ण अत्थेगइयाण देवाण चत्तारि पलिओवमाइ ठिई पन्नत्ता। तत्थ ण धण्णस्स वि देवस्स चत्तारि पलिओवमाइ ठिई पन्नत्ता।

से ण धण्णे देवे ताओ देवलोयाओ आउक्खएण ठिइक्खएणं भवक्खएण अणतर चय चइत्ता महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ जाव[1] सव्वदुक्खाणमत करिहिइ।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने धर्मोपदेश सुनकर इस प्रकार कहा—'हे भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ।

[भगवान्! मैं निर्ग्रन्थप्रवचन पर प्रतीति करता हू।

भगवन्! मैं निर्ग्रन्थप्रवचन पर रुचि करता हू।

भगवन्! मैं निर्ग्रन्थप्रवचन का अनुसरण करने के लिए उद्यत होता हू।

भगवन्! निर्ग्रन्थ प्रवचन ऐसा ही है, भगवन्! यह सत्य है, भगवन्! यह अतथ्य नहीं है। भगवन्! यह मुझे इष्ट है, भगवन्! यह मुझे पुन पुन इष्ट है, यह मुझे इष्ट और पुन पुन इष्ट है। भगवन्! निर्ग्रन्थप्रवचन ऐसा ही है जैसा आप कहते हैं।' इस प्रकार कह कर धन्य सार्थवाह ने स्थविर भगवन्तो को वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन नमस्कार करके] यावत् वह प्रव्रजित हो गया। यावत् बहुत वर्षों तक श्रामण्य-पर्याय पाल कर, आहार का प्रत्याख्यान करके एक मास की सलेखना

[1] प्र अ २१७

करके, अनशन से साठ भक्तो को त्याग कर, कालमास मे काल करके सौधर्म देवलोक मे देव के रूप मे उत्पन हुआ।

सौधर्म देवलोक मे किन्ही-किन्ही देवो की चार पल्योपम की स्थिति कही है। धन्य नामक देव की भी चार पल्योपम की स्थिति (आयुष्यमर्यादा) कही है।

वह धन्य नामक देव आयु के दलिको का क्षय करके, आयुकर्म की स्थिति का क्षय करके तथा भव (देवभव के कारणभूत गति आदि कर्मों) का क्षय करके, देह का त्याग करके अनन्तर ही अर्थात् बीच मे अन्य कोई भव किये विना ही महाविदेह क्षेत्र मे (मनुष्य होकर) सिद्धि प्राप्त करेगा यावत् सर्व दुखो का अन्त करेगा।

उपसहार

५३—जहा ण जबू! धण्णेण सत्थवाहेण नो धम्मो त्ति वा जाव[1] विजयस्स तक्करस्स तओ विपुलाओ असण-पाण खाइम-साइमाओ सविभागे कए नन्नत्थ सरीरसारक्खणट्ठाए, एवामेव जबू! जे ण अम्ह निग्गथे वा निग्गथी वा जाव पव्वईए समाणे ववगयण्हाणुम्मद्दण-पुप्फ गध-मल्लालकार-विभूसे इमस्स ओरालियसरीरस्स नो वण्णहेउ वा, रूवहेउ वा, विसयहेउ वा असण पाण-खाइम-साइम आहारमाहारेइ, नन्नत्थ णाण-दसण चरित्ताण वहणयाए। से ण इह लोए चेव बहूण समणाण समणीण सावगाण य साविगाण य अच्चणिज्जे जाव (वदणिज्जे नमसणिज्जे पूयणिज्जे सक्कारणिज्जे सम्माणणिज्जे कल्लाण मगल देवय चेइय विणएण) पज्जुवासणिज्जे भवइ। परलोए वि य ण नो बहूणि हत्थच्छेयणाणि य कन्नच्छेयणाणि य नासाछेयणाणि य एव हिययउप्पाडणाणि य वसणुप्पाडणाणि य उल्लबणाणि य पाविहिइ। अणाईय च ण अणवदग्ग दीह जाव (अद्ध चाउरत ससारकतार) वीइवइस्सइ, जहा से धण्णे सत्थवाहे।

श्री सुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी से कहा—हे जम्बू! जैसे धन्य सार्थवाह ने 'धम है' ऐसा समझ कर या तप, प्रत्युपकार, मित्र आदि मान कर विजय चोर को उस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम में से सविभाग नही किया था, सिवाय शरीर की रक्षा करने के, अर्थात् धन्य सार्थवाह ने केवल शरीररक्षा के लिए ही विजय को अपने आहार मे हिस्सा दिया था, धम या उपकार आदि समझ कर नही। इसी प्रकार हे जम्बू! हमारा जो साधु या साध्वी यावत् प्रव्रजित होकर स्नान, उपामर्दन, पुष्प, गध, माला, अलकार आदि शृ गार का त्याग करके अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार करता है, सो इस औदारिक शरीर के वण के लिए, रूप के लिए या विषय-सुख के लिए नही करता। ज्ञान, दर्शन और चारित्र को वहन करने के सिवाय उसका अन्य कोई प्रयोजन नही होता। वह साधुओ साध्वियो श्रावको और श्राविकाओ द्वारा इस लोक मे अर्चनीय [वन्दनीय, नमस्करणीय, पूजनीय, सत्करणीय, और सन्माननीय होता है। उसे भव्यजन कल्याणमय, मगलमय, देवस्वरूप और चैत्यस्वरूप मानकर वन्दन करते हैं] वह सर्व प्रकार से उपासनीय होता है। परलोक मे भी वह हस्तछेदन (हाथो का काटा जाना), कणछेदन और नासिकाछेदन को तथा इसी प्रकार हृदय के उत्पाटन (उखाडना) एव वृषणो (अडकोषो) के उत्पाटन और उद्बन्धन (ऊँचा बाध कर

१ द्वि अ ४७

लटकाना—फाँसी) आदि कष्टो को प्राप्त नही करेगा। वह अनादि अनन्त दीर्घमार्ग वाले ससार रूपी अटवी को पार करेगा, जैसे धन्य सार्थवाह ने किया।

५४ एव खलु जबू! समणेण जाव दोच्चस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि।

इस प्रकार हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर ने द्वितीय ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है।

विवेचन—व्याख्याकारो ने इस अध्ययन के दृष्टान्त की योजना इस प्रकार की है—उदाहरण मे जो राजगृह नगर कहा है, उसके स्थान पर मनुष्य क्षेत्र समझना चाहिए। धन्य सार्थवाह साधु का प्रतीक है, विजय चोर के समान साधु का शरीर है। पुन देवदत्त के स्थान पर अनन्त अनुपम आनन्द का कारणभूत सयम समझना चाहिए। जैसे पथक के प्रमाद से देवदत्त का घात हुआ, उसी प्रकार शरीर की प्रमादरूप अशुभ प्रवृत्ति से सयम का घात होता है। देवदत्त के आभूषणो के स्थान पर इन्द्रिय-विषय समझना चाहिए। इन विषयो के प्रलोभन मे पडा हुआ मनुष्य सयम का घात कर डालता है। हडिबधन के समान जीव और शरीर का अभिन्न रूप से रहना समझना चाहिए। राजा के स्थान पर कर्मफल समझना चाहिए। कर्म की प्रकृतियाँ राजपुरुषो के समान हैं। अल्प अपराध के स्थान पर मनुष्यायु के बध के हेतु समझने चाहिए। उच्चार-प्रस्रवण की जगह प्रत्युपेक्षण आदि क्रियाएँ समझना चाहिए अर्थात् जैसे आहार न देने से विजय चोर उच्चार प्रस्रवण के लिए प्रवृत्त नही हुआ उसी प्रकार यह शरीर आहार के बिना प्रत्युपेक्षण आदि क्रियाओं मे प्रवृत्त नही होता। पथक के स्थान पर मुग्ध साधु समझना चाहिए। भद्रा सार्थवाही को आचार्य के स्थान पर जानना चाहिए। किसी मुग्ध (भोले) साधु के मुख से जब आचार्य किसी साधु का अशनादि से शरीर का पोषण करना सुनते हैं, तब वह साधु को उपालभ देते हैं। जब वह साधु बतलाता है कि मैंने विषयभोग आदि के लिए शरीर का पोषण नही किया, परन्तु ज्ञान दर्शन चारित्र की आराधना के लिए शरीर को आहार दिया है, तब गुरु को सतोष हो जाता है। कहा भी है—

सिवसाहणेसु आहार-विरहिओ ज वट्टए देहो।
तम्हा धण्णो व्व विजय, साहू त तेण पोसेज्जा॥

अर्थात्—निराहार शरीर मोक्ष के कारणो—प्रतिलेखन आदि क्रियाओ मे प्रवृत्त नही होता, अतएव जिस भाव से धन्य सार्थवाह ने विजय चोर का पोषण किया, उसी भावना से साधु शरीर का पोषण करे।

॥ द्वितीय अध्ययन समाप्त ॥

तृतीय अध्ययन : अंडक

सार सक्षेप

तृतीय अध्ययन का मुख्य स्वर है—जिन-प्रवचन मे शका, काक्षा या विचिकित्सा न करना। 'तमेव सच्च णीसक ज जिणेहि पवेइय' अर्थात् वीतराग और सवज्ञ ने जो तत्त्व प्रतिपादित किया है, वही सत्य है, उसमे शका के लिए कोई अवकाश नही है। कपाय या अज्ञान के कारण ही असत्य बोला जाता है, जिसमे ये दोनो दोप नही उसके वचन असत्य हो ही नही सकते।

इस प्रकार की सुदृढ श्रद्धा के साथ मुक्ति साधना के पथ पर अग्रसर होने वाला साधक ही अपनी साधना मे पूण सफलता प्राप्त कर सकता है। उसकी श्रद्धा उसे अपूर्व शक्ति प्रदान करती है और उस श्रद्धा के बल पर वह सब प्रकार की विघ्न-बाधाओ पर विजय प्राप्त करता हुआ अपने अभीष्ट लक्ष्य की ओर आगे बढता जाता है। यही कारण है कि सम्यग्दशन का प्रथम अग या लक्षण 'निश्शकितता' कहा गया है।

इसके विपरीत जिसके अन्त करण मे अपने लक्ष्य अथवा लक्ष्यप्राप्ति के साधनो मे दृढ विश्वास नही होता, जिसका चित्त डावाडोल होता है, जिसकी मनोवृत्ति ढुलमुल होती है, प्रथम तो उसमे आन्तरिक बल उत्पन्न ही नही होता और यदि वह हो तो भी वह उसका पूरी तरह उपयोग नही कर सकता। इस प्रकार अधूरे बल और अधूरे मनोयोग से कार्य की पूण सिद्धि नही हो सकती लौकिक काय हो अथवा लोकोत्तर, सवत्र पूर्ण श्रद्धा, समग्र उत्साह और परिपूण मनोयोग को उसमे लगा देना आवश्यक है। सम्पूण सफलता प्राप्ति की यह अनिवाय शर्त है।

प्रस्तुत तृतीय अध्ययन मे यही तथ्य उदाहरण द्वारा और फिर उपसहार द्वारा साक्षात् रूप से प्रस्तुत किया गया है। दो पात्रो के द्वारा श्रद्धा का सुफल और अश्रद्धा का दुष्परिणाम दिखलाया गया है। सक्षिप्त कथानक इस प्रकार है—

चम्पा नगरी मे दो सार्थवाह-पुत्र रहते थे। जिनदत्तपुत्र और सागरदत्तपुत्र, इन्ही सज्ञाओ से उनका उल्लेख किया गया है, उनके स्वय के नामो का कोई उल्लेख नही है। दोनो अभिन्नहृदय मित्र थे। प्राय साथ ही रहते थे। विदेशयात्रा हो या दीक्षाग्रहण, सभी प्रसगो मे साथ रहने का उन्होंने सकल्प किया था। किन्तु चितवृत्ति दोनो की एक दूसरे से विपरीत थी।

एक बार दोनो साथी देवदत्ता गणिका को साथ लेकर चम्पा नगरी के सुभूमिभाग उद्यान मे गए। वहाँ स्नान करके, भोजन-पानी से निवृत्त होकर, सगीत-नृत्य आदि द्वारा मनोरजन, आमोद-प्रमोद करके उद्यान मे परिभ्रमण करने लगे। उद्यान से लगा हुआ सघन झाडियो वाला एक प्रदेश—मालुकाकच्छ वहाँ था। वे मालुकाकच्छ की ओर गए ही थे कि एक मयूरी घबराहट और बेचैनी के साथ ऊपर उडी और निकट के एक वृक्ष की शाखा पर बैठ कर केका-रव करने लगी। यह दृश्य देखकर साथवाहपुत्रो को सन्देह हुआ। वे आगे बढे तो उन्हे दो अडे दिखाई दिए।

सार्थवाहपुत्रो ने दोनो अडे उठा लिये और अपने घर ले गए—दोनो ने एक-एक बाट लिया।

सागरदत्त का पुत्र शकाशील था। उसने उस अडे को ले जाकर अपने घर के पहले के अडो के साथ रख दिया जिससे उसकी मयूरियाँ अपने अडो के साथ उसका भी पोषण करती रहें। इससे प्रतीत होता है कि प्राचीन काल मे घरो मे भी मोर पाले जाते थे।

शकाशीलता के कारण सागरदत्तपुत्र से रहा नही गया। वह उस अडे के पास गया और विचार करने लगा—कौन जाने यह अडा निपजेगा अथवा नही ? इस प्रकार शका, काक्षा और विचिकित्सा से ग्रस्त होकर उसने अडे को उलटा, पलटा, उलटफेर कर कानो के पास ले गया, उसे बजाया। बारबार ऐसा करने से अडा निर्जीव हो गया। उसमें से बच्चा नही निकला।

इसके विपरीत जिनदत्तपुत्र श्रद्धासम्पन्न था। उसने विश्वास रखा। वह अडा मयूर-पालकों को सौंप दिया। यथासमय बच्चा हुआ। उसे नाचना सिखलाया गया। अनेक सुन्दर कलाए सिखलाई गईं। जिनदत्तपुत्र यह देखकर अत्यन्त हर्षित हुआ। नगर भर मे उस मयूर-पोत की प्रसिद्धि हो गई। जिनदत्तपुत्र उसकी बदौलत हजारों-लाखो की बाजियाँ जीतने लगा।

यह है अश्रद्धा और श्रद्धा का परिणाम। जो साधक श्रद्धावान् रहकर साधना मे प्रवृत्त होता है, उसे इस भव मे मान-सन्मान की और परभव मे मुक्ति की प्राप्ति होती है। इसके विपरीत अश्रद्धालु साधक इस भव मे निन्दा-गर्हा का तथा परभवो में अनेक प्रकार के सकटो, दु खो, पीडाओ और व्यथाओ का पात्र बनता है।



तच्चं अज्झयणं : अंडे

जम्बू स्वामी का प्रश्न

१—जइ ण भंते ! समणेण भगवया महावीरेण दोच्चस्स अज्झयणस्स णायाधम्मकहाण अयमट्ठे पन्नत्ते, तइअस्स अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

श्री जम्बू स्वामी अपने गुरुदेव श्री सुधर्मा स्वामी ने प्रश्न करते हैं—भगवन् ! यदि श्रमण भगवान महावीर ने ज्ञाताधमकथा के द्वितीय अध्ययन का यह (पूर्वोक्त) अथ फर्माया है तो तीसरे अध्ययन का क्या अथ फर्माया है ?

सुधर्मा स्वामी का उत्तर

२—एव खलु जम्बू ! तेण कालेण तेण समएण चपा नाम नयरी होत्या, वन्नओ[1]। तीसे ण चपाए नयरीए वहिया उत्तरपुच्छिमे दिसीभाए सुभूमिभाए नाम उज्जाणे होत्था। सव्वोउय पुप्फ फलसमिद्धे सुरम्मे नदणवणे इव सुह सुरभि-सीयल च्छायाए समणुबद्धे।

श्री सुधर्मा उत्तर देते हैं—हे जम्बू ! उस काल और उस समय मे चम्पा नामक नगरी थी। उसका वर्णन औपपातिक सूत्र के अनुसार समझना चाहिए। उस चम्पा नगरी से बाहर उत्तरपूर्व दिशा—ईशान कोण मे सुभूमिभाग नामक एक उद्यान था। वह सभी ऋतुओ के फूलो-फलो से सम्पन्न रहता था और रमणीय था। नन्दन-वन के समान शुभ था या सुखकारक था तथा सुगधयुक्त और शीतल छाया से व्याप्त था।

मयूरी के अडे

३—तस्स ण सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स उत्तरओ एगदेसम्मि मालुयाकच्छए होत्था, वण्णओ[2]। तत्थ ण एगा वणमऊरी दो पुट्ठे परियागए पिट्टुडी पडुरे निव्वणे निरुवहए भिन्नमुट्ठिप्पमाणे मऊरीअडए पसवइ। पसवित्ता सएण पक्खवाएण सारक्खमाणी सगोवेमाणी सविट्ठेमाणी विहरइ।

उस सुभूमिभाग उद्यान के उत्तर मे, एक प्रदेश मे, एक मालुकाकच्छ था, अर्थात् मालुका नामक वृक्षो का वनखण्ड था। उसका वणन पूववत्[3] कहना चाहिए। उस मालुकाकच्छ मे एक श्रेष्ठ मयूरी ने पुष्ट, पर्यायागत—अनुक्रम से प्रसवकाल को प्राप्त, चावलो के पिंड के समान श्वेत वण वाले, व्रण अर्थात् छिद्र या घाव से रहित, वायु आदि के उपद्रव से रहित तथा पोली मुट्ठी के बराबर, दो मयूरी के अडो का प्रसव किया। प्रसव करके वह अपने पाखो की वायु से उनकी रक्षा करती, उनका सगोपन-सारसभाल करती और सवेष्टन—पोषण करती हुई रहती थी।

४—तत्थ ण चपाए नयरीए दुवे सत्थवाहदारगा परिवसति, तजहा—जिणदत्तपुत्ते य सागरदत्तपुत्ते य सहजायया सहवड्ढियया सहपसुकीलियया सहदारदरिसी अन्नमन्नमणुरत्तया अन्नमन्नमणु

---

१ औप सूत्र १   २ द्वि अ सूत्र ५   ३ द्वितीय अध्य सूत्र ५

व्वयया अन्नमण्णच्छदाणुवत्तया अन्नमन्नहियइच्छियकारया अन्नमन्नेसु गिहेसु किच्चाइ करणिज्जाइ पच्चणुभवमाणा विहरंति।

उस चम्पानगरी मे दो सार्थवाह-पुत्र निवास करते थे। वे इस प्रकार थे—जिनदत्त का पुत्र और सागरदत्त का पुत्र। दोनो साथ ही जन्मे थे, साथ ही बडे हुए थे, साथ ही धूल मे खेले थे, साथ ही दारदर्शी—विवाहित हुए थे अथवा एक साथ रहते हुए एक-दूसरे के द्वार को देखने वाले थे—साथ साथ घर मे प्रवेश करते थे। दोनो का परस्पर अनुराग था। एक, दूसरे का अनुसरण करता था, एक, दूसरे की इच्छा के अनुसार चलता था। दोनो एक दूसरे के हृदय का इच्छित कार्य करते थे और एक दूसरे के घरो मे कृत्य—नित्यकृत्य और करणीय—नैमित्तिक कार्य—कभी-कभी करने योग्य कृत्य करते हुए रहते थे।

मित्रो की प्रतिज्ञा

५—तए ण तेसिं सत्थवाहदारगाण अन्नया कयाइ एगयओ सहियाण समुवागयाण सन्निसन्नाण सन्निविट्ठाण इमेयारूवे मिहोकहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था—'जण्ण देवाणुप्पिया! अम्ह सुह वा दुक्ख वा *पव्वज्जा वा विदेसगमण वा समुप्पज्जइ, तण्ण अम्हेहिं एगयओ समेच्चा णित्थरियव्व।'* ति कट्टु अन्नमन्नमेयारूव सगार पडिसुणेन्ति। पडिसुणेत्ता सकम्मसपउत्ता जाया यावि होत्था।

तत्पश्चात् वे सार्थवाहपुत्र किसी समय इकट्ठे हुए, एक के घर मे आये और एक साथ बैठे थे, उस समय उनमे आपस मे इस प्रकार वार्तालाप हुआ—'हे देवानुप्रिय! जो भी हमे सुख, दु ख, प्रव्रज्या अथवा विदेश-गमन प्राप्त हो, उस सब का हमे एक दूसरे के साथ ही निर्वाह करना चाहिए।' इस प्रकार कह कर दोनो ने आपस मे इस प्रकार की प्रतिज्ञा अगीकार की। प्रतिज्ञा अगीकार करके अपने-अपने कार्य मे लग गये।

गणिका देवदत्ता

६—*तत्थ ण चपाए नयरीए देवदत्ता नाम गणिया परिवसइ,* अड्ढा जाव परिभूया उवित्ता वित्थिन्न-विउल-भवण-सयणासण-जाण-वाहणा बहुधण-जायरूव-रयया आओग पओगसपउत्ताविच्छड्डियपउर-भत्तपाणा चउसट्ठिकलापडिया चउसट्ठिगणियागुणोववेया अउणत्तीस विसेसे रममाणी एक्कवीस-रइगुणप्पहाणा बत्तीसपुरिसोवयार-कुसला णवगसुत्तपडिबोहिया अट्ठारस देसीभासाविसारया सिंगारागारचारुवेसा सगय-गय-हसिय-भणिय-विहियविलास-ललियसलाव-निउणजुत्तोवयारकुसला ऊसियज्झया सहस्सलभा विइन्नछत्त चामर-बालवियणिया कन्नीरहप्पयाया यावि होत्था, बहूण गणिया सहस्साण आहेवच्च जाव (पोरेवच्च सामित्त भट्टित्त महत्तरगत्त आणा ईसर-सेणावच्च कारेमाणी पालेमाणी महयाऽऽहय नट्ट-गीय-वाइय-तती-तल-तालघण-मुइग पडुप्पवाइयरवेण विउलाइ भोगभोगाइ भु जमाणी) विहरइ।

उस चम्पानगरी मे देवदत्ता नामक गणिका निवास करती थी। वह समृद्ध थी, [तेजस्विनी थी, प्रख्यात थी। उसके यहाँ विस्तीर्ण और विपुल भवन, शय्या, आसन, रथ आदि यान और अश्व आदि वाहन थे। स्वर्ण और चाँदी आदि धन की बहुतायत थी। लेन-देन किया करती थी। उसके यहाँ इतना बहुत भोजन-पान तैयार होता था कि जीमने के पश्चात् भी बहुत-सा बचा रहता था,

अत] वह बहुत भोजन-पान वाली थी । चौसठ कलाओ मे पडिता थी । गणिका के चौसठ गुणो से युक्त थी । उनतीस प्रकार की विशेष क्रीडाएँ करने वाली थी । कामक्रीडा के इक्कीस गुणो मे कुशल थी । बत्तीस प्रकार के पुरुष के उपचार करने मे कुशल थी । उसके सोते हुए नौ अग (दो कान, दो नेत्र, दो नासिकापुट, जिह्वा, त्वचा और मन) जाग्रत हो चुके थे अर्थात् वह युवावस्था को प्राप्त थी । अठारह प्रकार की देशी भाषाओ मे निपुण थी । वह ऐसा सुन्दर वेष धारण करती थी, मानो शृ गाररस का स्थान हो । सुन्दर गति, उपहास, वचन, चेष्टा, विलास (नेत्रो की चेष्टा) एव ललित सलाप (बात-चीत) करने मे कुशल थी । योग्य उपचार (व्यवहार) करने मे चतुर थी । उसके घर पर ध्वजा फहराती थी । एक हजार देने वाले को प्राप्त होती थी, अर्थात् उसका एक दिन का शुल्क एक हजार रुपया था । राजा के द्वारा उसे छत्र, चामर और बाल व्यजन (विशेष प्रकार का चामर) प्रदान किया गया था । वह कर्णीरथ नामक वाहन पर आरूढ होकर-आती जाती थी, यावत् एक हजार गणिकाओ का आधिपत्य करती हुई रहती थी, (वह उनका नेतृत्व, स्वामित्व, पालकत्व एव अग्रेसरत्व करती थी । सभी को अपनी आज्ञा के अनुसार चलाती थी । वह उनकी सेनाध्यक्षा थी । उनका पालन-पोषण करती थी । नृत्य, गीत और वाद्यो मे मस्त रहती थी । तत्री, तल, ताल, घन, मृदग आदि बाजो की ध्वनि मे डूबी वह देवदत्ता विपुल भोग भोग रही थी) ।

गणिका के साथ विहार

७—तए ण तेसिं सत्थवाहदारगाण अन्नया कयाइ पुव्वावरण्हकाल-समयसि जिमियभुत्तुत्तरागयाण समाणाण आयताण चोक्खाण परमसुइभूयाण सुहासणवरगयाण इमेयारूवे मिहोकहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था—त सेय खलु अम्ह देवाणुप्पिया ! कल्ल जाव[1] जलते विपुल असण-पाण-खाइम-साइम उवक्खडावेत्ता त विपुल असण-पाण खाइम-साइम धूव-पुप्फ-गध वत्थ गहाय देवदत्ताइ गणियाए सद्धि सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स उज्जाणसिरिं पच्चणुभवमाणाण विहरित्तए' त्ति कट्टु अन्नमन्नस्स एयमट्ठ पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता कल्ल पाउब्भूए कोडु बियपुरिसे सद्दावेन्ति, सद्दावित्ता एव वयासी—

तत्पश्चात् वे सार्थवाहपुत्र किसी समय मध्याह्नकाल मे भोजन करने के अनन्तर, आचमन करके, हाथ-पैर धोकर स्वच्छ होकर, परम पवित्र होकर सुखद आसनो पर बैठे । उस समय उन दोनो मे आपस मे इस प्रकार की बात चीत हुई—'हे देवानुप्रिय ! अपने लिए यह अच्छा होगा कि कल यावत सूर्य के देदीप्यमान होने पर विपुल अशन, पान, खादिम, और स्वादिम तथा धूप, पुष्प, गध और वस्त्र साथ मे लेकर देवदत्ता गणिका के साथ सुभूमिभाग नामक उद्यान मे उद्यान की शोभा का अनुभव करते हुए विचरे ।' इस प्रकार—कहकर दोनो ने एक दूसरे की बात स्वीकार की । स्वीकार करके दूसरे दिन सूर्योदय होने पर कौटुम्बिक पुरुषो (सेवको) को बुलाकर इस प्रकार कहा—

८—'गच्छह ण देवाणुप्पिया ! विपुल असण-पाण खाइम-साइम उवक्खडेह । उवक्खडित्ता त विपुल असण-पाण खाइम साइम धूव पुप्फ गहाय जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे, जेणेव णदा पुक्खरिणी, तेणामेव उवागच्छह । उवगच्छित्ता णदापुक्खरिणीओ अदूरसामते थूणामडव आहणह । आहणित्ता आसित्त-समज्जिओवलित्त जाव (पचवण्ण-सरससुरभि-मुक्क पुप्फपु जोवयारकलिय कालागरु-पवर-

---

१ प्र अ सूत्र २८

कु दुरुक्क-तुरुक्क-धूव-डज्झत-सुरभि-मघमघत-गधुद्धुयाभिराम सुगधवर-गधिय गधवट्टिभूय) करेह, करित्ता अम्हे पडिवालेमाणा चिट्ठह' जाव चिट्ठति ।

'दवानुप्रियो ! तुम जाओ और विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तैयार करो। तैयार करके उस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम को तथा धूप, पुष्प आदि को लेकर जहाँ सुभूमिभाग नामक उद्यान है और जहाँ नन्दा पुष्करिणी है, वहाँ जाओ। जाकर नन्दा पुष्करिणी के समीप स्थूणामडप (वस्त्र से आच्छादित मडप) तैयार करो। जल सींच कर, झाड बुहार कर, लीप कर यावत् [पाँच वर्णों के सरस सुगधित एव बिखरे फूलो के समूह रूप उपचार से युक्त, काले अगर, कु दुरुक्क, तुरुष्क (लोभान) तथा धूप के जलाने से महकती हुई उत्तम गध से व्याप्त होने के कारण मनोहर, श्रेष्ठ सुगध के चूर्ण से सुगधित तथा सुगध की वट्टी के समान] बनाओ। यह सब करके हमारी बाट—राह देखना।' यह सुनकर कौटुम्बिक पुरुष आदेशानुसार कार्य करके यावत् उनकी बाट देखने लगे।

९—तए ण सत्यवाहदारगा वोच्चपि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेंति, सद्दावित्ता एव वयासी—'खिप्पामेव लहुकरणजुत्तजोइय समखुर वालिहाण-समलिहियतिक्खग्गसिंगएहि रययामय सुत्तरज्जुय पवरकचण खचिय णत्थपग्गहोवग्गहिएहि नीलुप्पलकयामेलएहि पवरगोणजुवाणएहि नाणामणि रयण-कचण घटियाजालपरिक्खित्त पवरलक्खणोववेय जुत्तमेव पवहण उवणेह।' ते वि तहेव उवणेंति।

तत्पश्चात् सार्थवाहपुत्रो ने दूसरी बार (दूसरे) कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और बुलाकर कहा—'शीघ्र ही एक समान खुर और पूँछ वाले, एक से चित्रित तीखे सीगो के अग्रभाग वाले, चाँदी की घटियो वाले, स्वर्णजटित सूत की डोरी की नाथ से बंधे हुए तथा नीलकमल की कलगी से युक्त श्रेष्ठ जवान बैल जिसमे जुते हो, नाना प्रकार की मणियो की, रत्नो की और स्वर्ण की घटिया के समूह से युक्त तथा श्रेष्ठ लक्षणो वाला रथ ले आओ।' वे कौटुम्बिक पुरुष आदेशानुसार रथ उपस्थित करते है।

१०—तए ण ते सत्यवाहदारगा ण्हाया जाव (कयबलिकम्मा कयकोउय मगल पायच्छित्ता अप्पमहग्घाभरणालकिय) सरीरा पवहण दुरुहति, दुरुहित्ता जेणेव देवदत्ताए गणियाए गिहे तेणेव उवागच्छति। उवागच्छित्ता पवहणाओ पच्चोरुहति, पच्चोरुहित्ता देवदत्ताए गणियाए गिह अणुपविसेन्ति।

तए ण सा देवदत्ता गणिया सत्यवाहदारए एज्जमाणे पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठा आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता सत्तट्ठपयाइ अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता ते सत्यवाहदारए एव वयासी—'सदिसतु ण देवाणुप्पिया! किमिहागमणप्पओयण ?'

तत्पश्चात् उन सार्थवाहपुत्रो ने स्नान किया, यावत् [बलिकर्म किया, कौतुक, मगल प्रायश्चित्त किया, थोडे और बहुमूल्य अलकारो से शरीर को अलकृत किया और] वे रथ पर आरूढ हुए। रथ पर आरूढ होकर जहाँ देवदत्ता गणिका का घर था, वहाँ आये। आकर वाहन (रथ) से नीचे उतरे और देवदत्ता गणिका के घर मे प्रविष्ट हुए।

उस समय देवदत्ता गणिका ने सार्थवाहपुत्रो को आता देखा । देखकर वह हृष्ट-तुष्ट होकर आसन से उठी और उठकर सात-आठ कदम सामने गई । सामने जाकर उसने सार्थवाहपुत्रो से इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो ! आज्ञा दीजिए, आपके यहाँ आने का क्या प्रयोजन है ?

११—तए ण ते सत्थवाहदारगा देवदत्त गणिय एव वयासी—'इच्छामो ण देवाणुप्पिए ! तुम्हेहिं सद्धि सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स उज्जाणसिरिं पच्चणुब्भवमाणा विहरित्तए ।'

तए ण सा देवदत्ता तेसिं सत्थवाहदारगाण एयमट्ठ पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता ण्हाया कयबलि कम्मा जाव सिरिसमाणवेसा जेणेव सत्थवाहदारगा तेणेव समागया ।

तत्पश्चात् सार्थवाहपुत्रो ने देवदत्ता गणिका से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिये ! हम तुम्हारे साथ सुभूमिभाग नामक उद्यान की श्री का अनुभव करते हुए विचरना चाहते है ।'

गणिका देवदत्ता ने उन सार्थवाहपुत्रो का यह कथन स्वीकार किया । स्वीकार करके स्नान किया, मगलकृत्य किया यावत् लक्ष्मी के समान श्रेष्ठ वेष धारण किया । जहाँ सार्थवाह-पुत्र थे वहाँ आ गई ।

१२—तए ण ते सत्थवाहदारगा देवदत्ताए गणियाए सद्धि जाण दुरूहति, दुरूहित्ता चपाए नयरीए मज्झमज्झेण जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे, जेणेव नदापुक्खरिणी तेणेव उवागच्छति । उवागच्छित्ता पवहणाओ पच्चोरुहति, पच्चोरुहित्ता णदापोक्खरिणिं ओगाहिंति । ओगाहित्ता जलमज्जण करेंति, जलकीड करेंति, ण्हाया देवदत्ताए सद्धि पच्चुत्तरति । जेणेव थूणामडवे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता थूणामडव अणुपविसित्ता सव्वालकारविभूसिया आसत्था वीसत्था सुहासणवरगया देवदत्ताए सद्धि त विपुल असण-पाण खाइम-साइम धूवपुप्फगधवत्थ आसाएमाणा विसाएमाणा परिभाएमाणा परिभु जेमाणा एव च ण विहरति । जिमियभुत्तुत्तरागया वि य ण समाणा देवदत्ताए सद्धि विपुलाइ माणुस्सगाइ कामभोगाइ भु जमाणा विहरति ।

तत्पश्चात् वे सार्थवाहपुत्र देवदत्ता गणिका के साथ यान पर आरूढ हुए और चम्पानगरी के बीचो-बीच होकर जहा सुभूमिभाग उद्यान था और जहाँ नन्दा पुष्करिणी थी, वहा पहुँचे । वहा पहुँच कर यान (रथ) से नीचे उतरे । उतर कर नदा पुष्करिणी मे अवगाहन किया । अवगाहन करके जल-मज्जन किया, जल-क्रीडा की, स्नान किया और फिर देवदत्ता के साथ बाहर निकले । जहा स्थूणामडप था वहा आये । आकर स्थूणामडप मे प्रवेश किया । सब अलकारो से विभूषित हुए, आश्वस्त (स्वस्थ) हुए, विश्वस्त (विश्रान्त) हुए, श्रेष्ठ आसन पर बैठे । देवदत्ता गणिका के साथ उस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तथा धूप, पुष्प, गध और वस्त्र का उपभोग करते हुए, विशेषरूप से आस्वादन करते हुए, विभाग करते हुए एव भोगते हुए विचरने लगे । भोजन के पश्चात् देवदत्ता के साथ मनुष्य सबधी विपुल कामभोग भोगते हुए विचरने लगे ।

१३—तए ण सत्थवाहदारगा पुव्वावरण्हकालसमयसि देवदत्ताए गणियाए सद्धि थूणामडवाओ पडिणिक्खमति । पडिणिक्खमित्ता हत्थसगेल्लीए सुभूमिभागे बहुसु आलिघरएसु य कयलीघरएसु य लयाघरएसु य अच्छणघरएसु य पेच्छणघरएसु य पसाहणघरएसु य मोहणघरएसु य सालघरएसु य जालघरएसु य कुसुमघरएसु य उज्जाणसिरिं पच्चणुभवमाणा विहरति ।

तत्पश्चात् वे सार्थवाहपुत्र दिन के पिछले प्रहर मे देवदत्ता गणिका के साथ स्थूणामडप से बाहर निकलकर हाथ मे हाथ डालकर, सुभूमिभाग मे बने हुए आलिनामक वृक्षो के गृहो मे, कदली गृहो मे, लतागृहो मे, आसन (बैठने के) गृहो मे, प्रेक्षणगृहो मे, मडन करने के गृहो मे, मोहन (मैथुन) गृहो मे, साल वृक्षो के गृहो मे, जाली वाले गृहो मे तथा पुष्पगृहो मे उद्यान की शोभा का अनुभव करते हुए घूमने लगे ।

मयूरी का उद्वेग

१४—तए ण ते सत्थवाहदारगा जेणेव मालुयाकच्छए तेणेव पहारेत्थ गमणाए । तए ण सा वणमऊरी ते सत्थवाहदारए एज्जमाणे पासइ । पासित्ता भीया तत्था महया महया सद्देण केकारव विणिम्मुयमाणी विणिम्मुयमाणी मालुयाकच्छाओ पडिणिक्खमइ । पडिणिक्खमित्ता एगसि रुक्ख डालयसि ठिच्चा ते सत्थवाहदारए मालुयाकच्छय च अणिमिसाए दिट्ठीए पेहमाणी चिट्ठइ ।

तत्पश्चात् वे सार्थवाहदारक जहा मालुकाकच्छ था, वहाँ जाने के लिए प्रवृत्त हुए । तब उस वनमयूरी ने सार्थवाहपुत्रो को आता देखा । देखकर वह डर गई और घबरा गई । वह जोर-जोर से आवाज करके केकारव करती हुई मालुकाकच्छ से बाहर निकली । निकल कर एक वृक्ष की डाली पर स्थित होकर उन सार्थवाहपुत्रो को तथा मालुकाकच्छ को अपलक दृष्टि से देखने लगी ।

१५—तए ण सत्थवाहदारगा अण्णमण्ण सद्दावेंति, सद्दावित्ता एव वयासी—'जह ण देवाणुप्पिया ! एसा वणमऊरी अम्हे एज्जमाणा पासित्ता भीया तत्था तसिया उव्विग्गा पलाया महया-महया सद्देण जाव[1] अम्हे मालुयाकच्छय च पेच्छमाणी पेच्छमाणी चिट्ठइ, त भवियव्वमेत्थ कारणेण' ति कट्टु मालुयाकच्छय अतो अणुपविसति । अणुपविसित्ता तत्थ ण दो पुट्ठे परियागए[2] जाव पासित्ता अन्नमन्न सद्दावेंति, सद्दावित्ता एव वयासी—

तब उन सार्थवाहपुत्रो ने आपस मे एक दूसरे को बुलाया और इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय ! यह वनमयूरी हमे आता देखकर भयभीत हुई, स्तब्ध रह गई, त्रास को प्राप्त हुई, उद्विग्न हुई, भाग (उड) गई और जोर-जोर की आवाज करके यावत् हम लोगो को तथा मालुकाकच्छ को पुन पुन देख रही है, अतएव इसका कोई कारण होना चाहिए ।' इस प्रकार कह कर वे मालुकाकच्छ के भीतर घुसे । घुस कर उन्होने वहाँ दो पुष्ट और अनुक्रम से वृद्धि प्राप्त मयूरी-अडे यावत् देखे, देख कर एक दूसरे को आवाज देकर इस प्रकार कहा—

अडो का अपहरण

१६—'सेय खलु देवाणुप्पिया ! अम्हे इमे वणमऊरीअडए साण जाइमताण कुक्कुडियाण अडएसु य पक्खियावित्तए । तए ण ताओ जातिमताओ कुक्कुडियाओ एए अडए सए य अडए सएण पक्खवाएण सारक्खमाणीओ सगोवेमाणीओ विहरिस्सति । तए ण अम्ह एत्थ दो कीलावणगा मऊरीपोयगा भविस्सति ।' त्ति कट्टु अन्नमन्नस्स एयमट्ठ पडिसुर्णेति, पडिसुणित्ता सए सए दासचेडे सद्दावेंति, सद्दावित्ता एव वयासी—'गच्छह ण तुब्भे देवाणुप्पिया ! इमे अडए गहाय समाण जाइमताण कुक्कुडीण अडएसु पक्खिवह ।' जाव ते वि पक्खिर्वेति ।

---

१ द्वि अ सूत्र १४ २ द्वि अ सूत्र ३

हे देवानुप्रिय ! वनमयूरी के इन अंडों को अपनी उत्तम जाति की मुर्गी के अंडों में डलवा देना, अपने लिए अच्छा रहेगा। ऐसा करने से अपनी जातिवन्त मुर्गियां इन अंडों का और अपने अंडों का अपने पंखों की हवा से रक्षण करती और सम्भालती रहेंगी तो हमारे दो क्रीडा करने के मयूरी-बालक हो जायेंगे।' इस प्रकार कहकर उन्होंने एक दूसरे की बात स्वीकार की। स्वीकार करके अपने-अपने दासपुत्रों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! तुम जाओ। इन अंडों को लेकर अपनी उत्तम जाति की मुर्गियों के अंडों में डाल (मिला) दो।' उन दासपुत्रों ने उन दोनों अंडों को मुर्गियों के अंडों में मिला दिया।

१७—तए णं ते सत्थवाहदारगा देवदत्ताए गणियाए सद्धिं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स उज्जाणसिरिं पच्चणुभवमाणा विहरित्ता तमेव जाणं दुरूढा समाणा जेणेव चंपानयरी जेणेव देवदत्ताए गणियाए गिहे तेणेव उवागच्छंति। उवागच्छित्ता देवदत्ताए गिहं अणुपविसंति। अणुपविसित्ता देवदत्ताए गणियाए विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयंति। दलइत्ता सक्कारेंति, सक्कारित्ता सम्माणेंति, सम्माणित्ता देवदत्ताए गिहाओ पडिणिक्खमंति, पडिणिक्खमित्ता जेणेव सयाइं सयाइं गिहाइं तेणेव उवागच्छंति। उवागच्छित्ता सकम्मसंपउत्ता जाया यावि होत्था।

तत्पश्चात् वे सार्थवाहपुत्र देवदत्ता गणिका के साथ सुभूमिभाग उद्यान में उद्यान की शोभा का अनुभव करते हुए विचरण करके उसी यान पर आरूढ होकर जहां चम्पा नगरी थी और जहां देवदत्ता गणिका का घर था, वहां आये। आकर देवदत्ता गणिका के घर में प्रवेश किया। प्रवेश करके देवदत्ता गणिका को विपुल जीविका के योग्य प्रीतिदान दिया। प्रीतिदान देकर उसका सत्कार-सन्मान किया। सत्कार-सन्मान करके दोनों देवदत्ता के घर से बाहर निकल कर जहाँ अपने अपने घर थे, वहां आये। आकर अपने काम में संलग्न हो गये।

शंकाशील सागरदत्तपुत्र

१८—तए णं जे से सागरदत्तपुत्ते सत्थवाहदारए से णं कल्लं जाव[1] जलंते जेणेव से वणमऊरीअंडए तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता तंसि मऊरीअंडयंसि संकिए कंखिए विइगिच्छासमावन्ने भेयसमावन्ने कलुससमावन्ने—'किं णं मम एत्थ कीलावणमऊरीपोयए भविस्सइ, उदाहु णो भविस्सइ ?' त्ति कट्टु तं मऊरीअंडयं अभिक्खणं अभिक्खणं उव्वत्तेइ, परियत्तेइ, आसारेइ, संसारेइ, चालेइ, फंदेइ, घट्टेइ, खोभेइ, अभिक्खणं अभिक्खणं कण्णमूलंसि टिट्टियावेइ। तए णं से मऊरीअंडए अभिक्खणं अभिक्खणं उव्वत्तिज्जमाणे जाव टिट्टियावेज्जमाणे पोच्चडे जाए यावि होत्था।

तत्पश्चात् उनमें जो सागरदत्त का पुत्र सार्थवाहदारक था, वह कल (दूसरे दिन) सूर्य के देदीप्यमान होने पर जहां वनमयूरी का अंडा था, वहाँ आया। आकर उस मयूरी अंडे में शंकित हुआ, अर्थात् वह सोचने लगा कि यह अंडा निपजेगा कि नहीं ? उसके फल की आकांक्षा करने लगा कि कब इससे अभीष्ट फल की प्राप्ति होगी ? विचिकित्सा को प्राप्त हुआ अर्थात् मयूरी-बालक हो जाने पर भी इससे क्रीडा रूप फल प्राप्त होगा या नहीं, इस प्रकार फल में संदेह करने लगा, भेद को प्राप्त हुआ, अर्थात् सोचने लगा कि इस अंडे में बच्चा है भी या नहीं ? कलुषता अर्थात् बुद्धि की मलिनता

१ प्र. अ. २८

रो प्राप्त हुआ। अतएव वह विचार करने लगा कि मेरे इस अंडे में से क्रीडा करने का मयूरी-बालक उत्पन्न होगा अथवा नहीं होगा ?

इस प्रकार विचार करके वह बार-बार उस अंडे को उद्वर्तन करने लगा अर्थात् नीचे का भाग ऊपर करके फिराने लगा, घुमाने लगा, आसारण करने लगा अर्थात् एक जगह से दूसरी जगह रखने लगा, समारण करने लगा अर्थात् बार-बार स्थानान्तरित करने लगा, चलाने लगा, हिलाने लगा, घट्टन—हाथ से स्पर्श करने लगा, क्षोभण—भूमि को खोदकर उसमें रखने लगा और बार बार उसे कान के पास ले जाकर बजाने लगा। तदनन्तर वह मयूरी-अंडा बार बार उद्वर्तन करने से यावत् [परिवर्तन करने से, आसारण-समारण करने से, चलाने, हिलाने, स्पर्श करने से, क्षोभण करने से] बजाने से पोचा हो गया—निर्जीव हो गया।

१९—तए णं से सागरदत्तपुत्ते सत्थवाहदारए अन्नया कयाइ जेणेव से मऊरीअंडए तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता तं मऊरीअंडयं पोच्चडमेव पासइ। पासित्ता 'अहो णं मम एस कीलावणए ण जाए' त्ति कट्टु ओहयमणसंकप्पे करतलपल्हत्थमुहे अट्टज्झाणोवगए।

सागरदत्त का पुत्र सार्थवाहदारक किसी समय जहाँ मयूरी का अंडा था वहाँ आया। आकर उस मयूरी-अंडे को उसने पोचा देखा। देखकर 'ओह ! यह मयूरी का बच्चा मेरी क्रीडा करने के योग्य न हुआ' ऐसा विचार करके खेदखिन्नचित्त होकर चिन्ता करने लगा। उसके सब मनोरथ निष्फल हो गए।

शंकाशीलता का कुफल

२०—एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए पव्वइए समाणे पंचमहव्वएसु, छज्जीवनिकाएसु, निग्गंथे पावयणे संकिए जाव (कंखिए वितिगिंछसमावण्णे) कलुससमावन्ने से णं इह भवे चेव बहूणं समणाणं समणीणं बहूणं सावगाणं साविगाणं हीलणिज्जे खिंसणिज्जे गरिहणिज्जे, परिभवणिज्जे, परलोए वि य णं आगच्छइ बहूणि दंडणाणि य जाव (बहूणि मुंडणाणि य बहूणि तज्जणाणि य बहूणि तालणाणि य बहूणि अंदुबंधणाणि य बहूणि घोलणाणि य बहूणि माइमरणाणि य बहूणि पिइमरणाणि य बहूणि भाइमरणाणि य बहूणि भगिणीमरणाणि य बहूणि भज्जामरणाणि य बहूणि पुत्तमरणाणि य बहूणि धूयमरणाणि य बहूणि सुण्हामरणाणि य,

बहूणि दारिद्दाणं बहूणं दोहग्गाणं बहूणं अप्पियसंवासाणं बहूणं पियविप्पओगाणं बहूणं दुक्खदोमणस्साणं आभागी भविस्सति, अणादियं च णं अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं भुज्जो भुज्जो) अणुपरियट्टिस्सइ।

आयुष्मन् श्रमणो ! इस प्रकार जो साधु या साध्वी आचार्य या उपाध्याय के समीप प्रव्रज्या ग्रहण करके पाँच महाव्रतों के विषय में अथवा षट् जीवनिकाय के विषय में अथवा निर्ग्रन्थ प्रवचन के विषय में शंका करता है [कांक्षा—परदर्शन की या लौकिक फल की अभिलाषा करता है, या क्रिया के फल में सन्देह करता है] या कलुषता को प्राप्त होता है, वह इसी भव में बहुत से साधुओं, साध्वियों, श्रावकों और श्राविकाओं के द्वारा हीलना करने योग्य—गच्छ से पृथक् करने योग्य, मन से निन्दा करने योग्य, लोक-निन्दनीय, समक्ष में ही गर्हा (निन्दा) करने योग्य और परिभव (अनादर

के योग्य होता है। पर भव मे भी वह बहुत दड पाता है यावत् [वह बार-बार मू डा जाता है, बार-बार तर्जना और ताडना का भागी होता है, बार-बार बेडियो मे जकडा जाता है, बार बार घोलना पाता है, उसे बार-बार-मातृमरण, पितृमरण, भ्रातृमरण, भगिनीमरण, पत्नीमरण, पुत्रमरण, पुत्रीमरण और पुत्रवधूमरण का दु ख भोगना पडेगा।

वह बहुत दरिद्रता, अत्यन्त दुर्भाग्य, अतीव इष्टवियोग, अत्यन्त दु ख एव दुर्मनस्कता का भाजन बनेगा। अनादि अनन्त दीर्घ मार्ग वाले चार गतिरूप ससार-कान्तार मे] परिभ्रमण करेगा।

श्रद्धा का सुफल

२१ तए ण से जिणदत्तपुत्ते जेणेव से मऊरीअडए तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता तसि मऊरीअडयसि निस्सकिए, 'सुवत्तए ण मम एत्थ कीलावणए मऊरीपोयए भविस्सइ' त्ति कट्टु त मऊरीअडयसि अभिक्खण अभिक्खण नो उध्वत्तेइ' जाव नो टिट्टियावेइ। तए ण से मऊरीअडए अणुव्वत्तिज्जमाणे जाव अटिट्टियाविज्जमाणे तेण कालेण तेण समएण उब्भिन्ने मऊरीपोयए एत्थ जाए।

(इससे विपरीत) जिनदत्त का पुत्र जहाँ मयूरी का अडा था, वहाँ आया। आकर उस मयूरी के अडे के विषय मे नि शक रहा। 'मेरे इस अड मे से क्रीडा करने के लिए बढिया गोलाकार मयूरी-बालक होगा' इस प्रकार निश्चय करके, उस मयूरी के अडे को उसने बार-बार उलटा-पलटा नही यावत् बजाया नहीं [हिलाया-डुलाया, छुआ नही] आदि। इस कारण उलट-पलट न करने से और न बजाने से उस काल और उस समय मे अर्थात् समय का परिपाक होने पर वह अडा फूटा और मयूरी के बालक का जन्म हुआ।

२२—तए ण से जिणदत्तपुत्ते त मऊरीपोयय पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे मऊरपोसए सद्दावेइ। सद्दावित्ता एव वयासी—तुब्भे ण देवाणुप्पिया! इम मऊरपोयय बहूहि मऊरपोसणपाउग्गेहि दव्वेहि अणुपुव्वेण सारक्खमाणा सगोवेमाणा सवड्ढेह, नट्टुल्लग च सिक्खावेह।

तए ण ते मऊरपोसगा जिणदत्तस्स पुत्तस्स एयमट्ठ पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता त मऊरपोयय गेण्हति, गेण्हित्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छति। उवागच्छित्ता त मऊरपोयग जाव नट्टुल्लग सिक्खावेंति।

तत्पश्चात् जिनदत्त के पुत्र ने उस मयूरी के बच्चे को देखा। देखकर हृष्ट तुष्ट होकर मयूर-पोषको को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! तुम मयूर के इस बच्चे को अनेक मयूर को पोषण देने योग्य पदार्थों मे अनुक्रम से सरक्षण करते हुए और सगोपन करते हुए बडा करो और नृत्यकला सिखलाओ।

तब उन मयूरपोषको ने जिनदत्त के पुत्र की यह बात स्वीकार की। उस मयूर-बालक को ग्रहण किया। ग्रहण करके जहा अपना घर था वहाँ आये। आकर उस मयूर-बालक को यावत् नृत्यकला सिखलाने लगे।

---

१ तृ अ १८

२३—तए णं से मऊरपोयए उम्मुक्कबालभावे विन्नायपरिणयमेत्ते जोव्वणगमणुपत्ते लक्खण-वंजणगुणोववेए माणुम्माण-पमाणपडिपुण्ण पक्ख पेहुण-कलावे विचित्तपिच्छे सयचंदए नीलकंठए नच्चणसीलए एगाए चप्पुडियाए कयाए समाणीए अणेगाइं नट्टुल्लगसयाइं केकारवसयाणि य करेमाणे विहरइ ।

तत्पश्चात् मयूरी का बच्चा बचपन से मुक्त हुआ। उसमें विज्ञान का परिणमन हुआ। युवावस्था को प्राप्त हुआ। लक्षणों और तिल आदि व्यंजनों के गुणों से युक्त हुआ। चौड़ाई रूप मान, स्थूलता रूप उन्मान और लम्बाई रूप प्रमाण से उसके पंखों और पिच्छों (पंखों) का समूह परिपूर्ण हुआ। उसके पंख रंग-बिरंगे हो गए। उनमें सैकड़ों चन्द्रक थे। वह नीले कंठ वाला और नृत्य करने के स्वभाव वाला हुआ। एक चुटकी बजाने से अनेक प्रकार के सैकड़ों केकारव करता हुआ विचरण करने लगा।

२४—तए णं ते मऊरपोसगा तं मऊरपोययं उम्मुक्कबालभावं जाव करेमाणं पासित्ता तं मऊरपोयगं गेण्हंति। गेण्हित्ता जिणदत्तस्स पुत्तस्स उवणेंति। तए णं से जिणदत्तपुत्ते सत्थवाहदारए मऊरपोयगं उम्मुक्कबालभावं जाव करेमाणं पासित्ता हट्ठतुट्ठे तेसिं विउलं जीवियारिहं पीइदाणं जाव (दलयइ, दलइत्ता) पडिविसज्जेइ ।

तत्पश्चात् मयूरपालकों ने उस मयूर के बच्चे को बचपन से मुक्त यावत् केकारव करता हुआ देख कर उस मयूर बच्चे को ग्रहण किया। ग्रहण करके जिनदत्त के पुत्र के पास ले गये। तब जिनदत्त के पुत्र सार्थवाहदारक ने मयूर-बालक को बचपन से मुक्त यावत् केकारव करता देखकर, हृष्ट-तुष्ट होकर उन्हें जीविका के योग्य विपुल प्रीतिदान दिया। प्रीतिदान देकर विदा किया।

२५—तए णं से मऊरपोयए जिणदत्तपुत्तेणं एगाए चप्पुडियाए कयाए समाणीए णंगोला (ल) भंगसिरोधरे सेयावंगे अवयारियपइन्नपक्खे उक्खित्तचंदकाइयकलावे केक्काइयसयाणि विमुच्चमाणे णच्चइ ।

तए णं से जिणदत्तपुत्ते तेणं मऊरपोयएणं चंपाए नयरीए सिंघाडग जाव (तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह) पहेसु सइएहि य साहस्सिएहि य सयसाहस्सिएहि य पणिएहि य जयं करेमाणे विहरइ ।

तत्पश्चात् वह मयूर-बालक जिनदत्त के पुत्र द्वारा एक चुटकी बजाने पर लांगूल के भंग के समान अर्थात् जैसे सिंह आदि अपनी पूंछ को टेढ़ी करते हैं उसी प्रकार अपनी गर्दन टेढ़ी करता था। उसके शरीर पर पसीना आ जाता था अथवा उसके नेत्र के कोने श्वेत वर्ण के हो गये थे। वह बिखरे पिच्छों वाले दोनों पंखों को शरीर से जुदा कर लेता था अर्थात् उन्हें फैला देता था। वह चन्द्रक आदि से युक्त पिच्छों के समूह को ऊँचा कर लेता था और सैकड़ों केकाराव करता हुआ नृत्य करता था।

तत्पश्चात् वह जिनदत्त का पुत्र उस मयूर-बालक के द्वारा चम्पानगरी के शृंगाटक, (त्रिक, चौक, चत्वर चतुर्मुख राजमार्ग आदि) मार्गों में सैकड़ों, हजारों और लाखों की होड़ में विजय प्राप्त करता था।

उपसंहार

२६—एवामेव समणाउसो! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा पव्वइए समाणे पंचसु महव्वएसु छसु जीवनिकाएसु निग्गंथे पावयणे निस्संकिए निक्कंखिए निव्विइगिच्छे से णं इह भवे चेव बहूणं समणाणं समणीणं जाव[1] वीइवइस्सइ। एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं णायाणं तच्चस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते त्ति बेमि॥

हे आयुष्मान् श्रमणो! इसी प्रकार हमारा जो साधु या साध्वी दीक्षित होकर पाँच महाव्रतों में, षट् जीवनिकाय में तथा निर्ग्रन्थ-प्रवचन में शंका से रहित, कांक्षा से रहित तथा विचिकित्सा से रहित होता है, वह इसी भव में बहुत से श्रमणों एवं श्रमणियों में मान-सम्मान प्राप्त करके यावत् संसार रूप अटवी को पार करेगा।

हे जम्बू! इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर ने ज्ञाता के तृतीय अध्ययन का अर्थ फरमाया है।

॥ तृतीय अध्ययन समाप्त ॥

---

१ द्वि. अ. सूत्र ५३

चतुर्थ अध्ययन : कूर्म

सार-संक्षेप

चतुर्थ अध्ययन का नाम कूर्म-अध्ययन है। इसमे आत्मसाधना मे पथिको को इन्द्रियगोपन की आवश्यकता दो कूर्मों के उदाहरण के माध्यम से प्रतिपादित की गई है।

वाराणसी नगरी मे गगा नदी से उत्तर-पूर्व मे एक विशाल तालाब था—निर्मल शीतल जल से परिपूर्ण और विविध जाति के कमलो से व्याप्त। तालाब मे अनेक प्रकार के मच्छ, कच्छप, मगर, ग्राह आदि जलचर प्राणी अभिरमण किया करते थे। तालाब को लोग 'मृतगगातीरह्रद' कहते थे।

एक बार सन्ध्या-समय व्यतीत हो जाने पर, लोगो का आवागमन जब बद-सा हो गया, तब उस तालाब मे से दो कूर्म-कछुए आहार की खोज मे निकले। तालाब के आस-पास घूमने लगे।

उसी समय वहाँ दो सियार आ पहुँचे। वे भी आहार की खोज मे भटक रहे थे। सियारो को देख कर कूर्म भयभीत हो गए। आहार की खोज मे निकले कूर्मों को स्वय सियारो का आहार बन जाने का भय उत्पन्न हो गया। परन्तु कूर्मों मे एक विशेषता होती है। वे अपने पैरो और गर्दन को अपने शरीर मे जब गोपन कर लेते हैं—छिपा लेते हैं, तो सुरक्षित हो जाते हैं, कोई भी आघात उनका कुछ बिगाड नही सकता। कूर्मों ने यही किया। सियारो ने उन्हे देखा। वे उन पर झपटे। बहुत प्रयत्न किया उनका छेदन-भेदन करने का, किन्तु सफल नही हो सके।

सियार बहुत चालाक जानवर होता है। उन्होंने देखा कि कूर्म अपने अगों का जब तक गोपन किये रहेगे तब तक हमारा कोई प्रयत्न सफल नही होगा, अतएव चालाकी से काम लेना चाहिए। ऐसा सोच कर दोनो सियार कूर्मों के पास से हट गए, पर निकट ही एक झाडी मे पूरी तरह शान्त होकर छिप गए।

दोनो कूर्मों मे से एक चचल प्रकृति का था। वह अपने अगो का देर तक गोपन नहीं कर सका। उसने एक पैर बाहर निकाला। उधर सियार इसी ताक मे थे। जैसे ही उन्होंने एक पैर बाहर निकला देखा कि शीघ्रता के साथ वे उस पर झपटे और उस पैर को खा गए। सियार फिर एकान्त मे चले गए। थोडी देर बाद कूर्म ने अपना दूसरा पैर बाहर निकाला और सियारो ने झपट्टा मार कर उसका दूसरा पैर भी खा लिया। इसी प्रकार थोडी-थोडी देर मे कूर्म एक-एक पैर बाहर निकालता और सियार उसे खा जाते। अन्त मे उस चचल कूर्म ने गर्दन बाहर निकाली और सियारों ने उसे भी खाकर उसे प्राणहीन कर दिया। इस प्रकार अपने अगो का गोपन न कर सकने के कारण उस कूर्म के जीवन का करुण अन्त हो गया।

दूसरा कूर्म वैसा चपल नही था। उसने अपने अगो पर सयम नियन्त्रण रखा। लम्बे समय तक उसने अगो को गोपन करके रखा और जब सियार चले गए तब वह चारों पैरों को एक साथ बाहर निकाल कर शीघ्रतापूर्वक तालाब मे सकुशल सुरक्षित पहुँच गया।

शास्त्रकार कहते है—जो साधु या साध्वी अनगार-दीक्षा अंगीकार करके अपनी इन्द्रियो का गोपन नही करते उनकी दशा प्रथम कूर्म जैसी होती है। वे इह-परभव मे अनेक प्रकार के कष्ट पाते हैं, संयम-जीवन से च्युत हो जाते हैं और निन्दा-गर्हा के पात्र बनते है। इससे विपरीत, जो साधु या साध्वी इन्द्रियो का गोपन करते हैं, वे इसी भव मे सब के वन्दनीय, पूजनीय, अर्चनीय होते है और संसार-अटवी को पार करके सिद्धिलाभ करते हैं।

तात्पर्य यह है कि साधु हो अथवा साध्वी, उसे अपनी सभी इन्द्रियो पर नियंत्रण रखना चाहिए, उनका गोपन करना चाहिए। इन्द्रिय-गोपन का अर्थ है—इन्द्रियो को अपने-अपने विषयो मे प्रवृत्त न होने देना। किन्तु सर्वत्र सर्वदा इन्द्रियो की प्रवृत्ति रोकना सम्भव नही है। सामने आई वस्तु इच्छा न होने पर भी दृष्टिगोचर हो ही जाती है, बोला हुआ शब्द श्रोत्र का विषय बन ही जाता है। साधु-साध्वी अपनी इन्द्रियो को बन्द करके रख नही सकते। ऐसी स्थिति मे इन्द्रिय द्वारा गृहीत विषय मे राग-द्वेष न उत्पन्न होने देना ही इन्द्रियगोपन, इन्द्रियदमन अथवा इन्द्रियसंयम कहलाता है। इस साधना के लिए मन को समभाव का अभ्यासी बनाने का सदैव प्रयास करते रहना आवश्यक है।

यही इस अध्ययन का सार-संक्षेप है।

चउत्थं अज्झयणं : कुम्मे

जंबू स्वामी का प्रश्न

१—जइ ण भंते ! समणेण भगवया महावीरेण नायाण तच्चस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते, चउत्थस्स ण णायाण के अट्ठे पन्नत्ते ?

श्री जम्बू स्वामी अपने गुरुदेव श्री सुधर्मा स्वामी से प्रश्न करते है—'भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने ज्ञात अंग के तृतीय अध्ययन का यह (पूर्वोक्त) अर्थ फरमाया है तो चौथे ज्ञात अध्ययन का क्या अर्थ फरमाया है ?'

सुधर्मा स्वामी का उत्तर

२—एव खलु जंबू ! तेण कालेण तेण समएण वाणारसी नाम नयरी होत्था, वण्णओ[1]। तीसे ण वाणारसीए नयरीए बहिया उत्तर पुरच्छिमे दिसिभागे गगाए महानदीए मयगतीरद्दहे नाम दहे होत्था, अणुपुव्व-सुजाय-वप्प-गभीर-सीयल-जले अच्छ विमल-सलिल पलिच्छन्ने संछन्नपत्त-पुप्फ-पलासे बहुउप्पल-पउम-कुमुय-नलिस-सुभग-सोगधिय-पुंडरीय-महापुंडरीय-सयपत्त-सहस्सपत्त-केसर-पुप्फोवचिए पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे।

श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं—हे जम्बू ! उस काल और उस समय मे वाणारसी (बनारस) नामक नगरी थी। यहाँ उसका वर्णन औपपातिक सूत्र के नगरी-वर्णन के समान कहना चाहिए।

उस वाणारसी नगरी के बाहर गगा नामक महानदी के ईशान कोण मे मृतगगातीरहद नामक एक ह्रद था। उसके अनुक्रम मे सुदर सुशोभित तट थे। उसका जल गहरा और शीतल था। ह्रद स्वच्छ एव निर्मल जल से परिपूर्ण था। कमलिनियो के पत्तो और फूलो की पाखुडियो से आच्छादित था। बहुत से उत्पलो (नीले कमलो), पद्मो (लाल कमलो), कुमुदो (चन्द्रविकासी कमलों), नलिनों तथा सुभग, सौगधिक, पुण्डरीक, महापुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र आदि कमलों से तथा केसरप्रधान अन्य पुष्पो से समृद्ध था। इस कारण वह आनन्दजनक, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप था।

३—तत्थ ण बहूण मच्छाण य कच्छपाण य गाहाण य मगराण य सुसुमाराण य सइयाण य साहस्सियाण य सयसाहस्सियाण य जूहाइ निब्भयाइ निरुव्विग्गाइं सुहसुहेण अभिरममाणाइं अभिरममाणाइ विहरति।

उस ह्रद मे सैकडो, सहस्रो और लाखो मत्स्यों कच्छो, ग्राहो, मगरो और सुसुमार जाति के जलचर जीवो के समूह भय से रहित, उद्वेग से रहित, सुखपूर्वक रमते रमते विचरण करते थे।

---

१ औपपातिकसूत्र १

४—तस्स ण मयगतीरद्दहस्स अदूरसामते एत्थ ण मह एगे मालुयाकच्छए होत्था,[1] वण्णओ। तत्थ ण दुवे पावसियालगा परिवसंति-पावा चडा रोद्दा तल्लिच्छा साहसिया लोहियपाणी आमिसत्थी आमिसाहारा आमिसप्पिया आमिसलोला आमिस गवेसमाणा रत्ति वियालचारिणो दिया पच्छन्न चावि चिट्ठति।

उस मृतगगातीर ह्रद के समीप एक बडा मालुकाकच्छ था। उसका वर्णन द्वितीय अध्ययन के अनुसार यहा कहना चाहिए। उस मालुकाकच्छ मे दो पापी शृगाल निवास करते थे। वे पाप का आचरण करने वाले, चड (क्रोधी) रौद्र (भयकर) इष्ट वस्तु को प्राप्त करने मे दत्तचित्त और साहसी थे। उनके हाथ अर्थात् अगले पैर रक्तरजित रहते थे। वे मास के अर्थी, मासाहारी, मासप्रिय एव मासलोलुप थे। मास की गवेषणा करते हुए रात्रि और सन्ध्या के समय घूमते थे और दिन मे छिपे रहते थे।

कूर्मों का निर्गमन

५—तए ण ताओ मयगतीरद्दहाओ अन्नया कयाइ सूरियसि चिरत्थमियसि लुलियाए सझाए पविरलमाणुससि णिसतपडिणिसतसि समाणसि दुवे कुम्मगा आहारत्थी आहार गवेसमाणा सणिय सणिय उत्तरति। तस्सेव मयगतीरद्दहस्स परिपेरतेण सव्वओ समता परिघोलेमाणा परिघोलेमाणा वित्ति कप्पेमाणा विहरति।

तत्पश्चात् किसी समय, सूर्य के बहुत समय पहले अस्त हो जाने पर, सन्ध्याकाल व्यतीत हो जाने पर, जब कोई विरले मनुष्य ही चलते-फिरते थे और सब मनुष्य अपने-अपने घरो मे विश्राम कर रहे थे अथवा सब लोग चलने-फिरने से विरक्त हो चुके थे, तब मृतगगातीर ह्रद मे से आहार के अभिलाषी दो कछुए बाहर निकले। वे मृतगगातीर ह्रद के आसपास चारो ओर फिरते हुए अपनी आजीविका करते हुए विचरण करने लगे, अर्थात् आहार की खोज मे फिरने लगे।

पापी शृगाल

६—तयाणतर च ण ते पावसियालगा आहारत्थी जाव आहार गवेसमाणा मालुयाकच्छयाओ पडिणिक्खमति। पडिणिक्खमित्ता जेणेव मयगतीरे दहे तेणेव उवागच्छति। उवागच्छित्ता तस्सेव मयगतीरद्दहस्स परिपेरतेण परिघोलेमाणा परिघोलेमाणा वित्ति कप्पेमाणा विहरति।

तए ण ते पावसियाला ते कुम्मए पासति, पासित्ता जेणेव ते कुम्मए तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तत्पश्चात् आहार के अर्थी यावत् आहार की गवेषणा करते हुए वे (पूर्वोक्त) दोनो पापी शृगाल मालुकाकच्छ से बाहर निकले। निकल कर जहाँ मृतगगातीर नामक ह्रद था, वहाँ आए। आकर उसी मृतगगातीर ह्रद के पास इधर-उधर चारो ओर फिरने लगे और आहार की खोज करते हुए विचरण करने लगे—आहार की तलाश करने लगे।

तत्पश्चात् उन पापी सियारो ने उन दो कछुओ को देखा। देखकर जहाँ दोनो कछुए थे, वहाँ आने के लिए प्रवृत्त हुए।

---

१ द्वि अ सूत्र ५

७—तए ण ते कुम्मगा ते पावसियालए एज्जमाणे पासंति । पासित्ता भीता तत्था तसिया उव्विग्गा संजातभया हत्थे य पाए य गीवाओ य सएहिं सएहिं काएहिं साहरंति, साहरित्ता निच्चला निप्फंदा तुसिणीया संचिट्ठंति ।

तत्पश्चात् उन कछुओं ने उन पापी सियारों को आता देखा । देखकर वे डरे, त्रास को प्राप्त हुए, भागने लगे, उद्वेग को प्राप्त हुए और बहुत भयभीत हुए । उन्होंने अपने हाथ, पैर और ग्रीवा को अपने शरीर में गोपित कर लिया—छिपा लिया, गोपन करके निश्चल, निस्पंद (हलन चलन से रहित) और मौन—शान्त रह गए ।

शृगालों की चालाकी

८—तए ण ते पावसियालया जेणेव ते कुम्मगा तेणेव उवागच्छंति । उवागच्छित्ता ते कुम्मगा सव्वओ समंता उव्वत्तेन्ति, परियत्तेन्ति, आसारेन्ति, संसारेन्ति, चालेन्ति, घट्टेति, फंदेन्ति, खोभेन्ति, नहेहिं आलुंपंति, दंतेहि य अक्खोडेंति, नो चेव णं संचाएंति तेसिं कुम्मगाणं सरीरस्स आबाहं वा, पबाहं वा, बाबाहं वा उप्पाएत्तए छविच्छेयं वा करेत्तए ।

तए णं ते पावसियालया एए कुम्मए दोच्चं पि तच्चंपि सव्वओ समंता उव्वत्तेंति, जाव नो चेव णं संचाएंति करेत्तए । ताहे संता तंता परितंता निव्विण्णा समाणा सणियं सणियं पच्चोसक्कंति, एगंतमवक्कमंति, निच्चला निप्फंदा तुसिणीया संचिट्ठंति ।

तत्पश्चात् वे पापी सियार जहाँ वे कछुए थे, वहाँ आए । आकर उन कछुओं को सब तरफ से फिराने-घुमाने लगे, स्थानान्तरित करने लगे, सरकाने लगे, हटाने लगे, चलाने लगे, स्पर्श करने लगे, हिलाने लगे, क्षुब्ध करने लगे, नाखूनों से फाडने लगे और दांतों से चीथने लगे, किन्तु उन कछुओं के शरीर को थोडी बाधा, अधिक बाधा या विशेष बाधा उत्पन्न करने में अथवा उनकी चमडी छेदने में समर्थ न हो सके ।

तत्पश्चात् उन पापी सियारों ने इन कछुओं को दूसरी बार और तीसरी बार सब ओर से घुमाया-फिराया, किन्तु यावत् वे उनकी चमडी छेदने में समर्थ न हुए । तब वे श्रान्त हो गये—शरीर से थक गए, तान्त हो गए—मानसिक ग्लानि को प्राप्त हुए और शरीर तथा मन दोनों से थक गए तथा खेद को प्राप्त हुए । धीमे-धीमे पीछे लौट गये, एकान्त में चले गये और निश्चल, निस्पंद तथा मूक होकर ठहर गये ।

असंयत कूर्म की दुर्दशा

९—तत्थ णं एगे कुम्मए ते पावसियालए चिरगए दूरगए जाणित्ता सणियं सणियं एगं पायं निच्छुभइ । तए णं ते पावसियालया तेणं कुम्मएणं सणियं सणियं एगं पायं नीणियं पासंति । पासित्ता ताए उक्किट्ठाए गईए सिग्घं चवलं तुरियं चंडं जइणं वेगिइं जेणेव से कुम्मए तेणेव उवागच्छंति । उवागच्छित्ता तस्स णं कुम्मगस्स तं पायं नखेहिं आलुंपंति दंतेहिं अक्खोडेंति, तओ पच्छा मंसं च सोणियं च आहारेंति, आहारित्ता तं कुम्मगं सव्वओ समंता उव्वत्तेंति जाव नो चेव णं संचाइंति करेत्तए, ताहे दोच्चं पि अवक्कमंति, एवं चत्तारि वि पाया जाव सणियं सणियं गीवं णीणेइ । तए णं ते पावसियालया तेणं कुम्मएणं गीवं णीणियं पासंति, पासित्ता सिग्घं चवलं तुरियं चंडं नहेहिं

दतेहिं कवाल विहाडेंति, विहाडित्ता त कुम्मग जीवियाओ ववरोवेंति, ववरोवित्ता मस च सोणिय च आहारेंति।

उन दोनो कछुओ मे से एक कछुए ने उन पापी सियारो को बहुत समय पहले और दूर गया जान कर धीरे-धीरे अपना एक पैर बाहर निकाला।

तत्पश्चात् उन पापी सियारो ने देखा कि उस कछुए ने धीरे-धीरे एक पैर निकाला है। यह देखकर वे दोनो उत्कृष्ट गति से शीघ्र, चपल, त्वरित, चड, जययुक्त और वेगयुक्त रूप से जहाँ वह कछुआ था, वहाँ गये। जाकर उन्होने कछुए का वह पैर नाखूनो से विदारण किया और दातो से तोडा। तत्पश्चात् उसके मास और रक्त का आहार किया। आहार करके वे कछुए को उलट-पुलट कर देखने लगे, किन्तु यावत् उसकी चमडी छेदने मे समर्थ न हुए। तब वे दूसरी बार हट गए—दूर चले गए। इसी प्रकार चारो पैरो के विषय मे कहना चाहिए। तात्पर्य यह है कि शृगालो के दूसरी बार चले जाने पर कछुए ने दूसरा पैर बाहर निकाला। पास ही छिपे शृगालो ने यह देखा तो वे पुन झपट कर आ गए और कछुए का दूसरा पैर खा गए। शेष दो पैर और ग्रीवा शरीर म छिपी होने से उनका कुछ भी न बिगाड सके। तब निराश होकर शृगाल फिर एक ओर चले गए और छिप गए। जब कुछ देर हो गई तो कछुए ने अपना तीसरा पैर बाहर निकाला। शृगालो ने यह देखकर फिर आक्रमण कर दिया और वह तीसरा पैर भी खा लिया। एक पैर और ग्रीवा फिर भी बची रही। शृगाल उसे न फाड सके। तब वे फिर एकान्त मे जाकर छिप गये। तत्पश्चात् कछुए ने चौथा पैर बाहर निकाला और तभी शृगालो ने हमला बोल कर वह चौथा पैर भी खा लिया। इसी प्रकार कुछ समय व्यतीत होने पर उस कछुए ने ग्रीवा बाहर निकाली। उन पापी सियारो ने देखा कि कछुए ने ग्रीवा बाहर निकाली है। यह देख कर वे शीघ्र ही उसके समीप आए। उन्होने नाखूनो से विदारण करके और दाँतो से तोड कर उसके कपाल को अलग कर दिया। अलग करके कछुए को जीवन-रहित कर दिया। जीवन-रहित करके उसके मास और रुधिर का आहार किया।

निष्कर्ष

१०—एवामेव समणाउसो! जो अम्ह निग्गथो वा निग्गथी वा आयरियउवज्झायाण अतिए पव्वइए समाणे पच य से इदियाइ अगुत्ताइ भवति, से ण इह भवे चेव बहूण समणाण बहूण समणीण सावगाण साविगाण हीलणिज्जे, परलोए वि य ण आगच्छइ बहूणि दडणाणि जाव[1] अणुपरियट्टइ, जहा कुम्मए अगुत्तिदिए।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो! हमारे जो निग्रन्थ अथवा निग्रन्थी आचार्य या उपाध्याय के निकट दीक्षित होकर पाँचो इन्द्रियो का गोपन नही करते है, वे इसी भव मे बहुत साधुओ, साध्वियो, श्रावको, श्राविकाओ द्वारा हीलना करने योग्य होते हैं और परलोक मे भी बहुत दड पाते हैं, यावत् अनन्त ससार मे परिभ्रमण करते है, जैसे अपनी इन्द्रियो—अगो का गोपन न करने वाला वह कछुआ मृत्यु को प्राप्त हुआ।

---

१ तृ अ सूत्र २०

सयत कूर्म

११—तए ण ते पावसियालया जेणेव से दोच्चए कुम्मए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तं कुम्मय सव्वओ समता उव्वत्तेंति जाव[1] दंतेहिं अक्खुडंति जाव[2] करित्तए ।

तए ण ते पावसियालया दोच्च पि तच्च पि जाव नो संचाएंति तस्स कुम्मगस्स किंचि आबाहं वा पबाहं वा विबाहं वा जाव [उप्पाएत्तए] छविच्छेय वा करित्तए, ताहे संता तंता परितंता निव्विण्णा समाणा जामेव दिसिं पाउब्भूआ तामेव दिसिं पडिगया ।

तत्पश्चात् वे पापी सियार जहाँ दूसरा कछुआ था, वहाँ पहुँचे । पहुँच कर उस कछुए को चारों तरफ से, सब दिशाओं से उलट-पलट कर देखने लगे, यावत् दांतों से तोड़ने लगे, परन्तु उसकी चमड़ी का छेदन करने में समर्थ न हो सके ।

तत्पश्चात् वे पापी सियार दूसरी वार और तीसरी वार दूर चले गये किन्तु कछुए ने अपने अंग बाहर न निकाले, अतः वे उस कछुए को कुछ भी आबाधा या विबाधा अर्थात् थोड़ी या बहुत या अत्यधिक पीड़ा उत्पन्न न कर सके । यावत् उसकी चमड़ी छेदने में भी समर्थ न हो सके । तब वे श्रान्त, क्लान्त और परितान्त होकर तथा खिन्न होकर जिस दिशा से आए थे, उसी दिशा में लौट गए ।

१२—तए ण से कुम्मए ते पावसियालए चिरगए दूरगए जाणित्ता सणियं सणियं गीवं नेणेइ, नेणित्ता दिसावलोयं करेइ, करित्ता जमगसमगं चत्तारि वि पाए नीणेइ, नीणेत्ता ताए उक्किट्ठाए कुम्मगईए वीइवयमाणे वीइवयमाणे जेणेव मयगतीरद्दहे तेणेव उवागच्छइ । उवागच्छित्ता मित्त-नाइ नियग सयण-संबंधि परियणेणं सद्धिं अभिसमन्नागए यावि होत्था ।

तत्पश्चात् उस कछुए ने उन पापी सियारों को चिरकाल से गया और दूर गया जान कर धीरे-धीरे अपनी ग्रीवा बाहर निकाली । ग्रीवा निकालकर सब दिशाओं में अवलोकन किया । अवलोकन करके एक साथ चारों पैर बाहर निकाले और उत्कृष्ट कूर्मगति से अर्थात् कछुए के योग्य अधिक से अधिक तेज चाल से दौड़ता-दौड़ता जहाँ मृतगंगातीर नामक ह्रद था, वहाँ जा पहुँचा । वहाँ आकर मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबंधी और परिजनों से मिल गया ।

सारांश

१३—एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं समणो वा समणी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे पंच से इंदियाइं गुत्ताइं भवंति, जाव [से णं इहभवे चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाणं य अच्चणिज्जे वंदणिज्जे नमंसणिज्जे पूयणिज्जे सक्कारणिज्जे सम्माणणिज्जे कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं विणएणं पज्जुवासणिज्जे भवइ ।

परलोए वि य णं नो बहूणि हत्थच्छेयणाणि य कण्णच्छेयणाणि य नासाछेयणाणि य एवं हिययउप्पाडणाणि य वसणुप्पाडणाणि य उल्लंबणाणि य पाविहिइ, पुणो अणाइयं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंत संसारकंतारं वीइवइस्सइ] जहा उ से कुम्मए गुत्तिंदिए ।

१-२ अ० ४ सू० ८

हे आयुष्मन् श्रमणो ! इसी प्रकार हमारा जो श्रमण या श्रमणी (आचार्य या उपाध्याय के निकट मुंडित होकर दीक्षित हुआ है), पाचो इन्द्रियो का गोपन करता है, जैसे उस कछुए ने अपनी इन्द्रियो को गोपन करके रखा था, वह इसी भव मे बहुसख्यक श्रमणो, श्रमणियो, श्रावको और श्राविकाओ द्वारा अर्चनीय वन्दनीय नमस्करणीय पूजनीय सत्करणीय और सम्माननीय होता है। वह कल्याण मगल देवस्वरूप एव चैत्यस्वरूप तथा उपासनीय बनता है।

परलोक मे उसे हाथो, कानो और नाक के छेदन के दु ख नही भोगने पडते। हृदय के उत्पाटन, वृषणो—अडकोषो के उखाडने, फासी चढने आदि के कष्ट नही झेलने पडते। वह अनादि-अनन्त ससार-कातार को पार कर जाता है।

१४—एव खलु जबू ! समणेण भगवया महावीरेण चउत्थस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि।

अध्ययन का उपसहार करते हुए सुधर्मा स्वामी कहते है—हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर ने चौथे ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ कहा है, जैसा मैंने भगवान् से सुना है, वैसा ही मैं कहता हूँ।

।। चतुर्थ अध्ययन समाप्त ।।

पञ्चम अध्ययन : शैलक

सार संक्षेप

द्वारका नगरी में बाईसवें तीर्थंकर भगवान् अरिष्टनेमि का पदार्पण हुआ। वासुदेव कृष्ण अपने वृहत् परिवार के साथ प्रभु की उपासना और धर्मदेशना श्रवण करने पहुँचे। द्वारका के नर नारी भी पीछे न रहे। साक्षात् तीर्थंकर भगवान् के मुख चन्द्र से प्रवाहित होने वाले वचनामृत से कौन भव्य प्राणी वंचित रहना चाहता ?

द्वारका में थावच्चा नामक एक सम्पन्न गृहस्थ महिला थी। उसका इकलौता पुत्र थावच्चापुत्र के नाम से ही अभिहित होता था। वह भी भगवान् की धर्मदेशना श्रवण करने पहुँचा। धर्मदेशना सुनी और वैराग्य के रंग में रंग गया। माता ने बहुत समझाया, आजीजी की, किन्तु थावच्चापुत्र अपने निश्चय पर अटल रहा। अन्त में विवश होकर माता ने दीक्षा-महोत्सव करने का प्रस्ताव किया, जिसे उसने मौनभाव से स्वीकार किया।

थावच्चा छत्र, चामर आदि मांगने कृष्ण महाराज के पास गई तो उन्होंने स्वयं अपनी ओर से महोत्सव मनाने को कहा। थावच्चापुत्र के वैराग्य की परीक्षा करने वे स्वयं उसके घर पर गए। सोलह हजार राजाओं के राजा, अर्द्धभरत क्षेत्र के अधिपति महाराज श्रीकृष्ण का सहज रूप से थावच्चा के घर जा पहुँचना उनकी असाधारण महत्ता और निरहंकारिता का द्योतक है। श्रीकृष्ण को थावच्चापुत्र की परीक्षा के पश्चात् जब विश्वास हो गया कि उसका वैराग्य आंतरिक है, सच्चा है तो उन्होंने द्वारका नगरी में आम घोषणा करवा दी—'भगवान् अरिष्टनेमि के निकट दीक्षित होने वाले के आश्रित जनों के पालन-पोषण-संरक्षण का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व वासुदेव वहन करेंगे। जो दीक्षित होना चाहे, निश्चिन्त होकर दीक्षा ग्रहण करे।'

घोषणा सुनकर एक हजार पुरुष थावच्चापुत्र के साथ प्रव्रजित हुए। कालान्तर में थावच्चापुत्र अनगार, भगवान् अरिष्टनेमि की अनुमति लेकर अपने साथी एक सहस्र मुनियों के साथ देश-देशान्तर में पृथक् विचरण करने लगे।

विचरण करते-करते थावच्चापुत्र सौगंधिका नगरी पहुँचे। वहाँ का नगर-सेठ सुदर्शन यद्यपि सांख्यधर्म का अनुयायी और शुक परिव्राजक का शिष्य था, तथापि वह थावच्चापुत्र की धर्मदेशना श्रवण करने गया। थावच्चापुत्र और सुदर्शन श्रेष्ठी के बीच धर्म के मूल आधार को लेकर संवाद हुआ, जिसका विवरण इस अध्ययन में उल्लिखित है। संवाद से सन्तुष्ट होकर सुदर्शन ने निर्ग्रन्थ प्रवचन अर्थात् जिनधर्म को अंगीकार कर लिया।

शुक परिव्राजक को जब इस घटना का पता चला तो वह सुदर्शन को पुनः अपना अनुयायी बनाने के विचार से सौगंधिका नगरी में आया। सुदर्शन डिगा नहीं। दोनों धर्माचार्यों—शुक और थावच्चापुत्र—में धर्मचर्चा का आयोजन हुआ। शुक अपने शिष्यों के साथ थावच्चापुत्र के समीप पहुँचे। दोनों की चर्चा तो हुई किन्तु उसे कोई सात्त्विक चर्चा नहीं कहा जा सकता। शुक ने शब्दों के चक्कर में थावच्चापुत्र को फँसाने का प्रयास किया मगर थावच्चापुत्र ने उसका गूढ़ अभिप्राय समझकर

अत्यन्त कौशल के साथ उत्तर दिए। प्रश्नोत्तरो का उल्लेख मूल पाठ मे आया है। अन्त मे शुक परिव्राजक, थावच्चापुत्र के शिष्य बन गए। शुक के भी एक हजार शिष्य थे। उन्होने भी अपने गुरु का अनुसरण किया—वे भी साथ ही दीक्षित हो गए।

शुक अनगार एक बार किसी समय शैलकपुर पधारे। वहाँ का राजा शैलक पहले ही थावच्चापुत्र के उपदेश से श्रमणोपासक धर्म अगीकार कर चुका था। इस बार वह अपने पाच सौ मन्त्रियो के साथ दीक्षित हो गया। उसका पुत्र मड्डुक राजगद्दी पर बैठा।

शैलकमुनि साधुचर्या के अनुसार देश-देशान्तरो मे विचरण करने लगे। उनके गुरु शुक-मुनि तब विद्यमान नही थे—सिद्धिलाभ कर चुके थे। शैलक राजर्षि का सुखो मे पला सुकोमल शरीर साधु-जीवन की कठोरता को सहन नही कर सका। शरीर मे दाद-खाज हो गई, पित्तज्वर रहने लगा, जिसके कारण वे तीव्र वेदना से पीडित हो गए। भ्रमण करते-करते शैलकपुर मे पधारे। उनका पुत्र मड्डुक राजा उपासना के लिए उपस्थित हुआ। उसने राजर्षि शैलक के रोगग्रस्त शरीर को देखकर यथोचित चिकित्सा करवाने की प्रार्थना की। शैलक ने स्वीकृति दी। चिकित्सा होने लगी। विस्मय का विषय है कि चिकित्सको ने इन्हे मद्यपान का परामर्श दिया और वे मद्यपान करने भी लगे।

मद्यपान जब व्यसन का रूप ग्रहण कर लेता है तो व्यक्ति कितना ही विवेकशाली और किसी भी पद पर प्रतिष्ठित क्यो न हो, उसका अध पतन हुए बिना नही रहता। राजर्षि मद्यपान के कुप्रभाव से साधुत्व को भूल गए और सरस भोजन एव मद्यपान मे मस्त रहने लगे। वहाँ से अन्यत्र जाने का विचार तक न आने लगा। तब उनके साथी मुनियो ने एकत्र होकर एक अनगार पथक को, जो गृहस्थावस्था मे उनका मुख्यमत्री था, उनकी सेवा मे छोडकर स्वय विहार कर जाने का निर्णय किया। वे विहार कर गए, राजर्षि वही जमे रहे।

कार्त्तिकी चौमासी का दिन था। शैलक आहार-पानी करके खूब मदिरापान करके सुखपूर्वक सोये पडे थे। उन्हे आवश्यक क्रिया करने का स्मरण तक न था। पथक मुनि चातुर्मासिक प्रतिक्रमण करने को उद्यत हुए और शैलक के चरणो से अपने मस्तक का स्पर्श किया। शैलक की निद्रा भग हो गई और वे क्रोध मे आग बबूला हो उठे। पथक को कटु और कठोर शब्द कहने लगे। पथक मुनि ने क्षमा-प्रार्थना करते हुए कार्त्तिकी चौमासी की बात कही।

राजर्षि की धर्म-चेतना जागृत हो उठी। सोचा—राज्य का परित्याग करके मैंने साधुत्व अगीकार किया और अब ऐसा प्रमत्त एव शिथिलाचारी हो गया हूँ! साधु के लिए यह सब अशोभन है।

दूसरे ही दिन उन्होने शैलकपुर छोड दिया। पथक मुनि के साथ विहार कर चले गए। यह समाचार जानकर उनके सभी शिष्य साथी मुनि उनके साथ आ मिले।

अन्तिम समय मे सभी मुनियो ने सिद्धि प्राप्त की।

इस अध्ययन मे मुनि-जीवन एव उनके पारस्परिक सबन्ध कैसे हो, इसके सबध मे गहरी मीमासा एव विचारणा करने की सामग्री विद्यमान है।

पंचमं अज्झयणं : सेलए

प्रारम्भ

१—जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं चउत्थस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, पंचमस्स णं भंते! नायज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

जम्बू स्वामी श्री सुधर्मा स्वामी से प्रश्न करते हैं—भगवन्! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने चौथे ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है तो भगवन्! पाँचवें ज्ञात-अध्ययन का क्या अर्थ कहा है?

द्वारका नगरी

२—एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवती नामं नयरी होत्था, पाईण-पडीणायया उदीण-दाहिणवित्थिन्ना नवजोयणवित्थिन्ना दुवालसजोयणायामा धणवइ-मइ-निम्मिया चामीयर-पवर-पायार-णाणामणि-पंचवण्ण-कविसीसगसोहिया अलयापुरिसंकासा पमुइय-पक्कीलिया पच्चक्खं देवलोयभूया।

श्री सुधर्मा स्वामी उत्तर देते हैं—हे जम्बू! उस काल और उस समय में द्वारवती (द्वारका) नामक नगरी थी। वह पूर्व-पश्चिम में लम्बी और उत्तर-दक्षिण में चौड़ी थी। नौ योजन चौड़ी और बारह योजन लम्बी थी। वह कुबेर की मति से निर्मित हुई थी। सुवर्ण के श्रेष्ठ प्राकार से और पंचरंगी नाना मणियों के बने कंगूरों से शोभित थी। अलकापुरी—इन्द्र की नगरी के समान सुन्दर जान पड़ती थी। उसके निवासी जन प्रमोदयुक्त एवं क्रीड़ा करने में तत्पर रहते थे। वह साक्षात् देवलोक सरीखी थी।

रैवतक पर्वत

३—तीसे णं बारवईए नयरीए बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए रेवतगे नामं पव्वए होत्था तुंगे गगणतलमणुलिहंतसिहरे नाणाविहगुच्छ-गुम्म-लया-वल्लि-परिगए हंस-मिग-मऊर-कोंच-सारस-चक्कवाय-मयणसाल-कोइलकुलोववेए अणेगतडग-वियर-उज्झर-पवाय-पब्भार-सिहरपउरे अच्छरगण-देवसंघ-चारण-विज्जाहर-मिहुणसंविचिण्णे निच्चच्छणए दसार-वरवीर-पुरिसतेलोक्कबलवगाणं सोमे सुभगे पियदंसणे सुरूवे पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे।

उस द्वारका नगरी के बाहर उत्तरपूर्व दिशा अर्थात् ईशानकोण में रैवतक (गिरनार) नामक पर्वत था। वह बहुत ऊँचा था। उसके शिखर गगन तल को स्पर्श करते थे। वह नाना प्रकार के गुच्छों, गुल्मों, लताओं और वल्लियों से व्याप्त था। हंस, मृग, मयूर, क्रौंच, सारस, चक्रवाक, मदनसारिका (मैना) और कोयल आदि पक्षियों के झुंडों से व्याप्त था। उसमें अनेक तट और गंडशैल थे। बहुसंख्यक गुफाएं थीं। झरने, प्रपात, प्राग्भार (थोड़े-थोड़े नमे हुए गिरिप्रदेश) और शिखर थे। वह पर्वत अप्सराओं के समूहों, देवों के समूहों, चारण मुनियों और विद्याधरों के मिथुनों (जोड़ों)

से युक्त था। उसमे दशार वश के समुद्रविजय आदि वीर पुरुष थे, जो कि नेमिनाथ के साथ होने के कारण तीनो लोको से भी अधिक बलवान् थे, नित्य नये उत्सव होते रहते थे। वह पर्वत सौम्य, सुभग, देखने मे प्रिय, सुरूप, प्रसन्नता प्रदान करने वाला, दर्शनीय, अभिरूप तथा प्रतिरूप था।

विवेचन—यद्यपि द्वारवती नगरी, रैवतक गिरि और अगले सूत्रो मे वर्णित नन्दनवन आदि सूत्र-रचना के काल मे भी विद्यमान थे, तथापि भूतकाल मे जिस पदार्थ की जो स्थिति-अवस्था अथवा पर्याय थी वह वर्त्तमान काल मे नही रहती। यो तो समय-समय मे पर्याय का परिवर्त्तन होता रहता है किन्तु दीर्घकाल के पश्चात् तो इतना बडा परिवर्त्तन हो जाता है कि वह पदार्थ नवीन-सा प्रतीत होने लगता है। भगवान् नेमिनाथ के समय की द्वारवती और भगवान् महावीर के और उनके भी पश्चात् की द्वारवती मे आमूल-चूल परिवर्त्तन हो गया। इसी दृष्टिकोण से सूत्रो मे इन स्थानो के लिए भूतकाल की क्रिया का प्रयोग किया गया है।

४—तस्स ण रेवयगस्स अदूरसामते एत्थ ण णदणवणे नाम उज्जाणे होत्था सव्वोउय पुप्फ-फलसमिद्धे रम्मे नदणवणप्पगासे पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे।

तस्स ण उज्जाणस्स बहुमज्झभागे सुरप्पिए नाम जक्खाययणे होत्था दिव्वे, वन्नओ।[1]

उस रैवतक पर्वत से न अधिक दूर और न अधिक समीप एक नन्दनवन नामक उद्यान था। वह सब ऋतुओ सबन्धी पुष्पो और फलो से समृद्ध था, मनोहर था। (सुमेरु पर्वत के) नन्दनवन के समान आनन्दप्रद, दर्शनीय, अभिरूप तथा प्रतिरूप था।

उस उद्यान के ठीक बीचोबीच सुरप्रिय नामक दिव्य यक्ष-आयतन था। यहा यक्षायतन का वर्णन औपपातिक सूत्र के अनुसार कह लेना चाहिए।

श्रीकृष्ण-वर्णन

५—तत्थ ण बारवईए नयरीए कण्हे नाम वासुदेवे राया परिवसइ। से ण तत्थ समुद्दविजय-पामोक्खाण दसण्ह दसाराण, बलदेवपामोक्खाण पचण्ह महावीराण, उग्गसेणपामोक्खाण सोलसण्ह राईसहस्साण पज्जुण्णपामोक्खाण अद्धुट्ठाण कुमारकोडीण, सबपामोक्खाण सट्ठीए दुद्दतसाहस्सीण, वीरसेणपामोक्खाण एक्कवीसाए वीरसाहस्सीण, महासेनपामोक्खाण छप्पन्नाए बलवगसाहस्सीण, रुप्पिणीपामोक्खाण बत्तीसाए महिलासाहस्सीण, अणगसेणापामोक्खाण अणेगाण गणियासाहस्सीण, अन्नेसिं च बहूण ईसर तलवर जाव [माडबिय-कोडु बिय इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ] सत्थवाहपभिईण वेयड्ढ-गिरिसायरपेरतस्स य दाहिणड्ढभरहस्स बारवईए य नयरीए आहेवच्च जाव [पोरेवच्च सामित्त भट्टित्त महत्तरगत्त आणाईसर-सेणावच्च कारेमाणे] पालेमाण विहरइ।

उस द्वारका नगरी मे महाराज कृष्ण नामक वासुदेव निवास करते थे। वह वासुदेव वहाँ समुद्रविजय आदि दश दशारो, बलदेव आदि पाँच महावीरो, उग्रसेन आदि सोलह हजार राजाओ, प्रद्युम्न आदि साढे तीन करोड कुमारो, शाम्ब आदि साठ हजार दुर्दान्त योद्धाओ, वीरसेन आदि इक्कीस हजार पुरुषो—महान् पुरुषार्थ वाले जनो, महासेन आदि छप्पन हजार बलवान् पुरुषो, रुक्मिणी आदि बत्तीस हजार रानियो, अनगसेना आदि अनेक सहस्र गणिकाओ तथा अन्य बहुत-से ईश्वरो

---

१ औप सूत्र २

(ऐश्वर्यवान् धनाढ्य सेठों) तलवरों (कोतवालों) यावत् (माडंबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति) सार्थवाह आदि का एवं उत्तर दिशा में वैताढ्य पर्वत पर्यन्त तथा अन्य तीन दिशाओं में लवणसमुद्र पर्यन्त दक्षिणार्ध भरत क्षेत्र का और द्वारका नगरी का अधिपतित्व [नेतृत्व, स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरत्व] करते हुए और पालन करते हुए विचरते थे।

थावच्चापुत्र

६—तत्थ णं बारवईए नयरीए थावच्चा णामं गाहावइणी परिवसइ, अड्ढा जाव [दित्ता वित्ता वित्थिन्न विउल भवन-सयणासण-जाण-वाहणा बहुधणा-जायरूवरयया आओग-पओगसंपउत्ता बहुदासी-दास-गो-महिस-गवेलगप्पभूया बहुजणस्स] अपरिभूया। तीसे णं थावच्चाए गाहावइणीए पुत्ते थावच्चापुत्ते णामं सत्थवाहदारए होत्था सुकुमालपाणिपाए[1] जाव सुरूवे।

तए णं सा थावच्चा गाहावइणी तं दारयं साइरेगअट्ठवासजायं जाणित्ता सोहणंसि तिहि-करण-नक्खत्त-मुहुत्तंसि कलायरियस्स उवणेइ, जाव भोगसमत्थं जाणित्ता बत्तीसाए इब्भकुलबालियाणं एगदिवसेणं पाणिं गेण्हावेइ, बत्तीसओ दाओ जाव बत्तीसाए इब्भकुलबालियाहिं सद्धिं विउले सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधे जाव भुंजमाणे विहरइ।

द्वारका नगरी में थावच्चा नामक एक गाथापत्नी (गृहस्थ महिला) निवास करती थी। वह समृद्धि वाली थी यावत् [प्रभावशालिनी थी, विस्तीर्ण और विपुल भवन, शय्या, आसन, यान, वाहन उसके यहाँ थे, वह विपुल स्वर्ण-रजत-धन की स्वामिनी थी, उसके यहाँ लेन-देन होता था, दासियों दासों गायों भैंसों एवं बकरियों की प्रचुरता थी] बहुत लोग मिलकर भी उसका पराभव नहीं कर सकते थे। उस थावच्चा गाथापत्नी का थावच्चापुत्र नामक सार्थवाह का बालक पुत्र था। उसके हाथ पैर अत्यन्त सुकुमार थे। वह परिपूर्ण पाँचों इन्द्रियों से युक्त सुन्दर शरीर वाला, प्रमाणोपेत अंगोपांगों से सम्पन्न और चन्द्रमा के समान सौम्य आकृति वाला था। सुन्दर रूपवान् था।

तत्पश्चात् उस थावच्चा गाथापत्नी ने उस पुत्र को कुछ अधिक आठ वर्ष का हुआ जानकर शुभ तिथि, करण, नक्षत्र और मुहूर्त में कलाचार्य के पास भेजा। फिर भोग भोगने में समर्थ (युवा) हुआ जानकर इभ्यकुल की बत्तीस कुमारिकाओं के साथ एक ही दिन में पाणिग्रहण करवाया। प्रासाद आदि बत्तीस-बत्तीस का दायजा दिया अर्थात् थावच्चापुत्र को बत्तीस पत्नियों के लिए बत्तीस प्रासाद आदि सब प्रकार की सामग्री प्रदान की। वह इभ्यकुल की बत्तीस कुमारिकाओं के साथ विपुल शब्द, स्पर्श, रस, रूप, वर्ण और गंध का भोग-उपभोग करता हुआ रहने लगा।

अरिष्टनेमि का समवसरण

७—तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी सो चेव वण्णओ, दसधणुस्सेहे, नीलुप्पल-गवल-गुलिय-अयसिकुसुमप्पगासे, अट्ठारसहिं समणसाहस्सीहिं सद्धिं संपरिवुडे, चत्तालीसाए अज्जियासाहस्सीहिं सद्धिं संपरिवुडे, पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे जाव गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेव बारवई नयरी, जेणेव रेवयगपव्वए, जेणेव नंदणवणे उज्जाणे, जेणेव सुरप्पियस्स जक्खस्स जक्खाययणे, जेणेव असोगवरपायवे, तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता अहापडिरूवं उग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। परिसा निग्गया, धम्मो कहिओ।

---

१ प्रथम अ. १५

उस काल और उस समय मे अरिहन्त अरिष्टनेमि पधारे । धर्म की आदि करने वाले, तीर्थ की स्थापना करने वाले, आदि वर्णन भगवान् महावीर के वर्णन के समान ही यहाँ समझना चाहिए । विशेषता यह है कि भगवान् अरिष्टनेमि दस धनुष ऊँचे थे, नील कमल, भैंस के सींग, नील गुलिका और अलसी के फूल के समान श्याम कान्ति वाले थे । अठारह हजार साधुओ से और चालीस हजार साध्विओ से परिवृत थे । वे भगवान् अरिष्टनेमि अनुक्रम से विहार करते हुए सुखपूर्वक ग्रामानुग्राम पधारते हुए जहाँ द्वारका नगरी थी, जहा गिरनार पर्वत था, जहाँ नन्दनवन नामक उद्यान था, जहाँ सुरप्रिय नामक यक्ष का यक्षायतन था और जहाँ अशोक वृक्ष था, वही पधारे । सयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे । नगरी से परिषद् (जनमडली) निकली । भगवान् ने उसे धर्मोपदेश दिया ।

कृष्ण की उपासना

८—तए ण से कण्हे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे कोडुबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एव वयासी—'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सभाए सुहम्माए मेघोघरसिय गभीर महुरसद्द कोमुदिय भेरिं तालेह ।'

तए ण ते कोडुवियपुरिसा कण्हेण वासुदेवेण एव वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ जाव मत्थए अर्चालि कट्टु 'एव सामी ! तह' त्ति जाव पडिसुर्णेति । पडिसुणित्ता कण्हस्स वासुदेवस्स अतियाओ पडिणिक्खमति । पडिणिक्खमित्ता जेणेव सभा सुहम्मा जेणेव कोमुदिया भेरी तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता त मेघोघरसिय गभीर महुरसद्द भेरिं तालेंति ।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने यह कथा (वृत्तान्त) सुनकर कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो ! शीघ्र ही सुधर्मा सभा मे जाकर मेघो के समूह जैसी ध्वनि वाली एव गम्भीर तथा मधुर शब्द करने वाली कौमुदी भेरी बजाओ ।'

तब वे कौटुम्बिक पुरुष, कृष्ण वासुदेव द्वारा इस प्रकार आज्ञा देने पर हृष्ट-तुष्ट हुए, आनदित हुए । यावत् मस्तक पर अजलि करके 'हे भगवन् ! बहुत अच्छा' ऐसा कहकर उन्होंने आज्ञा अगीकार की । अगीकार करके कृष्ण वासुदेव के पास से चले । चलकर जहाँ सुधर्मा सभा थी और जहाँ कौमुदी नामक भेरी थी, वहा आए । आकर मेघ-समूह के समान ध्वनि वाली तथा गभीर एव मधुर ध्वनि करने वाली भेरी बजाई ।

९—तओ निद्ध-महुर गभीरपडिसुएण पिव सारइएण बलाहएण अणुरसिय भेरीए ।

उस समय भेरी बजाने पर स्निग्ध, मधुर और गभीर प्रतिध्वनि करता हुआ, शरद्ऋतु के मेघ जैसा भेरी का शब्द हुआ ।

१०—तए ण तीसे कोमुइयाए भेरियाए तालियाए समाणीए बारवईए नयरीए नवजोयण-विच्छिन्नाए दुवालसजोयणायामाए सिघाडग तिय-चउक्क-चच्चर-कदर-दरी विवर-कुहर गिरिसिहर-नगर-गोउर-पासाय-दुवार भवण देउल-पडिसुयासयसहस्ससकुल सद्द करेमाणे बारवइ नर्गार सब्भितर-बाहिरिय सव्वओ समता से सद्दे विप्पसरित्था ।

तत्पश्चात् उस कौमुदी भेरी का ताडन करने पर नौ योजन चौड़ी और बारह योजन लम्बी द्वारका नगरी के शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, कन्दरा, गुफा, विवर, कुहर, गिरिशिखर, नगर के गोपुर, प्रासाद, द्वार, भवन, देवकुल आदि समस्त स्थानों में, लाखों प्रतिध्वनियों से युक्त होकर, भीतर और बाहर के भागों सहित सम्पूर्ण द्वारका नगरी को शब्दायमान करता हुआ वह शब्द चारों ओर फैल गया।

११—तए णं बारवईए नयरीए नवजोयणवित्थिण्णाए बारसजोयणायामाए समुद्दविजयपामोक्खा दस दसारा जाव[1] गणियासहस्साइं कोमुईयाए भेरीए सद्दं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठा जाव ण्हाया आविद्धवग्घारियमल्लदामकलावा अहतवत्थचंदणोक्खित्तगायसरीरा अप्पेगइया हयगया एवं गयगया रह-सीया-संदमाणीगया, अप्पेगइया पायविहारचारेणं पुरिसवग्गुरापरिक्खित्ता कण्हस्स वासुदेवस्स अंतियं पाउब्भवित्था।

तत्पश्चात् नौ योजन चौड़ी और बारह योजन लम्बी द्वारका नगरी में समुद्रविजय आदि दस दशार [बलदेव आदि महावीर, उग्रसेन आदि राजा, प्रद्युम्न आदि कुमार, शाम्ब आदि योद्धा, वीरसेन महासेन आदि बलशाली यावत्] अनेक हजार गणिकाएँ उस कौमुदी भेरी का शब्द सुनकर एवं हृदय में धारण करके हृष्ट-तुष्ट, प्रसन्न हुए। यावत् सबों ने स्नान किया। लम्बी लटकने वाली पुष्पमालाओं के समूह को धारण किया। कोरे नवीन वस्त्रों को धारण किया। शरीर पर चन्दन का लेप किया। कोई अश्व पर आरूढ हुए, इसी प्रकार कोई गज पर आरूढ हुए, कोई रथ पर कोई पालकी में और कोई स्यान में बैठे। कोई-कोई पैदल ही पुरुषों के समूह के साथ चले और कृष्ण वासुदेव के पास प्रकट हुए-आए।

१२—तए णं कण्हे वासुदेवे समुद्दविजयपामोक्खे दस दसारे जाव[1] अंतियं पाउब्भवमाणे पासइ। पासित्ता हट्ठ-तुट्ठ जाव कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! चाउरंगिणिं सेणं सज्जेह विजयं च गंधहत्थिं उवट्ठवेह।' ते वि तह त्ति उवट्ठवेंति, जाव तए णं से कण्हे वासुदेवे ण्हाए जाव सव्वालंकारविभूसिए विजयं च गंधहत्थिं दुरूढे समाणे सकोरंट-मल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं महया भड-चडगर-रहपहकर-वंद-परिक्खित्ते बारवईए नयरीए मज्झं-मज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव रेवतगपव्वए जेणेव नंदणवणे उज्जाणे जेणेव सुरप्पियस्स जक्खस्स जक्खाययणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहओ अरिट्ठनेमिस्स छत्ताइछत्तं पडागाइपडागं विज्जाहर-चारणे जंभए य देवे ओवयमाणे उप्पयमाणे पासइ, पासित्ता विजयाओ गंधहत्थीओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छइ, [तं जहा सच्चित्ताणं दव्वाणं विउसरणयाए, अचित्ताणं दव्वाणं अविउसरणयाए, एगसाडिय-उत्तरासंग-करणेणं, चक्खुफासे अंजलिपग्गहेणं, मणसो एगत्तीकरणेणं] जेणामेव अरिट्ठनेमी तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता अरहओ अरिट्ठनेमिस्स नच्चासन्ने नाइदूरे सुस्सूसमाणे नमंसमाणे पंजलिउडे अभिमुहे विणएणं

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने समुद्रविजय वगैरह दस दसारों को तथा पूर्ववर्णित अन्य सबको यावत् अपने निकट प्रकट हुआ देखा। देखकर वह हृष्ट-तुष्ट हुए, यावत् उन्होने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही चतुरंगिणी सेना सजाओ और विजय नामक गंधहस्ती को उपस्थित करो।' कौटुम्बिक पुरुषो ने 'बहुत अच्छा' कह कर सेना सजवाई और विजय नामक गंधहस्ती को उपस्थित किया। तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने स्नान किया। वे सब अलकारो से विभूषित हुए। विजय गंधहस्ती पर सवार हुए। कोरंट वृक्ष के फूलो की माला वाले छत्र को धारण किए हुए और भटो के बहुत बडे समूह से घिरे हुए द्वारका नगरी के बीचोबीच होकर बाहर निकले। जहाँ गिरनार पर्वत था, जहाँ नन्दनवन उद्यान था, जहाँ सुरप्रिय यक्ष का यक्षायतन था और जहा अशोक वृक्ष था, उधर पहुँचे। पहुँचकर अर्हत् अरिष्टनेमि के (अतिशय) छत्रातिछत्र (छत्रों के ऊपर छत्र), पताकातिपताका (पताकाओ के ऊपर पताका), विद्याधरो, चारणो एव जृंभक देवो को नीचे उतरते और ऊपर चढते देखा। यह सब देखकर वे विजय गंधहस्ती से नीचे उतर गए। उतरकर पाच अभिग्रह करके अर्हत् अरिष्टनेमि के सामने गये। पाच अभिग्रह ये हैं—(१) सचित्त वस्तुओ का त्याग (२) अचित्त वस्तुओ का अत्याग (३) एकशाटिक उत्तरासग (४) भगवान् पर दृष्टि पडते ही हाथ जोडना और (५) मन को एकाग्र करना। इस प्रकार भगवान् के निकट पहुँच कर तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, उन्हे वन्दन-नमस्कार किया। फिर अर्हत् अरिष्टनेमि से न अधिक समीप, न अधिक दूर शुश्रूषा करते हुए, नमस्कार करते हुए, अजलिबद्ध सम्मुख होकर पर्युपासना करने लगे।

थावच्चापुत्र का वैराग्य

१३—थावच्चापुत्ते वि निग्गए, जहा मेहे तहेव धम्मं सोच्चा णिसम्म जेणेव थावच्चा गाहावइणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, पायग्गहण करेइ। जहा मेहस्स तहा चेव णिवेयणा। जाहे नो सचाएइ विसयाणुलोमाहि य विसयपडिकूलाहि य बहूहिं आघवणाहि य पन्नवणाहि य सन्नवणाहि य विन्नवणाहि य आघवित्तए वा पन्नवित्तए वा सन्नवित्तए वा विन्नवित्तए वा, ताहे अकामिया चेव थावच्चापुत्तदारगस्स निक्खमणमणुमन्नित्था। नवरं निक्खमणाभिसेयं पासामो। तए णं से थावच्चापुत्ते तुसिणीए संचिट्ठइ।

मेघकुमार की तरह थावच्चापुत्र भी भगवान् को वन्दना करने के लिए निकला। उसी प्रकार धर्म को श्रवण करके और हृदय मे धारण करके जहाँ थावच्चा गाथापत्नी थी, वहा आया। आकर माता के पैरो को ग्रहण किया—चरणस्पर्श किया। जैसे मेघकुमार ने अपने वैराग्य का निवेदन किया था, उसी प्रकार थावच्चापुत्र की भी वैराग्य निवेदना समझनी चाहिए। माता जब विषयो के अनुकूल और विषयो के प्रतिकूल बहुत-सी आघवना-सामान्य कथन से, पन्नवणा—विशेष कथन से, सन्नवणा-धन-वैभव आदि का लालच दिखला कर, विन्नवणा—आजीजी करके, सामान्य कहने, विशेष कहने, ललचाने और मनाने मे समर्थ न हुई, तब इच्छा न होने पर भी माता ने थावच्चापुत्र बालक का निष्क्रमण स्वीकार कर लिया अर्थात् दीक्षा की अनुमति दे दी। विशेष यह कहा कि—'मैं तुम्हारा दीक्षा महोत्सव देखना चाहती हूँ।' तब थावच्चापुत्र मौन रह गया, अर्थात् उसने माता की दीक्षा-महोत्सव करने की बात मान ली।

तत्पश्चात् उस कौमुदी भेरी का ताडन करने पर नौ योजन चौडी और बारह योजन लम्बी द्वारका नगरी के शृ गाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, कदरा, गुफा, विवर, कुहर, गिरिशिखर, नगर के गोपुर, प्रासाद, द्वार, भवन, देवकुल आदि समस्त स्थानो मे, लाखो प्रतिध्वनियो से युक्त होकर, भीतर और बाहर के भागो सहित सम्पूर्ण द्वारका नगरी को शब्दायमान करता हुआ वह शब्द चारो ओर फैल गया।

११—तए ण बारवईए नयरीए नवजोयणवित्थिन्नाए बारसजोयणायामाए समुद्दविजयपामोक्खा दस दसारा जाव[1] गणियासहस्साइ कोमुईयाए भेरीए सद्द सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठा जाव ण्हाया आविद्धवग्घारियमल्लदामकलावा अहतवत्थचदणोक्किण्णगायसरीरा अप्पेगइया हयगया एव गयगया रह-सीया-सदमाणीगया, अप्पेगइया पायविहारचारेण पुरिसवग्गुरापरिखित्ता कण्हस्स वासुदेवस्स अतिय पाउब्भवित्था।

तत्पश्चात् नौ योजन चौडी और बारह योजन लम्बी द्वारका नगरी मे समुद्रविजय आदि दस दशार [बलदेव आदि महावीर, उग्रसेन आदि राजा, प्रद्युम्न आदि कुमार, शाम्ब आदि योद्धा, वीरसेन महासेन आदि बलशाली यावत्] अनेक हजार गणिकाएँ उस कौमुदी भेरी का शब्द सुनकर एव हृदय मे धारण करके हृष्ट-तुष्ट, प्रसन्न हुए। यावत् सबने स्नान किया। लम्बी लटकने वाली फूल मालाओ के समूह को धारण किया। कोरे नवीन वस्त्रो को धारण किया। शरीर पर चन्दन का लेप किया। कोई अश्व पर आरूढ हुए, इसी प्रकार कोई गज पर आरूढ हुए, कोई रथ पर कोई पालकी मे और कोई म्याने मे बैठे। कोई-कोई पैदल ही पुरुषो के समूह के साथ चले और कृष्ण वासुदेव के पास प्रकट हुए-आए।

१२—तए ण कण्हे वासुदेवे समुद्दविजयपामोक्खे दस दसारे जाव[2] अतिय पाउब्भवमाणे पासइ। पासित्ता हट्ठ-तुट्ठ जाव कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एव वयासी—'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! चाउरगिणि सेण सज्जेह विजय च गधहत्थि उवट्ठवेह।' ते वि तह त्ति उवट्ठवेंति, जाव तए ण से कण्हे वासुदेवे ण्हाए जाव सव्वालकारविभूसिए विजय च गधहत्थि दुरूढे समाणे सकोरेंट मल्लदामेण छत्तेण धरिज्जमाणेण महया भड चडकरवदपरियाल-सपरिवुडे बारवतीए नयरीए मज्झ मज्झेण निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव रेवतगपव्वए जेणेव नदणवणे उज्जाणे जेणेव सुरप्पियस्स जक्खस्स जक्खाययण जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहओ अरिट्ठनेमिस्स छत्ताइछत्त पडागाइपडाग विज्जाहर-चारणे जभए य देवे ओवयमाणे उप्पयमाणे पासइ, पासित्ता विजयाओ गधहत्थीओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता अरह अरिट्ठनेमिं पचविहेण अभिगमेण अभिगच्छइ, [तजहा सचित्ताण दव्वाण विउसरणयाए, अचित्ताण दव्वाण अविउसरणयाए, एगसाडिय उत्तरासग करणेण, चक्खुप्फासे अजलिपग्गहेण, मणसो एगत्तीकरणेण] जेणामेव अरिट्ठनेमी तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरह अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिण करेइ, वदइ, नमसइ, वदित्ता नमसित्ता अरहओ अरिट्ठनेमिस्स नच्चासन्ने नाइदूरे सुस्सूसमाणे नमसमाणे पजलिउडे अभिमुहे विनएण पज्जुवासति।

१-२ पचम अ ५

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने समुद्रविजय वगैरह दस दसारों को तथा पूर्ववर्णित अन्य सबको यावत् अपने निकट प्रकट हुआ देखा। देखकर वह हृष्ट-तुष्ट हुए, यावत् उन्होने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही चतुरगिणी सेना सजाओ और विजय नामक गधहस्ती को उपस्थित करो।' कौटुम्बिक पुरुषो ने 'बहुत अच्छा' कह कर सेना सजवाई और विजय नामक गधहस्ती को उपस्थित किया। तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने स्नान किया। वे सब अलकारो से विभूपित हुए। विजय गधहस्ती पर सवार हुए। कोरट वृक्ष के फूलो की माला वाले छत्र को धारण किए हुए और भटो के बहुत बडे समूह से घिरे हुए द्वारका नगरी के बीचोबीच होकर बाहर निकले। जहा गिरनार पवत था, जहाँ नन्दनवन उद्यान था, जहाँ सुरप्रिय यक्ष का यक्षायतन था और जहा अशोक वृक्ष था, उधर पहुँचे। पहुँचकर अर्हत् अरिष्टनेमि के (अतिशय) छत्रातिछत्र (छत्रो के ऊपर छत्र), पताकातिपताका (पताकाओ के ऊपर पताका), विद्याधरो, चारणो एव जृ भक देवो को नीचे उतरते और ऊपर चढते देखा। यह सब देखकर वे विजय गधहस्ती से नीचे उतर गए। उतरकर पाच अभिग्रह करके अहत् अरिष्टनेमि के सामने गये। पाच अभिग्रह ये हैं—(१) सचित्त वस्तुओ का त्याग (२) अचित्त वस्तुओ का अत्याग (३) एकशाटिक उत्तरासग (४) भगवान् पर दृष्टि पडते ही हाथ जोडना और (५) मन को एकाग्र करना। इस प्रकार भगवान् के निकट पहुँच कर तीन वार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, उन्हे वन्दन-नमस्कार किया। फिर अहत् अरिष्टनेमि से न अधिक समीप, न अधिक दूर शुश्रूषा करते हुए, नमस्कार करते हुए, अजलिबद्ध सम्मुख होकर पर्यु-पासना करने लगे।

थावच्चापुत्र का वैराग्य

१३—थावच्चापुत्ते वि निग्गए, जहा मेहे तहेव धम्म सोच्चा णिसम्म जेणेव थावच्चा गाहावइणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, पायग्गहण करेइ। जहा मेहस्स तहा चेव णिवेयणा। जाहे नो सचाएइ विसयाणुलोमाहि य विसयपडिकूलाहि य बहूहि आघवणाहि य पन्नवणाहि य सन्नवणाहि य विन्नवणाहि य आघवित्तए वा पन्नवित्तए वा सन्नवित्तए वा विन्नवित्तए वा, ताहे अकामिया चेव थावच्चापुत्तदारगस्स निक्खमणमणुमन्नित्था। नवर निक्खमणाभिसेय पासामो। तए ण से थावच्चापुत्ते तुसिणीए सचिट्ठइ।

मेघकुमार की तरह थावच्चापुत्र भी भगवान् को वन्दना करने के लिए निकला। उसी प्रकार धर्म को श्रवण करके और हृदय मे धारण करके जहाँ थावच्चा गाथापत्नी थी, वहाँ आया। आकर माता के पैरो को ग्रहण किया—चरणस्पर्श किया। जसे मेघकुमार ने अपने वैराग्य का निवेदन किया था, उसी प्रकार थावच्चापुत्र की भी वैराग्य निवेदना समझनी चाहिए। माता जब विपयो के अनुकूल और विपयो के प्रतिकूल बहुत-सी आघवना-सामान्य कथन से, पन्नवणा—विशेप कथन से, सन्नवणा-धन-वैभव आदि का लालच दिखला कर, विन्नवणा—आजीजी करके, सामान्य कहने, विशेप कहने, ललचाने और मनाने मे समर्थ न हुई, तब इच्छा न होने पर भी माता ने थावच्चापुत्र बालक का निष्क्रमण स्वीकार कर लिया अर्थात् दीक्षा की अनुमति दे दी। विशेप यह कहा कि—'मैं तुम्हारा दीक्षा महोत्सव देखना चाहती हूँ।' तब थावच्चापुत्र मौन रह गया, अर्थात् उसने माता की दीक्षा-महोत्सव करने की बात मान ली।

१४—तए ण सा थावच्चा आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता महत्थ महग्घ महरिह रायरिह पाहुड गेण्हइ, गेण्हित्ता मित्त जाव [नाइ नियग-सयण-सबन्धि परियणेण] सद्धि सपरिवुडा जेणेव कण्हस्स वासुदेवस्स भवणवर-पडिदुवारदेसभाए तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता पडिहारदेसिएण मग्गेण जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल० वद्धावेइ, वद्धावित्ता त महत्थ महग्घ महरिह रायरिह पाहुड उवणेइ, उवणित्ता एव वयासी—

तब गाथापत्नी थावच्चा आसन से उठी। उठकर महान् अर्थवाली, महामूल्य वाली, महान् पुरुषो के योग्य तथा राजा के योग्य भेट ग्रहण की। ग्रहण करके मित्र ज्ञाति आदि से परिवृत होकर जहाँ कृष्ण वासुदेव के श्रेष्ठ भवन का मुख्य द्वार का देशभाग था, वहाँ आई। आकर प्रतीहार द्वारा दिखलाये मार्ग से जहाँ कृष्ण वासुदेव थे, वहाँ आई। दोनो हाथ जोडकर कृष्ण वासुदेव को वधाया। वधाकर वह महान् अर्थवाली, महामूल्य वाली महान् पुरुषो के योग्य और राजा के योग्य भेंट सामने रखी। सामने रख कर इस प्रकार वोली—

१५—एव खलु देवाणुप्पिया! मम एगे पुत्ते थावच्चापुत्ते नाम दारए इट्ठे[1] जाव से ण ससारभयउव्विग्गे इच्छइ अरहओ अरिट्ठनेमिस्स जाव [अतिए मु डे भवित्ता अगाराओ अणगारिय] पव्वइत्तए। अह ण निक्खमणसक्कार करेमि। इच्छामि ण देवाणुप्पिया! थावच्चापुत्तस्स निक्खम माणस्स छत्त-मउड चामराओ य विदिन्नाओ।

हे देवानुप्रिय! मेरा थावच्चापुत्र नामक एक ही पुत्र है। वह मुझे इष्ट है, कान्त है, यावत् वह ससार के भय से उद्विग्न होकर अरिहन्त अरिष्टनेमि के समीप गृहत्याग कर अनगार प्रव्रज्या अगीकार करना चाहता है। मैं उसका निष्क्रमण सत्कार करना चाहती हूँ। अतएव हे देवानुप्रिय! प्रव्रज्या अगीकार करने वाले थावच्चापुत्र के लिए आप छत्र, मुकुट और चामर प्रदान कर, यह मेरी अभिलाषा है।

१६—तए ण कण्हे वासुदेवे थावच्चागाहावइणि एव वयासी—'अच्छाहि ण तुम देवाणुप्पिए! सुनिव्वुया वीसत्था, अह ण सयमेव थावच्चापुत्तस्स दारगस्स निक्खमणसक्कार करिस्सामि।'

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने थावच्चा गाथापत्नी से इस प्रकार कहा—देवानुप्रिये! तुम निश्चिन्त और विश्वस्त रहो। मैं स्वय ही थावच्चापुत्र बालक का दीक्षा-सत्कार करूँगा।

कृष्ण द्वारा वैराग्यपरीक्षा

१७—तए ण से कण्हे वासुदेवे चाउरगिणीए सेनाए विजय हत्थिरयण दूरूढे समाणे जेणेव थावच्चाए गाहावइणीए भवणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता थावच्चापुत्त एव वयासी—

मा ण तुमे देवाणुप्पिया! मु डे भवित्ता पव्वयाहि, भु जाहि ण देवाणुप्पिया! विउले माणुस्सए कामभोए मम वाहुच्छायापरिग्गहिए, केवल देवाणुप्पियस्स अह णो सचाएमि वाउकाय उवरिमेण निवारित्तए। अण्ण ण देवाणुप्पियस्स ज किंचि वि आवाह वा वावाह वा उप्पाएइ त सव्व निवारेमि।

---

१ प्रथम अ १५६

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव चतुरगिणी सेना के साथ विजय नामक उत्तम हाथी पर आरूढ होकर जहाँ थावच्चा गाथापत्नी का भवन था वही आये। आकर थावच्चापुत्र से इस प्रकार बोले—

हे देवानुप्रिय ! तुम मु डित होकर प्रव्रज्या ग्रहण मत करो। मेरी भुजाओ की छाया के नीचे रह कर मनुष्य सवन्धी विपुल कामभोगो को भोगो। मै केवल देवानुप्रिय के अर्थात् तुम्हारे ऊपर होकर जाने वाले वायुकाय को रोकने मे तो समर्थ नही हूँ किन्तु इसके सिवाय देवानुप्रिय को (तुम्हे) जो कोई भी सामान्य पीडा या विशेष पीडा उत्पन्न होगी, उस सबका निवारण करूँगा।'

१८—तए ण से थावच्चापुत्ते कण्हेण वासुदेवेण एव वुत्ते समाणे कण्ह वासुदेव एव वयासी—'जइ ण तुम देवाणुप्पिया ! मम जीवियतकरण मच्चु एज्जमाण निवारेसि, जर वा सरीररूवविणासिणि सरीर अइवयमाणि निवारेसि, तए ण अह तव बाहुच्छायापरिग्गहिए विउले माणुस्सए कामभोगे भु जमाणे विहरामि।

तब कृष्ण वासुदेव के इस प्रकार कहने पर थावच्चापुत्र ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय ! यदि आप मेरे जीवन का अन्त करने वाले आते हुए मरण को रोक दे और शरीर पर आक्रमण करने वाली एव शरीर के रूप-सौन्दय का विनाश करने वाली जरा को रोक सकें, तो मैं आपकी भुजाओ की छाया के नीचे रह कर मनुष्य सबन्धी विपुल कामभोग भोगता हुआ विचरूँ।'

१९—तए ण से कण्हे वासुदेवे थावच्चापुत्तेण एव वुत्ते समाणे थावच्चापुत्त एव वयासी—'एए ण देवाणुप्पिया ! दूरइक्कमणिज्जा, णो खलु सक्का सुबलिएणावि देवेण वा दाणवेण वा णिवारित्तए णण्णत्थ अप्पणो कम्मक्खएण।'

तत्पश्चात थावच्चापुत्र के द्वारा इस प्रकार कहने पर कृष्ण वासुदेव ने थावच्चापुत्र से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय ! मरण और जरा का उल्लघन नही किया जा सकता। अतीव बलशाली देव अथवा दानव के द्वारा भी इनका निवारण नही किया जा सकता। हा, अपने द्वारा उपार्जित पूर्व कर्मों का क्षय ही इन्हे रोक सकता है।'

२०—'त इच्छामि ण देवाणुप्पिया ! अन्नाण-मिच्छत्त-अविरइ-कसाय-सचियस्स अत्तणो कम्मक्खय करित्तए।'

(कृष्ण वासुदेव के कथन के उत्तर मे थावच्चापुत्र ने कहा—) 'तो हे देवानुप्रिय ! इसी कारण मैं अज्ञान, मिथ्यात्व, अविरति और कषाय द्वारा सचित, अपने आत्मा के कर्मों का क्षय करना चाहता हूँ।'

विवेचन—श्रीकृष्ण वासुदेव भगवान अरिष्टनेमि के परम भक्त और गृहस्थावस्था के आत्मीय जन भी थे। थावच्चा गाथापत्नी को अपनी ओर से दीक्षासत्कार करने का वचन दे चुके थे। फिर भी वे थावच्चापुत्र को दीक्षा न लेकर अपने सरक्षण मे लेने को कहते हैं। इसका तात्पर्य थावच्चापुत्र की मानसिक स्थिति को परखना ही है। वे जानना चाहते थे कि थावच्चापुत्र के अन्तस् मे वास्तविक वैराग्य है अथवा नही ? किसी गार्हस्थिक उद्वेग के कारण ही तो वह दीक्षा लेने का मनोरथ नही कर

रहे हैं ? मुनिदीक्षा जीवन के अन्तिम क्षण तक उग्र साधना है और सच्चे तथा परिपक्व वैराग्य से ही उसमें सफलता प्राप्त होती है। थावच्चापुत्र परख में खरा सिद्ध हुआ। उसके एक ही वाक्य ने कृष्ण जी को निरुत्तर कर दिया। उन्हें पूर्ण सन्तोष हो गया।

२१—तए णं से कण्हे वासुदेवे थावच्चापुत्तेण एवं वुत्ते समाणे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'गच्छह णं देवाणुप्पिया! बारवईए नयरीए सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर जाव [महापह-पहेसु] हत्थिखंधवरगया महया महया सद्देणं उग्घोसेमाणा उग्घोसेमाणा उग्घोसणं करेह—एवं खलु देवाणुप्पिया! थावच्चापुत्ते संसारभउव्विग्गे, भीए जम्मणमरणाणं, इच्छइ अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुंडे भवित्ता पव्वइत्तए। तं जो खलु देवाणुप्पिया! राया वा, जुवराया वा, देवी वा, कुमारे वा, ईसरे वा, तलवरे वा, कोडुंबिय-माडंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहे वा थावच्चापुत्तं पव्वयंतमणुपव्वयइ, तस्स णं कण्हे वासुदेवे अणुजाणाइ पच्छातुरस्स वि य से मित्त-नाइ-नियग-संबन्धि-परिजणस्स जोगक्खेमं वट्टमाणीं पडिवहइ त्ति कट्टु घोसणं घोसेह।' जाव घोसंति।

थावच्चापुत्र के द्वारा इस प्रकार कहने पर कृष्ण वासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो! तुम जाओ और द्वारिका नगरी के शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर (महापथ तथा पथ) आदि स्थानों में, यावत् श्रेष्ठ हाथी के स्कंध पर आरूढ होकर ऊँची-ऊँची ध्वनि से उद्घोष करते, ऐसी उद्घोषणा करो—'हे देवानुप्रियो! संसार के भय से उद्विग्न और जन्म-मरण से भयभीत थावच्चापुत्र अर्हन्त अरिष्टनेमि के निकट मुंडित होकर दीक्षा ग्रहण करना चाहता है तो हे देवानुप्रिय! जो राजा, युवराज, रानी, कुमार, ईश्वर, तलवर, कौटुम्बिक, माडंबिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति अथवा सार्थवाह दीक्षित होते हुए थावच्चापुत्र के साथ दीक्षा ग्रहण करेगा, उसे कृष्ण वासुदेव अनुज्ञा देते हैं और पीछे रहे हुए उनके मित्र, ज्ञाति, निजक, संबंधी या परिवार में कोई भी दुःखी होगा तो उसके वर्तमान काल संबंधी योग (अप्राप्त पदार्थ की प्राप्ति) और क्षेम (प्राप्त पदार्थ के रक्षण) का निर्वाह करेंगे अर्थात् सर्वप्रकार से उसका पालन, पोषण, संरक्षण करेंगे—इस प्रकार की घोषणा करो।'

कौटुम्बिक पुरुषों ने इस प्रकार की घोषणा कर दी।

२२—तए णं थावच्चापुत्तस्स अणुराएणं पुरिससहस्सं णिक्खमणाभिमुहं ण्हायं सव्वालंकारविभूसियं पत्तेयं पत्तेयं पुरिससहस्सवाहिणीसु सिवियासु दुरूढं समाणं मित्तणाइपरिवुडं थावच्चापुत्तस्स अंतियं पाउब्भूयं।

तए णं से कण्हे वासुदेवे पुरिससहस्समंतियं पाउब्भवमाणं पासइ, पासित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—जहा मेहस्स निक्खमणाभिसेओ तहेव सेयापीएहिं ण्हावेइ।

तए णं से थावच्चापुत्ते सहस्सपुरिसेहिं सद्धिं सिवियाए दुरूढे समाणे जाव रवेणं बारवइणयरिं मज्झंमज्झेणं [निग्गच्छइ, निगच्छित्ता जेणेव रेवयगपव्वते जेणेव नंदणवणे उज्जाणे जेणेव सुरप्पियस्स जक्खस्स जक्खाययणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहओ अरिट्ठनेमिस्स छत्ताइछत्तं पडागाइपडागं विज्जाहरचारणे जंभए य देवे ओवयमाणे उप्पयमाणे पासइ, पासित्ता सिवियाओ पच्चोरुहति।

तत्पश्चात् थावच्चापुत्र पर अनुराग होने के कारण एक हजार पुरुष निष्क्रमण के लिए तैयार हुए। वे स्नान करके सब अलकारो से विभूपित होकर, प्रत्येक-प्रत्येक अलग-अलग हजार पुरुषो द्वारा वहन की जाने वाली पालकियो पर सवार होकर, मित्रा एव ज्ञातिजनो आदि से परिवृत होकर थावच्चापुत्र के समीप प्रकट हुए—आये।

तव कृष्ण वासुदेव ने एक हजार पुरुषो को आया देखा। देखकर कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाकर इस प्रकार कहा—(देवानुप्रियो! जाओ थावच्चापुत्र को स्नान कराओ, अलकारो से विभूपित करो और पुरुषसहस्रवाहिनी शिविका पर आरूढ करो, इत्यादि) जैसा मेघकुमार के दीक्षाभिषेक का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार यहाँ कहना चाहिए। फिर श्वेत और पीत अर्थात चादी और सोने के कलशो से उसे स्नान कराया यावत् सर्व अलकारो से विभूपित किया।

तत्पश्चात् थावच्चापुत्र उन हजार पुरुषो के साथ, शिविका पर आरूढ होकर, यावत वाद्यो की ध्वनि के साथ, द्वारका नगरी के बीचो-बीच होकर निकला। निकलकर जहाँ गिरनार पर्वत, नन्दनवन उद्यान, सुरप्रिय यक्ष का यक्षायतन एव अशोक वृक्ष था, उधर गया। वहाँ जाकर अरिहन्त अरिष्टनेमि के छत्र पर छत्र और पताका पर पताका (आदि अतिशय) देखता है और विद्याधरो एव चारण मुनियो को और जृभक देवो को नीचे उतरते-चढते देखता है, वही शिविका से नीचे उतर जाता है।

२३—तए ण से कण्हे वासुदेवे थावच्चापुत्त पुरओ काउ जेणेव अरिहा अरिट्ठनेमी, सव्व त चेव (तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरह अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिण करेइ, करेत्ता वदइ, नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—'एस ण देवाणुप्पिया! थावच्चापुत्ते थावच्चाए गाहावइणीए एगे पुत्ते इट्ठे कते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए सम्मए बहुमए अणुमए भडकरडग समाणे रयणे रयणभूए जीवियऊसासए हिययनदिजणणे उवरपुप्फ पिव दुल्लहे सवणयाए, किमग पुण पासणयाए?

से जहानामए उप्पलेति वा, पउमेति वा, कुमुदेति वा, पके जाए जले सवड्ढिए नोवलिप्पइ पकरयेण नोवलिप्पइ जलरएण, एवामेव थावच्चापुत्ते कामेसु जाए भोगेसु सवड्ढिए नोवलिप्पइ कामरएण नोवलिप्पइ भोगरएण। एस ण देवाणुप्पिया! ससारभउव्विग्गे, भीए जम्मण जर-मरणाण, इच्छइ देवाणुप्पियाण अतिए मु डे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइत्तए। अम्हे ण देवाणुप्पियाण सिस्सभिक्ख दलयामो। पडिच्छतु ण देवाणुप्पिया सिस्सभिक्ख।

तए ण अरहा अरिट्ठनेमी कण्हेण वासुदेवेण एव वुत्ते समाणे एयमट्ठ सम्म पडिसुणेइ।

तए ण से थावच्चापुत्ते अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतियाओ उत्तरपुरत्थिम दिसीभाय अवक्कमइ, सयमेव आभरणमल्लालकार ओमुयइ।

तए ण से थावच्चा गाहावइणी हसलक्खणेण पडसाडएण आभरणमल्लालकारे पडिच्छइ। पडिच्छित्ता हार वारिधार-सिदुवार-छिन्नमुत्तावलिपगासाइ असूणि विणिम्मुचमाणी विणिम्मुचमाणी एव वयासी—'जइयव्व जाया! घडियव्व जाया! परक्कमियव्व जाया! अस्सि च ण अट्ठे णो पमाएव्व' जामेव दिस पाउब्भूया तामेव दिसि पडिगया।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव थावच्चापुत्र को आगे करके जहाँ अरिहन्त अरिष्टनेमि थे, वहाँ आये, इत्यादि सब वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए। यावत् [अर्थात् भगवान् अरिष्टनेमि को तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, फिर वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा— 'देवानुप्रिय। यह थावच्चापुत्र, थावच्चा गाथापत्नी का एकलौता पुत्र है। यह इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, अतिशय मनोहर, स्थिरतासम्पन्न, विश्वासपात्र, सम्मत, बहुमत और अनुमत है। रत्नो की पिटारी जैसा है। रत्न है, रत्न जैसा है, जीवन के लिए उच्छ्‌वास सदृश है। हृदय को प्रमोद उत्पन्न करने वाला है। गूलर के फूल के समान, इसके नाम का श्रवण भी दुर्लभ है, दर्शन की तो बात ही क्या? जैसे उत्पल, पद्म अथवा कुमुद-चन्द्रविकासी कमल कीचड मे उत्पन्न होता है, जल मे वृद्धि पाता है किन्तु कीचड और जल से लिप्त नही होता, उसी प्रकार थावच्चापुत्र कामो मे उत्पन्न हुआ और भोगो मे वृद्धि पाया है किन्तु काम-भोगो में लिप्त नही हुआ है। देवानुप्रिय! यह ससार के भय से उद्वेग पाया है, जन्म-जरा-मरण से भयभीत है, अत देवानुप्रिय (आप) के निकट मुडित होकर गृहत्याग करके अनगार-दीक्षा अगीकार करना चाहता है। हम आप देवानुप्रिय को शिष्य भिक्षा प्रदान कर रहे हैं। देवानुप्रिय! इस शिष्य-भिक्षा को स्वीकार करें।'

कृष्ण वासुदेव के इस प्रकार कहने पर अर्हत् अरिष्टनेमि ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की। थावच्चापुत्र ने ईशान दिशा मे जाकर आभरण, पुष्पमाला और अलकारो का परित्याग किया।

तत्पश्चात् थावच्चा सार्थवाही ने हस के चिह्न वाले वस्त्र मे आभरण, माला और अलकारों को ग्रहण किया। ग्रहण करके मोतियो के हार, जल की धार, सिन्दुवार के फूलो तथा छिन्न हुई मोतियो की कतार के समान आँसू त्यागती हुई इस प्रकार कहने लगी—'हे पुत्र! इस प्रव्रज्या के विषय मे यत्न करना, हे पुत्र! शुद्ध क्रिया करने मे घटना करना और हे पुत्र! चारित्र का पालन करने मे पराक्रम करना। इस विषय मे तनिक भी प्रमाद न करना।' इस प्रकार कहकर वह जिस दिशा मे आई थी, उसी दिशा मे लौट गई।

२४—तए ण से थावच्चापुत्ते पुरिससहस्सेहिं सद्धिं सयमेव पचमुट्ठिय लोय करेइ, जाव पव्वइए। तए ण से थावच्चापुत्ते अणगारे जाए इरियासमिए भासासमिए जाव विहरइ।

तत्पश्चात् थावच्चापुत्र ने हजार पुरुषो के साथ स्वय ही पचमुष्टिक लोच किया, यावत् प्रव्रज्या अगीकार की। उसके बाद थावच्चापुत्र अनगार हो गया। ईर्यासमिति से युक्त, भाषासमिति से युक्त होकर यावत् साधुता के समस्त गुणो से सम्पन्न होकर विचरने लगा।

२५—तए ण से थावच्चापुत्ते अरहओ अरिट्ठनेमिस्स तहारूवाण थेराण अतिए सामाइय माइयाइ चोद्दसपुव्वाइ अहिज्जइ। अहिज्जित्ता बहूहिं जाव चउत्थेण विहरइ। तए ण अरिहा अरिट्ठनेमी थावच्चापुत्तस्स अणगारस्स त इब्भाइय अणगारसहस्स सीसत्ताए दलयइ।

तत्पश्चात् थावच्चापुत्र अरिहन्त अरिष्टनेमि के तथारूप स्थविरो के पास से सामायिक से आरम्भ करके चौदह पूर्वो का अध्ययन करके, बहुत से अष्टमभक्त, षष्ठभक्त यावत् चतुर्थभक्त (उपवास) आदि करते हुए विचरने लगे। तत्पश्चात् अरिहन्त अरिष्टनेमि ने थावच्चापुत्र अनगार को उनके साथ दीक्षित होने वाले इभ्य आदि एक हजार अनगार शिष्य के रूप मे प्रदान किये।

२६—तए ण से थावच्चापुत्ते अन्नया कयाइ अरह अरिट्ठनेमि वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—'इच्छामि ण भते ! तुब्भेहि अब्भणुन्नाए समाणे सहस्सेण अणगारेण सद्धि बहिया जणवयविहार विहरित्तए ।'

'अहासुह देवाणुप्पिया !'

तत्पश्चात् थावच्चापुत्र ने एक बार किसी समय अरिहत अरिष्टनेमि की वदना की और नमस्कार किया। वन्दना और नमस्कार करके इस प्रकार कहा— भगवन् ! आपकी आज्ञा हो तो मैं हजार साधुओ के साथ जनपदो मे विहार करना चाहता हूँ ।'

भगवान् ने उत्तर दिया—'देवानुप्रिय ! तुम्हें जैसे सुख उपजे वैसा करो ।'

२७—तए ण से थावच्चापुत्ते अणगारसहस्सेण सद्धि (तेण उरालेण उदग्गेण पयत्तेण पग्गहिएण) बहिया जणवयविहार विहरइ ।

भगवान् की अनुमति प्राप्त करके थावच्चापुत्र एक हजार अनगारो के साथ(उस प्रधान, तीव्र प्रयत्न वाले—प्रमादरहित और बहुमानपूर्वक ग्रहण किये हुए चारित्र एव तप से युक्त होकर) बाहर जनपदो (विभिन्न देशो) मे विचरण करने लगे ।

शैलक राजा श्रावक बना

२८—तेण कालेण तेण समएण सेलगपुरे नाम नयरे होत्था, सुभूमिभागे उज्जाणे, सेलए राया, पउमावई देवी, मडुए कुमारे जुवराया ।

तस्स ण सेलगस्स पथगपामोक्खा पच मतिसया होत्था, उप्पत्तियाए वेणइयाए पारिणामियाए कम्मियाए चउव्विहाए बुद्धीए उववेया रज्जधुरचिंतया वि होत्था ।

तए ण थावच्चापुत्ते अणगारे सहस्सेण अणगारेण सद्धि जेणेव सेलगपुरे जेणेव सुभूमिभागे नाम उज्जाणे तेणेव समोसढे । सेलए वि राया विणिग्गए । धम्मो कहिओ ।

उस काल और उस समय मे शैलकपुर नामक नगर था । उसके बाहर सुभूमिभाग नामक उद्यान था । शैलक वहा का राजा था । पद्मावती रानी थी । उनका मडुक नामक कुमार था । वह युवराज था ।

उस शैलक राजा के पथक आदि पाँच सौ मत्री थे । वे औत्पत्तिकी वैनयिकी पारिणामिकी और कार्मिकी इस प्रकार चारो तरह की बुद्धियो[1] से सम्पन्न थे और राज्य की धुरा के चिन्तक भी थे—शासन का सचालन करते थे ।

थावच्चापुत्र अनगार एक हजार मुनियो के साथ जहा शैलकपुर था और जहाँ सुभूमिभाग नामक उद्यान था, वहाँ पधारे । शैलक राजा भी उन्हें वदना करने के लिए निकला । थावच्चापुत्र ने धर्म का उपदेश दिया ।

२९—धम्म सोच्चा 'जहा ण देवाणुप्पियाण अतिए बहवे उग्गा भोगा जाव चइत्ता हिरण्ण

१ चार प्रकार की बुद्धिया का स्वरूप जानने के लिए देखें प्रथम अध्ययन, सूत्र १५

जाव पव्वइया, तहा णं अहं नो संचाएमि पव्वइत्तए। तओ णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए पंचाणु-व्वइयं जाव समणोवासए, जाव अहिगयजीवाजीवे जाव अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। पंथगपामोक्खा पंच मंतिसया समणोवासया जाया। थावच्चापुत्ते वहिया जणवयविहारं विहरइ।

धर्म सुनकर शैलक राजा ने कहा—जैसे देवानुप्रिय (आप) के समीप बहुत से उग्रकुल के, भोजकुल के तथा अन्य कुलो के पुरुषो ने हिरण्य सुवर्ण आदि का त्याग करके दीक्षा अंगीकार की है, उस प्रकार मैं दीक्षित होने मे समर्थ नही हूँ। अतएव मैं देवानुप्रिय से पांच अणुव्रतो और सात शिक्षाव्रतों को धारण करके श्रावक बनना चाहता हूँ।' इस प्रकार राजा श्रमणोपासक यावत् जीव अजीव आदि तत्त्वो का ज्ञाता हो गया यावत् तप तथा संयम से अपनी आत्मा को भावित करता हुआ विचरने लगा। इसी प्रकार पंथक आदि पांच सौ मंत्री भी श्रमणोपासक हो गये। तत्पश्चात् थावच्चा-पुत्र अनगार वहां से विहार करके जनपदो मे विचरण करने लगे।

विवेचन—मध्य के बाईस तीर्थंकरो के शासन मे चातुर्याम धर्म प्रचलित था, यह प्रसिद्ध है—आगमसिद्ध है। किन्तु यहाँ भगवान् अरिष्टनेमि के शासन में 'पंचाणुव्वइयं' पाठ आया है, जो ओघ पाठ प्रतीत होता है। वास्तव मे 'चाउज्जामियं गिहिधम्मं' ऐसा पाठ होना चाहिए। ऐसा होने पर ही अन्य आगमो के साथ इस पाठ का संवाद हो सकता है।

आगमो मे यत्र-तत्र ओघ पाठ पाये जाते हैं। एक प्रसंग में आया पाठ उसी प्रकार के दूसरे प्रसंग में भी आयोजित कर दिया जाता है। इस शैली के कारण कहीं-कहीं ऐसी असंगति हो जाती है।

सुदर्शन श्रेष्ठी

३०—तेणं कालेणं तेणं समएणं सोगंधिया नामं नयरी होत्था, वण्णओ[1]। नीलासोए उज्जाणे, वण्णओ[2]। तत्थ णं सोगंधियाए नयरीए सुदंसणे नामं नगरसेट्ठी परिवसइ, अड्ढे जाव[3] अपरिभूए।

उस काल और उस समय मे सौगंधिका नामक नगरी थी। उसका वर्णन औपपातिक सूत्र के नगरीवर्णन के अनुसार समझ लेना चाहिए। उस नगरी के बाहर नीलाशोक नामक उद्यान था। उसका भी वर्णन औपपातिक सूत्र के अनुसार कह लेना चाहिए। उस सौगंधिका नगरी मे सुदर्शन नामक नगरश्रेष्ठी निवास करता था। वह समृद्धिशाली था, यावत् वह किसी से पराभूत नहीं हो सकता था।

शुक परिव्राजक

तेणं कालेणं तेणं समएणं सुए नामं परिव्वायए होत्था—रिउव्वेय-जजुव्वेय-सामवेय-अथव्वणवेय-सट्ठितंतकुसले, संखसमए लद्धट्ठे, पंचजम-पंचनियमजुत्तं सोयमूलयं दसप्पयारं परि-व्वायगधम्मं दाणधम्मं च सोयधम्मं च तित्थाभिसेयं च आघवेमाणे पण्णवेमाणे धाउरत्तवत्थपवर-परिहिए तिदंड-कुंडिय-छत्त-छन्नालियअंकुस-पवित्तय-केसरीहत्थगए परिव्वायगसहस्सेणं सद्धिं संपरिवुडे जेणेव सोगंधिया नयरी जेणेव परिव्वायगावसहे तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता परिव्वायगावसहंसि भंडगनिक्खेवं करेइ, करित्ता संखसमएणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

१-२ औपपातिक ३ पंचम अ. सूत्र ६

उस काल और उस समय मे शुक नामक एक परिव्राजक था। वह ऋग्वेद, य
अथर्ववेद तथा षष्टितन्त्र (साख्यशास्त्र) मे कुशल था। साख्यमत के शास्त्रो के
था। पांच यमो (अहिंसा आदि पाच महाव्रतो) और पाच नियमो (शौच, सन्तोष, तप,
ईश्वरध्यान) से युक्त दस प्रकार के शौचमूलक परिव्राजक-धर्म का, दानधर्म का, शौच
तीर्थस्नान का उपदेश और प्ररूपण करता था। गेरू मे रगे हुए श्रेष्ठ वस्त्र धारण करत
कुण्डिका-कमडलु, मयूरपिच्छ का छत्र, छन्नालिक (काष्ठ का एक उपकरण), अकुः
तोडने का एक उपकरण) पवित्री (ताम्र धातु की बनी अगूठी) और केसरी (प्रमार्जन क
खण्ड), यह सात उपकरण उसके हाथ मे रहते थे। एक हजार परिव्राजको से प
परिव्राजक जहा सौगधिका नगरी थी और जहाँ परिव्राजको का आवसथ (मठ) थ
आकर परिव्राजको के उस मठ मे उसने अपने उपकरण रखे और साख्यमत के अनुसार
को भावित करता हुआ विचरने लगा।

३२—तए ण सोगधियाए सिघाडग तिग चउक्क चच्चर (चउम्मुह-महापह-प
अन्नमन्नस्स एवमाइक्खइ—एव खलु सुए परिव्वायइ इह हव्वमागए जाव विहरइ। प
सुदसणो निग्गए।

तब उस सौगधिक नगरी के शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर चतुर्मुख, म
अनेक मनुष्य एकत्रित होकर परस्पर ऐसा कहने लगे—'निश्चय ही शुक परिव्राजक यहां
आत्मा को भावित करते हुए विचरते है।' तात्पर्य यह कि शुक परिव्राजक के आगमन
और चौराहो मे चर्चा होने लगी। उपदेश-श्रवण के लिए परिषद् निकली। सुदर्शन भी

शुक की धर्मदेशना

३३—तए ण से सुए परिव्वायए तीसे परिसाए सुदसणस्स य अन्नेसिं च बहू
कहेइ—एव खलु सुदसणा! अम्ह सोयमूलए धम्मे पन्नत्ते। से वि य सोए दुविहे प
दव्वसोए य भावसोए य। दव्वसोए य उदएण मट्टियाए य। भावसोए दब्भेहि य मतेहि
देवाणुप्पिया! किंचि असुई भवइ, त सव्व सज्जो पुढवीए आलिप्पइ, तओ पच्छा सुद्धेण
लिज्जइ, तओ त असुई सुई भवइ। एव खलु जीवा जलाभिसेयपूयप्पाणो अविग्घेण सग

तए ण से सुदसणे सुयस्स अतिए धम्म सोच्चा हट्ठे, सुयस्स अतिय स
गेण्हइ, गेण्हित्ता परिव्वायए विपुलेण असण-पाण-खाइम-साइम-वत्थेण पडिलाभेमाणे ज
तए ण से सुए परिव्वायए सोगधियाओ नयरीओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता बहिया
विहरइ।

तत्पश्चात् शुक परिव्राजक ने उस परिषद् को, सुदर्शन को तथा अन्य बहुत-
साख्यमत का उपदेश दिया। यथा—हे सुदर्शन! हमारा धर्म शौचमूलक कहा गया है
प्रकार का है—द्रव्यशौच और भावशौच। द्रव्यशौच जल से और मिट्टी से होता है। भा
और मन्त्र से होता है। हे देवानुप्रिय! हमारे मत के अनुसार जो कोई वस्तु अशुचि हो
तत्काल पृथ्वी (मिट्टी) से माज दी जाती है और फिर शुद्ध जल से धो ली जाती है। तब
हो जाती है। इसी प्रकार निश्चय ही जीव जलस्नान से अपनी आत्मा को पवित्र करके
स्वर्ग प्राप्त करते हैं।

तत्पश्चात् सुदर्शन, शुक परिव्राजक से धर्म को श्रवण करके हर्षित हुआ। उसने शुक से शौचमूलक धर्म को स्वीकार किया। स्वीकार करके परिव्राजकों को विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम और वस्त्र से प्रतिलाभित करता हुआ अर्थात् अशन आदि दान करता हुआ रहने लगा। तत्पश्चात् वह शुक परिव्राजक सौगंधिका नगरी से बाहर निकला। निकल कर जनपद-विहार से विचरने लगा—देश-देशान्तर में भ्रमण करने लगा।

थावच्चापुत्र का आगमन

३४—तेण कालेण तेण समएण थावच्चापुत्ते णाम अणगारे सहस्सेण अणगारेण सद्धिं पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, गामाणुगामं दूइज्जमाणे, सुहंसुहेण विहरमाणे जेणेव सोगंधिया नयरी, जेणेव नीलासोए उज्जाणे तेणेव समोसढे।

उस काल और उस समय में थावच्चापुत्र नामक अनगार एक हजार साधुओं के साथ अनुक्रम से विहार करते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम जाते हुए और सुखे-सुखे विचरते हुए जहां सौगंधिका नामक नगरी थी और जहां नीलाशोक नामक उद्यान था, वहाँ पधारे।

थावच्चापुत्र-सुदर्शनसंवाद

३५—परिसा निग्गया। सुदंसणो वि णिग्गए। थावच्चापुत्तं नाम अणगारं आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—'तुम्हाणं किंमूलए धम्मे पन्नत्ते?'

तए णं थावच्चापुत्ते सुदंसणेणं एवं वुत्ते समाणे सुदंसणं एवं वयासी—'सुदंसणा! विणयमूले धम्मे पण्णत्ते। से वि य विणए दुविहे पण्णत्ते, तंजहा-अगारविणए य अणगारविणए य। तत्थ णं जे से अगारविणए से णं पंच अणुव्वयाइं,[1] सत्तसिक्खावयाइं, एक्कारस उवासगपडिमाओ। तत्थ णं जे से अणगारविणए से णं पंच महव्वयाइं पन्नत्ताइं, तंजहा-सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं, सव्वाओ अदिन्नादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ मेहुणाओ वेरमणं, सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं, सव्वाओ राइभोयणाओ वेरमणं, जाव मिच्छादंसणसल्लाओ वेरमणं, दसविहे पच्चक्खाणे, बारस भिक्खुपडिमाओ, इच्चेएणं दुविहेणं विणयमूलएणं धम्मेणं अणुपुव्वेणं अट्ठकम्मपगडीओ खवेत्ता लोयग्गपइट्ठाणे भवंति।

थावच्चापुत्र अनगार का आगमन जानकर परिषद् निकली। सुदर्शन भी निकला। उसने थावच्चापुत्र अनगार को दक्षिण तरफ से आरंभ करके प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके वह इस प्रकार बोला—आपके धर्म का मूल क्या है?

तब सुदर्शन के इस प्रकार कहने पर थावच्चापुत्र अनगार ने सुदर्शन से इस प्रकार कहा—हे सुदर्शन! (हमारे मत में) धर्म विनयमूलक कहा गया है। यह विनय (चारित्र) भी दो प्रकार का कहा है—अगार-विनय अर्थात् गृहस्थ का चारित्र और अनगारविनय अर्थात् मुनि का चारित्र। इनमें जो अगारविनय है, वह पांच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत और ग्यारह उपासक प्रतिमा रूप है। अनगार-विनय पांच महाव्रत रूप है, यथा—समस्त प्राणातिपात (हिंसा) से विरमण, समस्त मृषावाद से विरमण, समस्त अदत्तादान से विरमण, समस्त मैथुन से विरमण और समस्त परिग्रह से विरमण।

---

१ यह विधान भ० महावीर के शासन की अपेक्षा से है।

इसके अतिरिक्त समस्त रात्रि-भोजन से विरमण, यावत् समस्त मिथ्यादर्शन शल्य से विरमण, दस प्रकार का प्रत्याख्यान और बारह भिक्षुप्रतिमाएँ। इस प्रकार दो तरह के विनयमूलक धम से क्रमश आठ कर्मप्रकृतियो को क्षय करके जीवन लोक के अग्रभाग मे—मोक्ष मे प्रतिष्ठित होते है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे व्रतों का जो उल्लेख किया गया है, वह भी महावीर-शासन की अपेक्षा से ही समझना चाहिए जैसा कि पहले कहा जा चुका है। 'अगसुत्ताणि' मे मुनिश्री नथमलजी ने उल्लिखित पाठ के स्थान पर निम्नलिखित पाठ दिया और परम्परागत उल्लिखित सूत्रपाठ का टिप्पणी मे उल्लेख किया है—

'तत्थ ण जे से अगारविणए से ण चाउज्जामिए गिहिधम्मे, तत्थ ण जे से अणगारविणए से ण चाउज्जामा, त जहा-सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमण सव्वाओ मुसावायाओ वेरमण, सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमण, सव्वाओ बहिद्धादाणाओ वेरमण।' अरिष्टनेमि के शासन की दृष्टि से यह पाठ अधिक सगत है। प्रस्तुत कथानक का सम्बन्ध भ० अरिष्टनेमि के काल के साथ ही है।

सुदर्शन का प्रतिबोध

३६—तए ण थावच्चापुत्ते सुदसण एव वयासी—'तुब्भे ण सुदसणा! किंमूलए धम्मे पण्णत्ते?'

'अम्हाण देवाणुप्पिया! सोयमूले धम्मे पण्णत्ते, जाव[1] सग्ग गच्छति।

तत्पश्चात् थावच्चापुत्र ने सुदर्शन से कहा—सुदशन! तुम्हारे धर्म का मूल क्या कहा गया है?

सुदशन ने उत्तर दिया—देवानुप्रिय! हमारा धम शौचमूलक कहा गया है। [वह शौच दो प्रकार का है—द्रव्यशौच और भावशौच। द्रव्यशौच जल और मिट्टी से तथा भाव-शौच दर्भ और मत्र से होता है। अशुचि वस्तु मिट्टी से माजने से शुचि हो जाती है और जल से धो ली जाती है। तब अशुचि शुचि हो जाती है।] इस धम से जीव स्वग मे जाते हैं। (शुक का पूर्ववर्णित उपदेश यहाँ पूरा दोहरा लेना चाहिए।)

३७—तए ण थावच्चापुत्ते सुदसण एव वयासी—'सुदसणा! जहानामए केई पुरिसे एग मह रुहिरकय वत्थ रुहिरेण चेव धोवेज्जा, तए ण सुदसणा! तस्स रुहिरकयस्स रुहिरेण चेव पक्खालिज्जमाणस्स अत्थि कोइ सोही?

'णो तिणट्ठे समट्ठे।'

तब थावच्चापुत्र अनगार ने सुदशन से इस प्रकार कहा—हे सुदशन! जैसे कुछ भी नाम वाला कोई पुरुष एक बडे रुधिर से लिप्त वस्त्र को रुधिर से ही धोए, तो हे सुदशन! उस रुधिर से ही धोये जाने वाले वस्त्र की कोई शुद्धि होगी?

सुदशन ने कहा—यह अर्थ समथ नही, अर्थात् ऐसा नही हो सकता—रुधिर से लिप्त वस्त्र रुधिर से शुद्ध नही हो सकता।

३८—एवामेव सुदसणा! तुब्भ पि पाणाइवाएण जाव[2] मिच्छादसणसल्लेण नत्थि सोही, जहा तस्स रुहिरकयस्स वत्थस्स रुहिरेण चेव पक्खालिज्जमाणस्स नत्थि सोही।

---

१ पचम अ सूत्र ३१ २ पचम अ सूत्र ३५

'सुदसणा ! से जहानामए केइ पुरिसे एगं महं रुहिरकयं वत्थं सज्जियाखारेण अणुलिंपइ, अणुलिंपित्ता पयणं आरुहेइ, आरुहित्ता उण्हं गाहेइ, गाहित्ता तओ पच्छा सुद्धेणं वारिणा धोवेज्जा से णूणं सुदसणा ! तस्स रुहिरकयस्स वत्थस्स सज्जियाखारेणं अणुलित्तस्स पयणं आरुहियस्स उण्हं गाहियस्स सुद्धेणं वारिणा पक्खालिज्जमाणस्स सोही भवइ' ?

'हंता भवइ ।'

एवामेव सुदसणा ! अम्हं पि पाणाइवायवेरमणेणं जाव मिच्छादंसणसल्लवेरमणेणं अत्थि सोही, जहा वि तस्स रुहिरकयस्स वत्थस्स जाव सुद्धेण वारिणा पक्खालिज्जमाणस्स अत्थि सोही ।

इसी प्रकार हे सुदर्शन ! तुम्हारे मतानुसार भी प्राणातिपात से यावत् मिथ्यादर्शनशल्य से शुद्धि नहीं हो सकती, जैसे उस रुधिरलिप्त और रुधिर से ही धोये जाने वाले वस्त्र की शुद्धि नहीं होती ।

हे सुदर्शन ! जैसे यथानामक (कुछ भी नाम वाला) कोई पुरुष एक बड़े रुधिरलिप्त वस्त्र को सज्जी के खार के पानी में भिगोवे, फिर पाकस्थान (चूल्हे) पर चढ़ावे, चढ़ाकर उष्णता ग्रहण करावे (उबाले) और फिर स्वच्छ जल से धोवे, तो निश्चय हे सुदर्शन ! वह रुधिर से लिप्त वस्त्र, सज्जीखार के पानी में भीग कर चूल्हे पर चढ़कर, उबलकर और शुद्ध जल से प्रक्षालित होकर शुद्ध हो जाता है ?'

(सुदर्शन कहता है—) 'हाँ, हो जाता है ।'

इसी प्रकार हे सुदर्शन ! हमारे धर्म के अनुसार भी प्राणातिपात के विरमण से यावत् मिथ्यादर्शनशल्य के विरमण से शुद्धि होती है, जैसे उस रुधिरलिप्त वस्त्र की यावत् शुद्ध जल से धोये जाने पर शुद्धि होती है ।

३९—तत्थ णं सुदसणे संबुद्धे थावच्चापुत्तं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—'इच्छामि णं भंते ! धम्मं सोच्चा जाणित्तए, जाव समणोवासए जाए अहिगयजीवाजीवे जाव पडिलाभेमाणे विहरइ ।

तत्पश्चात् सुदर्शन को प्रतिबोध प्राप्त हुआ । उसने थावच्चापुत्र को वन्दना की, नमस्कार किया । वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'भगवन् ! मैं धर्म सुनकर उसे जानना अर्थात् अंगीकार करना चाहता हूँ ।' यावत् (थावच्चापुत्र अनगार ने धर्म का उपदेश दिया) वह धर्मोपदेश श्रवण करके श्रमणोपासक हो गया, जीवाजीव का ज्ञाता हो गया, यावत् निर्ग्रन्थ श्रमणों को आहार आदि का दान करता हुआ विचरने लगा ।

शुक का पुनरागमन

४०—तए णं तस्स सुयस्स परिव्वायगस्स इमीसे कहाए लद्धट्ठस्स समाणस्स अयमेयारूवे जाव [अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे] समुप्पज्जित्था—एवं खलु सुदंसणेणं सोयधम्मं विप्पजहाय विणयमूले धम्मे पडिवन्ने । तं सेयं खलु मम सुदंसणस्स दिट्ठिं वामेत्तए, पुणरवि सोयमूलए धम्मे आघवित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता परिव्वायगसहस्सेणं सद्धिं जेणेव सोगंधिया नयरी

जेणेव परिव्वायगावसहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता परिव्वायगावसहंसि भंडनिक्खेव करेइ, करित्ता धाउरत्तवत्थपरिहिए पविरलपरिव्वायगेण सद्धि सपरिवुडे परिव्वायगावसहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता सोगधियाए नयरीए मज्झमज्झेण जेणेव सुदसणस्स गिहे, जेणेव सुदसणे तेणेव उवागच्छइ ।

तत्पश्चात् शुक परिव्राजक को इस कथा (घटना) का अथ अर्थात समाचार जान कर इस प्रकार का विचार उत्पन हुआ—'सुदशन ने शौच-धम का परित्याग करके विनयमूल धर्म अगीकार किया है । अतएव सुदशन की दृष्टि (श्रद्धा) ा वमन (त्याग) कराना और पुन शौचमूलक धम का उपदेश करना मेरे लिए श्रेयस्कर होगा ।' उसन ऐसा विचार किया । विचार करके एक हजार परिव्राजको के साथ जहा सौगधिका नगरी थी और जहाँ परिव्राजको का मठ था, वहा आया । आकर उसने परिव्राजको के मठ मे उपकरण रखे । तदनन्तर गेरू से रगे वस्त्र धारण किये हुए वह थोडे परिव्राजको के साथ, उनसे घिरा हुआ परिव्राजक-मठ से निकला । निकल कर सौगधिका नगरी के मध्यभाग मे होकर जहाँ सुदशन का घर था और जहा सुदर्शन था वहाँ आया ।

४१—तए ण सुदसणे त सुय एज्जमाण पासइ, पासित्ता नो अब्भुट्ठेइ, नो पच्चुग्गच्छइ नो आढाइ, नो परियाणाइ, नो वदइ, तुसिणीए सचिट्ठइ ।

तए ण से सुए परिव्वायए सुदसण अणब्भुट्ठिय पासित्ता एव वयासी—'तुम ण सुदसणा ! अन्नया मम एज्जमाण पासित्ता अब्भुट्ठेसि जाव (पच्चुग्गच्छसि आढासि) वदसि, इयाणि सुदसणा ! तुम मम एज्जमाण पासित्ता जाव (नो अब्भुट्ठेसि, नो पच्चुग्गच्छसि, नो आढासि) णो वदसि, त कस्स ण तुमे सुदसणा ! इमेयारूवे विणयमूलधम्मे पडिवन्ने ?

तब सुदशन ने शुक परिव्राजक को आता देखा । देखकर वह खडा नही हुआ, सामने नही गया, उसका आदर नही किया, उसे जाना नही, वन्दना नही की, किन्तु मौन रहा ।

तब शुक परिव्राजक ने सुदर्शन को न खडा हुआ देखकर इस प्रकार कहा—हे सुदर्शन ! पहले तुम मुझे आता देखकर खडे होते थे, सामने आते और आदर करते थे, वन्दना करते थे, परन्तु हे सुदशन ! अब तुम मुझे आता देखकर [न खडे हुए, न सामने आए । न आदर किया] न वन्दना की तो हे सुदशन ! (शौचधम त्याग कर) किसके समीप तुमने विनयमूल धर्म अगीकार किया है ?

४२—तए ण से सुदसणे सुएण परिव्वायएण एव वुत्ते समाणे आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता करयल (परिग्गहिय सिरसावत्त मत्थए अजलि कट्टु) सुय परिव्वायग एव वयासी—'एव खलु देवाणुप्पिया ! अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतेवासी थावच्चापुत्ते नाम अणगारे जाव इहमागए, इह चेव नीलासोए उज्जाणे विहरइ, तस्स ण अतिए विणयमूले धम्मे पडिवन्ने ।

तत्पश्चात् शुक परिव्राजक के इस प्रकार कहने पर सुदशन आसन से उठ कर खडा हुआ । उसने दोनो हाथ जोडे मस्तक पर अजलि की और शुक परिव्राजक से इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय ! अरिहत अरिष्टनेमि के अन्तेवासी थावच्चापुत्र नामक अनगार विचरते हुए यावत् यहा आये हैं और यही नीलाशोक नामक उद्यान मे विचर रहे हैं । उनके पास से मैंने विनयमूल धर्म अगीकार किया है ।

४३—तए णं से सुए परिव्वायए सुदंसणं एवं वयासी—'तं गच्छामो णं सुदंसणा! तव धम्मायरियस्स थावच्चापुत्तस्स अंतियं पाउब्भवामो। इमाइं च णं एयारूवाइं अट्ठाइं हेऊइं पसिणाइं कारणाइं वागरणाइं पुच्छामो। तं जइ णं मे से इमाइं अट्ठाइं जाव वागरइ, तए णं अहं वंदामि नमंसामि। अह मे से इमाइं अट्ठाइं जाव (हेऊइं पसिणाइं कारणाइं वागरणाइं) नो वागरेइ, तए णं अहं एएहिं चेव अट्ठेहिं हेऊहिं निप्पट्ठपसिणवागरणं करिस्सामि—

तत्पश्चात् शुक परिव्राजक ने सुदर्शन से इस प्रकार कहा—'हे सुदर्शन! चलें, हम तुम्हारे धर्माचार्य थावच्चापुत्र के समीप प्रकट हों—चलें और इन अर्थों को, हेतुओं को, प्रश्नों को, कारणों को तथा व्याकरणों को पूछें।' अगर वह मेरे इन अर्थों, हेतुओं, प्रश्नों, कारणों और व्याकरणों का उत्तर देंगे तो मैं उन्हें वन्दना करूंगा, नमस्कार करूंगा और यदि वह मेरे इन अर्थों यावत् व्याकरणों को नहीं कहेंगे—इनका उत्तर नहीं देंगे तो मैं उन्हें इन्हीं अर्थों तथा हेतुओं आदि से निरुत्तर कर दूंगा।

विवेचन—सूत्र में अर्थ, हेतु, प्रश्न और व्याकरण पूछने का कथन किया गया है। इनमें से 'अर्थ' शब्द अनेकार्थक है। कोशकार कहते हैं—

अर्थ स्याद् विषये मोक्षे, शब्दवाच्य-प्रयोजने।
व्यवहारे धने शास्त्रे, वस्तु-हेतु निवृत्तिषु॥

अर्थात् अर्थ शब्द इन अर्थों का वाचक है—विषय, मोक्ष, शब्द का वाच्य, प्रयोजन, व्यवहार, धन, शास्त्र, वस्तु, हेतु और निवृत्ति। इन अर्थों में से यहाँ अनेक अर्थ घटित हो सकते हैं किन्तु आगे शुक और थावच्चापुत्र के संवाद का जो उल्लेख है, उसके आधार पर 'शब्द का वाच्य' अर्थ विशेषतः संगत लगता है। 'कुलत्था, सरिसवया' आदि शब्दों के अर्थ को लेकर ही संवाद होता है।

'हेतु' दर्शनशास्त्र में प्रयुक्त होने वाला विशिष्ट शब्द है। साध्य के होने पर ही होने वाला और साध्य के बिना न होने वाला हेतु कहलाता है, यथा—अग्नि के होने पर ही होने वाला और अग्नि के बिना नहीं होने वाला धूम, अग्नि के अस्तित्व के ज्ञान में हेतु है।

किसी कार्य की उत्पत्ति में जो साधन हो वह कारण है। जैसे धूम (धुंआ) कार्य की उत्पत्ति में अग्नि कारण है।

व्याकरण का अर्थ है—वस्तुस्वरूप को स्पष्ट करने वाला वचन। यहाँ व्याकरण से अभिप्राय है—उत्तर।

शुक-थावच्चापुत्र-संवाद

४४—तए णं से सुए परिव्वायगसहस्सेणं सुदंसणेण य सेट्ठिणा सद्धिं जेणेव नीलासोए उज्जाणे, जेणेव थावच्चापुत्ते अणगारे तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता थावच्चापुत्तं एवं वयासी—'जत्ता ते भंते! जवणिज्जं ते? अव्वाबाहं पि ते? फासुयं विहारं ते?

तए णं से थावच्चापुत्ते सुएणं परिव्वायगेणं एवं वुत्ते समाणे सुयं परिव्वायगं वयासी—'सुया! जत्ता वि मे, जवणिज्जं पि मे, अव्वाबाहं पि मे, फासुयविहारं पि मे।'

तत्पश्चात् वह शुक परिव्राजक, एक हजार परिव्राजकों के और सुदर्शन सेठ के साथ जहाँ नीलाशोक उद्यान था, और जहाँ थावच्चापुत्र अनगार थे, वहाँ आया। आकर थावच्चापुत्र से कहने

लगा—'भगवन् ! तुम्हारी यात्रा चल रही है ? यापनीय है ? तुम्हारे अव्याबाध है ? और तुम्हारा प्रासुक विहार हो रहा है ?

तब थावच्चापुत्र ने शुक परिव्राजक के इस प्रकार कहने पर शुक से कहा—हे शुक ! मेरी यात्रा भी हो रही है, यापनीय भी वर्त रहा है, अव्याबाध भी हैं और प्रासुक विहार भी हो रहा है।

४५—तए ण से सुए थावच्चापुत्त एव वयासी—'कि भते ! जत्ता ?

'सुया ! ज ण मम णाण दसण-चरित्त-तव-सजममाइएहि जोयणा से त जत्ता।'

'से कि त भते ! जवणिज्जे ?

'सुया ! जवणिज्जे दुविहे पण्णत्ते, तजहा—इदियजवणिज्जे य नोइदियजवणिज्जे य।'

'से कि त इदियजवणिज्जे ?'

'सुया ! ज ण मम सोइदिय चक्खिदिय घाणिदिय जिब्भिदिय फासिदियाइ निरुवहयाइ वसे वट्टति, से त इदियजवणिज्ज।'

'से कि त नोइदियजवणिज्जे ?'

'सुया ! जन्न कोह-माण-माया-लोभा खीणा, उवसता, नो उदयति, से त नोइदियजवणिज्जे।'

तत्पश्चात् शुक ने थावच्चापुत्र से इस प्रकार कहा—'भगवन् ! आपकी यात्रा क्या है ?

(थावच्चापुत्र—) हे शुक ! ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, और सयम आदि योगो से षट्काय (पाच स्थावरकाय—पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और छठे त्रसकाय—द्वीन्द्रिय से पचेन्द्रिय तक) के जीवो की यतना करना हमारी यात्रा है।

शुक—भगवन् ! यापनीय क्या है ?

थावच्चापुत्र—शुक ! यापनीय दो प्रकार का है—इन्द्रिय यापनीय और नोइन्द्रिय-यापनीय।

शुक—'इन्द्रिय-यापनीय किसे कहते है ?'

'शुक ! हमारी श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय विना किसी उपद्रव के वशीभूत रहती है, यही हमारा इन्द्रिय-यापनीय है।'

शुक—'नो-इन्द्रिय-यापनीय क्या है ?'

'हे शुक ! क्रोध मान माया और लोभ रूप कषाय क्षीण हो गये हो, उपशान्त हो गये हो, उदय मे न आ रहे हो, यही हमारा नोइन्द्रिय-यापनीय कहलाता है।'

४६—'से कि त भते ! अव्वाबाह ?'

'सुया ! जन्न मम वाइय पित्तिय सिभिय-सन्निवाइया विविहा रोगायका णो उदीरेंति, से त अव्वाबाह।'

'से कि त भते ! फासुयविहार ?'

'सुया ! जन्न आरामेसु उज्जाणेसु देवउलेसु सभासु पवासु इत्थि पसु-पडगविवज्जियासु वसहीसु पाडिहारिय पीढ-फलग सेज्जा-सथारय उगिण्हित्ता ण विहरामि, से त फासुयविहार।'

शुक ने कहा—'भगवन् ! अव्याबाध क्या है ?'

'हे शुक ! जो वात, पित्त, कफ और सन्निपात (दो अथवा तीन का मिश्रण) आदि सम्बन्धी विविध प्रकार के रोग (उपायसाध्य व्याधि) और आतंक (तत्काल प्राणनाशक व्याधि) उदय में न आवें, वह हमारा अव्याबाध है।'

शुक—'भगवन् ! हम जो आराम में, उद्यान में, देवकुल में, सभा में तथा स्त्री, पशु और नपुंसक से रहित उपाश्रय में पडिहारी (वापस लौटा देने योग्य) पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक आदि ग्रहण करके विचरते हैं, वह हमारा प्रासुक विहार है।'

४७—सरिसवया ते भंते ! भक्खेया अभक्खेया ?'

'सुया ! सरिसवया भक्खेया वि अभक्खेया वि।'

से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चइ सरिसवया भक्खेया वि अभक्खेया वि ?

'सुया ! सरिसवया दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—मित्तसरिसवया धन्नसरिसवया य। तत्थ णं जे ते मित्तसरिसवया ते तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—सहजायया, सहवड्ढियया सहपंसुकीलियया। ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया।

तत्थ णं जे ते धन्नसरिसवया ते दुविहा पन्नत्ता, तंजहा—सत्थपरिणया य असत्थपरिणया य। तत्थ णं जे ते असत्थपरिणया तं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया।

तत्थ णं जे ते सत्थपरिणया ते दुविहा पन्नत्ता, तंजहा—फासुगा य अफासुगा य। अफासुगा णं सुया ! नो भक्खेया।

तत्थ णं जे ते फासुया ते दुविहा पन्नत्ता, तंजहा—जाइया य अजाइया य। तत्थ णं जे ते अजाइया ते अभक्खेया। तत्थ णं जे ते जाइया ते दुविहा पण्णत्ता, तंजहा- एसणिज्जा य अणेसणिज्जा य। तत्थ णं जे ते अणेसणिज्जा ते णं अभक्खेया।

तत्थ णं जे ते एसणिज्जा ते दुविहा पन्नत्ता, तंजहा—लद्धा य अलद्धा य। तत्थ णं जे ते अलद्धा ते अभक्खेया। तत्थ णं जे ते लद्धा ते निग्गंथाणं भक्खेया।

एएणं अट्ठेणं सुया ! एवं वुच्चइ सरिसवया भक्खेया वि अभक्खेया वि।

शुक परिव्राजक ने प्रश्न किया—'भगवन् ! आपके लिए 'सरिसवया' भक्ष्य है या अभक्ष्य है ?'

थावच्चापुत्र ने उत्तर दिया—'हे शुक ! 'सरिसवया' हमारे लिए भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी हैं।'

शुक ने पुनः प्रश्न किया—'भगवन् ! किस अभिप्राय से ऐसा कहते हो कि 'सरिसवया' भक्ष्य भी हैं और अभक्ष्य भी हैं ?'

थावच्चापुत्र उत्तर देते हैं—'हे शुक ! 'सरिसवया' दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—मित्र- सरिसवया (सदृश वय वाले मित्र) और धान्य-सरिसवया (सरसों)। इनमें जो मित्र-सरिसवया हैं,

वे तीन प्रकार के हैं। वे इस प्रकार—(१) साथ जन्मे हुए (२) साथ बढे हुए और (३) साथ-साथ धूल मे खेले हुए। यह तीन प्रकार के मित्र-सरिसवया श्रमण निग्रन्थो के लिए अभक्ष्य हैं।

जो धान्य-सरिसवया (सरसो) है, वे दो प्रकार के है। वे इस प्रकार—शस्त्रपरिणत और अशस्त्रपरिणत। उनमे जो अशस्त्रपरिणत है। अर्थात् जिनको अचित्त करने के लिए अग्नि आदि शस्त्रो का प्रयोग नही किया गया है, अतएव जो अचित्त नही हैं, वे श्रमण निर्ग्रन्थो के लिए अभक्ष्य है।

जो शस्त्रपरिणत है, वे दो प्रकार के है। वे इस प्रकार—प्रासुक और अप्रासुक। हे शुक ! अप्रासुक भक्ष्य नही है।

उनमे जो प्रासुक है, वे दो प्रकार के है। वे इस प्रकार—याचित (याचना किये हुए) और अयाचित (नही याचना किये हुए) उनमे जो अयाचित है, वे अभक्ष्य हैं। उनमे जो याचित हैं, वे दो प्रकार के है। यथा—एषणीय और अनेषणीय। उनमे जो अनेषणीय हैं, वे अभक्ष्य है।

जो एषणीय हैं, वे दो प्रकार के हैं—लब्ध (प्राप्त) और अलब्ध (अप्राप्त)। उनमे जो अलब्ध है, वे अभक्ष्य है। जो लब्ध हैं वे निर्ग्रन्थो के लिए भक्ष्य है।

'हे शुक ! इस अभिप्राय से कहा है कि सरिसवया भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी हैं।'

४८—एव कुलत्था वि भाणियव्वा। नवरि इम नाणत्त—इत्थिकुलत्था य धन्नकुलत्था य। इत्थिकुलत्था तिविहा पन्नत्ता, तजहा—कुलवधुया य, कुलमाउया य, कुलधूया य। धन्नकुलत्था तहेव।

इसी प्रकार 'कुलत्था' भी कहना चाहिए, अर्थात् जैसे 'सरिसवया' के सम्बन्ध मे प्रश्न और उत्तर ऊपर कहे हैं, वैसे ही 'कुलत्था' के विषय मे कहने चाहिए। विशेषता इस प्रकार है—कुलत्था के दो भेद है—स्त्री-कुलत्था (कुल मे स्थित महिला) और धान्य-कुलत्था अर्थात् कुलथ नामक धान्य। स्त्री-कुलत्था तीन प्रकार की है। वह इस प्रकार—कुलवधू, कुलमाता और कुलपुत्री। ये अभक्ष्य हैं। धान्यकुलत्था भक्ष्य भी हैं और अभक्ष्य भी है इत्यादि सरिसवया के समान समझना चाहिए।

४९—एव मासा वि। नवरि इस नाणत्त—मासा तिविहा पण्णत्ता, तजहा—कालमासा य, अत्थमासा य, धन्नमासा य। तत्थ ण जे ते कालमासा ते ण दुवालसविहा पण्णत्ता, त जहा—सावणे जाव (भद्दवए आसोए कत्तिए मग्गसिरे पोसे माहे फग्गुणे जेत्ते वइसाहे जेट्ठामूले) आसाढे, ते ण अभक्खेया। अत्थमासा दुविहा पन्नत्ता, तजहा—हिरन्नमासा य सुवण्णमासा य। ते ण अभक्खेया। धन्नमासा तहेव।

मास सम्बन्धी प्रश्नोत्तर भी इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेषता इस प्रकार है—मास तीन प्रकार के कहे गये है। वे इस प्रकार हैं—कालमास, अर्थमास और धान्यमास। इनमे से कालमास बारह प्रकार के कहे है। वे इस प्रकार है—श्रावण यावत् [भाद्रपद, आसौज, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, जेष्ठामूल] आषाढ, अर्थात् श्रावणमास से आषाढमास तक। वे सब अभक्ष्य है। अथमास अर्थात् अर्थरूप माशा दो प्रकार के कहे हैं—चांदी का माशा और सोने का माशा। वे भी अभक्ष्य हैं। धान्यमास अर्थात् उडद भक्ष्य भी हैं और अभक्ष्य भी हैं, इत्यादि 'सरिसवया' के समान कहना चाहिए।

५०—'एगे भवं ? दुवे भवं ? अणेगे भवं ? अक्खए भवं ? अव्वए भवं ? अवट्ठिए भवं ? अणेगभूयभावभविए वि भवं ?

'सुया ! एगे वि अहं, दुवे वि अहं, जाव अणेगभूयभावभविए वि अहं ।

'से केणट्ठेणं भंते ! एगे वि अहं जाव अणेगभूयभावभविए वि अहं ?

'सुया ! दव्वट्ठयाए एगे अहं, नाणदंसणट्ठयाए दुवे वि अहं, पएसट्ठयाए अक्खए वि अहं, अव्वए वि अहं, अवट्ठिए वि अहं, उवओगट्ठयाए अणेगभूयभावभविए वि अहं ।'

शुक परिव्राजक ने पुनः प्रश्न किया—'आप एक हैं ? आप दो हैं ? आप अनेक हैं ? आप अक्षय हैं ? आप अव्यय हैं ? आप अवस्थित हैं ? आप भूत, भाव और भावी वाले हैं ?'

(यह प्रश्न करने का परिव्राजक का अभिप्राय यह है कि अगर थावच्चापुत्र अनगार आत्मा को एक कहेंगे तो श्रोत्र आदि इन्द्रियों द्वारा होने वाले ज्ञान और शरीर के अवयव अनेक होने से आत्मा की अनेकता का प्रतिपादन करके एकता का खंडन करूंगा । अगर वे आत्मा का द्वित्व स्वीकार करेंगे तो 'अहम्—मैं' प्रत्यय से होने वाली एकता की प्रतीति से विरोध बतलाऊंगा । इसी प्रकार आत्मा की नित्यता स्वीकार करेंगे तो मैं अनित्यता का प्रतिपादन करके उसका खंडन करूंगा । यदि अनित्यता स्वीकार करेंगे तो उसके विरोधी पक्ष को अंगीकार करके नित्यता का समर्थन करूंगा । मगर परिव्राजक के अभिप्राय को असफल बनाते हुए, अनेकान्तवाद का आश्रय लेकर थावच्चापुत्र उत्तर देते हैं—)

'हे शुक ! मैं द्रव्य की अपेक्षा से एक हूँ, क्योंकि जीव द्रव्य एक ही है । (यहाँ द्रव्य से एकत्व स्वीकार करने से पर्याय की अपेक्षा अनेकत्व मानने में विरोध नहीं रहा ।) ज्ञान और दर्शन की अपेक्षा से मैं दो भी हूँ । प्रदेशों की अपेक्षा से मैं अक्षय भी हूँ, अव्यय भी हूँ, अवस्थित भी हूँ । (क्योंकि आत्मा के लोकाकाश के बराबर असंख्यात प्रदेश हैं और उनका कभी पूरी तरह क्षय नहीं होता, थोड़े से प्रदेशों का भी व्यय नहीं होता, उसके असंख्यात प्रदेश सदैव अवस्थित—कायम रहते हैं—उनमें एक भी प्रदेश की न्यूनता या अधिकता कदापि नहीं होती ।) और उपयोग की अपेक्षा से अनेक भूत (अतीत कालीन), भाव (वर्तमान कालीन) और भावी (भविष्यत् कालीन), भी हूँ अर्थात् अनित्य भी हूँ । तात्पर्य यह है कि उपयोग आत्मा का गुण है, आत्मा से कथंचित् अभिन्न है, और वह भूत, वर्तमान और भविष्यत् कालीन विषयों को जानता है और सदैव पलटता रहता है । इस प्रकार उपयोग अनित्य होने से उससे अभिन्न आत्मा भी कथंचित् अनित्य है ।

विवेचन—यहाँ मुख्य रूप से आत्मा का कथंचित् एकत्व, अनेकत्व, नित्यत्व और अनित्यत्व प्रतिपादित किया गया है, किन्तु जनदर्शन के अनुसार और वास्तविक रूप से जगत् के सभी पदार्थों पर यह कथन घटित होता है । 'उप्पन्नेइ वा, विगमेइ वा, धुवेइ वा,' यह तीर्थंकरों की मूलवाणी है । इसका अभिप्राय यह है कि समस्त पदार्थों का उत्पाद होता है, विनाश होता है और वे ध्रुव-नित्य भी रहते हैं । यही वाचक उमास्वाति कहते हैं—'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्'[१] ।' अर्थात् प्रत्येक पदार्थ, जिसकी सत्ता है, उत्पाद व्यय और ध्रौव्यमय है । ये तीनों जिसमें एक साथ, निरन्तर—क्षण क्षण में न हों ऐसा कोई अस्तित्ववान् पदार्थ हो नहीं सकता ।

---

१ तत्त्वार्थसूत्र ५ २

सहज प्रश्न हो सकता है कि नित्यता और अनित्यता परस्पर विरोधी धर्म हैं तो एक साथ एक ही पदार्थ मे किस प्रकार रह सकते हैं ?

उत्तर इस प्रकार है—प्रत्येक पदार्थ वस्तु के दो पहलू हैं—द्रव्य और पर्याय। ये दोनो मिलकर ही वस्तु कहलाते हैं। द्रव्य के बिना पर्याय और पर्याय के बिना द्रव्य होता नही है। उदाहरणार्थ—आत्मा द्रव्य है और वह किसी न किसी पर्याय के साथ ही रहती है। द्रव्य और पर्याय परस्पर भिन्न भी है और अभिन्न भी है। इनमे से वस्तु का द्रव्याश शाश्वत है, इस दृष्टि से वस्तु नित्य है। पर्याय-अश पलटता रहता है अतएव पर्याय की दृष्टि से वस्तु अनित्य है। हमारा अनुभव और आधुनिक विज्ञान इस सत्य का समर्थन करता है।

सामान्य और विशेष धर्म प्रत्येक पदार्थ के अभिन्न अग हैं। इनमें से सामान्य को प्रधान रूप मे दृष्टि मे रख कर जब पदार्थों का निरीक्षण किया जाता है तो उनमे एकरूपता प्रतीत होती है और जब विशेष को मुख्य करके देखा जाता है तो जिनमें एकरूपता प्रतीत होती थी उन्ही मे अनेकता-भिन्नता जान पडती है। अत सामान्य की अपेक्षा एकत्व और विशेष की अपेक्षा अनेकत्व सिद्ध होता है।

शुक की प्रव्रज्या

५१—एत्थ ण से सुए सबुद्धे थावच्चापुत्त वदइ, नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—'इच्छामि ण भते ! तुब्भे अतिए केवलिपन्नत्त धम्म निसामित्तए।' धम्मकहा भाणियव्वा।

तए ण सुए परिव्वायए थावच्चापुत्तस्स अतिए धम्म सोच्चा णिसम्म एवं वयासी—'इच्छामि ण भते ! परिव्वायगसहस्सेणं सद्धि सपरिवुडे देवाणुप्पियाणं अतिए मु डे भवित्ता पव्वइत्तए।'

'अहासुह देवाणुप्पिया !' जाव उत्तरपुरच्छिमे दिसीभागे तिदडय जाव[1] धाउरत्ताओ य एगते एडेइ, एडित्ता सयमेव सिह उप्पाडेइ, उपाडित्ता जेणेव थावच्चापुत्ते अणगारे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता थावच्चापुत्त अणगार वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता थावच्चापुत्तस्स अणगारस्स अतिए मु डे भवित्ता जाव पव्वइए। सामाइयमाइयाइं चोद्दसपुव्वाइं अहिज्जइ। तए ण थावच्चापुत्ते सुयस्स अणगारसहस्स सीसत्ताए वियरइ।

थावच्चापुत्र के उत्तर से शुक परिव्राजक को प्रतिबोध प्राप्त हुआ। उसने थावच्चापुत्र को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना और नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'भगवन् ! मैं आपके पास से केवलीप्ररूपित धर्म सुनने की अभिलाषा करता हूँ। यहा धर्मकथा का वर्णन औपपातिक सूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिए।

तत्पश्चात् शुक परिव्राजक थावच्चापुत्र से धर्मकथा सुन कर और उसे हृदय मे धारण करके इस प्रकार बोला—'भगवन् ! मैं एक हजार परिव्राजकों के साथ देवानुप्रिय के निकट मुडित होकर प्रव्रजित होना चाहता हूँ।'

थावच्चापुत्र अनगार बोले—'देवानुप्रिय ! जिस प्रकार सुख उपजे वैसा करो।' यह सुनकर

[1] पचम अ सूत्र ३०

५०—'एगे भवं ? दुवे भवं ? अणेगे भवं ? अक्खए भवं ? अव्वए भवं ? अवट्ठिए भवं ? अणेगभूयभावभविए वि भवं ?

'सुया ! एगे वि अहं, दुवे वि अहं, जाव अणेगभूयभावभविए वि अहं।

'से केणट्ठेणं भंते ! एगे वि अहं जाव अणेगभूयभावभविए वि अहं ?

'सुया ! दव्वट्ठयाए एगे अहं, नाणदंसणट्ठयाए दुवे वि अहं, पएसट्ठयाए अक्खए वि अहं, अव्वए वि अहं, अवट्ठिए वि अहं, उवओगट्ठयाए अणेगभूयभावभविए वि अहं।'

शुक परिव्राजक ने पुनः प्रश्न किया—'आप एक हैं ? आप दो हैं ? आप अनेक हैं ? आप अक्षय हैं ? आप अव्यय हैं ? आप अवस्थित हैं ? आप भूत, भाव और भावी वाले हैं ?'

(यह प्रश्न करने का परिव्राजक का अभिप्राय यह है कि अगर थावच्चापुत्र अनगार आत्मा को एक कहेंगे तो श्रोत्र आदि इन्द्रियों द्वारा होने वाले ज्ञान और शरीर के अवयव अनेक होने से आत्मा की अनेकता का प्रतिपादन करके एकता का खंडन करूंगा। अगर वे आत्मा का द्वित्व स्वीकार करेंगे तो 'अहम्—मैं' प्रत्यय से होने वाली एकता की प्रतीति से विरोध बतलाऊंगा। इसी प्रकार आत्मा की नित्यता स्वीकार करेंगे तो मैं अनित्यता का प्रतिपादन करके उसका खंडन करूंगा। यदि अनित्यता स्वीकार करेंगे तो उसके विरोधी पक्ष को अंगीकार करके नित्यता का समर्थन करूंगा। मगर परिव्राजक के अभिप्राय को असफल बनाते हुए, अनेकान्तवाद का आश्रय लेकर थावच्चापुत्र उत्तर देते हैं—)

'हे शुक ! मैं द्रव्य की अपेक्षा से एक हूँ, क्योंकि जीव द्रव्य एक ही है। (यहाँ द्रव्य से एकत्व स्वीकार करने से पर्याय की अपेक्षा अनेकत्व मानने में विरोध नहीं रहा।) ज्ञान और दर्शन की अपेक्षा से मैं दो भी हूँ। प्रदेशों की अपेक्षा से मैं अक्षय भी हूँ, अव्यय भी हूँ, अवस्थित भी हूँ। (क्योंकि आत्मा के लोकाकाश के बराबर असंख्यात प्रदेश हैं और उनका कभी पूरी तरह क्षय नहीं होता, थोड़े से प्रदेशों का भी व्यय नहीं होता, उसके असंख्यात प्रदेश सदैव अवस्थित—कायम रहते हैं—उनमें एक भी प्रदेश की न्यूनता या अधिकता कदापि नहीं होती।) और उपयोग की अपेक्षा से अनेक भूत (अतीत कालीन), भाव (वर्त्तमान कालीन) और भावी (भविष्यत् कालीन), भी हूँ अर्थात् अनित्य भी हूँ। तात्पर्य यह है कि उपयोग आत्मा का गुण है, आत्मा से कथंचित् अभिन्न है, और वह भूत, वर्तमान और भविष्यत् कालीन विषयों को जानता है और सदैव पलटता रहता है। इस प्रकार उपयोग अनित्य होने से उससे अभिन्न आत्मा भी कथंचित् अनित्य है।

विवेचन—यहाँ मुख्य रूप से आत्मा का कथंचित् एकत्व, अनेकत्व, नित्यत्व और अनित्यत्व प्रतिपादित किया गया है, किन्तु जैनदर्शन के अनुसार और वास्तविक रूप से जगत् के सभी पदार्थों पर यह कथन घटित होता है। 'उप्पन्नेइ वा, विगमेइ वा, धुवेइ वा,' यह तीर्थंकरों की मूलवाणी है। इसका अभिप्राय यह है कि समस्त पदार्थों का उत्पाद होता है, विनाश होता है और वे ध्रुव नित्य भी रहते हैं। इसी कारण उमास्वाति कहते हैं—'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्[1]।' अर्थात् प्रत्येक पदार्थ, जिसकी सत्ता है, उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यमय है। ये तीनों जिसमें एक साथ, निरन्तर—क्षण-क्षण में न हों ऐसा कोई अस्तित्ववान् पदार्थ हो नहीं सकता।

---

१ तत्त्वार्थसूत्र अ. ५

सहज प्रश्न हो सकता है कि नित्यता और अनित्यता परस्पर विरोधी धर्म है तो एक साथ एक ही पदार्थ मे किस प्रकार रह सकते हैं ?

उत्तर इस प्रकार है—प्रत्येक पदाथ वस्तु के दो पहलू हैं—द्रव्य और पर्याय। ये दोनो मिलकर ही वस्तु कहलाते है। द्रव्य के बिना पर्याय और पर्याय के विना द्रव्य होता नही है। उदाहरणाथ—आत्मा द्रव्य है और वह किसी न किसी पर्याय के साथ ही रहती है। द्रव्य और पर्याय परस्पर भिन्न भी हैं और अभिन भी है। इनमे से वस्तु का द्रव्याश शाश्वत है, इस दृष्टि से वस्तु नित्य है। पर्याय-अश पलटता रहता है अतएव पर्याय की दृष्टि से वस्तु अनित्य है। हमारा अनुभव और आधुनिक विज्ञान इस सत्य का समथन करता है।

सामान्य और विशेष धर्म प्रत्येक पदार्थ के अभिन्न अग हैं। इनमें से सामान्य को प्रधान रूप से दृष्टि मे रख कर जब पदार्थों का निरीक्षण किया जाता है तो उनमे एकरूपता प्रतीत होती है और जब विशेप को मुख्य करके देखा जाता है तो जिनमें एकरूपता प्रतीत होती थी उन्ही मे अनेकता-भिन्नता जान पडती है। अत सामान्य की अपेक्षा एकत्व और विशेप की अपेक्षा अनेकत्व सिद्ध होता है।

शुक की प्रव्रज्या

५१—एत्थ ण से सुए सबुद्धे थावच्चापुत्त वदइ, नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—'इच्छामि ण भते! तुब्भे अतिए केवलिपन्नत्त धम्म निसामित्तए।' धम्मकहा भाणियव्वा।

तए ण सुए परिव्वायए थावच्चापुत्तस्स अतिए धम्म सोच्चा णिसम्म एव वयासी—'इच्छामि ण भंते! परिव्वायगसहस्सेणं सद्धि सपरिवुडे देवाणुप्पियाण अतिए मुडे भवित्ता पव्वइत्तए।'

'अहासुह देवाणुप्पिया!' जाव उत्तरपुरच्छिमे दिसीभागे तिदडय जाव[1] धाउरत्ताओ य एगंते एडेइ, एडित्ता सयमेव सिह उप्पाडेइ, उपाडित्ता जेणेव थावच्चापुत्ते अणगारे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता थावच्चापुत्त अणगार वदइ नमसइ, वंदित्ता नमसित्ता थावच्चापुत्तस्स अणगारस्स अन्तिए मुडे भवित्ता जाव पव्वइए। सामाइयमाइयाइं चोद्दसपुव्वाइ अहिज्जइ। तए ण थावच्चापुत्ते सुयस्स अणगारसहस्स सीसत्ताए वियरइ।

थावच्चापुत्र के उत्तर से शुक परिव्राजक को प्रतिबोध प्राप्त हुआ। उसने थावच्चापुत्र को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना और नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'भगवन्! में आपके पास से केवलीप्ररूपित धर्म सुनने की अभिलापा करता हूँ। यहा धर्मकथा का वणन औपपातिक सूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिए।

तत्पश्चात् शुक परिव्राजक थावच्चापुत्र से धर्मकथा सुन कर और उसे हृदय मे धारण करके इस प्रकार बोला—'भगवन्! मैं एक हजार परिव्राजकों के साथ देवानुप्रिय के निकट मुडित होकर प्रव्रजित होना चाहता हूँ।'

थावच्चापुत्र अनगार बोले—'देवानुप्रिय! जिस प्रकार सुख उपजे वसा करो।' यह सुनकर

१ पचम अ सूत्र ३०

५०—'एगे भवं ? दुवे भवं ? अणेगे भवं ? अक्खए भवं ? अव्वए भवं ? अवट्ठिए भवं ? अणेगभूयभावभविए वि भवं ?

'सुया ! एगे वि अहं, दुवे वि अहं, जाव अणेगभूयभावभविए वि अहं ।

'से केणट्ठेणं भंते ! एगे वि अहं जाव अणेगभूयभावभविए वि अहं ?

'सुया ! दव्वट्ठयाए एगे अहं, नाणदंसणट्ठयाए दुवे वि अहं, पएसट्ठयाए अक्खए वि अहं, अव्वए वि अहं, अवट्ठिए वि अहं, उवओगट्ठयाए अणेगभूयभावभविए वि अहं ।'

शुक परिव्राजक ने पुनः प्रश्न किया—'आप एक हैं ? आप दो हैं ? आप अनेक हैं ? आप अक्षय हैं ? आप अव्यय हैं ? आप अवस्थित हैं ? आप भूत, भाव और भावी वाले हैं ?'

(यह प्रश्न करने का परिव्राजक का अभिप्राय यह है कि अगर थावच्चापुत्र अनगार आत्मा को एक कहेंगे तो श्रोत्र आदि इन्द्रियों द्वारा होने वाले ज्ञान और शरीर के अवयव अनेक होने से आत्मा की अनेकता का प्रतिपादन करके एकता का खंडन करूंगा । अगर वे आत्मा का द्वित्व स्वीकार करेंगे तो 'अहम्—मैं' प्रत्यय से होने वाली एकता की प्रतीति से विरोध बतलाऊंगा । इसी प्रकार आत्मा की नित्यता स्वीकार करेंगे तो मैं अनित्यता का प्रतिपादन करके उसका खंडन करूंगा । यदि अनित्यता स्वीकार करेंगे तो उसके विरोधी पक्ष को अंगीकार करके नित्यता का समर्थन करूंगा । मगर परिव्राजक के अभिप्राय को असफल बनाते हुए, अनेकान्तवाद का आश्रय लेकर थावच्चापुत्र उत्तर देते हैं—)

'हे शुक ! मैं द्रव्य की अपेक्षा से एक हूँ, क्योंकि जीव द्रव्य एक ही है । (यहां द्रव्य से एकत्व स्वीकार करने से पर्याय की अपेक्षा अनेकत्व मानने में विरोध नहीं रहा ।) ज्ञान और दर्शन की अपेक्षा से मैं दो भी हूँ । प्रदेशों की अपेक्षा से मैं अक्षय भी हूँ, अव्यय भी हूँ, अवस्थित भी हूँ । (क्योंकि आत्मा के लोकाकाश के बराबर असंख्यात प्रदेश हैं और उनका कभी पूरी तरह क्षय नहीं होता, थोड़े से प्रदेशों का भी व्यय नहीं होता, उसके असंख्यात प्रदेश सदैव अवस्थित—कायम रहते हैं—उनमें एक भी प्रदेश की न्यूनता या अधिकता कदापि नहीं होती ।) और उपयोग की अपेक्षा से अनेक भूत (अतीत कालीन), भाव (वर्त्तमान कालीन) और भावी (भविष्यत् कालीन), भी हूँ अर्थात् अनित्य भी हूँ । तात्पर्य यह है कि उपयोग आत्मा का गुण है, आत्मा से कथंचित् अभिन्न है, और वह भूत, वर्तमान और भविष्यत् कालीन विषयों को जानता है और सदैव पलटता रहता है । इस प्रकार उपयोग अनित्य होने से उससे अभिन्न आत्मा भी कथंचित् अनित्य है ।

विवेचन—यहां मुख्य रूप से आत्मा का कथंचित् एकत्व, अनेकत्व, नित्यत्व और अनित्यत्व प्रतिपादित किया गया है किन्तु जैनदर्शन के अनुसार और वास्तविक रूप से जगत् के सभी पदार्थों पर यह कथन घटित होता है । 'उप्पन्नेइ वा, विगमेइ वा, धुवेइ वा,' यह तीर्थंकरों की मूलवाणी है । इसका अभिप्राय यह है कि समस्त पदार्थों का उत्पाद होता है, विनाश होता है और वे ध्रुव नित्य भी रहते हैं । यही वाचक उमास्वाति कहते हैं—'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्'[१] ।' अर्थात् प्रत्येक पदार्थ, जिसकी सत्ता है, उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यमय है । ये तीनों जिसमें एक साथ, निरन्तर—क्षण क्षण में न हों ऐसा कोई अस्तित्ववान् पदार्थ हो नहीं सकता ।

---

१ तत्त्वार्थसूत्र अ ५

सहज प्रश्न हो सकता है कि नित्यता और अनित्यता परस्पर विरोधी धर्म हैं तो एक साथ एक ही पदार्थ मे किस प्रकार रह सकते हैं ?

उत्तर इस प्रकार है—प्रत्येक पदार्थ वस्तु के दो पहलू है—द्रव्य और पर्याय। ये दोनो मिलकर ही वस्तु कहलाते हैं। द्रव्य के बिना पर्याय और पर्याय के विना द्रव्य होता नही है। उदाहरणार्थ—आत्मा द्रव्य है और वह किसी न किसी पर्याय के साथ ही रहती है। द्रव्य और पर्याय परस्पर भिन्न भी है और अभिन्न भी हैं। इनमे से वस्तु का द्रव्यांश शाश्वत है, इस दृष्टि से वस्तु नित्य है। पर्याय-अंश पलटता रहता है अतएव पर्याय की दृष्टि से वस्तु अनित्य है। हमारा अनुभव और आधुनिक विज्ञान इस सत्य का समर्थन करता है।

सामान्य और विशेष धर्म प्रत्येक पदार्थ के अभिन्न अंग हैं। इनमे से सामान्य को प्रधान रूप मे दृष्टि मे रख कर जब पदार्थों का निरीक्षण किया जाता है तो उनमे एकरूपता प्रतीत होती है और जब विशेष को मुख्य करके देखा जाता है तो जिनमे एकरूपता प्रतीत होती थी उन्ही मे अनेकता-भिन्नता जान पडती है। अत सामान्य की अपेक्षा एकत्व और विशेष की अपेक्षा अनेकत्व सिद्ध होता है।

शुक की प्रव्रज्या

५१—एत्थ ण से सुए सबुद्धे थावच्चापुत्त वदइ, नमसइ, वंदित्ता नमसित्ता एव वयासी—'इच्छामि ण भंते! तुब्भे अंतिए केवलिपन्नत्त धम्म निसामित्तए।' धम्मकहा भाणियव्वा।

तए ण सुए परिव्वायए थावच्चापुत्तस्स अंतिए धम्म सोच्चा णिसम्म एवं वयासी—'इच्छामि ण भंते! परिव्वायगसहस्सेणं सद्धिं सपरिवुडे देवाणुप्पियाण अंतिए मुंडे भवित्ता पव्वइत्तए।'

'अहासुह देवाणुप्पिया!' जाव उत्तरपुरच्छिमे दिसीभागे तिदंडय जाव[1] धाउरत्ताओ य एगते एडेइ, एडित्ता सयमेव सिहं उप्पाडेइ, उपाडित्ता जेणेव थावच्चापुत्ते अणगारे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता थावच्चापुत्त अणगार वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता थावच्चापुत्तस्स अणगारस्स अन्तिए मुंडे भवित्ता जाव पव्वइए। सामाइयमाइयाइ चोद्दसपुव्वाइ अहिज्जइ। तए ण थावच्चापुत्ते सुयस्स अणगारसहस्स सीसत्ताए वियरइ।

थावच्चापुत्र के उत्तर से शुक परिव्राजक को प्रतिबोध प्राप्त हुआ। उसने थावच्चापुत्र को वदना की, नमस्कार किया। वन्दना और नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'भगवन्! मैं आपके पास से केवलीप्ररूपित धर्म सुनने की अभिलाषा करता हूँ। यहाँ धर्मकथा का वर्णन औपपातिक सूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिए।

तत्पश्चात् शुक परिव्राजक थावच्चापुत्र से धर्मकथा सुन कर और उसे हृदय मे धारण करके इस प्रकार बोला—'भगवन्! मैं एक हजार परिव्राजको के साथ देवानुप्रिय के निकट मुंडित होकर प्रव्रजित होना चाहता हूँ।'

थावच्चापुत्र अनगार बोले—'देवानुप्रिय! जिस प्रकार सुख उपजे वैसा करो।' यह सुनकर

[1] पचम अ सूत्र ३०

यावत् उत्तरपूर्व दिशा में जाकर शुक परिव्राजक ने त्रिदंड आदि उपकरण यावत् गेरू से रंगे वस्त्र एकान्त में उतार डाले। अपने ही हाथ से शिखा उखाड़ ली। उखाड़ कर जहाँ थावच्चापुत्र अनगार थे, वहाँ आया। आकर वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके मुंडित होकर यावत् थावच्चापुत्र अनगार के निकट दीक्षित हो गया। फिर सामायिक से आरम्भ करके चौदह पूर्वों का अध्ययन किया। तत्पश्चात् थावच्चापुत्र ने शुक को एक हजार अनगार (जो उनके साथ दीक्षित हुए थे), शिष्य के रूप में प्रदान किये।

थावच्चापुत्र की मुक्ति

५२—तए णं थावच्चापुत्ते सोगंधियाओ नीयरीओ नीलासोयाओ पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ। तए णं से थावच्चापुत्ते अणगारसहस्सेण सद्धिं संपरिवुडे जेणेव पुंडरीए पव्वए तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता पुंडरीयं पव्वयं सणियं सणियं दुरूहइ। दुरूहित्ता मेघघणसन्निगासं देवसन्निवायं पुढविसिलापट्टयं जाव (पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता जाव संलेहणा झूसणा झूसिए भत्तपाणपडियाइक्खिए) पाओवगमणं समणुवन्ने।

तए णं से थावच्चापुत्ते बहूणि वासाणि सामन्नपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता जाव केवलवरनाणदंसणं समुप्पाडेत्ता तओ पच्छा सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।

तत्पश्चात् थावच्चापुत्र अनगार सौगंधिका नगरी से और नीलाशोक उद्यान से बाहर निकले। निकल कर जनपदविहार अर्थात् विभिन्न देशों में विचरण करने लगे। तत्पश्चात् वह थावच्चापुत्र (अपना अन्तिम समय सन्निकट समझ कर) हजार साधुओं के साथ जहाँ पुण्डरीक—शत्रुंजय पर्वत था, वहाँ आये। आकर धीरे धीरे पुण्डरीक पर्वत पर आरूढ़ हुए। आरूढ़ होकर उन्होंने मेघघटा के समान श्याम और जहाँ देवों का आगमन होता था, ऐसे पृथ्वीशिलापट्टक का प्रतिलेखन किया। प्रतिलेखन करके संलेखना धारण कर आहार पानी का त्याग कर उस शिलापट्टक पर आरूढ़ होकर यावत् पादपोपगमन अनशन ग्रहण किया।

तत्पश्चात् वह थावच्चापुत्र बहुत वर्षों तक श्रामण्यपर्याय पाल कर, एक मास की संलेखना करके साठ भक्तों का अनशन करके यावत् केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त करके सिद्ध हुए, बुद्ध हुए, समस्त कर्मों से मुक्त हुए, संसार का अन्त किया, परिनिर्वाण प्राप्त किया तथा सर्व दुःखों से मुक्त हुए।

शैलक राजा की दीक्षा

५३—तए णं सुए अन्नया कयाइ जेणेव सेलगपुरे नयरे, जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे तेणेव समोसरिए। परिसा निग्गया, सेलओ निग्गच्छइ। धम्मं सोच्चा जं णवरं—देवाणुप्पिया! पंथगपामोक्खाइं पंच मंतिसयाइं आपुच्छामि, मंडुयं च कुमारं रज्जे ठावेमि, तओ पच्छा देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयामि।'

'अहासुहं देवाणुप्पिया!'

तत्पश्चात् शुक अनगार किसी समय जहाँ शैलकपुर नगर था और जहाँ सुभूमिभाग नामक उद्यान था, वही पधारे। उन्हे वन्दना करने के लिए परिषद् निकली। शैलक राजा भी निकला। धर्मोपदेश सुनकर उसे प्रतिबोध प्राप्त हुआ। विशेष यह कि राजा ने निवेदन किया—हे देवानुप्रिय ! मैं पथक आदि पाँच सौ मन्त्रियो से पूछ लूँ—उनकी अनुमति ले लूँ और मडुक कुमार को राज्य पर स्थापित कर दूँ। उसके पश्चात् आप देवानुप्रिय के समीप मुडित होकर गृहवास से निकलकर अनगार-दीक्षा अगीकार करूगा।'

यह सुनकर, शुक अनगार ने कहा—'जैसे सुख उपजे वैसा करो।'

५४—तए ण से सेलाए राया सेलगपुर नयर अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव सए गिहे, जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासण सन्निसन्ने।

तए ण से सेलए राया पथयपामोक्खे पच मतिसए सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एव वयासी—एव खलु देवाणुप्पिया ! मए सुयस्स अतिए धम्मे निसते, से वि य धम्मे मए इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए। अह ण देवाणुप्पिया ! ससारभयउव्विग्गे जाव (भीए जम्म-जर मरणाण सुयस्स अणगारस्स अतिए मुडे भवित्ता अगाराओ अणगारिय) पव्वयामि। तुब्भे ण देवाणुप्पिया ! किं करेह ? किं वसेह ? किं वा ते हियइच्छिए त्ति ?

तए ण त पथयपामोक्खा सेलग राय एव वयासी—'जइ ण तुब्भे देवाणुप्पिया ! ससार-भयउव्विग्गे जाव पव्वयह, अम्हाण देवाणुप्पिया ! किमन्ने आहारे वा आलबे वा ? अम्हे वि य ण देवाणुप्पिया ! ससारभयउव्विग्गा जाव पव्वयामो, जहा देवाणुप्पिया ! अम्ह बहुसु कज्जेसु य कारणेसु य जाव (कुडुबेसु य मतेसु य गुज्झेसु य रहस्सेसु य निच्छएसु य आपुच्छणिज्जे पडिपुच्छणिज्जे मेढी पमाण आहारे आलवण चक्खू, मेढीभूए पमाणभूए आहारभूए आलवणभूए चक्खुभूए) तहा ण पव्वइयाण वि समाणाण बहुसु जाव चक्खुभूए।'

तत्पश्चात् शैलक राजा ने शैलकपुर नगर मे प्रवेश किया। प्रवेश करके जहाँ अपना घर था और जहा बाहर की उपस्थानशाला (राजसभा) थी, वहा आया। आकर सिंहासन पर आसीन हुआ।

तत्पश्चात् शलक राजा ने पथक आदि पाच सौ मत्रियो को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो ! मैंने शुक अनगार से धम सुना है और उस धम की मैंने इच्छा की है। वह धम मुझे रुचा है। अतएव हे देवानुप्रियो ! मैं ससार के भय से उद्विग्न होकर [जन्म-जरा-मरण से भयभीत होकर, शुक अनगार के समीप मुडित होकर गृहत्याग करके अनगार-] दीक्षा ग्रहण कर रहा हूँ। देवानुप्रियो ! तुम क्या करोगे ? कहाँ रहोगे ? तुम्हारा हित और अभीष्ट क्या है ? अथवा तुम्हारी हार्दिक इच्छा क्या है ?'

तब वे पथक आदि मत्री शैलक राजा से इस प्रकार कहने लगे—'हे देवानुप्रिय ! यदि आप ससार के भय से उद्विग्न होकर यावत् प्रव्रजित होना चाहते है, तो हे देवानुप्रिय ! हमारा दूसरा (पृथ्वी की तरह) आधार कौन है ? हमारा (रस्सी के समान) आलबन कौन है ? अतएव हे देवानुप्रिय ! हम भी ससार के भय से उद्विग्न होकर दीक्षा अगीकार करेंगे। हे देवानुप्रिय ! जैसे आप यहा गृहस्थावस्था मे बहुत से कार्यों मे, कुटुम्ब सबधी विषयो मे, मन्त्रणाओ मे, गुप्त एव रहस्यमय बातो मे, कोई भी निश्चय करने मे एक बार और बार-बार पूछने योग्य हैं, मेढी, प्रमाण, आधार, आलबन

और चक्षुभूत-मार्गदर्शक हैं, मेढी प्रमाण आधार आलम्बन एवं नेत्र समान हैं यावत् आप मार्गदर्शक हैं उसी प्रकार दीक्षित होकर भी आप बहुत-से कार्यों में यावत् चक्षुभूत (मार्गप्रदर्शक) होंगे।

५५—तए णं से सेलगे पंथगपामोक्खे पंच मंतिसए एवं वयासी—'जइ णं देवाणुप्पिया! तुब्भे संसारभयउव्विग्गा जाव पव्वयह, तं गच्छह णं देवाणुप्पिया! सएसु सएसु कुडुंबेसु जेट्ठे पुत्ते कुडुंबमज्झे ठावेत्ता पुरिस-सहस्सवाहिणीओ सीयाओ दुरूढा समाणा मम अंतियं पाउब्भवह' त्ति। तहेव पाउब्भवंति।

तत्पश्चात् शैलक राजा ने पंथक प्रभृति पांच सौ मन्त्रियों से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! यदि तुम संसार के भय से उद्विग्न हुए हो, यावत् दीक्षा ग्रहण करना चाहते हो तो देवानुप्रियो! जाओ और अपने-अपने कुटुम्बों में अपने-अपने ज्येष्ठ पुत्रों को कुटुम्ब के मध्य में स्थापित करके अर्थात् परिवार का समस्त उत्तरदायित्व उन्हें सौंप कर हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य शिविकाओं पर आरूढ होकर मेरे समीप प्रकट होओ—आओ।' यह सुन कर पांच सौ मंत्री अपने-अपने घर चले गये और राजा के आदेशानुसार कार्य करके शिविकाओं पर आरूढ होकर वापिस राजा के पास प्रकट हुए—आ पहुँचे।

५६—तए णं से सेलए राया पंच मंतिसयाइं पाउब्भवमाणाइं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! मंडुयस्स कुमारस्स महत्थं जाव[1] रायाभिसेयं उवट्ठवेह०।' अभिसिंचइ जाव राया जाए, जाव विहरइ।

तत्पश्चात् शैलक राजा ने पांच सौ मंत्रियों को अपने पास आया देखा। देखकर हृष्ट-तुष्ट होकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो! शीघ्र ही मंडुक कुमार के महान् अर्थ वाले राज्याभिषेक की तैयारी करो।' कौटुम्बिक पुरुषों ने वैसा ही किया। शैलक राजा ने राज्याभिषेक किया। मंडुक कुमार राजा हो गया, यावत् सुखपूर्वक विचरने लगा।

५७—तए णं से सेलए मंडुयं रायं आपुच्छइ। तए णं से मंडुए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'खिप्पामेव सेलगपुरं नयरं आसित्त जाव[2] गंधवट्टिभूयं करेह य कारवेह य, करित्ता कारवित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।'

तए णं से मंडुए दोच्चं पि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'खिप्पामेव सेलगस्स रण्णो महत्थं जाव[3] निक्खमणाभिसेयं जहेव मेहस्स तहेव, णवरं पउमावई देवी अग्गकेसे पडिच्छइ। सव्वे वि पडिग्गहं गहाय सीयं दुरूहंति, अवसेसं तहेव, जाव सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ जाव छट्ठट्ठम दसम-दुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।'

तत्पश्चात् शैलक ने मंडुक राजा से दीक्षा लेने की आज्ञा मांगी। तब मंडुक राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा—'शीघ्र ही शैलकपुर नगर को स्वच्छ और सिंचित करके सुगंध की वट्टी के समान करो और कराओ। ऐसा करके और करवा कर यह आज्ञा मुझे वापिस सौंपो अर्थात् आज्ञानुसार कार्य हो जाने की मुझे सूचना दो।'

१. अ. ११। २. अ. अ. ७०। ३. प्र. अ. १११

तत्पश्चात् मडुक राजा ने दुबारा कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--'शीघ्र ही शैलक महाराजा के महान् अर्थ वाले (बहुव्ययसाध्य) यावत् दीक्षाभिषेक की तैयारी करो।' जिस प्रकार मेघकुमार के प्रकरण मे प्रथम अध्ययन मे कहा था, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए। विशेषता यह है कि पद्मावती देवी ने शैलक के अग्रकेश ग्रहण किये। सभी दीक्षार्थी प्रतिग्रह-पात्र आदि ग्रहण करके शिविका पर आरूढ हुए। शेष वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए। यावत् राजर्षि शैलक ने दीक्षित होकर सामायिक से आरम्भ करके ग्यारह अगो का अध्ययन किया। अध्ययन करके बहुत से उपवास [बेला, तेला, चौला, पचोला, अर्धमासखमण, मासखमण आदि तपश्चरण करते हुए] विचरने लगे।

शैलक का जनपदविहार

५८—तए ण से सुए सेलयस्स अणगारस्स ताइं पथयपामोक्खाइं पच अणगारसयाइं सीसत्ताए वियरइ।

तए ण से सुए अन्नया कयाइ सेलगपुराओ नगराओ सुभूमिभागाओ उज्जाणाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहार विहरइ।

तए ण से सुए अणगारे अन्नया कयाइ तेण अणगारसहस्सेण सद्धि सपरिवुडे पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे गामाणुगाम विहरमाणे जेणेव पु डरीए पव्वए जाव (तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पु डरीय पव्वय सणिय सणिय दुरूहइ, दुरूहित्ता मेघघणसन्निगास देवसन्निवाय पुढविसिलापट्टय पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता जाव सलेहणा झूसणाझूसिए भत्तपाण-पडियाइक्खिए पाओवगमण णुवन्ने।

तए ण से सुए बहूणि वासाणि सामण्णपरियाग पाउणित्ता, मासियाए सलेहणाए अत्ताण झूसित्ता, सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता जाव केवलवरनाणदसण समुप्पाडेत्ता तओ पच्छा सिद्धे (बुद्धे मुत्ते अतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे)।

तत्पश्चात् शुक अनगार ने शैलक अनगार को पथक प्रभृति पाँच सौ अनगार शिष्य रूप मे प्रदान किये।

फिर शुक मुनि किसी समय शैलकपुर नगर से और सुभूमिभाग उद्यान से बाहर निकले। निकलकर जनपदो मे विचरने लगे।

तत्पश्चात् वह शुक अनगार एक बार किसी समय एक हजार अनगारो के साथ अनुक्रम से विचरते हुए, ग्रामानुग्राम विहार करते हुए अपना अन्तिम समय समीप आया जानकर पु डरीक पर्वत पर पधारे। यावत् [पु डरीक पर्वत पर पधारकर धीरे-धीरे उस पर आरूढ हुए। सघन मेघो के समान कृष्णवर्ण और देवगण जहाँ उतरते हैं ऐसे पृथ्वी-शिलापट्टक का प्रतिलेखन किया यावत् सलेखनापूर्वक आहार पानी का परित्याग करके, एक मास की सलेखना से आत्मा को भावित करके साठ भक्तो का छेदन करके केवलज्ञान केवलदर्शन प्राप्त करके सिद्ध (बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत, परिनिर्वृत्त और समस्त दु खो से रहित) हो गये।

शैलक मुनि की रुग्णता

५९—तए ण तस्स सेलगस्स रायरिसिस्स तेहिं अतेहि य, पतेहि य, तुच्छेहि य, लूहेहि य अरसेहि

य, विरसेहि य, सीएहि य, उण्हेहि य, कालाइक्कंतेहि य, पमाणाइक्कंतेहि य, निच्चं पाणभोयणेहि य पयइसुकुमालस्स सुहोचियस्स सरीरगंसि वेयणा पाउब्भूया उज्जला विउला कक्खडा पगाढा चंडा दुक्खा) जाव दुरहियासा, कंडुयदाहपित्तज्जरपरिगयसरीरे यावि विहरइ । तए णं से सेलए तेणं रोगायंकेणं सुक्के जाए यावि होत्था ।

तत्पश्चात् प्रकृति से सुकुमार और सुखभोग के योग्य शैलक राजर्षि के शरीर में सदा अन्त (चना आदि), प्रान्त (ठंडा या बचाखुचा), तुच्छ (अल्प), रूक्ष (रूखा), अरस (हींग आदि के संस्कार से रहित), विरस, (स्वादहीन), ठंडा-गरम, कालातिक्रान्त (भूख का समय बीत जाने पर प्राप्त) और प्रमाणातिक्रान्त (कम या ज्यादा) भोजन पान मिलने के कारण वेदना उत्पन्न हो गई । वह वेदना उत्कट यावत् विपुल, कठोर, प्रगाढ, प्रचंड एवं दुस्सह थी । उनका शरीर खुजली और दाह उत्पन्न करने वाले पित्तज्वर से व्याप्त हो गया । तब वह शैलक राजर्षि उस रोगातंक से शुष्क हो गए, अर्थात् उनका शरीर सूख गया ।

शैलक की चिकित्सा

६०—तए णं से सेलए अन्नया कयाइ पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे जाव (गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहं सुहेणं विहरमाणे जेणेव सेलगपुरे नगरे) जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे तेणेव विहरइ । परिसा निग्गया, मंडुओ वि निग्गओ, सेलयं अणगारं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता पज्जुवासइ ।

तए णं से मंडुए राया सेलयस्स अणगारस्स सरीरयं सुक्कं भुक्खं जाव सव्वाबाहं सरोगं पासइ, पासित्ता एवं वयासी—'अहं णं भंते ! तुब्भं अहापवित्तेहिं तिगिच्छएहिं अहापवित्तेणं ओसहभेसज्जेणं भत्तपाणेणं तिगिच्छं आउट्टामि, तुब्भे णं भंते ! मम जाणसालासु समोसरह, फासुअं एसणिज्जं पीढ-फलग सेज्जा संथारगं ओगिण्हित्ताणं विहरह ।'

तत्पश्चात् शैलक राजर्षि किसी समय अनुक्रम से विचरते हुए यावत् [सुखपूर्वक ग्रामानुग्राम गमन करते हुए जहाँ शैलकपुर नगर था और] जहाँ सुभूमिभाग नामक उद्यान था, वहाँ आकर विचरने लगे । उन्हें वन्दना करने के लिए परिषद् निकली । मंडुक राजा भी निकला । शैलक अनगार को उसने वन्दना की, नमस्कार किया । वन्दना-नमस्कार करके उपासना की । उस समय मंडुक राजा ने शैलक अनगार का शरीर शुष्क, निस्तेज यावत् सब प्रकार की पीड़ा से आक्रान्त और रोगयुक्त देखा । देखकर इस प्रकार कहा—

'भगवन् ! मैं आपकी साधु के योग्य चिकित्सकों से, साधु के योग्य औषध और भेषज के द्वारा तथा भोजन-पान द्वारा चिकित्सा कराना चाहता हूँ । भगवन् ! आप मेरी यानशाला में पधारिए और प्रासुक एवं एषणीय पीठ, फलक, शय्या तथा संस्तारक ग्रहण करके विचरिए ।'

६१—तए णं से सेलए अणगारे मंडुयस्स रण्णो एयमट्ठं तह त्ति पडिसुणेइ । तए णं से मंडुए सेलयं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए ।

तए णं से सेलए कल्लं जाव (पाउप्पभायाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा) जलंते सभंडमत्तोवगरणमायाए पंथगपामोक्खेहिं पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं सेलगपुरं

मणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव मडुयस्स जाणसाला तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता फासुय पीढ (फलग-सेज्जा-सथारय) जाव (ओगिण्हित्ता) विहरइ।

तत्पश्चात् शैलक अनगार ने मडुक राजा के इस अथ को (विज्ञप्ति को) 'ठीक है' ऐसा कहकर स्वीकार किया और राजा व दना-नमस्कार करके जिस दिशा से आया था, उसी दिशा मे लौट गया।

तत्पश्चात् वह शैलक राजर्षि कल (दूसरे दिन) प्रभात होने पर, सूर्योदय हो जाने के पश्चात् सहस्ररश्मि सूर्य के देदीप्यमान होने पर भडमान (पात्र) और उपकरण लेकर पथक प्रभृति पाँच सौ मुनियो के साथ शैलकपुर मे प्रविष्ट हुए। प्रवेश करके जहाँ मडुक राजा की यानशाला थी, उधर आये। आकर प्रासुक पीठ फलक शय्या सस्तारक ग्रहण करके विचरने लगे।

६२—तए ण मडुए राया चिगिच्छए सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'तुब्भे ण देवाणुप्पिया! सेलयस्स फासुय एसणिज्जेण जाव (ओसह-भेसज-भत्त-पाणेण) तेगिच्छ आउट्टेह।'

तए ण तेगिच्छया मडुएण रण्णा एव वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा सेलयस्स रायरिसिस्स अहापवित्तेहिं ओसहभेसज्जभत्तपाणेहिं तेगिच्छ आउट्टेंति। मज्जपाणय च से उवदिसति।

तए ण तस्स सेलयस्स अहापवित्तेहिं जाव मज्जपाणेण रोगायके उवसते होत्था, हट्ठे जाव बलियसरीरे (गलियसरीरे) जाए ववगयरोगायके।

तत्पश्चात् मडुक राजा ने चिकित्सको को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो! तुम शैलक राजर्षि की प्रासुक और एषणीय औषध, भेषज एव भोजन-पान से चिकित्सा करो।'

तब चिकित्सक मडुक राजा के इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट हुए। उन्होंने साधु के योग्य औषध, भेषज एव भोजन-पान से चिकित्सा की और मद्यपान करने की सलाह दी।

तत्पश्चात् साधु के योग्य औषध, भेषज, भोजन-पान से तथा मद्यपान करने से शैलक राजर्षि का रोग-आतक शान्त हो गया। वह हृष्ट-पुष्ट यावत् बलवान् शरीर वाले हो गये। उनके रोगान्तक पूरी तरह दूर हो गए।

शैलक की शिथिलता

६३—तए ण से सेलए तसि रोगायकसि उवसतसि समाणसि, तसि विपुलसि असण-पाण-खाइम-साइमसि मज्जपाणए य मुच्छिए गढिए गिद्धे अज्झोववन्ने ओसन्ने ओसन्नविहारी एव पासत्थे पासत्थविहारी, कुसीले कुसीलविहारी, पमत्ते पमत्तविहारी, ससत्ते ससत्तविहारी, उउबद्धपीढ-फलग-सेज्जा-सथारए पमत्ते यावि विहरइ। नो सचाएइ फासुय एसणिज्ज पीढ फलग-सेज्जा-सथारय पच्चप्पिणित्ता मडुय च राय आपुच्छित्ता बहिया जणवयविहार विहरित्तए।

तत्पश्चात् शैलक राजर्षि उस रोगातक के उपशान्त हो जाने पर विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम मे तथा मद्यपान मे मूर्छित, मत्त, गृद्ध और अत्यन्त आसक्त हो गये। वह अवसन्न-आलसी अर्थात् आवश्यक आदि क्रियाए सम्यक् प्रकार से न करने वाले, अवसन्नविहारी अर्थात् लगातार बहुत दिनो तक आलस्यमय जीवन यापन करने वाले हो गए। इसी प्रकार पार्श्वस्थ (ज्ञान-दर्शन-चारित्र को एक किनारे रख देने वाले) तथा पार्श्वस्थविहारी अर्थात् बहुत समय ज्ञानादि

य, विरसेहि य, सीएहि य, उण्हेहि य, कालाइक्कतेहि य, पमाणाइक्कतेहि य, णिच्च पारमोयणेहि य पयइसुकुमालस्स सुहोचियस्स सरीरगंसि वेयणा पाउब्भूया उज्जला विउला कक्खडा पगाढा चडा दुक्खा) जाव दुरहियासा, कड्डुयदाहपित्तज्जरपरिगयसरीरे यावि विहरइ । तए ण से सेलए तेण रोगायकेण सुक्के जाए यावि होत्था ।

तत्पश्चात् प्रकृति से सुकुमार और सुखभोग के योग्य शैलक राजर्षि के शरीर मे सदा अत (चना आदि), प्रान्त(ठडा या बचाखुचा),तुच्छ (अल्प), रूक्ष (रूखा), अरस (हीग आदि के सस्कार से रहित), विरस, (स्वादहीन),ठडा-गरम, कालातिक्रान्त (भूख का समय बीत जाने पर प्राप्त) और प्रमाणातिक्रान्त (कम या ज्यादा) भोजन-पान मिलने के कारण वेदना उत्पन्न हो गई । वह वेदना उत्कट यावत् विपुल, कठोर, प्रगाढ, प्रचड एव दुस्सह थी । उनका शरीर खुजली और दाह उत्पन्न करने वाले पित्तज्वर से व्याप्त हो गया । तब वह शैलक राजर्षि उस रोगातक से शुष्क हो गये, अर्थात उनका शरीर सूख गया ।

शैलक की चिकित्सा

६०—तए ण से सेलए अन्नया कयाइ पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे जाव (गामाणुगाम दूइज्जमाणे सुह सुहेण विहरमाणे जेणेव सेलगपुरे नगरे) जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे तेणेव विहरइ । परिसा निग्गया, मडुओ वि निग्गओ, सेलय अणगार वदइ, नमसइ, वदित्ता पज्जुवासइ ।

तए ण से मडुए राया सेलयस्स अणगारस्स सरीरय सुक्क भुक्क जाव सव्वाबाह सरोग पासइ, पासित्ता एव वयासी—'अह ण भते ! तुब्भ अहापवित्तेहि तिगिच्छएहि अहापवित्तेण ओसहभेसज्जेण भत्तपाणेण तिगिच्छ आउट्टामि, तुब्भे ण भते ! मम जाणसालासु समोसरह, फासुअ एसणिज्ज पीढ फलग सेज्जा-सथारग ओगिण्हित्ताण विहरह ।'

तत्पश्चात् शैलक राजर्षि किसी समय अनुक्रम से विचरते हुए यावत् [सुखपूर्वक ग्रामानुग्राम गमन करते हुए जहा शैलकपुर नगर था और] जहाँ सुभूमिभाग नामक उद्यान था, वहा आकर विचरने लगे । उन्हे वन्दन करने के लिए परिषद् निकली । मडुक राजा भी निकला । शैलक अनगार को सब ने वन्दन किया, नमस्कार किया । वन्दना नमस्कार करके उपासना की । उस समय मडुक राजा ने शैलक अनगार का शरीर शुष्क, निस्तेज यावत् सब प्रकार की पीडा से आक्रान्त और रोगयुक्त देखा । देखकर इस प्रकार कहा—

'भगवन् मैं आपकी साधु के योग्य चिकित्सको से, साधु के योग्य औषध और भेषज के द्वारा तथा भोजन-पान द्वारा चिकित्सा कराना चाहता हूँ । भगवन् ! आप मेरी यानशाला मे पधारिए और प्रासुक एव एषणीय पीठ, फलक, शय्या तथा सस्तारक ग्रहण करके विचरिए ।'

६१—तए ण से सेलए अणगारे मडुयस्स रण्णो एयमट्ठ तह त्ति पडिसुणेइ । तए ण से मडुए सेलय वदइ, नमसइ, वदित्ता नमसित्ता जामेव दिसि पाउब्भूए तामेव दिसि पडिगए ।

तए ण से सेलए कल्ल जाव (पाउप्पभायाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा) जलते सभडमत्तोवगरणमायाय पथगपामोक्खेहि पचहि अणगारसएहि सद्धि सेलगपुर-

मणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव मडुयस्स जाणसाला तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता फासुय पीढ (फलग-सेज्जा-सथारय) जाव (ओगिण्हित्ता) विहरइ।

तत्पश्चात् शैलक अनगार ने मडुक राजा के इस अथ को (विज्ञप्ति को) 'ठीक है' ऐसा कहकर स्वीकार किया और राजा वन्दना-नमस्कार करके जिस दिशा से आया था, उसी दिशा मे लौट गया।

तत्पश्चात् वह शैलक राजर्षि कल (दूसरे दिन) प्रभात होने पर, सूर्योदय हो जाने के पश्चात् सहस्ररश्मि सूर्य के देदीप्यमान होने पर भडमात्र (पात्र) और उपकरण लेकर पथक प्रभृति पाँच सौ मुनियो के साथ शैलकपुर मे प्रविष्ट हुए। प्रवेश करके जहा मडुक राजा की यानशाला थी, उधर आये। आकर प्रासुक पीठ फलक शय्या सस्तारक ग्रहण करके विचरने लगे।

६२—तए ण मडुए राया चिगिच्छए सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'तुब्भे ण देवाणुप्पिया! सेलगस्स फासुय-एसणिज्जेण जाव (ओसह-भेसज भत्त-पाणेण) तेगिच्छ आउट्टेह।'

तए ण तेगिच्छया मडुएण रण्णा एव वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा सेलयस्स रायरिसिस्स अहापवित्तेहि ओसहभेसज्जभत्तपाणेहि तेगिच्छ आउट्टेंति। मज्जपाणय च से उवदिसति।

तए ण तस्स सेलयस्स अहापवित्तेहि जाव मज्जपाणेण रोगायके उवसते होत्था, हट्ठे जाव बलियसरीरे (गलियसरीरे) जाए ववगयरोगायके।

तत्पश्चात् मडुक राजा ने चिकित्सको को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो! तुम शैलक राजर्षि की प्रासुक और एपणीय औपध, भेपज एव भोजन-पान से चिकित्सा करो।'

तब चिकित्सक मडुक राजा के इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट हुए। उन्होंने साधु के योग्य औपध, भेपज एव भोजन-पान से चिकित्सा की और मद्यपान करने की सलाह दी।

तत्पश्चात् साधु के योग्य औपध, भेपज, भोजन-पान से तथा मद्यपान करने से शैलक राजर्षि का रोग-आतक शान्त हो गया। वह हृष्ट-पुष्ट यावत् बलवान् शरीर वाले हो गये। उनके रोगान्तक पूरी तरह दूर हो गए।

शैलक की शिथिलता

६३—तए ण से सेलए तसि रोगायकसि उवसतसि समाणसि, तसि विपुलसि असण-पाण-खाइम साइमसि मज्जपाणए य मुच्छिए गढिए गिद्धे अज्झोववन्ने ओसन्ने ओसन्नविहारी एव पासत्थे पासत्थविहारी, कुसीले कुसीलविहारी, पमत्ते पमत्तविहारी, ससत्ते ससत्तविहारी, उउबद्धपीढ फलग-सेज्जा-सथारए पमत्ते यावि विहरइ। नो सचाएइ फासुय एसणिज्ज पीढ-फलग सेज्जा-सथारय पच्चप्पिणित्ता मडुय च राय आपुच्छित्ता बहिया जणवयविहार विहरित्तए।

तत्पश्चात् शैलक राजर्षि उस रोगातक के उपशान्त हो जाने पर विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम मे तथा मद्यपान मे मूर्छित, मत्त, गृद्ध और अत्यन्त आसक्त हो गये। वह अवसन्न-आलसी अर्थात् आवश्यक आदि क्रियाए सम्यक् प्रकार से न करने वाले, अवसन्नविहारी अर्थात् लगातार बहुत दिनो तक आलस्यमय जीवन यापन करने वाले हो गए। इसी प्रकार पार्श्वस्थ (ज्ञान-दर्शन-चारित्र को एक किनारे रख देने वाले) तथा पार्श्वस्थविहारी अर्थात् बहुत समय ज्ञानादि

को एक किनारे रख देने वाले, कुशील अर्थात कालविनय आदि भेद वाले ज्ञान दर्शन और चारित्र के आचारों के विराधक, बहुत समय तक विराधक होने के कारण कुशीलविहारी तथा प्रमत्त (पाँच प्रकार के प्रमाद से युक्त), प्रमत्तविहारी, ससक्त (कदाचित् सविग्न के गुणों और कदाचित् पार्श्वस्थ के दोषों से युक्त तथा तीन गौरव वाले) तथा ससक्तविहारी हो गए। शेष (वर्षा-ऋतु के सिवाय) काल में भी शय्या-सस्तारक के लिए पीठ-फलक रखने वाले प्रमादी हो गए। वह प्रासुक तथा एषणीय पीठ फलक आदि को वापस देकर और मडुक राजा से अनुमति लेकर बाहर जनपद-विहार करने में असमर्थ हो गए।

साधुओं द्वारा परित्याग

६४—तए ण तेसिं पथयवज्जाण पचण्ह अणगारसयाण अन्नया कयाइ एगयओ सहियाण जाव (समुवागयाण सण्णिसण्णाण सन्निविट्ठाण) पुव्वरत्तावरत्तकालसमयसि धम्मजागरिय जागरमाणाण अयमेयारूवे अज्झत्थिए (चिंतिए पत्थिए मणोगए सकप्पे) जाव समुप्पज्जित्था—'एव खलु सेलए रायरिसी चइत्ता रज्ज जाव पव्वइए, विपुल ण असण पाण खाइम साइमे मज्जपाणए य मुच्छिए, नो सचाएइ जाव[1] विहरित्तए, नो खलु कप्पइ देवाणुप्पिया! समणाण जाव (निग्गथाण ओसन्नाण पासत्थाण कुसीलाण पमत्ताण ससत्ताण उउबद्ध पीढ फलग-सेज्जा सथारए) पमत्ताण विहरित्तए। त सेय खलु देवाणुप्पिया! अम्ह कल्ल सेलय रायरिसिं आपुच्छित्ता पाडिहारिय पीढ फलग सेज्जा सथारय पच्चप्पिणित्ता सेलगस्स अणगारस्स पथय अणगार वेयावच्चकर ठवेत्ता बहिया अब्भुज्जएण जाव (जणवयविहारेण) विहरित्तए।' एव सपेहित्ता, सपेहित्ता कल्ल जेणेव सेलए रायरिसी तेणेव उवागच्छति उवागच्छित्ता सेलय आपुच्छित्ता पाडिहारिय पीढ फलग सेज्जा-सथारय पच्चप्पिणति, पच्चप्पिणित्ता पथय अणगार वेयावच्चकर ठावेंति, ठावित्ता बहिया जाव (जणवयविहार) विहरति।

तत्पश्चात् पथक के सिवाय वे पाँच सौ अनगार किसी समय इकट्ठे हुए—मिले, एक साथ बठे। तब मध्य रात्रि के समय धर्मजागरणा करते हुए उन्हे ऐसा विचार, चिन्तन, मानसिक सकल्प उत्पन्न हुआ कि—शैलक राजर्षि राज्य आदि का त्याग करके दीक्षित हुए, किन्तु अब विपुल, अशन, पान, खादिम और स्वादिम मे तथा मद्यपान मे मूर्छित हो गये हैं। वह जनपद-विहार करने मे समर्थ नहीं हैं। हे देवानुप्रियो! श्रमणो को [अवसन्न, पार्श्वस्थ, कुशील, प्रमत्त, ससक्त, शेष काल मे भी एक स्थानस्थायी तथा] प्रमादी होकर रहना नही कल्पता है। अतएव देवानुप्रियो! हमारे लिए यह श्रेयस्कर है कि कल शैलक राजर्षि से आज्ञा लेकर और पडिहारी पीठ फलग शय्या एव सस्तारक वापिस सौंपकर, पथक अनगार को शैलक अनगार का वैयावृत्यकारी स्थापित करके अर्थात सेवा मे नियुक्त करके बाहर जनपद मे अभ्युद्यत अर्थात् उद्यम सहित विचरण करें।' उन मुनियो ने ऐसा विचार किया। विचार करके, कल अर्थात् दूसरे दिन शैलक राजर्षि के समीप जाकर, उनकी आज्ञा लेकर, प्रतिहारी पीठ फलक शय्या सस्तारक वापिस दे दिये। वापिस देकर पथक अनगार को वैयावृत्यकारी नियुक्त किया—उनको सेवा मे रखा। रखकर बाहर देश-देशान्तर मे विचरने लगे।

विवेचन—राजर्षि शैलक शिथिलाचार के केन्द्र बन गए, यह घटना न असभव है, न विस्मयजनक। चिकित्सा के समय साधुधर्म के अनुसार चिकित्सा करने के लिए कहा गया था, फिर भी उनका

---
१ प्रथम अ ६२

मद्यपान करने का परामर्श अटपटा प्रतीत होता है। किन्तु यहाँ विशेष ध्यान देने योग्य बा
शिष्यो का विनय-विवेक है। उन्होने जब विहार करने का निर्णय किया तब भी शैलक ऋषि
उनके मन मे दुर्भावना नही है, घृणा नही है, विरोध का भाव नही है। सम्बन्ध-विच्छेद की
भी नही है। वे शैलक की अनुमति लेकर ही विहार करने का निश्चय करते है और
पथक को उनकी सेवा मे छोड जाते हैं। इससे सकेत मिलता है कि अपने को उग्राचारी म
अभिमान करने और दूसरे को हीनाचारी होने के कारण घृणित समझने की मनोवृत्ति उ
थी। वास्तव मे साधु का हृदय विशाल और उदार होना चाहिए। इस उदार व्यवहार
शैलक ऋषि का पुन अपनी साधु मर्यादा मे लौटने के रूप मे हुआ।

६५—तए ण से पथए सेलयस्स सेज्जा-सथारय उच्चार-पासवण खेल सघाण-मत्त
भेसज्ज-भत्त पाणएण अगिलाए विणएण वेयावडिय करेइ।

तए ण से सेलए अन्नया कयाइ कत्तियचाउम्मासियसि विपुल असण पाण खाइ
आहारमाहारिए सबहु मज्जपाणय पीए पुव्वावरण्हकालसमयसि सुहप्पसुत्ते।

तब वह पथक अनगार शैलक राजर्षि की शय्या, सस्तारक, उच्चार, प्रस्रवण, श्लेष्म
(नासिकामल) के पात्र, औषध, भेषज, आहार, पानी आदि से बिना ग्लानि, विनयपूर्वक
करने लगे।

तत्पश्चात् किसी समय शैलक राजर्षि कार्तिकी चौमासी के दिन विपुल अशन, पान,
और स्वादिम आहार करके और बहुत अधिक मद्यपान करके सायकाल के समय आरा
रहे थे।

शैलक का कोप

६६—तए ण से पथए कत्तियचाउम्मासियसि कयकाउस्सग्गे देवसिय पडिक्कमण प
चाउम्मासिय पडिक्कमिउकामे सेलय रायरिसि खामणट्ठयाए सीसेण पाएसु सघट्टेइ।

तए ण से सेलए पथएण सीसेण पाएसु सघट्टिए समाणे आसुरुत्ते जाव (रुट्ठे कुविए
मिसिमिसेमाणे उट्ठेइ, उट्ठित्ता एव वयासी—'से केस ण भो! एस अपत्थियपत्थि
(दुरतपतलक्खणे हीणपुण्णचाउद्दसिए सिरि-हिरि-धिइ कित्ति) परिवज्जिए जे ण मम सु
पाएसु सघट्टेइ?'

उस समय पथक मुनि ने कार्तिक की चौमासी के दिन कायोत्सर्ग करके दैवसिक प्र
करके, चातुर्मासिक प्रतिक्रमण करने की इच्छा से शैलक राजर्षि को खमाने के लिए अपने म
उनके चरणो को स्पर्श किया।

पथक के द्वारा मस्तक से चरणो का स्पर्श करने पर शैलक राजर्षि एकदम क्रुद्ध हुए,
[रुष्ट हुए, कुपित हुए, अत्यन्त उग्र हो गए,] क्रोध से मिसमिसाने लगे और उठ गये। उठकर
'अरे, कौन है यह अप्रार्थित (मौत) की इच्छा करने वाला, यावत् [अत्यन्त अपलक्षण वाला,
पापी चतुर्दशी का जन्मा, श्री ह्री (लज्जा) धृति और कीर्ति से] सर्वथा शून्य, जिसने सुखपूव
हुए मेरे पैरो का स्पर्श किया?

पंथक की क्षमाप्रार्थना

६७—तए णं से पंथए सेलएणं एवं वुत्ते समाणे भीए तत्थे तसिए करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—'अहं णं भंते ! पंथए कयकाउस्सग्गे देवसियं पडिक्कमणं पडिक्कंते, चाउम्मासियं पडिक्कंते चाउम्मासियं खामेमाणे देवाणुप्पियं वंदमाणे सीसेणं पाएसु संघट्टेमि। तं खमतु णं देवाणुप्पिया! खमतु मेऽवराहं, तुमं णं देवाणुप्पिया! णाइभुज्जो एवं करणयाए' त्ति कट्टु सेलयं अणगारं एयमट्ठं सम्मं विणएणं भुज्जो खामेइ।

शैलक ऋषि के इस प्रकार कहने पर पंथक मुनि भयभीत हो गये, त्रास को और खेद को प्राप्त हुए। दोनों हाथ जोड़कर मस्तक पर अंजलि करके कहने लगे—'भगवन्! मैं पंथक हूँ। मैंने कायोत्सर्ग करके दैवसिक प्रतिक्रमण किया है और चौमासी प्रतिक्रमण करता हूं। अतएव चौमासी खामणा देने के लिए आप देवानुप्रिय को वन्दना करते समय, मैंने अपने मस्तक से आपके चरणों का स्पर्श किया है। सो देवानुप्रिय! क्षमा कीजिए, मेरा अपराध क्षमा कीजिए। देवानुप्रिय! फिर ऐसा नहीं करूंगा।' इस प्रकार कह कर शैलक अनगार को सम्यक् रूप से, विनयपूर्वक इस अर्थ (अपराध) के लिए वे पुनः-पुनः खमाने लगे।

शैलक का पुनर्जागरण

६८—तए णं सेलयस्स रायरिसिस्स पंथएणं एवं वुत्तस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—'एवं खलु अहं रज्जं च जाव ओसन्नो जाव उउबद्धपीढ फलग-सेज्जा-संथारए पमत्ते विहरामि। तं नो खलु कप्पइ समणाणं णिग्गंथाणं पासत्थाणं जाव विहरित्तए। तं सेयं खलु मे कल्लं मंडुयं रायं आपुच्छित्ता पाडिहारियं पीढ फलग-सेज्जा-संथारयं पच्चप्पिणित्ता पंथएणं अणगारेणं सद्धिं बहिया अब्भुज्जएणं जाव जणवयविहारेणं विहरित्तए।' एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कल्लं जाव विहरइ।

पंथक के द्वारा इस प्रकार कहने पर उन शैलक राजर्षि को इस प्रकार का यह विचार उत्पन्न हुआ—'मैं राज्य आदि का त्याग करके भी यावत् अवसन्न-आलसी आदि होकर शेष काल में भी पीठ, फलक आदि रख कर विचर रहा हूँ—रह रहा हूँ। श्रमण निर्ग्रन्थों को पार्श्वस्थ-शिथिलाचारी होकर रहना नहीं कल्पता। अत एव कल मंडुक राजा से पूछ कर, पडिहारी पीठ, फलक, शय्या और संस्तारक वापिस देकर, पंथक अनगार के साथ, बाहर अभ्युद्यत (उग्र) विहार से विचरना ही मेरे लिए श्रेयस्कर है।' उन्होंने ऐसा विचार किया। विचार करके दूसरे दिन यावत् उसी प्रकार करके विहार कर दिया।

६९—एवामेव समणाउसो! जो निग्गंथो वा निग्गंथी वा ओसन्ने जाव संथारए पमत्ते विहरइ, से णं इहलोए चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाणं हीलणिज्जे, संसारो भाणियव्वो।

हे आयुष्मन् श्रमणो! इसी प्रकार जो साधु या साध्वी आलसी होकर, संस्तारक आदि के विषय में प्रमादी होकर रहता है, वह इसी लोक में बहुत-से श्रमणों, बहुत-सी श्रमणियों, बहुत-से श्रावकों और बहुत-सी श्राविकाओं की हीलना का पात्र होता है। यावत् वह चिरकाल पर्यन्त संसार-भ्रमण करता है। यहाँ संसार-परिभ्रमण का विस्तृत वर्णन पूर्ववत् कह लेना चाहिए।

अनगारो का मिलन

७०—तए ण ते पथगवज्जा पच अणगारसया इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणा अन्नमन्न सद्दावेंति, सद्दावित्ता एव वयासी—'सेलए रायरिसी पथएण बहिया जाव विहरइ, त सेय खलु देवाणुप्पिया! अम्ह सेलय उवसपज्जित्ताण विहरित्तए।' एव सपेहेति, सपेहित्ता सेलय रायरिसि उवसपज्जित्ता ण विहरति।

तत्पश्चात् पथक को छोडकर पाच सौ अनगारो (अर्थात् ४९९ मुनियो) ने यह वृत्तान्त जाना। तब उन्होने एक दूसरे को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा—'शलक राजर्षि पथक मुनि के साथ बाहर यावत् उग्र विहार कर रहे है तो हे देवानुप्रियो! अब हमे शैलक राजर्षि के समीप चल कर विचरना उचित है।' उन्होने ऐसा विचार किया। विचार करके राजर्षि शैलक के निकट जाकर विचरने लगे।

७१—तए ण ते सेलगपामोक्खा पच अणगारसया बहूणि वासाणि सामन्नपरियाग पाउणित्ता जेणेव पोडरीए पव्वए तेणेव उवागच्छति। उवागच्छित्ता जहेव थावच्चापुत्ते तहेव सिद्धा।

तत्पश्चात शैलक प्रभृति पाच सौ मुनि बहुत वर्षो तक सयमपर्याय पाल कर जहाँ पुडरीक—शत्रुजय पवत था, वहाँ आये। आकर थावच्चापुत्र की भाति सिद्ध हुए।

उपसहार

७२—एवामेव समणाउसो! जो निग्गथो वा निग्गथी वा जाव विहरिस्सइ०, एव खलु जबू! समणेण भगवया महावीरेण पचमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्तेत्ति बेमि॥

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो! जो साधु या साध्वी इस तरह विचरेगा वह इस लोक मे बहुसख्यक साधुओ, साध्वियो, श्रावको और श्राविकाओ के द्वारा अचनीय, वन्दनीय, नमनीय, पूजनीय, सत्करणीय और सम्माननीय होगा। कल्याण, मगल, देव और चैत्य स्वरूप होगा। विनयपूवक उपासनीय होगा।

परलोक मे उसे हाथ, कान एव नासिका के छेदन के, हृदय तथा वृषणो के उत्पाटन के एव फाँसी आदि के दुख नही भोगने पडेगे। अनादि अनन्त चातुर्गतिक ससार-कान्तार मे उसे परिभ्रमण नही करना पडेगा। वह सिद्धि प्राप्त करेगा।

हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर ने पाँचवे ज्ञात अध्ययन का यह अथ कहा है। उनके कथनानुसार मैं कहता हूँ।

॥ पचम अध्ययन समाप्त ॥

षष्ठ अध्ययन : तुम्बक

सार सक्षेप

छठा अध्ययन स्वत सार-सक्षेपमय है । उसका सार अथवा सक्षिप्त रूप अलग से लिखने की आवश्यकता नहीं है । तथापि जो शैली अपनाई गई है, उसे अक्षुण्ण रखने के लिए किंचित् लिखना आवश्यक है ।

प्रस्तुत अध्ययन मे जो प्रश्नोत्तर हैं, वे राजगृह नगर मे सम्पन्न हुए । राजगृह नगर भगवान् महावीर के विहार का मुख्य स्थल रहा है ।

गौतम स्वामी ने जीवों की गुरुता और लघुता के विषय मे प्रश्न किया है । व्यवहारनय की दृष्टि से गुरुता अध पतन का कारण है और लघुता ऊर्ध्वगति का कारण है । किन्तु यहाँ जीव की गुरुता-लघुता का ही विचार किया गया है । भगवान् का उत्तर सोदाहरण है । तुम्बे का उदाहरण देकर समझाया गया है । जीव तुम्बे के समान है । अष्ट कमप्रकृतियाँ मिट्टी के आठ लेपो के समान हैं। ससार जलाशय के समान है । जैसे मिट्टी के आठ लेपो के कारण भारी हो जाने से तुम्बा जलाशय के अध —तलभाग मे चला जाता है और लेप-रहित होकर ऊर्ध्वगति करता है—ऊपर आ जाता है । इसी प्रकार ससारी जीव आठ कर्म-प्रकृतियो मे भारी होकर नरक जैसी अधोगति का अतिथि बनता है और जब सवर एव निर्जरा की उत्कृष्ट साधना करके इन कर्म-प्रकृतियो से मुक्त हो जाता है, तब अपने स्वयसिद्ध ऊर्ध्वगमन स्वभाव से लोक के अग्रभाग पर जाकर प्रतिष्ठित हो जाता है ।

'लोयग्गपइट्ठाणा भवति' इस वाक्यांश द्वारा जैन परम्परा की मान्यता को द्योतित किया गया है । मोक्ष के विषय मे एक मान्यता ऐसी है कि मुक्त जीव अनन्त काल तक, निरन्तर ऊर्ध्वगमन करता ही रहता है, कभी कही रुकता नही । इस मान्यता का इस वाक्यांश के द्वारा निषेध किया गया है ।

एक मान्यता यह भी है कि मुक्त जीव की स्वतन्त्र सत्ता नही रहती, एक विराट् सत्ता मे उसका विलीनीकरण हो जाता है । मुक्त जीव अपनी पृथक् सत्ता गवा देता है । इस मान्यता का भी विरोध हो जाता है । मुक्त जीव लोकाग्र पर प्रतिष्ठित रहते हैं, उन की पृथक् सत्ता रहती है, यही मान्यता समीचीन है ।

छट्ठं अज्झयणं : तुंबए

उत्क्षेप

१—'जइ ण भते ! समणेण भगवया महावीरेण जाव सपत्तेण पचमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते, छट्ठस्स ण भते ! णायज्झयणस्स समणेण जाव सपत्तेण के अट्ठे पण्णत्ते ?'

श्री जम्बू स्वामी ने सुधर्मा स्वामी से प्रश्न किया—भगवन् ! यदि श्रमण यावत् सिद्धि को प्राप्त भगवान् महावीर ने पाँचवें ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ कहा है (जो आपने फर्माया) तो हे भगवन् ! छठे ज्ञाताध्ययन का यावत् सिद्धि को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने क्या अर्थ कहा है ?

२—एव खलु जबू ! तेण कालेण समएण रायगिहे णाम नयरे होत्था। तत्थ ण रायगिहे णयरे सेणिए नाम राया होत्था। तस्स ण रायगिहस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एत्थ ण गुणसिलए नाम चेइए होत्था।

श्री सुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी के प्रश्न के उत्तर मे कहा—जम्बू ! उस काल और उस समय मे राजगृह नामक नगर था। उस राजगृह नगर मे श्रेणिक नामक राजा था। उस राजगृह नगर के बाहर उत्तरपूर्वदिशा मे—ईशानकोण मे गुणशील नामक चैत्य (उद्यान) था।

राजगृह मे भगवान् का आगमन

३—तेण कालेण तेण समएण समणे भगव महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे जाव जेणेव रायगिहे णयरे जेणेव गुणसिलए चेइए तेणेव समोसढे। अहापडिरूव उग्गह गिण्हित्ता सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरइ। परिसा निग्गया, सेणिओ वि निग्गओ, धम्मो कहिओ, परिसा पडिगया।

उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर अनुक्रम से विचरते हुए, यावत् जहाँ राजगृह नगर था और जहाँ गुणशील चैत्य था, वहा पधारे। यथायोग्य अवग्रहण करके सयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। भगवान को वन्दना करने लिए परिषद् निकली। श्रेणिक राजा भी निकला। भगवान् ने धर्मदेशना दी। उसे सुनकर परिषद् वापिस चली गई।

गुरुता-लघुता सबन्धी प्रश्न

४—तेण कालेण तेण समएण समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अतेवासी इदभूई नाम अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामते जाव[1] सुक्कज्झाणोवगए विहरइ।

तए ण से इदभूई नाम अणगारे जायसड्ढे जाव एव वयासी—'कह ण भते ! जीवा गुरुयत्त वा लहुयत्त वा हव्वमागच्छति ?'

---

१ औपपातिक सूत्र ८२

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ (प्रथम) शिष्य, इन्द्रभूति नामक अनगार श्रमण भगवान् महावीर से न अधिक दूर और न अधिक समीप स्थान पर रहे हुए यावत् निर्मल उत्तम ध्यान मे लीन होकर विचर रहे थे।

तत्पश्चात् जिन्हें श्रद्धा उत्पन्न हुई है ऐसे इन्द्रभूति अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से इस प्रकार प्रश्न किया—'भगवन् ! किस प्रकार जीव शीघ्र ही गुरुता अथवा लघुता को प्राप्त होते हैं ?'

भगवान् का समाधान

५—'गोयमा ! से जहानामए केइ पुरिसे एगं महं सुक्कं तुंबं णिच्छिड्डं निरुवहयं दब्भेहिं कुसेहिं वेढेइ, वेढित्ता मट्टियालेवेणं लिंपइ, उण्हे दलयइ, दलइत्ता सुक्कं समाणं दोच्चं पि दब्भेहि य कुसेहि य वेढेइ, वेढित्ता मट्टियालेवेणं लिंपइ, लिंपित्ता उण्हे सुक्कं समाणं तच्चं पि दब्भेहि य कुसेहि य वेढेइ, वेढित्ता मट्टियालेवेणं लिंपइ। एवं खलु एएणुवाएणं अंतरा वेढेमाणे अंतरा लिंपेमाणे, अंतरा सुक्कवेमाणे जाव अट्ठहिं मट्टियालेवेहिं आलिंपइ, अत्थाहमतारमपोरिसियंसि उदगंसि पक्खिवेज्जा। से णूणं गोयमा ! से तुंबे तेसिं अट्ठण्हं मट्टियालेवेणं गुरुययाए भारिययाए गरुयभारिययाए उप्पिं सलिलमइवइत्ता अहे धरणियलपइट्ठाणे भवइ।

एवामेव गोयमा ! जीवा वि पाणाइवाएणं जाव (मुसावाएणं अदिण्णादाणेणं मेहुणेणं परिग्गहेणं जाव) मिच्छादंसणसल्लेणं अणुपुव्वेणं अट्ठकम्मपगडीओ समज्जिणंति। तासिं गरुययाए भारिययाए गरुयभारिययाए कालमासे कालं किच्चा धरणियलमइवइत्ता अहे नरगतलपइट्ठाणा भवंति। एवं खलु गोयमा ! जीवा गरुयत्तं हव्वमागच्छंति।

गौतम ! यथानामक—कुछ भी नाम वाला, कोई पुरुष एक बड़े, सूखे, छिद्ररहित और अखंडित तुंबे को दर्भ (डाभ) से और कुश (दूब) से लपेटे और फिर मिट्टी के लेप से लीपे, फिर धूप में रख दे। सूख जाने पर दूसरी बार दर्भ और कुश से लपेटे और मिट्टी के लेप से लीप दे। लीप कर धूप में सूख जाने पर तीसरी बार दर्भ और कुश से लपेटे और लपेट कर मिट्टी का लेप चढ़ा दे। सुखा ले। इसी प्रकार, इसी उपाय से बीच-बीच में दर्भ और कुश से लपेटता जाये, बीच-बीच में लेप चढ़ाता जाये और बीच-बीच में सुखाता जाये, यावत् आठ मिट्टी के लेप उस तुंबे पर चढ़ावे। फिर उसे अथाह, जिसे तिरा न जा सके और अपौरुषिक (जिसे पुरुष की ऊँचाई से नापा न जा सके) जल में डाल दिया जाये। तो निश्चय ही हे गौतम ! वह तुंबा मिट्टी के आठ लेपों के कारण गुरुता को प्राप्त होकर, भारी होकर तथा गुरु एवं भारी हुआ ऊपर रहे हुए जल को पार करके नीचे धरती के तलभाग में स्थित हो जाता है।

इसी प्रकार हे गौतम ! जीव भी प्राणातिपात से यावत् (मृषावाद से, अदत्तादान से, मैथुन और परिग्रह से यावत्) मिथ्यादर्शन शल्य से अर्थात् अठारह पापस्थानकों के सेवन से क्रमशः आठ कर्म प्रकृतियों का उपार्जन करते हैं। उन कर्मप्रकृतियों की गुरुता के कारण, भारीपन के कारण और गुरुता के भार के कारण मृत्यु के समय मृत्यु को प्राप्त होकर, इस पृथ्वी-तल को लांघ कर नीचे नरक-तल में स्थित होते हैं। इस प्रकार गौतम ! जीव शीघ्र गुरुत्व को प्राप्त होते हैं।

६—अह ण गोयमा ! से तुम्बे तसि पढमिल्लुगसि मट्टियालेवसि तित्तसि कुहियसि परिसडियसि ईसिं धरणियलाओ उप्पइत्ता ण चिट्ठइ । तयाणतर च ण दोच्च पि मट्टियालेवे जाव (तित्ते कुहिए परिसडिए ईसिं धरणियलाओ) उप्पइत्ता ण चिट्ठइ । एव खलु एएण उवाएण तेसु अट्ठसु मट्टियालेवेसु जाव विमुक्कबधणे अहे धरणियलमइवइत्ता उप्पि सलिलतलपइट्ठाणे भवइ ।

अब हे गौतम ! उस तुम्बे का पहला (ऊपर का) मिट्टी का लेप गीला हो जाय, गल जाय और परिशटित (नष्ट) हो जाय तो वह तुम्बा पृथ्वीतल से कुछ ऊपर आकर ठहरता है । तदनन्तर दूसरा मृत्तिकालेप गीला हो जाय, गल जाय, और हट जाय तो तुम्बा कुछ और ऊपर आ जाता है । इस प्रकार, इस उपाय से उन आठो मृत्तिकालेपो के गीले हो जाने पर यावत् हट जाने पर तुम्बा निर्लेप, वधनमुक्त होकर धरणीतल से ऊपर जल को सतह पर आकर स्थित हो जाता है ।

७—एवामेव गोयमा ! जीवा पाणाइवायवेरमणेण जाव मिच्छादसण-सल्लवेरमणेण अणुपुव्वेण अट्ठकम्मपगडीओ खवेत्ता गगणतलमुप्पइत्ता उप्पि लोयग्गपइट्ठाणा भवति । एव खलु गोयमा ! जीवा लहुयत्त हव्वमागच्छति ।

इसी प्रकार, हे गौतम ! प्राणातिपातविरमण यावत् मिथ्यादशनशल्यविरमण से अर्थात् अठारह पापो के त्याग से जीव क्रमश आठ कर्मप्रकृतियो का क्षय करके ऊपर आकाशतल की ओर उड कर लोकाग्र भाग मे स्थित हो जाते हैं । इस प्रकार हे गौतम ! जीव शीघ्र लघुत्व को प्राप्त करते है ।

उपसहार

८—एव खलु जबू ! समणेण भगवया महावीरेण छट्ठस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते त्ति बेमि ।

श्री सुधर्मा स्वामी अध्ययन का उपसहार करते हुए कहते हैं—इस प्रकार हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर ने छठे ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है । वही मैं तुमसे कहता हूँ ।

॥ छठा अध्ययन समाप्त ॥

सप्तम अध्ययन : रोहिणीज्ञात

सार : सक्षेप

राजगृह नगर मे सार्थवाह धन्य के चार पुत्र थे—धनपाल, धनदेव, धनगोप और धनरक्षित। चारो विवाहित हो चुके थे। उनकी पत्नियो के नाम अनुक्रम से इस प्रकार थे—उज्झिता या उज्झिका भोगवती, रक्षिका और रोहिणी।

धन्य-सार्थवाह बहुत दूरदर्शी थे—भविष्य का विचार करने वाले। उनकी उम्र जब परिपक्व हो गई तब एक बार वे विचार करने लगे—मैं वृद्धावस्था से ग्रस्त हो गया हूँ। मेरे पश्चात् कुटुम्ब की सुव्यवस्था कैसे कायम रहेगी? मुझे अपने जीवन-काल मे ही इसकी व्यवस्था कर देनी चाहिए। इस प्रकार विचार कर धन्य ने मन ही मन एक योजना निश्चित कर ली।

योजना के अनुसार उन्होने एक दिन अपने ज्ञातिजनो, सबन्धियो, मित्रो आदि को आमन्त्रित किया। भोजनादि से सब का सत्कार-सम्मान किया और तत्पश्चात् अपनी चारो पुत्रवधुओं को सब के समक्ष बुलाकर चावलो के पाच-पाच दाने देकर कहा—'मेरे मागने पर ये पांच दाने वापिस सौंपना।'

पहली पुत्रवधू उज्झिता ने विचार किया—बुढापे मे श्वसुरजी की मति मारी गई जान पडती है। इतना बडा समारोह करके यह तुच्छ भेट देने की उन्हे सूझी! इस पर तुर्रा यह कि मांगने पर वापिस लौटा देने होंगे! कोठार मे चावलो के दानो का ढेर लगा है। मागने पर उनमें से दे दूँगी।' ऐसा विचार करके उसने ये दाने कचरे मे फेंक दिये।

दूसरी पुत्रवधू ने सोचा—'भले ही इन दानो का कुछ मूल्य न हो तथापि श्वसुरजी का यह प्रसाद है। फेक देना उचित नही।' इस प्रकार विचार करके उसने वे दाने खा लिए।

तीसरी ने विचार किया—'अत्यन्त व्यवहारकुशल अनुभवी और समृद्धिशाली वृद्ध श्वसुरजी ने इतने बडे समारोह मे ये दाने दिए है। इसमे उनका कोई विशिष्ट अभिप्राय होना चाहिए। अतएव इन दानों की सुरक्षा करना, इन्हे जतन से सभाल रखना चाहिए।'

इस प्रकार सोच कर उसने उन्हे एक डिबिया मे रख लिया और सदा उनकी सार सभाल रखने लगी।

चौथी पुत्रवधू रोहिणी बहुत बुद्धिमती थी। वह समझ गई कि दाने देने मे कोई गूढ रहस्य निहित है। यह दाने परीक्षा की कसौटी बन सकते हैं।

उसने पाचो दाने अपने मायके (पितृगृह पीहर) भेज दिए। उसकी सूचनानुसार मायके वालो ने उन्हे खेत मे अलग बो दिया। प्रतिवर्ष बारबार बोने से बहुत हो गए कोठार भर गया।

इस घटना को पाच वर्ष व्यतीत हो गए। तब धन्य-सार्थवाह ने पुन पूर्ववत् समारोह आयोजित किया। जिन्हें पहले निमन्त्रित किया था उन सबको पुन निमन्त्रित किया। सबको भोजन-

पान, गंध-माला आदि से सत्कार किया। तत्पश्चात् पहले की ही भांति पुत्रवधुओं को सबके समक्ष बुला कर पांच-पांच दाने, जो पहले दिए थे, वापिस मांगे।

पहली पुत्रवधू ने कोठार में से लाकर पांच दाने दे दिए। धन्य-सार्थवाह ने जब पूछा कि क्या ये वही दाने हैं या दूसरे ? तो उसने सत्य वृत्तान्त कह दिया। सुन कर सेठ ने कुपित होकर उसे घर में झाड़ने-बुहारने आदि का काम सौंपा। कहा—'तुम इसी योग्य हो।'

दूसरी पुत्रवधू ने कहा—'आपका दिया प्रसाद समझ कर मैं उन दानों को खा गई हूं।' सार्थवाह ने उसके स्वभाव का अनुमान करके उसे भोजनशाला संबन्धी कार्य सौंपा।

तीसरी पुत्रवधू ने पांचों दाने सुरक्षित रक्खे थे, अतएव उसे कोषाध्यक्ष के रूप में नियुक्त किया।

चौथी पुत्रवधू ने कहा—पिताजी, वे पांच दाने गाडियों के बिना नहीं आ सकते। उन्हें लाने को कई गाडियां चाहिए।

जब धन्य-सार्थवाह ने स्पष्टीकरण मांगा तो उसने सारा ब्यौरा सुना दिया। गाडियां भेजी गईं। दानों का ढेर आ गया। धन्य यह देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। सब के समक्ष रोहिणी की भूरि-भूरि प्रशंसा की। उसे गृहस्वामिनी के गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित किया। कहा—'तू प्रशंसनीय है बेटी! तेरे प्रताप से यह परिवार सुखी और समृद्धिशाली रहेगा।'

शास्त्रकार इस उदाहरण को धर्म-शिक्षा के रूप में इस प्रकार घटित करते हैं—

जो व्रती व्रत ग्रहण करके उन्हें त्याग देते हैं, वे पहली पुत्रवधू उज्झिता के समान इह परभव में दुःखी होते हैं। सब की अवहेलना के भाजन बनते हैं।

जो साधु पांच महाव्रतों को ग्रहण करके सांसारिक भोग-उपभोग भोगने के लिए उनका उपयोग करते हैं, वे भी निंदा के पात्र बन कर भवभ्रमण करते हैं।

जो साधु तीसरी पुत्रवधू रक्षिका के सदृश अंगीकृत पांच महाव्रतों की भलीभांति रक्षा करते हैं, वे प्रशंसा-पात्र होते हैं और उनका भविष्य मंगलमय होता है।

जो साधु रोहिणी के समान स्वीकृत संयम की उत्तरोत्तर वृद्धि करते हैं, निर्मल और निर्मलतर पालन करके संयम का विकास करते हैं वे परमानन्द के भागी होते हैं।

यद्यपि प्रस्तुत अध्ययन का उपसंहार धर्मशिक्षा के रूप में किया गया है और धर्मशास्त्र का उद्देश्य मुख्यतः धर्मशिक्षा देना ही होता है, तथापि उसे समझाने के लिए जिस कथानक की योजना की गई है वह गार्हस्थिक—पारिवारिक दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। 'योग्यं योग्येन योजयेत्' यह छोटी-सी उक्ति अपने भीतर विशाल अर्थ समाये हुए है। प्रत्येक व्यक्ति में योग्यता होती है किन्तु उस योग्यता का सुपरिणाम तभी मिलता है जब उसे अपनी योग्यता के अनुरूप कार्य में नियुक्त किया जाए। मूलभूत योग्यता से प्रतिकूल कार्य में जोड देने पर योग्य से योग्य व्यक्ति भी अयोग्य सिद्ध होता है। उच्चतम कोटि का प्रखरमति विद्वान् वढई-सुथार के कार्य में अयोग्य बन जाता है।

मगर 'योजकस्तत्र दुर्लभ ' अर्थात् योग्यतानुकूल योजना करने वाला कोई विरला ही होता ह । धन्य सार्थवाह उन्ही विरल योजको मे से एक था । अपने परिवार की सुव्यवस्था करने के लिए उसने जिस सूझ-बूझ से काम लिया वह सभी के लिए मार्गदर्शक है । सभी इस उदाहरण से लौकिक और लोकोत्तर कार्यों को सफलता के साथ सम्पन्न कर सकते है ।

उदाहरण से स्पष्ट है कि प्राचीन काल मे सयुक्त परिवार की प्रथा थी । वह अनक दृष्टियों से उपयोगी और सराहनीय थी । उससे आत्मीयता की परिधि विस्तृत बनती थी और सहनशीलता आदि सद्गुणो के विकास के अवसर सुलभ होते थे । आज यद्यपि शासन-नीति, विदेशी प्रभाव एव तज्जन्य सकीण मनोवृत्ति के कारण परिवार विभक्त होते जा रहे हैं, तथापि इस प्रकार के उदाहरणों से हम वहुत लाभ उठा सकते हैं ।

चारो पुत्रवधुओ ने बिना किसी प्रतिवाद के मौन भाव से अपने श्वसुर के निणय को स्वीकार कर लिया । वे भले मौन रही, पर उनका मौन ही मुखरित होकर पुकार कर, हमारे समक्ष अनेकानेक स्पृहणीय सदेश—सदुपदेश सुना रहा है ।

सत्तमं अज्झयणं : रोहिणीणाए

उत्क्षेप

१—जइ ण भते ! समणेण जाव सपत्तेण छट्ठस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, सत्तमस्स ण भते ! नायज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

श्री जम्बू स्वामी ने सुधर्मा स्वामी से प्रश्न किया—भगवन् ! यदि श्रमण यावत् निर्वाणप्राप्त भगवान् महावीर ने छठे ज्ञात-अध्ययन का यह (पूर्वोक्त) अर्थ कहा है तो भगवन् ! सातवे ज्ञात-अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

धर्म सार्थवाह

२—एव खलु जबू ! तेण कालेण तेण समएण रायगिहे नाम नयरे होत्था । तत्थ ण रायगिहे णयरे सेणिए नाम राया होत्था । तस्स ण रायगिहस्स णयरस्स बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए सुभूमिभागे उज्जाणे होत्था ।

तत्थ ण रायगिहे नयरे धण्णे नाम सत्थवाहे परिवसइ अड्ढे जाव[1] अपरिभूए । तस्स ण धण्णस्स सत्थवाहस्स भद्दा नाम भारिया होत्था, अहीणपंचिंदियसरीरा जाव[2] सुरूवा ।

श्री सुधर्मा स्वामी उत्तर देते हैं—जम्बू ! उस काल और उस समय मे राजगृह नामक नगर था । उस राजगृह नगर मे श्रेणिक राजा था । राजगृह नगर के बाहर उत्तरपूर्वदिशा—ईशानकोण मे सुभूमिभाग उद्यान था ।

उस राजगृह नगर मे धन्य नामक सार्थवाह निवास करता था, वह समृद्धिशाली था, [उसके यहाँ बहुत शय्या, आसन, भवन, यान, वाहन थे, दास, दासियाँ, गायें, भैंसें थी, सोना-चाँदी, धन था ।] वह किसी से पराभूत होने वाला नही था । उस धन्य सार्थवाह की भद्रा नामक भार्या थी । उसकी पाचो इन्द्रियाँ और शरीर के अवयव परिपूर्ण थे, यावत् [उसकी चाल, हास्य, भाषण सुसगत था, मर्यादानुकूल था, उसे देखकर प्रसन्नता होती थी, अभिरूप एव प्रतिरूप थी । वह सुन्दर रूप वाली थी ।]

३—तस्स ण धण्णस्स सत्थवाहस्स पुत्ता भद्दाए भारियाए अत्तया चत्तारि सत्थवाहदारया होत्था, तजहा—धणपाले, धणदेवे, धणगोवे, धणरक्खिए ।

तस्स ण धण्णस्स सत्थवाहस्स चउण्ह पुत्ताण भारियाओ चत्तारि सुण्हाओ होत्था, तजहा—उज्झिया, भोगवइया, रक्खिया, रोहिणिया ।

उस धन्य-सार्थवाह के पुत्र और भद्रा भार्या के आत्मज (उदरजात) चार सार्थवाह-पुत्र थे । उनके नाम इस प्रकार थे—धनपाल, धनदेव, धनगोप, धनरक्षित ।

---

१ द्वि अ ६   २ द्वि अ ६

उस धन्य सार्थवाह के चार पुत्रों की चार भार्याएँ—सार्थवाह की पुत्रवधुएँ थी। उनके नाम इस प्रकार हैं—उज्झिका, भोगवती, रक्षिका और रोहिणी।

परिवारचिन्ता परीक्षा का विचार

४—तए णं तस्स सत्थवाहस्स अन्नया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—'एवं खलु अहं रायगिहे णयरे बहूणं राईसर-तलवर माडंबिय-कोडुंबिय इब्भ सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहपभिईणं सयस्स य कुडुंबस्स बहुसु कज्जेसु य, करणिज्जेसु य, कुडुंबेसु य, मंतणेसु य, गुज्झेसु य, रहस्सेसु य निच्छएसु य ववहारेसु य आपुच्छणिज्जे, पडिपुच्छणिज्जे, मेढी, पमाणे, आहारे, आलंबणे, चक्खू, मेढीभूए, पमाणभूए, आहारभूए, आलंबणभूए, चक्खूभूए सव्वकज्ज वड्ढावए। तं ण णज्जइ जं मए गयंसि वा, चुयंसि वा, मयंसि वा, भग्गंसि वा, लुग्गंसि वा, सडियंसि वा, पडियंसि वा, विदेसत्थंसि वा, विप्पवसियंसि वा, इमस्स कुडुंबस्स किं मन्ने आहारे वा आलंबे वा पडिबंधे वा भविस्सइ?

तं सेयं खलु मम कल्लं जाव जलंते विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेत्ता मित्त णाइ-णियग-सयण-संबंधि परियणं चउण्ह सुण्हाणं कुलघरवग्गं आमंतेत्ता तं मित्त णाइ णियग-सयण संबंधि-परियणं चउण्हं य सुण्हाणं कुलघरवग्गं विपुलेणं असणपाणखाइमसाइमेणं धूवपुप्फवत्थगंध (मल्लालंकारेण य) जाव सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता तस्सेव मित्त णाइ नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स पुरओ चउण्हं सुण्हाणं परिक्खणट्ठयाए पंच पंच सालिअक्खए दलइत्ता जाणामि ताव का किह वा सारक्खेइ वा, संगोवेइ वा, संवड्ढेइ वा?

धन्य-सार्थवाह को किसी समय मध्य रात्रि में इस प्रकार का अध्यवसाय उत्पन्न हुआ—'इस प्रकार निश्चय ही मैं राजगृह नगर में राजा, ईश्वर, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह आदि-आदि के और अपने कुटुम्ब के भी अनेक कार्यों में, करणीयों में, कुटुम्ब सम्बन्धी कार्यों में, मन्त्रणाओं में, गुप्त बातों में, रहस्यमय बातों में, निश्चय करने में, व्यवहारों (व्यापार) में, पूछने योग्य, बारम्बार पूछने योग्य, मेढी के समान, प्रमाणभूत, आधार, आलम्बन, चक्षु के समान पथदर्शक, मेढीभूत और सब कार्यों की प्रवृत्ति कराने वाला हूँ। अर्थात् राजा आदि सभी श्रेणियों के लोग सब प्रकार के कार्यों में मुझसे सलाह लेते हैं, मैं सब का विश्वासभाजन हूँ। परन्तु न जाने मेरे कहीं दूसरी जगह चले जाने पर, किसी अनाचार के कारण अपने स्थान से च्युत हो जाने पर, मर जाने पर, भग्न हो जाने पर अर्थात् वायु आदि के कारण लूला-लंगड़ा कुबड़ा होकर असमर्थ हो जाने पर, रुग्ण हो जाने पर, किसी रोगविशेष से विशीर्ण हो जाने पर, प्रासाद आदि से गिर जाने पर या बीमारी से खाट में पड़ जाने पर, परदेश में जाकर रहने पर अथवा घर से निकल कर विदेश जाने के लिए प्रवृत्त होने पर, मेरे कुटुम्ब का पृथ्वी की तरह आधार, रस्सी के समान अवलम्बन और बुहारू की सलाइयों के समान प्रतिबन्ध करने वाला—सब में एकता रखने वाला कौन होगा?

अतएव मेरे लिए यह उचित होगा कि कल यावत् सूर्योदय होने पर विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम—यह चार प्रकार का आहार तैयार करवा कर मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी, परिजनों आदि को तथा चारों वधुओं के कुलगृह (मके पीहर) के समुदाय को आमंत्रित

करके और उन मित्र ज्ञाति निजक स्वजन आदि तथा चारो पुत्रवधुओ के कुलगृह-वर्ग का अशन, पान, खादिम, स्वादिम से तथा धूप, पुष्प, वस्त्र, गध, माला, अलकार आदि से सत्कार करके, सम्मान करके, उन्ही मित्र ज्ञाति आदि के समक्ष तथा चारो पुत्रवधुओ के कुलगृहवग (मैके के सभी लोगो) के समक्ष पुत्रवधुआ की परीक्षा करने के लिए पाच-पाच शालि—अक्षत (चावल के दाने) दू । इससे जान सकूगा कि कौन पुत्रवधू किस प्रकार उनकी रक्षा करती है सार सम्भाल रखती है या बढाती है ?

वधू-परीक्षा

५—एव सपेहेइ, सपेहित्ता कल्ल जाव[1] मित्त-णाइ-नियग-सयण-सबन्धि परियण चउण्ह सुण्हाण कुलवरवग्ग आमतेइ, आमतित्ता विपुल असण पाण खाइम साइम उवक्खडावेइ ।

धन्य साथवाह ने इस प्रकार विचार करके दूसरे दिन मित्र, ज्ञाति निजक, स्वजन, सबन्धी जनो तथा परिजनो को तथा चारो पुत्रवधुओ के कुलगृह वर्ग को आमत्रित किया । आमन्त्रित करके विपुल, अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार करवाया ।

६—तओ पच्छा ण्हाए भोयणमडवसि सुहासणवरगए मित्त णाइ-नियग-सयण-सबन्धि परियणेण चउण्ह य सुण्हाण कुलघरवग्गेण सद्धि त विपुल असण पाण खाइम साइम आसादेमाणे जाव सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता तस्सेव मित्त णाइ नियग सयण सबन्धि परियणस्स चउण्ह य सुण्हाण कुलघरवग्गस्स पुरओ पच सालिअक्खए गेण्हइ, गेण्हित्ता जेट्ठ सुण्ह उज्झिइय सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'तुम ण पुत्ता ! मम हत्याओ इमे पच सालिअक्खए गेण्हाहि, गेण्हित्ता अणुपुव्वेण सारक्खेमाणी सगोवेमाणी विहराहि । जया ण अह पुत्ता ! तुम इमे पच सालिअक्खए जाएज्जा, तया ण तुम मम इमे पच सालिअक्खए पडिनिज्जाएज्जासि' त्ति कट्टु सुण्हाए हत्थे दलयइ, दलइत्ता पडिविसज्जेइ ।

उसके बाद धन्य-साथवाह ने स्नान किया । वह भोजन-मडप मे उत्तम सुखासन पर बैठा । फिर मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी एव परिजनो आदि के तथा चारो पुत्रवधुओ के कुलगृह वग के साथ उस विपुल, अशन, पान, खादिम और स्वादिम का भोजन करके, यावत् उन सबका सत्कार किया, सम्मान किया, सत्कार-सम्मान करके उन्ही मित्रो, ज्ञातिजनो आदि के तथा चारो पुत्रवधुओ के कुलगृहवग के सामने पाच चावल के दाने लिए । लेकर जेठी कुलवधू उज्झिका को बुलाया । बुलाकर इस प्रकार कहा—'हे पुत्री ! तुम मेरे हाथ से यह पाच चावल के दाने लो । इन्हे लेकर अनुक्रम से इनका सरक्षण और सगोपन करती रहना । हे पुत्री ! जब मैं तुम से यह पाच चावल के दाने मागू, तब तुम यही पाच चावल के दाने मुझे वापिस लौटाना ।' इस प्रकार कह कर पुत्रवधू उज्झिका के हाथ मे वह दाने दे दिए । देकर उसे विदा किया ।

७—तए ण सा उज्झिया धण्णस्स तह त्ति एयमट्ठ पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता धण्णस्स सत्थ-वाहस्स हत्याओ ते पच सालिअक्खए गेण्हइ, गेण्हित्ता एगतमवक्कमइ, एगतमवक्कमियाए इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव (चिंतिए पत्थिए मणोगए सकप्पे) समुप्पज्जेत्था—एव खलु तायाण कोट्ठागारसि

---

[1] प्र अ २८

बहवे पल्ला सालीण पडिपुण्णा चिट्ठंति, तं जया णं ममं ताओ इमे पंच सालिअक्खए जाएस्सइ, तया णं अहं पल्लंतराओ अन्ने पंच सालिअक्खए गहाय दाहामि' त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता ते पंच सालि-अक्खए एगंते एडेइ, एडित्ता सकम्मसंजुत्ता जाया यावि होत्था ।

तत्पश्चात् उस उज्झिका ने धन्य-सार्थवाह के इस अर्थ--आदेश को 'तहत्ति--बहुत अच्छा' इस प्रकार कहकर अंगीकार किया । अंगीकार करके धन्य-सार्थवाह के हाथ से पांच शालिअक्षत (चावल के दाने) ग्रहण किये । ग्रहण करके एकान्त में गई । वहाँ जाकर उसे इस प्रकार का विचार, चिन्तन, प्रार्थित एवं मानसिक संकल्प उत्पन्न हुआ—'निश्चय ही पिता (श्वसुर) के कोठार में शालि से भरे हुए बहुत से पल्य (पाला) विद्यमान हैं । सो जब पिता मुझसे यह पाँच शालिअक्षत मांगेंगे, तब मैं किसी पल्य से दूसरे शालि-अक्षत लेकर दे दूंगी ।' उसने ऐसा विचार किया । विचार करके उन पांच चावलों के दानों को एकान्त में डाल दिया और डाल कर अपने काम में लग गई ।

८—एवं भोगवइयाए वि, णवरं सा छोल्लेइ, छोल्लित्ता अणुगिलइ, अणुगिलित्ता सकम्मसंजुत्ता जाया । एवं रक्खिया वि, णवरं गेण्हइ, गेण्हित्ता इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—एवं खलु ममं ताओ इमस्स मित्तनाइ० चउण्ह सुण्हाण कुलघरवग्गस्स य पुरओ सद्दावेत्ता एवं वयासी—'तुमं णं पुत्ता ! मम हत्थाओ जाव पडिनिज्जाएज्जासि' त्ति कट्टु मम हत्थंसि पंच-सालिअक्खए दलयइ, तं भवियव्वमेत्थ कारणेणं ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता ते पंच सालिअक्खए सुद्धे वत्थे बंधइ, बंधित्ता रयणकरंडियाए पक्खिवेइ, पक्खिवित्ता उसीसामूले ठावेइ, ठावित्ता तिसंझं पडिजागरमाणी पडिजागरमाणी विहरइ ।

इसी प्रकार दूसरी पुत्रवधू भोगवती को भी बुलाकर पांच दाने दिये, इत्यादि । विशेष यह है कि उसने वह दाने छीले और छील कर निगल गई । निगल कर अपने काम में लग गई ।

इसी प्रकार तीसरी रक्षिका के सम्बन्ध में जानना चाहिए । विशेषता यह है कि उसने वह दाने लिए । लेने पर उसे यह विचार उत्पन्न हुआ कि मेरे पिता (श्वसुर) ने मित्र ज्ञाति आदि के तथा चारों बहुओं के कुलगृहवर्ग के सामने मुझे बुलाकर यह कहा है कि- 'पुत्री ! तुम मेरे हाथ से यह पांच दाने लो, यावत् जब मैं मांगू तो लौटा देना । यह कह कर मेरे हाथ में पांच दाने दिए हैं । तो इसमें कोई कारण होना चाहिए ।' उसने इस प्रकार विचार किया । विचार करके वे चावल के पांच दाने शुद्ध वस्त्र में बांधे । बांध कर रत्नों की डिबिया में रख लिए, रख कर सिरहाने के नीचे स्थापित किए । स्थापित करके प्रातः मध्याह्न और सायंकाल—इन तीनों सन्ध्याओं के समय उनकी सार-सम्भाल करती हुई रहने लगी ।

९—तए णं से धण्णे सत्थवाहे तस्सेव मित्त० जाव[1] चउत्थं रोहिणीयं सुण्हं सद्दावेइ । सद्दावेत्ता जाव[2] 'तं भवियव्वं एत्थ कारणेणं, तं सेयं खलु मम एए पंच सालिअक्खए सारक्खमाणीए संगोवेमाणीए संवड्ढेमाणीए' त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कुलघरपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

तत्पश्चात् धन्य-सार्थवाह ने उन्हीं मित्रा आदि के समक्ष चौथी पुत्रवधू रोहिणी को बुलाया ।

१ सप्तम अ ४ २ सप्तम अ ८

'तुब्भे ण देवाणुप्पिया ! एए पच सालिअक्खए गेण्हह, गेण्हित्ता पढमपाउससि महावुट्ठि-कायसि निवइयसि समाणसि खुड्डाग केयार सुपरिकम्मिय करेह । करित्ता इमे पच सालिअक्खए वावेह । वावेत्ता दोच्च पि तच्चपि उक्खयनिक्खए करेह, करेत्ता वाडिपक्खेव करेह, करित्ता सारक्खेमाणा सगोवेमाणा अणुपुव्वेण सवड्ढेह ।'

तत्पश्चात् धन्य-सार्थवाह ने उन्ही मित्रो आदि के समक्ष चौथी पुत्रवधू रोहिणी को बुलाया। बुलाकर उसे भी वैसा ही कहकर पाच दाने दिये । यावत् उसने सोचा—'इस प्रकार पाच दाने देने मे कोई कारण होना चाहिए। अतएव मेरे लिए उचित है कि इन पाच चावल के दानो का सरक्षण करूँ, सगोपन करूँ और इनकी वृद्धि करूँ।' उसने ऐसा विचार किया। विचार करके अपने कुलगृह (मैके-पीहर) के पुरुषो को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा—

'देवानुप्रियो ! तुम इन पाच शालि-अक्षतो को ग्रहण करो। ग्रहण करके पहली वर्षा ऋतु मे अर्थात् वर्षा के आरम्भ मे जब खूब वर्षा हो तब एक छोटी-सी क्यारी को अच्छी तरह साफ करना। साफ करके ये पाच दाने बो देना। बोकर दो-तीन बार उत्क्षेप-निक्षेप करना अर्थात् एक जगह से उखाड कर दूसरी जगह रोपना। फिर क्यारी के चारो ओर वाड लगाना। इनकी रक्षा और सगोपना करते हुए अनुक्रम से इन्हे बढाना।

१०—तए ण ते कोडु बिया रोहिणीए एयमट्ठ पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता ते पच सालिअक्खए गेण्हति, गेण्हित्ता अणुपुव्वेण सरक्खन्ति, सगोवन्ति विहरति ।

तए ण ते कोडु बिया पढमपाउससि महावुट्ठिकायसि णिवइयसि समाणसि खुड्डाय केयार सुपरिकम्मिय करेंति, करित्ता ते पच सालिअक्खए ववति, ववित्ता दोच्च पि तच्च पि उक्खयनिक्खए करेंति, करित्ता वाडिपरिक्खेव करेंति, करित्ता अणुपुव्वेण सारक्खेमाणा सगोवेमाणा सवड्ढेमाणा विहरति ।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषो ने रोहिणी के आदेश को स्वीकार किया। स्वीकार करके उन चावल के पाच दानो को ग्रहण किया। ग्रहण करके अनुक्रम से उनका सरक्षण, सगोपन करते हुए रहने लगे।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषो ने वर्षाऋतु के प्रारम्भ मे महावृष्टि पडने पर छोटी-सी क्यारी साफ की। पाच चावल के दाने बोये। बोकर दूसरी और तीसरी वार उनका उत्क्षेप-निक्षेप किया, करके वाड का परिक्षेप किया—वाड लगाई। फिर अनुक्रम से सरक्षण, सगोपन और सवर्धन करते हुए विचरने लगे।

११—तए ण ते सालिअक्खए अणुपुव्वेण सारक्खिज्जमाणा सगोविज्जमाणा सवड्ढिज्जमाणा साली जाया, किण्हा किण्होभासा जाव[1] निउरबभूया पासादीया दसणीया अभिरूवा पडिरूवा ।

तए ण ते साली पत्तिया वत्तिया (तइया) गब्भिया पसूया आगयगधा खीराइया बद्धफला पक्का परियागया सल्लइया पत्तइया हरियपव्वकडा जाया यावि होत्या ।

१ द्वि अ ५

तत्पश्चात् सरक्षित, सगोपित और सवर्धित किए जाते हुए वे शालि अक्षत अनुक्रम स शालि (के पौधे) हो गये। वे श्याम कान्ति वाले यावत् निकुरबभूत— समूह रूप होकर प्रसन्नता प्रदान करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हो गये।

तत्पश्चात् उन शालि पौधो मे पत्त आ गये, वे वत्तित-(गोल) हो गये, छाल वाले हो गये, गर्भित हो गये—डोडी लग गई, प्रसूत हुए—पत्तो के भीतर से दाने बाहर आ गये, सुगन्ध वाले हुए बद्धफल—बधे हुए फल वाले हुए, पक गए, तैयार हो गये, शल्यकित हुए—पत्ते सूख जाने के कारण सलाई जसे हो गए, पत्रकित हुए—विरले पत्ते रह गए और हरितपवकाण्ड—नीली नाल वाले हो गए। इस प्रकार वे शालि उत्पन्न हुए।

१२—तए ण ते कोडु बिया ते सालीए पत्तिए जाव सल्लइए पत्तइए जाणित्ता तिक्खेहि णवपज्जणएहि असियएहि लुणेंति। लुणित्ता करयलमलिए करेंति, करित्ता पुणति, तत्थ ण चोक्खाण सूयाण अखडाण अफोडियाण छड्डछड्डापूयाण सालीण मागहए पत्थए जाए।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषो ने वह शालि पत्र वाले यावत् शलाका वाले तथा विरल पत्र वाले जान कर तीखे और पजाये हुए (जिन पर नयी धार चढाई हो ऐसे) हँसिया (दात्रा) से काट, काटकर उनका हथेलियो से मर्दन किया। मर्दन करके साफ किया। इससे वे चोखे निर्मल, शुचि पवित्र, अखड और अस्फुटित-बिना टूटे-फूटे और सूप से झटक-झटक कर साफ किये हुए हो गए। वे मगध देश मे प्रसिद्ध एक प्रस्थक प्रमाण हो गये।

विवेचन—दो असई की एक पसई, दो पसई की एक सेतिका, चार सेतिका का एक कुडव और चार कुडव का एक प्रस्थक होता है। यह मगध देश का तत्कालीन माप है।

१३—तए ण ते कोडु बिया ते सालो नवएसु घडएसु पक्खिवति, पक्खिवित्ता उवलिपन्ति, उवलिपित्ता लछियमुद्दिए करेंति, करित्ता कोट्ठागारस्स एगदेससि ठावेंति, ठावित्ता सारक्खेमाणा सगोवेमाणा विहरति।

तत्पश्चात् कौटुम्बिक पुरुषो ने उन प्रस्थ प्रमाण शालिअक्षतो को नवीन घडे में भरा। भर कर उसके मुख पर मिट्टी का लेप कर दिया। लेप करके उसे लाछित-मुद्रित किया—उस पर सील लगा दी। फिर उसे कोठार के एक भाग मे रख दिया। रख कर उसका सरक्षण और सगोपन करने लगे।

१४—तए ण ते कोडु बिया दोच्चम्मि वासारत्तसि पढमपाउससि महावुट्ठिकायसि निवइयसि खुड्डाग केयार सुपरिकम्मिय करेंति, करित्ता ते सालो वयति, दोच्च पि तच्च पि उक्खयनिहए जाव लुणेंति जाव चलणतलमलिए करेंति, करित्ता पुणति, तत्थ ण सालीण बहवे कुडए जाए। जाव एगदेससि ठावेंति, ठावित्ता सारक्खेमाणा सगोवेमाणा विहरति।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषो ने दूसरी वर्षाऋतु मे वर्षाकाल के प्रारम्भ मे महावृष्टि पडने पर एक छोटी क्यारी को साफ किया। साफ करके वे शालि बो दिये। दूसरी बार और तीसरी बार उनका उत्क्षेप-निक्षेप किया। यावत् लुनाई की—उन्हें काटा। यावत् पैरो के तलुओ से उनका

मर्दन किया, उन्हे साफ किया। अब शालि के बहुत-से कुडव हो गए, यावत् उन्हे कोठार के एक भाग मे रख दिया। कोठार मे रख कर उनका सरक्षण और सगोपन करते हुए विचरने लगे।

१५—तए ण ते कोडु बिया तच्चसि वासारत्तसि महावुट्ठिकायसि बहवे केयारे सुपरिकम्मिए करेंति, जाव लुणेंति, लुणित्ता सवहन्ति, सवहित्ता खलय करेंति, करित्ता मलेंति, जाव बहवे कु भा जाया।

तए ण ते कोडु बिया साली कोट्ठागारसि पक्खिवति, जाव विहरति। चउत्थे वासारत्ते बहवे कु भसया जाया।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषो ने तीसरी बार वर्षाऋतु मे महावृष्टि होने पर बहुत-सी क्यारियाँ अच्छी तरह साफ की। यावत् उन्हे बोकर काट लिया। काटकर भारा बाध कर वहन किया। वहन करके खलिहान मे रक्खा। उनका मर्दन किया। यावत् अब वे बहुत-से कुम्भ प्रमाण शालि हो गये।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषो ने वह शालि कोठार मे रखे, यावत् उनकी रक्षा करने लगे। चौथी वर्षाऋतु मे इसी प्रकार करने से सैकडो कुम्भ प्रमाण शालि हो गए।

परीक्षा परिणाम

१६—तए ण तस्स धण्णस्स पचमयसि सवच्छरसि परिणममाणसि पुव्वरत्तावरत्तकालसमयसि इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—एव खलु मम इओ अईए पचमे सवच्छरे चउण्ह सुण्हाण परिक्खणट्ठयाए ते पच सालिअक्खया हत्थे दिन्ना, त सेय खलु मम कल्ल जाव जलते पच सालिअक्खए परिजाइत्तए। जाव जाणामि ताव काए किह सारक्खिया वा सगोविया वा सवड्डिया वा ? जाव त्ति कट्टु एव सपेहेइ, सपेहित्ता कल्ल जाव जलते विपुल असण पाण खाइम साइम मित्तणाइ० चउण्ह य सुण्हाण कुलघरवग्ग जाव सम्माणित्ता तस्सेव मित्तणाइ० चउण्ह य सुण्हाण कुलघरवग्गस्स पुरओ जेट्ठ उज्झिय सद्दावेइ। सद्दावित्ता एव वयासी—

तत्पश्चात् जब पाचवा वर्ष चल रहा था, तब धन्य सार्थवाह को मध्य रात्रि के समय इस प्रकार का विचार यावत् उत्पन्न हुआ—

मैंने इससे पहले के—अतीत पाचवे वर्ष मे चारो पुत्रवधुओ को परीक्षा करने के निमित्त, पाच चावल के दाने उनके हाथ मे दिये थे। तो कल यावत सूर्योदय होने पर पाँच चावल के दाने माँगना मेरे लिए उचित होगा। यावत् जानू तो सही कि किसने किस प्रकार उनका सरक्षण, सगोपन और सवर्धन किया है ? धन्य-सार्थवाह ने इस प्रकार का विचार किया, विचार करके दूसरे दिन सूर्योदय होने पर विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम बनवाया। मित्रो, ज्ञातिजनो आदि तथा चारो पुत्रवधुओ के कुलगृहवर्ग के समक्ष जेठी पुत्रवधू उज्झिका को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा—

१७—'एव खलु अह पुत्ता ! इओ अईए पचमसि सवच्छरसि इमस्स मित्तणाइ० चउण्ह सुण्हाण कुलघरवग्गस्स य पुरओ तव हत्थसि पच सालिअक्खए दलयामि, जया ण अह पुत्ता ! एए

पच सालिअक्खए जाएज्जा तया ण तुम मम इमे पच सालिअक्खए पडिनिज्जाएसि ति कट्टु त हत्थसि दलयामि, से णूण पुत्ता ! अट्ठे समट्ठे ?'

'हता, अत्थि ।'

'त ण पुत्ता ! मम ते सालिअक्खए पडिनिज्जाएहि ।'

'हे पुत्री ! अतीत—विगत पाचवे सवत्सर मे अर्थात् अब से पाच वर्ष पहले इन्ही मित्रा ज्ञातिजनो आदि तथा चारो पुत्रवधुओ के कुलगृहवर्ग के समक्ष मैंने तुम्हारे हाथ मे पाच शालि अक्षत दिये थे और यह कहा था कि—'हे पुत्री ! जब मैं ये पाच शालिअक्षत मागू, तब तुम मेरे ये पाच शालिअक्षत मुझे वापिस सौंपना । तो यह अर्थ समर्थ है—यह बात सत्य है ?'

उज्झिका ने कहा—'हा, सत्य है ।'

धन्य सार्थवाह बोले—'तो हे पुत्री ! मेरे वह शालिअक्षत वापिस दो ।'

१८—तए ण सा उज्झिया एयमट्ठ धण्णस्स सत्थवाहस्स पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता जेणेव कोट्ठागार तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पल्लाओ पच सालिअक्खए गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ । उवागच्छित्ता धण्ण सत्थवाह एव वयासी—'एए ण ते पच सालिअक्खए' त्ति कट्टु, धण्णस्स सत्थवाहस्स हत्थसि ते पच सालिअक्खए दलयइ ।

तए ण धण्णे सत्थवाहे उज्झिय सवहसाविय करेइ, करित्ता एव वयासी—'कि ण पुत्ता ! एए चेव पच सालिअक्खए उदाहु अन्ने ?'

तत्पश्चात् उज्झिका ने धन्य सार्थवाह की यह बात स्वीकार की । स्वीकार करके जहाँ कोठार था वहाँ पहुँची । पहुँच कर पल्य मे से पाच शालिअक्षत ग्रहण किये और ग्रहण करके धन्य सार्थवाह के समीप आकर बोली—'ये है वे पाच शालिअक्षत ।' यो कहकर धन्य सार्थवाह के हाथ मे पाच शालि के दाने दे दिये ।

तब धन्य सार्थवाह ने उज्झिका को सौगध दिलाई और कहा—'पुत्री ! क्या वही ये शालि के दाने हैं अथवा ये दूसरे हैं ?'

१९—तए ण उज्झिया धण्ण सत्थवाह एव वयासी—'एव खलु तुब्भे ताओ ! इओ अईए पचमे सवच्छरे इमस्स मित्तणाइ० चउण्ह य सुण्हाण कुलघरवग्गस्स जाव[1] विहराहि ।' तए ण अह तुब्भ एयमट्ठ पडिसुणेमि । पडिसुणित्ता ते पच सालिअक्खए गेण्हामि, एगतमवक्कमामि । तए ण मम इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—'एव खलु तायाण कोट्ठागारसि०[2] सकम्मसजुत्ता । त णो खलु ताओ ! ते चेव पच सालिअक्खए, एए ण अन्ने ।'

तब उज्झिका ने धन्य सार्थवाह से इस प्रकार कहा—हे तात ! इससे पहले के पाँचवें वर्ष में इन मित्रो एव ज्ञातिजनो के तथा चारो पुत्रवधुओ के कुलगृहवर्ग के सामने पाच दाने देकर 'इनका सरक्षण, सगोपन और सवर्धन करती हुई विचरना' ऐसा आपने कहा था । उस समय मैंने आपकी

---

१ सप्तम अ १ २ सप्तम अ ७

बात स्वीकार की थी। स्वीकार करके वे पाच शालि के दाने ग्रहण किये और एकान्त मे चली गई। तब मुझे इस तरह का विचार उत्पन्न हुआ कि पिताजी (श्वसुरजी) के कोठार मे बहुत से शालि भरे है, जब मागेंगे तो दे दू गी। ऐसा विचार करके मैंने वह दाने फेक दिये और अपने काम मे लग गई। अतएव हे तात ! ये वही शालि के दाने नही है। ये दूसरे हैं।'

२०—तए ण से धण्णे उज्झियाए अंतिए एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म आसुरत्ते जाव मिसिमिसेमाणे उज्झियं तस्स मित्त-नाइ-नियग सयण-सबन्धि परियणस्स चउण्ह सुण्हाण कुलघरवग्गस्स य पुरओ तस्स कुलघरस्स छारुज्झियं च छाणुज्झियं च कयवरुज्झियं च सपुच्छियं च सम्मज्जिअं च पाउवदाइयं च ण्हाणावदाइयं च बाहिरपेसणकारिं च ठवेइ।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह उज्झिका से यह अर्थ सुनकर और हृदय मे धारण करके क्रुद्ध हुए, कुपित हुए, उग्र हुए और क्रोध मे आकर मिसमिसाने लगे। उन्होने उज्झिका को उन मित्रो ज्ञातिजनो आदि के तथा चारो पुत्रवधुओ के कुलगृहवर्ग के सामने कुलगृह की राख फेंकने वाली, छाणे डालने या थापने वाली, कचरा झाडने वाली, पैर धोने का पानी देने वाली, स्नान के लिए पानी देने वाली और बाहर के दासी के कार्य करने वाली के रूप मे नियुक्त किया।

२१—एवामेव समणाउसो ! जो अह निग्गथो वा निग्गथी वा जाव (आयरिय-उवज्झायाण अतिए मु डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं) पव्वइए पच य से महव्वयाइ उज्झियाइ भवति, से ण इह भवे चेव बहूण समणाण, बहूण समणीण, बहूण सावयाण, बहूण सावियाण हीलणिज्जे जाव[1] अणुपरियट्टिस्सइ। जहा सा उज्झिया।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! जो हमारा साधु अथवा साध्वी यावत् आचार्य अथवा उपाध्याय के निकट गृहत्याग करके और प्रव्रज्या लेकर पाच (दानो के समान पाच) महाव्रतो का परित्याग कर देता है, वह उज्झिका की तरह इसी भव मे बहुत से श्रमणो, बहुत-सी श्रमणियो, बहुत-से श्रावको और बहुत-सी श्राविकाओ की अवहेलना का पात्र बनता है, यावत् अनन्त ससार मे पर्यटन करेगा।

२२—एव भोगवइया वि[2] नवर तस्स कुलघरस्स कडतियं कोट्टतियं पीसतियं च एव रुधतियं च रधतियं च परिवेसतियं च परिभायतियं च अब्भितरियं पेसणकारिं महाणसिणिं ठवेइ।

इसी प्रकार भोगवती के विषय मे जानना चाहिए। (उसने प्रसाद समझ कर दाने खा लेने की बात कही) विशेषता यह कि (वह पाचो दाने खा गई थी, अतएव उसे) खाडने वाली, कूटने वाली, पीसने वाली, जाते मे दल कर धान्य के छिलके उतारने वाली, राधने वाली, परोसने वाली, त्योहारो के प्रसग पर स्वजनो के घर जाकर ल्हावणी बाटने वाली, घर मे भीतर की दासी का काम करने वाली एव रसोईदारिन का कार्य करने वाली के रूप मे नियुक्त किया।

२३—एवामेव समणाउसो ! सो अम्ह समणो वा समणी वा पच य से महव्वयाइ फोडियाइ भवति, से ण इह भवे चेव बहूण समणाण, बहूण समणीण, बहूण सावयाण, बहूण सावियाण जाव[3]

---

१ तृतीय अ २० २ सप्तम अ १७-२० ३ तृतीय अ २०

हीलणिज्जे, जहा व सा भोगवइया।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो! हमारा जो साधु अथवा साध्वी पांच महाव्रतों का फोड़ने वाला अर्थात् रसनेन्द्रिय के वशीभूत होकर नष्ट करने वाला होता है वह इसी भव में बहुत से साधुओं, बहुत सी साध्वियों, बहुत से श्रावकों और बहुत-सी श्राविकाओं की अवहेलना का पात्र बनता है, जैसे वह भोगवती।

२४- एवं रक्खियया वि। नवरं जेणेव वासघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मंजूसं विहाडेइ, विहाडित्ता रयणकरंडगाओ ते पंच सालिअक्खए गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पंच सालिअक्खए धण्णस्स सत्थवाहस्स हत्थे दलयइ।

इसी प्रकार रक्षिका के विषय में जानना चाहिए। विशेष यह है कि (पांच दाने मांगने पर) वह जहाँ उसका निवासगृह था, वहाँ गई। वहाँ जाकर उसने मंजूषा खोली। खोलकर रत्नों की डिबिया में से वह पांच शालि के दाने ग्रहण किये। ग्रहण करके जहाँ धन्य-सार्थवाह था, वहाँ आई। आकर धन्य सार्थवाह के हाथ में वे शालि के पांच दाने दे दिये।

२५—तए णं से धण्णे सत्थवाहे रक्खियं एवं वयासी—'किं णं पुत्ता! ते चेव एए पंच सालिअक्खए, उदाहु अण्णे?' त्ति।

तए णं रक्खियया धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी—'ते चेव ताया! एए पंच सालिअक्खया, णो अण्णे।'

'कहं णं पुत्ता?'

'एवं खलु ताओ! तुब्भे इओ पंचमम्मि संवच्छरे जाव[1] भवियव्वं एत्थ कारणेण त्ति कट्टु ते पंच सालिअक्खए सुद्धे वत्थे जाव तिसंझं पडिजागरमाणी यावि विहरामि। तओ एएणं कारणेणं ताओ! ते चेव एए पंच सालिअक्खए, णो अण्णे।'

उस समय धन्य-सार्थवाह ने रक्षिका से इस प्रकार कहा—'हे पुत्री! क्या यह वही पांच शालि-अक्षत हैं या दूसरे हैं?'

रक्षिका ने धन्य-सार्थवाह को उत्तर दिया—'तात! ये वही शालिअक्षत हैं, दूसरे नहीं हैं।'

धन्य ने पूछा—'पुत्री! कैसे?'

रक्षिका बोली—'तात! आपने इससे पहले पांचवें वर्ष में शालि के पांच दाने दिये थे। तब मैंने विचार किया कि इस देने में कोई कारण होना चाहिए। ऐसा विचार करके इन पांच शालि के दानों को शुद्ध वस्त्र में बांधा, यावत् तीनों सन्ध्याओं में सार-संभाल करती रहती हूँ। अतएव, हे तात! ये वही शालि के दाने हैं, दूसरे नहीं।'

२६—तए णं से धण्णे सत्थवाहे रक्खियाए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा हट्ठतुट्ठे तस्स कुलघरस्स हिरण्णस्स य कंस-दूस विपुलधण जाव (कणग रयण मणि-मोत्तिय संख सिल-प्पवाल रत्तरयण-संत-सार) सावतेज्जस्स य भंडागारिणिं ठवेइ।

---

१ पंचम अ. ८

तत्पश्चात् धन्य-सार्थवाह रक्षिका से यह अर्थ सुनकर हर्षित
घर के हिरण्य की (आभूषणों की), कांसा आदि बर्तनों की, दूष्य-रेश
विपुल धन, धान्य, कनक रत्न, मणि, मुक्ता, शंख, शिला, प्रवाल लाल-
की भाण्डागारिणी (भंडारी के रूप में) नियुक्त कर दिया।

२७—एवामेव समणाउसो ! जाव पंच य से महव्वयाइं रक्खि
बहूणं समणाणं, बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाणं अच्च

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! यावत् (दीक्षित होकर) ह
महाव्रतों की रक्षा करता है, वह इसी भव में बहुत-से साधुओं, बहुत-सं
और बहुत-सी श्राविकाओं का अर्चनीय (पूज्य) होता है, वन्दनीय, पूज
होता है, जैसे वह रक्षिका।

२८—रोहिणिया वि एवं चेव। नवरं—'तुब्भे ताओ ! मम
जेण अहं तुब्भं ते पंच सालिअक्खए पडिनिज्जाएमि।'

तए णं से धण्णे सत्थवाहे रोहिणिं एवं वयासी—'कहं णं तुमं
सगडसागडेणं निज्जाइस्ससि ?'

तए णं सा रोहिणी धण्णं एवं वयासी—'एवं खलु ताओ ! इ
मित्त जाव' बहवे कुंभसया जाया, तेणेव कमेण। एवं खलु ताओ !
सागडेणं निज्जाएमि।'

रोहिणी के विषय में भी ऐसा ही कहना चाहिए। विशेष
ने उससे पांच दाने मांगे तो उसने कहा—'तात ! आप मुझे बहुत-से
आपको वह पांच शालि के दाने लौटाऊँ।'

तब धन्य-सार्थवाह ने रोहिणी से कहा—'पुत्री ! तू मुझे वह प
में भर कर कैसे देगी ?'

तब रोहिणी ने धन्य-सार्थवाह से कहा—तात ! इससे पहले
ज्ञातिजनों आदि के समक्ष आपने पांच दाने दिये थे। यावत् वे अब
इत्यादि पूर्वोक्त दानों की खेती करने, संभालने आदि का वृत्तान्त दोह
हे तात ! मैं आपको वह पांच शालि के दाने गाड़ा-गाड़ियों में भर कर

२९—तए णं से धण्णे सत्थवाहे रोहिणीयाए सुबहुयं सगडसा
सुबहुसगडसागडं गहाय जेणेव सए कुलघरे तेणेव उवागच्छइ, उव
विहाडित्ता पल्ले उब्भिदइ, उब्भिदित्ता सगडीसागडं भरेइ, भरित्ता
जेणेव सए गिहे जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ।

तए णं रायगिहे नयरे सिंघाडग जाव (तिग चउक्क-चच्चर-च

पच सालिअक्खए सगडसागडिएण निज्जाइए।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने रोहिणी को बहुत से छकडा छकडी दिये। रोहिणी उन छकडा छकडियो को लेकर जहाँ अपना कुलगृह (मैका) था, वहाँ आई। आकर कोठार खोला। खोलकर पल्य उघाडे, उघाड कर छकडा छकडी भरे। भरकर राजगृह नगर के मध्य भाग मे होकर जहा अपना घर (ससुराल) था और जहाँ धन्य-सार्थवाह था, वहा आ पहुँची।

तब राजगृह नगर मे शृ गाटक (चौक, चत्वर, चतुर्मु ख, महापथ) आदि मार्गो मे बहुत से लोग आपस मे इस प्रकार कह कर प्रशसा करने लगे—'देवानुप्रियो ! धन्य-सार्थवाह धन्य है, जिसकी पुत्रवधू रोहिणी है, जिसने पाच शालि के दाने छकडा-छकडियो मे भर कर लौटाये।'

३०—तए ण से धण्णे सत्थवाहे ते पच सालिअक्खए सगडसागडेण निज्जाइए पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे पडिच्छइ। पडिच्छित्ता तस्सेव मित्त-नाइ नियग-सयण-सबधी-परियणस्स चउण्ह य सुण्हाण कुलघरवग्गस्स पुरओ रोहिणीय सुण्ह तस्स कुलघरवग्गस्स बहुसु कज्जेसु य जाव [कारणेसु य कुडु बेसु य मतेसु य गुज्झेसु य] रहस्सेसु य आपुच्छणिज्ज जाव[1] वट्टाविय पमाणभूय ठावेइ।

तत्पश्चात् धन्य-सार्थवाह उन पाच शालि के दानो को छकडा-छकडियो द्वारा लौटाये देखता है। देखकर हृष्ट और तुष्ट होकर उन्हे स्वीकार करता है। स्वीकार करके उसने उन्हीं मित्रो एव ज्ञातिजनो, निजजनो, स्वजनो, सबन्धीजनो तथा परिजनो के सामने तथा चारो पुत्रवधुओं के कुलगृहवर्ग के समक्ष रोहिणी पुत्रवधू को उस कुलगृहवर्ग (परिवार) के अनेक कार्यो मे यावत् रहस्यो मे पूछने योग्य यावत् गृह का कार्य चलाने वाली और प्रमाणभूत (सर्वेसर्वा) नियुक्त किया।

३१—एवामेव समणाउसो ! जाव पच महव्वया सवड्ढिया भवति, से ण इह भवे चेव बहूण समणाण जाव वीईवइस्सइ जहा व सा रोहिणीया।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! जो साधु-साध्वी आचार्य या उपाध्याय के निकट दीक्षित होकर, अनगार बन कर अपने पाच महाव्रतो मे वृद्धि करते हैं—उन्हे उत्तरोत्तर अधिक निर्मल बनाते हैं, वे इसी भव मे बहुत से श्रमणो, श्रमणियो, श्रावको और श्राविकाओ के पूज्य होकर यावत् ससार से मुक्त हो जाते हैं जैसे वह रोहिणी बहुजनो की प्रशसापात्र बनी।

उपसहार

३२—एव खलु जबू ! समणेण भगवया महावीरेण सत्तमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते त्ति बेमि।

हे जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर ने सातवें ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ कहा है। वही मैंने तुमसे कहा है।

॥ सप्तम अध्ययन समाप्त ॥

---

[1] प्रथम अ ४

आठवाँ अध्ययन · मल्ली

सार—सक्षेप

प्रस्तुत अध्ययन का कथानक महाविदेह क्षेत्र से प्रारभ होता है, किन्तु उसकी अन्तिम परिणति भरत क्षेत्र मे हुई है। इसमे वर्त्तमान अवसर्पिणी काल के उन्नीसवे तीर्थंकर, अथवा कहना चाहिए तीर्थंकरी भगवती मल्ली का उद्‌बोधक जीवन अकित किया गया है। पाठको की सुविधा के लिए उसका सक्षिप्त सार-स्वरूप इस प्रकार है—

महाविदेह क्षेत्र की सलिलावती विजय की राजधानी वीतशोका थी। वहाँ के राजा का नाम बल था। किसी समय राजधानी मे स्थविरो का आगमन हुआ। धर्मदेशना श्रवण करके राजा बल अपना सुखद राज्य और सहस्र राजरानियो की मोह-ममता त्याग कर मुनिधर्म मे दीक्षित हो गया। तीव्र तपश्चर्या करके समस्त कर्मो को ध्वस्त कर मुक्त हुआ।

बल राजा का उत्तराधिकारी उनका पुत्र महाबल हुआ। अचल, धरण आदि अन्य छह राजा उसके परम मित्र थे, जो साथ-साथ जन्मे, खेले और बडे हुए थे। उन्होने निश्चय किया था कि सुख मे, दु ख मे, विदेशयात्रा मे और दीक्षा मे हम एक दूसरे का साथ देंगे। एक बार महाबल ससार से विरक्त होकर मुनि-दीक्षा लेने को तैयार हुए तो उनके साथी भी अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार तैयार हो गए। सभी ने उत्कृष्ट साधना की—घोर तपश्चर्या की और जयन्त नामक अनुत्तर विमान मे देवपर्याय मे जन्म लिया।

इस बीच एक अनहोनी घटित हो गई। साधु-अवस्था मे महाबल मुनि के मन मे कपट-भाव उत्पन्न हो गया। साता मुनियो का एक-सी तपस्या करने का निश्चय था, मगर छह मुनि चतुर्थभक्त करते तो महाबल मुनि षष्टभक्त कर लेते। वे षष्ठभक्त करते तो महाबल अष्टमभक्त कर लेते। इस तपस्या का फल यह हुआ कि छह मुनियो को देव पर्याय मे किंचित् न्यून बत्तीस सागरोपम की आयु प्राप्त हुई तो महाबल मुनि को पूर्ण बत्तीस सागरोपम की स्थिति प्राप्त हो गई। साथ ही उन्होने तीर्थंकर-नामकर्म का बन्ध किया।

किन्तु कोई राजा हो या रक, महामुनि हो या सामान्य गृहस्थ, कर्म किसी का लिहाज नही करते। कपट-सेवन के फलस्वरूप महाबल ने स्त्रीनामकर्म का बन्ध कर लिया। जयन्त विमान से जब वे च्युत होकर मनुष्य-पर्याय मे अवतरित हुए तो उन्हे इसी भरतक्षेत्र मे मिथिला-नरेश कुभ की महारानी प्रभावती के उदर से कन्या के रूप मे जन्म लेना पडा। उसका नाम 'मल्ली' रक्खा गया।

तीर्थंकरो का जन्म पुरुष के रूप मे होता है किन्तु मल्ली कुमारी का जन्म महिला के रूप मे होना जैन इतिहास की एक अदभुत और आश्चर्यजनक घटना है।

मल्ली कुमारी के छह अन्य साथी इससे पूर्व ही विभिन्न प्रदेशो मे जन्म ले कर अपने-अपने प्रदेशो के राजा बन चुके थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) प्रतिबुद्धि इक्ष्वाकुराज,
(२) चन्द्रच्छाया-अंग देश का राजा,
(३) शंख-काशीराज,
(४) रुक्मि-कुणालनरेश,
(५) अदीनशत्रु-कुरुराज,
(६) जितशत्रु-पंचालाधिपति।

अनेक बार हम देखते हैं कि वर्तमान जीवन में किसी प्रकार का सम्पर्क न होने पर भी किसी प्राणी पर दृष्टि पड़ते ही हमारे हृदय में प्रीति या वात्सल्य का भाव उत्पन्न हो जाता है और किसी को देखते ही घृणा उमड़ पड़ती है। इन एक दूसरे से विपरीत मनोभावों का कोई व्यक्त कारण नहीं जान पड़ता, मगर ये भाव निष्कारण भी नहीं होते। वस्तुतः पूर्व जन्मों के संस्कारों को साथ लेकर ही मानव जन्म लेता है। ये संस्कार अप्रकट रूप में अपना प्रभाव उत्पन्न करते हैं। पूर्व जन्म में जिस जीव के प्रति हमारा रागात्मक संबन्ध रहा है, उस पर दृष्टि पड़ते ही, अनायास ही, हमारे हृदय में प्रीतिभाव उत्पन्न हो जाता है। इसके विपरीत जिसके साथ वैर-विरोधात्मक संबंध रहा है, उसके प्रति सहसा विद्वेष की भावना जागृत हो उठती है। अनेकानेक जैन कथानकों में इस तथ्य की पुष्टि की गई है। भगवान् पार्श्वनाथ और कमठ, महावीर और चरवाहा, समरादित्य आदि इसके प्रसिद्ध उदाहरण हैं।

हुआ यह कि मल्ली कुमारी के जीव के प्रति उनके पूर्व साथियों का जो अनुराग का संबंध था, वह विभिन्न निमित्त पाकर जागृत हो गया और संयोगवश छहों राजा एक ही साथ उससे विवाह करने को दल-बल के साथ मिथिला नगरी जा पहुँचे। कौन राजा क्या निमित्त पाकर मल्ली पर अनुरक्त हुआ, इसका विस्तृत वर्णन प्रस्तुत अध्ययन में किया गया है।

उधर मल्ली कुमारी ने अवधिज्ञान के साथ जन्म लिया था। अवधिज्ञान के प्रयोग से उन्होंने अपने छहों साथियों की अवस्थिति जान ली थी। भविष्य में घटित होने वाली घटना भी उन्हें विदित हो गई थी। अतएव उसके प्रतीकार की तैयारी भी कर ली थी। तैयारी इस प्रकार की थी—

मल्ली कुमारी ने हूबहू अपनी जैसी एक प्रतिमा का निर्माण करवाया। अंदर से वह पोली थी और उसके मस्तक में एक बड़ा सा छिद्र था। उस प्रतिमा को देखकर कोई नहीं कह सकता था कि यह मल्ली नहीं, मल्ली की प्रतिमा है। मल्ली कुमारी जो भोजन-पान करती उसका एक पिंड मस्तक के छेद में से प्रतिमा में डाल देती थी। वह भोजन-पान प्रतिमा के भीतर जाकर सड़ता रहता और उसमें अत्यन्त अनिष्ट दुर्गंध उत्पन्न होती। किन्तु ढक्कन होने से वह दुर्गंध वहीं की वहीं दबी रहती थी। जहाँ प्रतिमा अवस्थित थी, उसके इर्दगिर्द मल्ली ने जालीदार गृहों का भी निर्माण करवाया था। उन गृहों में बैठ कर प्रतिमा को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता था, किन्तु उन गृहों में बैठे वाले एक दूसरे को नहीं देख सकते थे।

जब छहों राजा एक साथ मल्ली कुमारी का वरण करने के लिए मिथिला जा पहुँचे तो राजा कुंभ बहुत असमंजस में पड़ गए। मल्ली की मंगनी पहले छहों ने की थी और कुंभ राजा ने छहों

की मगनी अस्वीकार कर दी थी । अतएव वे सब मिल कर कुम्भ राजा के साथ युद्ध करने के लिए तत्पर थे । परस्पर मे परामर्श करके ही वे एक साथ चढ आए थे । कुम्भ ने छहो राजाओ का सामना किया । वीरता के साथ सग्राम किया, मगर अकेला चना क्या भाड फोड सकता है ? आखिर कुम्भ पराजित हुआ और लौट कर अपने महल मे आ गया । वह अत्यन्त गहरे विषाद मे डूब गया—किंकर्त्तव्य-मूढ हो गया ।

उसी समय राजकुमारी अपने पिता कुम्भराज को प्रणाम करने गई । मगर कुम्भ चिन्ता मे ऐसे निमग्न थे कि उन्हे उसके आने का भान ही नही हुआ । तब कुमारी मल्ली ने गहरी चिन्ता का कारण पूछा । कुम्भराज न उसे समस्त वृत्तान्त कह सुनाया ।

मल्ली कुमारी ने इसी प्रसग के लिए अपनी प्रतिमा बनवाकर सारी तैयारी कर रक्खी थी । पिता से कहा—'आप चिन्ता त्यागिए और प्रत्येक राजा के पास गुप्त रूप से दूत भेज कर कहला दीजिए कि आपको ही मल्ली कुमारी दी जाएगी । आप गुप्त रूप से सन्ध्या समय राजमहल मे आ जाइए । उन सब को जालीदार गृहो मे अलग-अलग ठहरा दीजिए ।

कुम्भ राजा ने ऐसा ही किया । छहो राजा मल्ली कुमारी का वरण करने की लालसा से गर्भगृहो मे आ पहुँचे । प्रभात होने पर सबने मल्ली की प्रतिमा को देखा और समझ लिया कि यही कुमारी मल्ली है । सब उसी की ओर अनिमेष दृष्टि से देखने लगे । तब मल्ली कुमारी वहा पहुँची और प्रतिमा के मस्तक के छिद्र को उघाड दिया । छिद्र को उघाडते ही उसमे से जो दुर्गन्ध निकली वह असह्य हो गई । सभी राजा उससे घबरा उठे । सबने अपनी-अपनी नाक दबाई और मुँह बिगाड लिया । विषयासक्त राजाओ को उद्‌बुद्ध करने का यही उपयुक्त अवसर था । मल्ली कुमारी ने नाक-मुँह बिगाडने का कारण पूछा । सभी का एक ही उत्तर था—असह्य बदबू !

तब राजकुमारी ने राजाओ से कहा—देवानुप्रियो ! इस प्रतिमा मे भोजन पानी का एक-एक पिण्ड डालने का ऐसा अनिष्ट एव अमनोज्ञ परिणाम हुआ तो इस औदारिक शरीर का परिणाम कितना अशुभ, अनिष्ट और अमनोज्ञ होगा ? यह शरीर तो मल, मूत्र, मास, रुधिर आदि की थैली है । इसके प्रत्येक द्वार से गदे पदार्थ झरते रहते है । सडना-गलना इसका स्वभाव है । इस पर से चमडी की चादर हटा दी जाए तो यह शरीर कितना सुन्दर प्रतीत होगा ? यह चीलो-कौवो का भक्ष्य बन जाएगा । इसका असली वीभत्स रूप प्रकट हो जाएगा तो मल-मूत्र की इस थैली पर आप क्यो मोहित हो रहे है ?

इस प्रकार सम्बोधित करके मल्ली कुमारी ने पूर्वजन्मो का वृत्तान्त उन्हे कह सुनाया । किस प्रकार वे सब साथ दीक्षित हुए थे, किस प्रकार उसने कपटाचरण किया था, किस प्रकार वे सब देवपर्याय मे उत्पन्न हुए थे, इत्यादि सब कह सुनाया ।

मल्ली द्वारा पूर्वभवो का वृत्तान्त सुनते ही छहो राजाओ को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया । सब सबुद्ध हो गए । तब गर्भगृहो के द्वार उन्मुक्त कर दिए गए । समग्र वातावरण मे अनुराग के स्थान पर विराग छा गया । उसी समय राजकुमारी ने दीक्षा अगीकार करने का सकल्प किया ।

तीर्थंकरों की परम्परा के अनुसार वार्षिक दान देने के पश्चात् मल्ली कुमारी ने जिन प्रव्रज्या अंगीकार कर ली। जिस दिन दीक्षा अंगीकार की उसी दिन उन्हें केवलज्ञान-दर्शन की प्राप्ति हो गई। तत्पश्चात् जितशत्रु आदि छहों राजाओं ने भी दीक्षा अंगीकार कर ली। अन्त में मुक्ति प्राप्त की।

भगवती मल्ली तीर्थंकरी ने भी चैत्र शुक्ला चतुर्थी के दिन निर्वाण प्राप्त किया।

प्रस्तुत अध्ययन खूब विस्तृत है। इसमें अनेक ज्ञातव्य विषयों का निरूपण किया गया है। उन्हें जानने के लिए पूरे अध्ययन का वाचन करना आवश्यक है। यहाँ अतिसंक्षेप में ही सार मात्र दिया गया है।

अट्ठमं अज्झयण : मल्ली

उत्क्षेप

१—जइ ण भंते ! समणेण भगवया महावीरेण सत्तमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते, अट्ठमस्स ण भंते ! के अट्ठे पन्नत्ते ?

जम्बू स्वामी ने श्री सुधर्मा स्वामी से प्रश्न किया—'भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने सातवें ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है (जो आपने मुझे सुनाया), तो आठवें अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?'

२—एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, निसढस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं, सीओयाए महाणईए दाहिणेणं, सुहावहस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरच्छिमेणं एत्थ णं सलिलावती नामं विजए पन्नत्ते ।

श्री सुधर्मा स्वामी ने उत्तर देते हुए कहा—'हे जम्बू ! उस काल और उस समय मे, इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे महाविदेह नामक वर्ष (क्षेत्र) मे, मेरु पर्वत से पश्चिम मे, निषध नामक वर्षधर पर्वत से उत्तर मे, शीतोदा महानदी से दक्षिण मे, सुखावह नामक वक्षार पर्वत से पश्चिम मे और पश्चिम लवणसमुद्र से पूर्व मे—इस स्थान पर, सलिलावती नामक विजय कहा गया है ।

३—तत्थ णं सलिलावतीविजए वीयसोगा नामं रायहाणी पण्णत्ता—नवजोयणवित्थिन्ना जाव[1] पच्चक्खं देवलोगभूया ।

तीसे णं वीयसोगाए रायहाणीए उत्तरपुरच्छिमे दिसिभाए एत्थ णं इंदकुंभे नामं उज्जाणे होत्था ।

तत्थ णं वीयसोगाए रायहाणीए बले नामं राया होत्था । तस्स धारिणीपामोक्खं देविसहस्सं उवरोधे होत्था ।

उस सलिलावती विजय मे वीतशोका नामक राजधानी कही गई है । वह नौ योजन चौडी, यावत् (बारह योजन लम्बी) साक्षात् देवलोक के समान थी ।

उस वीतशोका राजधानी के उत्तरपूर्व (ईशान) दिशा के भाग मे इन्द्रकुम्भ नामक उद्यान था ।

उस वीतशोका राजधानी मे बल नामक राजा था । बल राजा के अन्त पुर मे धारिणी प्रभृति एक हजार देवियाँ (रानियाँ) थी ।

---

१ अ ५ सूत्र २

महाबल का जन्म

४—तए णं सा धारिणी देवी अन्नया कयाइ सीहं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा जाव[1] महब्बले नाम दारए जाए, उम्मुक्कबालभावे जाव भोगसमत्थे। तए णं तं महब्बलं अम्मापियरो सरिसियाणं कमलसिरीपामोक्खाणं पंचण्हं रायवरकन्नासयाणं एगदिवसेणं पाणिं गेण्हावेंति। पंच पासायसया पंचसओ दाओ जाव[2] विहरइ।

वह धारिणी देवी किसी समय स्वप्न में सिंह को देखकर जागृत हुई। यावत् [यथासमय] महाबल नामक पुत्र का जन्म हुआ। वह बालक क्रमशः बाल्यावस्था को पार कर भोग भोगने में समर्थ हो गया। तब माता-पिता ने समान रूप एवं वय वाली कमलश्री आदि पांच सौ श्रेष्ठ राजकुमारियों के साथ, एक ही दिन में महाबल का पाणिग्रहण कराया। पांच सौ प्रासाद आदि पांच-पांच सौ का दहेज दिया। यावत् महाबल कुमार मनुष्य संबन्धी कामभोग भोगता हुआ रहने लगा।

५—तेणं कालेणं तेणं समएणं धम्मघोसा नामं थेरा पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, गामाणुगामं दूइज्जमाणे, सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेव इंदकुंभे नामं उज्जाणे तेणेव समोसढे, संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरंति।

उस काल और उस समय में धर्मघोषनामक स्थविर पांच सौ शिष्यों—अनगारों से परिवृत होकर अनुक्रम से विचरते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम गमन करते हुए, सुखे-सुखे विहार करते हुए जहां इन्द्रकुम्भ नामक उद्यान था, वहां पधारे और संयम एवं तप से आत्मा को भावित करते हुए वहां ठहरे।

बल की दीक्षा और निर्वाण

६—परिसा निग्गया, बलो वि राया निग्गओ, धम्मं सोच्चा णिसम्म जं नवरं महब्बलं कुमारं रज्जे ठावेइ, ठावित्ता सयमेव बले राया थेराणं अंतिए पव्वइए, एक्कारसअंगविओ, बहूणि वासाणि सामण्णपरियायं पाउणित्ता जेणेव चारुपव्वए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मासिएणं भत्तेणं अपाणेणं केवलं पाउणित्ता जाव सिद्धे।

स्थविर मुनिराज को वन्दना करने के लिए जनसमूह निकला। बल राजा भी निकला। धर्म सुनकर राजा को वैराग्य उत्पन्न हुआ। विशेष यह कि उसने महाबल कुमार को राज्य पर प्रतिष्ठित किया। प्रतिष्ठित करके स्वयं ही बल राजा ने आकर स्थविर के निकट प्रव्रज्या अंगीकार की। वह ग्यारह अंगों के वेत्ता हुए। बहुत वर्षों तक संयम पाल कर जहां चारुपर्वत था, वहां गए। एक मास का निर्जल अनशन करके केवलज्ञान प्राप्त करके यावत् सिद्ध हुए।

राजा महाबल

७—तए णं सा कमलसिरी अन्नया कयाइ सीहं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा, जाव बलभद्दो कुमारो जाओ, जुवराया यावि होत्था।

तत्पश्चात् अन्यदा कदाचित् कमलश्री स्वप्न में सिंह को देखकर जागृत हुई। (यथा समय) बलभद्र कुमार का जन्म हुआ। वह युवराज भी हो गया।

---

१ देखें भगवतीसूत्र में महाबलवर्णन   २ अ. सू. १०२-१०७

८—तस्स ण महब्बलस्स रन्नो इमे छप्पिय बालवयसगा रायाणो होत्था, तजहा—(१) अयले (२) धरणे (३) पूरणे (४) वसू (५) वेसमणे (६) अभिचदे, सहजाया सहवड्ढियया सहपसुकीलियया सहदारदरिसी अण्णमण्णमणुरत्ता अण्णमण्णमणुव्वयया अण्णमण्णच्छदाणुवत्तया अण्णमण्णहियइच्छियकारया अण्णमण्णेसु रज्जेसु किच्चाइ करणिज्जाइ पच्चणुभवमाणा विहरति ।

तए ण तेसि रायाण अण्णया कयाइ एगयओ सहियाण समुवागयाण सण्णिसण्णाण सणिविट्ठाण इमेयारूवे मिहोकहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था—जण्ण देवाणुप्पिया ! अम्ह सुह वा दुक्ख वा पव्वज्जा वा विदेसगमण वा समुप्पज्जइ, तण्ण अम्हेहि एगयओ समेच्चा णित्थरियव्वे त्ति कट्टु अन्नमन्नस्सेयमट्ठ पडिसुणेंति । सुहसुहेण विहरति ।

उस महाबल राजा के छह राजा बालमित्र थे । वे इस प्रकार—(१) अचल (२) धरण (३) पूरण (४) वसु (५) वैश्रमण (६) अभिचन्द्र । वे साथ ही जन्मे थे, साथ ही वृद्धि को प्राप्त हुए थे, साथ ही धूल मे खेले थे, साथ ही विवाहित हुए थे, एक दूसरे पर अनुराग रखते थे, एक-दूसरे का अनुसरण करते थे, एक-दूसरे के अभिप्राय का आदर करते थे, एक-दूसरे क हृदय की अभिलाषा के अनुसार काय करते थे, एक-दूसरे के राज्यो मे काम-काज करते हुए रह रहे थे ।

एक बार किसी समय वे सब राजा इकट्ठे हुए, एक जगह मिले, एक स्थान पर आसीन हुए । तब उनमे इस प्रकार का वार्त्तालाप हुआ –'देवानुप्रियो ! जब कभी हमारे लिए सुख का, दु ख का, प्रव्रज्या—दीक्षा का अथवा विदेशगमन का प्रसग उपस्थित हो तो हमे सभी अवसरो पर साथ ही रहना चाहिए । साथ ही आत्मा का निस्तार करना—आत्मा को ससार सागर से तारना चाहिए, ऐसा निणय करके परस्पर मे इस अर्थ (बात) को अँगीकार किया था । वे सुखपूवक रह रहे थे ।

महाबल की दीक्षा

९—तेण कालेण तेण समएण धम्मघोसा थेरा जेणेव इदकु भे उज्जाणे तेणेव समोसढा, परिसा निग्गया, महब्बलो वि राया निग्गओ । धम्मो कहिओ । महब्बलेण धम्म सोच्चा—ज नवर देवाणुप्पिया ! छप्पिय बालवयसगे आपुच्छामि, बलभद्द च कुमार रज्जे ठावेमि, जाव छप्पिय बालवयसए आपुच्छइ ।

तए ण ते छप्पिय बालवयसए महब्बल राय एव वयासी—'जइ ण देवाणुप्पिया ! तुब्भे पव्वयह, अम्ह के अन्ने आहारे वा ? जाव आलबे वा ? अम्हे वि य ण पव्वयामो ।

तए ण से महब्बले राया छप्पिय बालवयसए एव वयासी—'जइ ण देवाणुप्पिया ! तुब्भे मए सद्धि (जाव) पव्वयह, तओ ण तुब्भे गच्छह, जेट्ठपुत्त सएहि सएहि रज्जेहि ठावेह, पुरिससहस्सवाहणीओ सीयाओ दुरुढा समाणा पाउब्भवह । तए ण ते छप्पिय बालवयसए जाव पाउब्भवति ।

उस काल और उस समय मे धमघोष नामक स्थविर जहा इन्द्रकुम्भ उद्यान था, वहाँ पधारे । परिषद् वदना करने के लिए निकली । महाबल राजा भी निकला । स्थविर महाराज ने धम कहा—धर्मोपदेश दिया । महाबल राजा का धम श्रवण करके वैराग्य उत्पन्न हुआ । विशेष यह कि राजा ने कहा—'हे देवानुप्रिय ! मैं अपने छहो बालमित्रो से पूछ लेता हू और बलभद्र कुमार को राज्य पर स्थापित कर देता हूँ, फिर दीक्षा अगीकार करूँगा ।' यावत् इस प्रकार कहकर उसने छहो बालमित्रो से पूछा ।

तब वे छहों बाल-मित्र महाबल के राजा से कहने लगे—देवानुप्रिय ! यदि तुम प्रव्रजित होते हो तो हमारे लिए अन्य कौन सा आधार है ? यावत् अथवा आलम्बन है, हम भी दीक्षित होते हैं।

तत्पश्चात् महाबल राजा ने उन छहों बालमित्रों से कहा—देवानुप्रियो ! यदि तुम मेरे साथ [यावत्] प्रव्रजित होते हो तो तुम जाओ और अपने-अपने ज्येष्ठ पुत्र को अपने-अपने राज्य पर प्रतिष्ठित करो और फिर हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य शिविकाओं पर आरूढ होकर यहाँ प्रकट होओ।' तब छहों बालमित्र गये और अपने-अपने ज्येष्ठ पुत्रों को राज्यासीन करके महाबल राजा के समीप आ गये।

१०—तए णं से महब्बले राया छप्पिय बालवयसए पाउब्भूए पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! बलभद्दस्स कुमारस्स महया महया रायाभिसेएणं अभिसिंचेह।' ते वि तहेव जाव बलभद्दं कुमारं अभिसिंचेंति।

तब महाबल राजा ने छहों बालमित्रों को आया देखा। देखकर वह हर्षित और सन्तुष्ट हुआ। उसने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर कहा—'देवानुप्रियो ! जाओ और बलभद्र कुमार का महान् राज्याभिषेक से अभिषेक करो।' यह आदेश सुनकर उन्होंने उसी प्रकार किया यावत् बलभद्र कुमार का अभिषेक किया।

११—तए णं से महब्बले राया बलभद्दं कुमारं आपुच्छइ। तओ णं महब्बलपामोक्खा छप्पिय बालवयसए सद्धिं पुरिससहस्सवाहिणिं सिबियं दुरूढा वीयसोयाए रायहाणीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता जेणेव इंदकुंभे उज्जाणे जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छंति। उवागच्छित्ता ते वि सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेंति, करित्ता जाव पव्वयंति, एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठमेहिं अप्पाणं भावेमाणा जाव विहरंति।

तत्पश्चात् महाबल राजा ने बलभद्र कुमार से, जो अब राजा हो गया था, दीक्षा की आज्ञा ली। फिर महाबल अचल आदि छहों बालमित्रों के साथ हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य शिविका पर आरूढ होकर, वीतशोका नगरी के बीचोंबीच होकर निकले। निकल कर जहाँ इन्द्रकुम्भ उद्यान था और जहाँ स्थविर भगवंत थे, वहाँ आये। आकर उन्होंने भी स्वयं ही पंचमुष्टिक लोच किया। लोच करके यावत् दीक्षित हुए। ग्यारह अंगों का अध्ययन करके, बहुत से उपवास, बेला, तेला आदि तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

१२—तए णं तेसिं महब्बलपामोक्खाणं सत्तण्हं अणगाराणं अन्नया कयाइ एगयओ सहियाणं इमेयारूवे मिहो कहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था—'जं णं अम्हं देवाणुप्पिया ! एगे तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ, तं णं अम्हेहिं सव्वेहिं सद्धिं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए' त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता बहूहिं चउत्थ जाव [छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं] विहरंति।

तत्पश्चात् वे महाबल आदि सातों अनगार किसी समय इकट्ठे हुए। उस समय उनमें परस्पर इस प्रकार बातचीत हुई—हे देवानुप्रियो ! हम लोगों में से एक जिस तप को अंगीकार करके विचरे, हम सब को एक साथ वही तप क्रिया ग्रहण करके विचरना उचित है। अर्थात् हम सातों एक ही

प्रकार की तपस्या किया करेंगे।' इस प्रकार कहकर सबने यह बात अंगीकार की। अंगीकार करके अनेक चतुर्थभक्त, बेला, तेला, चोला, पचोला, मासखमण, अर्धमासखमण—एक-सी तपस्या करते हुए विचरने लगे।

महाबल का मायाचार

१३—तए णं से महब्बले अणगारे इमेणं कारणेणं इत्थिणामगोयं कम्मं निव्वत्तिंसु—जइ णं ते महब्बलवज्जा छ अणगारा चउत्थं उवसंपज्जित्ता णं विहरंति, तओ से महब्बले अणगारे छट्ठं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ। जइ णं ते महब्बलवज्जा अणगारा छट्ठं उवसंपज्जित्ता णं विहरंति, तओ से महब्बले अणगारे अट्ठमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ। एवं अट्ठमं तो दसमं, अह दसमं तो दुवालसमं।

तत्पश्चात् उस महाबल अनगार ने इस कारण से स्त्रीनामगोत्र कर्म का उपार्जन किया-यदि वे महाबल को छोड़ कर शेष छह अनगार चतुर्थभक्त (उपवास) ग्रहण करके विचरते, तो महाबल अनगार [उन्हें बिना कहे] षष्ठभक्त (बेला) ग्रहण करके विचरते। अगर महाबल के सिवाय छह अनगार षष्ठभक्त अंगीकार करके विचरते तो महाबल अनगार अष्टभक्त (तेला) ग्रहण करके विचरते। इसी प्रकार वे अष्टमभक्त करते तो महाबल दशमभक्त करते, वे दशमभक्त करते तो महाबल द्वादशभक्त, कर लेते। (इस प्रकार अपने साथी मुनियों से छिपा कर—कपट करके महाबल अधिक तप करते थे।)

तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन

१४—इमेहि य णं वीसाएहि य कारणेहिं आसेवियबहुलीकएहिं तित्थयरनामगोयं कम्मं निव्वत्तिंसु, तंजहा—

अरिहंत-सिद्ध-पवयण-गुरु-थेर-बहुस्सुए-तवस्सीसु।
वच्छल्लया य तेसिं, अभिक्ख णाणोवओगे य॥१॥
दंसण-विणए आवस्सए य सीलव्वए निरइयारं।
खणलव-तवच्चियाए, वेयावच्चे समाही य॥२॥
अपुव्वनाणगहणे, सुयभत्ती पवयणे पभावणया।
एएहिं कारणेहिं, तित्थयरत्तं लहइ जीवो॥३॥

(महाबल ने) स्त्री नामगोत्र के अतिरिक्त इन कारणों के एक बार और बार-बार सेवन करने से तीर्थंकर नामगोत्र कर्म का भी उपार्जन किया। वे कारण यह हैं—

(१) अरिहंत (२) सिद्ध (३) प्रवचन—श्रुतज्ञान (४) गुरु—धर्मोपदेशक (५) स्थविर अर्थात् साठ वर्ष की उम्र वाले जातिस्थविर, समवायांगादि के ज्ञाता श्रुतस्थविर और बीस वर्ष की दीक्षा वाले पर्यायस्थविर, यह तीन प्रकार के स्थविर साधु (६) बहुश्रुत—दूसरों की अपेक्षा अधिक श्रुत के ज्ञाता और (७) तपस्वी—इन सातों के प्रति वत्सलता धारण करना अर्थात् इनका यथोचित सत्कार-सम्मान करना, गुणोत्कीर्तन करना (८) बारबार ज्ञान का उपयोग करना (९) दर्शन-सम्यक्त्व की विशुद्धता (१०) ज्ञानादिक का विनय करना (११) छह आवश्यक करना (१२) उत्तरगुणों और मूलगुणों का निरतिचार पालन करना (१३) क्षणलव अर्थात् क्षण-एक लव

प्रमाण काल में भी संवेग, भावना एवं ध्यान का सेवन करना (१४) तप करना (१५) त्याग-मुनियों को उचित दान देना (१६) नया-नया ज्ञान ग्रहण करना (१७) समाधि—गुरु आदि को साता उपजाना (१८) वैयावृत्य करना (१९) श्रुत की भक्ति करना और (२०) प्रवचन की प्रभावना करना, इन बीस कारणों से जीव तीर्थंकरत्व की प्राप्ति करता है। तात्पर्य यह है कि इन बीस कारणों से महाबल मुनि ने तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन किया।

महाबल आदि की तपस्या

१५—तए णं ते महब्बलपामोक्खा सत्त अणगारा मासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरंति, जाव[1] एगराइयं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरंति।

तत्पश्चात् वे महाबल आदि सातों अनगार एक मास की पहली भिक्षु-प्रतिमा अंगीकार करके विचरने लगे। यावत् बारहवीं एकरात्रिकी भिक्षु-प्रतिमा अंगीकार करके विचरने लगे। (यहाँ यावत् शब्द से बीच की दस भिक्षु-प्रतिमाएँ इस प्रकार समझनी चाहिए—दूसरी दो मास की, तीसरी तीन मास की, चौथी चार मास की, पाँचवीं पाँच मास की, छठी छह मास की, सातवीं सात मास की, आठवीं आठ अहोरात्र की, नौवीं सात अहोरात्र की, दसवीं सात अहोरात्र की और ग्यारहवीं एक अहोरात्र की। इस प्रकार सब मिलाकर बारह भिक्षु-प्रतिमाएँ हैं।)

१६—तए णं ते महब्बलपामोक्खा सत्त अणगारा खुड्डागं सीहनिक्कीलियं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरंति, तंजहा—चउत्थं करेंति, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेंति, पारित्ता छट्ठं करेंति, करित्ता चउत्थं करेंति, करित्ता अट्ठमं करेंति, करित्ता छट्ठं करेंति, करित्ता दसमं करेंति, करित्ता अट्ठमं करेंति, करित्ता दुवालसमं करेंति, करित्ता दसमं करेंति, करित्ता चाउद्दसमं करेंति, करित्ता दुवालसमं करेंति, करित्ता सोलसमं करेंति, करित्ता चोद्दसमं करेंति, करित्ता अट्ठारसमं करेंति, करित्ता सोलसमं करेंति, करित्ता वीसइमं करेंति, करित्ता अट्ठारसमं करेंति, करित्ता वीसइमं करेंति, करित्ता सोलसमं करेंति, करित्ता अट्ठारसमं, करेंति, करित्ता चोद्दसमं करेंति, करित्ता सोलसमं करेंति, करित्ता दुवालसमं करेंति, करित्ता चाउद्दसमं करेंति, करित्ता दसमं करेंति, करित्ता दुवालसमं करेंति, करित्ता अट्ठमं करेंति, करित्ता दसमं करेंति, करित्ता छट्ठं करेंति, करित्ता अट्ठमं करेंति, करित्ता चउत्थं करेंति, करित्ता छट्ठं करेंति, करित्ता चउत्थं करेंति। सव्वत्थ सव्वकामगुणिएणं पारेंति।

तत्पश्चात् वे महाबल प्रभृति सातों अनगार क्षुल्लक सिंहनिष्क्रीडित नामक तपश्चरण अंगीकार करके विचरने लगे। यह तप इस प्रकार किया जाता है—

सर्वप्रथम एक उपवास करे, उपवास करके सर्वकामगुणित (विगय आदि सभी पदार्थों को ग्रहण करने के साथ) पारणा करे, पारणा करके दो उपवास करे, फिर एक उपवास करे, करके तीन उपवास (अष्टमभक्त) करे, करके दो उपवास करे, करके चार उपवास करे, करके तीन उपवास करे, करके पाँच उपवास करे, करके चार उपवास करे, करके छह उपवास करे, करके पाँच उपवास करे, करके सात उपवास करे, करके छह उपवास करे, करके आठ उपवास करे, करके सात उपवास करे,

---
१. अ. अ. ११९१०

करके नौ उपवास करे, करके आठ उपवास करे, करके नौ उपवास करे, करके सात उपवास करे, करके आठ उपवास करे, करके छह उपवास करे, करके सात उपवास करे, करके पाँच उपवास करे करके छह उपवास करे, करके चार उपवास करे, करके पाँच उपवास करे, करके तीन उपवास करे, करके चार उपवास करे, करके दो उपवास करे, करके तीन उपवास करे, करके एक उपवास करे, करके दो उपवास करे, करके एक उपवास करे। सब जगह पारणा के दिन सर्वकामगुणित पारणा करके उपवासो का पारणा समझना चाहिए।

विवेचन—सिह की क्रीडा के समान तप सिंहनिष्क्रीडित कहलाता है। जैसे सिंह चलता-चलता पीछे देखता है, इसी प्रकार जिस तप मे पीछे के तप की आवृत्ति करके आगे का तप किया जाता है और इसी क्रम से आगे बढा जाता है, वह सिंहनिष्क्रीडित तप कहलाता है। इस तप की स्थापना अको मे निम्न प्रकार है—

१	२	३	२	४	३	५	४	६	७	६	८	७	९	८
१	२	३	२	४	३	५	४	६	७	६	८	७	९	

१७—एव खलु एसा खुड्डागसीहनिक्कीलियस्स तवोकम्मस्स पढमा परिवाडी छहिं मासेहिं सत्तहि य अहोरत्तेहिय अहासुत्ता जाव आराहिया भवइ।

इस प्रकार इस क्षुल्लक सिंहनिष्क्रीडित तप की पहली परिपाटी छह मास और सात अहोरात्रो मे सूत्र के अनुसार यावत् आराधित होती है। (इसमे १५४ उपवास और तेतीस पारणा किये जाते ह।)

१८—तयाणतर दोच्चाए परिवाडीए चउत्थ करेंति, नवर विगइवज्ज पारेंति। एव तच्चा वि परिवाडी, नवर पारणए अलेवाड पारेंति। एव चउत्था वि परिवाडी, नवर पारणए आयबिलेण पारेंति।

तत्पश्चात् दूसरी परिपाटी मे एक उपवास करते हैं, इत्यादि सब पहले के समान ही समझ लेना चाहिए। विशेषता यह है कि इसमे विकृति रहित पारणा करते हैं, अर्थात् पारणा मे घी, तेल, दूध, दही आदि विगय का सेवन नही करते। इसी प्रकार तीसरी परिपाटी मे भी समझनी चाहिए। इसमे विशेषता यह है कि अलेपकृत (अलेपमिश्रित) से पारणा करते है। चौथी परिपाटी मे भी ऐसा ही करते हैं किन्तु उसमे आयबिल से पारणा की जाती है।

१९—तए ण ते महब्बलपामोक्खा सत्त अणगारा खुड्डागं सीहनिक्कीलिय तवोकम्म दोहि सवच्छरेहि अट्ठावीसाए अहोरत्तेहि अहासुत्त जाव[1] आणाए आराहेत्ता जेणेव थेरे भगवते तेणेव उवागच्छति उवागच्छित्ता थेरे भगवते वदन्ति नमसति, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—

तत्पश्चात् महाबल आदि सातो अनगार क्षुल्लक (लघु) सिंहनिष्क्रीडित तप को (चारो

१ प्र अ १९६

परिपाटी सहित) दो वर्ष और अट्ठाईस अहोरात्र में, सूत्र के कथनानुसार यावत् तीर्थंकर की आज्ञा से आराधन करके जहाँ स्थविर भगवान् थे, वहाँ आये। आकर उन्होंने वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार बोले—

२०—इच्छामो णं भंते ! महालयं सीहनिक्कीलियं तवोकम्मं तहेव जहा खुड्डागं, नवरं चोत्तीसइमाओ नियत्तए, एगाए चेव परिवाडीए कालो एगेणं संवच्छरेणं छहिं मासेहिं अट्ठारसेहि य अहोरत्तेहिं समप्पेइ। सव्वं पि सीहनिक्कीलियं छहिं वासेहिं, दोहि य मासेहिं, बारसेहि य अहोरत्तेहिं समप्पेइ।

'भगवन् ! हम महत् (बड़ा) सिंहनिष्क्रीडित नामक तप कर्म करना चाहते हैं आदि'। यह तप क्षुल्लक सिंहनिष्क्रीडित तप के समान ही जानना चाहिए। विशेषता यह है कि इसमें चौंतीस भक्त अर्थात् सोलह उपवास तक पहुँचकर वापिस लौटा जाता है। एक परिपाटी एक वर्ष, छह मास और अठारह अहोरात्र में समाप्त होती है। सम्पूर्ण महासिंहनिष्क्रीडित तप छह वर्ष, दो मास और बारह अहोरात्र में पूर्ण होता है। (प्रत्येक परिपाटी में ५५८ दिन लगते हैं, ४९७ उपवास और ६१ पारणा होती हैं।)

२१—तए णं ते महब्बलपामोक्खा सत्त अणगारा महालयं सीहनिक्कीलियं अहासुत्तं जाव[1] आराहेत्ता जेणेव थेरे भगवंते तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता थेरे भगवंते वंदन्ति नमसंति, वंदित्ता नमंसित्ता बहूणि चउत्थ जाव विहरंति।

तत्पश्चात् वे महाबल प्रभृति सातों मुनि महासिंहनिष्क्रीडित तप को सूत्र के अनुसार यावत् आराधन करके जहाँ स्थविर भगवान् थे वहाँ आते हैं। आकर स्थविर भगवान् को वन्दना करते हैं, नमस्कार करते हैं। वन्दना और नमस्कार करके बहुत से उपवास, बेला आदि करते हुए विचरते हैं।

समाधिमरण

२२—तए णं ते महब्बलपामोक्खा सत्त अणगारा तेणं उरालेणं तवोकम्मेणं सुक्का भुक्खा[2] जहा खंदओ[3], नवरं थेरे आपुच्छित्ता चारुपव्वयं (वक्खारपव्वयं) दुरुहंति। दुरुहित्ता जाव[4] दोमासियाए संलेहणाए सवीसं भत्तसयं अणसणं, चउरासीइं वाससयसहस्साइं सामण्णपरियागं पाउणंति, पाउणित्ता चुलसीइं पुव्वसयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता जयंते विमाणे देवत्ताए उववन्ना।

तत्पश्चात् वे महाबल प्रभृति अनगार उस प्रधान तप के कारण शुष्क अर्थात् मांस-रक्त से हीन तथा रूक्ष अर्थात् निस्तेज हो गये, भगवतीसूत्र में वर्णित स्कंदक मुनि (का इसी आगम में वर्णित मेघ मुनि के सदृश उनका वर्णन समझ लेना चाहिए।) विशेषता यह है कि स्कंदक मुनि ने भगवान् महावीर से आज्ञा प्राप्त की थी, पर इन सात मुनियों ने स्थविर भगवान् से आज्ञा ली। आज्ञा लेकर चारु पर्वत (चारु नामक वक्षस्कार पर्वत) पर आरूढ हुए। आरूढ होकर दो मास की संलेखना करके—एक सौ बीस भक्त का अनशन करके, चौरासी लाख वर्षों तक संयम का पालन करके चौरासी लाख पूर्व का कुल आयुष्य भोगकर जयन्त नामक तीसरे अनुत्तर विमान में देवपर्याय से उत्पन्न हुए।

---

१ द्र. अ. १९१   २ द्र. ८, २०१   ३ भगवती श. २   ४ द्र. अ. २०६

२३—तत्थ ण अत्थेगइयाण देवाण बत्तीस सागरोवमाइ ठिई पन्नत्ता। तत्थ ण महब्बल-वज्जाण छण्ह देवाण देसूणाइ बत्तीस सागरोवमाइ, ठिई महब्बलस्स देवस्स पडिपुण्णाइ बत्तीस सागरोवमाइ ठिई पन्नत्ता।

उस जयन्त विमान मे कितनेक देवो की बत्तीस सागरोपम की स्थिति कही गई है। उनमे से महाबल को छोडकर दूसरे छह देवो की कुछ कम बत्तीस सागरोपम की स्थिति और महाबल देव की पूरे बत्तीस सागरोपम की स्थिति हुई।

पुनर्जन्म

२४—तए ण ते महब्बलवज्जा छप्पिय देवा जयताओ देवलोगाओ आउक्खएण ठिइक्खएण भवक्खएण अणतर चय चइत्ता इहेव जबुद्दीवे दीवे भारहे वासे विसुद्धपिइमाइवसेसु रायकुलेसु पत्तेय पत्तेय कुमारत्ताए पच्चायाया। तजहा—

पडिबुद्धि इक्खागराया १,
चदच्छाए अगराया २,
सखे कासिराया ३,
रुप्पी कुणालाहिवई ४,
अदीणसत्तू कुरुराया ५,
जियसत्तू पचालाहिवई ६।

तत्पश्चात् महाबल देव के सिवाय छहो देव जयन्त देवलोक से, देव सबन्धी आयु का क्षय होने से, देवलोक मे रहने रूप स्थिति का क्षय होने से और देव सबन्धी भव का क्षय होने से, अन्तर रहित, शरीर का त्याग करके अथवा च्युत होकर इसी जम्बूद्वीप मे, भरत वर्ष (क्षेत्र) मे विशुद्ध माता-पिता के वश वाले राजकुलो मे, अलग-अलग कुमार के रूप मे उत्पन्न हुए। वे इस प्रकार—

(१) प्रतिबुद्धि इक्ष्वाकु वश का अथवा इक्ष्वाकु देश का राजा हुआ। (इक्ष्वाकु देश को कौशल देश भी कहते है, जिसकी राजधानी अयोध्या थी)।
(२) चद्रच्छाय अगदेश का राजा हुआ, जिसकी राजधानी चम्पा थी।
(३) तीसरा शख काशीदेव का राजा हुआ, जिसकी राजधानी वाणारसी नगरी थी।
(४) रुक्मि कुणालदेश का राजा हुआ, जिसकी नगरी श्रावस्ती थी।
(५) अदीनशत्रु कुरुदेश का राजा हुआ जिसकी राजधानी हस्तिनापुर थी।
(६) जितशत्रु पचाल देश का राजा हुआ, जिसकी राजधानी कापिल्यपुर थी।

मल्ली कुमारी का जन्म

२५—तए ण से महब्बले देवे तिहि णाणेहि समग्गे उच्चट्ठाणट्ठिएसु गहेसु, सोमासु दिसासु वितिमिरासु विसुद्धासु, जइएसु सउणेसु, पयाहिणाणुकूलसि भूमिसप्पिसि मारुतसि पवायसि, निप्फन्न-सस्समेइणीयसि कालसि, पमुइयपक्कीलिएसु जणवएसु, अद्धरत्तकालसमयसि अस्सिणीनक्खत्तेण

जोगमुवागएणं, जे से हेमंताणं चउत्थे मासे, अट्ठमे पक्खे फग्गुणसुद्धे, तस्स णं फग्गुणसुद्धस्स चउत्थि पक्खेणं जयंताओ विमाणाओ बत्तीससागरोवमट्ठिइयाओ अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे मिहिलाए रायहाणीए कुंभगस्स रन्नो पभावईए देवीए कुच्छिंसि आहारवक्कंतीए सरीरवक्कंतीए भववक्कंतीए गब्भत्ताए वक्कंते।

तत्पश्चात् वह महाबल देव तीन ज्ञानों—मति, श्रुत और अवधि से युक्त होकर, जब समस्त ग्रह उच्च स्थान पर रहे थे, सभी दिशाएँ सौम्य—उत्पात से रहित, वितिमिर—अन्धकार से रहित और विशुद्ध—धूल आदि से रहित थीं, पक्षियों के शब्द आदि रूप शकुन विजयकारक थे, वायु दक्षिण की ओर चल रहा था और वायु अनुकूल अर्थात् शीतल मंद और सुगंध रूप होकर पृथ्वी पर प्रसार कर रहा था, पृथ्वी का धान्य निष्पन्न हो गया था, इस कारण लोग अत्यन्त हर्षयुक्त होकर क्रीड़ा कर रहे थे, ऐसे समय में अर्द्ध रात्रि के अवसर पर अश्विनी नक्षत्र का चन्द्रमा के साथ योग होने पर हेमन्त ऋतु के चौथे मास, आठवें पक्ष अर्थात् फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष में, चतुर्थी तिथि के पश्चात् भाग—रात्रिभाग में बत्तीस सागरोपम की स्थिति वाले जयन्त नामक विमान से, अनन्तर शरीर त्याग कर इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भरतक्षेत्र में, मिथिला नामक राजधानी में, कुंभ राजा की प्रभावती देवी की कूख में देवगति सम्बन्धी आहार का त्याग करके, वैक्रिय शरीर का त्याग करके एवं देवभव का त्याग करके गर्भ के रूप में उत्पन्न हुआ।

२६—तं रयणिं च णं पभावई देवी तंसि तारिसगंसि वासभवणंसि सयणिज्जंसि जाव¹ अद्धरत्तकालसमयंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी इमेयारूवे उराले कल्लाणे सिवे धन्ने मंगल्ले सस्सिरीए चउद्दसमहासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा। तंजहा—

गय-वसह-सीह-अभिसेय-दाम-ससि-दिणयर-झय-कुंभे।
पउमसर-सागर-विमाण-रयणुच्चय-सिहिं च॥

तए णं सा पभावई देवी जेणेव कुंभए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जाव² भत्तारकहणं, सुमिणपाढगपुच्छा जाव³ विहरइ।

उस रात्रि में प्रभावती देवी उस प्रकार के उस पूर्ववर्णित (प्रथम अध्ययन में वर्णित) वास-भवन में, पूर्ववर्णित शय्या पर यावत् अर्द्ध रात्रि के समय जब न सो रही थी न जाग रही थी—बार-बार ऊँघ रही थी, तब इस प्रकार के प्रधान, कल्याणकारी, शिव-उपद्रवरहित, धन्य, मांगलिक और सश्रीक चौदह महास्वप्न देख कर जागी। वे चौदह स्वप्न इस प्रकार हैं—(१) गज (२) वृषभ (३) सिंह (४) अभिषेक (५) पुष्पमाला (६) चन्द्रमा (७) सूर्य (८) ध्वजा (९) कुम्भ (१०) पद्मयुक्त सरोवर (११) सागर (१२) विमान (१३) रत्नों की राशि (१४) धूमरहित अग्नि।

ये चौदह स्वप्न देखने के पश्चात् प्रभावती रानी जहाँ राजा कुम्भ थे, वहाँ आई। आकर पति से स्वप्नों का वृत्तान्त कहा। कुम्भ राजा ने स्वप्नपाठकों को बुलाकर स्वप्नों का फल पूछा। यावत् प्रभावती देवी हर्षित एवं सन्तुष्ट होकर विचरने लगी।

२७—तए णं तीसे पभावईए देवीए तिण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं इमेयारूवे डोहले

---

१ प्र. अ. १०   २-३ प्रथम अ. मेघ का गर्भसंक्रमण।

पाउब्भूए –'धन्नाओ ण ताओ अम्मयाओ जाओ ण जलथलयभासुरप्पएण दसद्धवण्णण मल्लेण अत्थुय पच्चत्थुयसि सयणिज्जसि सन्निसन्नाओ सण्णिवन्नाओ य विहरति । एग च मह सिरीदामगड पाडल मल्लिय-चपय-असोग पुन्नाग मरुयग दमणग अणोज्ज-कोज्जय-कोरट-पत्तवरपउर परमसुहफास-दरिसणिज्ज महया गधद्धुणि मुयन्त अग्घायमाणीओ डोहल विणेति ।

तत्पश्चात् प्रभावती देवी को तीन मास बराबर पूण हुए तो इस प्रकार का दोहद (मनोरथ) उत्पन्न हुआ—वे माताए धन्य हैं जो जल और थल मे उत्पन्न हुए देदीप्यमान, अनेक पचरगे पुष्पो से आच्छादित और पुन पुन आच्छादित की हुई शय्या पर सुखपूवक वैठी हुई और सुख से सोई हुई विचरती हैं तथा पाटला, मालती, चम्पा, अशोक, पु नाग के फूलो, मरुवा के पत्तो, दमनक के फूलो, निर्दोष शतपत्रिका के फूलो एव कोरट के उत्तम पत्तो से गू थे हुए, परमसुखदायक स्पश वाले, देखने मे सु दर तथा अत्यन्त सौरभ छोडन वाले श्रीदामकाण्ड (सुन्दर माला) के समूह को सू घती हुई अपना दोहद पूण करती हैं ।

२८—तए ण तीसे पभावईए देवीए इमेयारूव डोहल पाउब्भूय पासित्ता अहासन्निहिया वाणमतरा देवा खिप्पामेव जलथलय भासुरप्पभूय दसद्धवन्नमल्ल कु भग्गसो य भारग्गसो य कु भगस्स रण्णो भवणसि साहरति । एग च ण मह सिरिदामगड जाव[1] गधद्धुणि मुयन्त उवणेति ।

तत्पश्चात् प्रभावती देवी को इस प्रकार का दोहद उत्पन्न हुआ देख कर—जान कर समीपवर्ती वाण-व्यन्तर देवो ने शीघ्र ही जल और थल मे उत्पन्न हुए यावत् पाच वण वाले पुष्प, कुम्भो और भारो के प्रमाण मे अर्थात् वहुत से पुष्प कुम्भ राजा के भवन मे लाकर पहुँचा दिये । इसके अतिरिक्त सुखप्रद एव सुगन्ध फैलाता हुआ एक श्रीदामकाण्ड भी लाकर पहुँचा दिया ।

विवेचन—माता की इच्छा की देवो द्वारा इस प्रकार पूर्ति करना गभस्थ तीर्थंकर के असाधारण और सर्वोत्कृष्ट पुण्य का प्रभाव है ।

२९—तए ण सा पभावई देवी जलथलयभासुरप्पभूएण मल्लेण डोहल विणेइ । तए ण सा पभावई देवी पसत्थडोहला जाव विहरइ ।

तए ण सा पभावई देवी नवण्ह मासाण अद्धट्ठमाण य राइंदियाण जे से हेमताण पढमे मासे दोच्चे पक्खे मग्गसिरसुद्धे, तस्स ण मग्गसिरसुद्धस्स एक्कारसीए पुव्वरत्तावरत्तकालसमयसि अस्सिणी नक्खत्तेण जोगमुवागएण उच्चट्ठाणगएसु गहेसु जाव[2] पमुइयपक्कीलिएसु जणवएसु आरोयारोय एगूणवीसइम तित्थयर पयाया ।

तत्पश्चात् प्रभावती देवी ने जल और थल मे उत्पन्न देदीप्यमान पचवर्ण के फूलो की माला से अपना दोहला पूण किया । तव प्रभावती देवी प्रशस्तदोहला होकर विचरने लगी ।

तत्पश्चात् प्रभावती देवी ने नौ माम और साढे सात दिवम पूण होने पर, हेमन्त ऋतु के प्रथम मास मे, दूसरे पक्ष मे अर्थात् मागशीप मास के शुक्ल पक्ष मे, मागशीप शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन, मध्य रात्रि मे, अश्विनी नक्षत्र का चन्द्रमा के साथ योग होने पर, सभी ग्रहो के उच्च स्थान

१ देखें पूव सूत्र २ अष्ट अ २५

पर स्थित होने पर, [सभी दिशाएं सौम्य—उत्पातरहित, वितिमिर-अंधकार से रहित और विशुद्ध—धूलादि से रहित थीं, वायु दक्षिणावर्त्त—अनुकूल था, विजयकारक शकुन हो रहे थे, जब देश के सभी लोग प्रमुदित होकर क्रीडा कर रहे थे,] ऐसे समय में, आरोग्य-आरोग्यपूर्वक अर्थात् बिना किसी बाधा-पीडा के उन्नीसवें तीर्थंकर को जन्म दिया।

३०—तेणं कालेणं तेणं समएणं अहोलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीओ महयरीयाओ जहा जंबुद्दीवपन्नत्तीए जम्मणं सव्वं भाणियव्वं। नवरं मिहिलाए नयरीए कुंभरायस्स भवणंसि पभावईए देवीए अभिलावो संजोएयव्वो जाव नंदीसरवरे दीवे महिमा।

उस काल और उस समय में अधोलोक में बसने वाली महत्तरिका दिशाकुमारिकाएं आईं इत्यादि जन्म का जो वर्णन जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में आया है, वह सब यहां समझ लेना चाहिए। विशेषता यह है कि मिथिला नगरी में, कुम्भ राजा के भवन में, प्रभावती देवी का आलापक कहना चाहिए। यावत् देवों ने जन्माभिषेक करके नन्दीश्वर द्वीप में जाकर (अठाई) महोत्सव किया।

३१—तए णं कुंभए राया बहूहिं भवणवइ-वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएहिं देवेहिं तित्थयरजम्मणाभिसेयं जायकम्मं जाव नामकरणं, जम्हा णं अम्हे इमीए दारियाए माउगब्भंसि वक्कममाणंसि मल्लसयणिज्जंसि डोहले विणीए, तं होउ णं णामेणं मल्ली, नामं ठवेइ, जहा महाबले नाम जाव परिवड्ढिया।

[सा वड्ढई भगवई, दियालोयचुया अणोवमसिरीया।
दासीदासपरिवुडा, परिकिन्ना पीढमद्देहिं ॥ १ ॥
असियसिरया सुनयणा, बिंबोट्ठी धवलदंतपंतीया।
वरकमलगब्भगोरी फुल्लुप्पलगंधनीसासा ॥२॥]

तत्पश्चात् कुम्भ राजा ने एवं बहुत से भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों ने तीर्थंकर का जन्माभिषेक किया, फिर जातकर्म आदि संस्कार किए, यावत् नामकरण किया—क्योंकि जब हमारी यह पुत्री माता के गर्भ में आई थी, तब माल्य (पुष्प) की शय्या में सोने का दोहद उत्पन्न हुआ था और वह पूर्ण हुआ था, अतएव इसका नाम 'मल्ली' हो। ऐसा कहकर उसका मल्ली नाम रखा। जैसे भगवतीसूत्र में महाबल नाम रखने का वर्णन है, वैसा ही यहां जानना चाहिए। यावत् मल्ली कुमारी क्रमशः वृद्धि को प्राप्त हुई।

[देवलोक से च्युत हुई वह भगवती मल्ली वृद्धि को प्राप्त हुई तो अनुपम शोभा से सम्पन्न हो गई, दासियों और दासों से परिवृत हुई और पीठमर्दों (सखाओं) से घिरी रहने लगी। उनके मस्तक के केश काले थे, नयन सुन्दर थे, होठ बिम्बफल के समान लाल थे, दांतों की कतार श्वेत थी और शरीर श्रेष्ठ कमल के गर्भ के समान गौरवर्ण वाला था। उसका श्वासोच्छ्वास विकस्वर कमल के समान गंध वाला था।]

विवेचन—टीकाकार का कथन है कि प्रायः स्त्रियों के पीठमर्द नहीं होते। अतः यह विशेषण यहां सम्भव नहीं। या फिर तीर्थंकर का चरित लोकोत्तर होता है, अतः असम्भव भी नहीं समझना चाहिए।

कमल का गभ गौरवर्ण होता है, मल्ली का वर्ण प्रियगु के समान श्याम था। अत यह विशेषण भी उपयुक्त प्रतीत नही होता। वस्तुत ये दोनो गाथाए प्रक्षिप्त हैं। इसी कारण इनमे उल्लिखित सब विशेषण मल्ली मे घटित नही होते। किन्ही-किन्ही प्रतियो मे ये विशेषण पाये भी नही जाते। अथवा 'वरकमलगर्भ' का अथ कस्तूरी समभना चाहिए। कस्तूरी के वण की उपमा घटित हो सकती है, किन्तु भाषा-शास्त्र की दृष्टि से यह अथ चिन्तनीय है।

३२—तए ण सा मल्ली विदेहवररायकन्ना उम्मुक्कबालभावा जाव [विण्णयपरिणयमेत्ता जोव्वणमणुपत्ता] रुवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य अईव अईव उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा जाया यावि होत्था।

तत्पश्चात् विदेहराज की वह श्रेष्ठ कन्या (मल्ली) बाल्यावस्था से मुक्त हुई यावत (समभदार हुई, यौवनवय को प्राप्त हुई) तथा रूप, यौवन और लावण्य से अतीव-अतीव उत्कृष्ट और उत्कृष्ट शरीर वाली हो गई।

३३—तए ण सा मल्ली विदेहवररायकन्ना देसूणवाससयजाया ते छप्पि य रायाणो विपुलेण ओहिणा आभोएमाणी आभोएमाणी विहरइ, तजहा—पडिबुद्धि जाव [इक्खगराय, चदच्छाय अगराय सख कासिराय रुप्पि कुणालाहिवइ अदीणसत्तु कुरुराय] जियसत्तु पचालाहिवइ।

तत्पश्चात् विदेहराज की वह उत्तम कन्या मल्ली कुछ कम सौ वर्ष की हो गई, तब वह उन (पूव के बालमित्र) छहो राजाओ को अपने विपुल अवधिज्ञान से जानती-देखती हुई रहने लगी। वे इस प्रकार—प्रतिबुद्धि यावत् [इक्ष्वाकुराज, चन्द्रच्छाय अगराज, शख काशीराज, रुक्मि कुणालराज, अदीनशत्रु कुरुराज] तथा पचालदेश के राजा जितशत्रु को बार-बार देखती हुई रहने लगी।

मोहनगृह का निर्माण

३४—तए ण सा मल्ली विदेहवररायकन्ना कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ सद्दावित्ता एव वयासी—'गच्छह ण देवाणुप्पिया! असोगवणियाए एग मह मोहणघर करेह अणेयखमसयसन्निविट्ठ। तत्थ ण मोहणघरस्स बहुमज्झदेसभाए छ गब्भघरए करेह। तेसि ण गब्भघराण बहुमज्झदेसभाए जालघरय करेह। तस्स ण जालघरयस्स बहुमज्झदेसभाए मणिपेढिय करेह।' ते वि तहेव जाव पच्चप्पिणति।

तत्पश्चात् विदेहराज की उत्तम कन्या मल्ली ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया—बुलाकर कहा—'देवानुप्रियो! जाओ और अशोकवाटिका मे एक बडा मोहनगृह (मोह उत्पन्न करने वाला अतिशय रमणीय घर) बनाओ, जो अनेक सैकडा खम्भो से बना हुआ हो। उस मोहनगृह के एकदम मध्य भाग मे छह गभगृह (कमरे) बनाओ। उन छहो गभगृहो के ठीक बीच मे एक जालगृह (जिसके चारो ओर जाली लगी हो और उसके भीतर की वस्तु बाहर वाले देख सकते हो ऐसा घर) बनाओ। उस जालगृह के मध्य मे एक मणिमय पीठिका बनाओ।' यह सुनकर कौटुम्बिक पुरुषो ने उसी प्रकार सर्व निर्माण कर आज्ञा वापिस सौंपी।

३५—तए ण मल्ली मणिपेढियाए उवरि अप्पणो सरिसिय सरित्तय सरिसव्वय सरिस-लावन्न-जोव्वण-गुणोववेय कणगमइ मत्थयच्छिड्ड पउमुप्पलप्पिहाण पडिम करेइ, करित्ता ज विपुल

पर स्थित होने पर, [सभी दिशाएं सौम्य—उत्पातरहित, वितिमिर-अन्धकार से रहित और विशुद्ध—धूलादि से रहित थीं, वायु दक्षिणावर्त्त—अनुकूल था, विजयकारक शकुन हो रहे थे, जब देश के सभी लोग प्रमुदित होकर क्रीडा कर रहे थे,] ऐसे समय में, आरोग्य-आरोग्यपूर्वक अर्थात् बिना किसी बाधा-पीडा के उन्नीसवें तीर्थंकर को जन्म दिया।

३०—तेणं कालेणं तेणं समएणं अहोलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीओ महयरीयाओ जहा जंबुद्दीवपन्नत्तीए जम्मणं सव्वं भाणियव्वं। नवरं मिहिलाए नयरीए कुंभरायस्स भवणंसि पभावईए देवीए अभिलावो संजोएव्वो जाव नंदीसरवरे दीवे महिमा।

उस काल और उस समय में अधोलोक में बसने वाली महत्तरिका दिशा कुमारिकाएं आई इत्यादि जन्म का जो वर्णन जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में आया है, वह सब यहां समझ लेना चाहिए। विशेषता यह है कि मिथिला नगरी में, कुम्भ राजा के भवन में, प्रभावती देवी का आलापक कहना—नाम कहना चाहिए। यावत् देवों ने जन्माभिषेक करके नन्दीश्वर द्वीप में जाकर (अठाई) महोत्सव किया।

३१—तया णं कुंभए राया बहूहिं भवणवइवाण वितर-जोइसिय वेमाणिएहिं देवेहिं तित्थयरजम्मणाभिसेयं जायकम्मं जाव नामकरणं, जम्हा णं अम्हे इमीए दारियाए माउगब्भंसि वक्कममाणंसि मल्लसयणिज्जंसि डोहले विणीए, तं होउ णं णामेणं मल्ली, नामं ठवेइ, जहा महाबले नाम जाव परिवड्ढिया।

[सा वड्ढई भगवई, दियालोयचुया अणोवमसिरीया।
दासीदासपरिवुडा, परिकिन्ना पीढमद्देहिं ॥ १ ॥
असियसिरया सुनयणा, बिंबोट्ठी धवलदंतपंतीया।
वरकमलगब्भगोरी फुल्लुप्पलगंधनीसासा ॥२॥]

तत्पश्चात् कुम्भ राजा ने एवं बहुत-से भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों ने तीर्थंकर का जन्माभिषेक किया, फिर जातकर्म आदि संस्कार किये, यावत् नामकरण किया—क्योंकि जब हमारी यह पुत्री माता के गर्भ में आई थी, तब माल्य (पुष्प) की शय्या में सोने का दोहद उत्पन्न हुआ था और वह पूर्ण हुआ था, अतएव इसका नाम 'मल्ली' हो। ऐसा कहकर उसका मल्ली नाम रखा। जैसे भगवतीसूत्र में महाबल नाम रखने का वर्णन है, वैसा ही यहां जानना चाहिए। यावत् मल्ली कुमारी क्रमशः वृद्धि को प्राप्त हुई।

[देवलोक से च्युत हुई वह भगवती मल्ली वृद्धि को प्राप्त हुई तो अनुपम शोभा से सम्पन्न हो गई, दासियों और दासों से परिवृत हुई और पीठमर्दों (सखाओं) से घिरी रहने लगी। उनके मस्तक के केश काले थे, नयन सुन्दर थे, होठ बिम्बफल के समान लाल थे, दांतों की कतार श्वेत थी और शरीर श्रेष्ठ कमल के गर्भ के समान गौरवर्ण वाला था। उसका श्वासोच्छ्वास विकस्वर कमल के समान गंध वाला था।]

विवेचन—टीकाकार का कथन है कि प्रायः स्त्रियों के पीठमर्दक नहीं होते, अतः यह विशेषण यहां सम्भव नहीं। या फिर तीर्थंकर का चरित्र लोकोत्तर होता है, अतः असम्भव भी नहीं समझना चाहिए।

कमल का गभ गौरवर्ण होता है, मल्ली का वर्ण प्रियगु के समान श्याम था। अत यह विशेषण भी उपयुक्त प्रतीत नही होता। वस्तुत ये दोनो गाथाए प्रक्षिप्त हैं। इसी कारण इनमे उल्लिखित सब विशेषण मल्ली मे घटित नही होते। किन्ही-किन्ही प्रतियो मे ये विशेषण पाये भी नही जाते। अथवा 'वरकमलगभ' का ग्रथ कस्तूरी समझना चाहिए। कस्तूरी के वर्ण की उपमा घटित हो सकती है, किन्तु भाषा-शास्त्र की दृष्टि से यह अर्थ चिन्तनीय है।

३२—तए ण सा मल्ली विदेहवररायकन्ना उम्मुक्कबालभावा जाव [विण्णयपरिणयमेत्ता जोव्वणमणुपत्ता] रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य अईव अईव उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा जाया यावि होत्था।

तत्पश्चात् विदेहराज की वह श्रेष्ठ कन्या (मल्ली) बाल्यावस्था से मुक्त हुई यावत (समझदार हुई, यौवनवय को प्राप्त हुई) तथा रूप, यौवन और लावण्य से अतीव-अतीव उत्कृष्ट और उत्कृष्ट शरीर वाली हो गई।

३३—तए ण सा मल्ली विदेहवररायकन्ना देसूणवाससयजाया ते छप्पि य रायाणो विपुलेण ओहिणा आभोएमाणी आभोएमाणी विहरइ, तजहा—पडिबुद्धि जाव [इक्खगराय, चदच्छाय अगराय सख कासिराय रुप्पि कुणालाहिवइ अदीणसत्तु कुरुराय] जियसत्तु पचालाहिवइ।

तत्पश्चात् विदेहराज की वह उत्तम कन्या मल्ली कुछ कम सौ वर्ष की हो गई, तब वह उन (पूर्व के बालमित्र) छहो राजाओ को अपने विपुल अवधिज्ञान से जानती-देखती हुई रहने लगी। वे इस प्रकार—प्रतिबुद्धि यावत् [इक्ष्वाकुराज, चन्द्रच्छाय अगराज, शख काशीराज, रुक्मि कुणालराज, अदीनशत्रु कुरुराज] तथा पचालदेश के राजा जितशत्रु को बार-बार देखती हुई रहने लगी।

मोहनगृह का निर्माण

३४—तए ण सा मल्ली विदेहवररायकन्ना कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ सद्दावित्ता एव वयासी—'गच्छह ण देवाणुप्पिया! असोगवणियाए एग मह मोहणघर करेह अणेयखभसयसन्निविट्ठ। तत्थ ण मोहणघरस्स बहुमज्झदेसभाए छ गब्भघरए करेह। तेसि ण गब्भघराण बहुमज्झदेसभाए जालघरय करेह। तस्स ण जालघरयस्स बहुमज्झदेसभाए मणिपेढिय करेह।' ते वि तहेव जाव पच्चप्पिणति।

तत्पश्चात् विदेहराज की उत्तम कन्या मल्ली ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया—बुलाकर कहा—'देवानुप्रियो! जाओ और अशोकवाटिका मे एक बडा मोहनगृह (मोह उत्पन्न करने वाला अतिशय रमणीय घर) बनाओ, जो अनेक सैकडो खम्भो से बना हुआ हो। उस मोहनगृह के एकदम मध्य भाग मे छह गर्भगृह (कमरे) बनाओ। उन छहो गर्भगृहो के ठीक बीच मे एक जालगृह (जिसके चारो ओर जाली लगी हो और उसके भीतर की वस्तु बाहर वाले देख सकते हो ऐसा घर) बनाओ। उस जालगृह के मध्य मे एक मणिमय पीठिका बनाओ।' यह सुनकर कौटुम्बिक पुरुषो ने उसी प्रकार सब निर्माण कर आज्ञा वापिस सौंपी।

३५—तए ण मल्ली मणिपेढियाए उवरि अप्पणो सरिसिय सरित्तय सरिसव्वय सरिस-लावन्न-जोव्वण-गुणोववेय कणगमइ मत्थयच्छिड्ड पउमुप्पलप्पिहाण पडिम करेइ, करित्ता ज विपुल

असण पाण खाइम साइम आहारेइ, तओ मणुन्नाओ असण पाण-खाइम-साइमाओ कल्लाकल्लि एगमेग पिंड गहाय तीसे कणगमईए मत्थयच्छिड्डाए जाव पडिमाए मत्थयसि पक्खिवमाणी विहरइ ।

तत्पश्चात उस मल्ली कुमारी ने मणिपीठिका के ऊपर अपनी जसी, अपनी जैसी त्वचावाली, अपनी सरीखी उम्र की दिखाई देने वाली, समान लावण्य, यौवन और गुणो से युक्त एक सुवर्ण की प्रतिमा बनवाई । उस प्रतिमा के मस्तक पर छिद्र था और उस पर कमल का ढक्कन था । इस प्रकार की प्रतिमा बनवा कर जो विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य वह खाती थी, उस मनोज्ञ अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य मे से प्रतिदिन एक-एक पिण्ड (कवल) लेकर उस स्वणमयी, मस्तक मे छेद वाली यावत् प्रतिमा मे, मस्तक मे से डालती रहती थी ।

३६—तए ण तीसे कणगमईए जाव मत्थयछिड्डाए पडिमाए एगमेगसि पिंडे पक्खिप्पमाणे पक्खिप्पमाणे पउमुप्पलपिहाण पिहेइ । तओ गधे पाउब्भवइ, से जहानामए अहिमडेइ वा जाव [गोमडे इ वा, सुणहमडे इ वा, मज्जारमडे इ वा, मणुस्समडे इ वा, महिसमडे इ वा, मूसगमडे इ वा, आसमडे इ वा, हत्थिमडे इ वा, सीहमडे इ वा, वग्घमडे इ वा, विगमडे इ वा, दीविगमडे इ वा] मय कुहिय विणट्ठ दुरभिवण्ण-दुब्भिगधे किमिजालाउलससत्ते असुइ-विलीण विगय वीभच्छदरिसणिज्जे भवेयारूवे सिया ?

नो इणट्ठे समट्ठे । एत्तो अणिट्ठतराए चेव अकततराए चेव अप्पियतराए चेव अमणुण्णतराए चेव अमणामतराए ।

तत्पश्चात् उस स्वणमयी यावत् मस्तक मे छिद्र वाली प्रतिमा मे एक एक पिण्ड डाल डाल कर कमल का ढक्कन ढँक देती थी । इससे उसमे ऐसी दुर्गन्ध उत्पन्न होती थी जैसे सर्प के मृत कलेवर की हो, यावत् [गाय के मृत कलेवर, कुत्ते के मृत कलेवर, मार्जार (बिलाव) के मृत कलेवर, मनुष्य के मृत कलेवर, महिष के मृत कलेवर, इसी प्रकार मूषक (चूहे), अश्व, हस्ती, सिह, व्याघ्र, वृक (भेडिया)या द्वीपिका के मृत कलेवर की हो] और वह भी मरने के पश्चात् सडे-गले, दुवर्ण एव दुर्गन्ध वाले, कीडो के समूह जिसमे बिलबिला रहे हो, जो अशुचिमय, विकृत तथा देखने मे वीभत्स हो । क्या उस प्रतिमा मे से ऐसी—मृत कलेवर की गन्ध के समान दुर्गन्ध निकलती थी ?

नही, यह अर्थ समर्थ नही, अर्थात् वह दुर्गन्ध ऐसी नही थी वरन् उससे भी अधिक अनिष्ट, उससे भी अधिक अकमनीय, उससे भी अधिक अप्रिय, उससे भी अधिक अमनोरम और उससे भी अधिक अनिष्ट गन्ध उत्पन्न होती थी ।

राजा प्रतिबुद्धि

३७—तेण कालेण तेण समएण कोसले नाम जणवए होत्था । तत्थ ण सागेए नाम नयरे होत्था । तस्स ण उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एत्थ ण महं एगे णागघरए होत्था दिव्वे सच्चे सच्चोवाए सनिहियपाडिहेरे ।

उस काल और उस समय मे कौशल नामक देश था । उसमे साकेत नामक नगर था । उस नगर से उत्तरपूर्व (ईशान) दिशा मे एक नागगृह (नागदेव की प्रतिमा से युक्त चैत्य) था । वह प्रधान

था, सत्य था अर्थात् नागदेव का कथन सत्य सिद्ध होता था, उसकी सेवा सफल होती थी और वह देवाधिष्ठित था।

३८—तत्थ ण नयरे पडिबुद्धी नाम इक्खागराया परिवसइ, तस्स पउमावई देवी, सुबुद्धी अमच्चे साम-दंड भेद उवप्पयाण नीतिसुपउत्त-णयविहण्णू जाव[1] रज्जधुराचितए होत्था।

उस साकेत नगर मे प्रतिबुद्धि नामक इक्ष्वाकुवश का राजा निवास करता था। पद्मावती उसकी पटरानी थी, सुबुद्धि अमात्य था, जो साम, दड, भेद और उपप्रदान नीतियो मे कुशल था यावत् राज्यधुरा की चिन्ता करने वाला था, राज्य का सचालन करता था।

३९—तए ण पउमावईए अन्नया कयाइ नागजन्नए यावि होत्था। तए ण सा पउमावई नागजन्नमुवट्ठियं जाणित्ता जेणेव पडिबुद्धी राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल० जाव [परिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएण विजएण बद्धावेइ] वद्धावेत्ता एव वयासी—'एव खलु सामी ! मम कल्लं नागजन्नए यावि भविस्सइ, तं इच्छामि ण सामी ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया समाणी नागजन्नयं गमित्तए, तुब्भे वि ण सामी ! मम नागजन्नंसि समोसरह।

किसी समय एक बार पद्मावती देवी की नागपूजा का उत्सव आया। तब पद्मावती देवी नागपूजा का उत्सव आया जानकर प्रतिबुद्धि राजा के पास गई। पास जाकर दोनो हाथ जोडकर दसो नखो को एकत्र करके, मस्तक पर अजलि करके इस प्रकार बोली—'स्वामिन् ! कल मुझे नागपूजा करनी है। अतएव आपकी अनुमति पाकर मैं नागपूजा करने के लिए जाना चाहती हूँ। स्वामिन् ! आप भी मेरी नागपूजा मे पधारो, ऐसी मेरी इच्छा है।'

४०—तए ण पडिबुद्धी पउमावईए देवीए एयमट्ठं पडिसुणेइ। तए ण पउमावई पडिबुद्धिणा रण्णा अब्भणुन्नाया हट्ठतुट्ठा कोडुबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'एव खलु देवाणुप्पिया ! मम कल्लं नागजन्नए भविस्सइ, तं तुब्भे मालागारे सद्दावेह, सद्दावित्ता एव वयह—

तब प्रतिबुद्धि राजा ने पद्मावती देवी की यह बात स्वीकार की। पद्मावती देवी राजा की अनुमति पाकर हर्षित और सन्तुष्ट हुई। उसने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और कहा—'देवानुप्रियो ! कल यहा मेरे नागपूजा होगी, सो तुम मालाकारो को बुलाओ और उन्हें इस प्रकार कहो—

४१—'एव खलु पउमावईए देवीए कल्लं नागजन्नए भविस्सइ, तं तुब्भे ण देवाणुप्पिया ! जलथलयभासुरप्पभूयं दसद्धवन्नं मल्लं नागघरयंसि साहरह, एगं च णं महं सिरिदामगंडं उवणेह। तए ण जलथलयभासुरप्पभूएण दसद्धवन्नेण मल्लेण णाणाविहभत्तिसुविरइयं करेह। तंसि भत्तिंसि हंस-मिय-मऊर-कोंच-सारस-चक्कवाय-मयणसाल-कोइलकुलोववेयं ईहामियं जाव[2] भत्तिचित्तं महग्घं महरिहं विपुलं पुप्फमंडवं विरएह। तस्स ण बहुमज्झदेसभाए एगं महं सिरिदामगंडं जाव[3] गंधद्धुणिं मुयंतं उल्लोयंसि ओलंबेह। ओलंबित्ता पउमावइं देविं पडिवालेमाणा पडिवालेमाणा चिट्ठह।' तए ण ते कोडुंबिया जाव चिट्ठंति।

---

१ प्रथम अ १५ २ प्र अ ३१ ३ अष्टम अ १७

'निश्चय ही पद्मावती देवी के यहाँ कल नागपूजा होगी । अतएव हे देवानुप्रियो ! तुम जल और स्थल मे उत्पन्न हुए पाचो रगो के ताजा फूल नागगृह मे ले जाओ और एक श्रीदामकाण्ड (शोभित मालाओ का समूह) बना कर लाओ । तत्पश्चात् जल और स्थल मे उत्पन्न होने वाले पाच वर्णों के फूलो से विविध प्रकार की रचना करके उसे सजाओ । उस रचना मे हस, मृग, मयूर, क्रौंच, सारस, चक्रवाक, मदनशाल (मैना) और कोकिलो के समूह से युक्त तथा ईहामृग, वृषभ, तुरग आदि की रचना वाले चित्र बनाकर महामूल्यवान्, महान् जनो के योग्य और विस्तार वाला एक पुष्पमडप बनाओ । उस पुष्पमडप के मध्य भाग मे एक महान् और गध के समूह को छोडने वाला श्रीदामकाण्ड उल्लोच (छत) पर लटकाओ । लटकाकर पद्मावती देवी की राह देखते देखते ठहरो ।' तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष इसी प्रकार कार्य करके यावत पद्मावती की राह देखते हुए नागगृह मे ठहरते है ।

४२—तए ण सा पउमावई देवी कल्लं[1] कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सागेय नगर सब्भितरबाहिरिय आसित्त-सम्मज्जियोवलित्त जाव[1] पच्चप्पिणति ।

तत्पश्चात् पद्मावती देवी ने दूसरे दिन प्रात काल सूर्योदय होने पर कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाकर कहा—हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही साकेत नगर मे भीतर और बाहर पानी सीचो, सफाई करो और लिपाई करो । यावत् (सुगधित करो, सुगध की गोली जैसा बना दो ।) वे कौटुम्बिक पुरुष उसी प्रकार कार्य करके आज्ञा वापिस लौटाते हैं ।

४३—तए ण सा पउमावई देवी दोच्च पि कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ सद्दावित्ता एव वयासी—'खिप्पामेव देवाणुप्पिया ! लहुकरणजुत्त जाव[3] जुत्तामेव उवट्ठवेह ।' तए ण ते वि तहेव उवट्ठवेंति ।

तए ण सा पउमावई अतो अतेउरंसि ण्हाया जा[4] धम्मिय जाण दुरूढा ।

तत्पश्चात् पद्मावती देवी ने दूसरी बार कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया । बुलाकर इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो ! शीघ्र ही लघुकरण से युक्त (द्रुतगामी अश्व वाले) यावत् रथ को जोडकर उपस्थित करो ।' तब वे भी उसी प्रकार रथ उपस्थित करते हैं ।

तत्पश्चात् पद्मावती देवी अन्त पुर के अन्दर स्नान करके यावत् [वलिकर्म, कौतुक, मगल], प्रायश्चित्त करके धार्मिक (धर्मकार्य के लिए काम मे आने वाले) यान पर अर्थात रथ पर आरूढ हुई ।

४४—तए ण सा पउमावई नियगपरिवालसपरिवुडा सागेय नगर मज्झमज्झेण णिज्जइ, णिज्जित्ता जेणेव पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ । उवागच्छित्ता पुक्खरिणि ओगाहेइ । ओगाहित्ता जलमज्जण जाव [करेइ, करित्ता जलकीड करेइ, करेत्ता ण्हाया कयबलिकम्मा] परम-सुइभूया उल्लपडसाडया जाइ तत्थ उप्पलाइ जाव [पउमाइ कुमुयाइ णलिणाइ सुभगाइ सोगधियाइ पोडरीयाइ महापोडरीयाइ सयपत्ताइ सहस्सपत्ताइ ताइ] गेण्हइ । गेण्हित्ता जेणेव नागघरए तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

---

१ प्र अ १४ २ प्र अ ७७ ३ उपासकदशा १ ४ प्र अ ८०

तत्पश्चात् पद्मावती देवी अपने परिवार से परिवृत होकर साकेत नगर के बीच में होकर निकली। निकलकर जहां पुष्करिणी थी वहां आई। आकर पुष्करिणी में प्रवेश किया। प्रवेश करके यावत् [जलक्रीडा की, स्नान किया, बलिकर्म किया और] अत्यन्त शुचि होकर गीली साड़ी पहनकर वहां जो कमल, (कुमुद, नलिन, सुभग, सौगंधिक, पुण्डरीक, महापुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र) आदि विभिन्न जाति के कमल) थे, उन्हें यावत् ग्रहण किया। ग्रहण करके जहां नागगृह था, वहाँ जाने के लिए प्रस्थान किया।

४५—तए णं पउमावईं दासचेडीओ बहूओ पुप्फपडलगहत्थगयाओ धूवकडुच्छुगहत्थगयाओ पिट्ठओ समणुगच्छंति।

तए णं पउमावई सव्विड्ढीए जेणेव णागघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता नागघरयं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता लोमहत्थगं जाव[1] धूवं डहइ, डहित्ता पडिबुद्धिं रायं पडिवालेमाणी पडिवालेमाणी चिट्ठइ।

तत्पश्चात् पद्मावती देवी की बहुत-सी दास-चेटियां (दासियां) फूलों की छबड़ियाँ तथा धूप की कुडछियां हाथ में लेकर पीछे-पीछे चलने लगी।

तत्पश्चात् पद्मावती देवी सर्व ऋद्धि के साथ—पूरे ठाठ के साथ—जहाँ नागगृह था, वहाँ आई। आकर नागगृह में प्रविष्ट हुई। प्रविष्ट होकर रोमहस्त (पीछी) लेकर प्रतिमा का प्रमार्जन किया, यावत् धूप खेई। धूप खेकर प्रतिबुद्धि राजा की प्रतीक्षा करती हुई वहीं ठहरी।

४६—तए णं पडिबुद्धी राया ण्हाए हत्थिखंधवरगए सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं वीइज्जमाणे हय गय रह-जोह महयाभडचडगरपहकरेहिं साकेयं नगरं मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव णागघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थिखंधाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता आलोए पणामं करेइ, करित्ता पुप्फमंडवं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता पासइ तं एगं महं सिरिदामगंडं।

तत्पश्चात् प्रतिबुद्धि राजा स्नान करके श्रेष्ठ हाथी के स्कंध पर आसीन हुआ। कोरंट के फूलों सहित अन्य पुष्पों की मालाएँ जिसमें लपेटी हुई थीं, ऐसा छत्र उसके मस्तक पर धारण किया गया। यावत् उत्तम श्वेत चामर ढोरे जाने लगे। उसके आगे-आगे विशाल घोड़े, हाथी, रथ और पैदल योद्धा—यह चतुरंगी सेना चली। सुभटों के बड़े समूह के समूह चले। वह साकेत नगर के मध्य भाग में होकर निकला। निकल कर जहाँ नागगृह था, वहाँ आया। आकर हाथी के स्कंध से नीचे उतरा। उतरकर प्रतिमा पर दृष्टि पड़ते ही उसे प्रणाम किया। प्रणाम करके पुष्प-मंडप में प्रवेश किया। प्रवेश करके वहां उसने एक महान् श्रीदामकाण्ड देखा।

४७—तए णं पडिबुद्धी तं सिरिदामगंडं सुइरं कालं निरिक्खइ, निरिक्खित्ता तंसि सिरिदामगंडंसि जायविम्हए सुबुद्धिं अमच्चं एवं वयासी—

'तुमं णं देवाणुप्पिया! मम दोच्चेणं बहूणि गामागर० जाव सन्निवेसाइं आहिंडसि, बहूणि

1. द्वि. अ. १५

राईसर जाव[1] गिहाइ अणुपविससि, त अत्थि ण तुमे कहिंचि एरिसए सिरिदामगडे दिट्ठपुव्वे, जारिसए ण इमे पउमावईए देवीए सिरिदामगडे ?

तत्पश्चात प्रतिवुद्धि राजा उस श्रीदामकाण्ड को बहुत देर तक देखता रहा। देखकर उस श्रीदामकाण्ड के विषय मे उसे आश्चर्य उत्पन्न हुआ—उसे देखकर चकित रह गया। उसने सुबुद्धि अमात्य से इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रिय ! तुम मेरे दौत्य कार्य से—दूत के रूप मे बहुतेरे ग्रामो, आकरो, नगरो यावत सन्निवेशो आदि मे घूमते हो और बहुत से राजाओ एव ईश्वरो [तलवर, माडविक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति] आदि के गृहो मे प्रवेश करते हो, तो क्या तुमने ऐसा सुदर श्रीदामकाण्ड पहले कही देखा है जैसा पद्मावती देवी का यह श्रीदामकाण्ड है ?

४८—तए ण सुबुद्धी पडिबुद्धि राय एव वयासी—एव खलु सामी ! अह अन्नया कयाइ तुब्भ दोच्चेण मिहिल रायहाणि गए, तत्थ ण मए कुम्भगस्स रण्णो धूयाए पभावईए देवीए अत्तयाए मल्लीए विदेहवररायकन्नाए सवच्छरपडिलेहणगसि दिव्वे सिरिदामगडे दिट्ठपुव्वे। तस्स ण सिरिदामगडस्स इमे पउमावईए सिरिदामगडे सयसहस्सइम पि कल न अग्घइ।

तब सुबुद्धि अमात्य ने प्रतिवुद्धि राजा से कहा—स्वामिन् ! मैं एक बार किसी समय आपके दौत्यकार्य से मिथिला राजधानी गया था। वहा मैने कुम्भ राजा की पुत्री और प्रभावती देवी की आत्मजा, विदेह की उत्तम राजकुमारी मल्ली के सवत्सर प्रतिलेखन उत्सव (जन्मगाठ) के महोत्सव के समय दिव्य श्रीदामकाण्ड देखा था। उस श्रीदामकाण्ड के सामने पद्मावती देवी का यह श्रीदामकाण्ड शतसहस्र—लाखवा अश भी नही पाता—लाखवें अश की भी बराबरी नही कर सकता।

४९—तए ण पडिबुद्धी राया सुबुद्धि अमच्च एव वयासी—केरिसिया ण देवाणुप्पिया ! मल्ली विदेहवररायकन्ना जस्स ण सवच्छरपडिलेहणयसि सिरिदामगडस्स पउमावईए देवीए सिरिदामगडे सयसहस्सइम पि कल न अग्घइ ?

तए ण सुबुद्धी अमच्चे पडिबुद्धि इक्खागुराय एव वयासी—एव खलु सामी ! मल्ली विदेहवररायकन्नगा सुपइट्ठियकुम्मुन्नयचारुचरणा, वन्नओ।

तत्पश्चात् प्रतिवुद्धि राजा ने सुबुद्धि मत्री से इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय ! विदेह की श्रेष्ठ राजकुमारी मल्ली कैसी है ? जिसकी जन्मगाठ के उत्सव मे बनाये गये श्रीदामकाण्ड के सामने पद्मावती देवी का यह श्रीदामकाण्ड लाखवा अश भी नही पाता ?

तब सुबुद्धि मत्री ने इक्ष्वाकुराज प्रतिवुद्धि से कहा—'स्वामिन ! विदेह की श्रेष्ठ राजकुमारी मल्ली सुप्रतिष्ठित और कछुए के समान उन्नत एव सुन्दर चरण वाली है इत्यादि वर्णन जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति आदि के अनुसार जान लेना चाहिए।

५०—तए ण पडिबुद्धी राया सुबुद्धिस्स अमच्चस्स अतिए एयमट्ठ सोच्चा निसम्म सिरिदा

[1] पञ्चम अ ४

मगडजणियहासे दूय सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—गच्छाहि ण तुम देवाणुप्पिया ! मिहिल रायहाणि, तत्थ ण कुम्भगस्स रण्णो धूय पउमावईए देवीए अत्तय मल्लि विदेहवररायकण्णग मम भारियत्ताए वरेहि, जइ वि ण सा सय रज्जसु का ।

तत्पश्चात् प्रतिबुद्धि राजा ने सुबुद्धि अमात्य से यह अथ (बात) सुनकर और हृदय मे धारण करके और श्रीदामकाण्ड की बात से हर्षित (प्रमुदित-अनुरक्त) होकर दूत को बुलाया । बुलाकर इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय ! तुम मिथिला राजधानी जाओ । वहा कुम्भ राजा की पुत्री, पद्मावती देवी की आत्मजा और विदेह की प्रधान राजकुमारी मल्ली की मेरी पत्नी के रूप मे मगनी करो । फिर भले ही उसके लिए सारा राज्य शुल्क—मूल्य रूप मे देना पडे ।

विवेचन—इस पाठ से आभास होता है कि प्राचीन काल मे कन्या ग्रहण करने के लिए शुल्क देना पडता था । अन्य स्थलो मे भी अनेक वार ऐसा ही पाठ आता है । यह कन्याविक्रय का ही एक रूप था जो हमारे समाज मे कुछ वर्षो पूव तक प्रचलित था । अव पलडा पलट गया है और कन्याविक्रय के वदले वर-विक्रय की घृणित प्रथा चल पडी है । या यह एक सामाजिक प्रथा है किन्तु धार्मिक जीवन पर इसका गभीर प्रभाव पडता है । साधारण आय से भी मनुष्य अपनी उदरपूर्ति कर सकता है और तन ढक सकता है । उसके लिए अनीति और अधम से अर्थोपाजन की आवश्यकता नही, किन्तु वर खरीदने अर्थात् विवश होकर दहेज देने के लिए अनीति और अधम का आचरण करना पडता है । इस प्रकार इस कुप्रथा के कारण अनीति और अधम की समाज मे वृद्धि होती है ।

५१—तए ण से दूए पडिबुद्धिणा रण्णा एव वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता जेणेव सए गिहे, जेणेव चाउग्घटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घट आसरह पडिकप्पावेइ, पडिकप्पावित्ता दुरूढे जाव हय-गय-[रह पवरजोहकलियाए चाउरगिणीए सेणाए सद्धि सपरिवुडे] महयाभडचडगरेण साएयाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव विदेहजणवए जेणेव मिहिला रायहाणी तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

तत्पश्चात् उस दूत ने प्रतिबुद्धि राजा के इस प्रकार कहने पर हर्षित और सन्तुष्ट होकर उसकी आज्ञा अगीकार की । अगीकार करके जहा अपना घर था और जहा चार घटा वाला अश्व-रथ था, वहा आया । आकर (आगे, पीछे और अगल वगल मे) चार घटो वाले अश्व रथ को तैयार कराया । तयार करवाकर उस पर आरूढ हुआ । यावत घोडो, हाथियो (रथो, उत्तम योद्धाओ से युक्त चतुरगिणी सेना के साथ) और वहुत से सुभटो के समूह के साथ साकेत नगर से निकला । निकल कर जहां विदेह जनपद था और जहा मिथिला राजधानी थी, वहां जाने के लिए प्रस्थान किया—चल दिया ।

विवेचन—श्रीदामकाण्ड की चर्चा मे से मल्ली कुमारी के अनुपम सौन्दर्य की वात निकली । राजा को मल्ली कुमारी के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ । इस अनुराग का तात्कालिक निमित्त श्रीदाम-काण्ड हो अथवा मल्ली के सौन्दय का वणन, किन्तु मूल और अन्तरग कारण पूवभव की प्रीति के सस्कार ही समझना चाहिए । मल्ली कुमारी जव महावल के पूवभव मे थी तव उनके छह वाल्यमित्रो मे इस भव का यह प्रतिवुद्धि राजा भी एक था ।

मल्ली कुमारी घटित होने वाली इन सव घटनाओ को पहले से ही अपने अतिशय ज्ञान से

जानती थी, इसी कारण उन्होंने अपने अनुरूप प्रतिमा का निर्माण करवाया था और छहों मित्र राजाओं को विरक्त बनाने के लिए विशिष्ट आयोजन किया था।

राजा चन्द्रच्छाय

५२—तेण कालेण तेण समएण अगे नाम जणवए होत्था। तत्थ ण चपानाम णयरी होत्था। तत्थ ण चपाए नयरीए चदच्छाए अगराया होत्था।

उस काल और उस समय मे अग नामक जनपद था। उसमे चम्पा नामक नगरी थी। उस चम्पा नगरी मे चन्द्रच्छाय नामक अगराज—अग देश का राजा था।

५३—तत्थ ण चपाए नयरीए अरहन्नकपामोक्खा बहवे सजत्ता णावावाणियगा परिवसति, अड्डा जाव[1] अपरिभूया। तए ण से अरहन्नगे समणोवासए यावि होत्था, अहिगयजीवाजीवे, वन्नओ।

उस चम्पानगरी मे अर्हन्नक प्रभृति बहुत-से सायात्रिक (परदेश जाकर व्यापार करने वाले) नौवणिक् (नौकाओ से व्यापार करने वाले) रहते थे। वे ऋद्धिसम्पन्न थे और किसी से पराभूत होने वाले नही थे। उनमे अर्हन्नक श्रमणोपासक (श्रावक) भी था, वह जीव-अजीव आदि तत्त्वो का ज्ञाता था। यहाँ श्रावक का वर्णन जान लेना चाहिए।

५४—तए ण तेसि अरहन्नगपामोक्खाण सजत्ताणावावाणियगाण अन्नया कयाइ एगयओ सहियाण इमे एयारूवे मिहो कहासलावे समुप्पज्जित्था—

'सेय खलु अम्ह गणिम च धरिम च मेज्ज च परिच्छेज्ज च भडग गहाय लवणसमुद्द पोयवहणेण ओगाहित्तए त्ति कट्टु अन्नमन्न एयमट्ठ पडिसुणेति, पडिसुणित्ता गणिम च धरिम च मेज्ज च पारिच्छेज्ज च भडग गेण्हइ, गेण्हित्ता सगडिसागडिय च सज्जेति, सज्जित्ता गणिमस्स च धरिमस्स च मेज्जस्स च पारिच्छेज्जस्स च भडगस्स सगडसागडिय भरेंति, भरित्ता सोहणसि तिहि-करण-नक्खत्त मुहुत्तसि विपुल असण पाण खाइम साइम उवक्खडावेंति, मित्त णाइ नियग सयण सम्बन्धि-परियण भोयणवेलाए भु जावेंति जाव [भु जावेत्ता] आपुच्छति, आपुच्छित्ता सगडिसागडिय जोयति, चपाए नयरीए मज्झमज्झेण णिग्गच्छति, णिग्गच्छित्ता जेणेव गभीरए पोयपट्टणे तेणेव उवागच्छति।

तत्पश्चात् वे अर्हन्नक आदि सायात्रिक नौवणिक् किसी समय एक बार एक जगह इकट्ठे हुए, तब उनमे आपस मे इस प्रकार कथासलाप (वार्तालाप) हुआ—

'हमे गणिम (गिन-गिन कर बेचने योग्य नारियल आदि), धरिम (तोल कर बेचने योग्य घृत आदि), मेय (पायली आदि मे माप कर—भर कर बेचने योग्य अनाज आदि) और परिच्छेद्य (काट कर बेचने योग्य वस्त्र आदि), यह चार प्रकार का भाड (सौदा) लेकर, जहाज द्वारा लवणसमुद्र मे प्रवेश करना चाहिये।' इस प्रकार विचार करके उन्होंने परस्पर मे यह बात अगीकार की। अगीकार करके गणिम, धरिम, मेय और परिच्छेद्य भाड को ग्रहण किया। ग्रहण करके छकड़ा छकड़ी तयार किए। तयार करके गणिम, धरिम, मेय और परिच्छेद्य भाड से छकड़ी-छकडे भर। भर कर शुभ तिथि, करण, नक्षत्र और मुहूर्त में अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार बनवाया। बनाकर

[1] द्वि अ ६

भोजन की वेला मे मित्रो, ज्ञातिजनो, निजजनो, स्वजनो सम्बन्धीजनो एव परिजनो को जिमाय यावत् उनकी अनुमति ली। अनुमति लेकर गाडी-गाडे जोते। जोत कर चम्पा नगरी के बीचोबी होकर बाहर निकले। निकल कर जहा गभीर नामक पोतपट्टन (बन्दरगाह) था, वहा आये।

५५—उवागच्छित्ता सगडिसागडिय मोयति, मोइत्ता पोयवहण सज्जेंति, सज्जित्ता गणिमर य धरिमस्स य मेज्जस्स य परिच्छेज्जस्स य चउव्विहस्स भडगस्स भरेंति, भरित्ता तडुलाण य समियर य तेल्लस्स य गुलस्स य घयस्स य गोरसस्स य उदयस्स य उदयभायणाण य ओसहाण य भेसज्जा य तणस्स य कट्ठस्स य पावरणाण य पहरणाण य अन्नेसि च बहूण पोयवहणपाउग्गाण दव्वा पोयवहण भरेंति। भरित्ता सोहणसि तिहि करण नक्खत्त-मुहुत्तसि विपुल असण पाण खाइम सा उवक्खडावेंति, उवक्खडावित्ता मित्त णाइ नियग सयण-सबन्धि परियण आपुच्छति, आपुच्छित्ता जेण पोयट्ठाणे तेणेव उवागच्छति।

गभीर नामक पोतपट्टन मे आकर उन्होने गाडी-गाडे छोड दिए। छोडकर जहाज सज्जि किये। सज्जित करके गणिम, धरिम, मेय और परिच्छेद्य—चार प्रकार का भाड भरा। भरक उसमे चावल, आटा, तेल, घी, गोरस (दही), पानी, पानी के बरतन, औषध, भेषज, घास, लक वस्त्र, शस्त्र तथा और भी जहाज मे रखने योग्य अन्य वस्तुएँ जहाज मे भरी। भर कर प्रशस्त ति करण, नक्षत्र और मुहूर्त्त मे अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार करवाया। तैयार करवा कर मि ज्ञातिजनो, निजजनो, स्वजनो, सम्बन्धियो एव परिजनो को जिमा कर उनसे अनुमति ली। अनुम लेकर जहाँ नौका का स्थान था, वहा (समुद्र किनारे) आये।

५६—तए ण तेसि अरहन्नगपामोक्खाण जाव [सजुत्ता नावा] वाणियगाण परियणा ज ताहिं [इट्ठाहिं कताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं ओरालाहिं] वग्गूहिं अभिनन्दन्ताय अभिसथु माणा य एव वयासी—'अज्ज! ताय! भाय! माउल! भाइणेज्ज! भगवया समुद्दे अभिरक्खिज्जमाणा अभिरक्खिज्जमाणा चिर जीवह, भद्द च भे, पुणरवि लद्धट्ठे कयकज्जे अणहसम नियग घर हव्वमागए पासामो' त्ति कट्टु ताहिं सोमाहिं निद्धाहिं दीहाहिं सप्पिवासाहिं पप्पुया दिट्ठीहिं निरिक्खमाणा मुहुत्तमेत्त सचिट्ठति।

तत्पश्चात् उन अर्हन्नक आदि यावत् नौका-वणिको के परिजन (परिवार के लोग) याव [इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनोरम एव उदार] वचनो से अभिनन्दन करते हुए और उनकी प्रशस करते हुए इस प्रकार बोले—

'हे आय (पितामह)! हे तात! हे भ्रात! हे मामा! हे भागिनेय! आप इस भगवा समुद्र द्वारा पुन-पुन रक्षण किये जाते हुए चिरजीवी हो। आपका मगल हो। हम आपको अर्थ लाभ करके, इष्ट कार्य सम्पन्न करके, निर्दोष-विना किसी विघ्न के और ज्यो का त्यो घर पर आ शीघ्र देखें।' इस प्रकार वह कर सोम, स्नेहमय, दीर्घ, पिपासा वाली—सतृष्ण और अश्रुप्लावि दृष्टि से देखते-देखते वे लोग मुहूर्त्तमात्र अर्थात् थोडी देर तक वही खडे रहे।

५७—तओ समाणिएसु पुप्फवलिकम्मेसु, दिन्नेसु सरस रत्तचदण-दद्दर-पचगुलितलेसु, अणुक्खि त्तसि धूवसि, पूइएसु समुद्दवाएसु ससारियासु वलयवाहासु, ऊसिएसु सिएसु झयग्गेसु, पडुप्पवाइए

सूरेसु, अइएसु सव्वसउणेसु, गहिएसु रायवरसासणेसु, महया उक्किट्ठसीहनाय जाव [बोल—कलकल] रवेण पक्खुभिय महासमुद्द रवभूय पिव मेइणि करेमाणा एगदिसि जाव [एगाभिमुहा अरहन्नग पामोक्खा सजुत्ता-नावा] वाणियगा णाव दुरूढा ।

तत्पश्चात् नौका मे पुष्पबलि (पूजा) समाप्त होने पर, सरस रक्तचदन का पाचो उगलियो का थापा (छापा) लगाने पर, धूप खेई जाने पर, समुद्र की वायु की पूजा हो जाने पर, बलयवाहा (लम्बे काष्ठ बल्ले) यथास्थान सभाल कर रख लेने पर, श्वेत पताकाएँ ऊपर फहरा देने पर, वाद्यो की मधुर ध्वनि होने पर विजयकारक सब शकुन होने पर, यात्रा के लिए राजा का आदेशपत्र प्राप्त हो जाने पर, महान् और उत्कृष्ट सिंहनाद यावत् [कलकल] ध्वनि से, अत्यन्त क्षुब्ध हुए महासमुद्र की गर्जना के समान पृथ्वी को शब्दमय करते हुए एक तरफ से [एकाभिमुख होकर वे अर्हन्नक आदि सायात्रिक नौका वणिक्] नौका पर चढे ।

५८—तओ पुस्समाणवो वक्कमुदाहु—'ह भो ! सव्वेसिमवि अत्थसिद्धी, उवट्ठियाइ कल्लाणाइ, पडिहयाइ सव्वपावाइ, जुत्तो पूसो, विजओ मुहुत्तो अय देसकालो ।'

तओ पुस्समाणवेण वक्कमुदाहिए हट्ठतुट्ठा कुच्छिधार-कन्नधार-गब्भिज्जसजत्ताणावावाणियगा वावारिसु, त नाव पुन्नुच्छग पुण्णमुहि बधणेहितो मु चति ।

तत्पश्चात् वन्दीजन ने इस प्रकार वचन कहा—'हे व्यापारियो ! तुम सब को अर्थ की सिद्धि हो, तुम्हे कल्याण प्राप्त हुए हैं, तुम्हारे समस्त पाप (विघ्न) नष्ट हुए है । इस समय पुष्य नक्षत्र चन्द्रमा से युक्त है और विजय नामक मुहूर्त्त है, अत यह देश और काल यात्रा के लिए उत्तम है ।

तत्पश्चात् वन्दीजन के द्वारा इस प्रकार वाक्य कहने पर हृष्ट तुष्ट हुए कुक्षिधार-नौका की बगल मे रहकर बल्ले चलाने वाले, कर्णधार (खिवया), गर्भज-नौका के मध्य मे रहकर छोटे मोटे काय करने वाले और वे सायात्रिक नौकावणिक् अपने-अपने काय मे लग गये । फिर भाडो से परिपूर्ण मध्य भाग वाली और मगल से परिपूर्ण अग्रभाग वाली उस नौका को बन्धनो से मुक्त किया ।

५९—तए ण सा णावा विमुक्कबधणा पवणबलसमाहया उस्सियसिया विततपक्खा इव गरुडजुवई गगासलिल तिक्खसोयवेगेहिं सखुब्भमाणी सखुब्भमाणी उम्मी-तरग-मालासहस्साइ समतिच्छमाणी समतिच्छमाणी कइवर्एहि अहोरत्तेहि लवणसमुद्द अणेगाइ जोयणसयाइ ओगाढा ।

तत्पश्चात् वह नौका बन्धनो से मुक्त हुई एव पवन के बल से प्रेरित हुई । उस पर सफेद कपड का पाल चढा हुआ था, अतएव ऐसी जान पडती थी जैसे पख फैलाए कोई गरुड युवती हो ! वह गगा के जल के तीव्र प्रवाह के वेग से क्षुब्ध होती होती, हजारो मोटी तरगो और छोटी तरगों के समूह का उल्लघन करती हुई कुछ अहोरात्रो (दिन-रातो) मे लवणसमुद्र मे कई सौ योजन दूर तक चली गई ।

६० —तए ण तेसि अरहन्नगपामोक्खाण सजत्तानावावाणियगाण लवणसमुद्द अणेगाइ जोयणसयाइ ओगाढाण समाणाण बहूइ उप्पाइयसयाइ पाउब्भूयाइ । तजहा—

तत्पश्चात् कई सौ योजन लवण-समुद्र मे पहुँचे हुए उन अर्हन्नक आदि सायात्रिक नौका-वणिको को बहुत से सैकडो उत्पात प्रादुर्भूत होने लगे। वे उत्पात इस प्रकार थे।

६१—अकाले गज्जिए, अकाले विज्जुए, अकाले थणियसद्दे, अभिक्खणं आगासे देवताओ णच्चति, एगं च णं महं पिसायरूवं पासति।

अकाल मे गर्जना होने लगी, अकाल मे बिजली चमकने लगी, अकाल मे मेघो की गंभीर गडगडाहट होने लगी। बार-बार आकाश मे देवता (मेघ) नृत्य करने लगे। इसके अतिरिक्त एक ताड जैसे पिशाच का रूप दिखाई दिया।

६२—तालजघं दिवं गयाहिं बाहाहिं मसिमूसगमहिसकालगं, भरिय-मेहवन्नं, लंबोट्ठं, निग्गयग्गदंतं, निल्लालियजमलजुयलजीहं, आऊसियवयणगंडदेसं, चीणचिपिटनासियं, विगयभुग्गभुग्गभुमयं, खज्जोयग-दित्तचक्खुरागं, उत्तासणगं, विसालवच्छं, विसालकुच्छिं, पलंबकुच्छिं, पहसियपयलियपयडियगत्तं, पणच्चमाणं, अप्फोडंतं, अभिवयंतं, अभिगज्जंतं, बहुसो बहुसो अट्टट्टहासे विणिम्मुयंतं नीलुप्पलगवलगुलिय-अयसिकुसुमप्पगासं खुरधारं असिं गहाय अभिमुहमावयमाणं पासंति।

वह पिशाच ताड के समान लंबी जांघो वाला था और उसकी बाहुएँ आकाश तक पहुँची हुई थी। वह कज्जल, काले चूहे और भैंसे के समान काला था। उसका वर्ण जलभरे मेघ के समान था। उसके होठ लम्बे थे और दांतो के अग्रभाग मुख से बाहर निकले थे। उसने अपनी एक सी दो जीभे मुँह से बाहर निकाल रक्खी थी। उसके गाल मुँह मे धँसे हुए थे। उसकी नाक छोटी और चपटी थी। भृकुटि डरावनी और अत्यन्त वक्र थी। नेत्रो का वर्ण जुगनू के समान चमकता हुआ लाल था। देखने वाले को घोर त्रास पहुचाने वाला था। उसकी छाती चौडी थी, कुक्षि विशाल और लम्बी थी। हँसते और चलते समय उसके अवयव ढीले दिखाई देते थे। वह नाच रहा था, आकाश को मानो फोड रहा था, सामने आ रहा था, गर्जना कर रहा था और बहुत-बहुत ठहाके मार रहा था। ऐसे काले कमल, भैंस के सीग, नील, अलसी के फूल के समान काली तथा छुरे की धार की तरह तीक्ष्ण तलवार लेकर आते हुए पिशाच को उन वणिको ने देखा।

६३—तए णं ते अरहण्णगवज्जा संजत्ताणावावाणियगा एगं च णं महं तालपिसायं पासंति—तालजंघं, दिवं गयाहिं बाहाहिं, फुट्टसिरं भमर-णिगर-वरमासरासिमहिसकालगं, भरियमेहवण्णं, सुप्पणहं, फालसरिसजीहं, लंबोट्ठं धवल वट्ट-असिलिट्ठ तिक्ख-थिर-पीण-कुडिल-दाढोवगूढवयणं, विकोसिय धारासिजुयल-समसरिस-तणुयचंचल गलंतरसलोल-चवल फुरफुरंत निल्लालियग्गजीहं अवयच्छिय महल्ल विगय-बीभच्छ-लालपगलंत रत्ततालुयं हिंगुलुय-सगब्भकंदरबिलं व अंजणगिरिस्स, अग्गिजालुग्गिलंतवयणं आऊसिय-अक्खचम्म-उइट्ठगंडदेसं चीण चिविड-वंक-भग्गणासं, रोसागय धमधमेंत-मारुय-निट्ठुर-खर-फरुसझुसिरं, ओभुग्गणासियपुडं घाडुब्भड रइय-भीसणमुहं, उद्धमुहकन्न-सक्कुलिय महंत विगय-लोम-संखालग लंबंत-चलियकन्नं, पिंगलदिप्पंतलोयणं, भिउडितडियनिडालं नरसिरमाल परिणद्धचिंधं, विचित्तगोणससुबद्धपरिकरं अवहोलंत-पुप्फुयायंत सप्पविच्छुय-गोधुंदर नउलसरड विरइयविचित्तवेयच्छमालियागं, भोगकूर-कण्हसप्पधमधमेंतलंबंतकन्नपूरं, मज्जार सियाललइयखंधं, दित्तघुघुयंतघूयकयकुंतलसिरं, घंटारवेण भीमं, भयंकरं, कायरजणहिययफोडणं, दित्तमट्टट्ट-

हाम विणिम्मुयत, वसा रुहिर-पूय-मस-मलमलिणपोच्चडतणु, उत्तासणय, विसालवच्छ, पेच्छता भिन्नणह मुह-नयण-कन्न वरवग्घ-चित्तकत्तीणिवसण, सरस रुहिर-गयचम्म वितत ऊसविय-बाहुजुयल, ताहि य खर फरुस असिणिद्ध-अणिट्ठ-दित्त असुभ-अप्पिय-अकतवग्गूहि य तज्जयत पासति ।

(पूर्व वर्णित तालपिशाच का ही यहा विशेष वर्णन किया गया है । यह दूसरा वर्णन पाठ है)

तत्पश्चात् अर्हन्नक के सिवाय दूसरे सायात्रिक नौकावणिकों ने एक बडे तालपिशाच को देखा । उसकी जाँघ ताड वृक्ष के समान लम्बी थी और बाहुएँ आकाश तक पहुँची हुई खूब लम्बी थी । उसका मस्तक फूटा हुआ था, अर्थात् मस्तक के केश बिखरे थे । वह भ्रमरों के समूह, उत्तम उडद के ढेर और भैंस के समान काला था । जल से परिपूर्ण मेघों के समान श्याम था । उसके नाखून सूप (छाजने) के समान थे । उसकी जीभ हल के फाल के समान थी—अर्थात् बावन पल प्रमाण अग्नि मे तपाए गये लोहे के फाल के समान लाल चमचमाती और लम्बी थी । उसके होठ लम्बे थे । उसका मुख धवल, गोल, पृथक्-पृथक्, तीखी, स्थिर, मोटी और टेढी दाढों से व्याप्त था । उसके दो जिह्वाओं के अग्रभाग बिना म्यान की धारदार तलवार-युगल के समान थे, पतले थे, चपल थे, उनमें से निरन्तर लार टपक रही थी । वह रस-लालुप थे, चचल थे, लपलपा रहे थे और मुख से बाहर निकले हुए थे । मुख फटा होने से उसका लाल-लाल तालु खुला दिखाई देता था और वह बडा, विकृत, बीभत्स और लार झराने वाला था । उसके मुख से अग्नि की ज्वालाए निकल रही थी । अतएव वह ऐसा जान पडता था, जैसे हिंगलू से व्याप्त अजनगिरि की गुफा रूपी बिल हो । सिकुडे हुए मोठ (चरस) के समान उसके गाल सिकुडे हुए थे, अथवा उसकी इन्द्रियाँ, शरीर की चमडी, होठ और गाल—सब सल वाले थे । उसकी नाक छोटी थी, चपटी थी, टेढी थी और भग्न थी, अर्थात् ऐसी जान पडती थी जैसे लोह के घन से कूटपीट दी गई हो । उसके दोनो नथुनो (नासिकापुटो) से क्रोध के कारण निकलता हुआ श्वासवायु निष्ठुर और अत्यन्त कर्कश था । उसका मुख मनुष्य आदि के घात के लिए रचित होने से भीषण दिखाई देता था । उसके दोनो कान चपल और लम्बे थे, उनकी शष्कुली ऊँचे मुख वाली थी, उन पर लम्बे-लम्बे और विकृत बाल थे और वे कान नेत्र के पास की हड्डी (शख) तक को छूते थे । उसके नेत्र पीले और चमकदार थे । उसके ललाट पर भृकुटि पडी थी जो बिजली जैसी दिखाई देती थी । उसकी ध्वजा के चारो ओर मनुष्यो के मुंडो की माला लिपटी हुई थी । विचित्र प्रकार के गोनस जाति के सर्पों का उसने बख्तर बना रखा था । उसने इधर-उधर फिरते और फुफकारते वाले सर्पों, बिच्छुओं, गोहो, चूहो, नकुलो और गिरगिटो की विचित्र प्रकार की उत्तरासग जैसी माला पहनी हुई थी । उसने भयानक फन वाले और धमधमाते हुए दो काले साँपो के लम्बे लटकते कुडल धारण किये थे । अपने दोनो कधो पर बिलाव और सियार बैठा रखे थे । अपने मस्तक पर देदीप्यमान एव घू-घू ध्वनि करने वाले उल्लू का मुकुट बनाया था । वह घटा के शब्द के कारण भीम और भयकर प्रतीत होता था । कायर जनो के हृदय को दलन करने वाला—चीर देने वाला था । वह देदीप्यमान अट्टहास कर रहा था । उसका शरीर चर्बी, रक्त, मवाद, मास और मल से मलिन और लिप्त था । वह प्राणियो को त्रास उत्पन्न करता था । उसकी छाती चौडी थी । उसने श्रेष्ठ व्याघ्र का चित्र-विचित्र चमडा पहन रखा था, जिसमें (व्याघ्र के) नाखून, (रोम), मुख, नेत्र और कान आदि अवयव पूरे और साफ दिखाई पडते थे । उसने ऊपर उठाये हुए दोनो हाथों पर रस और रुधिर से लिप्त हाथी का चमडा फैला रखा था । वह पिशाच नौका पर बैठे

हुए लोगो की, अत्यन्त कठोर, स्नेहहीन, अनिष्ट, उत्तापजनक, स्वरूप से ही अशुभ, अप्रिय तथा अकान्त—अनिष्ट स्वर वाली (अमनोहर) वाणी से तर्जना कर रहा था। ऐसा भयानक पिशाच उन लोगो को दिखाई दिया।

विवेचन—उल्लिखित पाठ मे तालपिशाच का दिल दहलाने वाला चित्र अकित किया गया है। पाठ के प्रारम्भ मे 'अरहण्णगवज्जा सजत्ताणावावाणियगा' पाठ आया है। इसका आशय यह नही है कि अर्हन्नक के सिवाय अन्य वणिको ने ही उस पिशाच को देखा। वस्तुत अर्हन्नक ने भी उसे देखा था, जैसा कि आगे के पाठो से स्पष्ट प्रतीत होता है। किन्तु 'अर्हन्नक के सिवाय' इस वाक्याश का सम्बन्ध सूत्र सख्या ६४व के साथ है। अर्थात् अर्हन्नक के सिवाय अन्य वणिको ने उस भीषणतर सकट के उपस्थित होने पर क्या किया, यह बतलाने के लिए 'अरहण्णगवज्जा' पद का प्रयोग किया गया है। उस सकट के अवसर पर अर्हन्नक ने क्या किया, यह सख्या ६५वें मे प्रदर्शित किया गया है।

अन्य वणिको से अर्हन्नक की भिन्नता दिखलाना सूत्रकार का अभीष्ट है। भिन्नता का कारण है - अर्हन्नक का श्रमणोपासक होना, जैसा कि सूत्र ५३ मे प्रकट किया गया है। सच्चे श्रावक मे धार्मिक दृढता किस सीमा तक होती है, यह घटना उसका स्पष्ट निदर्शन कराती है।

६३—त तालपिसायरूव एज्जमाण पासति, पासित्ता भीया सजायभया अन्नमन्नस्स काय समतुरगेमाणा बहूण इदाण य खदाण य रुद्द-सिव-वेसमण णागाण भूयाण य जक्खाण य अज्जकोट्ट-किरियाण य बहूणि उवाइयसयाणि ओवाइयमाणा ओवाइयमाणा चिट्ठति।

अर्हन्नक को छोडकर शेष नौकावणिक् तालपिशाच के रूप को नौका की ओर आता देख कर डर गये, अत्यन्त भयभीत हुए, एक दूसरे के शरीर से चिपट गये और बहुत से इन्द्रो की, स्कन्दो (कार्तिकेय) की तथा रुद्र, शिव, वैश्रवण और नागदेवो की, भूतो की, यक्षो की, दुर्गा की तथा कोट्टक्रिया (महिषवाहिनी दुर्गा) देवी की बहुत-बहुत सैकडो मनौतियाँ मनाने लगे।

६५—तए ण से अरहन्नए समणोवासए त दिव्व पिसायरूव एज्जमाण पासइ, पासित्ता अभीए अतत्थे अचलिए असभते अणाउले अणुव्विग्गे अभिण्णमुहराग-णयणवण्णे अदीणविमणमाणसे पोयवहणस्स एगदेसमि वत्थतेण भूमि पमज्जइ, पमज्जित्ता ठाण ठाइ, ठाइत्ता करयलपरिग्गहिय सिरसावत्त मत्थए अजलि कट्टु एव वयासी—

'नमोऽत्थु ण अरहताण भगवताण जाव' ठाण सपत्ताण, जइ ण अह एत्तो उवसग्गाओ मु चामि तो मे कप्पइ पारित्तए, अह ण एत्तो उवसग्गाओ ण मु चामि तो मे तहा पच्चक्खाएयव्वे' त्ति कट्टु सागार भत्त पच्चक्खाइ।

अर्हन्नक श्रमणोपासक ने उस दिव्य पिशाचरूप को आता देखा। उसे देख कर वह तनिक भी भयभीत नहा हुआ त्रास को प्राप्त नही हुआ, चलायमान नही हुआ, सभ्रान्त नही हुआ, व्याकुल नही हुआ, उद्विग्न नही हुआ। उसके मुख का राग और नेत्रो का वर्ण नही बदला। उसके मन मे दीनता या खिन्नता उत्पन्न नही हुई। उसने पोतवहन के एक भाग मे जाकर वस्त्र के छोर से भूमि का प्रमार्जन किया। प्रमार्जन करके उस स्थान पर बैठ गया और दोनो हाथ जोड कर इस प्रकार बोला—

१ प्र अ ८

'अरिहन्त भगवंत' यावत् सिद्धि को प्राप्त प्रभु को नमस्कार हो (इस प्रकार 'नमोत्थु ण' का पूरा पाठ उच्चारण किया)। फिर कहा—'यदि मैं इस उपसर्ग से मुक्त हो जाऊँ तो मुझे यह कायोत्सर्ग पारना कल्पता है और यदि इस उपसर्ग से मुक्त न होऊँ तो यही प्रत्याख्यान कल्पता है, अर्थात् कायोत्सर्ग पारना नहीं कल्पता।' इस प्रकार कह कर उसने सागारी अनशन ग्रहण कर लिया।

६६—तए ण से पिसायरूवे जेणेव अरहन्नए समणोवासए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहन्नग एव वयासी—

'ह भो अरहन्नगा! अपत्थियपत्थिया! जाव [दुरन्तपन्तलक्खणा! हीणपुण्णचाउद्दसिया! सिरि-हिरि धिइ-कित्ति] परिवज्जिया! णो खलु कप्पइ तव सील-व्वय गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासाइं चालित्तए वा एवं खोभेत्तए वा, खंडित्तए वा, भंजित्तए वा, उज्झित्तए वा, परिच्चइत्तए वा। त जइ ण तुमं सीलव्वय जाव ण परिच्चयसि तो ते अह एयं पोयवहणं दोहिं अंगुलियाहिं गेण्हामि, गेण्हित्ता सत्तट्ठतलप्पमाणमेत्ताइं उड्ढं वेहासे उव्विहामि, उव्विहित्ता अंतो जलंसि णिच्छोलेमि, जेण तुम अट्ट-दुहट्ट वसट्टे असमाहिपत्ते अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि।'

तत्पश्चात् वह पिशाचरूप वहाँ आया, जहाँ अर्हन्नक श्रमणोपासक था। आकर अर्हन्नक से इस प्रकार कहने लगा—

*'अरे अप्रार्थित'—मौत—की प्रार्थना (इच्छा) करने वाले! यावत् [कुलक्षणी! अभागिनी काली चौदस के जन्मे!, लज्जा, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी से] परिवर्जित! तुझे शीलव्रत—अणुव्रत, गुणव्रत, विरमण-रागादि की विरति का प्रकार, नवकारसी आदि प्रत्याख्यान और पौषधोपवास से चलायमान होना अर्थात् जिस भागे से जो व्रत ग्रहण किया हो उसे बदल कर दूसरे भागे से कर लेना, क्षोभयुक्त होना अर्थात् 'इस व्रत को इसी प्रकार पालूँ या त्याग दूँ' ऐसा सोच कर क्षुब्ध होना, एक देश से खण्डित करना, पूरी तरह भंग करना, देशविरति का सर्वथा त्याग करना कल्पता नहीं है। परन्तु तू शीलव्रत आदि का परित्याग नहीं करता तो मैं तेरे इस पोतवहन को दो उंगलियों पर उठाए लेता हूँ और सात-आठ तल की ऊँचाई तक आकाश में उछाले देता हूँ और उछाल कर इसे जल के अन्दर डुबाए देता हूँ, जिससे तू आर्त्तध्यान के वशीभूत होकर, असमाधि को प्राप्त होकर जीवन से रहित हो जायगा—मौत का ग्रास बन जायगा।'

६७—तए ण से अरहन्नए समणोवासए त देव मणसा चेव एव वयासी—'अह ण देवाणुप्पिया! अरहन्नए णाम समणोवासए अहिगयजीवाजीवे, नो खलु अहं सक्का केणइ देवेण वा जाव [दाणवेण वा जक्खेण वा रक्खसेण वा किन्नरेण वा किंपुरिसेण वा महोरगेण वा गधव्वेण वा] निग्गयाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभेत्तए वा विपरिणामेत्तए वा, तुमं ण जा सद्धा त करेहि त्ति कट्टु अभीए जाव[1] अभिन्नमुहरागणयणवन्ने अदीणविमणमाणसे निच्चले निप्फंदे तुसिणीए धम्मज्झाणोवगए विहरइ।

तब अर्हन्नक श्रमणोपासक ने उस देव को मन ही मन इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय! मैं अर्हन्नक नामक श्रावक हूँ और जड़ चेतन के स्वरूप का ज्ञाता हूँ (मुझे तुम ऐसा-वैसा अज्ञानी मत

[1] अ. अ. ६५

कायर मत समझना)। निश्चय ही मुझे कोई देव, दानव [यक्ष, राक्षस, किन्नर, किम्पुरुष, महोरग या गन्धव—कोई भी देव अथवा दैवी शक्ति] निर्ग्रन्थप्रवचन मे चलायमान नही कर सकता, क्षुब्ध नही कर सकता और विपरीत भाव उत्पन्न नही कर सकता। तुम्हारी जो श्रद्धा (इच्छा) हो सो करो।'

इस प्रकार कह कर अर्थात् उस पिशाच को चुनौती देकर अर्हन्नक निर्भय, अपरिवर्तित मुख के रग और नेत्रो के वर्ण वाला, दैन्य और मानसिक खेद से रहित, निश्चल, निस्पन्द, मौन और धर्मध्यान मे लीन बना रहा।

६८—तए ण से दिव्वे पिसायरूवे अरहन्नग समणोवासय दोच्च पि तच्च पि एव वयासी—'ह भो अरहन्नगा!' जाव अदीणविमणमाणसे निच्चले निप्फदे तुसिणीए धम्मज्झाणोवगए विहरइ।

तत्पश्चात् वह दिव्य पिशाचरूप अर्हन्नक श्रमणोपासक से दूसरी बार और फिर तीसरी बार कहने लगा—'अरे अर्हन्नक!' इत्यादि कहकर पूर्ववत् धमकी दी। यावत् अर्हन्नक ने भी वही उत्तर दिया और वह दीनता एव मानसिक खेद से रहित, निश्चल, निस्पद, मौन और धर्मध्यान मे लीन बना रहा—उस पर पिशाच की धमकी का तनिक भी प्रभाव नही पडा।

६९—तए ण से दिव्वे पिसायरूवे अरहन्नग धम्मज्झाणोवगय पासइ, पासित्ता बलियतराग आसुरुत्ते त पोयवहण दोहि अगुलियाहि गिण्हइ, गिण्हित्ता सत्तट्ठतल (ता) लाइ जाव अरहन्नग एव वयासी—'ह भो अरहन्नगा! अपत्थियपत्थिया! णो खलु कप्पइ तव सीलव्वय गुण वेरमण पच्चक्खाण पोसहोववासाइ तहेव जाव धम्मज्झाणोवगए विहरइ।

तत्पश्चात् उस दिव्य पिशाचरूप ने अर्हन्नक को धर्मध्यान मे लीन देखा। देखकर उसने और अधिक कुपित होकर उस पोतवहन को दो उगलियो से ग्रहण किया। ग्रहण करके सात-आठ मजिल की या ताड के वृक्षो की ऊँचाई तक ऊपर उठाकर अर्हन्नक से कहा—'अरे अर्हन्नक! मौत की इच्छा करने वाले! तुझे शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान तथा पौषध आदि का त्याग करना नही कल्पता है, इत्यादि सब पूर्ववत समझना चाहिए। किन्तु इस प्रकार कहने पर भी अर्हन्नक किंचित् भी चलायमान न हुआ और धर्मध्यान मे ही लीन बना रहा।

७०—तए ण से पिसायरूवे अरहन्नग जाहे नो सचाएइ निग्गथाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामित्तए वा ताहे उवसते जाव निव्विण्णे त पोयवहण सणिय सणिय उवरिं जलस्स ठवेइ, ठवित्ता त दिव्व पिसायरूव पडिसाहरइ, पडिसाहरित्ता दिव्व देवरूव विउव्वइ, विउव्वित्ता अतलिक्खपडिवन्ने सखिखिणियाइ जाव [दसद्धवण्णाइ वत्थाइ पवर] परिहिए अरहन्नग समणोवासय एव वयासी—

तत्पश्चात् वह पिशाचरूप जब अर्हन्नक को निर्ग्रन्थ प्रवचन से चलायमान, क्षुभित एव विपरिणत करने मे समर्थ नही हुआ, तब वह उपशान्त हो गया, यावत् मन मे खेद को प्राप्त हुआ। फिर उसने उस पोतवहन को धीरे-धीरे उतार कर जल के ऊपर रखा। रखकर पिशाच के दिव्य रूप का सहरण किया—उसे समेट लिया और दिव्य देव के रूप की विक्रिया की। विक्रिया करके, अधर स्थिर होकर घु घुरुओ की छमछम् की ध्वनि से युक्त पचवर्ण के उत्तम वस्त्र धारण करके अर्हन्नक श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा—

७१—'हं भो अरहन्नगा ! धन्नोऽसि णं तुमं देवाणुप्पिया ! जाव जीवियफले, जस्स णं तव निग्गंथे पावयणे इमेयारूवा पडिवत्ती लद्धा पत्ता अभिसमन्नागया,' एवं खलु देवाणुप्पिया ! सक्के देविंदे देवराया सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए बहूणं देवाणं मज्झगए महया सद्देणं आइक्खइ—'एवं खलु जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे चंपाए नयरीए अरहन्नए समणोवासए अहिगयजीवाजीवे, नो खलु सक्का केणइ देवेण वा दाणवेण वा निग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा जाव [खोभित्तए वा] विपरिणामित्तए वा।'

तए णं अहं देवाणुप्पिया ! सक्कस्स देविंदस्स एयमट्ठं णो सद्दहामि, नो रोययामि। तए णं मम इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव [चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—'गच्छामि णं अरहन्नयस्स अंतियं पाउब्भवामि, जाणामि ताव अहं अरहन्नगं ? किं पियधम्मे ? णो पियधम्मे ? दढधम्मे ? नो दढधम्मे ? सीलव्वयगुणे किं चालेइ जाव [नो चालेइ ? खोभेइ नो खोभेइ ? खंडेइ ? नो खंडेइ ? भंजेइ नो भंजेइ ? उज्झइ नो उज्झइ ?] परिच्चयइ ? णो परिच्चयइ ? त्ति कट्टु एवं संपेहेमि, संपेहित्ता ओहिं पउंजामि, पउंजित्ता देवाणुप्पिया ! ओहिणा आभोएमि, आभोइत्ता उत्तरपुरच्छिमं दिसीभागं उत्तरवेउव्वियं समुग्घामि, ताए उक्किट्ठाए जाव [देवगईए] जेणेव लवणसमुद्दे जेणेव देवाणुप्पिए तेणेव उवागच्छामि। उवागच्छित्ता देवाणुप्पियाणं उवसग्गं करेमि। नो चेव णं देवाणुप्पिया भीया वा तत्था वा, तं जं णं सक्के देविंदे देवराया वदइ, सच्चे णं एसमट्ठे। तं दिट्ठे णं देवाणुप्पियाणं इड्ढी जुई जसो बलं जाव [वीरियं पुरिसक्कार] परक्कमे लद्धे पत्ते अभिसमन्नागए। तं खामेमि णं देवाणुप्पिया ! खमंतुमरहंतु णं देवाणुप्पिया ! णाइ भुज्जो भुज्जो एवं करणयाए।' त्ति कट्टु पंजलिउडे पायवडिए एयमट्ठं भुज्जो भुज्जो खामेइ, खामित्ता अरहन्नयस्स दुवे कुंडलजुयले दलयइ, दलइत्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव पडिगए।

'हे अर्हन्नक ! तुम धन्य हो। देवानुप्रिय ! [तुम कृतार्थ हो, देवानुप्रिय ! तुम सफल लक्षण वाले हो, देवानुप्रिय !] तुम्हारा जन्म और तुम्हारा जीवन सफल है कि जिसको अर्थात् तुमको निर्ग्रन्थप्रवचन में इस प्रकार की प्रतिपत्ति (श्रद्धा) लब्ध हुई है, प्राप्त हुई है और आचरण में लाने के कारण सम्यक् प्रकार से सन्मुख आई है।' हे देवानुप्रिय ! देवों के इन्द्र और देवों के राजा शक्र ने सौधर्म कल्प में, सौधर्मावतंसक नामक विमान में और सुधर्मा सभा में, बहुत से देवों के मध्य में स्थित होकर महान् शब्दों से इस प्रकार कहा था—'निस्सन्देह जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, भरत क्षेत्र में, चम्पानगरी में अर्हन्नक नामक श्रमणोपासक जीव-अजीव आदि तत्त्वों का ज्ञाता है। उसे निश्चय ही कोई देव या दानव निर्ग्रन्थप्रवचन से चलायमान करने में यावत् सम्यक्त्व से च्युत करने में समर्थ नहीं है।'

तब हे देवानुप्रिय ! देवेन्द्र शक्र की इस बात पर मुझे श्रद्धा नहीं हुई। यह बात रुची नहीं। तब मुझे इस प्रकार का विचार, [चिन्तन, अभिलाष एवं संकल्प] उत्पन्न हुआ कि—मैं जाऊँ और अर्हन्नक के समक्ष प्रकट होऊँ। पहले जानूँ कि अर्हन्नक को धर्म प्रिय है अथवा धर्म प्रिय नहीं है ? वह दृढधर्मा है अथवा दृढधर्मा नहीं है ? वह शीलव्रत और गुणव्रत आदि से चलायमान होता है, यावत् [अथवा चलायमान नहीं होता ? क्षुब्ध होता है या नहीं ? अपने व्रत को खण्डित करता है अथवा नहीं ? उन्हें त्यागता है या नहीं ?] उनका परित्याग करता है अथवा नहीं करता ? मैंने इस प्रकार का विचार किया। विचार करके अवधिज्ञान का उपयोग लगाया। उपयोग लगाकर

हे देवानुप्रिय ! मैंने जाना। जानकर ईशानकोण मे जाकर उत्तर वैक्रियश
वैक्रियसमुद्घात किया। तत्पश्चात् उत्कृष्ट यावत् शीघ्रता वाली देवगति
था और जहाँ देवानुप्रिय (तुम) थे, वहा मैं आया। आकर मैंने देवानुप्रिय को उ
देवानुप्रिय भयभीत न हुए, त्रास को प्राप्त न हुए। अतः देवेन्द्र देवराज ने जो
सत्य सिद्ध हुआ। मैंने देखा कि देवानुप्रिय को ऋद्धि-गुण रूप समृद्धि,
शारीरिक बल यावत् पुरुषकार, पराक्रम लब्ध हुआ है, प्राप्त हुआ है और उसका
सेवन किया है। तो हे देवानुप्रिय! मैं आपको खमाता हूँ। आप क्षमा प्रदान करने यो
अब फिर कभी मैं ऐसा नही करूंगा।' इस प्रकार कहकर दोनो हाथ जोडकर
मे गिर गया और इस घटना के लिए बार-बार विनयपूर्वक क्षमायाचना करने
करके अर्हन्नक को दो कुंडल-युगल भेंट किये। भेंट करके जिस दिशा से प्रकट
मे लौट गया।

७२—तए णं अरहन्नए निरुवसग्गमित्ति कट्टु पडिमं पारेइ। तए णं
जाव [संजत्तानावा] वाणियगा दक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव गंभीरए पोयपट्ट
उवागच्छित्ता पोयं लंबेन्ति, लंबित्ता सगडिसागडं सज्जेंति, सज्जित्ता तं गणिमं ध
सगडिसागडं संकामेंति, संकामित्ता सगडिसागडं जोएंति, जोइत्ता जेणेव मिहिला न
उवागच्छित्ता मिहिलाए रायहाणीए बहिया अग्गुज्जाणंसि सगडिसागडं मोए
रायहाणीए तं महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायरिहं पाहुडं कुंडलजुयलं च गेण्ह
रायहाणीए अणुपविसंति, अणुपविसित्ता जेणेव कुंभए राया तेणेव उवागच्छंति
जाव [परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं] कट्टु तं महत्थं दिव्वं कुं
पुरओ ठवेंति।

तत्पश्चात् अर्हन्नक ने उपसर्ग टल गया जानकर प्रतिमा पारी अथ
तदनन्तर वे अर्हन्नक आदि यावत् नौकावणिक् दक्षिण दिशा के अनुकूल
गम्भीर नामक पोतपट्टन था, वहा आये। आकर उस पोत (नौका या जहाज)
गाडी गाडे तैयार किये। तैयार करके वह गणिम, धरिम, मेय और परिच्छेद्य
मे भरा। भरकर गाडी गाडे जोते। जोतकर जहाँ मिथिला नगरी थी, वहाँ
नगरी के बाहर उत्तम उद्यान मे गाडी-गाडे छोडे। छोडकर मिथिला नगरी
महान् अर्थ वाली, महामूल्य वाली, महान् जनो के योग्य, विपुल और राजा के
को जोडी ली। लेकर मिथिला नगरी मे प्रवेश किया। प्रवेश करके जहाँ कुम्भ
आकर दोनों हाथ जोडकर, मस्तक पर अंजलि करके वह महान् अर्थ वाली
कुंडलयुगल राजा के समीप ले गये, यावत् राजा के सामने रख दिया।

७३—तए णं कुंभए राया तेसिं संजत्तगाणं नावावाणियगाणं जाव
मल्लिं विदेहवररायकन्नं सद्दावेइ, सद्दावित्ता तं दिव्वं कुंडलजुयलं मल्ली
पिणद्धइ, पिणद्धित्ता पडिविसज्जेइ।

---

१ अ. अ. ७२

तत्पश्चात् कुंभ राजा ने उन नौकावणिकों की वह बहुमूल्य भेंट यावत् अंगीकार की। अंगीकार करके विदेह की उत्तम राजकुमारी मल्ली को बुलाया। बुलाकर वह दिव्य कुंडलयुगल विदेह की श्रेष्ठ राजकुमारी मल्ली को पहनाया। पहनाकर उसे विदा कर दिया।

७४—तए णं से कुंभए राया ते अरहन्नगपामोक्खे जाव वाणियगे विपुलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-गंध-मल्लालंकारेणं जाव [सक्कारेइ सम्माणेइ सक्कारित्ता सम्माणित्ता] उस्सुक्कं वियरेइ, वियरित्ता रायमग्गमोगाढे य आवासे वियरइ, वियरित्ता पडिविसज्जेइ।

तत्पश्चात् कुम्भ राजा ने उन अर्हन्नक आदि नौकावणिकों का विपुल अशन आदि से तथा वस्त्र, गंध, माला और अलंकार से सत्कार किया। उनका शुल्क माफ कर दिया। राजमार्ग पर उनको उतारा—आवास दिया और फिर उन्हें विदा किया।

७५—तए णं अरहन्नगसंजत्तगा जेणेव रायमग्गमोगाढे आवासे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता भंडववहरणं करेंति, करित्ता पडिभंडं गेण्हंति, गेण्हित्ता सगडिसागडं भरेंति, जेणेव गंभीरए पोयपट्टणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पोयवहणं सज्जेंति, सज्जित्ता भंडं संकामेंति, दक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव चंपाए पोयट्ठाणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पोयं लंबेंति, लंबित्ता सगडिसागडं सज्जेंति, सज्जित्ता तं गणिमं धरिमं मेज्जं पारिच्छेज्जं सगडीसागडं संकामेंति, संकामेत्ता जाव[1] महत्थं पाहुडं दिव्वं च कुंडलजुयलं गेण्हंति, गेण्हित्ता जेणेव चंदच्छाए अंगराया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तं महत्थं जाव[2] उवणेंति।

तत्पश्चात् वे अर्हन्नक आदि सांयात्रिक वणिक्, जहाँ राजमार्ग पर आवास था, वहाँ आये। आकर भाण्ड का व्यापार करने लगे। व्यापार करके उन्होंने प्रतिभाड (सौदे के बदले में दूसरा सौदा) खरीदा। खरीद कर उससे गाड़ी-गाड़े भरे। भरकर जहाँ गम्भीर पोतपट्टन था, वहाँ आये। आकर के पोतवहन सजाया—तैयार किया। तैयार करके उसमें सब भांड भरा। भरकर दक्षिण दिशा के अनुकूल वायु के कारण जहाँ चम्पा नगरी का पोतस्थान (बन्दरगाह) था, वहाँ आये। आकर पोत को रोककर गाड़ी गाड़े ठीक किये। ठीक करके गणिम, धरिम, मेय और परिच्छेद्य—चार प्रकार का भांड उनमें भरा। भरकर यावत् बहुमूल्य भेंट और दिव्य कुण्डलयुगल ग्रहण किया। ग्रहण करके जहाँ अंगराज चन्द्रच्छाय था, वहाँ आये। आकर वह बहुमूल्य भेंट राजा के सामने रखी।

७६—तए णं चंदच्छाए अंगराया तं दिव्वं महत्थं च कुंडलजुयलं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता ते अरहन्नगपामोक्खे एवं वयासी—'तुब्भे णं देवाणुप्पिया! बहूणि गामागर० जाव संनिवेसाइं आहिंडह, लवणसमुद्दं च अभिक्खणं अभिक्खणं पोयवहणेहिं ओगाहेह, तं अत्थियाइं भे केइ कहिंचि अच्छेरए दिट्ठपुव्वे?

तत्पश्चात् चन्द्रच्छाय अंगराज ने उस दिव्य एवं महामूल्यवान् कुण्डलयुगल (आदि) को स्वीकार किया। स्वीकार करके उन अर्हन्नक आदि से इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो! आप बहुत से ग्राम, आकर आदि में भ्रमण करते हो तथा बार-बार लवणसमुद्र में जहाज द्वारा प्रवेश करते हो तो आपने पहले किसी जगह कोई भी आश्चर्य देखा है?'

१-२ अ. ८ सू. ७२

७७—तए ण ते अरहन्नगपामोक्खा चंदच्छायं अंगरायं एवं वयासी—'एव खलु सामी ! अम्हे इहेव चपाए नयरीए अरहन्नगपामोक्खा बहवे सजत्तगा णावावाणियगा परिवसामो, तए ण अम्हे अन्नया कयाइ गणिम च धरिम च मेज्ज च परिच्छेज्ज च तहेव अहीणमतिरित्त जाव कु भगस्स रण्णो उवणेमो। तए ण से कु भए मल्लीए विदेहरायवरकन्नाए त दिव्व कु डलजुयल्ल पिणद्धेइ, पिणद्धित्ता पडिविसज्जेइ। त एस ण सामी ! अम्हेहिं कु भरायभवणसि मल्ली विदेहरायवरकन्ना अच्छेरए दिट्ठे त नो खलु अन्ना का वि तारिसिया देवकन्ना वा जाव [असुरकन्ना वा नागकन्ना वा जक्खकन्ना वा गधव्वकन्ना वा रायकन्ना वा] जारिसिया ण मल्ली विदेहरायवरकन्ना।

तब उन अर्हन्नक आदि वणिकों ने चन्द्रच्छाय नामक अङ्गदेश के राजा से इस प्रकार कहा—हे स्वामिन् ! हम अर्हन्नक आदि बहुत-से सांयात्रिक नौकावणिक् इसी चम्पानगरी मे निवास करते है। एक बार किसी समय हम गणिम, धरिम, मेय और परिच्छेद्य भांड भर कर—इत्यादि सब पहले की भांति ही न्यूनता-अधिकता के बिना कहना—यावत् कुम्भ राजा के पास पहुँचे और भेंट उसके सामने रखी। उस समय कुम्भ राजा ने मल्लीनामक विदेह राजा की श्रेष्ठ कन्या को वह दिव्य कु डलयुगल पहनाया। पहना कर उसे विदा कर दिया। तो हे स्वामिन् ! हमने कुम्भ राजा के भवन मे विदेह राजा की श्रेष्ठ कन्या मल्ली आश्चर्य रूप मे देखी है। मल्ली नामक विदेह राजा की श्रेष्ठ कन्या जैसी सुन्दर है, वैसी दूसरी कोई देवकन्या, असुरकन्या, नागकन्या, यक्षकन्या, गधर्वकन्या या राजकन्या नही है।

७८—तए ण चदच्छाए ते अरहन्नगपामोक्खे सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारित्ता, सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ। तए ण चदच्छाए वाणियगजणियहासे दूत सद्दावेइ, जाव[1] जइ वि य ण सा सय रज्जसुक्का। तए ण से दूते हट्ठे जाव पहारेत्थ गमणाए।

तत्पश्चात् चन्द्रच्छाय राजा ने अर्हन्नक आदि का सत्कार-सम्मान किया। सत्कार सम्मान करके विदा किया। तदनन्तर वणिकों के कथन से चन्द्रच्छाय को अत्यन्त हर्ष (अनुराग) हुआ। उसने दूत को बुलाकर कहा—इत्यादि कथन सब पहले के समान ही कहना—अर्थात् राजकुमारी मल्ली को मेरी पत्नी के रूप मे मगनी करो। भले ही वह कन्या मेरे सारे राज्य के मूल्य की हो, तो भी स्वीकार करना। दूत हर्षित होकर मल्ली कुमारी की मगनी के लिए चल दिया।

राजा रुक्मि

७९—तेण कालेण तेण समएण कुणाला नाम जणवए होत्था। तत्थ ण सावत्थी नामं नयरी होत्था। तत्थ ण रुप्पी कुणालाहिवई नाम राया होत्था। तस्स ण रुप्पिस्स धूया धारिणीए देवीए अत्तया सुबाहुनाम दारिया होत्था, सुकुमाल० रूवेण य जोव्वणेण लावण्णेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा जाया यावि होत्था। तीसे ण सुबाहूए दारियाए अन्नया चाउम्मासियमज्जणए जाए यावि होत्था।

उस काल और उस समय मे कुणाल नामक जनपद था। उस जनपद मे श्रावस्ती नामक नगरी थी। उसमे कुणाल देश का अधिपति रुक्मि नामक राजा था। रुक्मि राजा की पुत्री और धारिणी-देवी की कूँख से जन्मी सुबाहु नामक कन्या थी। उसके हाथ-पैर आदि सब अवयव सुन्दर थे। वय,

१ अ म ५०-५१

रूप, यौवन में और लावण्य में उत्कृष्ट थी और उत्कृष्ट शरीर वाली थी। उस सुबाहु बालिका का किसी समय चातुर्मासिक स्नान (जलक्रीडा) का उत्सव आया।

८०—तए णं से रुप्पी कुणालाहिवई सुबाहूए दारियाए चाउम्मासियमज्जणयं उवट्ठियं जाणइ, जाणित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'एवं खलु देवाणुप्पिया ! सुबाहूए दारियाए कल्लं चाउम्मासियमज्जणए भविस्सइ, तं कल्लं तुब्भे णं रायमग्गमोगाढंसि चउक्कंसि (पुप्फमंडवंसि) जलथलयदसद्धवण्णमल्लं साहरेह, जाव [एगं महं सिरिदामगंडं गंधद्धणिं मुयंतं उल्लोयंसि ओलएह। तेवि तहेव] ओलइंति।

तब कुणालाधिपति रुक्मिराजा ने सुबाहु बालिका के चातुर्मासिक स्नान का उत्सव आया जाना। जानकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो ! कल सुबाहु बालिका के चातुर्मासिक स्नान का उत्सव होगा। अतएव तुम राजमार्ग के मध्य में, चौक में (पुष्प-मण्डप में) जल और थल में उत्पन्न होने वाले पांच वर्णों के फूल लाओ और एक सुगंध छोड़ने वाला श्रीदामकाण्ड (सुशोभित मालाओं का समूह) छत में लटकाओ।' यह आज्ञा सुनकर उन कौटुम्बिक पुरुषों ने उसी प्रकार कार्य किया।

८१—तए णं रुप्पी कुणालाहिवई सुवन्नगारसेणिं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! रायमग्गमोगाढंसि पुप्फमंडवंसि णाणाविहपंचवण्णेहिं तंदुलेहिं णगरं आलिहह। तस्स बहुमज्झदेसभाए पट्टयं रएह।' रइत्ता जाव पच्चप्पिणंति।

तत्पश्चात् कुणाल देश के अधिपति रुक्मिराजा ने सुवर्णकारों की श्रेणी को बुलाया। उसे बुलाकर कहा—'हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही राजमार्ग के मध्य में, पुष्पमंडप में विविध प्रकार के पंचरंगे चावलों से नगर का आलेखन करो—नगर का चित्रण करो। उसके ठीक मध्य भाग में एक पाट (बाजौठ) रचो।' यह सुनकर उन्होंने इसी प्रकार कार्य करके आज्ञा वापस लौटाई।

८२—तए णं से रुप्पी कुणालाहिवई हत्थिखंधवरगए चाउरंगिणीए सेणाए महया भड-चडगर-रह-पहकरविंद-परिक्खित्ते अंतेउरपरियालसंपरिवुडे सुबाहुं दारियं पुरओ कट्टु जेणेव रायमग्गे, जेणेव पुप्फमंडवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थिखंधाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता पुप्फमंडवं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सन्निसन्ने।

तत्पश्चात् कुणालाधिपति रुक्मि हाथी के श्रेष्ठ स्कन्ध पर आरूढ हुआ। चतुरंगी सेना, बड़े-बड़े योद्धाओं और अन्तःपुर के परिवार आदि से परिवृत होकर सुबाहु कुमारी को आगे करके, जहाँ राजमार्ग था और जहाँ पुष्पमंडप था, वहाँ आया। आकर हाथी के स्कंध से नीचे उतरा। उतर कर पुष्पमंडप में प्रवेश किया। प्रवेश करके पूर्व दिशा की ओर मुख करके उत्तम सिंहासन पर आसीन हुआ।

८३—तओ णं ताओ अंतेउरियाओ सुबाहुं दारियं पट्टयंसि दुरुहेंति। दुरुहित्ता सेयपीयएहिं कलसेहिं ण्हाणेंति, ण्हाणित्ता सव्वालंकारविभूसियं करेंति, करित्ता पिउणो पायं वंदिउं उवणेंति।

तए णं सुबाहू दारिया जेणेव रुप्पी राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पायग्गहणं करेइ।

तए ण से रुप्पी राया सुबाहु दारिय अके निवेसेइ, निवेसित्ता सुबाहुए दारियाए रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य जायविम्हए वरिसधर सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'तुम ण देवाणुप्पिया ! मम दोच्चेण बहूणि गामागरनगर जाव सण्णिवेसाइ आहिंडसि, बहूण य राईसर जाव सत्थवाहपभिईण गिहाणि अणुपविससि, त अत्थियाइ से कस्सइ रण्णो वा ईसरस्स वा कहिंचि एयारिसए मज्जणए दिट्ठपुव्वे, जारिसए ण इमीसे सुबाहुदारियाए मज्जणए ?'

तत्पश्चात् अन्त पुर की स्त्रियों ने सुबाहु कुमारी को उस पाट पर बिठलाया। बिठला कर श्वेत और पीत अर्थात् चाँदी और सोने आदि के कलशो से उसे स्नान कराया। स्नान करा कर सब अलकारो से विभूषित किया। फिर पिता के चरणो मे प्रणाम करने के लिए लाईं।

तब सुबाहु कुमारी रुक्मि राजा के पास आई। आकर उसने पिता के चरणो का स्पर्श किया।

उस समय रुक्मि राजा ने सुबाहु कुमारी को अपनी गोद मे बिठा लिया। बिठा कर सुबाहु कुमारी के रूप, यौवन और लावण्य को देखने से उसे विस्मय हुआ। विस्मित होकर उसने वर्षधर को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय ! तुम मेरे दौत्य कार्य से बहुत-से ग्रामो, आकरो, नगरो यावत् सन्निवेशो मे भ्रमण करते हो और अनेक राजाओ, राजकुमारो यावत सार्थवाहो आदि के गृह मे प्रवेश करते हो, तो तुमने कही भी किसी राजा या ईश्वर (धनवान्) के यहा ऐसा मज्जनक (स्नान महोत्सव) पहले देखा है, जैसा इस सुबाहु कुमारी का मज्जन-महोत्सव है ?'

८४—तए ण से वरिसधरे रुप्पि करयलपरिग्गहिय सिरसावत्त मत्थए अजलि कट्टु एव वयासी—एव खलु सामी ! अह अन्नया तुब्भे ण दोच्चेण मिहिल गए, तत्थ ण मए कु भगस्स रण्णो धूयाए, पभावईए देवीए अत्तयाए मल्लीए विदेहरायवरकन्नयाए मज्जणए दिट्ठे, तस्स ण मज्जणगस्स इमे सुबाहूए दारियाए मज्जणए सयसहस्सइम पि कल न अग्घेइ।

तत्पश्चात् वर्षधर (अन्त पुर के रक्षक षढ-विशेष) ने रुक्मि राजा से हाथ जोड कर मस्तक पर हाथ घुमाकर अजलिबद्ध होकर इस प्रकार कहा—'हे स्वामिन् ! एक बार मैं आपके दूत के रूप मे मिथिला गया था। मैंने वहाँ कु भ राजा की पुत्री और प्रभावती देवी की आत्मजा विदेहराज की उत्तम कन्या मल्ली का स्नान-महोत्सव देखा था। सुबाहु कुमारी का यह मज्जन-उत्सव उस मज्जनमहोत्सव के लाखवें अश को भी नही पा सकता।

८५—तए ण से रुप्पी राया वरिसधरस्स अतिए एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म सेस तहेव मज्जण गजणियहासे दूत सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एव वयासी—जेणेव महिला नयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तत्पश्चात् वर्षधर से यह बात सुनकर और हृदय मे धारण करके, मज्जन-महोत्सव का वृत्तात सुनने से जनित हर्ष (अनुराग) वाले रुक्मि राजा ने दूत को बुलाया। शेष सब वृत्तात पहले के समान समझना। दूत को बुलाकर इस प्रकार कहा—(मिथिला नगरी मे जाकर मेरे लिए मल्ली कुमारी की मगनी करो। बदले मे सारा राज्य देना पडे तो उसे भी देना स्वीकार करना, आदि) यह सुनकर दूत मिथिला नगरी जाने को रवाना हो गया।

काशीराज शंख

८६—तेण कालेण तेण समएण कासी नामं जणवए होत्था। तत्थ णं वाणारसी नामं नयरी होत्था। तत्थ णं संखे नामं राया कासीराया होत्था।

उस काल और उस समय में काशी नामक जनपद था। उस जनपद में वाणारसी नामक नगरी थी। उसमें काशीराज शंख नामक राजा था।

८७—तए णं तीसे मल्लीए विदेहरायवरकन्नगाए अन्नया कयाइ तस्स दिव्वस्स कुंडल-जुयलस्स संधी विसंघडिए यावि होत्था।

तए णं कुंभए राया सुवन्नगारसेणिं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'तुब्भे णं देवाणुप्पिया! इमस्स दिव्वस्स कुंडलजुयलस्स संधिं संघाडेह।'

एक बार किसी समय विदेहराज की उत्तम कन्या मल्ली के उस दिव्य कुण्डल युगल का जोड़ खुल गया। तब कुम्भ राजा ने सुवर्णकार की श्रेणी को बुलाया और कहा—'देवानुप्रियो! इस दिव्य कुण्डलयुगल के जोड़ को साध दो।'

८८—तए णं सा सुवण्णगारसेणी एयमट्ठं तहत्ति पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता तं दिव्वं कुंडल-जुयलं गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव सुवण्णगारभिसियाओ तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुवण्णगार-भिसियासु णिवेसेइ, णिवेसित्ता बहूहिं आएहि य जाव [उवाएहि य उप्पत्तियाहि य वेणइयाहि य कम्मियाहि य पारिणामियाहि य बुद्धीहिं] परिणामेमाणा इच्छंति तस्स दिव्वस्स कुंडलजुयलस्स संधिं घडित्तए, नो चेव णं संचाएंति संघडित्तए।

तत्पश्चात् सुवर्णकार की श्रेणी ने 'तथा-ठीक है', इस प्रकार कह कर इस अर्थ को स्वीकार किया। स्वीकार करके उस दिव्य कुण्डलयुगल को ग्रहण किया। ग्रहण करके जहाँ सुवर्णकारों के स्थान (औजार रखने के स्थान) थे, वहाँ आये। आकर के उन स्थानों पर कुण्डलयुगल रखा। रख कर बहुत-से [उपायों से, उपायों से, औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कार्मिकी एवं पारिणामिकी बुद्धियों से] उस कुण्डलयुगल को परिणत करते हुए उसका जोड़ साँधना चाहा, परन्तु साँधने में समर्थ न हो सके।

८९—तए णं सा सुवन्नगारसेणी जेणेव कुंभए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल० जाव वद्धावेत्ता एवं वयासी—'एवं खलु सामी! अज्ज तुब्भे अम्हे सद्दावेह। सद्दावेत्ता जाव संधिं संघाडेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह। तए णं अम्हे तं दिव्वं कुंडलजुयलं गेण्हामो। जेणेव सुवन्नगार-भिसियाओ जाव नो संचाएमो संघाडित्तए। तए णं अम्हे सामी! एयस्स दिव्वस्स कुंडलस्स अन्नं सरिसयं कुंडलजुयलं घडेमो।'

तत्पश्चात् वह सुवर्णकार श्रेणी, कुम्भ राजा के पास आई। आकर दोनों हाथ जोड़ कर और जय विजय शब्दों से बधा कर इस प्रकार निवेदन किया—'स्वामिन्! आज आपने हम लोगों को बुलाया था। बुला कर यह आदेश दिया था कि कुण्डलयुगल की सन्धि जोड़ कर मेरी आज्ञा वापिस लौटाओ। तब हमने वह दिव्य कुण्डलयुगल लिया। हम अपने स्थानों पर गये, बहुत उपाय

किये, परन्तु उस संधि को जोडने के लिए शक्तिमान् न हो सके। अतएव (आपकी आज्ञा हो तो) हे स्वामिन्! हम दिव्य कुण्डलयुगल सरीखा दूसरा कुण्डलयुगल बना दें।'

९०—तए ण मे कुभए राया तीसे सुवण्णगारसेणीए अतिए एयमट्ठ सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते तिवलिय भिउडिं निडाले साहट्टु एव वयासी—

'केस ण तुब्भे कलायण भवइ? जे ण तुब्भे इमस्स कुडलजुयलस्स नो सचाएह सधि सघाडेत्तए?' ते सुवण्णगारे निव्विसए आणवेइ।

सुवणकारो का कथन सुन कर और हृदयगम करके कुम्भ राजा क्रुद्ध हो गया। ललाट पर तीन सलवट डाल कर इस प्रकार कहने लगा—'अरे! तुम कैसे सुनार हो जो इस कुण्डलयुगल का जोड भी साध नही सकते? अर्थात् तुम लोग वडे मूख हो। एसा कहकर उन्हे देशनिर्वासन की आज्ञा दे दी।

९१—तए ण ते सुवण्णगारा कुभेण रण्णा निव्विसया आणत्ता समाणा जेणेव साइ साइ गिहाइ तेणव उवागच्छति, उवागच्छित्ता सभडमत्तोवगरणमायाए मिहिलाए रायहाणीए मज्झमज्झेण निक्खमति। निक्खमित्ता विदेहस्स जणवयस्स मज्झमज्झेण जेणेव कासी जणवए, जेणेव वाणारसी नयरी तेणेव उवागच्छति। उवागच्छित्ता अग्गुज्जाणसि सगडीसागड मोएति, मोइत्ता महत्थ जाव पाहुड गेण्हति, गेण्हित्ता वाणारसीए नयरीए मज्झमज्झेण जेणेव सखे कासीराया तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता करयल० जाव वद्धावेंति, वद्धावित्ता पाहुड पुरओ ठावेंति, ठावित्ता सखराय एव वयासी—

तत्पश्चात् कुम्भ राजा द्वारा देशनिर्वासन की आज्ञा पाये हुए वे सुवर्णकार अपने-अपने घर आये। आकर अपने भाड, पात्र और उपकरण आदि लेकर मिथिला नगरी के बीचोबीच होकर निकले। निकल कर विदेह जनपद के मध्य मे होकर जहाँ काशी जनपद था और जहाँ वाणारसी नगरी थी, वहाँ आये। वहाँ आकर अग्र (उत्तम) उद्यान मे गाडी-गाडे छोडे। छोड कर महान् अर्थ वाले राजा के योग्य बहुमूल्य उपहार लेकर, वाणारसी नगरी के बीचोबीच होकर जहाँ काशीराज शख था वहा आये। आकर दोनो हाथ जोड कर यावत जय-विजय शब्दो से वधाया। वधाकर वह उपहार राजा के सामने रखा। रख कर शख राजा से इस प्रकार निवेदन किया—

९२—'अम्हे ण सामी! मिहिलाओ नयरीओ कुभएण रण्णा निव्विसया आणत्ता समाणा इह हव्वमागया, त इच्छामो ण सामी! तुब्भ बाहुच्छायापरिग्गहिया निब्भया निरुव्विग्गा सुह सुहेण परिवसिउ।'

तए ण सखे कासीराया ते सुवण्णगारे एव वयासी—'कि ण तुब्भे देवाणुप्पिया! कुभएण रण्णा निव्विसया आणत्ता?'

तए ण ते सुवण्णगारा सख एव वयासी—'एव खलु सामी! कुभगस्स रण्णो धूयाए पभावईए देवीए अत्तयाए मल्लीए कुडलजुयलस्स सधी विसघडिए। तए ण से कुभए सुवण्णगारसेणिं सद्दावेइ, सद्दावित्ता जाव निव्विसया आणत्ता।'

'हे स्वामिन् ! राजा कुम्भ के द्वारा मिथिला नगरी से निर्वासित हुए हम सीधे यहाँ आये हैं। हे स्वामिन् ! हम आपकी भुजाओं की छाया ग्रहण किये हुए अर्थात् आपके संरक्षण में रह कर निर्भय और उद्वेगरहित होकर सुख शान्तिपूर्वक निवास करना चाहते हैं।'

तब काशीराज शंख ने उन सुवर्णकारों से कहा—'देवानुप्रियो ! कुम्भ राजा ने तुम्हें देश-निकाले की आज्ञा क्यों दी ?'

तब सुवर्णकारों ने शंख राजा से इस प्रकार कहा—'स्वामिन् ! कुम्भ राजा की पुत्री और प्रभावती देवी की आत्मजा मल्ली कुमारी के कुण्डलयुगल का जोड़ खुल गया था। तब कुम्भ राजा ने सुवर्णकारों की श्रेणी को बुलाया। बुलाकर यावत् (उसे साधने के लिए कहा। हम उसे अनेक उपाय करके भी साध नहीं सके, अतः) देशनिर्वासन की आज्ञा दे दी।'

९३—तए णं से संखे सुवन्नगारे एवं वयासी—'केरिसिया णं देवाणुप्पिया ! कुंभगस्स धूया पभावईए देवीए अत्तया मल्ली विदेहरायवरकन्ना ?'

तए णं ते सुवण्णगारा संखरायं एवं वयासी—'णो खलु सामी ! अन्ना काई तारिसिया देवकन्ना वा जाव [असुरकन्ना वा नागकन्ना वा जक्खकन्ना वा गंधव्वकन्ना वा रायकन्ना वा] जारिसिया णं मल्ली विदेहरायवरकन्ना।'

तए णं कुंडलजुयलजणियहासे दूतं सद्दावेइ, जाव तहेव पहारेत्थ गमणाए।

तत्पश्चात् शंख राजा ने सुवर्णकारों से कहा—'देवानुप्रियो ! कुम्भ राजा की पुत्री और प्रभावती की आत्मजा विदेहराज की श्रेष्ठ कन्या मल्ली कैसी है ?'

तब सुवर्णकारों ने शंखराजा से कहा—'स्वामिन् ! जैसी विदेहराज की श्रेष्ठ कन्या मल्ली है, वैसी कोई देवकन्या अथवा असुरकन्या, नागकन्या, यक्षकन्या, गंधर्वकन्या भी नहीं है, कोई राजकुमारी भी नहीं है।'

तत्पश्चात् कुण्डल की जोड़ी से जनित हर्ष वाले शंख राजा ने दूत को बुलाया, इत्यादि सब वृत्तान्त पूर्ववत् जानना अर्थात् शंख राजा ने भी मल्ली कुमारी की मँगनी के लिए दूत भेज दिया और उसे कह दिया कि मल्ली कुमारी के शुल्क रूप में सारा राज्य देना पड़े तो दे देना। दूत मिथिला जाने को रवाना हो गया।

राजा अदीनशत्रु

९४—तेणं कालेणं तेणं समएणं कुरुजणवए होत्था, हत्थिणाउरे नयरे, अदीणसत्तू नामं राया होत्था, जाव [रज्जं पसासेमाणे] विहरइ।

उस काल और उस समय में कुरु नामक जनपद था। उसमें हस्तिनापुर नगर था। अदीनशत्रु नामक वहाँ राजा था। यावत् वह (राज्यशासन करता सुखपूर्वक) विचरता था।

९५—तत्थ णं मिहिलाए कुंभगस्स पुत्ते पभावईए अत्तए मल्लीए अणुजायए मल्लदिन्नए नामं कुमारे जाव[1] जुवराया यावि होत्था।

१ औ. सूत्र १४३

तए ण मल्लदिन्ने कुमारे अन्नया कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'गच्छह ण तुब्भे मम पमदवणसि एग मह चित्तसभ करेह अणेगखभसयसण्णिविट्ठ, एयमाणत्तिय पच्चप्पिणह ते वि तहेव पच्चप्पिणंति ।

उस मिथिला नगरी मे कुम्भ राजा का पुत्र, प्रभावती महारानी का आत्मज और मल्ली कुमारी का अनुज मल्लदिन्न नामक कुमार था । वह युवराज था ।

किसी समय एक वार मल्लदिन्न कुमार ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया । बुलाकर इस प्रकार कहा—'तुम जाओ और मेरे प्रमदवन (घर के उद्यान) मे एक बडी चित्रसभा का निर्माण करो, जो सैकडो स्तम्भो स युक्त हो, इत्यादि ।' यावत् उन्होने ऐसा ही करके, चित्रसभा का निर्माण करके आज्ञा वापिस लौटा दी ।

९६—तए ण मल्लदिन्ने कुमारे चित्तगरसेणि सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'तुब्भे ण देवाणुप्पिया ! चित्तसभ हाव भाव-विलास-विब्बोय कलिएहिं रूवेहिं चित्तेह । चित्तित्ता जाव पच्चप्पिणह ।

तए ण सा चित्तगरसेणी तह त्ति पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता जेणेव सयाइ गिहाइ, तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता तूलियाओ वन्नए य गेण्हति, गेण्हित्ता जेणेव चित्तसभा तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता अणुपविसति, अणुपविसित्ता भूमिभागे विरचति (विहिवति), विरचित्ता (विहिवित्ता) भूमि सज्जति, सज्जित्ता चित्तसभ हावभाव जाव चित्तेउ पयत्ता यावि होत्था ।

तत्पश्चात् मल्लदिन्न कुमार ने चित्रकारो की श्रेणी को बुलाया । बुलाकर इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो ! तुम लोग चित्रसभा को हाव, भाव, विलास और विब्बोक से युक्त रूपो से (चित्रो से) चित्रित करो । चित्रित करके यावत् मेरी आज्ञा वापिस लौटाओ ।'

तत्पश्चात् चित्रकारो की श्रेणी ने 'तथा—वहुत ठीक' इस प्रकार कह कर कुमार की आज्ञा शिरोधाय की । फिर वे अपने-अपने घर गये । घर जाकर उन्होने तूलिकाएँ ली और रग लिए । लेकर जहाँ चित्रसभा थी वहा आए । आकर चित्रसभा मे प्रवेश किया । प्रवेश करके भूमि के भागो का विभाजन किया । विभाजन करके अपनी अपनी भूमि को सज्जित किया—तैयार किया—चित्रो के योग्य वनाया । सज्जित करके चित्रसभा मे हाव-भाव आदि से युक्त चित्र अकित करने मे लग गये ।

विवेचन—हाव-भाव आदि साधारणतया स्त्रियो की चेष्टाओ को कहते है । उनका परस्पर अन्तर यह है—हाव अर्थात् मुख का विकार, भाव अर्थात् चित्त का विकार, विलास अर्थात नेत्र का विकार और विब्बोक अर्थात् इष्ट अथ की प्राप्ति से उत्पन्न होने वाला अभिमान का भाव । युवराज मल्लदिन्न ने इन सभी शृ गार रस के भावो को चित्रित करने का आदेश दिया ।

९७—तए ण एगस्स चित्तगरस्स इमेयारूवे चित्तगरलद्धी लद्धा पत्ता अभिसमन्नागया—जस्स ण दुपयस्स वा चउपयस्स वा अपयस्स वा एगदेसमवि पासइ, तस्स ण तयाणुसारेण तयाणुरूव रूव निव्वत्तेइ ।

उन चित्रकारो मे से एक चित्रकार की ऐसी चित्रकारलब्धि (असाधारण योग्यता) लब्ध

थी, प्राप्त थी और बार-बार उपयोग में आ चुकी थी कि वह जिस किसी द्विपद (मनुष्यादि), चतुष्पद (गाय, अश्व आदि) और अपद (वृक्ष, भवन आदि) का एक अवयव भी देख ले तो उस अवयव के अनुसार उसका पूरा चित्र बना सकता था।

९८—तए णं से चित्तगरदारए मल्लीए जवणियंतरियाए जालंतरेण पायंगुट्ठं पासइ।

तए णं तस्स चित्तगरस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था सेयं खलु मम मल्लीए वि पायंगुट्ठाणुसारेणं सरिसगं जाव गुणोववेयं रूवं निव्वत्तित्तए, एवं संपेहेइ, संपेहित्ता भूमिभागं सज्जेइ, सज्जित्ता मल्लीए वि पायंगुट्ठाणुसारेणं जाव निव्वत्तेइ।

उस समय एक बार उस लब्धि-सम्पन्न चित्रकारदारक ने यवनिका- पर्दे की ओट में रही हुई मल्ली कुमारी के पैर का अंगूठा जाली (छिद्र) में से देखा—

तत्पश्चात् उस चित्रकारदारक को ऐसा विचार उत्पन्न हुआ, यावत् मल्ली कुमारी के पैर के अंगूठे के अनुसार उसका हूबहू यावत् गुणयुक्त—सुन्दर पूरा चित्र बनाना चाहिए। उसने ऐसा विचार किया। विचार करके भूमि के हिस्से को ठीक किया। ठीक करके मल्ली के पैर के अंगूठे का अनुसरण करके यावत् उसका पूर्ण चित्र बना दिया।

९९—तए णं सा चित्तगरसेणी चित्तसभं हाव भाव विलास विब्बोय कलिएहिं रूवेहिं चित्तेइ, चित्तित्ता जेणेव मल्लदिन्ने कुमारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जाव एयमाणत्तियं पच्चप्पिणति।

तए णं मल्लदिन्ने चित्तगरसेणिं, सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता विपुलं जीवियारिहं पीइदाणं दलेइ, दलइत्ता पडिविसज्जेइ।

तत्पश्चात् चित्रकारों की उस मण्डली (जाति) ने चित्रसभा को यावत् हाव, भाव, विलास और विब्बोक से चित्रित किया। चित्रित करके जहाँ मल्लदिन्न कुमार था, वहाँ गई। जाकर यावत् कुमार की आज्ञा वापिस लौटाई—आज्ञानुसार कार्य हो जाने की सूचना दी।

तत्पश्चात् मल्लदिन्न कुमार ने चित्रकारों की मण्डली का सत्कार किया, सम्मान किया, सत्कार-सम्मान करके जीविका के योग्य विपुल प्रीतिदान दिया। दे करके विदा कर दिया।

१००—तए णं मल्लदिन्ने कुमारे अन्नया ण्हाए अंतेउरपरियालसंपरिवुडे अम्मधाईए सद्धिं जेणेव चित्तसभा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चित्तसभं अणुपविसइ। अणुपविसित्ता हाव भाव-विलास बिब्बोय कलियाइं रूवाइं पासमाणे पासमाणे जेणेव मल्लीए विदेहवररायकन्नाए तयाणुरूवे रूवे निव्वत्तिए तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तए णं से मल्लदिन्ने कुमारे मल्लीए विदेहवररायकन्नाए तयाणुरूवं रूवं निव्वत्तियं पासइ, पासित्ता इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—'एस णं मल्ली विदेहवररायकन्न' त्ति कट्टु लज्जिए वीडिए विअड्डे सणियं सणियं पच्चोसक्कइ।

तत्पश्चात् किसी समय मल्लदिन्न कुमार स्नान करके, वस्त्राभूषण धारण करके अन्तःपुर एवं परिवार सहित, धायमाता को साथ लेकर, जहाँ चित्रसभा थी, वहाँ आया। आकर चित्रसभा

के भीतर प्रवेश किया। प्रवेश करके हाव, भाव, विलास और विब्बोक से युक्त रूपों (चित्रों) को देखता-देखता जहाँ विदेह की श्रेष्ठ राजकन्या मल्ली का उसी के अनुरूप चित्र बना था, उसी ओर जाने लगा।

उस समय मल्लदिन्न कुमार ने विदेह की उत्तम राजकुमारी मल्ली का, उसके अनुरूप बना हुआ चित्र देखा। देख कर उसे इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ--'अरे, यह तो विदेहवर-राजकन्या मल्ली है!' यह विचार आते ही वह लज्जित हो गया, व्रीडित हो गया और व्यर्दित हो गया, अर्थात् उसे अत्यन्त लज्जा उत्पन्न हुई। अतएव वह धीरे-धीरे वहाँ से हट गया—पीछे लौट गया।

१०१—तए ण मल्लदिन्नं अम्मधाई पच्चोसक्कंत पासित्ता एव वयासी—'कि ण तुम पुत्ता! लज्जिए वीडिए विअड्डे सणिय सणिय पच्चोसक्कइ?

तए ण से मल्लदिन्ने अम्मधाइ एव वयासी—'जुत्त ण अम्मो! मम जेट्ठाए भगिणीए गुरुदेवभूयाए लज्जणिज्जाए मम चित्तगरणिव्वत्तिय सभ अणुपविसित्तए?

तत्पश्चात् हटते हुए मल्लदिन्न को देख कर धाय माता ने कहा—'हे पुत्र! तुम लज्जित, व्रीडित और व्यर्दित होकर धीरे-धीरे हट क्यों रहे हो?'

तब मल्लदिन्न ने धाय माता से इस प्रकार कहा—'माता! मेरी गुरु और देवता के समान ज्येष्ठ भगिनी के, जिससे मुझे लज्जित होना चाहिए, सामने, चित्रकारों की बनाई इस सभा में प्रवेश करना क्या योग्य है?'

१०२—तए ण अम्मधाई मल्लदिन्ने कुमारे एव वयासी—'नो खलु पुत्ता! एस मल्ली विदेहवररायकन्ना चित्तगरएण तयाणुरूवे रूवे निव्वत्तिए।

तए ण मल्लदिन्ने कुमारे अम्मधाईए एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म आसुरुत्ते एव वयासी—'केस ण भो! चित्तयरए अप्पत्थियपत्थिए जाव [दुरतपतलक्खणे हीणपुण्ण चाउद्दसीए सिरि हिरि धिइ कित्ति] परिवज्जिए जेण मम जेट्ठाए भगिणीए गुरुदेवभूयाए जाव निव्वत्तिए? त्ति कट्टु त चित्तगर वज्झ आणवेइ।

धाय माता ने मल्लदिन्न कुमार से इस प्रकार कहा—'हे पुत्र! निश्चय ही यह साक्षात् विदेह की उत्तम कुमारी मल्ली नहीं है किन्तु चित्रकार ने उसके अनुरूप (हूबहू) चित्रित की है—उसका चित्र बनाया है।

तब मल्लदिन्न कुमार धाय माता के इस कथन को सुन कर और हृदय में धारण करके एकदम क्रुद्ध हो उठा और बोला—'कौन है वह चित्रकार मौत की इच्छा करने वाला, यावत् [कुलक्षणी, हीन काली चतुर्दशी का जन्मा एव लज्जा बुद्धि आदि से रहित] जिसने गुरु और देवता के समान मेरी ज्येष्ठ भगिनी का यावत् यह चित्र बनाया है? इस प्रकार कह कर उसने चित्रकार का वध करने की आज्ञा दे दी।

१०३—तए ण सा चित्तगरसेणी इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणा जेणेव मल्लदिन्ने कुमारे तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहिय जाव वद्धावेइ, वद्धावित्ता एव वयासी—

'एव खलु सामी! तस्स चित्तगरस्स इमेयारूवा चित्तगरलद्धी लद्धा पत्ता०

जस्स ण दुपयस्स वा जाव' णिव्वत्तेति, तं मा णं सामी ! तुब्भे तं चित्तगरं वज्झं आणवेह। तं तुब्भे णं सामी ! तस्स चित्तगरस्स अन्नं तयाणुरूवं दंडं निव्वत्तेह ।'

तत्पश्चात् चित्रकारों की वह श्रेणी इस कथा-वृत्तान्त को सुनकर और समझ कर जहाँ मल्लदिन्न कुमार था, वहाँ आई । आकर दोनों हाथ जोड़ कर यावत् मस्तक पर अंजलि करके कुमार को वधाया । वधा कर इस प्रकार कहा—

'स्वामिन् ! निश्चय ही उस चित्रकार को इस प्रकार की चित्रकारलब्धि लब्ध हुई, प्राप्त हुई और अभ्यास में आई है कि वह किसी द्विपद आदि के एक अवयव को देखता है, यावत् वह उसका वैसा ही पूरा रूप बना देता है। अतएव हे स्वामिन् ! आप उस चित्रकार के वध की आज्ञा मत दीजिए। हे स्वामिन् ! आप उस चित्रकार को कोई दूसरा योग्य दंड दे दीजिए।'

१०४—तए णं से मल्लदिन्ने तस्स चित्तगरस्स संडासगं छिंदावेइ, निव्विसयं आणवेइ। से तए णं चित्तगरए मल्लदिन्नेणं निव्विसए आणत्ते समाणे सभंडमत्तोवगरणमायाए मिहिलाओ नयरीओ णिक्खमइ, णिक्खमित्ता विदेहं जणवयं मज्झंमज्झेणं जेणेव हत्थिणाउरे नयरे, जेणेव कुरुजणवए, जेणेव अदीणसत्तू राया, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भंडणिक्खेवं करेइ, करित्ता चित्तफलगं सज्जेइ, सज्जित्ता मल्लीए विदेहरायवरकन्नगाए पायंगुट्ठाणुसारेणं रूवं णिव्वत्तेइ, णिव्वत्तित्ता कक्खंतरंसि छुब्भइ, छुब्भइत्ता महत्थं जाव पाहुडं गेण्हइ, गेण्हित्ता हत्थिणापुरं नयरं मज्झंमज्झेणं जेणेव अदीणसत्तू राया तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता तं करयल जाव वद्धावेइ, वद्धावित्ता पाहुडं उवणेइ, उवणित्ता 'एवं खलु अहं सामी ! मिहिलाओ रायहाणीओ कुंभगस्स रण्णो पुत्तेणं पभावईए देवीए अत्तएणं मल्लदिन्नेणं कुमारेणं निव्विसए आणत्ते समाणे इह हव्वमागए, तं इच्छामि णं सामी ! तुब्भं बाहुच्छायापरिग्गहिए जाव परिवसित्तए।'

तत्पश्चात् मल्लदिन्न ने (चित्रकारों की प्रार्थना स्वीकार करके) उस चित्रकार के संडासक (दाहिने हाथ का अंगूठा और उसके पास की अंगुली) का छेदन करवा दिया और उसे देश निर्वासन की आज्ञा दे दी।

तब मल्लदिन्न के द्वारा देश-निर्वासन की आज्ञा पाया हुआ वह चित्रकार अपने भांड, पात्र और उपकरण आदि लेकर मिथिला नगरी से निकला। निकल कर वह विदेह जनपद के मध्य में होकर जहाँ हस्तिनापुर नगर था, जहाँ कुरु नामक जनपद था और जहाँ अदीनशत्रु नामक राजा था, वहाँ आया। आकर उसने अपना भांड (सामान) आदि रखा। रख कर चित्रफलक ठीक किया। ठीक करके विदेह की श्रेष्ठ राजकुमारी मल्ली के पैर के अंगूठे के आधार पर उसका समग्र रूप चित्रित किया। चित्रित करके वह चित्रफलक (जिस पर चित्र बना था वह पट) अपनी कांख में दबा लिया। फिर महार्थ यावत् बहुमूल्य राजा के योग्य बहुमूल्य उपहार ग्रहण किया। ग्रहण करके हस्तिनापुर नगर के मध्य में होकर अदीनशत्रु राजा के पास आया। आकर उसने हाथ जोड़ कर उसे वधाया और उपहार उसके सामने रख दिया। फिर चित्रकार ने कहा—'स्वामिन् ! मिथिला राजधानी में कुंभ राजा के पुत्र और प्रभावती देवी के आत्मज मल्लदिन्न कुमार ने मुझे देश-निकाले

१ अ० ८ सूत्र ९९

ी आज्ञा दी, इस कारण में सीधा यहाँ आया हूँ। हे स्वामिन्! आपकी बाहुओं की छाया से रिगृहीत होकर यावत् मैं यहाँ बसना चाहता हूँ।'

१०५—तए ण से अदीनसत्तू राया त चित्तगरदारय एव वयासी—'किं ण तुम देवाणुप्पिया! ल्लदिन्नेण निव्विसए आणत्ते ?'

तत्पश्चात् अदीनशत्रु राजा ने चित्रकारपुत्र से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय! मल्लदिन्न कुमार ने तुम्हे किस कारण देश-निर्वासन की आज्ञा दी ?'

१०६—तए ण से चित्तयरदारए अदीणसत्तुराय एव वयासी—'एव खलु सामी! मल्लदिन्ने कुमारे अण्णया कयाइ चित्तगरसेणिं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'तुब्भे ण देवाणुप्पिया! मम चित्तसभ' त चेव सव्व भाणियव्व, जाव मम सडासग छिंदावेइ, छिंदावित्ता निव्विसय आणवेइ, त एव खलु सामी! मल्लदिन्नेण कुमारेण निव्विसए आणत्ते।'

तत्पश्चात् चित्रकारपुत्र ने अदीनशत्रु राजा से कहा—हे स्वामिन्! मल्लदिन्न कुमार ने एक बार किसी समय चित्रकारो की श्रेणी को बुला कर इस प्रकार कहा था—'हे देवानुप्रियो! तुम मेरी चित्रसभा को चित्रित करो,' इत्यादि सब वृत्तान्त पूर्ववत् कहना चाहिए, यावत् कुमार ने मेरा सडासक कटवा लिया। कटवा कर देश-निर्वासन की आज्ञा दे दी। इस प्रकार हे स्वामिन्! मल्लदिन्न कुमार ने मुझे देश-निर्वासन की आज्ञा दी है।'

१०७—तए ण अदीणसत्तू राया त चित्तगर एव वयासी—से केरिसए ण देवाणुप्पिया! तुमे मल्लीए तदाणुरूवे रूवे निव्वतिए ?'

तए ण से चित्तगरे कक्खतराओ चित्तफलय णीणेइ, णीणित्ता अदीणसत्तुस्स उवणित्ता एव वयासी—'एस ण सामी! मल्लीए विदेहरायवरकन्नाए तयाणुरूवस्स रूवस्स केइ आगार भाव पडोयारे निव्वत्तिए, णो खलु सक्का केणइ देवेण वा जाव [दाणवेण वा जक्खेण वा रक्खसेण वा किन्नरेण वा किंपुरिसेण वा महोरगेण वा गधव्वेण वा] मल्लीए विदेहरायवरकन्नगाए तयाणुरूवे रूवे निव्वत्तित्तए।'

तत्पश्चात् अदीनशत्रु राजा ने उस चित्रकार से इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय! तुमने मल्ली कुमारी का उसके अनुरूप चित्र कैसा बनाया था ?

तब चित्रकार ने अपनी काँख मे से चित्रफलक निकाला। निकाल कर अदीनशत्रु राजा के पास रख दिया और रख कर कहा—'हे स्वामिन्! विदेहराज की श्रेष्ठ कन्या मल्ली का उसी के अनुरूप यह चित्र मैंने कुछ आकार, भाव और प्रतिबिम्ब के रूप मे चित्रित किया है। विदेहराज की श्रेष्ठ कुमारी मल्ली का हूबहू रूप तो कोई देव, [यक्ष, राक्षस, किन्नर, किम्पुरुष, महोरग तथा गधर्व] भी चित्रित नही कर सकता।

१०८—तए ण अदीणसत्तू राया पडिरूवजणियहासे दूय सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—तहेव जाव पहारेत्थ गमणाए।

जस्स ण दुपयस्स वा जाव' णिव्वत्तेति, त मा ण सामी ! तुब्भे त चित्तगर वज्झ आणवेह। त तुब्भे ण सामी ! तस्स चित्तगरस्स अन्न तयाणुरूव दड निव्वत्तेह।'

तत्पश्चात् चित्रकारो की वह श्रेणी इस कथा-वृत्तान्त को सुनकर और समझ कर जहाँ मल्लदिन्न कुमार था, वहाँ आई। आकर दोनो हाथ जोड कर यावत् मस्तक पर अजलि करके कुमार को बधाया। बधा कर इस प्रकार कहा—

'स्वामिन ! निश्चय ही उस चित्रकार को इस प्रकार की चित्रकारलब्धि लब्ध हुई, प्राप्त हुई और अभ्यास मे आई है कि वह किसी द्विपद आदि के एक अवयव को देखता है, यावत् वह उसका वैसा ही पूरा रूप बना देता है। अतएव हे स्वामिन् ! आप उस चित्रकार के वध की आज्ञा मत दीजिए। हे स्वामिन् ! आप उस चित्रकार को कोई दूसरा योग्य दड दे दीजिए।'

१०४—तए ण से मल्लदिन्ने तस्स चित्तगरस्स सडासग छिंदावेइ, निव्विसय आणवेइ। से तए ण चित्तगरए मल्लदिन्नेण निव्विसए आणत्ते समाणे सभडमत्तोवगरणमायाए मिहिलाओ नयरीओ णिक्खमइ, णिक्खमित्ता विदेह जणवय मज्झमज्झेण जेणेव हत्थिणाउरे नयरे, जेणेव कुरुजणवए, जेणेव अदीणसत्तू राया, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भडनिक्खेव करेइ, करित्ता चित्तफलग सज्जेइ, सज्जित्ता मल्लीए विदेहरायवरकन्नगाए पायगुट्ठाणुसारेण रूव णिव्वत्तेइ, णिव्वत्तित्ता कक्खतरसि छुब्भइ, छुब्भइत्ता महत्थ जाव पाहुड गेण्हइ, गेण्हित्ता हत्थिणापुर नयर मज्झमज्झेण जेणेव अदीणसत्तू राया तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता त करयल जाव वद्धावेइ, वद्धावित्ता पाहुड उवणेइ, उवणित्ता 'एव खलु अह सामी ! मिहिलाओ रायहाणीओ कु भगस्स रण्णो पुत्तेण पभावईए देवीए अत्तएण मल्ल दिन्नेण कुमारेण निव्विसए आणत्ते समाणे इह हव्वमागए, त इच्छामि ण सामी ! तुब्भ बाहुच्छाया परिग्गहिए जाव परिवसित्तए।'

तत्पश्चात् मल्लदिन्न ने (चित्रकारो की प्रार्थना स्वीकार करके) उस चित्रकार के सडासक (दाहिने हाथ का अगूठा और उसके पास की अगुली)का छेदन करवा दिया और उसे देश निर्वासन की आज्ञा दे दी।

तब मल्लदिन्न के द्वारा देश-निर्वासन की आज्ञा पाया हुआ वह चित्रकार अपने भाड, पात्र और उपकरण आदि लेकर मिथिला नगरी से निकला। निकल कर वह विदेह जनपद के मध्य मे, होकर जहाँ हस्तिनापुर नगर था, जहाँ कुरुनामक जनपद था और जहाँ अदीनशत्रु नामक राजा था, वहाँ आया। आकर उसने अपना भाड (सामान) आदि रखा। रख कर चित्रफलक ठीक किया। ठीक करके विदेह की श्रेष्ठ राजकुमारी मल्ली के पैर के अगूठे के आधार पर उसका समग्र रूप चित्रित किया। चित्रित करके वह चित्रफलक (जिस पर चित्र बना था वह पट) अपनी काँख मे दबा लिया। फिर महान् अर्थ वाला यावत् राजा के योग्य बहुमूल्य उपहार ग्रहण किया। ग्रहण करके हस्तिनापुर नगर के मध्य मे होकर अदीनशत्रु राजा के पास आया। आकर दोनो हाथ जोड कर उसे बधाया और बधा कर उपहार उसके सामने रख दिया। फिर चित्रकार ने कहा—'स्वामिन् ! मिथिला राजधानी मे कु भ राजा के पुत्र और प्रभावती देवी के आत्मज मल्लदिन्न कुमार ने मुझे देश-निकाले

---

१ अष्टम अ ९६

की आज्ञा दी, इस कारण मैं सीधा यहाँ आया हूँ। हे स्वामिन्! आपकी बाहुओं की छाया से परिगृहीत होकर यावत् मैं यहाँ बसना चाहता हूँ।'

१०५—तए णं से अदीनसत्तू राया तं चित्तगरदारयं एवं वयासी—'किं णं तुमं देवाणुप्पिया! मल्लदिन्नेणं निव्विसए आणत्ते?'

तत्पश्चात् अदीनशत्रु राजा ने चित्रकारपुत्र से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय! मल्लदिन्न कुमार ने तुम्हें किस कारण देश-निर्वासन की आज्ञा दी?'

१०६—तए णं से चित्तयरदारए अदीणसत्तुरायं एवं वयासी—'एवं खलु सामी! मल्लदिन्ने कुमारे अण्णया कयाइ चित्तगरसेणिं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'तुब्भे णं देवाणुप्पिया! मम चित्तसभं' तं चेव सव्वं भाणियव्वं, जाव मम संडासगं छिंदावेइ, छिंदावित्ता निव्विसयं आणवेइ, तं एवं खलु सामी! मल्लदिन्नेणं कुमारेणं निव्विसए आणत्ते।'

तत्पश्चात् चित्रकारपुत्र ने अदीनशत्रु राजा से कहा—'हे स्वामिन्! मल्लदिन्न कुमार ने एक बार किसी समय चित्रकारों की श्रेणी को बुला कर इस प्रकार कहा था—'हे देवानुप्रियो! तुम मेरी चित्रसभा को चित्रित करो,' इत्यादि सब वृत्तान्त पूर्ववत् कहना चाहिए, यावत् कुमार ने मेरा संडासक कटवा लिया। कटवा कर देश-निर्वासन की आज्ञा दे दी। इस प्रकार हे स्वामिन्! मल्लदिन्न कुमार ने मुझे देश-निर्वासन की आज्ञा दी है।'

१०७—तए णं अदीणसत्तू राया तं चित्तगरं एवं वयासी- से केरिसए णं देवाणुप्पिया! तुमे मल्लीए तदाणुरूवे रूवे निव्वत्तिए?'

तए णं से चित्तगरे कक्खंतराओ चित्तफलयं णीणेइ, णीणित्ता अदीणसत्तुस्स उवणित्ता एवं वयासी—'एस णं सामी! मल्लीए विदेहरायवरकन्नाए तयाणुरूवस्स रूवस्स केइ आगार-भाव-पडोयारे निव्वत्तिए, णो खलु सक्का केणइ देवेण वा जाव [दाणवेण वा जक्खेण वा रक्खसेण वा किन्नरेण वा किंपुरिसेण वा महोरगेण वा गंधव्वेण वा] मल्लीए विदेहरायवरकन्नगाए तयाणुरूवे रूवे निव्वत्तित्तए।'

तत्पश्चात् अदीनशत्रु राजा ने उस चित्रकार से इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय! तुमने मल्ली कुमारी का उसके अनुरूप चित्र कैसा बनाया था?

तब चित्रकार ने अपनी काख में से चित्रफलक निकाला। निकाल कर अदीनशत्रु राजा के पास रख दिया और रख कर कहा- 'हे स्वामिन्! विदेहराज की श्रेष्ठ कन्या मल्ली का उसी के अनुरूप यह चित्र मैंने कुछ आकार, भाव और प्रतिबिम्ब के रूप में चित्रित किया है। विदेहराज की श्रेष्ठ कुमारी मल्ली का हूबहू रूप तो कोई देव, [यक्ष, राक्षस, किन्नर, किम्पुरुष, महोरग तथा गंधर्व] भी चित्रित नहीं कर सकता।

१०८—तए णं अदीणसत्तू राया पडिरूवजणियहासे दूयं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—तहेव जाव पहारेत्थ गमणाए।

तत्पश्चात् चित्र को देखकर हर्ष उत्पन्न होने के कारण अदीनशत्रु राजा ने दूत को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा—(अपने लिए मल्ली कुमारी की मँगनी करने के लिए दूत भेजा) इत्यादि सब वृत्तान्त पूर्ववत् कहना चाहिए। यावत् दूत मिथिला जाने के लिए रवाना हो गया।

राजा जितशत्रु

१०९—तेण कालेण तेण समएण पचाले जणवए, कपिल्ले पुरे नयरे होत्था। तत्थ ण जियसत्तू णाम राया होत्था पचालाहिवई। तस्स ण जियसत्तुस्स धारिणीपामोक्ख देविसहस्स ओरोहे होत्था।

उस काल और उस समय में पचाल नामक जनपद मे काम्पिल्यपुर नामक नगर था। वहाँ जितशत्रु नामक राजा था, वही पचाल देश का अधिपति था। उस जितशत्रु राजा के अन्त पुर मे एक हजार रानियाँ थी।

११०—तत्थ ण मिहिलाए चोक्खा नाम परिव्वाइया रिउव्वेय जाव [यजुव्वेय-सामवेय अहव्वणवेय-इतिहासपचमाण निघटुछट्ठाण सगोवगाण सरहस्साण चउण्ह वेदाण सारगा जाव बमण्ण एसु सुपरिणिट्ठिया] यावि होत्था।

तए ण सा चोक्खा परिव्वाइया मिहिलाए बहूण राईसर जाव सत्यवाहपभिईण पुरओ दाणधम्म च सोयधम्म च तित्थाभिसेय च आघवेमाणी पण्णवेमाणी परूवेमाणी उवदसेमाणी विहरइ।

मिथिला नगरी मे चोक्खा (चोक्षा) नामक परिव्राजिका रहती थी। वह चोक्खा परिव्राजिका मिथिला नगरी मे बहुत से राजा, ईश्वर (ऐश्वर्यशाली धनाढ्य या युवराज) यावत् सार्थवाह आदि के सामने दानधर्म, शौचधर्म, और तीर्थस्नान का कथन करती, प्रज्ञापना करती, प्ररूपण करती और उपदेश करती हुई रहती थी।

१११— तए ण सा चोक्खा परिव्वाइया अन्नया कयाई तिदड च कु डिय च जाव[1] धाउरत्ताओ य गिण्हइ, गिण्हित्ता परिव्वाइगावसहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता पविरलपरिव्वाइया सद्धि सपरिवुडा मिहिल रायहाणि मज्झमज्झेण जेणेव कु भगस्स रण्णो भवणे, जेणेव कण्णतेउरे, जेणेव मल्ली विदेहवररायकन्ना, तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता उदयपरिफासियाए, दब्भोवरि पच्चत्थु याए भिसियाए निसीयति, निसीइत्ता मल्लीए विदेहरायवरकन्नाए पुरओ दाणधम्म च जाव विहरइ।

तत्पश्चात् एक बार किसी समय वह चोक्खा परिव्राजिका त्रिदण्ड, कु डिका यावत् धातु (गेरू) से रगे वस्त्र लेकर परिव्राजिकाओ के मठ से बाहर निकली। निकल कर थोडी परिव्राजिकाओं से घिरी हुई मिथिला राजधानी के मध्य मे होकर जहाँ कुम्भ राजा का भवन था, जहाँ कन्याओ का अन्त पुर था और जहाँ विदेह की उत्तम राजकन्या मल्ली थी, वहाँ आई। आकर भूमि पर पानी छिडका, उस पर डाभ बिछाया और उस पर आसन रख कर बैठी। बैठ कर विदेहवर राजकन्या मल्ली के सामने दानधर्म, शौचधर्म तीर्थस्नान का उपदेश देती हुई विचरने लगी—उपदेश देने लगी।

१ पचम अ, ३१

११२—तए ण सा मल्ली विदेहरायवरकन्ना चोक्ख परिव्वाइय एव वयासी—'तुब्भ ण चोक्खे ! किमूलए धम्मे पन्नत्ते ?'

तए ण सा चोक्खा परिव्वाइया मल्लि विदेहरायवरकन्न एव वयासी—अम्ह ण देवाणुप्पिया ! सोयमूलए धम्मे पण्णवेमि, ज ण अम्ह किंचि असुई भवइ, त ण उदएण य मट्टियाए य जाव[1] अविग्घेण सग्ग गच्छामो ।'

तब विदेहराजवरकन्या मल्ली ने चोक्खा परिव्राजिका से पूछा—'चोक्खा ! तुम्हारे धम का मूल क्या कहा गया है ?'

तब चोक्खा परिव्राजिका ने विदेहराज-वरकन्या मल्ली को उत्तर दिया—'देवानुप्रिय ! मैं शौचमूलक धर्म का उपदेश करती हूँ। हमारे मत मे जो कोई भी वस्तु अशुचि होती है, उसे जल से और मिट्टी से शुद्ध किया जाता है, यावत् [पानी से धोया जाता है, ऐसा करने से अशुचि दूर होकर शुचि हो जाती है। इस प्रकार जीव जलाभिषेक से पवित्र हो जाते है।] इस धम का पालन करने से हम निर्विघ्न स्वग जाते हैं।

११३—तए ण मल्ली विदेहरायवरकन्ना चोक्ख परिव्वाइय एव वयासी—'चोक्खा ! से जहानामए केइ पुरिसे रुहिरकय वत्थ रुहिरेण चेव धोवेज्जा, अत्थि ण चोक्खा ! तस्स रुहिरकयस्स वत्थस्स रुहिरेण धोव्वमाणस्स काई सोही ?'

'णो इणट्ठे समट्ठे ।'

तत्पश्चात् विदेहराजवरकन्या मल्ली ने चोक्खा परिव्राजिका से कहा—'चोक्खा ! जैसे कोई अमुक नामधारी पुरुष रुधिर से लिप्त वस्त्र को रुधिर से ही धोवे, तो हे चोक्खा ! उस रुधिरलिप्त और रुधिर से ही धोये जाने वाले वस्त्र की कुछ शुद्धि होती है ?'

परिव्राजिका ने उत्तर दिया—'नही, यह अथ समथ नही, अर्थात् ऐसा नही हो सकता।'

११४—'एवामेव चोक्खा ! तुब्भे ण पाणाइवाएण जाव[2] मिच्छादसणसल्लेण नत्थि काई सोही, जहा व तस्स रुहिरकयस्स वत्थस्स रुहिरेण धोव्वमाणस्स ।'

मल्ली ने कहा—'इसी प्रकार चोक्खा ! तुम्हारे मत मे प्राणातिपात (हिंसा) से यावत् मिथ्यादशनशल्य से अर्थात् अठारह पापो के सेवन का निषेध न होने से कोई शुद्धि नही है, जैसे रुधिर से लिप्त और रुधिर से ही धोये जाने वाले वस्त्र की कोई शुद्धि नही होती।

११५—तए ण सा चोक्खा परिव्वाइया मल्लीए विदेहरायवरकन्नाए एव वुत्ता समाणा सकिया कखिया विइगिच्छिया भेयसमावण्णा जाया यावि होत्था। मल्लीए णो सचाएइ किंचिवि पामोक्खमाइक्खित्तए, तुसिणीया सचिट्ठइ ।

तत्पश्चात् विदेहराजवरकन्या मल्ली के ऐसा कहने पर उस चोक्खा परिव्राजिका को शका उत्पन्न हुई, काक्षा, (अन्य धम की आकाक्षा) हुई और विचिकित्सा (अपने धर्म के फल मे शका) हुई

---

१ पचम अ ३१ २ औ सूत्र १६३

और वह भेद को प्राप्त हुई अर्थात् उसके मन मे तर्क-वितर्क होने लगा। वह मल्ली को कुछ भी उत्तर देने म समथ नही हो सकी, अतएव मौन रह गई।

११६—तए ण त चोक्ख मल्लीए बहूओ दासचेडीओ हीलेंति, निदति, खिसति, गरहति, अप्पेगइयाओ, हेरुयालति, अप्पेगइयाओ मुहमक्कडियाओ करेंति, अप्पेगइयाओ वग्घाडीओ करेंति, अप्पेगइयाउ तज्जेमाणीओ करेंति, अप्पेगइयाओ तालेमाणीओ करेंति, अप्पेगइयाओ निच्छुभंति।

तए ण सा चोक्खा मल्लीए विदेहरायवरकन्नाए दासचेडियाहि जाव गरहिज्जमाणी हीलिज्जमाणी आसुरुत्ता जाव मिसमिसेमाणा मल्लीए विदेहरायवरकन्नाए पओसमावज्जइ, भिसिय गेण्हइ, गेण्हित्ता कण्णतेउराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता, मिहिलाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता परिव्वाइयासपरिवुडा जेणेव पचालजणवए जेणेव कपिल्लपुरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बहूण राईसर जाव[1] परूवेमाणी विहरइ।

तत्पश्चात् मल्ली की बहुत-सी दासिया चोक्खा परिव्राजिका की (जाति आदि प्रकट करके) हीलना करने लगी, मन मे निन्दा करने लगी, खिसा (वचन से निन्दा) करने लगी, गर्हा (उसके सामने ही दोष कथन) करने लगी, कितनीक दासियाँ उसे क्रोधित करने लगी—चिढाने लगी, कोई-कोई मुँह मटकाने लगी, कोई-कोई उपहास करने लगी, कोई उगलियो से तर्जना करने लगी, कोई ताडना करने लगी और किसी-किसी ने अर्धचन्द्र देकर उसे बाहर कर दिया।

तत्पश्चात् विदेहराज की उत्तम कन्या मल्ली की दासियो द्वारा यावत् गर्हा की गई और अवहेलना की गई वह चोक्खा एकदम क्रुद्ध हो गई और क्रोध से मिसमिसाती हुई विदेहराजवरकन्या मल्ली के प्रति द्वेष को प्राप्त हुई। उसने अपना आसन उठाया और कन्याओ के अन्त पुर से निकल गई। वहाँ से निकलकर मिथिला नगरी से भी निकली और परिव्राजिकाओं के साथ जहाँ पचाल जनपद था, जहाँ कम्पिल्यपुर नगर था वहाँ आई और बहुत से राजाओ एव ईश्वरो—राजकुमारो—ऐश्वर्यशाली जनो आदि के सामने यावत् अपने धर्म की—दानधर्म, शौचधर्म, तीर्थाभिषेक आदि की प्ररूपणा करने लगी।

११७—तए ण से जियसत्तू अन्नया कयाई अतेउरपरियालसद्धि सपरिवुडे एव जाव[सीहासण-वरगए यावि] विहरइ।

तए ण सा चोक्खा परिव्वाइयासपरिवुडा जेणेव जियसत्तुस्स रण्णो भवणे, जेणेव जियसत्तू तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जियसत्तु जएण विजएण वद्धावेइ।

तए ण से जियसत्तू चोक्ख परिव्वाइय एज्जमाण पासइ, पासित्ता सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता चोक्ख परिव्वाइय सक्कारेइ, समाणेइ, सक्कारित्ता समाणित्ता आसणेण उवनिमतेइ।

तत्पश्चात् जितशत्रु राजा एक बार किसी समय अपने अन्त पुर और परिवार मे परिवृत होकर सिंहासन पर बैठा था।

तत्पश्चात् परिव्राजिकाओं से परिवृता वह चोक्खा जहाँ जितशत्रु राजा का भवन था और

---

१ अष्टम अ ११०

जहाँ जितशत्रु राजा था, वहाँ आई। आकर भीतर प्रवेश किया। प्रवेश करके जय-विजय के शब्दो से जितशत्रु का अभिनन्दन किया—उसे वधाया।

उस समय जितशत्रु राजा ने चोक्खा परिव्राजिका को आते देखा। देखकर सिंहासन से उठा। उठकर चोक्खा परिव्राजिका का सत्कार किया। सम्मान किया। सत्कार-सम्मान करके आसन के लिए निमन्त्रण किया—बठने को आसन दिया।

११८—तए ण सा चोक्खा उदगपरिफासियाए जाव [दब्भोवरि पच्चत्थुयाए] भिसियाए निविसइ, जियसत्तु राय रज्जे य जाव [रट्ठे य कोसे य कोट्ठागारे य बले य वाहणे य पुरे य] अतेउरे य कुसलोदत पुच्छइ। तए ण सा चोक्खा जियसत्तुस्स रण्णो दाणधम्म च जाव[1] विहरइ।

तत्पश्चात् वह चोक्खा परिव्राजिका जल छिडककर यावत् डाभ पर बिछाए अपने आसन पर बैठी। फिर उसने जितशत्रु राजा, यावत् [राष्ट्र, कोश, कोठार, बल, वाहन, पुर तथा] अन्त पुर के कुशल-समाचार पूछे। इसके बाद चोक्खा ने जितशत्रु राजा को दानधम आदि का उपदेश दिया।

११९—तए ण से जियसत्तू अप्पणो ओरोहसि जाव विम्हिए चोक्ख परिव्वाइय एव वयासी—'तुम ण से देवाणुप्पिए! बहूणि गामागर जाव अडसि, बहूण य राईसरगिहाइ अणुपविससि, त अत्थियाइ ते कस्स वि रण्णो वा जाव [ईसरस्स वा कहिंचि] एरिसए ओरोहे दिट्ठपुव्वे जारिसए ण इमे मह उवरोहे?'

तत्पश्चात् वह जितशत्रु राजा अपने रनवास मे अर्थात् रनवास की रानियो के सौन्दय आदि मे विस्मययुक्त था, (अपने अन्त पुर को सर्वोत्कृष्ट मानता था) अत उसने चोक्खा परिव्राजिका से पूछा—'हे देवानुप्रिय! तुम बहुत-से गावो, आकरो आदि मे यावत् पयटन करती हो और बहुत-से राजाओ एव ईश्वरो के घरो मे प्रवेश करती हो तो कही किसी भी राजा आदि का ऐसा अन्त पुर तुमने कभी पहले देखा है, जैसा मेरा यह अन्त पुर है?'

१२०—तए ण सा चोक्खा परिव्वाइया जियसत्तुणा एव वुत्ता समाणी ईसि अवहसिय करेइ, करित्ता एव वयासी—'एव च सरिसए ण तुमे देवाणुप्पिया! तस्स अगडददुरस्स।'

'केस ण देवाणुप्पिए! से अगडदद्दुरे?'

'जियसत्तू! से जहानामए अगडदद्दुरे सिया, से ण तत्थ जाए तत्थेव वुड्ढे, अण्ण अगड वा तलाग वा दह वा सर वा सागर वा अपासमाणे एव मण्णइ—'अय चेव अगडे वा जाव सागरे वा।'

तए ण त कूव अण्णे सामुद्दए दद्दुरे हव्वमागए। तए ण से कूवदद्दुरे त सामुद्ददद्दूर एव वयासी—'से केस ण तुम देवाणुप्पिया! कत्तो वा इह हव्वमागए?'

तए ण से सामुद्दए दद्दुरे त कूवदद्दुर एव वयासी—'एव खलु देवाणुप्पिया! अह सामुद्दए दद्दुरे।'

तए ण से कूवदद्दुरे त सामुद्दय दद्दुर एव वयासी—'केमहालए ण देवाणुप्पिया! से समुद्दे?'

---

१ अष्टम अ ११०

तए ण से सामुद्दए दद्दुरे त कूवदद्दुर एव वयासी—'महालए ण देवाणुप्पिया ! समुद्दे ।'

तए ण से कूवदद्दुरे पाएण लीह कड्ढेइ, कड्ढित्ता एवं वयासी—'एमहालए णं देवाणुप्पिया ! से समुद्दे ?'

'ण इणट्ठे, समट्ठे महालए णं से समुद्दे ।'

तए ण से कूवदद्दुरे पुरच्छिमिल्लाओ तीराओ उप्फिडित्ता णं गच्छइ, गच्छित्ता एव वयासी—'एमहालए ण देवाणुप्पिया ! से समुद्दे ?'

'णो इणट्ठ समट्ठे ।' तहेव ।

तव चोक्खा परिव्राजिका जितशत्रु राजा के इस प्रकार कहने पर थोडी मुस्कराई । फिर मुस्करा कर बोली—'देवानुप्रिय ! इस प्रकार कहते हुए तुम उस कूप-मडूक के समान जान पडते हो ।'

जितशत्रु ने पूछा—'देवानुप्रिय ! कौन-सा वह कूपमडूक ?'

चोक्खा बोली—'जितशत्रु ! यथानामक अर्थात् कुछ भी नाम वाला एक कुएँ का मेढक था । वह मेढक उसी कूप में उत्पन्न हुआ था, उसी मे बढा था । उसने दूसरा कूप, तालाब, ह्रद, सर अथवा समुद्र देखा नही था । अतएव वह मानता था कि यही कूप है और यही सागर है—इसके सिवाय और कुछ भी नही है ।

तत्पश्चात् किसी समय उस कूप मे एक समुद्री मेढक अचानक आ गया । तब कूप के मेढक ने कहा—'देवानुप्रिय ! तुम कौन हो ? कहाँ से अचानक यहाँ आये हो ?'

तब समुद्र के मेढक ने कूप के मेढक से कहा—'देवानुप्रिय ! मैं समुद्र का मेढक हूँ ।'

तब कूपमडूक ने समुद्रमडूक से कहा—'देवानुप्रिय ! वह समुद्र कितना बडा है ?'

तब समुद्रीमडूक ने कूपमडूक से कहा—'देवानुप्रिय ! समुद्र बहुत बडा है ।'

तब कूपमडूक ने अपने पैर से एक लकीर खीची और कहा—देवानुप्रिय ! क्या इतना बडा है ?

समुद्री मण्डूक बोला—'यह अर्थ समर्थ नही, अर्थात् समुद्र तो इससे बहुत बडा है ।'

तब कूपमण्डूक पूर्व दिशा के किनारे से उछल कर दूर गया और फिर बोला—देवानुप्रिय ! वह समुद्र क्या इतना बडा है ?'

समुद्री मेढक ने कहा—'यह अर्थ समर्थ नही, समुद्र तो इससे भी बडा है । इसी प्रकार (इससे भी अधिक कूद-कूद कर कूपमण्डूक ने समुद्र की विशालता के विषय में पूछा, मगर समुद्रमण्डूक हर बार उसी प्रकार उत्तर देता गया ।)

१२१—एवामेव तुम पि जियसत्तू ! अन्नेसि बहूण राईसर जाव सत्थवाहपभिईण भज्ज वा भगिणि वा धूय वा सुण्ह वा अपासमाणे जाणेसि—जारिसए मम चेव ण ओरोहे तारिसए णो अण्णस्स । तं एव खलु जियसत्तू ! मिहिलाए नयरीए कुभगस्स धूआ पभावईए अत्तया मल्ली नामं विदेहवर रायकण्णा रूवेण य जोव्वणेण जाव [लावण्णेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा] नो खलु अण्णा काई

देवकन्ना वा जारिसिया मल्ली। विदेहरायवरकण्णाए छिण्णस्स वि पायगुट्ठगस्स इमे तवोरोहे सयसहस्सइम पि कल न अग्घइ त्ति कट्टु जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।

'इसी प्रकार हे जितशत्रु [1] दूसरे बहुत से राजाओं एव ईश्वरो यावत् सार्थवाह आदि की पत्नी, भगिनी, पुत्री अथवा पुत्रवधू तुमने देखी नही। इसी कारण समझते हो कि जैसा मेरा अन्त पुर है, वैसा दूसरे का नही है। हे, जितशत्रु [1] मिथिला नगरी मे कुभ राजा की पुत्री और प्रभावती की आतमजा मल्ली नाम की कुमारी रूप और यौवन मे तथा लावण्य मे जैसी उत्कृष्ट एव उत्कृष्ट शरीर वाली है, वैसी दूसरी कोई देवकन्या वगैरह भी नही है। विदेहराज की श्रेष्ठ कन्या के कटे हुए पैर के अगुल के लाखवें अश के बराबर भी तुम्हारा यह अन्त पुर नही है।' इस प्रकार कह कर वह परिव्राजिका जिस दिशा से प्रकट हुई थी—आई थी, उसी दिशा मे लौट गई।

१२२—तए णं जियसत्तू परिव्वाइयाजणियहासे दूयं सद्दावेइ, सद्दावित्ता जाव पहारेत्थ गमणाए।

तत्पश्चात् परिव्राजिका के द्वारा उत्पन्न किये गये हर्ष वाले राजा जितशत्रु ने दूत को बुलाया। बुलाकर पहले के समान ही सब कहा। यावत् वह दूत मिथिला जाने के लिये रवाना हो गया।

विवेचन—इस प्रकार मल्लि कुमारी के पूर्वभव के साथी छहो राजाओ ने अपने-अपने लिए कुमारी की मंगनी करने लिए अपने-अपने दूत रवाना किये।

दूतों का संदेशनिवेदन

१२३—तए ण तेसिं जियसत्तुपामोक्खाण छण्हं राईण दूया जेणेव महिला तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

इस प्रकार उन जितशत्रु प्रभृति छहो राजाओ के दूत, जहाँ मिथिला नगरी थी वहाँ जाने के लिए रवाना हो गये।

१२४—तए ण छप्पि य दूयगा जेणेव मिहिला तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता मिहिलाए अग्गुज्जाणसि पत्तेय पत्तेय खधावारनिवेस करेंति, करित्ता मिहिलं रायहाणिं अणुपविसंति। अणुपविसित्ता जेणेव कुंभए राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पत्तेयं पत्तेय करयल' परिग्गहिय साण साण राईण वयणाइ निवेदेंति।

तत्पश्चात् छहो दूत जहाँ मिथिला थी, वहाँ आये। आकर मिथिला के प्रधान उद्यान मे सब ने अलग-अलग पड़ाव डाले। फिर मिथिला राजधानी में प्रवेश किया। प्रवेश करके कुम्भ राजा के पास आये। आकर प्रत्येक-प्रत्येक ने दोनो हाथ जोडे और अपने-अपने राजाओं के वचन निवेदन किये—सन्देश कहे। (मल्ली कुमारी की माग की)।

---

१ प्रथम अ १८

दूतों का अपमान

१२५—तए ण से कु भए राया तेसिं दूयाण अतिए एयमट्ठ सोच्चा आसुरुत्ते जाव [रुट्ठे कुविए चडिक्किए मिसिमिसेमाणे] तिवलिय भिउडि णिडाले साहट्टु एव वयासी—'न देमि ण अह तुब्भ मल्लि विदेहरायवरकन्न' ति कट्टु ते छप्पि दूते असक्कारिय असमाणिय अवद्दारेण णिच्छुभावेइ ।

कुम्भ राजा उन दूतो से यह बात सुनकर एकदम क्रुद्ध हो गया । [रुष्ट और प्रचड हो उठा । दात पीसते हुए] यावत् ललाट पर तीन सल डाल कर उसने कहा—'मैं तुम्हें (छह मे से किसी भी राजा को] विदेहराज की उत्तम कन्या मल्ली नही देता ।' ऐसा कह कर छहो का सत्कार-सम्मान न करके उन्हे पीछे के द्वार से निकाल दिया ।

१२६—तए ण जियसत्तुपामोक्खाण छण्ह राईण दूया कु भएण रण्णा असक्कारिया असम्माणिया अवद्दारेण निच्छुभाविया समाणा जेणेव सगा सगा जणवया, जेणेव सयाइ सयाइ णगराइ जेणेव सगा सगा रायाणो तेणेव उवागच्छति । उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहिय एव वयासी—

कुम्भ राजा के द्वारा असत्कारित, असम्मानित और अपद्वार (पिछले द्वार) से निष्कासित वे छहो राजाओं के दूत जहाँ अपने अपने जनपद थे, जहाँ अपने-अपने नगर थे और जहाँ अपने-अपने राजा थे, वहाँ पहुँचे । पहुँच कर हाथ जोड कर एव मस्तक पर अजलि करके इस प्रकार कहने लगे—

१२७—एव खलु सामी ! अम्हे जियसत्तुपामोक्खाण छण्ह राईण दूया जमगसमग चेव जेणेव मिहिला जाव अवद्दारेण निच्छुभावेइ, त न देइ ण सामी ! कु भए राया मल्लि विदेहरायवरकन्न, साणं साण राईण एयमट्ठ निवेदेंति ।

'इस प्रकार हे स्वामिन् ! हम जितशत्रु वगैरह छह राजाओ के दूत एक ही साथ जहाँ मिथिला नगरी थी, वहाँ पहुँचे । मगर यावत् राजा कुम्भ ने सत्कार-सम्मान न करके हमें अपद्वार से निकाल दिया । सो हे स्वामिन् ! कुम्भ राजा विदेहराजवरकन्या मल्ली आप को नही देता ।' दूतों ने अपने-अपने राजाओं से यह अर्थ-वृत्तान्त निवेदन किया ।

युद्ध की तैयारी

१२८—तए ण ते जियसत्तुपामोक्खा छप्पि रायाणो तेसिं दूयाणं अंतिए एयमट्ठ सोच्चा निसम्म आसुरुत्ता अण्णमण्णस्स दूयसंपेसणं करेंति, करित्ता एव वयासी—

'एव खलु देवाणुप्पिया ! अम्ह छण्ह राईण दूया जमगसमग चेव जाव णिच्छूढा, त सेय खलु देवाणुप्पिया ! अम्ह कु भगस्स जत्त (जुत्त) गेण्हित्तए' त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठ पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता ण्हाया सण्णद्धा हत्थिखधवरगया सकोरटमल्लदामेण छत्तेण धरिज्जमाणेण सेयवरचामराहिं वीइज्जमाणा महयाहय-गय रह-पवरजोह-कलियाए चाउरगिणीए सेणाए सद्धि सपरिवुडा सव्विड्ढीए जाव दुदुभिणाइयरवेण सएहितो सएहितो नगरेहितो निग्गच्छति, निग्गच्छित्ता एगयओ मिलायति, मिलाइत्ता जेणेव मिहिला तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

तत्पश्चात् वे जितशत्रु वगैरह छहों राजा उन दूतों से इस अर्थ को सुनकर और समझकर एकदम कुपित हुए। उन्होंने एक दूसरे के पास दूत भेजे और इस प्रकार कहलवाया—'हे देवानुप्रिय! हम छहों राजाओं के दूत एक साथ ही (मिथिला नगरी में पहुँचे और अपमानित करके) यावत् निकाल दिये गये। अतएव हे देवानुप्रिय! हम लोगों को कुम्भ राजा की ओर प्रयाण करना (चढाई करना) चाहिए।' इस प्रकार कहकर उन्होंने एक दूसरे की बात स्वीकार की। स्वीकार करके स्नान किया (वस्त्रादि धारण किये) सन्नद्ध हुए अर्थात् कवच आदि पहनकर तैयार हुए। हाथी के स्कन्ध पर आरूढ हुए। कोरंट वृक्ष के फूलों की माला वाला छत्र धारण किया। श्वेत चामर उन पर ढोरे जाने लगे। बड़े-बड़े घोड़ों, हाथियों, रथों और उत्तम योद्धाओं सहित चतुरंगिणी सेना से परिवृत होकर, सब ऋद्धि के साथ, यावत् दुंदुभि की ध्वनि के साथ अपने-अपने नगरों से निकले। निकलकर एक जगह इकट्ठे हुए। इकट्ठे होकर जहां मिथिला नगरी थी, वहाँ जाने के लिए तैयार हुए।

१२९—तए णं कुंभए राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे बलवाउयं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! हयगयरहपवरजोहकलियं सेण्णं सन्नाहेह।' जाव पच्चप्पिणंति।

तत्पश्चात् कुम्भ राजा ने इस कथा का अर्थ जानकर अर्थात् छह राजाओं की चढाई का समाचार जानकर अपने सैनिक कर्मचारी (सेनापति) को बुलाया। बुलाकर कहा—'हे देवानुप्रिय! शीघ्र ही घोड़ों, हाथियों, रथों और उत्तम योद्धाओं से युक्त चतुरंगी सेना तैयार करो।' यावत सेनापति ने सेना तैयार करके आज्ञा वापिस लौटाई अर्थात् सेना तैयार हो जाने की सूचना दी।

१३०—तए णं कुंभए राया ण्हाए सण्णद्धे हत्थिखंधवरगए सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं [वीइज्जमाणे महया हय गय रह पवरजोहकलियाए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव दुंदुभिनाइयरवेणं] मिहिलं रायहाणिं मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता विदेहं जणवयं मज्झंमज्झेणं जेणेव देसअंते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता खंधावार-निवेसं करेइ, करित्ता जियसत्तुपामोक्खा छप्पि य रायाणो पडिवालेमाणे जुज्झसज्जे पडिचिट्ठइ।

तत्पश्चात् कुम्भ राजा ने स्नान किया। कवच धारण करके सन्नद्ध हुआ। श्रेष्ठ हाथी के स्कन्ध पर आरूढ हुआ। कोरंट के फूलों की माला वाला छत्र धारण किया। उसके ऊपर श्रेष्ठ और श्वेत चामर ढोरे जाने लगे। यावत् [विशाल घोड़ों, हाथियों, रथों एवं उत्तम योद्धाओं से युक्त] चतुरंगी सेना के साथ पूरे ठाठ के साथ एवं दुंदुभिनिनाद के साथ] मिथिला राजधानी के मध्य में होकर निकला। निकलकर विदेह जनपद के मध्य में होकर जहाँ अपने देश का अन्त (सीमा-भाग) था, वहाँ आया। आकर वहां पडाव डाला। पडाव डालकर जितशत्रु प्रभृति छहों राजाओं की प्रतीक्षा करता हुआ युद्ध के लिए सज्ज होकर ठहर गया।

युद्ध प्रारम्भ

१३१—तए णं ते जियसत्तुपामोक्खा छप्पि य रायाणो जेणेव कुंभए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता कुंभएणं रण्णा सद्धिं संपलग्गा यावि होत्था।

तत्पश्चात् वे जितशत्रु प्रभृति छहों राजा, जहाँ कुम्भ राजा था, वहाँ आ पहुँचे। आकर कुम्भ राजा के साथ युद्ध करने में प्रवृत्त हो गये—युद्ध छिड़ गया।

कुम्भ की पराजय

१३२—तए णं ते जियसत्तुपामोक्खा छप्पि रायाणो कुंभयं रायं हय-महिय-पवरवीरघाइय निवडिय-चिंधद्धय-पडाग-किच्छप्पाणोवगय दिसो दिसिं पडिसेहिंति।

तए णं से कुंभए राया जियसत्तुपामोक्खेहिं छहिं राईहिं हयमहिय जाव पडिसेहिए समाणे अत्थामे अबले अवीरिए जाव [अपुरिसक्कार-परक्कम्मे] अधारणिज्जमिति कट्टु सिग्घं तुरियं जाव [चवलं चंडं जइणं] वेइयं जेणेव मिहिला णयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मिहिलं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता मिहिलाए दुवाराइं पिहेइ, पिहित्ता रोहसज्जे चिट्ठइ।

तत्पश्चात् उन जितशत्रु प्रभृति छहों राजाओं ने कुम्भ राजा का हनन किया अर्थात् उसके सैन्य का हनन किया, मथन किया अर्थात् मान का मर्दन किया, उसके उत्तम योद्धाओं का घात किया, उसकी चिह्न रूप ध्वजा और पताका को छिन्न-भिन्न करके नीचे गिरा दिया। उसके प्राण संकट में पड़ गये। उसकी सेना चारों दिशाओं में भाग निकली।

तब वह कुम्भ राजा जितशत्रु आदि छह राजाओं के द्वारा हत, मानमर्दित यावत् जिसकी सेना चारों ओर भाग खड़ी हुई है ऐसा होकर, सामर्थ्यहीन, बलहीन, पुरुषार्थ-पराक्रमहीन, त्वरा के साथ, यावत् [तेजी से जल्दी-जल्दी एवं] वेग के साथ जहाँ मिथिला नगरी थी, वहाँ आया। मिथिला नगरी में प्रविष्ट हुआ और प्रविष्ट होकर उसने मिथिला के द्वार बन्द कर लिये। द्वार बन्द करके किले का रोध करने में सज्ज होकर ठहरा—किले की रक्षा करने के लिए तैयार हो गया।

मिथिला का घेराव

१३३—तए णं ते जियसत्तुपामोक्खा छप्पि रायाणो जेणेव मिहिला तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता मिहिलं रायहाणिं णिस्संचारं णिरुच्चारं सव्वओ समंता ओरुंभित्ता णं चिट्ठंति।

तए णं कुंभए राया मिहिलं रायहाणिं रुद्धं जाणित्ता अब्भंतरियाए उवट्ठाणसालाए सीहासणवरगए तेसिं जियसत्तुपामोक्खाणं छण्हं राईणं छिद्दाणि य विवराणि य मम्माणि य अलभमाणे बहूहिं आएहि य उवाएहि य उप्पत्तियाहि य ४ बुद्धीहिं परिणामेमाणे परिणामेमाणे किंचि आयं वा उवायं वा अलभमाणे ओहयमणसंकप्पे जाव [करयलपल्हत्थमुहे अट्टज्झाणोवगए] झियायइ।

तत्पश्चात् जितशत्रु प्रभृति छहों नरेश जहाँ मिथिला नगरी थी, वहाँ आये। आकर मिथिला राजधानी को मनुष्यों के गमनागमन से रहित कर दिया, यहाँ तक कि कोट के ऊपर से भी आवागमन रोक दिया अथवा मल त्यागने के लिए भी आना-जाना रोक दिया। उन्होंने नगरी को चारों ओर से घेर लिया।

तत्पश्चात् कुम्भ राजा मिथिला राजधानी को घिरी जानकर आभ्यन्तर उपस्थानशाला (अन्दर की सभा) में श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठा। वह जितशत्रु आदि छहों राजाओं के छिद्रों को, विवरों को और मर्म को पा नहीं सका। अतएव बहुत से आयों (मार्गों) से, उपायों से तथा औत्पत्तिकी आदि चारों प्रकार की बुद्धि से विचार करते-करते कोई भी आय या उपाय न पा सका। तब उसके मन का

सकल्प क्षीण हो गया, यावत् वह हथेली पर मुख रखकर आर्त्तध्यान करने लगा— चिन्ता मे डूब गया ।

मल्ली कुमारी द्वारा चिन्ता सम्बन्धी प्रश्न

१३४—इम च ण मल्ली विदेहरायवरकन्ना ण्हाया जाव बहूहिं खुज्जाहिं परिवुडा जेणेव कु भए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कु भगस्स पायग्गहण करेइ । तए ण कु भए राया मल्लि विदेहरायवरकन्न णो आढाइ, नो परियाणाइ, तुसिणीए सचिट्ठइ ।

इधर विदेहराजवरकन्या मल्ली ने स्नान किया, (वस्त्राभूषण धारण किये) यावत् बहुत-सी कुब्जा आदि दासियो से परिवृत होकर जहाँ कु भ राजा था, वहाँ आई । आकर उसने कु भ राजा के चरण ग्रहण किये-पैर छुए । तब कु भ राजा ने विदेहराजवरकन्या मल्ली का आदर (स्वागत) नही किया, अत्यन्त गहरी चिन्ता मे व्यग्र होने के कारण उसे उसका आना भी मालूम नही हुआ, अतएव वह मौन ही रहा ।

१३५—तए ण मल्ली विदेहरायवरकन्ना कु भय राय एव वयासी ! 'तुब्भे ण ताओ ! अण्णया मम एज्जमाण जाव[1] निवेसेह, कि ण तुब्भ अज्ज ओहयमणसकप्पे जाव[2] झियायह ?'

तए ण कु भए राया मल्लि विदेहरायवरकन्न एव वयासी—'एव खलु पुत्ता ! तव कज्जे जियसत्तुपामोक्खेहिं छहिं राईहिं दूया सपेसिया, ते ण मए असक्कारिया जाव[3] णिच्छूढा । तए ण ते जियसत्तुपामोक्खा तेसि दुयाण अतिए एयमट्ठ सोच्चा परिकुविया समाणा मिहिल रायहाणि निस्सचार जाव[4] चिट्ठन्ति । तए ण अह पुत्ता ! तेसिं जियसत्तुपामोक्खाण छण्ह राईण अतराणि अलभमाणे जाव[5] झियामि ।'

तत्पश्चात् विदेहराजवरकन्या मल्ली ने राजा कु भ से इस प्रकार कहा—'हे तात ! दूसरे समय मुझे आती देखकर आप यावत् मेरा आदर करते थे, प्रसन्न होते थे, गोद मे बिठलाते थे, परन्तु क्या कारण है कि आज आप अवहत मानसिक सकल्प वाले होकर चिन्ता कर रहे हैं ?'

तब राजा कु भ ने विदेहराजवरकन्या मल्ली से इस प्रकार कहा—'हे पुत्री ! इस प्रकार तुम्हारे लिए—तुम्हारी मँगनी करने के लिए जितशत्रु प्रभृति छह राजाओ ने दूत भेजे थे । मैंने उन दूतो को अपमानित करके यावत् निकलवा दिया । तब वे जितशत्रु वगैरह राजा उन दूतो से यह वृत्तान्त सुनकर कुपित हो गये । उन्होंने मिथिला राजधानी को गमनागमनहीन बना दिया है, यावत् चारों ओर घेरा डालकर बैठे है । अतएव हे पुत्री ! मैं उन जितशत्रु प्रभृति नरेशो के अन्तर—छिद्र आदि न पाता हुआ यावत् चिन्ता मे डूबा हूँ ।'

चिन्तानिवारण का उपाय

१३६—तए ण सा मल्ली विदेहरायवरकन्ना कु भय राय एव वयासी—मा ण तुब्भे ताओ ! ओहयमणसकप्पा जाव झियायह, तुब्भे ण ताओ ! तेसिं जियसत्तुपामोक्खाण छण्ह राईण पत्तेय पत्तेय रहसिय दूयसंपेसे करेह, एगमेग एव वयह—'तव देमि मल्लि विदेहरायवरकन्न, ति कट्टु सझाकाल-

१-२ प्रथम अ ९० ३ अष्टम अ १२५ ४-५ अष्टम अ १३३

समयसि पविरलमणूससि निसतसि पडिनिसतसि पत्तेय पत्तेय मिहिल रायहाणि अणुप्पवेसेह। अणुप्पवेसित्ता गब्भघरएसु अणुप्पवेसेह, मिहिलाए रायहाणीए दुवाराइ पिधेह, पिधित्ता रोहसज्जे चिट्ठह।

तत्पश्चात् विदेहराजवरकन्या मल्ली ने राजा कुम्भ से इस प्रकार कहा—तात! आप अवहृत मानसिक सकल्प वाले होकर चिन्ता न कीजिए। हे तात! आप उन जितशत्रु आदि छहों राजाओं में से प्रत्येक के पास गुप्त रूप से दूत भेज दीजिए और प्रत्येक को यह कहला दीजिए कि 'मैं विदेहराजवरकन्या तुम्हे देता हूँ।' ऐसा कहकर सन्ध्याकाल के अवसर पर जब विरले मनुष्य गमनागमन करते हों और विश्राम के लिए अपने-अपने घरो मे मनुष्य बैठे हो, उस समय अलग-अलग राजा का मिथिला राजधानी के भीतर प्रवेश कराइए। प्रवेश कराकर उन्हे गभगृह के अन्दर ले जाइए। फिर मिथिला राजधानी के द्वार बन्द करा दीजिए और नगरी के रोध मे सज्ज होकर ठहरिए—नगररक्षा के लिए तैयार रहिए।

१३७—तए ण कुभए राया एव त चेव जाव पवेसेइ, रोहसज्जे चिट्ठइ।

तत्पश्चात् राजा कुम्भ ने इसी प्रकार किया। यावत् छहों राजाओ को मिथिला के भीतर प्रवेश कराया। वह नगरी के रोध मे सज्ज होकर ठहरा।

राजाओं को सम्बोधन

१३८—तए ण जियसत्तुपामोक्खा छप्पि य रायाणो कल्ल पाउप्पभायाए जाव[1] जालतरेहिं कणगमय मत्थयछिड्ड पउमुप्पलपिहाण पडिम पासति। 'एस ण मल्ली विदेहरायवरकन्न' त्ति कट्टु मल्लीए विदेहरायवरकन्नाए रूवे य जोव्वणे य लावण्णे य मुच्छिया गिद्धा जाव अज्झोववन्ना अणिमिसाए दिट्ठीए पेहमाणा चिट्ठति।

तत्पश्चात् जितशत्रु आदि छहों राजा कल अर्थात् दूसरे दिन प्रात काल (उन्ह जिस मकान मे ठहराया था उसको) जालियों मे से स्वर्णमयी, मस्तक पर छिद्र वाली और कमल के ढक्कन वाली मल्ली की प्रतिमा को देखने लगे। 'यही विदेहराज की श्रेष्ठ कन्या मल्ली है' ऐसा जानकर विदेहराजवरकन्या मल्ली के रूप यौवन और लावण्य मे मूर्च्छित, गृद्ध यावत् अत्यन्त लालायित होकर अनिमेष दृष्टि से बार-बार उसे देखने लगे।

१३९—तए ण सा मल्ली विदेहरायवरकन्ना ण्हाया जाव पायच्छित्ता सव्वालकारविभूसिया बहूहिं खुज्जाहिं जाव परिक्खित्ता जेणेव जालघरए, जेणेव कणगपडिमा तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता तीसे कणगपडिमाए मत्थयाओ त पउम अवणेइ। तए ण गधे णिद्धावइ से जहानामए अहिमडे इ वा जाव[2] असुभतराए चेव।

तत्पश्चात् विदेहराजवरकन्या मल्ली ने स्नान किया, यावत् कौतुक, मगल, प्रायश्चित्त किया। वह समस्त अलकारो मे विभूषित होकर बहुत-सी कुब्जा आदि दासियो से यावत् परिवृत होकर जहाँ जालगृह था और जहाँ स्वर्ण की वह प्रतिमा थी, वहाँ आई। आकर उस स्वर्णप्रतिमा के मस्तक से

---

१ प्र अ २८ २ अष्टम अ ३६

वह कमल का ढक्कन हटा दिया। ढक्कन हटाते ही उसमे से ऐसी दुर्गन्ध छूटी कि जैसे मरे सांप की दुगन्ध हो, यावत् [मृतक गाय, कुत्ता आदि की दुगन्ध हो] उससे भी अधिक अशुभ।

१४०—तए ण जियसत्तुपामोक्खा तेण असुभेण गधेण अभिभूया समाणा सएहिं सएहिं उत्तरिज्जेहिं आसाइ पिहेंति, पिहित्ता परम्मुहा चिट्ठंति।

तए ण सा मल्ली विदेहरायवरकन्ना ते जियसत्तुपामोक्खे एव वयासी—'किं ण तुब्भ देवाणुप्पिया! सएहिं सएहिं उत्तरिज्जेहिं जाव परम्मुहा चिट्ठह?'

तए ण ते जियसत्तुपामोक्खा मल्लि विदेहरायवरकन्न एव वयति—'एव खलु देवाणुप्पिए! अम्हे इमेण असुभेण गधेण अभिभूया समाणा सएहिं सएहिं जाव चिट्ठामो।'

तत्पश्चात् जितशत्रु वगैरह ने उस अशुभ गध से अभिभूत होकर—घबरा कर अपने-अपने उत्तरीय वस्त्रो से मुँह ढँक लिया। मुँह ढँक कर वे मुख फेर कर खडे हो गये।

तब विदेहराजवर कन्या मल्ली ने उन जितशत्रु आदि से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो! किस कारण आप अपने-अपने उत्तरीय वस्त्र से मुँह ढँक कर यावत् मुँह फेर कर खडे हो गये?'

तब जितशत्रु आदि ने विदेहराजवरकन्या मल्ली से कहा—'देवानुप्रिये! हम इस अशुभ गध से घबरा कर अपने-अपने यावत् उत्तरीय वस्त्र से मुख ढँक कर विमुख हुए हैं।'

१४१—तए ण मल्ली विदेहरायवरकन्ना ते जियसत्तुपामोक्खे एव वयासी—'जइ ताव देवाणुप्पिया! इमीसे कणगमईए जाव पडिमाए कल्लाकल्लि ताओ मणुण्णाओ असण-पाण-खाइम-साइमाओ एगमेगे पिंडे पक्खिप्पमाणे पक्खिप्पमाणे इमेयारूवे असुभे पोग्गलपरिणामे, इमस्स पुण ओरालियसरीरस्स खेलासवस्स वतासवस्स पित्तासवस्स सुक्कसोणियपूयासवस्स दुरूवऊसास-नीसासस्स दुरूव-मुत्तपूतिय-पुरीस-पुण्णस्स सडण-पडण-छेयण विद्धसणधम्मस्स केरिसए परिणामे भविस्सइ? त मा ण तुब्भे देवाणुप्पिया! माणुस्सएसु कामभोगेसु रज्जह, गिज्झह, मुज्झइ, अज्झोववज्जह।'

तत्पश्चात् विदेहराजवरकन्या मल्ली ने उन जितशत्रु आदि राजाओ से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! इस स्वर्णमयी (यावत्) प्रतिमा मे प्रतिदिन मनोज्ञ अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार मे से एक-एक पिण्ड डालते-डालते यह ऐसा अशुभ पुद्गल का परिणमन हुआ, तो यह औदारिक शरीर तो कफ को झराने वाला है, खराव उच्छ्वास और नि श्वास निकालने वाला है, अमनोज्ञ मूत्र एव दुर्गन्धित मल मे परिपूर्ण है, सडना, पडना, नष्ट होना और विध्वस्त होना इसका स्वभाव है, तो इसका परिणमन कैसा होगा? अतएव हे देवानुप्रियो! आप मनुष्य सम्बन्धी कामभोगो मे राग मत करो, गृद्धि मत करो, मोह मत करो और अतीव आसक्त मत होओ।'

१४२—एव खलु देवाणुप्पिया! तुम्हे अम्हे इमाओ तच्चे भवग्गहणे अवरविदेहवासे सलिलावइसि विजए वीयसोगाए रायहाणीए महब्बलपामोक्खा सत्त वि य बालवयसगा रायाणो होत्था, सह जाया जाव पव्वइया।

तए ण अह देवाणुप्पिया! इमेण कारणेण इत्थीनामगोय कम्म निव्वत्तेमि—जइ ण तुब्भे चउत्थ उवसपज्जित्ताण विहरह, तए ण अह छट्ठ उवसपज्जित्ता ण विहरामि। सेस तहेव सव्व।

मल्ली कुमारी ने पूर्वभव का स्मरण कराते हुए आगे कहा—'इस प्रकार हे देवानुप्रियो ! तुम और हम इससे पहले के तीसरे भव में, पश्चिम महाविदेहवर्ष में, सलिलावती विजय में, वीतशोका नामक राजधानी में महाबल आदि सातों—मित्र राजा थे। हम सातों साथ जन्मे थे, यावत् साथ ही दीक्षित हुए थे।

हे देवानुप्रियो ! उस समय इस कारण से मैंने स्त्रीनामगोत्र कर्म का उपार्जन किया था—अगर तुम लोग एक उपवास करके विचरते थे, तो मैं तुम से छिपकर बेला करती थी, इत्यादि सब वृत्तान्त पूर्ववत् समझना चाहिए।

१४३—तए णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! कालमासे कालं किच्चा जयंते विमाणे उववण्णा। तत्थ णं तुब्भे देसूणाइं बत्तीसाइं सागरोवमाइं ठिई। तए णं तुब्भे ताओ देवलोयाओ अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे जाव साइं साइं रज्जाइं उवसंपज्जित्ता णं विहरह।

तए णं अहं देवाणुप्पिया ! ताओ देवलोयाओ आउक्खएणं जाव दारियत्ताए पच्चायाया—

किंथ तयं पम्हुट्ठं, जं थ तया भो जयंत पवरम्मि।
वुत्था समयनिबद्धं, देवा ! तं संभरह जाइं ॥१॥

तत्पश्चात् हे देवानुप्रियो ! तुम कालमास में काल करके—यथासमय देह त्याग कर जयन्त विमान में उत्पन्न हुए। वहाँ तुम्हारी कुछ कम बत्तीस सागरोपम की स्थिति हुई। तत्पश्चात् तुम उस देवलोक से अनन्तर (सीधे) शरीर त्याग करके—चय करके—इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप में उत्पन्न हुए, यावत् अपने अपने राज्य प्राप्त करके विचर रहे हो।

मैं उस देवलोक से आयु का क्षय होने पर कन्या के रूप में आई हूँ—जन्मी हूँ।

'क्या तुम वह भूल गये ? जिस समय हे देवानुप्रिय ! तुम जयन्त नामक अनुत्तर विमान में वास करते थे ? वहाँ रहते हुए 'हमें एक दूसरे को प्रतिबोध देना चाहिए' ऐसा परस्पर में संकेत किया था। तो तुम देवभव का स्मरण करो।'

१४४—तए णं तेसिं जियसत्तुपामोक्खाणं छण्हं रायाणं मल्लीए विदेहरायवरकन्नाए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म सुभेणं परिणामेणं, पसत्थेणं अज्झवसाणेणं, लेसाहिं विसुज्झमाणीहिं, तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहा-वूह-मग्गण-गवेसणं करेमाणाणं सण्णिपुव्वे जाइस्सरणे समुप्पन्ने। एयमट्ठं सम्मं अभिसमागच्छंति।

तत्पश्चात् विदेहराज की उत्तम कन्या मल्ली से पूर्वभव का यह वृत्तान्त सुनने और हृदय में धारण करने से, शुभ परिणामों, प्रशस्त अध्यवसायों, विशुद्ध होती हुई लेश्याओं और जातिस्मरण को आच्छादित करने वाले कर्मों के क्षयोपशम के कारण, ईहा—अपोह (सद्भूत—असद्भूत धर्मों की पर्यालोचना) तथा मार्गणा और गवेषणा—विशेष विचार करने से जितशत्रु प्रभृति छहों राजाओं को ऐसा जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ कि जिससे वे संज्ञी अवस्था के अपने पूर्वभव को देख सकें। इस ज्ञान के उत्पन्न होने पर मल्ली कुमारी द्वारा कथित अर्थ—वृत्तान्त को उन्होंने सम्यक् प्रकार से जान लिया।

१४५—तए णं मल्ली अरहा जियसत्तुपामोक्खे छप्पि रायाणो समुप्पण्णजाइसरणे जाणित्ता गब्भघराण दाराइं विहाडावेइ। तए णं जियसत्तुपामोक्खा छप्पि रायाणो जेणेव मल्ली अरहा तेणेव उवागच्छंति। तए णं महब्बलपामोक्खा सत्त वि य बालवयंसा एगयओ अभिसमन्नागया यावि होत्था।

तत्पश्चात मल्ली अरिहंत ने जितशत्रु प्रभृति छहों राजाओं को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ जानकर गर्भगृहों के द्वार खुलवा दिये। तब जितशत्रु वगैरह छहों राजा मल्ली अरिहंत के पास आये। उस समय (पूर्वजन्म के) महाबल आदि सातों बालमित्रों का परस्पर मिलन हुआ।

१४६—तए णं मल्ली अरहा जियसत्तुपामोक्खे छप्पि य रायाणो एवं वयासी—'एवं खलु अहं देवाणुप्पिया! संसारभयउव्विग्गा जाव पव्वयामि, तं तुब्भे णं किं करेह? किं ववसह? किं भे हियइच्छिए सामत्थे?'

तत्पश्चात् अरिहंत मल्ली ने जितशत्रु वगैरह छहों राजाओं से कहा—हे देवानुप्रियो! निश्चित रूप से मैं संसार के भय से (जन्म-जरा-मरण से) उद्विग्न हुई हूँ, यावत् प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहती हूँ। तो आप क्या करेंगे? कैसे रहेंगे? आपके हृदय का सामर्थ्य कैसा है? अर्थात् भाव या उत्साह कैसा है?

१४७—तए णं जितसत्तुपामोक्खा छप्पि य रायाणो मल्लिं अरहं एवं वयासी—'जइ णं तुब्भे देवाणुप्पिया! संसारभयउव्विग्गा जाव पव्वयह, अम्हाणं देवाणुप्पिया! के अण्णे आलंबणे वा आहारे वा पडिबंधे वा? जह चेव णं देवाणुप्पिया! तुब्भे अम्हे इओ तच्चे भवग्गहणे बहूसु कज्जेसु य मेढी पमाणं जाव धम्मधुरा होत्था, तहा चेव णं देवाणुप्पिया! इण्हिं पि जाव भविस्सह। अम्हे वि य णं देवाणुप्पिया! संसारभयउव्विग्गा जाव भीया जम्ममरणाणं, देवाणुप्पियाणं सद्धिं मुंडा भवित्ता जाव पव्वयामो।'

तत्पश्चात् जितशत्रु आदि छहों राजाओं ने मल्ली अरिहंत से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिये! अगर आप संसार के भय से उद्विग्न होकर यावत् दीक्षा लेती हो, तो हे देवानुप्रिये! हमारे लिए दूसरा क्या आलंबन, आधार या प्रतिबंध है? हे देवानुप्रिये! जैसे आप इस भव से पूर्व के तीसरे भव में, बहुत कार्यों में हमारे लिए मेढीभूत, प्रमाणभूत और धर्म की धुरा के रूप में थीं, उसी प्रकार हे देवानुप्रिये! अब (इस भव में) भी होओ। हे देवानुप्रिया! हम भी संसार के भय से उद्विग्न हैं यावत् जन्म-मरण से भयभीत हैं, अतएव देवानुप्रिया के साथ मुण्डित होकर यावत् दीक्षा ग्रहण करने को तैयार हैं।'

१४८—तए णं मल्ली अरहा ते जियसत्तुपामोक्खे एवं वयासी—जं णं तुब्भे संसारभयउव्विग्गा जाव मए सद्धिं पव्वयह, तं गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! सएहिं सएहिं रज्जेहिं जेट्ठे पुत्ते रज्जे ठावेह, ठावेत्ता पुरिससहस्सवाहिणीओ सीयाओ दुरूहह। दुरूढा समाणा मम अंतियं पाउब्भवह।

तत्पश्चात् अरिहंत मल्ली ने उन जितशत्रु प्रभृति राजाओं से कहा—'अगर तुम संसार के भय से उद्विग्न हुए हो, यावत् मेरे साथ दीक्षित होना चाहते हो, तो जाओ देवानुप्रियो! अपने-अपने

राज्य में और अपने-अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य पर प्रतिष्ठित करो। प्रतिष्ठित करके हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य शिविकाओं पर आरूढ़ होओ। आरूढ़ होकर मेरे समीप आओ।'

१४९—तए ण ते जियसत्तुपामोक्खा मल्लिस्स अरहओ एयमट्ठ पडिसुणेंति।

तत्पश्चात् उन जितशत्रु प्रभृति राजाओं ने मल्ली अरिहंत के इस अर्थ (कथन) को अंगीकार किया।

१५०—तए ण मल्ली अरहा ते जितसत्तुपामोक्खे गहाय जेणेव कुंभए राया तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता कुंभगस्स पाएसु पाडेइ।

तए ण कुंभए राया ते जियसत्तुपामोक्खे विपुलेण असण पाण-खाइम साइमेण पुप्फ-वत्थ-गंध मल्लालकारेण सक्कारेइ, सम्माणेइ सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ।

तत्पश्चात् मल्ली अरिहंत उन जितशत्रु वगैरह को साथ लेकर जहाँ कुम्भ राजा था, वहाँ आई। आकर उन्हें कुम्भ राजा के चरणों में नमस्कार कराया।

तब कुम्भ राजा ने उन जितशत्रु वगैरह का विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम से तथा पुष्प, वस्त्र, गंध, माल्य और अलंकारों से सत्कार किया, सम्मान किया। सत्कार-सम्मान करके उन्हें विदा किया।

१५१—तए ण जियसत्तुपामोक्खा कुंभएण रण्णा विसज्जिया समाणा जेणेव साइं साइं रज्जाइं, जेणेव नयराइं, तेणेव उवागच्छंति। उवागच्छित्ता सयाइं सयाइं रज्जाइं उवसंपज्जित्ता विहरंति।

तत्पश्चात् कुम्भ राजा द्वारा विदा किए हुए जितशत्रु आदि राजा जहाँ अपने-अपने राज्य थे, जहाँ अपने-अपने नगर थे, वहाँ आये। आकर अपने-अपने राज्यों का उपभोग करते हुए विचरने लगे।

१५२—तए ण मल्ली अरहा 'संवच्छरावसाणे निक्खमिस्सामि' त्ति मण पहारेइ।

तत्पश्चात् अरिहन्त मल्ली ने अपने मन में ऐसी धारणा की कि 'एक वर्ष के अन्त में मैं दीक्षा ग्रहण करूंगी।'

१५३—तेण कालेण तेण समएण सक्कस्स आसण चलइ। तए ण सक्के देविंदे देवराया आसण चलिय पासइ, पासित्ता ओहिं पउजइ, पउंजित्ता मल्लिं अरह ओहिणा आभोएइ, आभोइत्ता इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव [चितिए पत्थिए मणोगते सकप्पे] समुप्पज्जित्था—'एव खलु जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे मिहिलाए रायहाणीए कुंभगस्स रण्णो (धूआ) मल्ली अरहा निक्खमिस्सामि त्ति मण पहारेइ।'

उस काल और उस समय में शक्रेन्द्र का आसन चलायमान हुआ। तब देवेन्द्र देवराज शक्र ने अपना आसन चलायमान हुआ देखा। देख कर अवधिज्ञान का प्रयोग किया—उपयोग लगाया।

उपयोग लगाने पर उसे ज्ञात हुआ—तब इन्द्र को मन मे ऐसा विचार, चिन्तन, एव खयाल हुआ कि जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे, भारतवर्ष मे, मिथिला राजधानी मे कुम्भ राजा की पुत्री मल्ली अरिहन्त ने एक वर्ष के पश्चात् 'दीक्षा लू गी' ऐसा विचार किया है।

१५४—'त जीयमेय तीय-पच्चुप्पन्न-मणागयाण सक्काण देविंदाण देवरायाण, अरहताण भगवताण णिक्खममाणाण इमेयारूव अत्थसपयाण दलित्तए। त जहा—

तिण्णेव य कोडिसया, अट्ठासीइ च होंति कोडीओ।
असिइ च सयसहस्सा, इदा दलयति अरहाण॥

(शक्रेन्द्र ने आगे विचार किया—) तो अतीत काल, वत्तमान काल और भविष्यत् काल के शक्र देवेन्द्र देवराजो का यह परम्परागत आचार है कि—तीर्थंकर भगवत जब दीक्षा अगीकार करने को हो, तो उन्हे इतनी अथ—सम्पदा (दान देने के लिए) देनी चाहिए। वह इस प्रकार है—

'तीन सौ करोड (तीन अरब) अट्ठासी करोड और अस्सी लाख द्रव्य (स्वर्ण मोहरें) इन्द्र अरिहन्तो को देते हैं।'

१५५—एव सपेहेइ, सपेहित्ता वेसमण देव सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'एव खलु देवाणुप्पिया! जबुद्दीवे दीवे भारहे वासे जाव असीइ च सयसहस्साइ दलइत्तए, त गच्छह ण देवाणुप्पिया! जबुद्दीवे दीवे भारहे वासे कु भगभवणसि इमेयारूव अत्थसपयाण साहराहि, साहरित्ता खिप्पामेव मम एयमाणत्तिय पच्चप्पिणाहि।'

शक्रेन्द्र ने ऐसा विचार किया। विचार करके उसने वैश्रवण देव को बुलवाया और बुलाकर कहा—'देवानुप्रिय! जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे, भारतवर्ष मे, यावत् [मल्ली अरिहत ने दीक्षा लेने का विचार किया है, अतएव] तीन सौ अट्ठासी करोड और अस्सी लाख स्वण मोहरें देना उचित है। सो हे देवानुप्रिय! तुम जाओ और जम्बूद्वीप मे, भारतवप मे कुम्भ राजा के भवन मे इतने द्रव्य का सहरण करो—इतना धन लेकर पहुचा दो। पहुचा करके शीघ्र ही मेरी यह आज्ञा वापिस सौंपो।'

१५६—तए ण से वेसमणे देवे सक्केण देविंदेण देवरन्ना एव वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे करयल जाव[1] पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता जभए देवे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'गच्छह ण तुब्भे देवाणुप्पिया! जबुद्दीव दीव भारह वास मिहिल रायहाणिं, कु भगस्स रण्णो भवणसि तिन्नेव य कोडिसया, अट्ठासीय च कोडीओ असीइ च सयसहस्साइ अयमेयारूव अत्थसपयाण साहरह, साहरित्ता मम एयमाणत्तिय पच्चप्पिणह।'

तत्पश्चात् वैश्रवण देव, शक्र देवेन्द्र देवराज के इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट हुआ। हाथ जोड कर उसने यावत् मस्तक पर अजलि घुमाकर आज्ञा स्वीकार की। स्वीकार करके जृ भकदेवो को बुलाया। बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो! तुम जम्बूद्वीप मे, भारतवप मे और मिथिला राजधानी मे जाओ और कुम्भ राजा के भवन मे तीन सौ अट्ठासी करोड अस्सी लाख अर्थ सम्प्रदान का सहरण करो, अर्थात् इतनी सम्पत्ति वहाँ पहुँचा दो। सहरण करके यह आज्ञा मुझे वापिस लौटाओ।'

---

१ प्रथम अ १८

१५७—तए ण ते जभगा देवा वेसमणेण जाव [एव वुत्ता समाणा] पडिसुणेत्ता उत्तर पुरच्छिम दिसीभाग अवक्कमति, अवक्कमित्ता जाव [वेउव्वियसमुग्घाएण समोहणति, समोहणित्ता सखेज्जाइ जोयणाइ दड निसिरति जाव] उत्तरवेउव्वियाइ रूवाइ विउव्वति, विउव्वित्ता ताए उक्किट्ठाए जाव[1] वीइवयमाणा जेणेव जबुद्दीवे दीवे, भारहे वासे, जेणेव मिहिला रायहाणी, जेणेव कु भगस्स रण्णो भवणे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता कु भगस्स रण्णो भवणसि तिन्नि कोडिसया जाव साहरति। साहरित्ता जेणेव वेसमणे देवे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता करयल जाव पच्चप्पिणति।

तत्पश्चात् वे जृ भक देव, वैश्रवण देव की आज्ञा सुनकर उत्तरपूर्व दिशा मे गये। जाकर उत्तरवैक्रिय [वैक्रिय समुद्‌घात किया, समुद्‌घात करके सख्यात योजन का दड निकाला], फिर उत्तर वैक्रिय रूपों की विकुर्वणा की। विकुर्वणा करके देव सम्बन्धी उत्कृष्ट गति से जाते हुए जहाँ जम्बूद्वीप नामक द्वीप था, भरतक्षेत्र था, जहाँ मिथिला राजधानी थी और जहाँ कुम्भ राजा का भवन था, वहाँ पहुँचे। पहुँच कर कुम्भ राजा के भवन मे तीन सौ करोड आदि पूर्वोक्त द्रव्य सम्पत्ति पहुँचा दी। पहुँचा कर वे जृ भक देव, वैश्रवण देव के पास आये और उसकी आज्ञा वापिस लौटाई।

विवेचन—पृथ्वी का एक नाम 'वसुन्धरा' भी है। वसुन्धरा का शब्दार्थ है—वसु अर्थात् धन को धारण करने वाली। 'पदे पदे निधानानि' कहावत भी प्रसिद्ध है, जिसका आशय भी यही है कि इस पृथ्वी मे जगह-जगह निधान-खजाने भरे पडे हैं। जृम्भक देव अवधिज्ञानी होते हैं। उन्हे ज्ञान होता है कि कहाँ-कहाँ कितना द्रव्य गडा पडा है। जिन निधानो का कोई स्वामी नही बचा रहता, जिनका नामगोत्र भी निश्शेष हो जाता है जिनके वश में कोई उत्तराधिकारी नही रहता, जो निधान अस्वामिक हैं, उनमे से जृम्भक देव द्रव्य निकाल कर तीर्थंकर के वर्षीदान के लिए उनके घर मे पहुँचाते हैं।

१५८—तए ण से वेसमणे देवे जेणेव सक्के देविंदे देवराया तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता करयल जाव पच्चप्पिणइ।

तत्पश्चात् वह वैश्रवण देव जहाँ शक्र देवेन्द्र देवराज था, वहाँ आया। आकर दोनो हाथ जोडकर यावत् उसने इन्द्र की आज्ञा वापिस सौंपी।

१५९—तए ण मल्ली अरहा कल्लाकल्लिं जाव मागहओ पायरासो त्ति बहूण सणाहाण य अणाहाण य पथियाण य पहियाण य करोडियाण य कप्पडियाण य एगमेग हिरण्णकोडि अट्ठ य अणूणाइ सयसहस्साइ इमेयारूव अत्थसपदाण दलयइ।

तत्पश्चात् मल्ली अरिहत ने प्रतिदिन प्रात काल से प्रारम्भ करके मगध देश के प्रातराश (प्रात कालीन भोजन) के समय तक अर्थात् दोपहर पर्यन्त बहुत-से सनाथो, अनाथो पान्थिकों—निरन्तर मार्ग पर चलने वाले पथिकों, पथिको—राहगीरो अथवा किसी के द्वारा किसी प्रयोजन से भेजे गये पुरुषो, करोटिक-कपाल हाथ मे लेकर भिक्षा मागने वालों, कार्पटिक कथा कोपीन या गेरुए वस्त्र धारण करने वालो अथवा कपट से भिक्षा मांगने वालों अथवा एक प्रकार के भिक्षुक विशेषों को पूरी एक करोड और आठ लाख स्वर्णमोहरें दान मे देना आरम्भ किया।

---

१ प्रथम अ ७०

१६०—तए ण से कुभए राया मिहिलाए रायहाणीए तत्य तत्य तहिं तहिं देसे बहूओ महाणससालाओ करेइ। तत्य ण बहवे मणुया दिण्णभइ भत्त वेयणा विपुल असण पाण खाइम साइम उवक्खडेंति। उवक्खडित्ता जे जहा आगच्छंति तजहा—पथिया वा, पहिया वा, करोडिया वा, कप्पडिया वा, पासडत्था वा, गिहत्था वा तस्स य तहा आसत्यस्स वीसत्यस्स सुहासणवरगयस्स त विपुल असण पाण खाइम साइम परिभाएमाणा परिवेसेमाणा विहरति।

तत्पश्चात् कुम्भ राजा ने भी मिथिला राजधानी मे तत्र तत्र अर्थात् विभिन्न मुहल्लो या उपनगरो मे, तहिं तहिं अर्थात् महामार्गो मे तथा अन्य अनेक स्थानो मे, देशे देशे अर्थात् त्रिक, चतुष्क आदि स्थानो-स्थानो मे बहुत-सी भोजनशालाएँ बनवाईं। उन भोजनशालाओ मे बहुत-से-मनुष्य, जिन्हे भृति—धन, भक्त—भोजन और वेतन-मूल्य दिया जाता था, विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन बनाते थे। बना करके जो लोग जैसे-जैसे आते-जाते थे जैसे कि—पाथिक (निरन्तर रास्ता चलने वाले), पथिक (मुसाफिर), करोटिक (कपाल-खोपडी लेकर भीख मागने वाले) कार्पटिक (कथा, कौपीन या कषाय वस्त्र धारण करने वाले) पाखण्डी (साधु, बाबा, सन्यासी) अथवा गृहस्थ, उन्हें आश्वासन देकर, विश्राम देकर और सुखद आसान पर बिठला कर विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य दिया जाता था, परोसा जाता था। वे मनुष्य वहा भोजन आदि देते रहते थे।

१६१—तए ण मिहिलाए सिंघाडग जाव[1] बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ—'एव खलु देवाणुप्पिया! कुभगस्स रण्णो भवणसि सव्वकामगुणिय किमिच्छिय विपुल असण पाण खाइम साइम बहूण समणाय य जाय परिवेसिज्जइ।

वरवरिया घोसिज्जइ, किमिच्छिय दिज्जए बहुविहीय।
सुर-असुर देव दाणव नरिंदमहियाण निक्खमणे॥

तत्पश्चात् मिथिला राजधानी मे शृ गाटक, त्रिक, चौक आदि मार्गो मे बहुत-से लोग परस्पर इस प्रकार कहने लगे—'हे देवानुप्रियो! कुम्भ राजा के भवन मे सवकामगुणित अर्थात सब प्रकार के सुन्दर रूप, रस, गध और स्पर्श वाला—मनोवाञ्छित रस-पर्याय वाला तथा इच्छानुसार दिया जाने वाला विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार बहुत-से श्रमणा आदि को यावत् परोसा जाता है। तात्पर्य यह है कि कुम्भ राजा द्वारा जगह-जगह भोजनशालाएँ खुलवा देने और भोजनदान देने को गली-गली मे सवत्र चर्चा होने लगी।

वैमानिक, भवनपति, ज्योतिष्क और व्यन्तर देवो तथा नरेन्द्रो अर्थात् चक्रवर्ती आदि राजाओ द्वारा पूजित तीर्थकरो की दीक्षा के अवसर पर वरवरिका की घोषणा कराई जाती है, और याचको को यथेष्ट दान दिया जाता है। अर्थात् और तुम्हें क्या चाहिए? तुम्हें क्या चाहिए? इस प्रकार पूछ पूछ कर याचक को इच्छानुसार दान दिया जाता है।

१६२—तए ण मल्ली अरहा सवच्छरेण तिन्नि कोडिसया अट्ठासीइ च होंति कोडीओ असिइ च सयसहस्साइ इमेयारूव अत्यसपयाण दलइत्ता निक्खमामि त्ति मण पहारेइ।

उस समय अरिहत मल्ली ने तीन सौ अठासी करोड अस्सी लाख जितनी अर्थसम्पदा दान देकर 'मैं दीक्षा ग्रहण करू' ऐसा मन मे निश्चय किया।

---

१ प्रथम अ ७७

१६३—तेण कालेण तेण समएण लोगंतिया देवा बंभलोए कप्पे रिट्ठे विमाणपत्थडे सएहिं सएहिं विमाणेहिं, सएहिं सएहिं पासायवडिंसएहिं, पत्तेय पत्तेय चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं, तिहिं परिसाहिं, सत्तहिं अणिएहिं, सत्तहिं अणियाहिवईहिं, सोलसहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं, अन्नेहि य बहूहिं लोगंतिएहिं देवेहिं सद्धिं संपरिवुडा महयाहयनट्टगीयवाइय जाव [तंती-तल-ताल-तुडिय-घण-मुइंग-पडुप्पवाइय] रवेणं भुंजमाणा विहरंति। तंजहा—

सारस्सयमाइच्चा, वण्ही वरुणा य गद्दतोया य ।
तुसिया अव्वाबाहा, अग्गिच्चा चेव रिट्ठा य ॥

उस काल और उस समय में लौकान्तिक देव ब्रह्मलोक नामक पाँचवें देवलोक—स्वर्ग में, अरिष्ट नामक विमान के प्रस्तट—पाथड़े में, अपने-अपने विमान से, अपने-अपने उत्तम प्रासादों से, प्रत्येक-प्रत्येक चार-चार हजार सामानिक देवों से, तीन-तीन परिषदों से सात-सात अनीकों से, सात-सात अनीकाधिपतियों (सेनापतियों) से, सोलह-सोलह हजार आत्मरक्षक देवों से तथा अन्य अनेक लौकान्तिक देवों से युक्त—परिवृत होकर, खूब जोर से बजाये जाते हुए [तन्त्री, तल, ताल, त्रुटित, घन, मृदंग आदि वाद्यों] नृत्यों—गीतों के शब्दों के साथ दिव्य भोग भोगते हुए विचर रहे थे। उन लौकान्तिक देवों के नाम इस प्रकार हैं—(१) सारस्वत (२) वह्नि (३) आदित्य (४) वरुण (५) गर्दतोय (६) तुषित (७) अव्याबाध (८) आग्नेय (९) रिष्ट।[1]

१६४—तए ण तेसिं लोयंतियाणं देवाणं पत्तेयं पत्तेयं आसणाइं चलंति, तहेव जाव 'अरहंताणं निक्खममाणाणं संबोहणं करेत्तए त्ति तं गच्छामो णं अम्हे वि मल्लिस्स अरहओ संबोहणं करेमो।' त्ति कट्टु एवं संपेहेंति, संपेहित्ता उत्तरपुरच्छिमं दिसीभायं वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणंति, समोहणित्ता संखिज्जाइं जोयणाइं एवं जहा जंभगा जाव[2] जेणेव मिहिला रायहाणी जेणेव कुंभगस्स रण्णो भवणे, जेणेव मल्ली अरहा, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अंतलिक्खपडिवन्ना सखिंखिणियाइं जाव [दसद्धवण्णाइं] वत्थाइं पवरपरिहिया करयल[3] ताहिं इट्ठाहिं जाव[4] एवं वयासी—

तत्पश्चात् उन लौकान्तिक देवों में से प्रत्येक के आसन चलायमान हुए—इत्यादि उसी प्रकार जानना अर्थात् आसन चलित होने पर उन्होंने अवधिज्ञान का उपयोग लगाकर मल्ली अर्हन् के प्रव्रज्या के संकल्प को जाना। फिर विचार किया कि—दीक्षा लेने की इच्छा करने वाले तीर्थंकरों को सम्बोधन करना हमारा आचार है, अतः हम जाएँ और अरहन्त मल्ली को सम्बोधन करें, ऐसा लौकान्तिक देवों ने विचार किया। विचार करके उन्होंने ईशान दिशा में जाकर वैक्रियसमुद्घात से विक्रिया की—उत्तर वैक्रिय शरीर धारण किया। समुद्घात करके संख्यात योजन उल्लंघन करके, जृंभक देवों की तरह जहाँ मिथिला राजधानी थी, जहाँ कुम्भ राजा का भवन था और जहाँ मल्ली नामक अर्हन् थे, वहाँ आये। आकर के—अधर में स्थित रह कर घुंघरुओं के शब्द सहित यावत्

---

१ लौकान्तिक देवों के विषय में टीकाकार अभयदेवसूरि ने लिखा है—'क्वचित् दशविधा एते व्याख्यायन्ते, अस्माभिस्तु स्थानाङ्गानुसारेणाभिहिता ।' अर्थात् कहीं-कहीं लौकान्तिक देवों के दस भेद कहे हैं, किन्तु हमने स्थानांग सूत्र के अनुसार ही यहाँ भेदों का कथन किया है।—ज्ञाताङ्गवृत्ति पृ. १६० सिद्धचक्रसाहित्य-प्रचारकसमिति—संस्करण।

२ अष्टम अ. १५७   ३-४ प्र. अ. १८

पण्णरसमं अज्झयणं : नंदीफले

जम्बूस्वामी की जिज्ञासा

१—'जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं चोद्दसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते पन्नरसमस्स णायज्झयणस्स समणेणं भगवया महावीरेणं के अट्ठे पन्नत्ते ?'

श्री जम्बूस्वामी ने श्री सुधर्मास्वामी के समक्ष जिज्ञासा प्रस्तुत करते हुए कहा—'भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने चौदहवें ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है तो पन्द्रहवें ज्ञात-अध्ययन का श्रमण भगवान् महावीर ने क्या अर्थ कहा है ?'

समाधान

२—एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा णामं नयरी होत्था। पुन्नभद्दे नामं चेइए। जियसत्तू नामं राया होत्था। तत्थ णं चंपाए नयरीए धन्ने नामं सत्थवाहे होत्था, अड्ढे जाव[1] अपरिभूए।

श्री सुधर्मास्वामी उत्तर देते हैं—जम्बू ! उस काल और उस समय में चम्पा नामक नगरी थी। उसके बाहर पूर्णभद्र नामक चैत्य था। जितशत्रु नामक राजा था। उस चम्पा नगरी में धन्य नामक सार्थवाह था, जो सम्पन्न था यावत् किसी से पराभूत होने वाला नहीं था।

३—तीसे णं चंपाए नयरीए उत्तरपुरच्छिमे दिसिभाए अहिच्छत्ता नामं नयरी होत्था, रिद्धत्थिमियसमिद्धा, वन्नओ।[2] तत्थ णं अहिच्छत्ताए नयरीए कणगकेऊ नामं राया होत्था, महया वन्नओ।[3]

उस चम्पा नगरी से उत्तर-पूर्व दिशा में अहिच्छत्रा नामक नगरी थी। वह धन धान्य आदि से परिपूर्ण थी। यहाँ नगरी का वर्णन कह लेना चाहिए। उस अहिच्छत्रा नगरी में कनककेतु नामक राजा था। वह महाहिमवन्त पर्वत के समान आदि विशेषणों से युक्त था। यहाँ राजा का वर्णन कह लेना चाहिए (नगरी और राजा का विस्तृत वर्णन औपपातिकसूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिए।)

धन्य-सार्थवाह की घोषणा

४—तस्स धण्णस्स सत्थवाहस्स अन्नया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—'सेयं खलु मम विपुलं पणियभंडमायाए अहिच्छत्तं नगरिं वाणिज्जाए गमित्तए' एवं संपेहेइ, संपेहित्ता गणिमं च धरिमं च मेज्जं च पारिच्छेज्जं च चउव्विहं भंडं गेण्हइ, गेण्हित्ता सगडीसागडं सज्जेइ, सज्जित्ता सगडीसागडं भरेइ, भरित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

---

१. अ. १, सूत्र ६ २. औप. सूत्र १ ३. औप. सूत्र ७

किसी समय धन्य-सार्थवाह के मन में मध्य रात्रि के समय इस प्रकार का अध्यवसाय, चिंतित (मन में स्थित), प्रार्थित (मन को इष्ट), मनोगत (मन में ही गुप्त रहा हुआ) संकल्प (विचार) उत्पन्न हुआ—'विपुल (घी, तेल, गुड, खांड आदि) माल लेकर मुझे अहिच्छत्रा नगरी में व्यापार करने के लिए जाना श्रेयस्कर है।' उसने ऐसा विचार किया। विचार करके गणिम (गिन-गिन कर बेचने योग्य नारियल आदि), धरिम (तोल कर बेचने योग्य गुड आदि), मेय (पायली आदि से माप कर बेचने योग्य अन्न आदि) और परिच्छेद्य (काट-काट कर बेचने योग्य वस्त्र वगैरह) माल को ग्रहण किया। ग्रहण करके गाडी-गाडे तैयार किये। तैयार करके गाडी-गाडे भरे। भर कर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुला कर उनसे इस प्रकार कहा—

५—गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! चंपाए नयरीए सिंघाडग जाव पहेसु उग्घोसेमाणा उग्घोसेमाणा एवं वयह—एवं खलु देवाणुप्पिया! धण्णे सत्थवाहे विपुले पणियं आदाय इच्छइ अहिच्छत्तं नगरिं वाणिज्जाए गमित्तए। तं जो णं देवाणुप्पिया! चरए वा, चीरिए वा, चम्मखंडिए वा, भिच्छुंडे वा, पंडुरगे वा, गोयमे वा, गोवईए वा, गिहिधम्मे वा, गिहिधम्मचिंतए[1] वा अविरुद्ध-विरुद्ध-वुड्ढ-सावग रत्तपड निग्गंथप्पभिई पासंडत्थे वा गिहत्थे वा, तस्स णं धण्णेणं सद्धिं अहिच्छत्तं नयरिं गच्छइ, तस्स णं धण्णे सत्थवाहे अच्छत्तगस्स छत्तगं दलयइ, अणुवाहणस्स उवाहणाओ दलयइ, अकुंडियस्स कुंडियं दलयइ, अपत्थयणस्स पत्थयणं दलयइ, अपक्खेवगस्स पक्खेवं दलयइ, अंतरा वि य से पडियस्स वा भग्गलुग्गस्स साहेज्जं दलयइ, सुहंसुहेण य णं अहिच्छत्तं संपावेइ।'

त्ति कट्टु दोच्चं पि तच्चं पि घोसेह, घोसित्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।'

'देवानुप्रियो! तुम जाओ। चम्पा के शृंगाटक यावत् सब मार्गों में, गली-गली में घोषणा कर दो—

'हे देवानुप्रियो! धन्य-सार्थवाह विपुल माल भर कर अहिच्छत्रा नगरी में वाणिज्य के निमित्त जाना चाहता है। अतएव हे देवानुप्रियो! जो भी चरक (चरक मत का भिक्षुक) चीरिक (गली में पडे चीथडों को पहनने वाला) चर्मखंडिक (चमडे का टुकडा पहनने वाला) भिक्षांड (बौद्ध भिक्षुक) पांडुरंग (शैवमतावलम्बी भिक्षाचर) गौतम (बैल को विचित्र विचित्र प्रकार की करामात सिखा कर उससे आजीविका चलाने वाला) गोव्रती (जब गाय खाए तो आप खाय, गाय पानी पीए तो आप पानी पीए, गाय सोवे तो आप सोवे, गाय चले तो आप चले, इस प्रकार के व्रत का आचरण करने वाला) गृहिधर्मा (गृहस्थधर्म को श्रेष्ठ मानने वाला) गृहस्थधर्म का चिंतन करने वाला अविरुद्ध (विनयवान्) विरुद्ध (अक्रियावादि-नास्तिक आदि) वृद्ध-तापस श्रावक अर्थात् ब्राह्मण रक्तपट (परिव्राजक) निर्ग्रन्थ (साधु) आदि व्रतवान् या गृहस्थ—जो भी कोई—धन्य सार्थवाह के साथ अहिच्छत्रा नगरी में जाना चाहे उसे धन्य सार्थवाह अपने साथ ले जायगा। जिसके पास छतरी न होगी उसे छतरी दिलाएगा। वह बिना जूते वाले को जूते दिलाएगा, जिसके पास कमण्डलु नहीं होगा उसे कमण्डलु दिलाएगा, जिसके पास पथ्यदन (मार्ग में खाने के लिए भोजन) न होगा उसे पथ्यदन दिलाएगा, जिसके पास प्रक्षेप (चलते-चलते पथ्यदन समाप्त हो जाने पर रास्ते में पथ्यदन खरीदने के लिए आवश्यक धन) न होगा, उसे प्रक्षेप दिलाएगा, जो पड जाएगा, भग्न हो जायगा या रुग्ण हो

१ पाठान्तर—'धम्मचिंतए वा।'

जायगा, उसकी सहायता करेगा और सुख-पूर्वक अहिच्छत्रा नगरी तक पहुँचाएगा।

दो बार और तीन बार ऐसी घोषणा कर दो। घोषणा करके मेरी यह आज्ञा वापिस लौटाओ—मुझे सूचित करो।'

६—तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव एवं वयासी—हंदि ! सुणंतु भगवंतो चंपानगरीवत्थव्वा बहवे चरगा य जाव पच्चप्पिणंति।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने यावत् इस प्रकार घोषणा की—'हे चम्पा नगरी के निवासी भगवतो ! चरक आदि ! सुनो, इत्यादि कहकर पूर्वोक्त घोषणा करके उन्होंने धन्य-सार्थवाह की आज्ञा उसे वापिस सौंपी।

७—तए णं से कोडुंबियघोसणं सुच्चा चंपाए णयरीए बहवे चरगा य जाव गिहत्था य जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छंति। तए णं धण्णे तेसिं चरगाण य जाव गिहत्थाण य अच्छत्तगस्स छत्तं दलयइ जाव पत्थयणं दलयइ। दलइत्ता एवं वयासी—'गच्छह णं देवाणुप्पिया ! चंपाए नयरीए बहिया अग्गुज्जाणंसि मम पडिवालेमाणा चिट्ठह।'

कौटुम्बिक पुरुषों की पूर्वोक्त घोषणा सुनकर चम्पा नगरी के बहुत-से चरक यावत् गृहस्थ धन्य-सार्थवाह के समीप पहुँचे। तब उन चरक यावत् गृहस्थों में से जिनके पास जूते नहीं थे, उन्हें धन्य-सार्थवाह ने जूते दिलवाये, यावत् पथ्यदन दिलवाया। फिर उनसे कहा—'देवानुप्रियो ! तुम जाओ और चम्पा नगरी के बाहर उद्यान में मेरी प्रतीक्षा करते हुए ठहरो।'

धन्य-सार्थवाह का प्रस्थान

८—तए णं चरगा य जाव गिहत्था य धण्णेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणा जाव चिट्ठंति।

तए णं धण्णे सत्थवाहे सोहणंसि तिहि-करण-नक्खत्तंसि विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावित्ता मित्तनाइ [नियग-सयण-संबंधि-परियणं] आमंतेइ, आमंतित्ता भोयणं भोयावेइ, भोयावित्ता आपुच्छइ, आपुच्छित्ता सगडीसागडं जोयावेइ, जोयावित्ता चंपानगरीओ निग्गच्छइ। निग्गच्छित्ता णाइविप्पगिट्ठेहिं अद्धाणेहिं वसमाणे वसमाणे सुहेहिं वसहिपायरासेहिं अंगं जणवयं मज्झंमज्झेणं जेणेव देसग्गं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सगडीसागडं मोयावेइ, मोयावित्ता सत्थणिवेसं करेइ, करित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

तदनन्तर वे पूर्वोक्त चरक यावत् गृहस्थ आदि धन्य-सार्थवाह के इस प्रकार कहने पर प्रधान उद्यान में पहुँचकर उसकी प्रतीक्षा करते हुए ठहरे।

तब धन्य-सार्थवाह ने शुभ तिथि, करण और नक्षत्र में विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन बनवाया। बनवाकर मित्रों, ज्ञातिजनों आदि को आमन्त्रित करके उन्हें जिमाया। जिमा कर उनसे अनुमति ली। अनुमति लेकर गाड़ी-गाड़े जुतवाये और फिर चम्पा नगरी से बाहर निकला। निकल कर बहुत दूर-दूर पर पड़ाव न करता हुआ अर्थात् थोड़ी-थोड़ी दूर पर मार्ग में बसता बसता, सुखजनक वसति (रात्रिवास) और प्रातराश (प्रातःकालीन भोजन) करता हुआ अंग-

देश के बीचोंबीच होकर देश की सीमा पर जा पहुँचा। वहाँ पहुँच कर गाडी-गाडे खोले। पडाव डाला। फिर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर इस प्रकार कहा—

उपयोगी चेतावनी

९—'तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! मम सत्थनिवेसंसि महया महया सद्देणं उग्घोसेमाणा उग्घोसेमाणा एवं वदह—

एवं खलु देवाणुप्पिया ! इमीसे आगामियाए छिन्नावायाए दीहमद्धाए अडवीए बहुमज्झदेसभाए बहवे णंदिफला नामं रुक्खा पन्नत्ता—किण्हा जाव पत्तिया पुप्फिया फलिया हरिया रेरिज्जमाणा सिरीए अईव अईव उवसोभेमाणा चिट्ठंति, मणुण्णा वन्नेणं, मणुण्णा गंधेणं, मणुण्णा रसेणं, मणुण्णा फासेणं मणुण्णा छायाए, तं जो णं देवाणुप्पिया ! तेसिं नंदिफलाणं रुक्खाणं मूलाणि वा कंदाणि वा तयाणि वा पत्ताणि वा पुप्फाणि वा फलाणि वा बीयाणि वा हरियाणि वा आहारेइ, छायाए वा वीसमइ, तस्स णं आवाए भद्दए भवइ, ततो पच्छा परिणममाणा परिणममाणा अकाले चेव जीवियाओ ववरोवेंति। तं मा णं देवाणुप्पिया ! केइ तेसिं नंदिफलाणं मूलाणि वा जाव छायाए वा वीसमउ मा णं से ऽवि अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जस्सइ। तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! अन्नेसिं रुक्खाणं मूलाणि य जाव हरियाणि य आहारेह, छायासु वीसमह, त्ति घोसणं घोसेह।'

जाव पच्चप्पिणंति।

'देवानुप्रियो ! तुम मेरे साथ के पडाव में ऊँचे-ऊँचे शब्दों से बार-बार उद्घोषणा करते हुए ऐसा कहो कि—

हे देवानुप्रियो ! आगे आने वाली अटवी में मनुष्यों का आवागमन नहीं होता और यह बहुत लम्बी है। उस अटवी के मध्य भाग में 'नन्दीफल' नामक वृक्ष हैं। वे गहरे हरे (काले) वर्ण वाले यावत् पत्तों वाले, पुष्पों वाले, फलों वाले, हरे, शोभायमान और सौन्दर्य से अतीव-अतीव शोभित हैं। उनका रूप-रंग मनोज्ञ है यावत् (रस, गंध) स्पर्श मनोहर है और छाया भी मनोहर है। किन्तु हे देवानुप्रियो ! जो कोई भी मनुष्य उन नन्दीफल वृक्षों के मूल, कंद, छाल, पत्र, पुष्प, फल, बीज या हरित का भक्षण करेगा अथवा उनकी छाया में भी बैठेगा, उसे आपाततः (थोडी सी देर—क्षण भर) तो अच्छा लगेगा, मगर बाद में उनका परिणमन होने पर अकाल में ही वह मृत्यु को प्राप्त हो जाएगा। अतएव हे देवानुप्रियो ! कोई उन नंदीफलों के मूल आदि का सेवन न करे यावत् उनकी छाया में विश्राम भी न करे, जिससे अकाल में ही जीवन का नाश न हो। हे देवानुप्रियो ! तुम दूसरे वृक्षों के मूल यावत् हरित का भक्षण करना और उनकी छाया में विश्राम लेना। इस प्रकार की आघोषणा कर दो। मेरी आज्ञा वापिस लौटा दो।'

कौटुम्बिक पुरुषों ने आज्ञानुसार घोषणा करके आज्ञा वापिस लौटा दी।

१०—तए णं धण्णे सत्थवाहे सगडीसागडं जोएइ, जोइत्ता जेणेव नंदिफला रुक्खा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तेसिं नंदिफलाणं अदूरसामंते सत्थनिवेसं करेइ, करित्ता दोच्चं पि तच्चं पि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! मम सत्थनिवेसंसि महया। महया सद्देणं उग्घोसेमाणा उग्घोसेमाणा एवं वयह—'एए णं देवाणुप्पिया ! ते णंदिफला किण्हा जाव मणुण्णा छायाए, तं जो णं देवाणुप्पिया ! एएसिं णंदिफलाणं रुक्खाणं मूलाणि वा कंदाणि वा पुप्फाणि वा तयाणि वा पत्ताणि वा फलाणि वा जाव अकाले चेव जीवियाओ ववरोवेंति तं, मा णं

तुब्भे जाव दूर दूरेण परिहरमाणा वीसमह, मा ण अकाले जीवियाओ ववरोविस्सति। अन्नेसि रुक्खाण मूलाणि य जाव वीसमह त्ति कटट्ु घोसण' पच्चप्पिणति।

इसके बाद धन्य-सार्थवाह ने गाडी-गाडे जुतवाए। जुतवाकर जहाँ नदीफल नामक वृक्ष थे, वहाँ आ पहुँचा। उन नदीफल वृक्षों से न बहुत दूर न समीप मे पडाव डाला। फिर दूसरी बार और तीसरी बार कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और उनसे कहा—'देवानुप्रियो! तुम लोग मेरे पडाव मे ऊँची-ऊँची ध्वनि से पुन पुन घोषणा करते हुए कहो कि—'हे देवानुप्रियो! वे नन्दीफल वृक्ष ये है, जो कृष्ण वर्ण वाले, मनोज्ञ वर्ण, गध, रस, स्पर्श वाले और मनोहर छाया वाले है। अतएव हे देवानुप्रियो! इन नन्दीफल वृक्षो के मूल, कद, पुष्प, त्वचा, पत्र या फल आदि का सेवन मत करना, क्योकि ये यावत् अकाल मे ही जीवन से रहित कर देते हैं। अतएव कहीं ऐसा न हो कि इनका सेवन करके जीवन का नाश कर लो। इससे दूर ही रहकर विश्राम करना, जिससे ये जीवन का नाश न करें। हा दूसरे वृक्षो के मूल आदि का भले सेवन करना और उनकी छाया में विश्राम करना।'

कौटुम्बिक पुरुषों ने इसी प्रकार घोषणा करके आज्ञा वापिस सौंपी।

चेतावनी का पालन

११—तत्थ ण अत्थेगइया पुरिसा धन्नस्स सत्थवाहस्स एयमट्ठ सद्दहति, पत्तियति रोयति, एयमट्ठ सद्दहमाणा तेसि नदिफलाण दूर दूरेण परिहरमाणा अन्नेसि रुक्खाण मूलाणि य जाव वीसमति तेसि ण आवाए नो भद्दए भवइ, तओ पच्छा परिणममाणा परिणममाणा सुहरूवत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमति।

उनमे से किन्ही किन्ही पुरुषो ने धन्य-सार्थवाह की बात पर श्रद्धा की, प्रतीति की एव रुचि की। वे धन्य-सार्थवाह के कथन पर श्रद्धा करते हुए उन नन्दीफलो का दूर ही दूर से त्याग करते हुए, दूसरे वृक्षो के मूल आदि का सेवन करते थे और उन्ही की छाया मे विश्राम करते थ। उन्हे तात्कालिक भद्र (सुख) तो प्राप्त न हुआ, किन्तु उसके पश्चात् ज्यो ज्यो उनका परिणमन होता चला त्यो त्यो वे बार-बार सुख रूप ही परिणत होते चले गए।

उपसहार

१२—एवामेव समणाउसो! जो अम्ह निग्गथो वा निग्गथी वा जाव [आयरिय उवज्झायाण अतिए मु डे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइए समाणे] पचसु कामगुणेसु नो सज्जेइ, नो रज्जेइ, से ण इहभवे चेव बहूण समणाण समणीण सावयाण सावियाण अच्चणिज्जे भवइ, परलोए वि य नो आगच्छइ जाव [नो बहूणि हत्थछेयणाणि य कण्णछेयणाणि य नासाछेयणाणि य, एव हिययउप्पाय णाणि य वसणुप्पायणाणि उल्लबणाणि य पाविहिइ, पुणो अणाइय च ण अणवदग्ग दीहमद्ध चाउरत ससारकतार] वीईवइस्सइ जहा व ते पुरिसा।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो! हमारा जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी यावत् (आचार्य-उपाध्याय के समीप गृहत्याग कर अनगार रूप मे प्रव्रजित होकर) पाँच इन्द्रियो के विषयो मे न आसक्त नही होता और अनुरक्त नही होता, वह इसी भव मे बहुत-से श्रमणो, श्रमणियो, श्रावको और श्राविकाओ का पूजनीय होता है और परलोक मे भी दुख नही पाता है, जैसे—हाथ, कान, नाक

आदि का छेदन, हृदय एवं वृषणों का उत्पाटन, फांसी आदि। उसे अनादि अनन्त संसार-अटवी में चतुर्गति योनियों में भ्रमण नहीं करना पड़ता। वह अनुक्रम से संसार कान्तार को पार कर जाता है—सिद्धि प्राप्त कर लेता है।

१३—तत्थ णं जे से अप्पेगइया पुरिसा धण्णस्स एयमट्ठं नो सद्दहंति नो पत्तियंति नो रोयंति, धन्नस्स एयमट्ठं असद्दहमाणा जेणेव ते णंदिफला तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तेसिं नंदिफलाणं मूलाणि य जाव वीसमंति, तेसिं णं आवाए भद्दए भवइ, ततो पच्छा परिणममाणा जाव ववरोवेंति।

उनमें से जिन कितनेक पुरुषों ने धन्य-सार्थवाह की इस बात पर श्रद्धा नहीं की, प्रतीति नहीं की, रुचि नहीं की, वे धन्य-सार्थवाह की बात पर श्रद्धा न करते हुए जहाँ नन्दीफल वृक्ष थे, वहाँ गये। जाकर उन्होंने उन नन्दीफल वृक्षों के मूल आदि का भक्षण किया और उनकी छाया में विश्राम किया। उन्हें तात्कालिक सुख तो प्राप्त हुआ, किन्तु बाद में उनका परिणमन होने पर उन्हें जीवन से मुक्त होना पड़ा—मृत्यु का ग्रास बनना पड़ा।

१४—एवामेव समणाउसो! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा पव्वइए पंचसु कामगुणेसु सज्जेइ, जाव अणुपरियट्टिस्सइ, जहा व ते पुरिसा।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो! हमारा जो साधु या साध्वी प्रव्रजित होकर पाँच इन्द्रियों के विषयभोगों में आसक्त होता है, वह उन पुरुषों की तरह यावत् हस्तच्छेदन, कर्णच्छेदन, हृदयोत्पाटन आदि पूर्वोक्त दुःखों का भागी होता है और चतुर्गतिरूप संसार में पुनः पुनः परिभ्रमण करता है।

धन्य-सार्थवाह का अहिच्छत्रा पहुँचना

१५—तए णं से धण्णे सगडीसागडं जोयावेइ जोयावित्ता जेणेव अहिच्छत्ता णयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहिच्छत्ताए णयरीए बहिया अग्गुज्जाणे सत्थनिवेसं करेइ, करित्ता सगडीसागडं मोयावेइ।

तए णं से धण्णे सत्थवाहे महत्थं महग्घं महरिहं रायरिहं पाहुडं गेण्हइ, गेण्हित्ता बहुपुरिसेहिं सद्धिं संपरिवुडे अहिच्छत्तं नयरिं मज्झंमज्झेणं अणुप्पविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव कणगकेऊ राया तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता करयल जाव वद्धावेइ, वद्धावित्ता तं महत्थं पाहुडं उवणेइ।

इसके पश्चात् धन्य-सार्थवाह ने गाड़ी-गाड़े जुतवाए। जुतवाकर वह जहाँ अहिच्छत्रा नगरी थी, वहाँ पहुँचा। वहाँ पहुँचकर अहिच्छत्रा नगरी के बाहर प्रधान उद्यान में पड़ाव डाला और गाड़ी-गाड़े खुलवा दिए।

फिर धन्य सार्थवाह ने महामूल्यवान् और राजा के योग्य उपहार लिया और बहुत पुरुषों के साथ, उनसे परिवृत होकर अहिच्छत्रा नगरी में मध्यभाग में होकर प्रवेश किया। प्रवेश करके कनककेतु राजा के पास गया। वहाँ जाकर दोनों हाथ जोड़कर मस्तक पर अंजलि करके राजा का अभिनन्दन किया। अभिनन्दन करने के पश्चात् वह बहुमूल्य उपहार उसके समीप रख दिया।

माल का क्रय-विक्रय

१६—तए ण से कणगकेऊ राया हट्ठतुट्ठे धण्णस्स सत्थवाहस्स त महत्थ जाव पाहुड पडिच्छइ। पडिच्छित्ता धण्ण सत्थवाह सक्कारेइ समाणेइ सक्कारित्ता समाणित्ता उस्सुक्क वियरइ, वियरित्ता पडिविसज्जेइ। भडविणिमय करेइ, करित्ता पडिभड गेण्हइ, गेण्हित्ता सुहसुहेण जेणेव चपा नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मित्तणाइअभिसमन्नागए विउलाइ माणुस्सगाइ भोगभोगाइ भु जमाणे विहरइ।

उपहार प्राप्त करके राजा कनककेतु हर्षित और सन्तुष्ट हुआ। उसने धन्य-सार्थवाह के उस मूल्यवान् उपहार को स्वीकार किया। स्वीकार करके धन्य-साथवाह का सत्कार-सम्मान किया। सत्कार-सम्मान करके शुल्क (जकात) माफ कर दिया और उसे विदा किया। फिर धन्य-साथवाह ने अपने भाण्ड (माल) का विनिमय किया। विनिमय करके अपने माल के बदले मे दूसरा माल लिया। तत्पश्चात् सुखपूवक लौटकर चम्पा नगरी मे आ पहुँचा। आकर अपने मित्रो एव ज्ञातिजनो आदि से मिला और मनुष्य सम्वन्धी विपुल भोगने योग्य भोग भोगता हुआ रहने लगा।

धन्य-सार्थवाह की प्रव्रज्या . भविष्य

१७—तेण कालेण तेण समएण थेरागमण। धण्णे सत्थवाहे विणिग्गए, धम्म सोच्चा जेट्ठपुत्त कुडु बे ठावेत्ता पव्वइए। एक्कारस सामाइमाइयाइ अगाइ अहिज्जित्ता बहूणि वासाणि सामन्नपरियाग पाउणित्ता मासियाए सलेहणाए अत्ताण झूसेत्ता सट्ठिभत्ताइ अणसणाइ छेदित्ता अन्नयरेसु देवलोएसु देवताए उववन्ने। से ण देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएण चय चइत्ता महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ, जाव अत काहिइ।

उस काल और उस समय मे स्थविर भगवन्त का आगमन हुआ। धन्य-साथवाह उन्हे वन्दना करने के लिए निकला। धमदेशना सुनकर और ज्येष्ठ पुत्र को अपने कुटुम्ब मे स्थापित करके (कुटुम्ब का प्रधान बना कर) स्वय दीक्षित हो गया। सामायिक से लेकर ग्यारह अगो का अध्ययन करके और बहुत वर्षों तक सयम का पालन करके, एक मास की सलेखना करके, साठ भक्त का अनशन करके अन्यतर—किसी देवलोक मे देव पर्याय मे उत्पन्न हुआ। वह देव उस देवलोक से आयु का क्षय होने पर च्युत होकर महाविदेह क्षेत्र मे सिद्धि प्राप्त करेगा, यावत् जन्म-मरण का अन्त करेगा।

निक्षेप

१८—एव खलु जबू! समणेण भगवया महावीरेण पन्नरसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि।

इस प्रकार हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर ने पन्द्रहवें ज्ञात-अध्ययन का यह (पूर्वोक्त) अर्थ कहा है। जैसा मैंने सुना वैसा कहा है।

आदि का छेदन, हृदय एव वृषणों या उत्पाटन, फासी आदि। उसे अनादि अनन्त ससार-अटवी में चतुरशीति योनिया म भ्रमण नही करना पडता। वह अनुक्रम से ससार कान्तार को पार कर जाता है—सिद्धि प्राप्त कर लेता है।

१३—तत्थ ण जे से अप्पेगइया पुरिसा धण्णस्स एयमट्ठ नो सद्दहति नो पत्तियति नो रोयति, धन्नस्स एयमट्ठ असद्दहमाणा जेणेव ते णदिफला तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता तेसि नदिफलाण मूलाणि य जाव वीसमति, तेसि ण आवाए भद्दए भवइ, ततो पच्छा परिणममाणा जाव ववरोवेंति।

उनमे से जिन कितनेक पुरुषो ने धन्य-सार्थवाह की इस बात पर श्रद्धा नही की, प्रतीति नही की, रुचि नही की, वे धन्य-सार्थवाह की बात पर श्रद्धा न करते हुए जहाँ नन्दीफल वृक्ष थे, वहाँ गये। जाकर उन्होने उन नन्दीफल वृक्षो के मूल आदि का भक्षण किया और उनकी छाया मे विश्राम किया। उन्हे तात्कालिक सुख तो प्राप्त हुआ, किन्तु बाद मे उनका परिणमन होने पर उन्हें जीवन से मुक्त होना पडा—मृत्यु का ग्रास बनना पडा।

१४—एवामेव समणाउसो! जो अम्ह निग्गथो या निग्गथी या पव्वइए पचसु कामगुणेसु सज्जेइ, जाव अणुपरियट्टिस्सइ, जहा व ते पुरिसा।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो! हमारा जो साधु या साध्वी प्रव्रजित होकर पाँच इन्द्रियो के विषयभोगो मे आसक्त होता है, वह उन पुरुषो की तरह यावत् हस्तच्छेदन, कर्णच्छेदन, हृदयोत्पाटन आदि पूर्वोक्त दु खो का भागी होता है और चतुर्गतिरूप ससार मे पुन पुन परिभ्रमण करता है।

धन्य-सार्थवाह का अहिच्छत्रा पहुँचना

१५—तए ण से धण्णे सगडीसागडं जोयावेइ जोयावित्ता जेणेव अहिच्छत्ता णयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहिच्छत्ताए णयरीए बहिया अग्गुज्जाणे सत्थनिवेस करेई, करित्ता सगडीसागड मोयावेइ।

तए ण से धण्णे सत्थवाहे महत्थ महग्घ महरिह रायरिह पाहुड गेण्हइ, गेण्हित्ता बहुपुरिसेहि सद्धि सपरिवुडे अहिच्छत्त नयरि मज्झमज्झेण अणुप्पविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव कणगकेऊ राया तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता करयल जाव वद्धावेइ, वद्धावित्ता त महत्थ पाहुड उवणेइ।

इसके पश्चात् धन्य-सार्थवाह ने गाडी-गाडे जुतवाए। जुतवाकर वह जहाँ अहिच्छत्रा नगरी थी, वहाँ पहुँचा। वहाँ पहुँचकर अहिच्छत्रा नगरी के बाहर प्रधान उद्यान म पडाव डाला और गाडी-गाडे खुलवा दिए।

फिर धन्य सार्थवाह ने महामूल्यवान् और राजा के योग्य उपहार लिया और बहुत पुरुषो के साथ, उनसे परिवृत होकर अहिच्छत्रा नगरी मे मध्यभाग मे होकर प्रवेश किया। प्रवेश करके कनककेतु राजा के पास गया। वहाँ जाकर दोनो हाथ जोडकर मस्तक पर अजलि करके राजा का अभिनन्दन किया। अभिनन्दन करने के पश्चात् वह बहुमूल्य उपहार उसके समीप रख दिया।

माल का क्रय-विक्रय

१६—तए ण से कणगकेऊ राया हट्ठतुट्ठे धण्णस्स सत्थवाहस्स त महत्थ जाव पाहुड पडिच्छइ। पडिच्छित्ता धण्ण सत्थवाह सक्कारेइ समाणेइ सक्कारित्ता समाणित्ता उस्सुक्क वियरइ, वियरित्ता पडिविसज्जेइ। भडविणिमय करेइ, करित्ता पडिभड गेण्हइ, गेण्हित्ता सुहसुहेण जेणेव चपा नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मित्तणाइअभिसमन्नागए विउलाइ माणुस्सगाइ भोगभोगाइ भु जमाणे विहरइ।

उपहार प्राप्त करके राजा कनककेतु हर्षित और सन्तुष्ट हुआ। उसने धन्य-सार्थवाह के उस मूल्यवान् उपहार को स्वीकार किया। स्वीकार करके धन्य-साथवाह का सत्कार-सम्मान किया। सत्कार-सम्मान करके शुल्क (जकात) माफ कर दिया और उसे विदा किया। फिर धन्य-सार्थवाह ने अपने भाण्ड (माल) का विनिमय किया। विनिमय करके अपने माल के बदले मे दूसरा माल लिया। तत्पश्चात् सुखपूवक लौटकर चम्पा नगरी मे आ पहुँचा। आकर अपने मित्रो एव ज्ञातिजनो आदि से मिला और मनुष्य सम्बन्धी विपुल भोगने योग्य भोग भोगता हुआ रहने लगा।

धन्य-सार्थवाह की प्रव्रज्या भविष्य

१७—तेण कालेण तेण समएण थेरागमण। धण्णे सत्थवाहे विणिग्गए, धम्म सोच्चा जेट्ठपुत्त कुडु बे ठावेत्ता पव्वइए। एक्कारस सामाइमाइयाइ अगाइ अहिज्जित्ता बहूणि वासाणि सामन्नपरियाग पाउणित्ता मासियाए सलेहणाए अत्ताण झूसेत्ता सट्ठिभत्ताइ अणसणाइ छेदित्ता अन्नयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववन्ने। से ण देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएण चय चइत्ता महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ, जाव अत काहिइ।

उस काल और उस समय मे स्थविर भगवन्त का आगमन हुआ। धन्य-सार्थवाह उन्हे वन्दना करने के लिए निकला। धमदेशना सुनकर और ज्येष्ठ पुत्र को अपने कुटुम्ब मे स्थापित करके (कुटुम्ब का प्रधान बना कर) स्वय दीक्षित हो गया। सामायिक से लेकर ग्यारह अगो का अध्ययन करके और बहुत वर्षो तक सयम का पालन करके, एक मास की सलेखना करके, साठ भक्त का अनशन करके अन्यतर—किसी देवलोक मे देव पर्याय मे उत्पन्न हुआ। वह देव उस देवलोक से आयु का क्षय होने पर च्युत होकर महाविदेह क्षेत्र मे सिद्धि प्राप्त करेगा, यावत् जन्म-मरण का अन्त करेगा।

निक्षेप

१८—एव खलु जबू! समणेण भगवया महावीरेण पन्नरसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि।

इस प्रकार हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर ने पन्द्रहवें ज्ञात-अध्ययन का यह (पूर्वोक्त) अर्थ कहा है। जैसा मैंने सुना वैसा कहा है।

सोलहवाँ अध्ययन : द्रौपदी

सार : संक्षेप

मनुष्य कभी-कभी साधारण-से लाभ की इच्छा से प्रेरित होकर ऐसा अत्यन्त कुत्सित एवं क्रूर कर्म कर बैठता है कि उसका उसे अतीव दारुण दुष्फल भोगना पड़ता है। उसका भविष्य दीर्घातिदीर्घ काल के लिए घोर अन्धकारमय बन जाता है। द्रौपदी ज्ञात इस तथ्य को सरल, सरस और सुगम रूप से प्रदर्शित करता है।

द्रौपदी के जीव की कथा उसके नागश्री ब्राह्मणी के भव से प्रारम्भ होती है। नागश्री अपने परिवार के लिए भोजन तैयार करती है। उसने तुंबे का उत्तम शाक बनाया। मगर जब चखकर देखा तो ज्ञात हुआ कि तुंबा कटुक-विषाक्त है। उसने उपालम्भ अथवा अपयश से बचने के लिए उस शाक को एक जगह छिपाकर रख दिया। पारिवारिक जन भोजन करके अपने-अपने काम में लग गए। घर में जब नागश्री अकेली रह गई तब मासखमण के पारणक के दिन धर्मरुचि अनगार भिक्षा के लिए उसके घर पहुँचे। नाग से अमृत की आशा नहीं की जा सकती, उससे तो विष ही मिल सकता है। नागश्री मानवी के रूप में नागिन थी। उसने परम तपस्वी मुनि को विष ही प्रदान किया—विषाक्त तुंबे का शाक उनके पात्र में उड़ेल दिया।

मुनि धर्मरुचि वही आहार लेकर अपने गुरु के पास पहुँचते हैं। गुरुजी उसकी गंध से ही समझ जाते हैं कि यह शाक आहार विषैला है। फिर भी उसमें से एक बूंद लेकर चखते हैं और धर्मरुचि को परठ देने का आदेश देते हैं। कहते हैं—यह शाक प्राणहारी है।

धर्मरुचि परठने जाते हैं। उसमें से एक बूंद लेकर भूमि पर डाल कर उसकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा करते हैं। कीड़ियां आती हैं, ज्यों ही उसके रस का आस्वादन करती हैं, प्राण गँवा बैठती हैं। यह दृश्य देखकर मुनि का सदय हृदय दहल उठता है। सोचते हैं—सारा का सारा शाक परठ दिया जाए तो असंख्य जानदारों का घात हो जाएगा। इससे तो यही श्रेयस्कर है कि मैं अपने ही उदर में इसे परठ लूं। मुनि यही करते हैं। समाधिपूर्वक उनके जीवन का अन्त हो जाता है।

मगर नागश्री का पाप छिपा न रहा। सर्वत्र उसकी चर्चा फैल गई। घर वालों ने ताड़ना-तर्जना करके उसे बाहर निकाल दिया। वह भिखारिन बन गई। उस समय की उसकी दुर्दशा का मूल में जो चित्रण किया गया है, वह मूल से ही ज्ञात होगा। अन्तिम अवस्था में वह एक साथ सोलह भयानक रोगों से ग्रस्त होकर, अत्यन्त तीव्र दुःखों का अनुभव करती—हाय हाय करती मरती है और छठी नरकभूमि में पैदा होती है। इसके बाद उसके तीव्रतम पाप-कर्म के फलभोग का जो सिलसिला शुरू होता है, वह इतने दीर्घ-अतिदीर्घ काल तक चालू रहता है कि वर्षों की और युगों की गणना भी हार मान जाती है। वह प्रत्येक नरक में सागरोपमों की आयु से, अनेकों बार जन्म लेती है, बीच-बीच में मत्स्य आदि की योनियों में भी जन्म लेती है। शस्त्र से उसका वध किया जाता है। जलचर, नभचर और भूचर, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय आदि-आदि तिर्यंचपर्यायों में पुनः पुनः जन्म लेती, दुःखमय जीवनयापन करती और दुःख के साथ ही मरती है।

लम्बे काल तक के इस जन्म-मरण के पश्चात् उसे मनुष्यभव की प्राप्त होती है। एक सेठ के घर पुत्री के रूप मे जन्म होता है। 'सुकुमालिका' नाम रखा जाता है। किन्तु अब भी उसके पापफल का अन्त नही होता। विवाहित होने पर पति द्वारा उसका परित्याग कर दिया जाता है। उसके शरीर का स्पर्श उसे तलवार की धार जैसा तीक्ष्ण और अग्नि जैसा उष्ण लगता है। दबाव डालने पर पति कहता है—मैं मृत्यु का आलिगन करने को तैयार हूँ, मगर सुकुमालिका के शरीर के स्पर्श को सहन नही कर सकता।

सुकुमालिका का पुर्नविवाह किया जाता है एक अत्यन्त दीन भिखारी के साथ। सुकुमालिका के पिता को खाने-पीने के लिए मिट्टी के ठीकरे लिये, फटे चीथडे शरीर पर लपेटे एक भिखारी दिखाई देता है। वह उसे अन्दर बुलवाता है। मालिश, मदन, उबटन, स्नान और केशशृगार करवा कर, सुस्वादु भोजन जिमा कर बिठलाता है। सुकुमालिका से विवाह करने का प्रस्ताव करता है। भिखारी उसे स्वीकार कर लेता है। रात्रि मे शयनागार मे जाने पर वही स्थिति उत्पन्न होती है जो प्रथम विवाह के समय हुई थी। भिखारी भी रात मे ही उसे छोडकर भाग जाता है। सुकुमालिका का अगस्पर्श उसे भी सहन न हो सका।

एक अतिशय दीन भिखारी, सेठ के असीम वैभव एव स्वर्ग जैसे सुख के प्रलोभन को भी ठुकरा कर भाग गया तो आशा की कोई किरण शेष नही रही। पिता ने निराश होकर कहा—'बेटी, तेरे पापकर्म का उदय है, उसे सतोष के साथ भोग।' पिता ने दानशाला खोल दी। सुकुमालिका दान देती अपना समय व्यतीत करने लगी।

कुछ समय पश्चात् उसकी दानशाला मे आर्यिकाओ का भिक्षा के लिए आगमन हुआ। सुकुमालिका ने वशीकरण मत्र, तत्र, कामण आदि की याचना की। आर्यिकाओ ने उसे अपना धम समझाया। कहा—ऐसी बात सुनना भी हमारे लिए अयोग्य है। हम ब्रह्मचारिणी हैं। मन्त्र-तन्त्र से हमारा क्या वास्ता ?

आखिर सुकुमालिका उनके पास साध्वी-दीक्षा अगीकार कर लेती है। मगर उसके जीवन मे, अन्तरतर मे जो मलीनता जमी हुई थी, वह धुली नही थी। वह वहा भी शिथिलाचारिणी हो जाती है और स्वच्छद होकर साध्वी-समुदाय को छोड एकाकिनी रहने लगती है। बाहर जाकर आतापना लेती है। इसी प्रसग मे एक बार उसे पाच पुरुषो के साथ विलास करती एक वेश्या दृष्टिगोचर होती है। वेश्या एक पुरुष की गोद मे बैठी है। शेष चार मे से एक पुरुष उसके मस्तक पर छत्र लिए खडा है, कोई चवर ढोल रहा है तो कोई उसके पैर दबा रहा है। यह दृश्य देख कर सुकुमालिका के मन मे इसी प्रकार के सुखभोग की लालसा उत्पन्न होती है। वह सकल्प करती है—मेरी तपस्या का फल हो तो यही कि मैं भी इसी प्रकार का सुख प्राप्त करूँ।

अन्त मे मर कर वह देव पर्याय तो पाती है, मगर वहाँ भी देव-गणिका के रूप मे उत्पन्न होती है।

देवभव का अन्त होने पर पचालनृपति राजा द्रुपद की कन्या के रूप मे उसका जन्म हुआ। उचित वय होने पर स्वयवर का आयोजन किया गया। स्वयवर मे वासुदेव श्रीकृष्ण, पाण्डव आदि सहस्रो राजा आदि उपस्थित हुए। द्रौपदी ने पाँचो पाण्डवो का वरण किया। उसके इस स्वयवरण

पर किसी ने कोई आपत्ति नहीं की, मानो वह एक साधारण घटना थी। इससे तत्कालीन सामाजिक रीति-रिवाजों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

द्रौपदी पाण्डवों के साथ हस्तिनापुर चली गई। वहाँ भी कुछ विधि-विधान हुए। वारी वारी से वह पाण्डवों के साथ मानवीय सुखों का उपभोग करने लगी।

एक बार नारदजी अचानक हस्तिनापुर जा पहुँचे। द्रौपदी के सिवाय सब-ने उनकी यथोचित प्रतिपत्ति की। नारदजी द्रौपदी से रुष्ट हो गए। बदला लेने के विचार से धातकीखण्ड द्वीप में अमरकंका के राजा पद्मनाभ के यहाँ गये। द्रौपदी के रूप-लावण्य की अतिशय प्रशंसा करके पद्मनाभ को ललचाया। पद्मनाभ ने दैवी सहायता से द्रौपदी का हरण करवाया। द्रौपदी के संस्कार अब बदल चुके थे। वह पतिव्रता थी। पद्मनाभ ने द्रौपदी को भोग के लिए आमन्त्रित किया तो उसने छह महीने की मोहलत माँग ली। उसे विश्वास था कि इस बीच उसके रिश्ते के भाई श्रीकृष्ण आकर अवश्य मेरा उद्धार करेंगे। हुआ भी यही। पाण्डवों को साथ लेकर कृष्णजी अमरकंका राजधानी जा पहुँचे। उन्होंने पद्मनाभ को युद्ध में पराजित किया। राजधानी को तहस-नहस कर दिया। द्रौपदी का उद्धार हुआ।

यथासमय द्रौपदी ने एक पुत्र को जन्म दिया। नाम हुआ पाण्डुसेन। पाण्डुसेन जब समर्थ, कलाकुशल और राज्य का संचालन करने योग्य हो गया तब पाण्डव उसे सिंहासनासीन करके दीक्षित हो गए। द्रौपदी ने अपने पतियों का अनुसरण किया। अन्त में पाण्डवों ने मुक्ति प्राप्त की और द्रौपदी आर्या ने स्वर्ग प्राप्त किया।

प्रस्तुत अध्ययन काफी विस्तृत है। यह इस अध्ययन का अति संक्षिप्त सार है। विशेष के लिए जिज्ञासु स्वयं इस अध्ययन का स्वाध्याय करें।

सोलसमं अज्झयणं . अवरकंका (दोवई)

जम्बूस्वामी का प्रश्न

१—जइ ण भंते ! समणेण भगवया महावीरेण पन्नरसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते सोलसमस्स ण भंते ! णायज्झयणस्स समणेण भगवया महावीरेण के अट्ठे पण्णत्ते ?

श्री जम्बूस्वामी ने सुधर्मास्वामी से प्रश्न किया—'भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने पन्द्रहवे ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है, तो सोलहवें ज्ञात-अध्ययन का श्रमण भगवान् महावीर ने क्या अर्थ कहा है ?'

सुधर्मास्वामी का उत्तर

२—एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा णामं णयरी होत्था। तीसे णं चंपाए णयरीए बहिया उत्तर पुरच्छिमे दिसीभाए सुभूमिभागे णामं उज्जाणे होत्था।

श्री सुधर्मास्वामी ने जम्बूस्वामी के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा—'जम्बू ! उस काल और उस समय मे चम्पा नामक नगरी थी। उस चम्पा नगरी से बाहर उत्तर-पूर्व (ईशान) दिशा के भाग मे सुभूमिभाग नामक उद्यान था।

३—तत्थ णं चंपाए नयरीए तओ माहणा भायरो परिवसंति, तंजहा—सोमे, सोमदत्ते, सोमभूई, अड्ढा जाव [अपरिभूया] रिउव्वेय [जउव्वेय सामवेय-अथव्वणवेय जाव बंभण्णएसु य सत्थेसु] सुपरिनिट्ठिया।

तेसि णं माहणाणं तओ भारियाओ होत्था, तंजहा—नागसिरी, भूयसिरी, जक्खसिरी, सुकुमाल-पाणिपायाओ जाव तेसि णं माहणाणं इट्ठाओ, विपुले माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभवमाणीओ विहरंति।

उस चम्पा नगरी मे तीन ब्राह्मण-बन्धु निवास करते थे। उनके नाम इस प्रकार थे—सोम, सोमदत्त और सोमभूति। वे धनाढ्य थे यावत् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद तथा अन्य ब्राह्मणशास्त्रो मे अत्यन्त प्रवीण थे।

उन तीन ब्राह्मणो की तीन पत्नियाँ थी, वे इस प्रकार—नागश्री, भूतश्री और यक्षश्री। वे सुकुमार हाथ-पैर आदि अवयवो वाली यावत उन ब्राह्मणो की इष्ट थी। वे मनुष्य सम्बन्धी विपुल कामभोग भोगती हुई रहती थी।

सहभोज का निर्णय

४—तए णं तेसिं माहणाणं अन्नया कयाई एगयओ सहियाणं समुवागयाणं, जाव [सन्निसन्नाणं सण्णिविट्ठाणं] इमेयारूवे मिहो कहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था—'एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं इमे विपुले धणे जाव [—कणग-रयण-मणि-मोत्तिय संख-सिल प्पवाल रत्तरयण-संत सार—] सावतेज्जे

पर किसी ने कोई आपत्ति नही की, मानो वह एक साधारण घटना थी। इससे तत्कालीन सामाजिक रीति-रिवाजो पर अच्छा प्रकाश पडता है।

द्रौपदी पाण्डवो के साथ हस्तिनापुर चली गई। वहा भी कुछ विधि-विधान हुए। वारी वारी से वह पाण्डवो के साथ मानवीय सुखो का उपभोग करने लगी।

एक बार नारदजी अचानक हस्तिनापुर जा पहुँचे। द्रौपदी के सिवाय सब-ने उनकी यथोचित प्रतिपत्ति की। नारदजी द्रौपदी से रुष्ट हो गए। बदला लेने के विचार मे धातकीखण्ड द्वीप मे अमरकका के राजा पद्मनाभ के वहाँ गये। द्रौपदी के रूप-लावण्य की अतिशय प्रशसा करके पद्मनाभ को ललचाया। पद्मनाभ ने दैवी सहायता से द्रौपदी का हरण करवाया। द्रौपदी के सस्कार अब बदल चुके थे। वह पतिव्रता थी। पद्मनाभ ने द्रौपदी को भोग के लिए आमन्त्रित किया तो उसने छह महीने की मोहलत माँग ली। उसे विश्वास था कि इस बीच उसके रिश्ते के भाई श्रीकृष्ण आकर अवश्य मेरा उद्धार करेंगे। हुआ भी यही। पाण्डवो को साथ लेकर कृष्णजी अमरकका राजधानी जा पहुँचे। उन्होंने पद्मनाभ को युद्ध मे पराजित किया। राजधानी को तहस नहस कर दिया। द्रौपदी का उद्धार हुआ।

यथासमय द्रौपदी ने एक पुत्र को जन्म दिया। नाम हुआ पाण्डुसेन। पाण्डुसेन जब समर्थ, कलाकुशल और राज्य का सचालन करने योग्य हो गया तब पाण्डव उसे सिंहासनासीन करके दीक्षित हो गए। द्रौपदी ने अपने पतियो का अनुसरण किया। अन्त मे पाण्डवो ने मुक्ति प्राप्त की और द्रौपदी आर्या ने स्वर्ग प्राप्त किया।

प्रस्तुत अध्ययन काफी विस्तृत है। यह इस अध्ययन का अति सक्षिप्त सार है। विशेष के लिए जिज्ञासु स्वयं इस अध्ययन का स्वाध्याय करें।

— —

सोलसमं अज्झयणं अवरकंका (दोवई)

जम्बूस्वामी का प्रश्न

१—जइ ण भते ! समणेण भगवया महावीरेण पन्नरसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते सोलसमस्स ण भते ! णायज्झयणस्स समणेण भगवया महावीरेण के अट्ठे पण्णत्ते ?

श्री जम्बूस्वामी ने सुधर्मास्वामी से प्रश्न किया—'भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने पन्द्रहवें ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है, तो सोलहवें ज्ञात-अध्ययन का श्रमण भगवान् महावीर ने क्या अर्थ कहा है ?'

सुधर्मास्वामी का उत्तर

२—एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा णामं णयरी होत्था । तीसे णं चंपाए णयरीए बहिया उत्तर पुरच्छिमे दिसीभाए सुभूमिभागे णामं उज्जाणे होत्था ।

श्री सुधर्मास्वामी ने जम्बूस्वामी के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा—'जम्बू ! उस काल और उस समय मे चम्पा नामक नगरी थी । उस चम्पा नगरी से बाहर उत्तर-पूर्व (ईशान) दिशा के भाग म सुभूमिभाग नामक उद्यान था ।

३—तत्थ णं चंपाए नयरीए तओ माहणा भायरो परिवसंति, तंजहा—सोमे, सोमदत्ते, सोमभूई, अड्ढा जाव [अपरिभूया] रिउव्वेय [जउव्वेय सामवेय-अथव्वणवेय जाव बंभण्णएसु य सत्थेसु] सुपरिनिट्ठिया ।

तेसि णं माहणाणं तओ भारियाओ होत्था, तंजहा—नागसिरी, भूयसिरी, जक्खसिरी, सुकुमाल-पाणिपायाओ जाव तेसि णं माहणाणं इट्ठाओ, विपुले माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभवमाणीओ विहरंति ।

उस चम्पा नगरी मे तीन ब्राह्मण-बन्धु निवास करते थे । उनके नाम इस प्रकार थे—सोम, सोमदत्त और सोमभूति । वे धनाढ्य थे यावत् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद तथा अन्य ब्राह्मणशास्त्रों मे अत्यन्त प्रवीण थे ।

उन तीन ब्राह्मणों की तीन पत्नियां थी, वे इस प्रकार—नागश्री, भूतश्री और यक्षश्री । वे सुकुमार हाथ पैर आदि अवयवों वाली यावत् उन ब्राह्मणों की इष्ट थी । वे मनुष्य सम्बन्धी विपुल कामभोग भोगती हुई रहती थी ।

सहभोज का निर्णय

४—तए णं तेसिं माहणाणं अन्नया कयाई एगयओ सहियाणं समुवागयाणं, जाव [सन्निसन्नाणं सण्णिविट्ठाणं] इमेयारूवे मिहो कहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था—'एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं इमे विपुले धणे जाव [—कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल रत्तरयण-संत सार—] सावतेज्जे

अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवसाओ पकाम दाउ, पकाम भोत्तु, पकाम परिभाएउ, त सेय खलु अम्ह देवाणुप्पिया ! अन्नमन्नस्स गिहेसु कल्लाकल्लि विपुल असण पाण खाइम साइम उवक्खडेउ उवक्खडेउ परिभु जेमाणाण विहरित्तए।

किसी समय, एक बार एक साथ मिले हुए [साथ ही बैठे हुए] उन तीनों ब्राह्मणो मे इस प्रकार का समुल्लाप (वार्तालाप) हुआ—'देवानुप्रियो ! हमारे पास यह प्रभूत धन यावत् [कनक, रत्न, मणि, मोती, शख, शिला, प्रवाल, लाल आदि सारभूत] स्वापतेय-द्रव्य आदि विद्यमान है। सात पीढियो तक खूब दिया जाय, खूब भोगा जाय और खूब बाँटा जाय तो भी पर्याप्त है। अतएव हे देवानुप्रियो ! हम लोगो का एक-दूसरे के घरो मे प्रतिदिन बारी-बारी से विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम—यह चार प्रकार का आहार बनवा-बनवा कर एक साथ बैठ कर भोजन करना अच्छा रहेगा।'

५—अन्नमन्नस्स एयमट्ठ पडिसुर्णेति, कल्लाकल्लि अन्नमन्नस्स गिहेसु विपुल असण पाण खाइम साइम उवक्खडावेंति, उवक्खडावित्ता परिभु जेमाणा विहरति।

तीनो ब्राह्मणबन्धुओ ने आपस की यह बात स्वीकार की। वे प्रतिदिन एक-दूसरे के घरो मे प्रचुर अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार बनवाने लगे और बनवा कर साथ-साथ भोजन करने लगे।

नागश्री द्वारा कटु तू बे का शाक पकाना

६—तए ण तीसे नागसिरीए माहणीए अन्नया भोयणवारए जाए यावि होत्था। तए ण सा नागसिरी विपुल असण पाण खाइम साइम उवक्खडेइ, उवक्खडित्ता एग मह सालइय[1] तित्तालाउअ बहुसभार-सजुत्त णेहावगाढ उवक्खडेइ, एग बिंदुय करयलसि आसाइए, त खार कडुय अखज्ज अभोज्ज विसब्भूय जाणित्ता एव वयासी—'धिरत्थु ण मम नागसिरीए अहन्नाए अपुन्नाए दूभगाए दूभगसत्ताए दूभगणिबोलियाए, जीए ण मए सालइए बहुसभारसभिए नेहावगाढे उवक्खडिए सुबहुदव्वक्खए नेहक्खए य कए।

तत्पश्चात् एक बार नागश्री ब्राह्मणी के यहा भोजन की बारी आई। तब नागश्री ने विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन बनाया। भोजन बना कर एक बडा सा शरद् ऋतु सम्बन्धी अथवा सार (रस) युक्त तू बा (तू बे का शाक) बहुत-से मसाले डाल कर और तेल से व्याप्त (छौंक) कर तैयार किया। उस शाक मे से एक बू द अपनी हथेली मे लेकर चखा तो मालूम हुआ कि यह खारा, कडवा, अखाद्य और विष जैसा है। यह जान कर वह मन ही मन कहने लगी—'मुझ अधन्या, पुण्यहीना, अभागिनी, भाग्यहीन, अत्यन्त अभागिनी निंबोली के समान अनादरणीय नागश्री को धिक्कार है, जिस (मैं) ने यह शरद्-ऋतु सम्बन्धी या रसदार तू बा बहुत-से मसालो से युक्त और तेल से छौंका हुआ तैयार किया। इसके लिए बहुत-सा द्रव्य बिगाडा और तेल का भी सत्यानाश किया।

---

१ सालइय' शब्द के टीकाकार ने दो सस्कृत रूप बतलाए हैं—'शारदिक' और 'सारचित'।

७—त जइ ण मम जाउयाओ जाणिस्सति, तो ण मम खिसिस्सति, त जाव ताव मम जाउयाओ ण जाणति, ताव मम सेय एय सालइय तित्तालाउ बहुसभारनेहकड एगते गोवेत्तए, अन्न सालइअ महुरालाउय जाव नेहावगाढ उवक्खडेत्तए। एव सपेहेइ, सपेहित्ता त सालइय जाव गोवेइ, अन्न सालइय महुरालाउय उवक्खडेइ।

सो यदि मेरी देवरानिया यह वृत्तात जानेगी तो मेरी निन्दा करेंगी। अतएव जब तक मेरी देवरानिया न जान पाएँ तब तक मेरे लिए यही उचित होगा कि इस शरद्ऋतु सम्बन्धी, बहुत मसालेदार और स्नेह (तेल) से युक्त कटुक तु बे को किसी जगह छिपा दिया जाय और दूसरा शरद्ऋतु सम्बन्धी या सारयुक्त मीठा तु बा मसाले डाल कर और बहुत-से तेल से छौक कर तैयार किया जाय। नागश्री ने इस प्रकार विचार किया। विचार करके उस कटुक शरद्ऋतु सम्बन्धी तू बे को यावत् छिपा दिया और मीठा तु बा तैयार किया।

८—उवक्खडेत्ता तेसि माहणाण ण्हायाण जाव सुहासणवरगयाण त विपुल असण पाण खाइम साइम परिवेसइ। तए ण ते माहणा जिमियभुत्तुत्तरागया समाणा आयता चोक्खा परमसुइभूया सकम्मसपउत्ता जाया यावि होत्था। तए ण ताओ माहणीओ ण्हायाओ जाव विभूसियाओ त विपुल असण पाण खाइम साइम आहारेंति, आहारित्ता जेणेव सयाइ गेहाइ तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता सकम्मसपउत्ताओ जायाओ।

तत्पश्चात् वे ब्राह्मण स्नान करके यावत् सुखासन पर बैठे। उन्हे वह प्रचुर अशन, पान, खादिम और स्वादिम परोसा गया। वे ब्राह्मण भोजन कर चुकने के पश्चात् आचमन करके स्वच्छ होकर और परम शुचि होकर अपने-अपने काम मे सलग्न हो गए। तत्पश्चात स्नान की हुई और विभूपित हुई उन ब्राह्मणियो ने विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार जीमा। जीमकर वे अपने-अपने घर चली गईं। जाकर वे भी अपने-अपने काम मे लग गईं।

स्थविर-आगमन

९—तेण कालेण तेण समएण धम्मघोसा नाम थेरा जाव बहुपरिवारा जेणेव चपा णाम नयरी, जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे, तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता अहापडिरूव जाव [ओग्गह ओगिण्हित्ता सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणा] विहरति। परिसा निग्गया। धम्मो कहिओ। परिसा पडिगया।

उस काल और उस समय मे धमघोप नामक स्थविर यावत् बहुत बडे परिवार के साथ चम्पा नामक नगरी के सुभूमिभाग उद्यान मे पधारे। पधार कर साधु के योग्य उपाश्रय की याचना करके, यावत् [सयम और तप से आत्मा को भावित करते] विचरने लगे। उन्हें वन्दना करने के लिए परिपद् निकली। स्थविर मुनिराज ने धर्म का उपदेश दिया। उपदेश सुन कर परिपद् वापिस चली गई।

धर्मरुचि अनगार का भिक्षार्थ गमन

१०—तए ण तेसि धम्मघोसाण थेराण अतेवासी धम्मरुई नाम अणगारे ओराले जाव [घोरे

घोरगुणे घोरतवस्सी घोरबभचेरवासी उच्छूढसरीरे सखित्तविउल] तेउलेस्से मासमासेण खममाणे विहरइ। तए ण से धम्मरुई अणगारे मासखमणपारणगसि पढमाए पोरिसीए सज्झाय करेइ, करित्ता बीयाए पोरिसीए एव जहा गोयमसामी तहेव उग्गाहेइ, उग्गाहित्ता तहेव धम्मघोस थेर आपुच्छइ, जाव चपाए नयरीए उच्च-नीय-मज्झिमकुलाइ जाव अडमाणे जेणेव नागसिरीए माहणीए गिहे तेणेव अणुपविट्ठे।

धर्मघोप स्थविर के शिष्य धमरुचि नामक अनगार थे। वह उदार-प्रधान अथवा उराल-उग्र तपश्चर्या करने के कारण पाश्वस्थो पासत्थो के लिए अति भयानक लगते थे। [घोर अर्थात परीपह एव इन्द्रियो रूपी शत्रुगणो को जीतने मे उन पर दयाहीन थे। घोरगुण थे अर्थात जिन महाव्रतो आदि के मेवन म दूसरे कठिनाई अनुभव करते हैं ऐसे गुणो का आचरण करने वाले थे। घोर तपस्वी—घोर तपस्या करने वाले थे। घोर ब्रह्मचारी—साधारण जनो द्वारा दुरनुचर ब्रह्मचय का सेवन करने वाले थे। शरीर मे रहते हुए भी शरीर-सस्कार के त्यागी होने के कारण उच्छूढसरीर-शरीर के त्यागी—शारीरिक ममत्व से अस्पृष्ट-देहातीत दशा मे रमण करने वाले थे। अनेक योजन परिमाण क्षेत्र मे स्थित वस्तु को भी भस्म कर देने वाली विपुल तेजोलेश्या जिनके शरीर मे ही रहने के कारण सक्षिप्त थी, अर्थात् अपनी विपुल तेजोलेश्या का कभी प्रयोग नही करते थे।] वे धर्मरुचि अनगार मास-मास का तप करते हुए विचरते थे। किसी दिन धमरुचि अनगार के मासक्षपण के पारणा का दिन आया। उन्होने पहली पौरुपी मे स्वाध्याय किया, दूसरी मे ध्यान किया इत्यादि सब वृत्तान्त गौतमस्वामी के वणन के समान कहना चाहिए, तीसरे प्रहर मे पात्रो का प्रतिलेखन करके उन्हे ग्रहण किया। ग्रहण करके धर्मघोप स्थविर से भिक्षागोचरी लाने की आज्ञा प्राप्त की यावत वे चम्पा नगरी मे उच्च, नोच और मध्यम कुलो मे भ्रमण करते हुए नागश्री ब्राह्मणी के घर मे प्रविष्ट हुए।

कटुक तुबे का दान

११—तए ण सा नागसिरी माहणी धम्मरुइ एज्जमाण पासइ, पासित्ता तस्स सालइयस्स तित्तकडुयस्स बहुसभारसजुत्त णेहावगाढ निसिरणट्ठयाए हट्ठतुट्ठा उट्ठेइ, उट्ठित्ता जेणेव भत्तघरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता त सालइय तित्तकडुय च बहुनेह धम्मरुइस्स अणगारस्स पडिग्गहसि सव्वमेव निसिरइ।

तब नागश्री ब्राह्मणी ने धमरुचि अनगार को आते देखा। देख कर वह उस शरदऋतु सम्बन्धी, बहुत से मसाला वाले और तेल से युक्त तुबे के शाक को निकाल देने का योग्य अवसर जानकर हृष्ट-तुष्ट हुई और खडी हुई। खडी होकर भोजनगृह मे गई। वहाँ जाकर उसने वह शरद्ऋतु सम्बन्धी तिक्त और कड्वा बहुत तेल वाला सब-का सब शाक धर्मरुचि अनगार के पात्र मे डाल दिया।

१२—तए ण से धम्मरुई अणगारे अहापज्जत्तमिति कट्टु णागसिरीए माहणीए गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता चपाए नगरीए मज्झमज्झेण पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे जेणेव धम्मघोसा थेरा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मघोसस्स अदूरसामते इरियावहिय पडिक्कमइ, अन्नपाण पडिलेहेई अन्नपाण करयलसि पडिदसेइ।

तत्पश्चात् धर्मरुचि अनगार 'आहार पर्याप्त है' ऐसा जानकर नागश्री ब्राह्मणी के घर से बाहर निकले। निकलकर चम्पा नगरी के बीचोबीच होकर निकले। निकलकर सुभूमिभाग उद्यान मे आए। आकर उन्होने धमघोप स्थविर के समीप ईर्यापथ का प्रतिक्रमण करके अन्न-पानी का प्रतिलेखन किया।। प्रतिलेखन करके हाथ मे अन्न-पानी लेकर स्थविर गुरु को दिखलाया।

स्थविर का आदेश

१३—तए ण ते धम्मघोसा थेरा तस्स सालइयस्स नेहावगाढस्स गधेण अभिभूया समाणा तओ सालइयाओ नेहावगाढाओ एग बिंदुग गहाय करयलसि आसाएइ, तित्तग खार कडुय अखज्ज अभोज्ज विसभूय जाणित्ता धम्मरुइ अणगार एव वयासी—'जइ ण तुम देवाणुप्पिया! एय सालइय जाव नेहावगाढ आहारेसि तो ण तुम अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि, त मा ण तुम देवाणुप्पिया! इम सालइय जाव आहारेसि, मा ण तुम अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि। त गच्छ ण तुम देवाणुप्पिया! इम सालइय एगतमणावाए अचित्ते थडिले परिट्ठवेहि, परिट्ठवित्ता अन्न फासुय एसणिज्ज असण पाण खाइम साइम पडिगाहेत्ता आहार आहारेहि।'

उस समय धमघोप स्थविर ने, उस शरद्ऋतु सबन्धी तेल से व्याप्त शाक की गध से उद्विग्न होकर-पराभव को प्राप्त होकर, उस शरद्ऋतु सबन्धी एव तेल से व्याप्त शाक मे से एक बूद हाथ मे ली, उसे चखा। तब उसे तिक्त, खारा, कडवा, अखाद्य, अभोज्य और विप के समान जानकर धमरुचि अनगार से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय! यदि तुम यह शरद्ऋतु सबन्धी यावत् तेल वाला तुबे का शाक खाओगे तो तुम असमय मे ही जीवन से रहित हो जाओगे, अतएव हे देवानुप्रिय! तुम इस शरद्ऋतु सबन्धी शाक को मत खाना। ऐसा न हो कि असमय मे ही तुम्हारे प्राण चले जाएँ। अतएव हे देवानुप्रिय! तुम जाओ और यह शरद्ऋतु सबन्धी तुबे का शाक एकान्त, आवागमन से रहित, अचित्त भूमि मे परठ दो। इसे परठकर दूसरा प्रासुक और एषणीय अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य ग्रहण करके उसका आहार करो।'

१४—तए ण से धम्मरुई अणगारे धम्मघोसेण थेरेण एव वुत्ते समाणे धम्मघोसस्स थेरस्स अतियाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता, सुभूमिभागाओ उज्जाणाओ अदूरसामते थडिल्ल पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता तओ सालइयाओ एग बिंदुग गहेइ गहित्ता थडलसि निसिरइ।

तत्पश्चात् धमघोप स्थविर के ऐसा कहने पर, धर्मरुचि अनगार धर्मघोप स्थविर के पास से निकले। निकलकर सुभूमिभाग उद्यान से न अधिक दूर न अधिक समीप अर्थात् कुछ दूर पर उन्होने स्थडिल (भूभाग) को प्रतिलेखना करके उस शरद् सम्बन्धी तुबे के शाक की बूद ली और उस भूभाग मे डाली।

परठने से होने वाली हिंसा-स्वशरोर मे प्रक्षेप

१५—तए ण तस्स सालइयस्स तित्तकडुयस्स बहुनेहावगाढस्स गधेण बहूणि पिपीलिगासहस्साणि पाउब्भूयाइ। जा जहा य ण पिपीलिगा आहारेइ सा तहा अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जइ।

तए ण तस्स धम्मरुइस्स अणगारस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—'जइ ताव इमस्स सालइयस्स जाव एगमि बिदुगमि पक्खित्तमि अणेगाइ पिपीलिगासहस्साइ ववरोविज्जति, त जई ण अह एय सालइय थडिल्लसि सव्व निसिरामि, तए ण बहूण पाणाण भूआण जीवाण सत्ताण वहकारण भविस्सइ। त सेय खलु ममेय सालइय जाव गाढ सयमेव आहारेत्तए, मम चेव एएण सरीरेण णिज्जाउ' त्ति कट्टु एव सपेहेइ, सपेहित्ता मुहपोत्तिय पडिलेहइ, पडिलेहित्ता ससीसोवरिय काय पमज्जेइ, पमज्जित्ता त सालइय तित्तकडुय बहुनेहावगाढ बिलमिव पन्नगभूएण अप्पाणेण सव्व सरीरकोट्ठसि पक्खिवइ।

तत्पश्चात् उस शरद् सबन्धी तिक्त, कटुक और तेल से व्याप्त शाक की गध से बहुत-हजारो कीडिया वहा आ गई। उनमे से जिस कीडो ने जैसे ही शाक खाया, वैसे ही वह असमय मे ही मृत्यु को प्राप्त हुई।

तब धर्मरुचि अनगार के मन मे इस प्रकार विचार उत्पन्न हुआ—यदि इस शरद् सबधी यावत् शाक का एक बिन्दु डालने पर अनेक हजार कीडियाँ मर गई, तो यदि मैं सबका सब यह शाक भूमि पर डाल दूगा तो यह बहुत-से प्राणियो, भूतो, जीवो और सत्त्वो के वध का कारण होगा। अतएव इस शरद् सबन्धी यावत् तेल वाले शाक को स्वय ही खा जाना मेरे लिए श्रेयस्कर होगा। यह शाक इसी (मेरे) शरीर से ही समाप्त हो जाय—झर जाय। अनगार ने ऐसा विचार करके मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना की। प्रतिलेखना करके मस्तक सहित ऊपर शरीर का प्रमाजन किया। प्रमाजन करके वह शरद् सबन्धी तू बे का तिक्त कटुक और बहुत तेल से व्याप्त शाक स्वय ही, आस्वादन किए विना अपने शरीर के कोठे मे डाल लिया। जसे सप सीधा ही बिल मे प्रवेश करता है, उसी प्रकार वह आहार सीधा उनके उदर मे चला गया।

१६—तए ण तस्स धम्मरुइस्स त सालइय जाव नेहावगाढ आहारियस्स समाणस्स मुहुत्ततरेण परिणममाणसि सरीरगसि वेयणा पाउब्भूया उज्जला जाव [बिउला कक्खडा पगाढा चडा दुक्खा] दुरहियासा।

शरद् सबन्धी तु बे का यावत् तेल वाला शाक खाने पर धमरुचि अनगार के शरीर मे, एक मुहूर्त्त मे (थोडी-सी देर मे) ही उसका असर हो गया। उनके शरीर मे वेदना उत्पन्न हो गई। वह वेदना उत्कट थी, यावत् [विपुल, ककश, प्रगाढ तथा] दुस्सह थी।

१७—तए ण धम्मरुई अणगारे अथामे अबले अवीरिए अपुरिसक्कार-परक्कमे अधारणिज्ज मिति कट्टु आयारभडग एगते ठवेइ, ठवित्ता थडिल्ल पडिलेहइ, पडिलेहित्ता दब्भसथारग सथारेइ सथारित्ता दब्भसथारग दुरूहइ दुरूहित्ता पुरत्थाभिमुहे सपलियकनिसन्ने करयलपरिग्गहिय सिरसावत्त मत्थए अजलि कट्टु एव वयासी—

शाक पेट मे डाल लेने के पश्चात् धमरुचि अनगार स्थाम (उठने-बैठने की शक्ति) से रहित, बलहीन, वीय से रहित तथा पुरुषकार और पराक्रम से हीन हो गये। 'अब यह शरीर धारण नही किया जा सकता' ऐसा जानकर उन्होंने आचार के भाण्ड-पात्र एक जगह रख दिये। उन्हे रख कर स्थडिल का प्रतिलेखन किया। प्रतिलेखन करके दभ का सथारा बिछाया और वे उस पर आसीन हो

गये पूर्व दिशा की ओर मुख करके पर्यंक आसान से बैठ कर, दोनों हाथ जोडकर, मस्तक पर आवर्त्तन करके, अजलि करके इस प्रकार कहा—

१८—नमोऽत्थु ण अरहताण जाव सपत्ताण, नमोऽत्थु ण धम्मघोसाण थेराण मम धम्मायरियाण धम्मोवएसगाण, पुव्विं पि ण मए धम्मघोसाण थेराण अतिए सव्वे पाणाइवाए पच्चक्खाए जावज्जीवाए जाव परिग्गहे,[1] इयाणिं पि ण अह तेसिं चेव भगवताण अतिए सव्व पाणाइवाय पच्चक्खामि जाव परिग्गह पच्चक्खामि जावजीवाए, जहा खदओ जाव चरिमेहिं उस्सासेहिं वोसिरामि त्ति कट्टु आलोइयपडिक्कते समाहिपत्ते कालगए।

अरिहन्तो यावत् सिद्धिगति को प्राप्त भगवन्तो को नमस्कार हो। मेरे धर्माचार्य और धर्मोपदेशक धर्मघोष स्थविर को नमस्कार हो। पहले भी मैंने धमघोप स्थविर के पास सम्पूर्ण प्राणातिपात का जीवन पयन्त के लिये प्रत्याख्यान किया था, यावत् परिग्रह का भी, इस समय भी म उन्ही भगवन्तो के समीप (उनकी साक्षी से) सम्पूण प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करता हूँ यावत् सम्पूर्ण परिग्रह का प्रत्याख्यान करता हूँ जीवन-पयन्त के लिए। जैसे स्कदक मुनि ने त्याग किया, उसी प्रकार यहां जानना चाहिए। यावत् अतिम श्वासोच्छ्वास के साथ अपने इस शरीर का भी परित्याग करता हूँ। इस प्रकार कह कर आलोचना और प्रतिक्रमण करके, समाधि के साथ मृत्यु को प्राप्त हुए।

१९—तए ण ते धम्मघोसा थेरा धम्मरुइ अणगार चिर गय जाणित्ता समणे निग्गथे सद्दावेंति सद्दावित्ता एव वयासी—'एव खलु देवाणुप्पिया! धम्मरुइस्स अणगारस्स मासखमणपारणगसि सालाइयस्स जाव गाढस्स णिसिरणट्ठयाए बहिया निग्गए चिरावेइ, त गच्छह ण तुब्भे देवाणुप्पिया! धम्मरुइस्स अणगारस्स सव्वओ समता मग्गणगवेसण करेह।'

तत्पश्चात् धमघोप स्थविर ने धमरुचि अनगार को चिरकाल से गया जानकर निग्रन्थ श्रमणो को बुलाया। बुलाकर उनसे कहा—'देवानुप्रियो! धमरुचि अनगार को मासखमण के पारणक मे शरद् सबन्धी यावत् तेल वाला कटुक तु बे का शाक मिला था। उसे परठने के लिए वह बाहर गये थे। बहुत समय हो चुका है। अतएव देवानुप्रिय! तुम जाओ और धर्मरुचि अनगार की सब ओर मागणा—गवेषणा (तलाश) करो।'

२०—तए ण ते समणा निग्गथा जाव पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता धम्मघोसाण थेराण अतियाओ पडिनिक्खमति, पडिनिक्खमित्ता धम्मरुइस्स अणगारस्स सव्वओ समता मग्गणगवेसण करेमाणा जेणेव थडिल्ले तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता धम्मरुइस्स अणगारस्स सरीरग निप्पाण निच्चेट्ठ जीवविप्पजढ पासति, पासित्ता 'हा हा! अहो अकज्ज' मिति कट्टु धम्मरुइस्स अणगारस्स परिनिव्वाणवत्तिय काउस्सग्ग करेंति, करित्ता धम्मरुइस्स अणगारस्स आयारभडग गेण्हति, गेण्हित्ता जेणेव धम्मघोसा थेरा तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता गमणागमण पडिक्कमति, पडिक्कमित्ता एव वयासी—

---

१ धमरुचि अनगार को मध्यवर्ती तीर्थकर शासन मे हुए मानकर 'अगसुत्ताणि' म बहिद्धादाणे पाठ का सुभाव दिया है।

तए ण तस्स धम्मरुइस्स अणगारस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—'जइ ताव इमस्स सालइयस्स जाव एगमि बिंदुगमि पक्खित्तमि अणेगाइ पिपीलिगासहस्साइ ववरोविज्जति, त जई ण अह एय सालइय थडिल्लसि सव्व निसिरामि, तए ण बहूण पाणाण भूआण जीवाण सत्ताण वहकारण भविस्सइ । त सेय खलु ममेय सालइय जाव गाढ सयमेव आहारेत्तए, मम चेव एएण सरीरेण णिज्जाउ' त्ति कट्टु एव सपेहेइ, सपेहित्ता मुहपोत्तिय पडिलेहइ, पडिलेहित्ता ससीसोवरिय काय पमज्जेइ, पमज्जित्ता त सालइय तित्तकडुय बहुनेहावगाढ बिलमिव पन्नगभूएण अप्पाणेण सव्व सरीरकोट्ठसि पक्खिवइ ।

तत्पश्चात् उस शरद् सबन्धी तिक्त, कटुक और तेल से व्याप्त शाक की गध से बहुत-हजारो कीडिया वहाँ आ गईं । उनमे से जिस कीडी ने जैसे ही शाक खाया, वसे ही वह असमय मे ही मृत्यु को प्राप्त हुई ।

तब धमरुचि अनगार के मन मे इस प्रकार विचार उत्पन्न हुआ—यदि इस शरद् सबन्धी यावत् शाक का एक बिन्दु डालने पर अनेक हजार कीडियाँ मर गईं, तो यदि मैं सबका सब यह शाक भूमि पर डाल दू गा तो यह बहुत-से प्राणियो, भूतो, जीवो और सत्त्वो के वध का कारण होगा। अतएव इस शरद् सबन्धी यावत् तेल वाले शाक को स्वय ही खा जाना मेरे लिए श्रेयस्कर होगा। यह शाक इसी (मेरे) शरीर से ही समाप्त हो जाय—झर जाय। अनगार ने ऐसा विचार करके मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना की। प्रतिलेखना करके मस्तक सहित ऊपर शरीर का प्रमाजन किया। प्रमाजन करके वह शरद् सबन्धी तू बे का तिक्त कटुक और बहुत तेल से व्याप्त शाक स्वय ही, आस्वादन किए बिना अपने शरीर के कोठे मे डाल लिया। जैसे सर्प सीधा ही बिल मे प्रवेश करता है, उसी प्रकार वह आहार सीधा उनके उदर मे चला गया।

१६—तए ण तस्स धम्मरुइस्स त सालइय जाव नेहावगाढ आहारियस्स समाणस्स मुहुत्ततरेण परिणममाणसि सरीरगसि वेयणा पाउब्भूया उज्जला जाव [बिउला कक्खडा पगाढा चडा दुक्खा] दुरहियासा ।

शरद् सबन्धी तु बे का यावत् तेल वाला शाक खाने पर धमरुचि अनगार के शरीर मे, एक मुहूर्त्त मे (थोडी-सी देर मे) ही उसका असर हो गया। उनके शरीर मे वेदना उत्पन्न हो गई। वह वेदना उत्कट थी, यावत् [विपुल, कर्कश, प्रगाढ तथा] दुस्सह थी।

१७—तए ण धम्मरुई अणगारे अथामे अबले अवीरिए अपुरिसक्कार-परक्कमे अधारणिज्ज मिति कट्टु आयारभडग एगते ठवेइ, ठवित्ता थडिल्ल पडिलेहइ, पडिलेहित्ता दब्भसथारग सथारेइ सथारित्ता दब्भसथारग दुरूहइ दुरूहित्ता पुरत्थाभिमुहे सपलियकनिसन्ने करयलपरिग्गहिय सिरसावत्त मत्थए अजलि कट्टु एव वयासी—

शाक पेट मे डाल लेने के पश्चात् धमरुचि अनगार स्थाम (उठने-बैठने की शक्ति) से रहित, बलहीन, वीर्य से रहित तथा पुरुषकार और पराक्रम से हीन हो गये। 'अब यह शरीर धारण नहीं किया जा सकता' ऐसा जानकर उन्होने आचार के भाण्ड-पात्र एक जगह रख दिये। उन्हे रख कर स्थडिल का प्रतिलेखन किया। प्रतिलेखन करके दर्भ का सथारा बिछाया और वे उस पर आसीन हो

गये पूर्व दिशा की ओर मुख करके पर्यंक आसान से बैठ कर, दोनो हाथ जोडकर, मस्तक पर आवर्त्तन करके, अजलि करके इस प्रकार कहा—

१८—नमोऽत्थु ण अरहताण जाव सपत्ताण, नमोऽत्थु ण धम्मघोसाण थेराण मम धम्मायरियाण धम्मोवएसगाण, पुव्विं पि ण मए धम्मघोसाण थेराण अतिए सव्वे पाणाइवाए पच्चक्खाए जावज्जीवाए जाव परिग्गहे,[1] इयाणिं पि ण अह तेसिं चेव भगवताण अतिए सव्व पाणाइवाय पच्चक्खामि जाव परिग्गह पच्चक्खामि जावजीवाए, जहा खदओ जाव चरिमेहिं उस्सासेहिं वोसिरामि त्ति कट्टु आलोइयपडिक्कते समाहिपत्ते कालगए।

अरिहन्तो यावत् सिद्धिगति को प्राप्त भगवन्तो को नमस्कार हो। मेरे धर्माचार्य और धर्मोपदेशक धमघोष स्थविर को नमस्कार हो। पहले भी मैंने धमघोष स्थविर के पास सम्पूर्ण प्राणातिपात का जीवन पयन्त के लिये प्रत्याख्यान किया था, यावत् परिग्रह का भी, इस समय भी म उन्ही भगवन्तो के समीप (उनकी साक्षी से) सम्पूण प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करता हूँ यावत् सम्पूण परिग्रह का प्रत्याख्यान करता हूँ जीवन-पयन्त के लिए। जैसे स्कदक मुनि ने त्याग किया, उसी प्रकार यहाँ जानना चाहिए। यावत् अतिम श्वासोच्छ्वास के साथ अपने इस शरीर का भी परित्याग करता हूँ। इस प्रकार कह कर आलोचना और प्रतिक्रमण करके, समाधि के साथ मृत्यु को प्राप्त हुए।

१९—तए ण ते धम्मघोसा थेरा धम्मरुइ अणगार चिर गय जाणित्ता समणे निग्गथे सद्दावेंति सद्दावित्ता एव वयासी—'एव खलु देवाणुप्पिया! धम्मरुइस्स अणगारस्स मासखमणपारणगसि सालाइयस्स जाव गाढस्स णिसिरणट्ठयाए बहिया निग्गए चिरावेइ, त गच्छह ण तुब्भे देवाणुप्पिया! धम्मरुइस्स अणगारस्स सव्वओ समता मग्गणगवेसण करेह।'

तत्पश्चात् धमघोष स्थविर ने धमरुचि अनगार को चिरकाल से गया जानकर निग्रन्थ श्रमणो को बुलाया। बुलाकर उनसे कहा—'देवानुप्रियो! धमरुचि अनगार को मासखमण के पारणक मे शरद् सबन्धी यावत् तेल वाला कटुक तु बे का शाक मिला था। उसे परठने के लिए वह बाहर गये थे। बहुत समय हो चुका है। अतएव देवानुप्रिय! तुम जाओ और धमरुचि अनगार की सब ओर मार्गणा—गवेपणा (तलाश) करो।'

२०—तए ण ते समणा निग्गथा जाव पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता धम्मघोसाण थेराण अतियाओ पडिनिक्खमति, पडिनिक्खमित्ता धम्मरुइस्स अणगारस्स सव्वओ समता मग्गणगवेसण करेमाणा जेणेव थडिल्ले तणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता धम्मरुइस्स अणगारस्स सरीरग निप्पाण निच्चेट्ठ जीवविप्पजढ पासति, पासित्ता 'हा हा! अहो अकज्ज' मिति कट्टु धम्मरुइस्स अणगारस्स परिनिव्वाणवत्तिय काउस्सग्ग करेंति, करित्ता धम्मरुइस्स अणगारस्स आयारभडग गेण्हति, गेण्हित्ता जेणेव धम्मघोसा थेरा तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता गमणागमण पडिक्कमति, पडिक्कमित्ता एव वयासी—

---

१ धमरुचि अनगार को मध्यवर्ती तीथकर-शासन मे हुए मानकर 'अगमुत्ताणि म बहिद्धादाणे पाठ का सुभाव दिया है।

तत्पश्चात् श्रमण निर्ग्रंथो ने अपने गुरु का आदेश अगीकार किया। अगीकार करके वे धर्मघोष स्थविर के पास से बाहर निकले। बाहर निकल कर सब ओर धर्मरुचि अनगार की मार्गणा—गवेषणा करते हुए जहाँ स्थडिलभूमि थी वहाँ आये। आकर देखा—धर्मरुचि अनगार का शरीर निष्प्राण, निश्चेष्ट और निर्जीव पडा है। उसे देख कर उनके मुख से सहसा निकल पडा—'हा हा ! अहो ! यह अकाय हुआ—बुरा हुआ !' इस प्रकार कह कर उन्होने धर्मरुचि अनगार का परिनिर्वाण होने सबन्धी कायोत्सग किया और आचार-भाडक (पात्र) ग्रहण किये और धर्मघोष स्थविर के निकट पहुँचे। पहुँच कर गमनागमन का प्रतिक्रमण किया। प्रतिक्रमण करके बोले—

२१—एव खलु अम्हे तुब्भ अतियाओ पडिनिक्खमाणो पडिनिक्खमित्ता सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स परिपेरतेण धम्मरुइस्स अणगारस्स सव्वओ समता मग्गण-गवेसण करेमाणा जेणेव थडिल्ले तेणेव उवागच्छामो, उवागच्छित्ता जाव इह हव्वमागया। त कालगए ण भते ! धम्मरुई अणगारे, इमे से आयारभडए।

आपका आदेश पा करके हम आपके पास से निकले थे। निकल कर सुभूमिभाग उद्यान के चारो तरफ धर्मरुचि अनगार की यावत् सभी ओर मागणा—गवेषणा करते हुए स्थडिल भूमि मे गये। वहाँ जाकर यावत् जल्दी ही यहाँ लौट आए है। भगवन् ! धर्मरुचि अनगार कालधर्म को प्राप्त हो गए हैं। यह उनके आचार-भाड हैं। (इस प्रकार वहाँ का समग्र वृत्तात निवेदन कर पात्र आदि उपकरण गुरु महाराज के सामने रख दिए।)

२२—तए ण ते धम्मघोसा थेरा पुव्वगए उवओग गच्छति, गच्छित्ता समणे निग्गथे निग्गथीओ य सद्दावेंति, सद्दावित्ता एव वयासी—'एव खलु अज्जो ! मम अतेवासी धम्मरुई नाम अणगारे पगइ भद्दए जाव [पगइउवसते पगइपयणुकोहमाणमायालोहे मिउमद्दवसपण्णे अल्लीणे भद्दए] विणीए मास मासेण अणिक्खित्तेण तवोकम्मेण अप्पाण भावेमाणे जाव नागसिरीए माहणीए गिहे अणुपविट्ठे, तए ण सा नागसिरी माहणी जाव निसिरइ।

तए ण से धम्मरुई अणगारे अहापज्जत्तमिति कट्टु जाव काल अणवकखेमाणे विहरइ।

तत्पश्चात् स्थविर धर्मघोष ने पूर्वश्रुत मे उपयोग लगाया। उपयोग लगाकर (समग्र घटित घटना को जान लिया, तब) श्रमण निर्ग्रन्थो को और निर्ग्रन्थियो को बुलाकर उनसे कहा—'हे आर्यो ! निश्चय ही मेरा अन्तेवासी धर्मरुचि नामक अनगार स्वभाव से भद्र यावत् [स्वभाव से उपशान्त मद क्रोध-मान-माया-लोभ वाला, मृदुता से सम्पन्न, आत्मभाव मे लीन, भद्र और] विनीत था। वह मासखमण की तपस्या कर रहा था। यावत् वह नागश्री ब्राह्मणी के घर पारणक-भिक्षा के लिये गया। तब नागश्री ब्राह्मणी ने उसके पात्र मे सब का सब कटुक, विष-सदृश तुबे का शाक उडेल दिया।

तब धर्मरुचि अनगार अपने लिए पर्याप्त आहार जानकर यावत् काल की आकाक्षा न करते हुए विचरने लगे। तात्पर्य यह कि स्थविर ने पिछला समग्र वृत्तान्त अपने शिष्यो को सुना दिया।

देवपर्याय की प्राप्ति

२३—से ण धम्मरुई अणगारे बहूणि वासाणि सामन्नपरियाग पाउणित्ता आलोइयपडिक्कते

समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा उड्ढं सोहम्म जाव सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे देवत्ताए उववन्ने। तत्थ णं अजहण्णमणुक्कोसं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। तत्थ धम्मरुइस्स वि देवस्स तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। से णं धम्मरुई देवे ताओ देवलोगाओ जाव [आउक्खएणं ठिइक्खएणं भवक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता] महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ।

धर्मरुचि अनगार बहुत वर्षों तक श्रामण्य पर्याय पाल कर, आलोचना-प्रतिक्रमण करके समाधि में लीन होकर काल-मास में काल करके, ऊपर सौधर्म आदि देवलोकों को लांघ कर, यावत् सर्वार्थसिद्ध नामक महाविमान में देवरूप से उत्पन्न हुए हैं। वहाँ जघन्य-उत्कृष्ट भेद से रहित एक ही समान सब देवों की तेतीस सागरोपम की स्थिति कही गई है। धर्मरुचि देव की भी तेतीस सागरोपम की स्थिति हुई। वह धर्मरुचि देव उस सर्वार्थसिद्ध देवलोक से आयु, स्थिति और भव का क्षय होने पर च्युत होकर सीधे महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्धि प्राप्त करेगा।

२४—'तं धिरत्थु णं अज्जो! णागसिरीए माहणीए अधन्नाए अपुन्नाए जाव णिंबोलियाए, जाए णं तहारूवे साहू धम्मरुई अणगारे मासखमणपारणगंसि सालइएणं जाव गाढेणं अकाले चेव जीवियाओ ववरोविए।'

'तो हे आर्यो! उस अधन्य अपुण्य, यावत् निंबोली के समान कटुक नागश्री ब्राह्मणी को धिक्कार है, जिसने तथारूप साधु धर्मरुचि अनगार को मासखमण के पारणक में शरद् सम्बन्धी यावत् तेल से व्याप्त कटुक, विषाक्त तुंबे का शाक देकर असमय में ही मार डाला।'

२५—तए णं ते समणा निग्गंथा धम्मघोसाणं थेराणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म चंपाए सिंघाडग तिग जाव [चउक्क-चच्चर चउम्मुह-महापह-पहेसु] बहुजणस्स एवमाइक्खंति—'धिरत्थु णं देवाणुप्पिया! नागसिरीए माहणीए जाव णिंबोलियाए, जाए णं तहारूवे साहू साहुरूवे सालइएणं जीवियाओ ववरोविए।'

तत्पश्चात् उन निर्ग्रन्थ श्रमणों ने धर्मघोष स्थविर के पास से यह वृत्तान्त सुनकर और समझ कर चम्पानगरी के शृंगाटक, त्रिक, चौक, चत्वर, चतुर्मुख राजमार्ग, गली आदि मार्गों में जाकर यावत् बहुत लोगों से इस प्रकार कहा—'धिक्कार है उस यावत् निंबोली के समान कटुक नागश्री ब्राह्मणी को, जिसने उस प्रकार के साधु और साधु रूप धारी मासखमण का तप करने वाले धर्मरुचि नामक अनगार को शरद् सम्बन्धी यावत् विष सदृश कटुक शाक देकर मार डाला।'

२६—तए णं तेसिं समणाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म बहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खइ, एवं भासइ—'धिरत्थु णं नागसिरीए माहणीए जाव जीवियाओ ववरोविए।'

तब उस श्रमणों से इस वृत्तान्त को सुन कर और समझ कर बहुत-से लोग आपस में इस प्रकार कहने लगे और बातचीत करने लगे—'धिक्कार है उस नागश्री ब्राह्मणी को, जिसने यावत् मुनि को मार डाला।'

नागश्री की दुर्दशा

२७—तए णं ते माहणा चंपाए नयरीए बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म आसुरुत्ता

जाव [रुट्ठा कुविया चंडिक्किया] मिसिमिसेमाणा जेणेव नागसिरी माहणी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता णागसिरिं माहणिं एवं वयासी—

'हं भो नागसिरी! अपत्थियपत्थिए दुरंतपंतलक्खणे हीणपुण्णचाउद्दसे धिरत्थु णं तव अधन्नाए अपुन्नाए दूभगाए दूभगसत्ताए दूभगणिंबोलियाए, जाए णं तुमे तहारूवे साहू साहुरूवे मासखमणपारणगंसि सालइएणं जाव ववरोविए।' उच्चावएहिं अक्कोसणाहिं अक्कोसंति, उच्चावयाहिं उद्धंसणाहिं उद्धंसेंति, उच्चावयाहिं णिब्भत्थणाहिं णिब्भत्थंति, उच्चावयाहिं णिच्छोडणाहिं णिच्छोडेंति, तज्जेंति, तालेंति, तज्जेत्ता तालेत्ता सयाओ गिहाओ निच्छुभंति।

तत्पश्चात वे सोम, सोमदत्त और सोमभूति ब्राह्मण, चम्पानगरी में बहुत से लोगों से यह वृत्तान्त सुनकर और समझकर, कुपित हुए यावत् [क्रोध से जल उठे, रुष्ट हुए, अतीव कुपित हुए, तीव्र क्रोध के वशीभूत हो गए] और मिसमिसाने (जलने) लगे। वे वहीं जा पहुँचे जहां नागश्री थी। उन्होंने वहां जाकर नागश्री से इस प्रकार कहा—

'अरी नागश्री! अप्रार्थित (मरण) की प्रार्थना करने वाली! दुष्ट और अशुभ लक्षणों वाली! निकृष्ट कृष्णा चतुर्दशी में जन्मी हुई! अधन्य, अपुण्य, भाग्यहीने! अभागिनी! अतीव दुर्भागिनी! निंबोली के समान कटुक! तुझे धिक्कार है, जिसने तथारूप साधु और साधु रूप धारी को मासखमण के पारणक में शरद् सम्बन्धी यावत् विषैला शाक वहरा कर मार डाला!'

इस प्रकार कह कर उन ब्राह्मणों ने ऊँचे-नीचे आक्रोश (तू मर जा आदि) वचन कह कर आक्रोश किया अर्थात् गालियां दीं, ऊँचे-नीचे उद्धसना वचन (तू नीच कुल की है, आदि) कह कर उद्धसना की, ऊँचे-नीचे भर्त्सना वचन (निकल जा हमारे घर से आदि) कहकर भर्त्सना की तथा ऊँचे-नीचे निश्छोटन वचन (हमारे गहने, कपड़े उतार दे, इत्यादि) कह कर निश्छोटना की, 'हे पापिनी तुझे पाप का फल भुगतना पड़ेगा' इत्यादि वचनों से तर्जना की और थप्पड़ आदि मार मार कर ताड़ना की। इस प्रकार तर्जना और ताड़ना करके उसे घर से निकाल दिया।

२८—तए णं सा नागसिरी सयाओ गिहाओ निच्छूढा समाणी चंपाए नयरीए सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु बहुजणेणं हीलिज्जमाणी खिंसिज्जमाणी निंदिज्जमाणी गरहिज्जमाणी तज्जिज्जमाणी पव्वहिज्जमाणी धिक्कारिज्जमाणी थुक्कारिज्जमाणी कत्थइ ठाणं वा निलयं वा अलभमाणी दंडीखंडनिवसणा खंडमल्लग-खंडघडग हत्थगया फुट्ट-हडाहड सीसा मच्छिया-चडगरेणं अन्निज्जमाणमग्गा गेहं गेहेणं देहं-बलियाए वित्तिं कप्पेमाणी विहरइ।

तत्पश्चात् वह नागश्री अपने घर से निकाली हुई चम्पानगरी में शृंगाटकों (सिंघाड़े के आकार के मार्गों) में, त्रिक (तीन रास्ते जहाँ मिलते हों ऐसे मार्गों) में, चतुष्क (चौकों) में, चत्वरों (चबूतरों) तथा चतुर्मुख (चार द्वार वाले देवकुल आदि) में, बहुत जनों द्वारा अवहेलना की पात्र होती हुई, कुत्सा (बुराई) की जाती हुई, निन्दा और गर्हा की जाती हुई, उंगली दिखा-दिखा कर तर्जना की जाती हुई, डंडों आदि की मार से व्यथित की जाती हुई, धिक्कारी जाती हुई तथा थूकी जाती हुई न कहीं भी ठहरने का ठिकाना पा सकी और न कहीं रहने को स्थान पा सकी। टुकड़े-टुकड़े सांधे हुए वस्त्र पहने, भोजन के लिए सिकोरे का टुकड़ा लिए, पानी पीने के लिए घड़े का टुकड़ा हाथ में लिए, मस्तक पर अत्यन्त बिखरे बालों को धारण किए, जिसके पीछे मक्खियों के झुंड भिन-भिना रहे

थे, ऐसी वह नागश्री घर-घर देहवलि (अपने अपने घरो पर
चलाती हुई— पेट पालती हुई भटकने लगी ।

२९—तए ण तीसे नागसिरीए माहणीए तब्भवसि
सासे कासे जोणिसूले जाव कोढे । तए ण नागसिरी माहणी
अट्टदुहट्टवसट्टा कालमासे काल किच्चा छट्ठीए पुढवीए उ
नेरइयत्ताए उववन्ना ।

तदनन्तर उस नागश्री ब्राह्मणी को उसी (वत्तमान)
इस प्रकार-श्वास कास योनिशूल यावत् कोढ[1] । तत्पश्चात्
पीडित होकर अतीव दु ख के वशीभूत होकर, कालमास मे
उत्कृष्ट बाईस सागरोपम की स्थिति वाले नारक के रूप मे उ

३०—सा ण तओऽणतर उव्वट्टित्ता मच्छेसु उववन्ना,
मासे काल किच्चा अहे सत्तमीए पुढवीए उक्कोसाए तित्तीसस

तत्पश्चात् नरक मे सीधी निकल कर वह नागश्री मत
से वध करने योग्य हुई—उसका वध शस्त्र से किया गया। अ
काल करके, नीचे सातवी पृथ्वी (नरकभूमि) मे उत्कृष्ट तेती
नारक पर्याय मे उत्पन्न हुई ।

३१—सा ण तओऽणतर उव्वट्टित्ता दोच्च पि
सत्थवज्झा दाहवक्कतीए दोच्च पि अहे सत्तमीए पुढवीए उ
उववज्जइ ।

तत्पश्चात् नागश्री सातवी पृथ्वी से निकल कर सीध
वहा भी उसका शस्त्र से वध किया गया और दाह की उत्पत्ति
सातवी पृथ्वी मे उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की आयु वाले नार

३२—सा ण तओहिंतो जाव उव्वट्टित्ता तच्च पि म
जाव काल किच्चा दोच्च पि छट्ठीए पुढवीए उक्कोसेण बावीस

सातवीं पृथ्वी से निकल कर तीसरी बार भी मत्स्यय
से वध करने योग्य हुई । यावत् काल करके दूसरी बार छ
आयु वाले नारको मे नारक रूप मे उत्पन्न हुई ।

वहा से निकलकर वह उरगयोनि मे उत्पन्न हुई। इस प्रकार जैसे गोशालक के विषय मे (भगवतीसूत्र मे) कहा है, वही सब वृत्तान्त यहाँ समझना चाहिए, यावत् रत्नप्रभा आदि सातों नरक भूमियो मे उत्पन्न हुई। वहाँ से निकल कर यावत् खेचरो की विविध योनियो मे उत्पन्न हुई। तत्पश्चात् खर (कठिन) बादर पृथ्वीकाय के रूप मे अनेक लाख बार उत्पन्न हुई।

विवेचन—नागश्री ने जो पाप किया वह असाधारण था। धर्मरुचि एक महान् सयमनिष्ठ साधु थे। जगत् के समस्त प्राणियो को आत्मवत् जानने वाले, करुणा के सागर थे। कीडी जैसे क्षुद्र प्राणियो की रक्षा के लिए जिन्होने शरीरोत्सर्ग कर दिया, उनसे अधिक दयावान् अन्य कौन होगा? अन्तिम समय में भी उनका समाधिभाव खडित नही हुआ। उन्होने आलोचना प्रतिक्रमण किया और समाधिभाव मे स्थिर रहे। चित्त की शान्ति और समता को यथावत् अखडित रखा। नागश्री ब्राह्मणी के प्रति लेशमात्र भी द्वेषभाव उनके मन मे नही आया, जो ऐसे अवसर पर आ जाना असभव नही था। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनके लिए जो 'उच्छूढसरीरे' विशेषण का प्रयोग किया गया है वह केवल प्रशसापरक नही किन्तु यथार्थता का द्योतक है। (देखिए सूत्र १०)। वास्तव मे धर्मरुचि अनगार देहस्थ होने पर भी देहदशा से अतीत थे—विदेह थे। शरीर और आत्मा का पृथक्त्व वे जानते ही नही थे, प्रत्युत अनुभव भी करते थे। शरीर का पात होने पर भी आत्मा अजर, अमर, अविनाशी है, यह अनुभूति उनके जीवन का अग बन चुकी थी। इसी अनुभूति के प्रबल बल से वे सहज समभाव मे रमण करते हुए शरीर-त्याग करने मे सफल हुए।

जीवन-अवस्था मे किये हुए आचरण के सस्कार व्यक्त या अव्यक्त रूप मे सचित होते रहते हैं और मरण-काल मे वे प्राणी की बुद्धि-भावना-विचारधारा को प्रभावित करते हैं। आगम का विधान है कि जीव जिस लेश्या मे मरता है, उसी लेश्या के वशीभूत होकर आगामी जन्म लेता है। अन्तिम समय की लेश्या जीवन मे सचित सस्कारो के अनुरूप ही होती है। कुछ लोग सोचते हैं—अभी कुछ भी कर, जीवन का अन्त सवार लेंगे, परन्तु यह विचार भ्रान्त है। जीवन का क्षण-क्षण सवारा हुआ हो तो अन्तिम समय सवरने की सभावना रहती है। कुछ अपवाद हो सकते हैं किन्तु वे मात्र अपवाद ही हैं।

नागश्री ने एक उत्कृष्ट सयमशील साधु का जान बूझ कर हनन किया। यह अधमतम पाप था। इसका भयकर से भयकर फल उसे भुगतना पडा। उसे समस्त नरकभूमियो मे, उरग, जलचर, खेचर, असज्ञी, सज्ञी आदि पर्यायो मे अनेक-अनेक बार जन्म-मरण की दुस्सह यातनाएँ सहन करनी पडी।

प्रस्तुत सूत्र मे पाठ कुछ सक्षिप्त है। प्रतीत होता है कि टीकाकार अभयदेवसूरि के समक्ष दोनो पाठ विद्यमान थे। वे अपनी टीका मे लिखते हैं—'गोशालकाध्ययनसमान' सूत्र ततएव दृश्य, बहुत्वात्तु न लिखितम्।'

अर्थात् नागश्री के भवभ्रमण का वृत्तान्त बहुत विस्तृत है, अत उसे यहाँ लिखा नही गया है, परन्तु गोशाला-अध्ययन (भगवतीसूत्र के पन्द्रहवें शतक) के अनुसार यह वर्णन जान लेना चाहिए।

प्रस्तुत सूत्र मे 'जाव' शब्दो के प्रयोग द्वारा उसको ग्रहण कर लिया गया है।

कहीं-कहीं प्रस्तुत सूत्र मे आए 'जहा गोसाले तहा नेयव्व जाव' इस पाठ के स्थान पर निम्न-लिखित पाठ अधिक उपलब्ध होता है—

'रयणप्पभाओ पुढवीओ उव्वट्टित्ता सण्णीसु उववन्ना । तओ उव्वट्टित्ता असण्णीसु उववन्ना । तत्थ वि य ण सत्थवज्झा दाहवक्कतीए कालमासे काल किच्चा दोच्च पि रयणप्पभाए पुढवीए पलिओवमस्स असखिज्जइभागट्ठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववण्णा । तओ उव्वट्टित्ता जाइ इमाइ खहयरविहाणाइ '

इसका अर्थ इस प्रकार है—वह नागश्री रत्नप्रभा पृथ्वी से उद्वर्त्तन करके—निकलकर सज्ञी जीवो मे उत्पन्न हुई । वहा से मरण-प्राप्त होकर असज्ञी प्राणियो मे जन्मी । वहाँ भी उसका शस्त्र द्वारा वध किया गया । उसके शरीर मे दाह उत्पन्न हुआ । यथासमय मरकर दूसरी बार रत्नप्रभा पृथ्वी मे पल्योपम के असख्यातवें भाग की स्थिति वाले नारको मे नारक-पर्याय मे जन्मी । वहा से निकलकर खेचरो की योनियो मे उत्पन्न हुई । अगसुत्ताणि, तृतीय भाग, पृ० २८०

सुकुमालिका का कथानक

३४—सा ण तओऽणतर उव्वट्टित्ता इहेव जबुद्दीवे दीवे, भारहे वासे, चपाए नयरीए, सागरदत्तस्स सत्थवाहस्स भद्दाए भारियाए कुच्छिसि दारियत्ताए पच्चायाया । तए ण सा भद्दा सत्थवाही णवण्ह मासाण दारिय पयाया । सुकुमालकोमलिय गयतालुयसमाण ।

तत्पश्चात् वह पृथ्वीकाय से निकल कर इसी जम्बूद्वीप मे, भारतवर्ष मे, चम्पा नगरी मे सागरदत्त सार्थवाह की भद्रा भार्या की कूख मे बालिका के रूप मे उत्पन्न हुई । तब भद्रा सार्थवाही ने नौ मास पूर्ण होने पर बालिका का प्रसव किया । वह बालिका हाथी के तालु के समान अत्यन्त सुकुमार और कोमल थी ।

३५—तीसे दारियाए निव्वत्ते बारसाहियाए अम्मापियरो इम एयारूव गोन्न गुणनिप्फन्न नामधेज्ज करेंति—'जम्हा ण अम्ह एसा दारिया सुकुमाला गयतालुयसमाणा त होउ ण अम्ह इमीसे दारियाए नामधेज्ज सुकुमालिया ।' तए ण तीसे दारियाए अम्मापियरो नामधेज्ज करेंति सुकुमालिय त्ति ।

उस बालिका के बारह दिन व्यतीत हो जाने पर माता-पिता ने उसका यह गुण वाला और गुण से बना हुआ नाम रक्खा—'क्योंकि हमारी यह बालिका हाथी के तालु के समान अत्यन्त कोमल है, अतएव हमारी इस पुत्री का नाम सुकुमालिका हो ।' तब बालिका के माता-पिता ने उसका 'सुकुमालिका' ऐसा नाम नियत कर दिया ।

३६—तए ण सा सुकुमालिया दारिया पचधाईपरिग्गहिया, तजहा—खीरधाईए (मज्जणधाईए) मडणधाईए, अकधाईए, कीलावणधाईए, जाव [अक्काओ अक्क साहरिज्जमाणी रम्मे मणिकोट्टिमतले गिरिकदरमल्लीणा इव चपकलया निव्वाय निव्वाघायसि जाव [सुहसुहेण] परिवड्ढइ । तए ण सा सूमालिया दारिया उम्मुक्कबालभावा जाव रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा जाया [विण्णाणपरिणयमेत्ता जोव्वणगमणुपत्ता] यावि होत्था ।

तदनन्तर सुकुमालिका बालिका को पाँच धायो ने ग्रहण किया अर्थात् पाँच धायें उसका पालन पोषण करने लगी । वे इस प्रकार थी—(१) दूध पिलाने वाली धाय (२) स्नान कराने

वाली धाय (३) आभूषण पहनाने वाली धाय (४) गोद मे लेने वाली धाय और (५) खेलाने वाली धाय। यावत् एक गोद से दूसरी गोद मे ले जाई जाती हुई वह बालिका, पर्वत की गुफा मे रही हुई चपकलता जैसे वायुविहीन प्रदेश मे व्याघात रहित बढती है, उसी प्रकार सुखपूर्वक बढने लगी। तत्पश्चात् सुकुमालिका बाल्यावस्था से मुक्त हुई, यावत् (समझदार हो गई, यौवन को प्राप्त हुई) रूप से, यौवन से और लावण्य से उत्कृष्ट और उत्कृष्ट शरीर वाली हो गई।

३७—तत्थ ण चपाए नयरीए जिणदत्ते नाम सत्थवाहे अड्ढे, तस्स ण जिणदत्तस्स भद्दा भारिया सूमाला इट्ठा जाव माणुस्सए कामभोए पच्चणुब्भवमाणा विहरइ। तस्स ण जिणदत्तस्स पुत्ते भद्दाए भारियाए अत्तए सागरए नाम दारए नाम दारए सुकुमालपाणिपाए जाव सुरूवे।

चम्पा नगरी मे जिनदत्त नामक एक धनिक सार्थवाह निवास करता था। उस जिनदत्त की भद्रा नामक पत्नी थी। वह सुकुमारी थी, जिनदत्त को प्रिय थी यावत् मनुष्य सम्बन्धी कामभोगो का आस्वादन करती हुई रहती थी। उस जिनदत्त सार्थवाह का पुत्र और भद्रा भार्या का उदरजात सागर नामक लडका था। वह भी सुकुमार (हाथो-पैरो वाला) एव सुन्दर रूप से सम्पन्न था।

३८—तए ण से जिणदत्ते सत्थवाहे अन्नया कयाई साओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्ख मित्ता सागरदत्तस्स गिहस्स अदूरसामतेण वीईवयइ, इम च ण सूमालिया दारिया ण्हाया चेडियासघ परिवुडा[1] उप्पि आगासतलगसि कणगतेंदूसएण कीलमाणी कीलमाणी विहरइ।

एक बार किसी समय जिनदत्त सार्थवाह अपने घर से निकला। निकल कर सागरदत्त के घर के कुछ पास से जा रहा था। उधर सुकुमालिका लडकी नहा-धोकर, दासियो के समूह से घिरी हुई, भवन के ऊपर छत पर सुवर्ण की गेद से क्रीडा करती करती विचर रही थी।

३९—तए ण से जिणदत्ते सत्थवाहे सूमालिय दारिय पासइ, पासित्ता सूमालियाए दारियाए रूवे य जोव्वणे य लावण्णे य जायविम्हए कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'एस ण देवाणुप्पिया! कस्स दारिया? किं वा णामधेज्ज से?'

तए ण ते कोडु बियपुरिसा जिणदत्तेज सत्थवाहेण एव वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा करयल जाव एव वयासी—'एस ण देवाणुप्पिया! सागरदत्तस्स सत्थवाहस्स धूया भद्दाए अत्तया सूमालिया नाम दारिया सुकुमालपाणिपाया जाव उक्किट्ठा।'

उस समय जिनदत्त सार्थवाह ने सुकुमालिका लडकी को देखा। देखकर सुकुमालिका लडकी के रूप पर, यौवन पर और लावण्य पर उसे आश्चर्य हुआ। उसने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और पूछा—देवानुप्रियो! वह किसकी लडकी है? उसका नाम क्या है?

जिनदत्त सार्थवाह के ऐसा कहने पर वे कौटुम्बिक पुरुष हर्षित और सन्तुष्ट हुए। उन्होने हाथ जोड कर इस प्रकार उत्तर दिया—'देवानुप्रिय! यह सागरदत्त सार्थवाह की पुत्री, भद्रा की आत्मजा सुकुमालिका नामक लडकी है। सुकुमार हाथ पर आदि अवयवो वाली यावत् उत्कृष्ट शरीर वाली है।'

४०—तए ण से जिणदत्ते सत्थवाहे तेसि कोडु बियाण अतिए एयमट्ठ सोच्चा जेणेव सए

---

१ पाठान्तर—चेडियाचक्कवाल•

गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ण्हाए जाव मित्तनाइपरिवुडे चपाए नयरीए मज्झमज्झेण जेणेव सायरदत्तस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ। तए ण सागरदत्ते सत्थवाहे जिणदत्त सत्थवाह एज्जमाण पासइ, एज्जमाण पासइत्ता आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता आसणेण उवणिमतेइ, उवणिमतित्ता आसत्थ वीसत्थ सुहासणवरगय एव वयासी—'भण देवाणुप्पिया! किमागमणपओयण ?'

जिनदत्त साथवाह उन कौटुम्बिक पुरुषो से इस अर्थ (बात) को सुन कर अपने घर चला गया। फिर नहा-धोकर तथा मित्रजनो एव ज्ञातिजनो आदि से परिवृत होकर चम्पा नगरी के मध्य-भाग मे होकर वहा आया जहा सागरदत्त का घर था। तब सागरदत्त साथवाह ने जिनदत्त साथवाह को आता देखा। आता देख कर वह आसन से उठ खडा हुआ। उठ कर उसने जिनदत्त को आसन ग्रहण करने के लिए निमन्त्रित किया। निमन्त्रित करके विश्रान्त एव विश्वस्त हुए तथा सुखद आसन पर आसीन हुए जिनदत्त से पूछा—'कहिए देवानुप्रिय! आपके आगमन का क्या प्रयाजन है ?'

४१—तए ण से जिणदत्ते सत्थवाहे सागरदत्त सत्थवाह एव वयासी—'एव खलु अह देवाणुप्पिया! तव धूय भद्दाए अत्तिय सूमालिय सागरदत्तस्स भारियत्ताए वरेमि। जइ ण जाणह देवाणुप्पिया! जुत्त वा पुत्त वा सलाहणिज्ज वा सरिसो वा सजोगो, ता दिज्जउ ण सूमालिया सागरस्स। तए ण देवाणुप्पिया! कि दलयामो सुक सूमालियाए ?'

तब जिनदत्त साथवाह ने सागरदत्त साथवाह से कहा—'देवानुप्रिय! मैं आपकी पुत्री, भद्रा सार्थवाही की आत्मजा सुकुमालिका की सागरदत्त की पत्नी के रूप मे मँगनी करता हूँ। देवानुप्रिय! अगर आप यह युक्त समझें, पात्र समझें, श्लाघनीय समझें और यह समझें कि यह सयोग समान है, तो सुकुमालिका सागरदत्त को दीजिए। अगर आप यह सयोग इष्ट समझते हैं तो देवानुप्रिय! सुकुमालिका के लिए क्या शुल्क दे ?'

४२—तए ण से सागरदत्ते त जिणदत्त एव वयासी—'एव खलु देवाणुप्पिया! सूमालिया दारिया मम एगा एगजाया इट्ठा जाव किमग पुण पासणयाए ? त नो खलु अह इच्छामि सूमालियाए दारियाए खणमवि विप्पओग। त जइ ण देवाणुप्पिया! सागरदारए मम घरजामाउए भवइ, तो ण अह सागरस्स सूमालिय दलयामि।'

उत्तर मे सागरदत्त ने जिनदत्त से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय! सुकुमालिका पुत्री हमारी एकलौती सन्तति है, एक ही उत्पन्न हुई है, हमे प्रिय है। उसका नाम सुनने से भी हमे हृष होता है तो देखने की तो बात ही क्या है ? अतएव देवानुप्रिय! मैं क्षण भर के लिए भी सुकुमालिका का वियोग नही चाहता। देवानुप्रिय! यदि सागर हमारा गृह-जामाता (घर-जमाई) बन जाय तो मैं सागर दारक को सुकुमालिका दे दू।'

४३—तए ण जिणदत्ते सत्थवाहे सागरदत्तेण सत्थवाहेण एव वुत्ते समाणे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सागरदारग सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'एव खलु! सागरदत्ते सत्थवाहे मम एव वयासी—एव खलु देवाणुप्पिया! सूमालिगा दारिया इट्ठा, त चेव, त जइ ण सागरदत्तए मम घरजामाउए भवइ ता दलयामि।

वाली धाय (३) आभूषण पहनाने वाली धाय (४) गोद मे लेन वाली धाय और (५) खेलाने वाली धाय। यावत् एक गोद से दूसरी गोद मे ले जाई जाती हुई वह बालिका, पर्वत की गुफा मे रही हुई चपकलता जैसे वायुविहीन प्रदेश मे व्याघात रहित बढती है, उसी प्रकार सुखपूर्वक बढने लगी। तत्पश्चात् सुकुमालिका बाल्यावस्था से मुक्त हुई, यावत (समझदार हो गई, यौवन को प्राप्त हुई) रूप से, यौवन से और लावण्य से उत्कृष्ट और उत्कृष्ट शरीर वाली हो गई।

३७—तत्थ ण चपाए नयरीए जिणदत्ते नाम सत्थवाहे अड्ढे, तस्स ण जिणदत्तस्स भद्दा भारिया सूमाला इट्ठा जाव माणुस्सए कामभोए पच्चणुब्भवमाणा विहरइ। तस्स ण जिणदत्तस्स पुत्ते भद्दाए भारियाए अत्तए सागरए नाम दारए नाम दारए सुकुमालपाणिपाए जाव सुरूवे।

चम्पा नगरी मे जिनदत्त नामक एक धनिक सार्थवाह् निवास करता था। उस जिनदत्त की भद्रा नामक पत्नी थी। वह सुकुमारी थी, जिनदत्त को प्रिय थी यावत् मनुष्य सम्बन्धी कामभोगो का आस्वादन करती हुई रहती थी। उस जिनदत्त सार्थवाह का पुत्र और भद्रा भार्या का उदरजात सागर नामक लडका था। वह भी सुकुमार (हाथो-पैरो वाला) एक सुन्दर रूप से सम्पन्न था।

३८—तए ण से जिणदत्ते सत्थवाहे अन्नया कयाई साओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्ख मित्ता सागरदत्तस्स गिहस्स अदूरसामतेण वीईवयइ, इम च ण सूमालिया दारिया ण्हाया चेडियासघ परिवुडा[1] उप्पि आगासतलगसि कणगतेंदूसएण कीलमाणी कीलमाणी विहरइ।

एक बार किसी समय जिनदत्त साथवाह अपने घर से निकला। निकल कर सागरदत्त के घर के कुछ पास से जा रहा था। उधर सुकुमालिका लडकी नहा-धोकर, दासियो के समूह मे घिरी हुई, भवन के ऊपर छत पर सुवण की गेंद से क्रीडा करती-करती विचर रही थी।

३९—तए ण से जिणदत्ते सत्थवाहे सूमालिय दारिय पासइ, पासित्ता सूमालियाए दारियाए रूवे य जोव्वणे य लावण्णे य जायविम्हए कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'एस ण देवाणुप्पिया! कस्स दारिया? कि वा णामधेज्ज से?'

तए ण ते कोडु बियपुरिसा जिणदत्तेज सत्थवाहेण एव वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा करयल जाव एव वयासी—'एस ण देवाणुप्पिया! सागरदत्तस्स सत्यवाहस्स धूया भद्दाए अत्तया सूमालिया नाम दारिया सुकुमालपाणिपाया जाव उक्किट्ठा।'

उस समय जिनदत्त सार्थवाह् ने सुकुमालिका लडकी को दखा। देखकर सुकुमालिका लडकी के रूप पर, यौवन पर और लावण्य पर उसे आश्चर्य हुआ। उसने कौटुम्बिक पुरषो को बुलाया और पूछा—देवानुप्रियो! वह किसकी लडकी है? उसका नाम क्या है?

जिनदत्त सार्थवाह् के ऐसा कहने पर वे कौटुम्बिक पुरुष हर्षित और सन्तुष्ट हुए। उन्होंने हाथ जोड कर इस प्रकार उत्तर दिया—'देवानुप्रिय! यह सागरदत्त साथवाह की पुत्री, भद्रा की आत्मजा सुकुमालिका नामक लडकी है। सुकुमार हाथ पैर आदि अवयवो वाली यावत् उत्कृष्ट शरीर वाली है।'

४०—तए ण से जिणदत्ते सत्थवाहे तेसि कोडु बियाण अतिए एयमट्ठ सोच्चा जेणेव सए

---

१ पाठान्तर—चेडियाचक्कवाल०

गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ण्हाए जाव मित्तनाइपरिवुडे चपाए नयरीए मज्झमज्झेण जेणेव सायरदत्तस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ। तए ण सागरदत्ते सत्थवाहे जिणदत्त सत्थवाह एज्जमाण पासइ, एज्जमाण पासइत्ता आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता आसणेण उवणिमतेइ, उवणिमतित्ता आसत्थ वीसत्थ सुहासणवरगय एव वयासी—'भण देवाणुप्पिया ! किमागमणपओयण ?'

जिनदत्त सार्थवाह उन कौटुम्बिक पुरुषो से इस अर्थ (बात) को सुन कर अपने घर चला गया। फिर नहा धोकर तथा मित्रजनो एव ज्ञातिजनो आदि से परिवृत होकर चम्पा नगरी के मध्य-भाग मे होकर वहाँ आया जहा सागरदत्त का घर था। तब सागरदत्त सार्थवाह ने जिनदत्त सार्थवाह को आता देखा। आता देख कर वह आसन से उठ खडा हुआ। उठ कर उसने जिनदत्त को आसन ग्रहण करने के लिए निमन्त्रित किया। निमन्त्रित करके विश्रान्त एव विश्वस्त हुए तथा सुखद आसन पर आसीन हुए जिनदत्त से पूछा—'कहिए देवानुप्रिय ! आपके आगमन का क्या प्रयोजन है ?'

४१—तए ण से जिणदत्ते सत्थवाहे सागरदत्त सत्थवाह एव वयासी—'एव खलु अह देवाणुप्पिया ! तव धूय भद्दाए अत्तिय सूमालिय सागरदत्तस्स भारियत्ताए वरेमि। जइ ण जाणह देवाणुप्पिया ! जुत्त वा पुत्त वा सलाहणिज्ज वा सरिसो वा सजोगो, ता दिज्जउ ण सूमालिया सागरस्स। तए ण देवाणुप्पिया ! कि दलयामो सुक सूमालियाए ?'

तब जिनदत्त सार्थवाह ने सागरदत्त सार्थवाह से कहा—'देवानुप्रिय ! मैं आपकी पुत्री, भद्रा सार्थवाही की आत्मजा सुकुमालिका की सागरदत्त की पत्नी के रूप मे मँगनी करता हूँ। देवानुप्रिय ! अगर आप यह युक्त समझे, पात्र समझे, श्लाघनीय समझे और यह समझे कि यह सयोग समान है, तो सुकुमालिका सागरदत्त को दीजिए। अगर आप यह सयोग इष्ट समझते हैं तो देवानुप्रिय ! सुकुमालिका के लिए क्या शुल्क द ?'

४२—तए ण से सागरदत्ते त जिणदत्त एव वयासी—'एव खलु देवाणुप्पिया ! सूमालिया दारिया मम एगा एगजाया इट्ठा जाव किमग पुण पासणयाए ? त नो खलु अह इच्छामि सूमालियाए दारियाए खणमवि विप्पओग। त जइ ण देवाणुप्पिया ! सागरदारए मम घरजामाउए भवइ, तो ण अह सागरस्स सूमालिय दलयामि।'

उत्तर मे सागरदत्त ने जिनदत्त से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय ! सुकुमालिका पुत्री हमारी एकलौती सन्तति है, एक ही उत्पन्न हुई है, हमे प्रिय है। उसका नाम सुनने मे भी हमे हर्ष होता है तो देखने की तो बात ही क्या है ? अतएव देवानुप्रिय ! मैं क्षण भर के लिए भी सुकुमालिका का वियोग नही चाहता। देवानुप्रिय ! यदि सागर हमारा गृह-जामाता (घर-जमाई) बन जाय तो मैं सागर दारक को सुकुमालिका दे दू।'

४३—तए ण जिणदत्ते सत्थवाहे सागरदत्तेण सत्थवाहेण एव वुत्ते समाणे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सागरदारग सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'एव खलु ! सागरदत्ते सत्थवाहे मम एव वयासी—एव खलु देवाणुप्पिया ! सूमालिया दारिया इट्ठा, त चेव, त जइ ण सागरदत्तए मम घरजामाउए भवइ ता दलयामि।

तए ण से सागरए जिणदत्तेण सत्यवाहेण एव वुत्ते समाणे तुसिणीए सचिट्ठइ।

तत्पश्चात् जिनदत्त साथवाह, सागरदत्त साथवाह के इस प्रकार कहने पर अपने घर गया। घर जाकर सागर नामक अपने पुत्र को बुलाया और उससे कहा—'हे पुत्र! सागरदत्त साथवाह ने मुझसे ऐसा कहा है—'हे देवानुप्रिय! सुकुमालिका लडकी मेरी प्रिय है, इत्यादि पूर्वोक्त यहाँ दोहरा लेना चाहिए। सो यदि सागर मेरा गृहजामाता बन जाय तो मैं अपनी लडकी दूँ।'

जिनदत्त साथवाह के ऐसा कहने पर सागर पुत्र मौन रहा। (मौन रह कर अपनी स्वीकृति प्रकट की)।

४४—तए ण जिणदत्ते सत्यवाहे अन्नया कयाई सोहणसि तिहि करण नक्खत्त-मुहुत्तसि विउल असण पाण खाइम साइम उवक्खडावेइ, उवक्खडावित्ता मित्तनाइनियग-सयण-सबधिपरियण आमतेइ, जाव समाणित्ता सागर दारय ण्हाय जाव सव्वालकारविभूसिय करेइ, करित्ता पुरिससहस्स वाहिणि सीय दुरुहावेइ, दुरुहावित्ता मित्तणाइ जाव सपरिवुडे सव्विड्ढीए साओ गिहाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता चपानयरिं मज्झमज्झेण जेणेव सागरदत्तस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीयाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरहित्ता सागरग दारग सागरदत्तस्स सत्यवाहस्स उवणेइ।

तत्पश्चात् एक बार किसी समय शुभ तिथि, करण नक्षत्र और मुहूर्त्त मे जिनदत्त सार्थवाह ने विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तयार करवाया। तैयार करवाकर मित्रो, निज जनो, स्वजनो, सबधियो तथा परिजनों को आमत्रित किया, यावत् जिमाने के पश्चात् सम्मानित किया। फिर सागर पुत्र को नहला-धुला कर यावत् सब अलकारो से विभूपित किया। पुरुपसहस्रवाहिनी पालकी पर आरूढ किया, आरूढ करके मित्रो एव ज्ञातिजनों आदि से परिवृत होकर यावत् पूरे ठाठ के साथ अपने घर से निकला। निकल कर चम्पानगरी के मध्य भाग मे होकर जहाँ सागरदत्त का घर था, वहाँ पहुँचा। वहा पहुँच कर सागर पुत्र को पालकी से नीचे उतारा। फिर उसे सागरदत्त साथवाह के समीप ले गया।

सुकुमालिका का विवाह

४५—तए ण सागरदत्ते सत्यवाहे विपुल असण पाण खाइम साइम उवक्खडावेइ, उवक्खडावित्ता जाव समाणेत्ता सागरग दारग सूमालियाए दारियाए सद्धि पट्टय दुरुहावेइ, दुरुहावित्ता सेयापीयएहि कलसेहिं मज्जावेइ, मज्जावित्ता होम करावेइ, करावित्ता सागर दारय सूमालियाए दारियाए पाणि गेण्हावेइ।

तत्पश्चात् सागरदत्त साथवाह ने विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य भोजन तैयार करवाया। तयार करवा कर यावत् उनका सम्मान करके सागर पुत्र को सुकुमालिका पुत्री के साथ पाट पर बिठलाया। बिठला कर श्वेत और पीत अर्थात् चादी और सोने के कलशो से स्नान करवाया। स्नान करवा कर होम करवाया। होम के बाद सागर पुत्र को सुकुमालिका पुत्री का पाणिग्रहण करवाया। (विवाह की विधि सम्पन्न करवाई)।

४६—तए ण सागरदारए सूमालियाए दारियाए इम एयारुव पाणिफास पडिसवेदेइ से

जहानामए—असिपत्ते इ वा जाव मुम्मुरे इ वा, इत्तो अणिट्ठतराए चेव पाणिफास पडिसवेदेइ । तए ण से सागरए अकामए अवसव्वसे त मुहुत्तमित्त सचिट्ठइ ।

उस समय सागर पुत्र को सुकुमालिका पुत्री के हाथ का स्पर्श ऐसा प्रतीत हुआ मानो कोई तलवार हो अथवा यावत् मुर्मु र आग हो । इतना ही नही बल्कि इससे भी अधिक अनिष्ट हस्त-स्पर्श का वह अनुभव करने लगा । किन्तु उस समय वह सागर बिना इच्छा के विवश होकर उस हस्तस्पर्श का अनुभव करता हुआ मुहूर्तमात्र (थोडी देर) बैठा रहा ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे सक्षिप्त पाठ ही दिया गया है । अन्यत्र विस्तृत पाठ है, जो इस प्रकार है—

(असिपत्त इ वा) करपत्ते इ वा खुरपत्ते इ वा कलवचीरियापत्त इ वा सत्तिअग्गे इ वा कोतग्गे इ वा तोमरग्गे इ वा भिंडिमालग्गे इ वा सूचिकलावए इ वा विच्छुयडके इ वा कविकच्छू इ वा इगाले इ वा मुम्मुरे इ वा अच्ची इ वा जाले इ वा अलाए इ वा सुद्धागणी इ वा, भवे एयारूवे ?

नो इणट्ठे समट्ठे । एत्तो अणिट्ठतराए चेव अकततराए चेव अप्पियतराए चेव अमणुण्णतराए चेव अमणामतराए चेव

—टीका—(अभयदेवसूरि)
—अगसुत्ताणि तृ भाग

सक्षिप्त पाठ और विस्तृत पाठ के तात्पर्य मे कोई अन्तर नही है । दोनो पाठो मे सुकुमालिका के हाथ की दो विशेषताए प्रदर्शित की गई हैं—तीक्ष्णता और उष्णता । सक्षिप्त पाठ मे इन दोनो विशेषताओ को प्रदर्शित करने के लिए 'असिपत्ते इ वा' और 'मुम्मुरे इ वा' पदो का प्रयोग किया गया है, जब कि इन्ही दोनो विशेषताओ को दिखाने के लिए विस्तृत पाठ मे अनेक-अनेक उदाहरणो का प्रयोग हुआ है ।

किन्तु सक्षिप्त पाठ म 'जाव मुम्मुरे इ वा' है, जबकि विस्तृत पाठ मे अन्त मे 'सुद्धागणी इ वा' पाठ है । जान पडता है कि दोनो पाठो मे से किसी एक मे पद आगे-पीछे हो गए हैं । या तो सक्षिप्त पाठ मे 'जाव सुद्धागणी इ वा' होना चाहिए अथवा विस्तृत पाठ मे 'मुम्मुरे इ वा' शब्द अन्त मे होना चाहिए । टीका वाली प्रति मे भी यहाँ गृहीत सक्षिप्त पाठ के अनुसार ही पाठ है । इस व्यतिक्रम को लक्ष्य मे रखकर यहा विस्तृत पाठ कोष्ठक मे न देकर विवेचन मे दिया गया है । विस्तृत पाठ के शब्दो का भावार्थ इस प्रकार है—

सुकुमालिका के हाथ का स्पर्श ऐसा था कि (मानो तलवार हो), करौत हो, छुरा हो, कदम्ब-चीरिका हो, शक्ति नामक शस्त्र का अग्रभाग हो, भिंडिमाल शस्त्र का अग्रभाग हो, सुइयो का समूह हो—अनेक सुइयो की नोकें हो, बिच्छू का डक हो, कपिकच्छू—एक दम खुजली उत्पन्न करने वाली वनस्पति—करेंच हो, अगार (ज्वालारहित अग्निकण) हो, मुर्मु र (अग्निमिश्रित भस्म) हो, अर्चि (ईंधन मे लगी अग्नि) हो, ज्वाला (ईंधन से पृथक् ज्वाला-लपट) हो, अलात (जलती लकडी) हो या शुद्धाग्नि (लोहे के पिण्ड के अन्तर्गत अग्नि) हो ।

क्या सुकुमालिका के हाथ का स्पर्श वास्तव मे ऐसा था ?

नही, इनसे भी अधिक अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ और अमनाम था ।

४७—तए ण से सागरदत्ते सत्थवाहे सागरस्स दारगस्स अम्मापियरो मित्तणाइ [नियग सयण सबंधि परियण] विपुलेण असण पाण खाइम साइमेण पुप्फवत्थ जाव [गंध—मल्लालंकारेण य सक्कारेत्ता] समाणेत्ता पडिविसज्जेइ ।

तए ण सागरए दारए सूमालियाए सद्धि जेणेव वासघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सूमालियाए दारियाए सद्धि तलिगसि निवज्जइ ।

तत्पश्चात् सागरदत्त सार्थवाह ने सागरपुत्र के माता पिता को तथा मित्रों, ज्ञातिजनों, आत्मीय जनों, स्वजनों, सबन्धियों तथा परिजनों को विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन से तथा पुष्प, वस्त्र [गंध, माला, अलकार से सत्कृत एव] सम्मानित करके विदा किया ।

तत्पश्चात् सागरपुत्र सुकुमालिका के साथ जहाँ वासगृह (शयनागार) था, वहाँ आया। आकर सुकुमालिका के साथ शय्या पर सोया—लेटा ।

४८—तए ण से सागरए दारए सूमालियाए दारियाए इम एयारूव अगफास पडिसवेदेइ, से जहानामए असिपत्ते इ वा जाव[1] अमणामयराग चेव अगफास पच्चणुभवमाणे विहरइ । तए ण से सागरए दारए अगफास असहमाणे अवसव्वसे मुहुत्तमित्त सचिट्ठइ । तए ण से सागरदारए सूमालिय दारिय सुहपसुत्त जाणित्ता सूमालियाए दारियाए पासाओ उट्ठेइ, उट्ठित्ता जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयणीयसि निवज्जइ ।

उस समय सागरपुत्र ने सुकुमालिका के इस प्रकार के अगस्पर्श को ऐसा अनुभव किया जैसे कोई तलवार हो, इत्यादि । वह अत्यन्त ही अमनोज्ञ अगस्पर्श को अनुभव करता रहा । तत्पश्चात् सागरपुत्र उस अगस्पर्श को सहन न कर सकता हुआ, विवश होकर, मुहूर्त्तमात्र—कुछ समय तक—वहा रहा । फिर वह सागरपुत्र सुकुमालिका दारिका को सुखपूर्वक गाढी नींद मे सोई जानकर उसके पास से उठा और जहाँ अपनी शय्या थी, वहाँ आ गया । आकर अपनी शय्या पर सो गया ।

४९—तए ण सूमालिया दारिया तओ मुहुत्ततरस्स पडिबुद्धा समाणी पइव्वया पइमणुरत्ता पति पासे अपस्समाणी तलिमाउ उट्ठेइ, उट्ठित्ता जेणेव से सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सागरस्स पासे णिवज्जइ ।

तदनन्तर सुकुमालिका पुत्री एक मुहूर्त्त में—थोडी देर मे जाग उठी । वह पतिव्रता थी और पति मे अनुराग वाली थी, अतएव पति को अपने पार्श्व-पास मे न देखती हुई शय्या से उठ बैठी । उठकर वहाँ गई जहाँ उसके पति की शय्या थी । वहाँ पहुँच कर वह सागर के पास सो गई ।

पति द्वारा परित्याग

५०—तए ण सागरदारए सूमालियाए दारियाए दुच्च पि इम एयारूव अगफास पडिसंवेदेइ, जाव अकामए अवसव्वसे मुहुत्तमित्त सचिट्ठइ ।

तए ण से सागरदारए सूमालिय दारिय सुहपसुत्त जाणित्ता सयणिज्जाओ उट्ठेइ, उट्ठित्ता

---

१ अ १६ सूत्र ४६

वासघरस्स दार विहाडेइ, विहाडित्ता मारामुक्के विव काए जामेव दिसि पाउब्भूए तामेव दिसि पडिगए ।

तत्पश्चात् सागरदारक ने दूसरी बार भी सुकुमालिका के पूर्वोक्त प्रकार के अगस्पर्श को अनुभव किया । यावत् वह विना इच्छा के विवश होकर थोडी देर तक वहाँ रहा ।

फिर सागरदारक सुकुमालिका को सुखपूवक सोई जान कर शय्या से उठा । उसने अपने वासगृह (शयनागार) का द्वार उघाडा । द्वार उघाड कर वह मरण से अथवा मारने वाले पुरुष से छुटकारा पाये काक पक्षी की तरह शीघ्रता के साथ जिस दिशा से आया था उसी दिशा मे लौट गया—अपने घर चला गया ।

५१—तए ण सूमालिया दारिया तओ मुहुत्ततरस्स पडिबुद्धा पइव्वया जाव[1] अपासमाणी सयणिज्जाओ उट्ठेइ, सागरस्स दारगस्स सव्वओ समता मग्गणगवेसण करेमाणी वासघरस्स दार विहाडिय पासइ, पासित्ता एव वयासी—'गए से सागरे' त्ति कट्टु ओहयमणसकप्पा जाव [करयल-पल्हत्यमुही अट्टज्झाणोवगया] झियायइ ।

सुकुमालिका दारिका थोडी देर मे जागी । वह पतिव्रता एव पति मे अनुरक्ता थी, अत पति को अपने पास न देखती हुई शय्या से उठी । उसने सागरदारक की सब तरफ मार्गणा—गवेषणा की । गवेषणा करते करते शयनागार का द्वार खुला देखा तो कहा (मन ही मन विचार किया)—'सागर तो चल दिया !' उसके मन का सकल्प मारा गया, अतएव वह हथेली पर मुख रखकर आर्त्तध्यान-चिन्ता करने लगी ।

५२—तए ण सा भद्दा सत्थवाही कल्ल पाउप्पभायाए दासचेडिय सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'गच्छह ण तुम देवाणुप्पिए ! बहुवरस्स मुहसोहणिय उवणेहि ।' तए ण सा दासचेडी भद्दाए एव वुत्ता समाणी एयमट्ठ तह त्ति पडिसुणइ, मुहधोवणिय गेण्हित्ता जेणेव वासघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सूमालिय दारिय जाव झियायमाणि पासइ, पासित्ता एव वयासी—'कि ण तुम देवाणुप्पिए ! ओहयमणसकप्पा झियाहि ?'

तत्पश्चात् भद्रा सार्थवाही ने कल (दूसरे दिन) प्रभात होने पर दासचेटी (दासी) को बुलाया और उससे कहा—'देवानुप्रिये ! तू जा और वर-वधू (वधू और वर) के लिए मुख-शोधनिका (दातौन-पानी) ले जा ।' तत्पश्चात् उस दासचेटी ने भद्रा सार्थवाही के इस प्रकार कहने पर इस अर्थ को 'बहुत अच्छा' कह कर अगीकार किया । उसने मुखशोधनिका ग्रहण की । ग्रहण करके जहाँ वासगृह था, वहा पहुँची । वहाँ पहुँच कर सुकुमालिका दारिका को चिन्ता करती देख कर पूछा—'देवानुप्रिये ! तुम भग्नमनोरथ होकर चिन्ता क्यो कर रही हो ?'

५३—तए ण सा सूमालिया दारिया त दासचेडि एव वयासी—'एव खलु देवाणुप्पिए ! सागरए दारए मम सुहपसुत्त जाणित्ता मम पासाओ उट्ठेइ, उट्ठित्ता वासघरदुवार अवगुणेइ, जाव पडिगए । ततो अह मुहुत्ततरस्स जाव विहाडिय पासामि, गए से सागरए त्ति कट्टु ओहयमणसकप्पा जाव झियायामि ।'

---

१ अ १६ सूत्र ४९

दासी का प्रश्न सुन कर सुकुमालिका दारिका ने दासचेटी से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिये ! सागरदारक मुझे सुख से सोया जान कर मेरे पास से उठा और वासगृह का द्वार उघाड कर यावत् [व्याध से छुटकारा पाये काक की तरह] वापिस चला गया—भाग गया है। तदनन्तर मैं थोडी देर बाद उठी यावत् द्वार उघाडा देखा तो मैंने सोचा—'सागर चला गया।' इसी कारण भग्नमनोरथ होकर मैं चिन्ता कर रही हूँ।'

५४—तए ण सा दासचेडी सूमालियाए दारियाए एयमट्ठ सोच्चा जेणेव सागरदत्ते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सागरदत्तस्स एयमट्ठ निवेएइ।

दासचेटी सुकुमालिका दारिका के इस अर्थ (वृत्तान्त) को सुन कर वहाँ गई जहाँ सागरदत्त था। वहाँ जाकर उसने सागरदत्त सार्थवाह से यह वृत्तान्त निवेदन किया।

५५—तए ण से सागरदत्ते दासचेडीए अतिए एयमट्ठ सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते जेणेव जिणदत्तसत्थवाहगिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जिणदत्त सत्थवाह एव वयासी—'कि ण देवाणुप्पिया ! एव जुत्त वा पत्त वा कुलाणुरूव वा कुलसरिस वा, ज ण सागरदारए सूमालिय दारिय अदिट्ठदोस पइव्वय विप्पजहाय इहमागओ ?' बहूहि खिज्जणियाहि य रुटणियाहि य उवालभइ।

दासचेटी से यह वृत्तान्त सुन-समझ कर सागरदत्त कुपित होकर जहाँ जिनदत्त सार्थवाह का घर था, वहा पहुँचा। पहुँचकर उसने जिनदत्त सार्थवाह से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय ! क्या यह योग्य है ? प्राप्त—उचित है ? यह कुल के अनुरूप और कुल के सदृश है कि सागरदारक सुकुमालिका दारिका को, जिसका कोई दोष नही देखा गया और जो पतिव्रता है, छोडकर यहाँ आ गया है ?' यह कह कर बहुत-सी खेद युक्त क्रियाएँ करके तथा रुदन की चेष्टाएँ करके उसने उलहना दिया।

५६—तए ण जिणदत्ते सागरदत्तस्स एयमट्ठ सोच्चा जेणेव सागरे दारए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सागरय दारय एव वयासी—'दुट्ठु ण पुत्ता ! तुमे कय सागरदत्तस्स गिहाओ इह हव्वमागए। त गच्छह ण तुम पुत्ता ! एवमवि गए सागरदत्तस्स गिहे।'

तब जिनदत्त, सागरदत्त के इस अर्थ को सुनकर जहाँ सागरदारक था, वहाँ आया। आकर सागरदारक से बोला—'हे पुत्र ! तुमने बुरा किया जो सागरदत्त के घर से यहाँ एकदम चले आये। अतएव हे पुत्र ! जो हुआ सो हुआ, अब तुम सागरदत्त के घर चले जाओ।'

५७—तए ण से सागरए जिणदत्त एव वयासी—'अवि याइ अह ताओ ! गिरिपडण वा तरुपडण वा मरुप्पवाय वा जलप्पवेस वा जलणप्पवेस वा विसभक्खण वा वेहाणस वा सत्थोवाडण वा गिद्धपिट्ठ वा पव्वज्ज वा विदेसगमण वा अब्भुवगच्छिज्जामि, नो खलु अह सागरदत्तस्स गिह गच्छिज्जा।'

तब सागर पुत्र ने जिनदत्त से इस प्रकार कहा—'हे तात ! मुझे पर्वत से गिरना स्वीकार है, वृक्ष से गिरना स्वीकार है, मरुप्रदेश (रेगिस्तान) मे पडना स्वीकार है, जल मे डूब जाना, आग मे

प्रवेश करना, विपभक्षण करना, अपने शरीर को श्मशान मे या जगल मे छोड देना कि जिससे जानवर या प्रेत खा जाएँ, गृध्र-पृष्ठ मरण (हाथी आदि के मुर्दे मे प्रवेश कर जाना कि जिससे गीध आदि खा जाएँ), इसी प्रकार दीक्षा ले लेना या परदेश मे चला जाना स्वीकार है, परन्तु मैं निश्चय ही सागरदत्त के घर नही जाऊँगा।'

५८—तए ण से सागरदत्ते सत्थवाहे कुड्डतरिए सागरस्स एयमट्ठ निसामेइ, निसामित्ता लज्जिए विलीए विड्डे जिणदत्तस्स गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुकुमालिय दारिय सद्दावेइ, सद्दावित्ता अके निवेसेइ, निवेसित्ता एव वयासी—

'कि ण तव पुत्ता! सागरएण दारएण मुक्का! अह ण तुम तस्स दाहामि जस्स ण तुम इट्ठा जाव मणामा भविस्ससि' त्ति सूमालिय दारिय ताहि इट्ठाहि वग्गूहि समासासेइ, समासासित्ता पडिविसज्जेइ।

उस समय सागरदत्त सार्थवाह ने दीवार के पीछे से सागर पुत्र के इस अर्थ को सुन लिया। सुनकर वह ऐसा लज्जित हुआ कि धरती फट जाय तो मैं उसमे समा जाऊँ। वह जिनदत्त के घर से बाहर निकल आया। निकलकर अपने घर आया। घर आकर सुकुमालिका पुत्री को बुलाया और उसे अपनी गोद मे बिठलाया। फिर उसे इस प्रकार कहा—

'हे पुत्री! सागरदारक ने तुझे त्याग दिया तो क्या हो गया? अव तुझे मैं ऐसे पुरुष को दूगा, जिसे तू इष्ट, कान्त, प्रिय और मनोज्ञ होगी।' इस प्रकार कहकर सुकुमालिका पुत्री को इष्ट वाणी द्वारा आश्वासन दिया। आश्वासन देकर उसे विदा किया।

सुकुमालिका का पुनर्विवाह

५९—तए ण से सागरदत्ते सत्थवाहे अन्नया उप्पि आगासतलगसि सुहनिसण्णे रायमग्ग आलोएमाणे आलोएमाणे चिट्ठइ। तए ण से सागरदत्ते एग मह दमगपुरिस पासइ, दडिखडनियसण खडमल्लग-खडघडगहत्थगय फुट्टहडाहडसीस मच्छियासहस्सेहि जाव अन्निज्जमाणमग्ग।

तत्पश्चात् सागरदत्त सार्थवाह किसी समय ऊपर भवन की छत पर सुखपूर्वक बैठा हुआ बार-बार राजमार्ग को देख रहा था। उस समय सागरदत्त ने एक अत्यन्त दीन भिखारी पुरुष को देखा। वह साँधे हुए टुकडो का वस्त्र पहने था। उसके साथ मे सिकोरे का टुकडा और पानी के घडे का टुकडा था। उसके बाल बिखरे हुए—अस्तव्यस्त थे। हजारो मक्खियाँ उसके मार्ग का अनुसरण कर रही थी—उसके पीछे भिनभिनाती हुई उड रही थी।

६०—तए ण से सागरदत्ते कोडुवियपुरिसे सद्दावेइ सद्दावित्ता एव वयासी—'तुब्भे ण देवाणुप्पिया! एय दमगपुरिस विउलेण असणपाणखाइमसाइमेण पलोभेह, पलोभित्ता गिह अणुप्पवेसेह, अणुप्पवेसित्ता खडगमल्लग खडघडग च से एगते एडेह, एडित्ता अलकारियकम्म कारेह, कारित्ता ण्हाय कयबलिकम्म जाव सव्वालकारविभूसिय करेह, करित्ता मणुण्ण असण पाण खाइम साइम भोयावेह, भोयावित्ता मम अतिय उवणेह।'

तत्पश्चात् सागरदत्त ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर उनसे कहा—'देवानुप्रियो! तुम जाओ और उस द्रमक पुरुष (भिखारी) को विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का लोभ दो। लोभ देकर घर के भीतर लाओ। भीतर लाकर सिकोरे और घडे के टुकडे को एक तरफ फेंक दो। फेंक कर आलंकारिक कर्म (हजामत आदि विभूषा) कराओ। फिर स्नान करवाकर, बलिकर्म करवा कर, यावत् सर्व अलंकारों से विभूषित करो। फिर मनोज्ञ अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य भोजन जिमाओ। भोजन जिमाकर मेरे निकट ले आना।'

६१—तए णं कोडुंबियपुरिसा जाव पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता जेणेव से दमगपुरिसे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तं दमगं असणं पाणं खाइमं साइमं उवप्पलोभेंति, उवप्पलोभित्ता सयं गिहं अणुप्पवेसेंति, अणुप्पवेसित्ता तं खंडमल्लगं खंडघडगं च तस्स दमगपुरिसस्स एगंते एडेंति।

तए णं से दमगे तंसि खंडमल्लगंसि खंडघडगंसि य एगंते एडिज्जमाणंसि महया महया सद्देणं आरसइ।

तब उन कौटुम्बिक पुरुषों ने सागरदत्त की आज्ञा अंगीकार की। अंगीकार करके वे उस भिखारी पुरुष के पास गये। जाकर उस भिखारी को अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन का प्रलोभन दिया। प्रलोभन देकर उसे अपने घर में ले आए। लाकर उसके सिकोरे के टुकडे को तथा घडे के ठीकरे को एक तरफ डाल दिया।

सिकोरे का टुकडा और घडे का टुकडा एक जगह डाल देने पर वह भिखारी जोर जोर से आवाज करके रोने-चिल्लाने लगा। (क्योंकि वही उसका सर्वस्व था।)

६२—तए णं से सागरदत्ते तस्स दमगपुरिसस्स तं महया महया आरसियसद्दं सोच्चा निसम्म कोडुंबियपुरिसे एवं वयासी—'किं णं देवाणुप्पिया! एस दमगपुरिसे महया महया सद्देणं आरसइ?' तए णं ते कोडुंबियपुरिसा एवं वयासी—'एस णं सामी! तंसि खंडमल्लगंसि खंडघडगंसि य एगंते एडिज्जमाणंसि महया महया सद्देणं आरसइ।' तए णं से सागरदत्ते सत्थवाहे ते कोडुंबियपुरिसे एवं वयासी—'मा णं तुब्भे देवाणुप्पिया! एयस्स दमगस्स तं खंडं जाव एडेह, पासे ठवेह, जहा णं पत्तियं भवइ।' ते वि तहेव ठविंति।

तत्पश्चात् सागरदत्त ने उस भिखारी पुरुष के ऊँचे स्वर से चिल्लाने का शब्द सुनकर और समझकर कौटुम्बिक पुरुषों को कहा—'देवानुप्रियो! यह भिखारी पुरुष क्यों जोर-जोर से चिल्ला रहा है?' तब कौटुम्बिक पुरुषों ने कहा—'स्वामिन्! उस सिकोरे के टुकड और घट के ठीकरे को एक ओर डाल देने के कारण वह जोर-जोर से चिल्ला रहा है। तब सागरदत्त सार्थवाह ने उन कौटुम्बिक पुरुषों से कहा—'देवानुप्रियो! तुम उस भिखारी के उस सिकोरे और घडे के खंड को एक ओर मत डालो, उसके पास रख दो, जिससे उसे प्रतीति हो—विश्वास रहे।' यह सुनकर उन्होंने वे टुकडे उसके पास रख दिए।

६३—तए णं ते कोडुंबियपुरिसा तस्स दमगस्स अलंकारियकम्मं करेंति, करित्ता सयपागसहस्सपागेहिं तेल्लेहिं अब्भंगेंति, अब्भंगिए समाणे सुरभिगंधुव्वट्टणेणं गायं उव्वट्टिंति उव्वट्टित्ता उसिणोदगगंधोदएणं ण्हाणेंति, सीतोदगेणं ण्हाणेंति, ण्हाणित्ता पम्हलसुकुमालगंधकासाईए गायाइं

लूहता, लूहित्ता हंसलक्खण पट्टसाडग परिहेति, परिहित्ता सव्वालंकारविभूसियं करेंति, करित्ता विउलं असणं पाणं खाइमं भोयावेंति भोयावित्ता सागरदत्तस्स उवणेंति।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने उस भिखारी का अलंकारकर्म (हजामत आदि) कराया। फिर शतपाक और सहस्रपाक (सौ या हजार मोहरें खर्च करके या सौ या हजार औषध डालकर बनाये गये) तेल से अभ्यंगन (मर्दन) किया। अभ्यंगन हो जाने पर सुवासित गंधद्रव्य के उबटन से उसके शरीर का उबटन किया। फिर उष्णोदक, गंधोदक और शीतोदक से स्नान कराया। स्नान करवाकर बारीक और सुकोमल गंधकाषाय वस्त्र से शरीर पोंछा। फिर हंस लक्षण (श्वेत) वस्त्र पहनाया। वस्त्र पहनाकर सर्व अलंकारों से विभूषित किया। विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन कराया। भोजन के बाद उसे सागरदत्त के समीप ले गए।

६४—तए णं सागरदत्ते सूमालियं दारियं ण्हायं जाव सव्वालंकारविभूसियं करित्ता तं दमगपुरिसं एवं वयासी—'एस णं देवाणुप्पिया! मम धूया इट्ठा, एयं च णं अहं तव भारियत्ताए दलामि भद्दियाए भद्दओ भविज्जासि।

तत्पश्चात् सागरदत्त ने सुकुमालिका दारिका को स्नान कराकर यावत् समस्त अलंकारों से अलंकृत करके, उस भिखारी पुरुष से इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय! यह मेरी पुत्री मुझे इष्ट है। इसे मैं तुम्हारी भार्या के रूप में देता हूँ। तुम इस कल्याणकारिणी के लिए कल्याणकारी होना।'

पुनः परित्याग

६५—तए णं से दमगपुरिसे सागरदत्तस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता सूमालियाए दारियाए सद्धिं वासघरं अणुपविसइ, सूमालियाए दारियाए सद्धिं तलिगंसि निवज्जइ।

तए णं से दमगपुरिसे सूमालियाए इमं एयारूवं अंगफासं पडिसंवेदेइ, सेसं जहा सागरस्स जाव सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता वासघराओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता खंडमल्लगं खंडघडं च गहाय मारामुक्के विव काए जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

तए णं सा सूमालिया जाव 'गए णं से दमगपुरिसे' त्ति कट्टु ओहयमणसंकप्पा जाव झियायइ।

उस द्रमक (भिखारी) पुरुष ने सागरदत्त की यह बात स्वीकार कर ली। स्वीकार करके सुकुमालिका दारिका के साथ वासगृह में प्रविष्ट हुआ और सुकुमालिका दारिका के साथ एक शय्या में सोया।

उस समय उस द्रमक पुरुष ने सुकुमालिका के अंगस्पर्श को उसी प्रकार अनुभव किया। शेष वृत्तान्त सागरदारक के समान समझना चाहिए। यावत् वह शय्या से उठा। उठ कर शयनागार से बाहर निकला। बाहर निकलकर अपना वही सिकोरे का टुकड़ा और घड़े का टुकड़ा ले करके जिधर से आया था, उधर ही ऐसा चला गया मानो किसी कसाईखाने से मुक्त हुआ हो या मरने वाले पुरुष से छुटकारा पाकर काक भागा हो।

'वह द्रमक पुरुष चल दिया।' यह सोचकर सुकुमालिका भग्नमनोरथ होकर यावत् चिन्ता करने लगी।

६६—तए णं सा भद्दा कल्लं पाउप्पभायाए दासचेडिं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—जाव सागरदत्तस्स एयमट्ठं निवेदेइ। तए णं से सागरदत्ते तहेव संभंते समाणे जेणेव वासहरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सूमालियं दारियं अंके निवेसेइ, निवेसित्ता एवं वयासी—'अहो णं तुमं पुत्ता! पुरापोराणाणं जाव [दुच्चिण्णाणं दुप्पडिक्कंताणं कडाणं पावाणं कम्माणं पावगं फलवित्तिविसेसं] पच्चणुब्भवमाणी विहरसि, तं मा णं तुमं पुत्ता! ओहयमणसंकप्पा जाव झियाहि, तुमं णं पुत्ता! मम महाणसंसि विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं जहा पोट्टिला[1] जाव परिभाएमाणी विहराहि।'

तत्पश्चात् भद्रा सार्थवाही ने दूसरे दिन प्रभात होने पर दासचेटी को बुलाया। बुलाकर पूर्ववत् कहा—सागरदत्त के प्रकरण में कथित दातौन पानी ले जाने आदि का वृत्तान्त यहाँ जानना चाहिए। यहाँ तक कि दासचेटी ने सागरदत्त सार्थवाह के पास जाकर यह अर्थ निवेदन किया। तब सागरदत्त उसी प्रकार सम्भ्रान्त होकर वासगृह में आया। आकर सुकुमालिका को गोद में बिठलाकर कहने लगा—'हे पुत्री! तू पूर्वजन्म में किये हिंसा आदि दुष्कृत्यों द्वारा उपार्जित पापकर्मों का फल भोग रही है। अतएव बेटी! भग्नमनोरथ होकर यावत् चिन्ता मत कर। हे पुत्री! मेरी भोजनशाला में तैयार हुए विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य आहार को—पोट्टिला की तरह कहना चाहिए[2]—यावत् श्रमणों आदि को देती हुई रह।

सुकुमालिका की दानशाला

६७—तए णं सा सूमालिया दारिया एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता महाणसंसि विपुलं असणं पाणं खाइमं जाव दलमाणी विहरइ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं गोवालियाओ अज्जाओ बहुस्सुयाओ एवं जहेव तेयलिणाए सुव्वयाओ तहेव समोसढाओ, तहेव संघाडओ जाव अणुपविट्ठे, तहेव जाव सूमालिया पडिलाभित्ता एवं वयासी—'एवं खलु अज्जाओ! अहं सागरस्स अणिट्ठा जाव अमणामा, नेच्छइ णं सागरए मम नामं वा जाव परिभोगं वा, जस्स जस्स वि य णं दिज्जामि तस्स तस्स वि य णं अणिट्ठा जाव अमणामा भवामि, तुब्भे य णं अज्जाओ! बहुनायाओ, एवं जहा पोट्टिला जाव उवलद्धे जेण अहं सागरस्स दारगस्स इट्ठा कंता जाव भवेज्जामि।'

तब सुकुमालिका दारिका ने यह बात स्वीकार की। स्वीकार करके भोजनशाला में विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य आहार देती-दिलाती हुई रहने लगी।

उस काल और उस समय में गोपालिका नामक बहुश्रुत आर्या, जैसे तेतलिपुत्र नामक अध्ययन में सुव्रता साध्वी के विषय में कहा है, उसी प्रकार पधारीं। उसी प्रकार उनके संघाड़े ने यावत् सुकुमालिका के घर में प्रवेश किया। उसी प्रकार सुकुमालिका ने यावत् आहार वहरा कर इस प्रकार कहा—'हे आर्याओ! मैं सागर के लिए अनिष्ट हूँ यावत् अमनोज्ञ हूँ। सागर मेरा नाम भी नहीं सुनना चाहता, यावत् परिभोग भी नहीं चाहता। जिस-जिस को भी मैं दी गई, उसी-उसी को अनिष्ट यावत् अमनोज्ञ हुई हूँ। आर्याओ! आप बहुत ज्ञानवाली हो। इस प्रकार पोट्टिला ने जो कहा था, वह सब यहाँ भी जानना चाहिए। यहाँ तक कि—आपने कोई मन्त्र-तन्त्र आदि प्राप्त किया है, जिससे मैं सागरदारक को इष्ट कान्त यावत् प्रिय हो जाऊँ?

१ देखिए, तेतलिपुत्र अध्ययन १४ २ देखिए, तेतलिपुत्र अध्ययन

दीक्षाग्रहण

६८—अज्जाओ तहेव भणंति, तहेव साविया जाया, तहेव चिंता, तहेव सागरदत्तं सत्थवाहं आपुच्छइ, जाव गोवालियाणं अंतिए पव्वइया। तए णं सा सूमालिया अज्जा जाया ईरियासमिया जाव बंभयारिणी बहूहिं चउत्थछट्ठट्ठम जाव विहरइ।

आर्याओं ने उसी प्रकार—सुव्रता की आर्याओं के समान—उत्तर दिया। अर्थात् उन्होंने कहा कि ऐसी बात सुनना भी हमें नहीं कल्पता तो फिर उपदेश करने—इष्ट होने का उपाय बताने की तो बात ही दूर रही। तब वह उसी प्रकार (पोट्टिला की भाँति) श्राविका हो गई। उसने उसी प्रकार दीक्षा अंगीकार करने का विचार किया और उसी प्रकार सागरदत्त सार्थवाह से दीक्षा की आज्ञा ली। यावत् वह गोपालिका आर्या के निकट दीक्षित हुई। तत्पश्चात् वह सुकुमालिका आर्या हो गई। ईर्यासमिति से सम्पन्न यावत् ब्रह्मचारिणी हुई और बहुत-से उपवास, बेला, तेला आदि की तपस्या करती हुई विचरने लगी।

६९—तए णं सा सूमालिया अज्जा अन्नया कयाइ जेणेव गोवालियाओ अज्जाओ तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—'इच्छामि णं अज्जाओ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया समाणी चंपाओ बाहिं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स अदूरसामंते छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं सूराभिमुही आयावेमाणी विहरित्तए।'

तत्पश्चात् सुकुमालिका आर्या किसी समय, एक बार गोपालिका आर्या के पास गई। जाकर उन्हें वन्दन किया, नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'हे आर्या (गुरुणीजी)! मैं आपकी आज्ञा पाकर चंपा नगरी से बाहर, सुभूमिभाग उद्यान से न बहुत दूर और न बहुत समीप के भाग में बेले-बेले का निरन्तर तप करके, सूर्य के सम्मुख आतापना लेती हुई विचरना चाहती हूँ।

७०—तए णं ताओ गोवालियाओ अज्जाओ सूमालियं एवं वयासी—'अम्हे णं अज्जे! समणीओ निग्गंथीओ ईरियासमियाओ जाव गुत्तबंभचारिणीओ, नो खलु अम्हं कप्पइ बहिया गामस्स सन्निवेसस्स वा छट्ठंछट्ठेणं जाव [अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं सूराभिमुहीणं आयावेमाणीणं] विहरित्तए। कप्पइ णं अम्हं अंतो उवस्सयस्स वइपरिक्खित्तस्स संघाडिपडिबद्धियाए णं समतलपइयाए आयावित्तए।'

तब उन गोपालिका आर्या ने सुकुमालिका आर्या से इस प्रकार कहा—'हे आर्ये! हम निर्ग्रन्थ श्रमणियाँ हैं, ईर्यासमिति वाली यावत् गुप्त ब्रह्मचारिणी हैं। अतएव हमको गांव यावत् सन्निवेश (बस्ती) से बाहर जाकर बेले-बेले की तपस्या करके, सूर्याभिमुख होकर आतापना लेते हुए विचरना नहीं कल्पता। किन्तु वाड से घिरे हुए उपाश्रय के अन्दर ही, संघाटी (वस्त्र) से शरीर को आच्छादित करके या साध्वियों के परिवार के साथ रहकर तथा पृथ्वी पर दोनों पदतल समान रख कर आतापना लेना कल्पता है।'

७१—तए णं सा सूमालिया गोवालियाए अज्जाए एयमट्ठं नो सद्दहइ, नो पत्तियइ, नो रोएइ, एयमट्ठं असद्दहमाणी अपत्तियमाणी अरोएमाणी सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स अदूरसामंते छट्ठंछट्ठेणं जाव विहरइ।

तब सुकुमालिका को गोपालिका आर्या की इस बात पर श्रद्धा नही हुई, प्रतीति नहीं हुई, रुचि नही हुई। वह सुभूमिभाग उद्यान से कुछ समीप मे निरन्तर बेले बेले का तप करती हुई यावत् आतापना लेती हुई विचरने लगी।

सुकुमालिका का निदान

७२—तत्थ णं चंपाए नयरीए ललिया नाम गोट्ठी परिवसइ नरवइदिण्णवि (प) यारा, अम्मापिइनिययनिप्पिवासा, वेसविहारकयनिकेया, नाणाविहअविणयप्पहाणा अड्ढा जाव अपरिभूया।

चम्पा नगरी मे ललिता (क्रीडा मे सलग्न रहने वाली) एक गोष्ठी (टोली) निवास करती थी। राजा ने उसे इच्छानुसार विचरण करने की छूट दे रक्खी थी। वह टोली माता-पिता आदि स्वजनो की परवाह नही करती थी। वेश्या का घर ही उसका घर था। वह नाना प्रकार का अविनय (अनाचार) करने मे उद्धत थी, वह धनाढ्य लोगो की टोली थी और यावत् किसी से दबती नही थी अर्थात् कोई उसका पराभव नही कर सकता था।

७३—तत्थ णं चंपाए नयरीए देवदत्ता नाम गणिया होत्था सुकुमाला जहा अंड-णाए।

तए णं तीसे ललियाए गोट्ठीए अन्नया पंच गोट्ठिल्लपुरिसा देवदत्ताए गणियाए सद्धिं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स उज्जाणसिरिं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति। तत्थ णं एगे गोट्ठिल्लपुरिसे देवदत्तं गणियं उच्छंगे धरइ, एगे पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ, एगे पुप्फपूरयं रएइ, एगे पाए रएइ, एगे चामरुक्खेवं करेइ।

उस चम्पा नगरी मे देवदत्ता नाम की गणिका रहती थी। वह सुकुमाल थी। (तीसरे) अंडक अध्ययन के अनुसार उसका वर्णन समझ लेना चाहिए।

एक बार उस ललिता गोष्ठी के पाँच गोष्ठिक पुरुष देवदत्ता गणिका के साथ, सुभूमिभाग उद्यान की लक्ष्मी (शोभा) का अनुभव कर रहे थे। उनमे से एक गोष्ठिक पुरुष ने देवदत्ता गणिका को अपनी गोद मे बिठलाया, एक ने पीछे से छत्र धारण किया, एक ने उसके मस्तक पर पुष्पो का शेखर रचा, एक उसके पैर (महावर से) रगने लगा, और एक उस पर चामर ढोरने लगा।

७४—तए णं सा सूमालिया अज्जा देवदत्तं गणियं पंचहिं गोट्ठिल्लपुरिसेहिं सद्धिं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणिं पासइ, पासित्ता इमेयारूवे संकप्पे समुप्पज्जित्था—'अहो णं इमा इत्थिया पुरापोराणाणं जाव [सुचिण्णाणं सुपरक्कंताणं कडाणं कल्लाणाणं कम्माणं फलवित्तिविसेसं पच्चणुब्भवमाणी] विहरइ, तं जइ णं केइ इमस्स सुचरियस्स तवनियमबंभचेरवासस्स कल्लाणे फलवित्तिविसेसे अत्थि, तो णं अहमवि आगमिस्सेणं भवग्गहणेणं इमेयारूवाइं उरालाइं जाव [माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी] विहरिज्जामि' त्ति कट्टु नियाणं करेइ, करित्ता आयावणभूमीओ पच्चोरुहइ।

उस सुकुमालिका आर्या ने देवदत्ता गणिका को पाँच गोष्ठिक पुरुषो के साथ उच्चकोटि के मनुष्य सम्बन्धी कामभोग भोगते देखा। देखकर उसे इस प्रकार का सकल्प उत्पन्न हुआ—'अहा! यह स्त्री पूर्व मे आचरण किये हुए शुभ कर्मों का फल अनुभव कर रही है। सो यदि अच्छी तरह से आचरण किये गये इस तप, नियम और ब्रह्मचर्य का कुछ भी कल्याणकारी फल-विशेष हो, तो मैं भी आगामी

भव मे इसी प्रकार के मनुष्य सबधी कामभोगो को भोगती हुई विचरू । उसने इस प्रकार निदान किया। निदान करके आतापनाभूमि से वापिस लौटी।

सुकुमालिका की बकुशता

७५– तए ण सा सूमालिया अज्जा सरीरबउसा जाया यावि होत्था, अभिक्खण अभिक्खण हत्थे धोवेइ, पाए धोवेइ, सीस धोवेइ, मुह धोवेइ, थणतराइ धोवेइ, कक्खतराइ धोवेइ, गोज्झतराइ धोवेइ, जत्थ ण ठाण वा सेज्ज वा निसीहिय वा चेएइ, तत्थ वि य ण पुव्वामेव उदएण अब्भुक्खइत्ता तओ पच्छा ठाण सेज्ज वा चेएइ।

तत्पश्चात् वह सुकुमालिका आर्या शरीरबकुश हो गई, अर्थात् शरीर को साफ-सुथरा सुशोभन रखने मे आसक्त हो गई। वह बार बार हाथ धोती, पैर धोती, मस्तक धोती, मुँह धोती, स्तनान्तर (छाती) धोती, बगले धोती तथा गुप्त अग धोती। जिस स्थान पर खडी होती या कायोत्सग करती, सोती, स्वाध्याय करती, वहा भी पहले ही जमीन पर जल छिडकती थी और फिर खडी होती, कायोत्सग करती, सोती या स्वाध्याय करती थी।

७६—तए ण ताओ गोवालियाओ अज्जाओ सूमालिय अज्ज एव वयासी—'एव खलु देवाणुप्पिए! अज्जे! अम्हे समणीओ निग्गथाओ ईरियासमियाओ जाव बभचेरधारिणीओ, नो खलु कप्पइ अम्ह सरीरबाउसियाए होत्तए, तुम च ण अज्जे! सरीरबाउसिया अभिक्खण अभिक्खण हत्थे धोवसि जाव चेएसि, त तुम ण देवाणुप्पिए! तस्स ठाणस्स आलोएहि जाव पडिवज्जाहि।'

तब उन गोपालिका आर्या ने सुकुमालिका आर्या से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिये! हम निग्रथ साध्विया है, ईर्यासमिति से सम्पन्न यावत् ब्रह्मचारिणी है। हमे शरीरबकुश होना नही कल्पता, किन्तु हे आर्ये! तुम शरीरबकुश हो गई हो, बार-बार हाथ धोती हो, यावत् फिर स्वाध्याय आदि करती हो। अतएव देवानुप्रिये! तुम बकुशचारित्र रूप स्थान की आलोचना करो यावत प्रायश्चित अगीकार करो।'

७७—तए ण सूमालिया गोवालियाण अज्जाण एयमट्ठ नो आढाइ, नो परिजाणइ, अणाढायमाणी अपरिजाणमाणी विहरइ। तए ण ताओ अज्जाओ सूमालिय अज्ज अभिक्खण अभिक्खण अभिहीलति जाव [निंदंति खिंसेंति गरिहंति] परिभवति, अभिक्खण अभिक्खण एयमट्ठ निवारेंति।

तब सुकुमालिका आर्या ने गोपालिका आर्या के इस अर्थ (कथन) का आदर नही किया, उसे अगीकार नही किया। वरन् अनादर करती हुई और अस्वीकार करती हुई उसी प्रकार रहने लगी। तत्पश्चात् दूसरी आर्याएँ सुकुमालिका आर्या की बार-बार अवहेलना करने लगी, यावत् [निन्दा करने लगी, खीजने लगी, गर्हा करने लगी] अनादर करने लगी और बार-बार इस अनाचार के लिए उसे रोकने लगी।

सुकुमालिका का पृथक् विहार

७८—तए ण तीसे सूमालियाए समणीहिं निग्गथीहिं हीलिज्जमाणीए जाव वारिज्जमाणीए इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—'जया ण अह अगारवासमज्झे वसामि, तया ण अह

अप्पवसा, जया ण अहं मुंडे भवित्ता पव्वइया, तया णं अहं परवसा, पुव्वि च णं मम समणीओ आढायंति, इयाणि नो आढायंति, तं सेयं खलु मम कल्लं पाउप्पभायाए गोवालियाणं अंतियाओ पडिणिक्खमित्ता पाडिएक्कं उवस्सगं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए' त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कल्लं पाउप्पभायाए गोवालियाणं अज्जाणं अंतियाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता पाडिएक्कं उवस्सगं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ ।

निर्ग्रन्थ श्रमणियों द्वारा अवहेलना की गई और रोकी गई उस सुकुमालिका के मन में इस प्रकार का विचार यावत् मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—'जब मैं गृहस्थवास में वसती थी, तब मैं स्वाधीन थी। जब मैं मुंडित होकर दीक्षित हुई तब मैं पराधीन हो गई। पहले ये श्रमणियाँ मेरा आदर करती थीं किन्तु अब आदर नहीं करती हैं। अतएव कल प्रभात होने पर गोपालिका के पास से निकलकर, अलग उपाश्रय (स्थान) में जा करके रहना मेरे लिए श्रेयस्कर होगा,' उसने ऐसा विचार किया। विचार करके कल (दूसरे दिन) प्रभात होने पर गोपालिका आर्या के पास से निकल गई। निकलकर अलग उपाश्रय में जाकर रहने लगी।

निधन स्वर्गप्राप्ति

७९—तए णं सा सूमालिया अज्जा अणोहट्टिया अनिवारिया सच्छंदमई अभिक्खणं अभिक्खणं हत्थे धोवेइ, जाव[1] चेएइ, तत्थ वि य णं पासत्था, पासत्थविहारी, ओसण्णा ओसण्णविहारी, कुसीला कुसीलविहारी संसत्ता, संसत्तविहारी बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणइ, अद्धमासियाए संलेहणाए तस्स ठाणस्स अणालोइय अपडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा ईसाणे कप्पे अण्णयरंसि विमाणंसि देवगणियत्ताए उववण्णा। तत्थेगइयाणं देवीणं नव पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, तत्थ णं सूमालियाए देवीए नव पलिओवमाइं ठिई पन्नत्ता।

तत्पश्चात् कोई हटकने—मना करने वाला न होने से एवं रोकने वाला न होने से सुकुमालिका स्वच्छंदबुद्धि होकर बार-बार हाथ धोने लगी यावत् जल छिड़ककर कायोत्सर्ग आदि करने लगी। तिस पर भी वह पार्श्वस्थ अर्थात् शिथिलाचारिणी हो गई। पार्श्वस्थ की तरह विहार करने-रहने लगी। वह अवसन्न हो गई अर्थात् ज्ञान, दर्शन और चारित्र के विषय में आलसी हो गई और आलस्य-मय विहार वाली हो गई। कुशीला अर्थात् अनाचार का सेवन करने वाली और कुशीलों के समान व्यवहार करने वाली हो गई। संसक्ता अर्थात् ऋद्धि रस और साता रूप गौरवों में आसक्त और संसक्त विहारिणी हो गई। इस प्रकार उसने बहुत वर्षों तक साध्वी-पर्याय का पालन किया। अन्त में अर्ध मास की संलेखना करके, अपने अनुचित आचरण की आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना ही काल-मास में काल करके, ईशान कल्प में, किसी विमान में देवगणिका के रूप में उत्पन्न हुई। वहाँ किन्हीं-किन्हीं देवियों की नौ पल्योपम की स्थिति कही गई है। सुकुमालिका देवी की भी नौ पल्योपम की स्थिति हुई।

द्रौपदी-कथा

८०—तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे पंचालेसु जणवएसु कंपिल्लपुरे

---

1 अ. १६ सूत्र ७५

नाम नगरे होत्था। वन्नओ। तत्थ ण दुवए नाम राया होत्था, वन्नओ। तस्स ण चुलणी देवी, धट्ठज्जुणे कुमारे जुवराया।

उस काल मे और उस समय मे इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे, भरतक्षेत्र मे पाचाल देश मे काम्पिल्यपुर नामक नगर था। उसका वर्णन औपपातिकसूत्र के अनुसार कहना चाहिए। वहा द्रुपद राजा था। उसका वर्णन भी औपपातिकसूत्रानुसार कहना चाहिए। द्रुपद राजा की चुलनी नामक पटरानी थी और धृष्टद्युम्न नामक कुमार युवराज था।

द्रौपदी का जन्म

८१—तए ण सा सूमालिया देवी ताओ देवलोयाओ आउक्खएण जाव [ठिइक्खएण भवक्खएण अणतर चय] चइत्ता इहेव जमुद्दीवे दीवे भारहे वासे पचालेसु जणवएसु कपिल्लपुरे नयरे दुपयस्स रण्णो चुलणीए देवीए कुच्छिसि दारियत्ताए पच्चायाया। तए ण सा चुलणी देवी नवण्ह मासाण जाव दारिय पयाया।

सुकुमालिका देवी उस देवलोक से, आयु भव, और स्थिति को समाप्त करके यावत् देवीशरीर का त्याग करके इसी जम्बूद्वीप मे, भारतवर्ष मे, पचाल जनपद मे, काम्पिल्यपुर नगर मे द्रुपद राजा की चुलनी रानी की कूख मे लडकी के रूप मे उत्पन्न हुई। तत्पश्चात् चुलनी देवी ने नौ मास पूर्ण होने पर यावत् पुत्री को जन्म दिया।

नामकरण

८२—तए ण तीसे दारियाए निव्वत्तबारसाहियाए इम एयारूव नामधेज्ज—जम्हा ण एसा दारिया दुवयस्स रण्णो धूया चुलणीए देवीए अत्तया, त होउ ण अम्ह इमीसे दारियाए नामधिज्जे दोवई। तए ण तीसे अम्मापियरो इम एयारूव गुण्ण गुणनिप्फन्न नामधेज्ज करिति—'दोवई'।

तत्पश्चात् बारह दिन व्यतीत हो जाने पर उस बालिका का ऐसा नाम रक्खा गया—'क्योकि यह बालिका द्रुपदी राजा की पुत्री है और चुलनी रानी की आत्मजा है, अत हमारी इस बालिका का नाम 'द्रौपद' हो। तब उसके माता-पिता ने इस प्रकार कह कर उसका गुण वाला एव गुणनिष्पन्न नाम 'द्रौपदी' रक्खा।

८३—तए ण सा दोवई दारिया पचधाइपरिग्गहिया जाव गिरिकदरमल्लीण इव चपगलया निवायनिव्वाघायसि सुहसुहेण परिवड्ढइ। तए ण सा दोवई रायवरकन्ना उम्मुक्कबालभावा जाव[1] उक्किट्ठसरीरा जाया यावि होत्था।

तत्पश्चात् पाच धायो द्वारा ग्रहण की हुई वह द्रौपदी दारिका पर्वत की गुफा मे स्थित वायु आदि के व्याघात से रहित चम्पकलता के समान सुखपूर्वक बढने लगी। वह श्रेष्ठ राजकन्या बाल्यावस्था से मुक्त होकर यावत् [क्रमश यौवनावस्था को प्राप्त हुई, समझदार हो गई, उत्कृष्ट रूप, यौवन एव लावण्य से सम्पन्न तथा] उत्कृष्ट शरीर वाली भी हो गई।

---

१ अ १६ सूत्र ३६

८४—तए णं तं दोवइं रायवरकन्नं अण्णया कयाइं अंतेउरियाओ ण्हायं जाव विभूसियं करेंति, करित्ता दुवयस्स रण्णो पायवंदियं पेसंति। तए णं सा दोवई रायवरकन्ना जेणेव दुवए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता दुवयस्स रण्णो पायग्गहणं करेइ।

राजवरकन्या द्रौपदी को एक बार अन्तःपुर की रानियों (अथवा दासियों) ने स्नान कराया यावत् सर्व अलंकारों से विभूषित किया। फिर द्रुपद राजा के चरणों की वन्दना करने के लिए उसके पास भेजा। तब श्रेष्ठ राजकुमारी द्रौपदी द्रुपद राजा के पास गई। वहाँ जाकर उसने द्रुपद राजा के चरणों का स्पर्श किया।

८५—तए णं से दुवए राया दोवइं दारियं अंके निवेसेइ, निवेसित्ता दोवईए रायवरकन्नाए रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य जायविम्हए दोवइं रायवरकन्नं एवं वयासी—'जस्स णं अहं पुत्ता! रायस्स वा जुवरायस्स वा भारियत्ताए सयमेव दलइस्सामि, तत्थ णं तुमं सुहिया वा दुक्खिया वा भविज्जासि, तए णं मम जावज्जीवाए हिययडाहे भविस्सइ, तं णं अहं तव पुत्ता! अज्जयाए सयंवरं विरयामि, अज्जयाए णं तुमं दिण्णसयंवरा, जं णं तुमं सयमेव रायं वा जुवरायं वा वरेहिसि, से णं तव भत्तारे भविस्सइ, त्ति कट्टु ताहिं इट्ठाहिं जाव आसासेइ, आसासित्ता पडिविसज्जेइ।

तत्पश्चात् द्रुपद राजा ने द्रौपदी दारिका को अपनी गोद में बिठलाया। फिर राजवरकन्या द्रौपदी के रूप, यौवन और लावण्य को देखकर उसे विस्मय हुआ। उसने राजवरकन्या द्रौपदी से कहा—'हे पुत्री! मैं स्वयं किसी राजा अथवा युवराज की भार्या के रूप में तुझे दूँगा तो कौन जाने वहाँ तू सुखी हो या दुःखी? (दुःखी हुई तो) मुझे जिन्दगी भर हृदय में दाह होगा। अतएव हे पुत्री! मैं आज से तेरा स्वयंवर रचता हूँ। आज से ही मैंने तुझे स्वयंवर में दी। अतएव तू अपनी इच्छा से जिस किसी राजा या युवराज का वरण करेगी, वही तेरा भर्त्तार होगा।' इस प्रकार कहकर इष्ट, प्रिय और मनोज्ञ वाणी से द्रौपदी को आश्वासन दिया। आश्वासन देकर विदा कर दिया।

द्रौपदी का स्वयंवर

८६—तए णं से दुवए राया दूयं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! बारवइं नयरिं, तत्थ णं तुमं कण्हं वासुदेवं, समुद्दविजयपामोक्खे दस दसारे, बलदेवपामुक्खे पंच महावीरे, उग्गसेणपामोक्खे सोलस रायसहस्से, पज्जुण्णपामुक्खाओ अद्धुट्ठाओ कुमारकोडीओ, संबपामोक्खाओ सट्ठिं दुद्दन्तसाहस्सीओ, वीरसेणपामुक्खाओ इक्कवीसं वीरपुरिससाहस्सीओ, महसेणपामोक्खाओ छप्पन्नं बलवगसाहस्सीओ, अन्ने य बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहपभिइओ करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेहि, वद्धावित्ता एवं वयाहि—

तत्पश्चात् द्रुपद राजा ने दूत बुलवाया। बुलवा कर उससे कहा—देवानुप्रिय! तुम द्वारवती (द्वारका) नगरी जाओ। वहाँ तुम कृष्ण वासुदेव को, समुद्रविजय आदि दस दसारों को, बलदेव आदि पाँच महावीरों को, उग्रसेन आदि सोलह हजार राजाओं को, प्रद्युम्न आदि साढ़े तीन कोटि कुमारों को, शाम्ब आदि साठ हजार दुर्दान्तों (उद्धत बलवानों) को, वीरसेन आदि इक्कीस हजार वीर पुरुषों को, महासेन आदि छप्पन हजार बलवान वर्ग को तथा अन्य बहुत-से राजाओं, युवराजों,

तलवर, माडविक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति और सार्थवाह प्रभृति को दोनो हाथ जोडकर, दसो नख मिला कर मस्तक पर आवर्त्तन करके, अजलि करके और 'जय-विजय' शब्द कह कर वधाना—उनका अभिनन्दन करना। अभिनन्दन करके इस प्रकार कहना—

८७—'एव खलु देवाणुप्पिया ! कपिल्लपुरे नयरे दुवयस्स रण्णो धूयाए चुलणीए देवीए अत्तयाए धट्ठज्जुण कुमारस्स भगिणीए दोवईए रायवर-कण्णाए सयवरे भविस्सइ, त ण तुब्भे देवाणुप्पिया ! दुवय राय अणुगिण्हेमाणा अकालपरिहीण चेव कपिल्लपुरे नयरे समोसरह।'

'हे देवानुप्रियो ! काम्पिल्यपुर नगर मे द्रुपद राजा की पुत्री, चुलनी देवी की आत्मजा और राजकुमार धृष्टद्युम्न की भगिनी श्रेष्ठ राजकुमारी द्रौपदी का स्वयवर होने वाला है। अतएव हे देवानुप्रियो ! आप सब द्रुपद राजा पर अनुग्रह करते हुए, विलम्ब किये बिना—उचित समय पर-काम्पिल्यपुर नगर मे पधारना।'

८८—तए ण से दूए करयल जाव कट्टु दुवयस्स रण्णो एयमट्ठ विणएण पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! चाउग्घट आसरह जुत्तामेव उवट्ठवेह।' जाव ते वि तहेव उवट्ठवेंति।

तत्पश्चात् दूत ने दोनो हाथ जोडकर यावत् मस्तक पर अजलि करके द्रुपद राजा का यह अर्थ (कथन) विनय के साथ स्वीकार किया। स्वीकार करके अपने घर आकर कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो ! शीघ्र ही चार घटाओ वाला अश्वरथ जोत कर उपस्थित करो।' कौटुम्बिक पुरुषो ने यावत् रथ उपस्थित किया।

८९—तए ण से दूए ण्हाए जाव अलकारविभूसियसरीरे चाउग्घट आसरह दुरूहइ, दुरुहित्ता बहूहि पुरिसेहि सन्नद्ध जाव] बद्ध वम्मिय कवएहि उप्पीलियसरासण-पट्टिएहि पिणद्धगेविज्जेहि आवद्धि विमल वरचिधपट्टेहि] गहियाऽऽउह पहरणेहि सद्धि सपरिवुडे कपिल्लपुर नयर मज्झमज्झेण निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता पचालजणवयस्स मज्झमज्झेण जेणेव देसप्पते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुरट्ठाजणवयस्स मज्झमज्झेण जेणेव बारवई नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बारवइ नगरि मज्झमज्झेण अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव कण्हस्स वासुदेवस्स बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घट आसरह ठवेइ, ठवित्ता रहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता मणुस्सवग्गुरापरिक्खित्ते पायविहारचारेण जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता कण्ह वासुदेव समुद्दविजयपामुक्खे य दस दसारे जाव बलवगसाहस्सीओ करयल त चेव जाव[1] समोसरह।

तत्पश्चात् स्नान किये हुए और अलकारो से विभूषित शरीर वाले उस दूत के चार घटाओ वाले अश्वरथ पर आरोहण किया। आरोहण करके [अगरक्षा के लिए कवच धारण करके, धनुष लेकर अथवा भुजाओ पर चर्म की पट्टी बाधकर, ग्रीवारक्षक धारण करके मस्तक पर गाढा बधा चिह्नपट्ट धारण करके] तैयार हुए अस्त्र-शस्त्रधारी बहुत-से पुरुषो के साथ काम्पिल्यपुर नगर के

१ अ १६ सूत्र ८७

मध्य भाग से होकर निकला । वहाँ से निकल कर पंचाल देश के मध्य भाग में होकर देश की सीमा पर आया । फिर सुराष्ट्र जनपद के बीच में होकर जिधर द्वारवती नगरी थी, उधर चला । चलकर द्वारवती नगरी के मध्य में प्रवेश किया । प्रवेश करके जहाँ कृष्ण वासुदेव की बाहरी सभा थी, वहाँ आया । चार घंटाओं वाले अश्वरथ को रोका । रथ से नीचे उतरा । फिर मनुष्यों के समूह से परिवृत होकर पैदल चलता हुआ कृष्ण वासुदेव के पास पहुँचा । वहाँ पहुँच कर कृष्ण वासुदेव को, समुद्रविजय आदि दस दसारों को यावत् महासेन आदि छप्पन हजार बलवान् वर्ग को दोनों हाथ जोड़कर द्रुपद राजा के कथनानुसार अभिनन्दन करके यावत् स्वयंवर में पधारने का निमंत्रण दिया ।

९०—तए णं से कण्हे वासुदेवे तस्स दूयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठ जाव हियए तं दूयं सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ ।'

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव उस दूत से यह वृत्तान्त सुनकर और समझकर प्रसन्न हुए, यावत् वे हर्षित एवं सन्तुष्ट हुए । उन्होंने उस दूत का सत्कार किया, सम्मान किया । सत्कार-सम्मान करने के पश्चात् उसे विदा किया ।

स्वयंवर के लिए कृष्ण का प्रस्थान

९१—तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुंबियपुरिसं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया ! सभाए सुहम्माए सामुदाइयं भेरिं तालेहि ।'

तए णं से कोडुंबियपुरिसे करयल जाव कण्हस्स वासुदेवस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता जेणेव सभाए सुहम्माए सामुदाइया भेरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सामुदाइयं भेरिं महया सद्देणं तालेइ ।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुष को बुलाया । बुला कर उससे कहा—'देवानुप्रिय ! जाओ और सुधर्मा सभा में रखी हुई सामुदानिक भेरी बजाओ ।'

तब उस कौटुम्बिक पुरुष ने दोनों हाथ जोड़कर मस्तक पर अंजलि करके कृष्ण वासुदेव के इस अर्थ को अंगीकार किया । अंगीकार करके जहाँ सुधर्मा सभा में सामुदानिक भेरी थी, वहाँ आया । आकर जोर-जोर के शब्द से उसे ताडन किया ।

९२—तए णं ताए सामुदाइयाए भेरीए तालियाए समाणीए समुद्दविजयपामोक्खा दस दसारा जाव महसेणपामोक्खाओ छप्पन्नं बलवगसाहस्सीओ ण्हाया जाव[1] विभूसिया जहाविभव-इड्ढि-सक्कार-समुदएणं अप्पेगइया जाव [हयगया एवं गयगया रह-सीया-संदमाणीगया अप्पेगइया] पायविहार चारेणं जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल जाव[2] कण्हं वासुदेवं जएणं विजएणं वद्धावेंति ।

तत्पश्चात् उस सामुदानिक भेरी के ताड़न करने पर समुद्रविजय आदि दस दसार यावत् महासेन आदि छप्पन हजार बलवान् नहा-धोकर यावत् विभूषित होकर अपने-अपने वैभव के अनुसार ऋद्धि एवं सत्कार के अनुसार कोई-कोई [अश्व पर आरूढ होकर, कोई-कोई हाथी पर,

---

१ अ. १६ सूत्र ८१   २ अ. १६ सूत्र ८६

शिविका पर स्यदमाणी-म्याने पर सवार होकर और कोई-कोई पैदल चल कर जहाँ कृष्ण वासुदेव थे, वहाँ पहुँचे। पहुँचकर दोनो हाथ जोडकर सब ने कृष्ण वासुदेव का जय-विजय के शब्दो से अभिनन्दन किया।

९३—तए ण से कण्हे वासुदेवे कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! आभिसेक्क हत्थिरयण पडिकप्पेह, हयगय जाव [रह-पवरजोहकलिय चउरगिणि सेन सण्णाहेह सण्णाहेत्ता एयमाणत्तिय पच्चप्पिणह। ते वि तहेव] पच्चप्पिणति।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही पट्टाभिषेक किये हुए हस्तीरत्न (सर्वोत्तम हाथी) को तैयार करो तथा घोडो हाथियो [रथो और उत्तम पदातियो की चतुरगिणी सेना सज्जित करके मेरी आज्ञा वापिस सौपो।] यह आज्ञा सुन कर कौटुम्बिक पुरुषो ने तदनुसार कार्य करके आज्ञा वापिस सौंपी।

९४—तए ण से कण्हे वासुदेवे जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समुत्तजाला-कुलाभिरामे जाव (विचित्तमणि रयणकुट्टिमतले रमणिज्जे ण्हाणमडवसि णाणामणि रयणभत्तिचित्तसि ण्हाणपीढसि सुहणिसण्णे सुहोदएहिं गधोदएहिं पुप्फोदएहिं सुद्धोदएहिं पुणो पुणो कल्लाणग-पवरमज्जण-विहीए मज्जिए) अजणगिरिकूडसनिभ गयवइ नरवई दुरूढे।

तए ण से कण्हे वासुदेवे समुद्दविजयपामुक्खेहिं दसहिं दसारेहिं जाव[1] अणगसेणापामुक्खेहिं अणेगाहिं गणियासाहस्सीहिं सद्धि सपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव रवेण बारवइ नयरिं मज्झमज्झेण निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता सुरट्ठाजणवयस्स मज्झमज्झेण जेणेव देसप्पते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पचालजणवयस्स मज्झमज्झेण जेणेव कपिल्लपुरे नयरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव मज्जनगृह (स्नानागार) मे गये। मोतियो के गुच्छो से मनोहर [तथा चित्र-विचित्र मणियो और रत्नो के फशवाले मनोरम स्नानगृह मे, अनेक प्रकार की मणियो और रत्नो की रचना के कारण अद्‌भुत स्नानपीठ (स्नान करने के पीढे) पर सुखपूवक आसीन हुए। तत्पश्चात् शुभ अथवा सुखजनक जल से, सुगधित जल से तथा पुप्प-सौरभयुक्त जल से बार-वार उत्तम मागलिक विधि से स्नान किया,] स्नान करके विभूषित होकर यावत् अजनगिरि के शिखर के समान (श्याम और ऊँचे) गजपति पर वे नरपति आरूढ हुए।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव समुद्रविजय आदि दस दसारो के साथ यावत् अनगसेना आदि कई हजार गणिकाओ के साथ परिवृत होकर, पूरे ठाठ के साथ यावत् वाद्यो की ध्वनि के साथ द्वारवती नगरी के मध्य मे होकर निकले। निकल कर सुराष्ट्र जनपद के मध्य मे होकर देश की सीमा पर पहुँचे। वहाँ पहुँच कर पचाल जनपद के मध्य मे होकर जिस ओर काम्पिल्यपुर नगर था, उसी ओर जाने के लिए उद्यत हुए।

हस्तिनापुर को दूतप्रेषण

९५—तए ण से दुवए राया दोच्च दूय सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'गच्छ ण तुम

---

१ अ १६ सूत्र ८६

देवाणुप्पिया ! हत्थिणाउर नगर, तत्थ ण तुम पडुराय सपुत्तय— जुहिट्ठिल भीमसेण अज्जुण नउल सहदेव, दुज्जोहण भाइसयसमग्ग गगेय विदुर दोण जयद्दह सउणि कीव आसत्थाम करयल जाव कट्टु तहेव समोसरह ।'

तत्पश्चात् (प्रथम दूत को द्वारिका भेजने के तुरन्त बाद मे) द्रुपद राजा ने दूसरे दूत को बुलाया। बुलाकर उससे कहा—'देवानुप्रिय ! तुम हस्तिनापुर नगर जाओ। वहाँ तुम पुत्रो सहित पाण्डु राजा को—उनके पुत्र युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव को, सौ भाइयो समेत दुर्योधन को, गागेय, विदुर, द्रोण, जयद्रथ, शकुनि, क्लीव (कर्ण) और अश्वत्थामा को दोनो हाथ जोडकर यावत् मस्तक पर अजलि करके उसी प्रकार (पहले के समान) कहना, यावत्—समय पर स्वयवर मे पधारिए।

९६—तए ण से दूए एव वयासी जहा वासुदेवे, नवर भेरी नत्थि, जाव जेणेव कपिल्लपुरे नयरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तत्पश्चात् दूत ने हस्तिनापुर जाकर उसी प्रकार कहा जैसा प्रथम दूत ने श्रीकृष्ण को कहा था। तब जैसा कृष्ण वासुदेव ने किया, वैसा ही पाण्डु राजा ने किया। विशेषता यह है कि हस्तिनापुर मे भेरी नही थी। अतएव दूसरे उपाय से सब को सूचना देकर और साथ लेकर पाण्डु राजा भी) काम्पिल्यपुर नगर की ओर गमन करने को उद्यत हुए।

अन्य दूतो का अन्यत्र प्रेषण

९७—एएणेव कमेण तच्च दूय चपानयरिं, तत्थ ण तुम कण्ह अगराय, सेल्ल, नदिराय करयल तेहेव जाव समोसरह।

इसी क्रम से तीसरे दूत को चम्पा नगरी भेजा और उससे कहा—तुम वहाँ जाकर अगराज कृष्ण को, सेल्लक राजा को और नदिराज को दोनो हाथ जोडकर यावत् कहना कि स्वयवर मे पधारिए।

९८—चउत्थ दूय सुत्तिमइ नयरिं, तत्थ ण सिसुपाल दमघोससुय पचभाइसयसपरिवुड करयल तहेव जाव समोसरह।

चौथा दूत शुक्तिमती नगरी भेजा और उसे आदेश दिया—तुम दमघोष के पुत्र और पाँच सौ भाइयो से परिवृत शिशुपाल राजा को हाथ जोडकर उसी प्रकार कहना, यावत् स्वयवर मे पधारिए।

९९—पचमग दूय हत्थिसीसनयर, तत्थ ण तुम दमदत नाम राय करयल तहेव जाव समोसरह।

पाँचवाँ दूत हस्तीशीर्ष नगर भेजा और कहा—तुम दमदत राजा को हाथ [illegible] प्रकार कहना यावत् स्वयवर मे पधारिए।

१००—छट्ठं दूयं महुरं नर्यार, तत्थ णं तुमं धरं रायं करयल तहेव जाव समोसरह ।

छठा दूत मथुरा नगरी भेजा । उससे कहा—तुम धर नामक राजा को हाथ जोडकर यावत् कहना—स्वयवर मे पधारिये ।

१०१—सत्तम दूयं रायगिहं नगरं, तत्थ णं तुमं सहदेवं जरासिंधुसुयं करयल तहेव जाव समोसरह ।

सातवा दूत राजगृह नगर भेजा । उससे कहा—तुम जरासिन्धु के पुत्र सहदेव राजा को हाथ जोडकर उसी प्रकार कहना यावत् स्वयवर मे पधारिये ।

१०२—अट्ठमं दूयं कोडिण्णं नयरं, तत्थ तं तुमं रुप्पिं भेसगसुयं करयल तहेव जाव समोसरह ।

आठवाँ दूत कौण्डिन्य नगर भेजा । उससे कहा—तुम भीष्मक के पुत्र रुक्मी राजा को हाथ जोडकर उसी प्रकार कहना, यावत् स्वयवर मे पधारो ।

१०३—नवमं दूयं विराडनगरं तत्थ णं तुमं कीयगं भाउसयसमग्गं करयल तहेव जाव समोसरह ।

नौवा दूत विराटनगर भेजा । उससे कहा—तुम सौ भाइयो सहित कीचक राजा को हाथ जोडकर उसी प्रकार कहना, यावत् स्वयवर मे पधारो ।

१०४—दसमं दूयं अवसेसेसु य गामागरनगरेसु अणेगाइं रायसहस्साइं जाव समोसरह ।

दसवाँ दूत शेष ग्राम, आकर, नगर आदि मे भेजा । उससे कहा—तुम वहाँ के अनेक सहस्र राजाओ को उसी प्रकार कहना, यावत स्वयवर मे पधारो ।

१०५—तए णं से दूए तहेव निग्गच्छइ, जेणेव गामागर जाव समोसरह ।

तत्पश्चात् वह दूत उसी प्रकार निकला और जहाँ ग्राम, आकर, नगर आदि थे वहा जाकर सब राजाओ को उसी प्रकार कहा—यावत् स्वयवर मे पधारो ।

१०६—तए णं ताइं अणेगाइं रायसहस्साइं तस्स दूयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा तं दूयं सक्कारेंति, सम्माणेंति, सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेंति ।

तत्पश्चात् अनेक हजार राजाओ ने उस दूत से यह अर्थ-सदेश सुनकर और समझकर हृष्ट-तुष्ट होकर उस दूत का सत्कार-सम्मान करके उसे विदा किया ।

१०७—तए णं ते वासुदेवपामोक्खा बहवे रायसहस्सा पत्तेयं पत्तेयं ण्हाया सन्नद्धबद्धवम्मियकवया हत्थिखंधवरगया हयगयरहपवरजोहकलियाए चाउरंगिणीए सेनाए सद्धिं संपरिवुडा महया भडचडगररहपहगरविंदपरिक्खित्ता सएहिं सएहिं नगरेहिंतो अभिनिग्गच्छंति, अभिनिग्गच्छित्ता जेणेव पंचाले जणवए तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

तत्पश्चात् आमन्त्रित किए हुए वासुदेव आदि बहुसंख्यक हजारों राजाओं में से प्रत्येक-प्रत्येक ने स्नान किया। वे कवच धारण करके तैयार हुए और सजाए हुए श्रेष्ठ हाथी के स्कंध पर आरूढ हुए। फिर घोड़ा, हाथियों, रथों और बड़े-बड़े भटों के समूह के समूह रूप चतुरंगिणी सेना के साथ अपने-अपने नगरों से निकले। निकल कर पंचाल जनपद की ओर गमन करने के लिए उद्यत हुए।

स्वयंवर मंडप का निर्माण

१०८—तए णं से दुवए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! कंपिल्लपुरे नयरे बहिया गंगाए महानदीए अदूरसामंते एगं महं सयंवरमंडवं करेह अणेगखंभसयसंनिविट्ठं, लीलट्ठियसालभंजियागं' जाव[1] पच्चप्पिणंति।

उस समय द्रुपद राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर उनसे कहा—'देवानुप्रियो! तुम जाओ और काम्पिल्यपुर नगर के बाहर गंगा नदी से न अधिक दूर और न अधिक समीप में, एक विशाल स्वयंवर-मंडप बनाओ, जो अनेक सैकड़ों स्तंभों से बना हो और जिसमें लीला करती हुई पुतलियाँ बनी हों। जो प्रसन्नताजनक, सुन्दर, दर्शनीय एवं अतीव रमणीक हो।' उन कौटुम्बिक पुरुषों ने मंडप तैयार करके आज्ञा वापिस सौंपी।

आवास-व्यवस्था

१०९—तए णं से दुवए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! वासुदेवपामोक्खाणं बहूणं रायसहस्साणं आवासे करेह।' ते वि करित्ता पच्चप्पिणंति।

तत्पश्चात् द्रुपद राजा ने फिर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर उनसे कहा—'देवानुप्रियो! शीघ्र ही वासुदेव वगैरह बहुसंख्यक सहस्रों राजाओं के लिए आवास तैयार करो।' उन्होंने आवास तैयार करके आज्ञा वापिस लौटाई।

११०—तए णं दुवए राया वासुदेवपामुक्खाणं बहूणं रायसहस्साणं आगमणं जाणेत्ता पत्तेयं पत्तेयं हत्थिखंधवरगए जाव परिवुडे अग्घं च पज्जं च गहाय सव्विड्ढीए कंपिल्लपुराओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव ते वासुदेवपामोक्खा बहवे रायसहस्सा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ताइं वासुदेवपामुक्खाइं अग्घेण य पज्जेण य सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता तेसिं वासुदेवपामुक्खाणं पत्तेयं पत्तेयं आवासे वियरइ।

तत्पश्चात् द्रुपद राजा वासुदेव प्रभृति बहुत से राजाओं का आगमन जानकर, प्रत्येक राजा का स्वागत करने के लिए हाथी के स्कंध पर आरूढ होकर यावत् सुभटों के परिवार से परिवृत होकर अर्घ्य (पूजा की सामग्री) और पाद्य (पैर धोने के लिए पानी) लेकर, सम्पूर्ण ऋद्धि के साथ काम्पिल्यपुर से बाहर निकला। निकलकर जिधर वासुदेव आदि बहुसंख्यक हजारों राजा थे, उधर गया। वहाँ जाकर उन वासुदेव प्रभृति का अर्घ्य और पाद्य से सत्कार-सम्मान किया। सत्कार-सम्मान करके उन वासुदेव आदि को अलग-अलग आवास प्रदान किए।

---

१ अ. १ सूत्र

१११—तए ण ते वासुदेवपामोक्खा जेणेव सया सया आवासा तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता हत्थिखधेहिंतो पच्चोरुहति, पच्चोरुहित्ता पत्तेय पत्तेय खधावारनिवेस करेंति, करित्ता सए सए आवासे अणुपविसंति, अणुपविसित्ता सएसु सएसु आवासेसु आसणेसु य सयणेसु य सन्निसन्ना य सतुयट्ठा य बहूहि गधव्वेहि य नाडएहि य उवगिज्जमाणा य उवणच्चिज्जमाणा य विहरति ।

तत्पश्चात् वे वासुदेव प्रभृति नृपति अपने-अपने आवासो मे पहुँचे । पहुँचकर हाथियो के स्कध से नीचे उतरे । उतर कर सबने अपने-अपने पडाव डाले और अपने-अपने आवासो मे प्रविष्ट हुए । आवासो मे प्रवेश करके अपने-अपने आवासो मे आसनो पर बैठे और शय्याओ पर सोये । बहुत-से गधर्वों से गाने कराने लगे और नट नाटक करने लगे ।

११२—तए ण से दुवए राया कपिल्लपुर नगर अणुपविसइ, अणुपविसित्ता, विउल असण पाण खाइम साइम उवक्खडावेइ, उवक्खडावित्ता, कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'गच्छह ण तुब्भे देवाणुप्पिया ! विउल असण पाण खाइम साइम सुर च मज्ज च मस च सीधु च पसण्णं च सुबहुपुप्फ-वत्थ-गध-मल्लालकार च वासुदेवपामोक्खाण रायसहस्साण आवासेसु साहरह ।' ते वि साहरति ।

तत्पश्चात् अर्थात् सब आगन्तुक अतिथि राजाओ को यथास्थान ठहरा कर द्रुपद राजा ने काम्पिल्यपुर नगर मे प्रवेश किया । प्रवेश करके विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन तैयार करवाया । फिर कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाकर कहा—'देवानुप्रियो ! तुम जाओ और वह विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम[1], सुरा, मद्य, मास, सीधु और प्रसन्ना तथा प्रचुर पुष्प, वस्त्र, गध, मालाएँ एव अलकार वासुदेव आदि हजारो राजाओ के आवासो मे ल जाओ ।' यह सुनकर वे, सब वस्तुएँ ले गये ।

११३—तए ण वासुदेवपामुक्खा त विपुल असण पाण खाइम साइम जाव पसन्न च आसाएमाणा आसाएमाणा विहरति, जिमियभुत्तुत्तरागया वि य ण समाणा आयता जाव सुहासणवरगया बहूहि गधव्वेहि जाव विहरति ।

तब वासुदेव आदि राजा उस विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम यावत् प्रसन्ना का पुन पुन आस्वादन करते हुए विचरने लगे । भोजन करने के पश्चात् आचमन करके यावत् सुखद आसनो पर आसीन होकर बहुत-से गधर्वों से सगीत कराते हुए विचरने लगे ।

---

१ सुरा, मद्य, सीधु और प्रसन्ना, यह मदिरा की ही जातियाँ हैं । स्वयवर म सभी प्रकार के राजा और उनके सनिक आदि आये थे । द्रुपद राजा ने उन सबका उनकी आवश्यक वस्तुओ से सत्कार किया । इससे यह नही समझना चाहिए कि कृष्णजी स्वय मदिरा आदि का सेवन करते थे । यह वर्णन सामान्य रूप से है । कृष्णजी सभी आगत राजाओं म प्रधान थे, अतएव उनका नामोल्लेख विशेष रूप स हुआ प्रतीत होता है ।

स्वयवर घोषणा

११४—तए ण से दुवए राया पुव्वावरण्हकालसमयसि कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'गच्छह ण तुमे देवाणुप्पिया ! कपिल्लपुरे सघाडग जाव पहेसु वासुदेवपामुक्खाण य रायसहस्साण आवासेसु हत्थिखधवरगया महया महया सद्देणं जाव उग्घोसेमाणा उग्घोसेमाणा एवं वदह—'एव खलु देवाणुप्पिया ! कल्ल पाउप्पभायाए दुवयस्स रण्णो धूयाए, चुलणीए देवीए अत्तयाए, धट्ठज्जुणस्स भगिणीए दोवईए रायवरकण्णाए सयवरे भविस्सइ, त तुब्भे ण देवाणुप्पिया ! दुवय रायाण अणुगिण्हेमाणा ण्हाया जाव विभूसिया हत्थिखधवरगया सकोरटमल्लदामेण छत्तेण धरिज्जमाणेण सेयवरचामराहि वीइज्जमाणा हयगयरहपवरजोहकलियाए चउरगिणीए सेणाए सद्धि सपरिवुडा महया भडचडगरेण जाव परिक्खित्ता जेणेव सयवरमडवे तेणेव उवागच्छह, उवागच्छित्ता पत्तेय पत्तेय नामकेसु आसणेसु निसीयह, निसीइत्ता दोवइ रायवरकण्ण पडिवालेमाणा पाडिवालेमाणा चिट्ठह त्ति घोसण घोसेह, मम एयमाणत्तिय पच्चप्पिणह ।' तए ण कोडु बिया तहेव जाव पच्चप्पिणति ।

तत्पश्चात् द्रुपद राजा ने पूर्वापराह्न काल (सायकाल) के समय कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया । बुलाकर इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो ! तुम जाओ और काम्पिल्यपुर नगर के शृगाटक आदि मार्गों मे तथा वासुदेव आदि हजारो राजाओ के आवासो में, हाथी के स्कध पर आरूढ होकर बुलंद आवाज से यावत् बार-बार उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार कहो—'देवानुप्रियो ! कल प्रभात काल मे द्रुपद राजा की पुत्री, चुलनी देवी की आत्मजा और धृष्टद्युम्न की भगिनी द्रौपदी राजवर-कन्या का स्वयवर होगा । अतएव हे देवानुप्रियो । आप सब द्रुपद राजा पर अनुग्रह करते हुए, स्नान करके यावत् विभूपित होकर, हाथी के स्कध पर आरूढ होकर, कोरट वृक्ष की पुष्पमाला सहित छत्र को धारण करके, उत्तम श्वेत चामरो से विजाते हुए, घोडो, हाथियो, रथो तथा बडे-बडे सुभटों के समूह से युक्त चतुरगिणी सेना से परिवृत होकर जहाँ स्वयवर मडप है, वहाँ पहुँचे । वहाँ पहुँचकर अलग-अलग अपने नामांकित आसनो पर बैठें और राजवरकन्या द्रौपदी की प्रतीक्षा करें ।' इस प्रकार की घोपणा करो और मेरी आज्ञा वापिस करो ।' तब वे कौटुम्बिक पुरुष इस प्रकार घोषणा करके यावत् राजा द्रुपद की आज्ञा वापिस करते हैं ।

११५—तए ण से दुवए राया कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'गच्छह ण तुब्भे देवाणुप्पिया ! सयवरमडव आसियसमज्जियोवलित्त सुगधवरगधिय पचवण्णपुप्फपुंजोवयार कलिय कालागरु-पवर-कु दुरुक्क-तुरुक्क जाव[1] गधवट्टिभूय मचाइमचकलिय करेह । करित्ता वासुदेवपामोक्खाण बहूणं रायसहस्साण पत्तेय पत्तेय नामकियाइ आसणाइ अत्थुय सेयवत्थ पच्चत्थुयाइ रएह, रयइत्ता एयमाणत्तिय पच्चप्पिणह ।' ते वि जाव पच्चप्पिणति ।

तत्पश्चात् द्रुपद राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों का पुन बुलाया । बुलाकर कहा—'देवानुप्रियो ! तुम स्वयवर-मडप में जाओ और उसमे जल का छिडकाव करो, उसे झाडो, लीपो और श्रेष्ठ सुगधित द्रव्यो से सुगधित करो । पाँच वर्ण के फूलो के समूह से व्याप्त करो । कृष्ण अगर, श्रेष्ठ कु दुरुक्क (चीडा) और तुरुष्क (लोवान) आदि की धूप से गध की वर्त्ती (वाट) जैसा कर दो । उसे

१—अ १

मचो (मचानो) और उनके ऊपर मचो (मचानो) से युक्त करो। फिर वासुदेव आदि हजारो राजाओ के नामो से अकित अलग अलग आसन श्वेत वस्त्र से आच्छादित करके तैयार करो। यह सब करके मेरी आज्ञा वापिस लौटाओ।' वे कौटुम्बिक पुरुष भी सब काय करके यावत् आज्ञा लौटाते हैं।

स्वयवर

११६—तए ण वासुदेवपामोक्खा बहवे रायसहस्सा कल्ल पाउप्पभायाए ण्हाया जाव विभूसिया हत्थिखधवरगया सकोरट सेयवरचामरांहि हयगय जाव[1] परिवुडा सव्विड्ढीए जाव रवेण जेणेव सयवरे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता अणुपविसति, अणुपविसित्ता पत्तेय पत्तेय नामकिएसु आसणेसु निसीयति, दोवइ रायवरकण्ण पडिवालेमाणा चिट्ठति।

तत्पश्चात् वासुदेव प्रभृति अनेक हजार राजा कल (दूसरे दिन) प्रभात होने पर स्नान करके यावत् विभूषित हुए। श्रेष्ठ हाथी के स्कध पर आरूढ हुए। उन्होने कोरट वृक्ष के फूलो की माला वाले छत्र को धारण किया। उन पर चामर ढोरे जाने लगे। अश्व, हाथी, भटो आदि से परिवृत होकर सम्पूर्ण ऋद्धि के साथ यावत् वाद्यध्वनि के साथ जिधर स्वयवरमडप था, उधर पहुँचे। मडप मे प्रविष्ट हुए। प्रविष्ट होकर पृथक्-पृथक् अपने-अपने नामो से अकित आसनो पर बैठ गये और राजवरकन्या द्रौपदी की प्रतीक्षा करने लगे।

११७—तए ण से दुवए राया कल्ल ण्हाए जाव विभूसिए हत्थिखधवरगए सकोरटमल्लदामेण छत्तेण धारिज्जमाणेण सेयचामरांहि वीइज्जमाणे हय गय रह-पवरजोहकलियाए चाउरगिणीए सेणाए सद्धि सपरिवुडे महया भडचडकर-रहपरिकरविदपरिक्खित्ते कपिल्लपुर मज्झमज्झेण निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव सयवरमडवे, जेणेव वासुदेवपामोक्खा बहवे रायसहस्सा, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तेसि वासुदेवपामुक्खाण करयल जाव वद्धावेत्ता कण्णस्स वासुदेवस्स सेयवरचामर गहाय उवत्तीयमाणे चिट्ठइ।

तत्पश्चात् द्रुपद राजा प्रभात मे स्नान करके यावत् विभूषित होकर, हाथी के स्कध पर सवार होकर, कोरट वृक्ष के फूलो की माला वाले छत्र को धारण करके, अश्वो, गजो, रथो और उत्तम योद्धाओ वाली चतुरगिणी सेना के साथ तथा अन्य भटो एव रथो से परिवृत होकर काम्पिल्यपुर के मध्य से बाहर निकला। निकल कर जहाँ स्वयवरमडप था और जहा वासुदेव आदि बहुत-से हजारो राजा थे, वहाँ आया। आकर उन वासुदेव वगैरह का हाथ जोडकर अभिनन्दन किया और कृष्ण वासुदेव पर श्रेष्ठ श्वेत चामर ढोरने लगा।

११८—तए ण सा दोवई रायवरकन्ना कल्ल पाउप्पभायाए जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मज्जणघर अणुपविसइ, अणुपविसित्ता ण्हाया जाव सुद्धप्पावेसाइ मगल्लाइ वत्थाइ पवरपरिहिया जिणपडिमाण अच्चण करेइ, करित्ता जेणेव अतेउरे तेणेव उवागच्छइ।

उधर वह राजवरकन्या द्रौपदी प्रभात काल होने पर स्नानगृह की ओर गई। वहाँ जाकर

---

१ अ १६ सूत्र ११४

स्नानगृह में प्रविष्ट हुई। प्रविष्ट होकर उसने स्नान किया यावत् शुद्ध और सभा में प्रवेश करने योग्य मांगलिक उत्तम वस्त्र धारण किये। जिन प्रतिमाओं का पूजन किया। पूजन करके अन्तःपुर में चली गई।*

११९—तए णं तं दोवइं रायवरकन्नं अंतेउरियाओ सव्वालंकारविभूसियं करेंति, किं ते? वरपायपत्तणेउरा जाव[1] चेडिया-चक्कवाल-मयहरग-विंदपरिक्खित्ता अंतेउराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता किड्डावियाए लेहियाए सद्धिं चाउग्घंटं आसरहं दुरुहइ।

तत्पश्चात् अन्तःपुर की स्त्रियों ने राजवरकन्या द्रौपदी को सब अलंकारों से विभूषित किया। किस प्रकार? पैरों में श्रेष्ठ नूपुर पहनाए, (इसी प्रकार सब अंगों में भिन्न-भिन्न आभूषण पहनाए) यावत् वह दासियों के समूह से परिवृत होकर अन्तःपुर से बाहर निकली। बाहर निकलकर जहाँ बाह्य उपस्थानशाला (सभा) थी और जहाँ चार घंटाओं वाला अश्वरथ था, वहाँ आई। आकर क्रीडा

---

*इस पाठ के विषय में वाचनाभेद पाया जाता है। किन्हीं-किन्हीं प्रतियों में उपलब्ध होने वाला पाठ ऊपर दिया गया है। यह पाठ शीलांकाचार्यकृत टीका में भी वाचनान्तर के रूप में ग्रहण किया गया है। किन्तु कुछ अर्वाचीन प्रतियों में जो पाठान्तर पाया जाता है, वह इस प्रकार है —

तए णं सा दोवई रायवरकन्ना जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउयमंगलपायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवरपरिहिया मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव जिणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जिणघरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जिणपडिमाणं आलोए पणामं करेइ, करित्ता लोमहत्थयं परामुसइ, एवं जहा सूरियाभो जिणपडिमाओ अच्चेइ, अच्चित्ता तहेव भाणियव्वं जाव धूवं डहइ, डहित्ता वामं जाणुं अंचेइ, दाहिणं धरणियलंसि निवेसेइ निवेसित्ता तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणियलंसि नमेइ, नमइत्ता ईसिं पच्चुण्णमइ, करयल जाव कट्टु एवं वयासी—'नमोऽत्थु णं अरिहंताणं भगवंताणं जाव संपत्ताणं' वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जिणघराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव अंतेउरे तेणेव उवागच्छइ।

अर्थात् तत्पश्चात् द्रौपदी राजवरकन्या स्नानगृह में गई। वहाँ जाकर उसने स्नान किया, बलिकर्म किया, मषी तिलक आदि कौतुक, दूर्वा आदि मंगल और अशुभ की निवृत्ति के अर्थ प्रायश्चित्त किया। शुद्ध और शोभा देने वाले मांगलिक वस्त्र धारण किये। फिर वह स्नानगृह से बाहर निकली। निकल कर जिनगृह—जिनभवन में गई और उसके भीतर प्रविष्ट हुई। वहाँ जिनप्रतिमाओं पर दृष्टि पड़ते ही उन्हें प्रणाम किया। प्रणाम करके मयूर-पिच्छी ग्रहण की। फिर सूर्याभ देव की भांति जिनप्रतिमाओं की पूजा की। पूजा करके उसी प्रकार (सूर्याभ देव की तरह) यावत् धूप जलाई। धूप जलाकर बायें घुटने को ऊँचा रखा और दाहिने घुटने को पृथ्वीतल पर रखकर मस्तक नमाया। नमाने के बाद मस्तक थोड़ा ऊपर उठाया। फिर दोनों हाथ जोड़कर यावत् मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार कहा—'अरिहंत भगवन्तों को यावत् सिद्धगति को प्राप्त जिनवरों को नमस्कार हो।' ऐसा कह कर वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके जिनगृह से बाहर निकली। बाहर निकल कर जहाँ अन्तःपुर था वहाँ आ गई।

[1] अ० १ सू०

कराने वाली धाय और लेखिका (लिखने वाली) दासी के साथ उस चार घटा वाले रथ पर आरूढ हुई ।

१२०—तए ण धट्टज्जुण्णे कुमारे दोवईए कण्णाए सारत्थ करेइ । तए ण सा दोवई रायवरकण्णा कपिल्लपुर नयर मज्झमज्झेण जेणेव सयवरमडवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रह ठवेइ, ठवित्ता रहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता किड्डावियाए लेहियाए य सद्धि सयवरमडव अणुपविसइ, करयलपरिग्गहिय दसनह सिरसावत्त मत्थए अजलि कट्टु तेसि वासुदेवपामुक्खाण बहूण रायवर-सहस्साण पणाम करेइ ।

उस समय धृष्टद्युम्न-कुमार ने द्रौपदी का सारथ्य किया, अर्थात् सारथी का कार्य किया । तत्पश्चात् राजवरकन्या द्रौपदी कापिल्यपुर नगर के मध्य मे होकर जिधर स्वयवर-मडप था, उधर पहुँची । वहाँ पहुँच कर रथ रोका गया और वह रथ से नीचे उतरी । नीचे उतर कर क्रीडा कराने वाली धाय और लेखिका दासी के साथ उसने स्वयवरमण्डप मे प्रवेश किया । प्रवेश करके दोनो हाथ जोडकर मस्तक पर अजलि करके वासुदेव प्रभृति बहुसख्यक हजारो राजाओ को प्रणाम किया ।

१२१—तए ण सा दोवई रायवरकन्ना एग मह सिरिदामगड, किं ते ? पाडल मल्लिय-चपय जाव सत्तच्छयाईहिं गधद्धणि मुयत परमसुहफास दरिसणिज्ज गिण्हइ ।

तत्पश्चात् राजवरकन्या द्रौपदी ने एक बडा श्रीदामकाण्ड (सुशोभित मालाओ का समूह) ग्रहण किया । वह कैसा था ? पाटल, मल्लिका, चम्पक आदि यावत् सप्तपर्ण आदि के फूलो से गूँथा हुआ था । अत्यन्त गध को फैला रहा था । अत्यन्त सुखद स्पश वाला था और दर्शनीय था ।

१२२—तए ण सा किड्डाविया सुरूवा जाव [साभावियघस चोद्दहजणस्स उस्सुयकर विचित्तमणि-रयणवद्धच्छरुह] वामहत्थेण चिल्लग दप्पण गहेऊण सललिय दप्पणसकेतबिबसदसिए य से दाहिणेण हत्थेण दरिसिए पवररायसीहे । फुड-विसय विसुद्ध-रिभिय-गभीर महुर भणिया सा तेसि सव्वेसि पत्थिवाण अम्मापिऊण वस सत्त-सामत्थ-गोत्त विक्कति-कति-बहुविहआगम-माहप्प-रूव-जोव्वणगुण-लावण्ण-कुल-सील-जाणिया कित्तण करेइ ।

तत्पश्चात् उस क्रीडा कराने वाली यावत् सुन्दर रूप वाली धाय ने बाएँ हाथ मे चिलचिलाता हुआ दर्पण लिया । [वह दर्पण स्वाभाविक घषणा से युक्त एव तरुण जनो मे उत्सुकता उत्पन्न करने वाला था । उसकी मूठ विचित्र मणि-रत्नो से जटित थी ।] उस दपण मे जिस-जिस राजा का प्रतिबिम्ब पडता था, उस प्रतिबिम्ब द्वारा दिखाई देने वाले श्रेष्ठ सिंह के समान राजा को अपने दाहिने हाथ से द्रौपदी को दिखलाती थी । वह धाय स्फुट (प्रकट अथ वाले) विशद (निर्मल अक्षरो वाले) विशुद्ध (शब्द एव अथ के दोषो से रहित) रिभित (स्वर की घोलना सहित) मेघ की गजना के समान गभीर और मधुर (कानो को सुखदायी) वचन बोलती हुई, उन सब राजाओ के माता पिता के वश, सत्त्व (दृढता एव धीरता) सामथ्य (शारीरिक बल) गोत्र पराक्रम कान्ति नाना प्रकार के ज्ञान माहात्म्य रूप यौवन गुण लावण्य कुल और शील को जानने वाली होने के कारण उनका बखान करने लगी ।

१२३—पढम जाव वण्हिपुंगवाण दसदसारवरवीरपुरिसाण तेलोक्कबलवगाण सत्तु-सय सहस्स-माणावमद्दगाण भवसिद्धिय-पवरपुंडरीयाण चिल्लगाण बल-वीरिय-रूव-जोव्वण गुण-लावण्ण कित्तिया कित्तण करेइ, ततो पुणो उग्गसेणमाईण जायवाण, भणइ य—'सोहग्गरूवकलिए वरेहि वरपुरिसगंधहत्थीण जो हु ते होइ हियय-दइयो।'

उनमें से सर्वप्रथम वृष्णियों (यादवों) में प्रधान समुद्रविजय आदि दस दसारों अथवा दशार के श्रेष्ठ वीर पुरुषों के, जो तीनों लोकों में बलवान् थे, लाखों शत्रुओं का मान मर्दन करने वाले थे, भव्य जीवनों में श्रेष्ठ श्वेत कमल के समान प्रधान थे, तेज से देदीप्यमान थे, बल, वीय, रूप, यौवन, गुण और लावण्य का कीत्तन करने वाली उस धाय ने कीर्तन किया और फिर उग्रसेन आदि यादवों का वणन किया, तदनन्तर कहा—'ये यादव सौभाग्य और रूप से सुशोभित हैं और श्रेष्ठ पुरुषों में गंधहस्ती के समान हैं। इनमें से कोई तेरे हृदय को वल्लभ-प्रिय हो तो उसे वरण कर।'

पाण्डवों का वरण

१२४—तए णं सा दोवई रायवरकन्नगा बहूणं रायवरसहस्साणं मज्झंमज्झेणं समतिच्छमाणी समतिच्छमाणी पुव्वकयनियाणेणं चोइज्जमाणी चोइज्जमाणी जेणेव पंच पंडवा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ते पंच पंडवे तेणं दसद्धवण्णेणं कुसुमदामेणं आवेढियपरिवेढिय करेइ, करित्ता एवं वयासी—'एए णं मए पंच पंडवा वरिया।'

तत्पश्चात् राजवरकन्या द्रौपदी अनेक सहस्र श्रेष्ठ राजाओं के मध्य में होकर, उनका अतिक्रमण करती-करती, पूर्वकृत निदान से प्रेरित होती होती, जहाँ पाँच पाण्डव थे, वहाँ आई। वहाँ आकर उसने उन पाँचों पाण्डवों को, पँचरंगे कुसुमदाम-फूलों की माला-श्रीदामकाण्ड-से चारों तरफ से वेष्टित कर दिया। वेष्टित करके कहा—'मैंने इन पाँचों पाण्डवों का वरण किया।'

१२५—तए णं तेसिं वासुदेवपामोक्खाणं बहूणि रायसहस्साणि महया महया सद्देणं उग्घोसेमाणा उग्घोसेमाणा एवं वयंति—'सुवरियं खलु भो! दोवईए रायवरकन्नाए' त्ति कट्टु सयंवरमंडयाओ पडिणिक्खमंति, पडिणिक्खमित्ता जेणेव सया सया आवासा तेणेव उवागच्छंति।

तत्पश्चात् उन वासुदेव प्रभृति अनेक सहस्र राजाओं ने ऊँचे ऊँचे शब्दों से बार-बार उद्घोषणा करते हुए कहा—'अहो! राजवरकन्या द्रौपदी ने अच्छा वरण किया!' इस प्रकार कह कर वे स्वयंवरमण्डप से बाहर निकले। निकल कर अपने-अपने आवासों में चले गये।

१२६—तए णं धट्ठज्जुण्णे कुमारे पंच पंडवे दोवइं रायवरकन्नं चाउग्घंटं आसरहं दुरूहइ, दुरूहित्ता कंपिल्लपुरं मज्झंमज्झेणं जाव सयं भवणं अणुपविसइ।

तत्पश्चात् धृष्टद्युम्न-कुमार ने पाँचों पाण्डवों को और राजवरकन्या द्रौपदी को चार घंटाओं वाले अश्वरथ पर आरूढ किया और काम्पिल्यपुर में होकर यावत् अपने भवन में प्रवेश किया।

विवाह-विधि

१२७—तए ण दुवए राया पच पडवे दोवइ रायवरकण्ण पट्टय दुरुहेइ, दुरुहित्ता सेयापीएहिं कलसेहिं मज्जावेइ, मज्जावित्ता अग्गिहोम करावेइ, पचण्ह पडवाण दोवईए य पाणिग्गहण करावेइ।

तत्पश्चात् द्रुपद्र राजा ने पाँचो पाण्डवो को तथा राजवरकन्या द्रौपदी को पट्ट पर आसीन किया। आसीन करके श्वेत और पीत अर्थात् चादी और सोने के कलशो से स्नान कराया। स्नान करवा कर अग्निहोम करवाया। फिर पाचो पाण्डवो का द्रौपदी के साथ पणिग्रहण कराया।

१२८—तए ण से दुवए राया दोवईए रायवरकण्णयाए इम एयारूव पीइदाण दलयइ, तजहा—अट्ठ हिरण्णकोडीओ जाव[1] अट्ठ पेसणकारीओ दासचेडीओ, अण्ण च विपुल धणकणग जाव [रयण मणि मोत्तिय सख सिल प्पवाल-रत्तरयण-सन्त-सार-सावएज्ज अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवसाओ पकाम दाउ, पकाम भोत्तु, पकाम परिभाएउ] दलयइ।

तए ण से दुवए राया ताइ वासुदेवपामोक्खाइ विपुलेण असण-पाण-खाइम-साइमेण पुप्फवत्थ गध जाव [मल्लालकारेण सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता] पडिविसज्जइ।

तत्पश्चात् द्रुपद राजा ने राजवरकन्या द्रौपदी को इस प्रकार का प्रीतिदान (दहेज) दिया—आठ करोड हिरण्य आदि यावत् आठ प्रेपणकारिणी (इधर-उधर जाने-आने का काम करने वाली) दास-चेटिया। इनके अतिरिक्त अन्य भी वहुत-सा धन-कनक यावत् [रजत, मणि, मोती, शख, शिला, प्रवाल, लाल, उत्तम सारभूत द्रव्य जो सात पीढी तक प्रचुर मात्रा मे देने, भोगने और विभाजित करने के लिए पर्याप्त था] प्रदान किया।

तत्पश्चात् द्रुपद राजा ने उन वासुदेव प्रभृति राजाओ को विपुल अशन, पान, खादिम तथा स्वादिम तथा पुष्प, वस्त्र, गध, माला और अलकार आदि से सत्कार करके विदा किया।

पाण्डुराजा द्वारा निमत्रण

१२९—तए ण से पडू राया तेसिं वासुदेवपामोक्खाण बहूण रायसहस्साण करयल जाव एव वयासी—एव खलु देवाणुप्पिया! हत्थिणाउरे नयरे पचण्ह पडवाण दोवइए य देवीए कल्लाणकरे भविस्सइ, त तुब्भे ण देवाणुप्पिया! मम अणुगिण्हिमाणा अकालपरिहीण समोसरह।

तत्पश्चात पाण्डु राजा ने उन वासुदेव प्रभृति अनेक सहस्र राजाओ से हाथ जोडकर यावत् इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! हस्तिनापुर नगर मे पाच पाण्डवो और द्रौपदी का कल्याणकरण महोत्सव (मागलिक क्रिया) होगा। अतएव देवानुप्रियो! तुम सब मुझ पर अनुग्रह करके यथासमय विलब किये विना पधारना।

१३०—तए ण वासुदेवपामोक्खा पत्तेय पत्तेय जाव जेणेव हत्थिणाउरे नयरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

---

१ अ १ सूत्र १०५

तत्पश्चात् वे वासुदेव आदि नृपतिगण अलग-अलग यावत् हस्तिनापुर की ओर गमन करने के लिए उद्यत हुए।

१३१—तए णं पंडुराया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! हत्थिणाउरे पंचण्हं पंडवाणं पंच पासायवडिंसए कारेह, अब्भुग्गयमूसिय वण्णओ जाव' पडिरूवे।

तत्पश्चात् पाण्डु राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर इस प्रकार आदेश दिया—'देवानुप्रियो! तुम जाओ और हस्तिनापुर में पाँच पाण्डवों के लिए पाँच उत्तम प्रासाद बनवाओ, वे प्रासाद खूब ऊँचे हों और सात भूमि (मंजिल) के हों इत्यादि वर्णन यहाँ पूर्ववत् कहना चाहिए, यावत् वे अत्यन्त मनोहर हों।

१३२—तए णं ते कोडुंबियपुरिसा पडिसुणेंति जाव करावेंति। तए णं से पंडुए पंचहिं पंडवेहिं दोवईए देवीए सद्धिं सहयगयसपरिवुडे कंपिल्लपुराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव हत्थिणाउरे तेणेव उवागए।

तब कौटुम्बिक पुरुषों ने यह आदेश अंगीकार किया, यावत् उसी प्रकार के प्रासाद बनवाये। तब पाण्डु राजा पाँचों पाण्डवों और द्रौपदी देवी के साथ अश्वसेना, गजसेना आदि से परिवृत होकर कांपिल्यपुर नगर से निकल कर जहाँ हस्तिनापुर था, वहाँ आ पहुँचा।

१३३—तए णं पंडुराया तेसिं वासुदेवपामोक्खाणं आगमणं जाणित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! हत्थिणाउरस्स नयरस्स बहिया वासुदेव-पामोक्खाणं बहूणं रायसहस्साणं आवासे कारेह अणेगखंभसयसण्णिविट्ठे' तहेव जाव पच्चप्पिणंति।

तत्पश्चात् पाण्डु राजा ने उन वासुदेव आदि राजाओं का आगमन जान कर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और उनसे कहा 'देवानुप्रियो! तुम जाओ और हस्तिनापुर नगर के बाहर वासुदेव आदि बहुत हजार राजाओं के लिए आवास तैयार कराओ जो अनेक सैकड़ों स्तंभों आदि से युक्त हों इत्यादि पूर्ववत् कह लेना चाहिए।' कौटुम्बिक पुरुष उसी प्रकार आज्ञा का पालन करके यावत् आज्ञा वापिस करते हैं।

१३४—तए णं ते वासुदेवपामोक्खा बहवे रायसहस्सा जेणेव हत्थिणाउरे नयरे तेणेव उवागच्छंति।

तए णं से पंडुराया तेसिं वासुदेवपामोक्खाणं आगमणं जाणित्ता हट्ठतुट्ठे ण्हाए कयबलिकम्मे जहा दुपए जाव जहारिहं आवासे दलयइ।

तए णं ते वासुदेवपामुक्खा बहवे रायसहस्सा जेणेव सयाइं सयाइं आवासाइं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तहेव जाव विहरंति।

तत्पश्चात् वे वासुदेव वगैरह हजारों राजा ...

अ. १ सूत्र १०३

तब पाण्डु राजा उन वासुदेव आदि राजाओ का आगमन जानकर हर्षित और सतुष्ट हुआ। उसने स्नान किया, बलिकम किया और द्रुपद राजा के समान उनके सामने जाकर सत्कार किया, यावत् उन्हे यथायोग्य आवास प्रदान किए।

तब वे वासुदेव आदि हजारो राजा जहाँ अपने-अपने आवास थे, वहाँ गये और उसी प्रकार (पहले कहे अनुसार सगीत-नाटक आदि से मनोविनोद करते हुए) यावत् विचरने लगे।

१३५—तए ण से पडुराया हत्थिणाउर नयर अणुपविसइ, अणुपविसित्ता कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'तुब्भे ण देवाणुप्पिया ! विउल असण पाण खाइम साइम' तहेव जाव उवणेंति।

तए ण वासुदेवपामोक्खा बहवे राया ण्हाया कयबलिकम्मा त विपुल असण पाण खाइम साइम तहेव जाव विहरति।

तत्पश्चात् पाण्डु राजा ने हस्तिनापुर नगर मे प्रवेश किया। प्रवेश करके कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और कहा—'हे देवानुप्रियो ! तुम विपुल अशन पान खादिम और स्वादिम तैयार कराओ।' उन कौटुम्बिक पुरुषो ने उसी प्रकार किया यावत् वे भोजन तैयार करवा कर ले गये। तब उन वासुदेव आदि बहुत से राजाओ ने स्नान एव बलिकाय करके उस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम का आहार किया और उसी प्रकार (पहले कहे अनुसार) विचरने लगे।

हस्तिनापुर मे कल्याणकरण

१३६—तए ण पडुराया पच पडवे दोवइ च देविं पट्टय दुरूहेइ, दुरूहित्ता सेयापीएहिं कलसेहिं ण्हावेंति, ण्हावित्ता कल्लाणकर करेइ, करित्ता ते वासुदेवपामोक्खे बहवे रायसहस्से विपुलेण असणपाणखाइमसाइमेण पुप्फवत्थेण सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता जाव पडिविसज्जेइ। तए ण ते वासुदेवपामोक्खा जाव [बहवे रायसहस्सा पडुएण रण्णा विसज्जिया समाणा जेणेव साइ साइ रज्जाइ जेणेव साइ साइ नयराइ तेणेव] पडिगया।

तत्पश्चात् पाण्डु राजा ने पाच पाण्डवो को तथा द्रौपदी को पाट पर बिठलाया। बिठला कर श्वेत और पीत कलशो से उनका अभिषेक किया—उन्हे नहलाया। फिर कल्याणकर उत्सव किया। उत्सव करके उन वासुदेव आदि बहुत हजार राजाओ का विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम से तथा पुष्पो और वस्त्रो से सत्कार किया, सम्मान किया। सत्कार-सम्मान करके यावत् उन्हें विदा किया। तब वे वासुदेव वगैरह बहुत से राजा यावत् अपने-अपने राज्यो एव नगरो को लौट गए।

१३७—तए ण ते पच पडवा दोवईए देवीए सद्धि अतो[1] अतेउरपरियालसद्धि कल्लाकल्लि वारवारेण ओरालाइ भोगभोगाइ जाव [भु जमाणा] विहरति।

तत्पश्चात् पाँच पाण्डव द्रौपदी देवी के साथ अन्त पुर के परिवार सहित एक एक दिन बारी-बारी के अनुसार उदार कामभोग भोगते हुए यावत् रहने लगे।

---

१ अ १ सूत्र १०७

तत्पश्चात् वे वासुदेव आदि नृपतिगण अलग-अलग यावत् हस्तिनापुर की ओर गमन करने के लिए उद्यत हुए ।

१३१—तए ण पडुराया कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'गच्छह ण तुब्भे देवाणुप्पिया ! हत्थिणाउरे पचण्ह पडवाण पच पासायवडिसए कारेह, अब्भुग्गयमूसिय वण्णओ जाव' पडिरूवे ।

तत्पश्चात् पाण्डु राजा ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाकर इस प्रकार आदेश दिया—'देवानुप्रियो ! तुम जाओ और हस्तिनापुर मे पाच पाण्डवो के लिए पाँच उत्तम प्रासाद बनवाओ, वे प्रासाद खूब ऊँचे हो और सात भूमि (मजिल) के हो इत्यादि वणन यहा पूर्ववत् कहना चाहिए, यावत् वे अत्यन्त मनोहर हो ।

१३२—तए ण ते कोडु बियपुरिसा पडिसुणेंति जाव करावेंति । तए ण से पडुए पचहिं पडवेहिं दोवईए देवीए सद्धि सहगयसपरिवुडे कपिल्लपुराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव हत्थिणाउरे तेणेव उवागए ।

तब कौटुम्बिक पुरुषो ने यह आदेश अगीकार किया, यावत् उसी प्रकार के प्रासाद बनवाये । तब पाण्डु राजा पाँचो पाण्डवा और द्रौपदी देवी के साथ अश्वसेना, गजसेना आदि से परिवृत होकर काम्पिल्यपुर नगर से निकल कर जहाँ हस्तिनापुर था, वहाँ आ पहुँचा ।

१३३—तए ण पडुराया तेसिं वासुदेवपामोक्खाण आगमण जाणित्ता कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'गच्छह ण तुब्भे देवाणुप्पिया ! हत्थिणाउरस्स नयरस्स बहिया वासुदेव-पामोक्खाण बहूण रायसहस्साण आवासे कारेह अणेगखभसयसण्णिविट्ठे' तहेव जाव पच्चप्पिणति ।

तत्पश्चात् पाण्डु राजा ने उन वासुदेव आदि राजाओ का आगमन जान कर कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और उनसे कहा 'देवानुप्रियो ! तुम जाओ और हस्तिनापुर नगर के बाहर वासुदेव आदि बहुत हजार राजाओ के लिए आवास तैयार कराओ जो अनेक सकडो स्तभा आदि से युक्त हो इत्यादि पूववत् कह लेना चाहिए ।' कौटुम्बिक पुरुष उसी प्रकार आज्ञा का पालन करके यावत् आज्ञा वापिस करते हैं ।

१३४—तए ण ते वासुदेवपामोक्खा बहवे रायसहस्सा जेणेव हत्थिणाउरे नयरे तेणेव उवागच्छति ।

तए ण से पडुराया तेसिं वासुदेवपामोक्खाण आगमण जाणित्ता हट्ठतुट्ठे ण्हाए कयबलिकम्मे जहा दुपए जाव जहारिह आवासे दलयइ ।

तए ण ते वासुदेवपामुक्खा बहवे रायसहस्सा जेणेव सयाइ सयाइ आवासाइ तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता तहेव जाव विहरति ।

तत्पश्चात् ये वासुदेव वगैरह हजारों राजा हस्तिनापुर नगर मे आये ।

१ अ १ सूत्र १०३

तब पाण्डु राजा उन वासुदेव आदि राजाओ का आगमन जानकर हर्षित और सतुष्ट हुआ। उसने स्नान किया, बलिकम किया और द्रुपद राजा के समान उनके सामने जाकर सत्कार किया, यावत् उन्हे यथायोग्य आवास प्रदान किए।

तब वे वासुदेव आदि हजारो राजा जहाँ अपने-अपने आवास थे, वहाँ गये और उसी प्रकार (पहले कहे अनुसार सगीत-नाटक आदि से मनोविनोद करते हुए) यावत् विचरने लगे।

१३५—तए ण से पडुराया हत्थिणाउर नयर अणुपविसइ, अणुपविसित्ता कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'तुब्भे ण देवाणुप्पिया ! विउल असण पाण खाइम साइम' तहेव जाव उवणेंति।

तए ण वासुदेवपामोक्खा बहवे राया ण्हाया कयबलिकम्मा त विपुल असण पाण खाइम साइम तहेव जाव विहरति।

तत्पश्चात् पाण्डु राजा ने हस्तिनापुर नगर मे प्रवेश किया। प्रवेश करके कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और कहा—'हे देवानुप्रियो ! तुम विपुल अशन पान खादिम और स्वादिम तैयार कराओ।' उन कौटुम्बिक पुरुषो ने उसी प्रकार किया यावत् वे भोजन तैयार करवा कर ले गये। तब उन वासुदेव आदि बहुत से राजाओ ने स्नान एव बलिकाय करके उस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम का आहार किया और उसी प्रकार (पहले कहे अनुसार) विचरने लगे।

हस्तिनापुर मे कल्याणकरण

१३६—तए ण पडुराया पच पडवे दोवइ च देविं पट्टय दुरुहेइ, दुरुहित्ता सेयापीएहिं कलसेहिं ण्हावेंति, ण्हावित्ता कल्लाणकर करेइ, करित्ता ते वासुदेवपामोक्खे बहवे रायसहस्से विपुलेण असणपाणखाइमसाइमेण पुप्फवत्थेण सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता जाव पडिवि सज्जेइ। तए ण ते वासुदेवपामोक्खा जाव [बहवे रायसहस्सा पडुएण रण्णा विसज्जिया समाणा जेणेव साइ साइ रज्जाइ जेणेव साइ साइ नयराइ तेणेव] पडिगया।

तत्पश्चात् पाण्डु राजा ने पाच पाण्डवो को तथा द्रौपदी को पाट पर बिठलाया। बिठला कर श्वेत और पीत कलशो से उनका अभिषेक किया—उन्हे नहलाया। फिर कल्याणकर उत्सव किया। उत्सव करके उन वासुदेव आदि बहुत हजार राजाओ का विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम से तथा पुष्पो और वस्त्रो से सत्कार किया, सम्मान किया। सत्कार-सम्मान करके यावत् उन्हें विदा किया। तब वे वासुदेव वगैरह बहुत से राजा यावत अपने-अपने राज्यो एव नगरो को लौट गए।

१३७—तए ण ते पच पडवा दोवईए देवीए सद्धि अतो[1] अतेउरपरियालसद्धि कल्लाकल्लि वारवारेण ओरालाइ भोगभोगाइ जाव [भु जमाणा] विहरति।

तत्पश्चात् पाच पाण्डव द्रौपदी देवी के साथ अत पुर के परिवार सहित एक एक दिन वारी-वारी के अनुसार उदार कामभोग भोगते हुए यावत् रहने लगे।

---

१ अ १ सूत्र १०७

१३८—तए ण से पडुराया अन्नया कयाई पचहिं पडवेहिं कोतीए देवीए दोवईए देवीए य सद्धि अतो अतेउरपरियाल सद्धि सपरिवुडे सीहासणवरगए यावि होत्था ।

पाण्डु राजा एक बार किसी समय पाँच पाण्डवो, कुन्ती देवी और द्रौपदी देवी के साथ तथा अन्त पुर के अन्दर के परिवार के साथ परिवृत होकर श्रेष्ठ सिंहासन पर आसीन थे ।

नारद का आगमन

१३९—इम च ण कच्छुल्लणारए दसणेण अइभद्दए विणीए अतो अतो य कलुसहियए मज्झत्थोवत्थिए य अल्लीण-सोम पिय दसणे सुरूवे अमइलसगलपरिहिए कालमियचम्म उत्तरासग रइयवत्थे दडकमडलुहत्थे जडामउडदित्तसिरए जन्नोवइय-गणेत्तिय-मु जमेहल वागलधरे हत्थकय कच्छभीए पियगधव्वे धरणिगोयरप्पहाणे सवरणावरणिओवयणउप्पयणि लेसणीसु य सकामणि अभिओगि पण्णत्ति-गमणी-थभीसु य बहुसु विज्जाहरीसु विज्जासु विस्सुयजसे इट्ठ रामस्स य केसवस्स य पज्जुन्न-पईव सव-अनिरुद्ध-निसढ-उम्मुय-सारण-गय-सुमुह-दुम्मुहाईण जायवाण अद्धुट्ठाण कुमारकोडीण हिययदइए सथवए कलह-जुद्ध-कोलाहलप्पिए भडणाभिलासी बहुसु य समरेसु य सपराएसु य दसणरए समतओ कलह सदक्खिण अणुगवेसमाणे असमाहिकरे दसारवरवीरपुरिसतिलोक्कबलवगाण आमतेऊण त भगवति पक्कमणि गगण-गमण दच्छ उप्पइओ गगणमभिलघयतो गामागार-नगर-खेड-कब्बड-मडब-दोणमुह-पट्टण-सवाह-सहस्समडिय थिमियमेइणीतल निब्भरजणपद वसुह ओलोइतो रम्म हत्थिणाउर उवागए पडुरायभवणसि अइवेगेण समोवइए ।

इधर कच्छुल्ल नामक नारद वहाँ आ पहुँचे । वे देखने मे अत्यन्त भद्र और विनीत जान पडते थे, परन्तु भीतर से कलहप्रिय होने के कारण उनका हृदय कलुषित था । ब्रह्मचर्यव्रत के धारक होने से वे मध्यस्थता को प्राप्त थे । आश्रित जनो को उनका दर्शन प्रिय लगता था । उनका रूप मनोहर था । उन्होने उज्ज्वल एव सकल (अखड अथवा शकल अर्थात वस्त्रखड) पहन रखा था । काला मृगचर्म उत्तरासग के रूप मे वक्षस्थल मे धारण किया था । हाथ मे दड और कमण्डलु था । जटा रूपी मुकुट से उनका मस्तक शोभायमान था । उन्होने यज्ञोपवीत एव रुद्राक्ष की माला के आभरण, मू ज की कटिमेखला और वल्कल वस्त्र धारण किए थे । उनके हाथ मे कच्छपी नाम की वीणा थी । उन्हे सगीत से प्रीति थी । आकाश मे गमन करने की शक्ति होने से वे पृथ्वी पर बहुत कम गमन करते थे । सचरणी (चलने की), आवरणी (ढँकने की), अवतरणी (नीचे उतरने की), उत्पतनी (ऊँचे उड़ने की), श्लेषणी (चिपट जाने की), सक्रामणी (दूसरे के शरीर मे प्रवेश करने की), अभियोगिनी (सोना चादी आदि बनाने की), प्रज्ञप्ति (परोक्ष वृत्तान्त को बतला देने की), गमनी (दुगम स्थान मे भी जा सकने की) और स्तम्भिनी (स्तब्ध कर देने की) आदि बहुत-सी विद्याधरो सबन्धी विद्याओ मे प्रवीण होने से उनकी कीर्त्ति फैली हुई थी । वे बलदेव और वासुदेव के प्रेमपात्र थे । प्रद्युम्न, प्रदीप, साब, अनिरुद्ध, निषध, उन्मुख, सारण, गजसुकुमाल, सुमुख और दुमु ख आदि यादवो के साढे तीन कोटि कुमारो के हृदय के प्रिय थे और उनके द्वारा प्रशसनीय थे । कलह (वाग्युद्ध) युद्ध (शस्त्रो का समर) और कोलाहल उन्हें प्रिय था । वे भाड के समान वचन बोलने के अभिलाषी थे । अनेक समर और सम्पराय (युद्धविशेष) देखने के रसिया थे । चारो ओर दक्षिणा देकर (दान देकर) भी कलह की खोज किया करते थे, अर्थात् कलह कराने मे उन्हे बडा आनन्द आता था । कलह कराकर दूसरों के

चित्त में असमाधि उत्पन्न करते थे। ऐसे वह नारद तीन लोक मे बलवान् श्रेष्ठ दसारवश
पुरुषों से वार्तालाप करके, उस भगवती (पूज्य) प्राकाम्य नामक विद्या का, जिसके प्रभाव से
मे गमन किया जा सकता था, स्मरण करके उडे और आकाश को लाघते हुए हजारो ग्राम,
(खान), नगर, खेट, कबट, मडव, द्रोणमुख, पट्टन और सबाध से शोभित और भरपूर देशो से
पृथ्वी का अवलोकन करते-करते रमणीय हस्तिनापुर मे आये और बडे वेग के साथ पाण्डु
महल मे उतरे।

१४०—तए ण से पडुराया कच्छुल्लनारय एज्जमाण पासइ, पासित्ता पचहि पडवेहि
य देवीय सद्धि आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता कच्छुल्लनारय सत्तट्ठपयाइ पच्चुग्गच्छइ, पच्चुग
तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ, करित्ता वदइ, णमसइ, वदित्ता णमसित्ता महरिहेण
उवणिमतेइ।

उस समय पाडु राजा ने कच्छुल्ल नारद को आता देखा। देख कर पाच पाण्डवो तथ
देवी सहित वे आसन से उठ खडे हुए। खडे होकर सात-आठ पैर कच्छुल्ल नारद के सामने
सामने जाकर तीन बार दक्षिण दिशा से आरम्भ करके प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वदन
नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके महान् पुरुष के योग्य अथवा बहुमूल्य आसन ग्रहण क
लिए आमत्रण किया।

१४१—तए ण से कच्छुल्लनारए उदगपरिफोसियाए दब्भोवरिपच्चत्थुयाए भिसियाए णि
णिसीइत्ता पडुराय रज्जे जाव [य रट्ठे य कोसे य कोट्ठागारे य बले य वाहणे य पुरे य] अते
कुसलोदत पुच्छइ।

तए ण ते पडुराया कोति देवी पच य पडवा कच्छुल्लाणारय आढायति जाव [परि
अब्भुट्ठेंति] पज्जुवासति।

तत्पश्चात् उन कच्छुल्ल नारद ने जल छिडककर और दर्भ बिछाकर उस पर अपना
बिछाया और वे उस पर बैठ कर पाण्डु राजा, राज्य यावत् [राष्ट्र, कोष, कोठार, बल,
नगर और] अन्त पुर के कुशल-समाचार पूछे। उस समय पाण्डु राजा ने, कुन्ती देवी ने और
पाण्डवो ने कच्छुल्ल नारद का खडे होकर आदर-सत्कार किया। उनकी पर्युपासना की।

१४२—तए ण सा दोवई देवी कच्छुल्लनारय अस्सजय अविरय अप्पडिहयपच्चक्खाय
कम्म ति कट्टु नो आढाइ, नो परियाणाइ, नो अब्भुट्ठेइ, नो पज्जुवासइ।

किन्तु द्रौपदी देवी ने कच्छुल्ल नारद को असयमी, अविरत तथा पूर्वकृत पापकर्म का नि
द्वारा नाश न करने वाला तथा आगे के पापो का प्रत्याख्यान न करने वाला जान कर उनका
नही किया, उनके आगमन का अनुमोदन नहीं किया, उनके आने पर वह खडी नही हुई।
उनकी उपासना भी नही की।

द्रौपदी पर नारद का रोष

१४३—तए ण तस्स कच्छुल्लणारयस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चितिए पत्थिए मणोमए स

समुप्पज्जित्था—'अहो ण दोवई देवी रूवेण जाव [जोव्वणेण य] लावण्णेण य पचहिं पडवेहिं अणुवद्धा समाणी मम नो आढाइ, जाव नो पज्जुवासइ, त सेय खलु मम दोवईए देवीए विप्पिय करित्तए' त्ति कट्टु एव सपेहेइ, सपेहित्ता पडुयराय आपुच्छइ, आपुच्छित्ता उप्पयणि विज्ज आवाहेइ, आवाहित्ता ताए उक्किट्ठाए जाव विज्जाहरगईए लवणसमुद्द मज्झमज्झेण पुरत्थाभिमुहे वीइवइउ पयत्ते यावि होत्था।

तब कच्छुल्ल नारद को इस प्रकार का अध्यवसाय चिन्तित (विचार) प्रार्थित (इष्ट) मनोगत (मन मे स्थित) सकल्प उत्पन्न हुआ कि 'अहो! यह द्रौपदी अपने रूप यौवन लावण्य और पांच पाण्डवो के कारण अभिमानिनी हो गई है, अतएव मेरा आदर नही करती यावत् मेरी उपासना नही करती। अतएव द्रौपदी देवी का अनिष्ट करना मेरे लिए उचित है।' इस प्रकार नारद ने विचार किया। विचार करके पाण्डु राजा से जाने की आज्ञा ली। फिर उत्पतनी (उडने की) विद्या का आह्वान किया। आह्वान करके उस उत्कृष्ट यावत् विद्याधर योग्य गति से लवणसमुद्र के मध्यभाग में होकर, पूव दिशा के सम्मुख, चलने के लिए प्रयत्नशील हुए।

नारद का अमरकका-गमन—जाल रचना

१४४—तेण कालेण तेण समएण धायइसडे दीवे पुरत्थिमद्धदाहिणड्ढभरहवासे अमरकका नाम रायहाणी होत्था। तत्य ण अमरककाए रायहाणीए पउमणाभे णाम राया होत्था, महया हिमवत वण्णओ। तस्स ण पउमणाभस्स रण्णो सत्त देवीसयाइ ओरोहे होत्था। तस्स ण पउमणाभस्स रण्णो सुनाभे नाम पुत्ते जुवराया यावि होत्था। तए ण से पउमनाभे राया अतो अतेउरसि ओरोहसपरिवुडे सिहासणवरगए विहरइ।

उस काल और उस समय मे धातकीखण्ड नामक द्वीप मे पूव[1] दिशा की तरफ के दक्षिणार्ध भरतक्षेत्र मे अमरकका नामक राजधानी थी। उस अमरकका राजधानी मे पद्मनाभ नामक राजा था। वह महान् हिमवन्त पवत के समान सार वाला था, इत्यादि वणन औपपातिकसूत्र के अनुसार समझना चाहिए। उस पद्मनाभ राजा के अन्त पुर मे सात सौ रानियाँ थी। उसके पुत्र का नाम सुनाभ था। वह युवराज भी था। (जिस समय का यह वणन है) उस समय पद्मनाभ राजा अन्त पुर मे रानियो के साथ उत्तम सिंहासन पर बैठा था।

१४५—तए ण से कच्छुल्लणारए जेणेव अमरकका रायहाणी, जेणेव पउमनाभस्स भवणे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पउमनाभस्स रन्नो भवणसि झत्ति वेगेण समोवइए।

तए ण से पउमणाभे राया कच्छुल्ल नारय एज्जमाण पासइ, पासित्ता आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता अग्घेण जाव[2] आसणेण उवणिमतेइ।

तत्पश्चात् कच्छुल्ल नारद जहा अमरकका राजधानी थी और जहाँ राजा पद्मनाभ का भवन था, वहाँ आये। आकर पद्मनाभ राजा के भवन मे वेगपूवक शीघ्रता के साथ उतरे।

---

१ धातकीखण्ड द्वीप म भरत आदि सभी क्षेत्र दो-दो की सख्या मे हैं। उनमे से पूर्व दिशा के भरतक्षेत्र के दक्षिण भाग मे अमरकका राजधानी थी।

२ अ १६ सूत्र १४०।

उस समय पद्मनाभ राजा ने कच्छुल्ल नारद को आता देखा। देखकर वह आसन से उठा। उठ कर [सात आठ कदम सामने गया, तीन बार प्रदक्षिणा की, वन्दन-नमस्कार किया] अर्घ्य से उनकी पूजा की यावत् आसन पर बैठने के लिए उन्हे आमन्त्रित किया।

१४६—तए णं से कच्छुल्लणारए उदयपरिफोसियाए दब्भोवरिपच्चत्थुयाए भिसियाए निसीयइ, जाव[1] कुसलोदंतं आपुच्छइ।

तत्पश्चात् कच्छुल्ल नारद ने जल से छिड़काव किया, फिर दर्भ बिछा कर उस पर आसन बिछाया और फिर वे उस आसन पर बैठे। बैठने के बाद यावत् कुशल-समाचार पूछे।

१४७—तए णं से पउमनाभे राया णियगओरोहे जायविम्हए कच्छुल्लणारयं एवं वयासी—'तुब्भे देवाणुप्पिया! बहूणि गामाणि जाव गेहाइं अणुपविससि, तं अत्थि याइं ते कहिंचि देवाणुप्पिया एरिसए ओरोहे दिट्ठपुव्वे जारिसए णं मम ओरोहे?'

इसके बाद पद्मनाभ राजा ने अपनी रानियों (के सौन्दर्य आदि) में विस्मित होकर कच्छुल्ल नारद से प्रश्न किया—'देवानुप्रिय! आप बहुत-से ग्रामों यावत् गृहों में प्रवेश करते हो, तो देवानुप्रिय! जैसा मेरा अन्तःपुर है, वैसा अन्तःपुर आपने पहले कभी कहीं देखा है?

१४८—तए णं से कच्छुल्लनारए पउमनाभेणं रण्णा एवं वुत्ते समाणे ईसिं विहसियं करेइ, करित्ता एवं वयासी—'सरिसे णं तुमं पउमणाभा! तस्स अगडददुरस्स।'

'के णं देवाणुप्पिया! से अगडददुरे?'

एवं जहा मल्लिणाए।

एवं खलु देवाणुप्पिया! जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे हत्थिणाउरे दुपयस्स रण्णो धूया, चुलणीए देवीए अत्तया, पंडुस्स सुण्हा पंचण्हं पंडवाणं भारिया दोवई देवी रूवेण य जाव उक्किट्ठसरीरा। दोवईए णं देवीए छिन्नस्स वि पायंगुट्ठयस्स अयं तव ओरोहे सइमं पि कलं ण अग्घइ त्ति कट्टु पउमणाभं आपुच्छइ, आपुच्छित्ता जाव पडिगए।

तत्पश्चात् राजा पद्मनाभ के इस प्रकार कहने पर कच्छुल्ल नारद थोड़ा मुस्कराए। मुस्करा कर बोले—'पद्मनाभ! तुम कुएँ के उस मेंढक के सदृश हो।'

(पद्मनाभ ने पूछा) देवानुप्रिय! कौन-सा वह कुएँ का मेंढक?

जैसा मल्ली ज्ञात (अध्ययन) में कहा है, वही यहाँ कहना चाहिए।[2]

(फिर बोले) 'देवानुप्रिय! जम्बूद्वीप में, भरतवर्ष में, हस्तिनापुर नगर में द्रुपद राजा की पुत्री, चुलनी देवी की आत्मजा पाण्डु राजा की पुत्रवधू और पांच पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी देवी रूप से यावत् लावण्य से उत्कृष्ट है, उत्कृष्ट शरीर वाली है। तुम्हारा यह सारा अन्तःपुर द्रौपदी देवी के कटे हुए पैर के अंगूठे की सौवीं कला (अंश) की भी बराबरी नहीं कर सकता।' इस प्रकार कह कर नारद ने पद्मनाभ से जाने की अनुमति ली। अनुमति पाकर वह यावत् (तीव्र गति से) चल दिये।

१ अ. १६, सूत्र १४१ २ देखिए पृ. २४७

१४९—तए ण से पउमनाभे राया कच्छुल्लनारयस्स अतिए एयमटठ सोच्चा णिसम्म दोवईए देवीए रुवे य जोव्वणे य लावण्णे य मुच्छिए गढिए लुद्धे (गिद्धे) अज्झोववन्ने जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोसहसाल जाव [अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता पुव्वसगइय देव मणसीकरे माणे मणसीकरेमाणे चिट्ठइ।

तए ण पउमनाभस्स रण्णो अट्ठमभत्तसि परिणममाणसि पुव्वसगइओ देवो जाव आगओ।
'भणतु ण देवाणुप्पिया! ज मए कायव्व।'
तए ण पउमणाभे]
पुव्वसगतिय देव एव वयासी—'एव खलु देवाणुप्पिया! जबुद्दीवे दीवे भारहे वासे हत्थिणाउरे नयरे जाव उक्किट्ठसरीरा, त इच्छामि ण देवाणुप्पिया! दोवइ देवि इहमाणिय'[1]।'

तत्पश्चात् पद्मनाभ राजा, कच्छुल्ल नारद से यह अर्थ सुन कर और समझ कर द्रौपदी देवी के रूप, यौवन और लावण्य मे मुग्ध हो गया गृद्ध हो गया, लुब्ध हो गया, और (उसे पाने के लिए) आग्रहवान् हो गया। वह पौषधशाला मे पहुँचा। पौषधशाला को [पूज कर, अपने पूर्व के साथी देव का मन मे ध्यान करके, तेला करके बैठ गया। उसका अष्टमभक्त जब पूरा होने आया तो वह पूर्वभव का साथी देव आया।

उसने कहा—देवानुप्रिय! कहो, मुझे क्या करना है?

तब राजा पद्मनाभ ने] उस पहले के साथी देव से कहा—देवानुप्रिय! जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे, भारतवर्ष मे, हस्तिनापुर नगर मे, यावत् द्रौपदी देवी उत्कृष्ट शरीर वाली है। देवानुप्रिय! मैं चाहता हूँ कि द्रौपदी देवी यहाँ ले आई जाय।'

१५०—तए ण पुव्वसगतिए देवे पउमनाभ एव वयासी—'नो खलु देवाणुप्पिया! एय भूय, भव्व वा, भविस्स वा, ज ण दोवई देवी पच पडवे मोत्तूण अन्नेण पुरिसेण सद्धि ओरालाइ जाव [माणुस्सगाइ भोगभोगाइ भुजमाणी] विहरिस्सइ, तहावि य ण अह तव पियट्ठयाए दोवइ देवि इह हव्वमाणेमि' त्ति कट्टु पउमणाभ आपुच्छइ, आपुच्छित्ता ताए उक्किट्ठाए जाव देवगईए लवणसमुद्द मज्झमज्झेण जेणेव हत्थिणाउरे णयरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तत्पश्चात् पूर्वसगतिक (पहले के साथी) देव ने पद्मनाभ से कहा—'देवानुप्रिय! यह कभी हुआ नहीं, होता नही और होगा भी नही कि द्रौपदी देवी पाँच पाण्डवो को छोड़कर दूसरे पुरुष के साथ मानवीय उदार कामभोग भोगती हुई विचरेगी। तथापि म तुम्हारा प्रिय (इष्ट) करने के लिए द्रौपदी देवी को अभी यहाँ ले आता हूँ।' इस प्रकार कह कर देव ने पद्मनाभ से पूछा। पूछ कर वह उत्कृष्ट देव-गति से लवणसमुद्र के मध्य मे होकर जिधर हस्तिनापुर नगर था, उधर ही गमन करने के लिए उद्यत हुआ।

द्रौपदी-हरण

१५१—तेण कालेण तेण समएण हत्थिणाउरे जुहिट्ठिले राया दोवईए देवीए सद्धि आगासतलसि सुहपसुत्ते यावि होत्था।

---

१ पाठान्तर— हव्वमाणिय'।

उस काल और उस समय मे, हस्तिनापुर नगर मे युधिष्ठिर राजा द्रौपदी देवी के साथ महल की छत पर सुख से सोया हुआ था ।

१५२—तए ण से पुव्वसगतिए देवे जेणेव जुहिट्ठिले राया, जेणेव दोवई देवी, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता दोवईए देवीए ओसोवणिय दलयइ, दलइत्ता दोवइ देवि गिण्हइ, गिण्हित्ता ताए उक्किट्ठाए जाव देवगईए जेणेव अमरकका, जेणेव पउमणाभस्स भवणे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पउमणाभस्स भवणसि असोगवणियाए दोवइ देवि ठावेइ, ठावित्ता ओसोवणि अवहरइ, अवहरित्ता जेणेव पउमणाभे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एव वयासी—'एस ण देवाणुप्पिया ! मए हत्यिणाउराओ दोवई देवी इह हव्वमाणीया, तव असोगवणियाए चिट्ठइ, अतो पर तुम जाणसि' त्ति कट्टु जामेव दिसि पाउब्भूए तामेव दिसि पडिगए ।

उस समय वह पूर्वसगतिक देव जहाँ राजा युधिष्ठिर था और जहाँ द्रौपदी देवी थी, वहाँ पहुँचा । पहुँच कर उसने द्रौपदी देवी को अवस्वापिनी निद्रा दी—अवस्वापिनी विद्या से निद्रा मे सुला दिया । द्रौपदी देवी ग्रहण करके, देवोचित उत्कृष्ट गति से अमरकका राजधानी मे पद्मनाभ के भवन मे आ पहुँचा । आकर पद्मनाभ के भवन मे, अशोकवाटिका मे, द्रौपदी देवी को रख दिया । रख कर अवस्वापिनी विद्या का सहरण किया । सहरण करके जहाँ पदमनाभ था, वहाँ आया । आकर इस प्रकार बोला—'देवानुप्रिय ! मैं हस्तिनापुर से द्रौपदी देवी को शीघ्र ही यहा ले आया हूँ । वह तुम्हारी अशोकवाटिका मे है । इससे आगे तुम जानो । इतना कह कर वह देव जिस ओर से आया था उसी ओर लौट गया ।

विवेचन—प्रस्तुत आगम मे तथा अन्य अन्य कथानकप्रधान आगमो मे भी जहा गति की तीव्रता प्रदर्शित करना अभीष्ट होता है, वहाँ गति के साथ कोई विशेषण लगाया गया है । यहाँ 'उक्किटठाए देवगईए' मे 'देव' यह विशेषण है । इसका अभिप्राय यह है कि तीव्र और मन्द, ये शब्द सापेक्ष हैं । इन शब्दो से किसी नियत अथ का बोध नही होता । एक बालक अथवा अतिशय वृद्ध की अपेक्षा जो गति तीव्र कही जा सकती है, वही एक बलवान् युवा की अपेक्षा मन्द भी हो सकती है । साईकिल की तीव्र गति मोटर की अपेक्षा मन्द है और वायुयान की अपेक्षा मोटर की गति मन्द है । अतएव तीव्रता की विशेषता दिखलाने के लिए ही यहाँ 'उत्कृष्ट देवगति से' ऐसा कहा गया है । तात्पर्य यह है कि यहा देवगति की अपेक्षा से ही तीव्रता समझना चाहिए, मेढक या मनुष्यादि की अपेक्षा से नही । अन्यत्र भी यही आशय समझना चाहिए ।

१५३—तए ण सा दोवई देवी तओ मुहुत्ततरस्स पडिबुद्ध समाणी त भवण असोगवणिय च अपच्चभिजाणमाणी एव वयासी—नो खलु अम्ह एस सए भवणे, णो खलु एसा अम्ह सगा असोगवणिया, त ण णज्जइ ण अह केणई देवेण वा, दाणवेण वा, किंपुरिसेण वा, किन्नरेण वा, महोरगेण वा, गधव्वेण वा, अन्नस्स रण्णो असोगवणिय साहरिय' त्ति कट्टु ओहयमणसकप्पा जाव झियायइ ।

तत्पश्चात थोडी देर मे जब द्रौपदी देवी की निद्रा भग हुई तो वह अशोकवाटिका को पहचान न सकी । तब मन ही मन कहने लगी—'यह भवन मेरा अपना नही है, यह अशोक-

वाटिका मेरी अपनी नही है। न जाने किसी देव ने, दानव ने, किंपुरुष ने, किन्नर ने, महोरग ने, या गन्धर्व ने किसी दूसरे राजा की अशोकवाटिका मे मेरा सहरण किया है।' इस प्रकार विचार करके वह भग्न-मनोरथ होकर यावत् चिन्ता करने लगी।

पद्मनाभ का द्रौपदी को भोग-आमन्त्रण

१५४—तए ण से पउमणाभे राया ण्हाए जाव सव्वालकारविभूसिए अतेउरपरियालसपरिवुडे जेणेव असोगवणिया, जेणेव दोवई देवी, तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता दोवइ देविं ओहयमणसकप्प जाव झियायमाणिं पासइ, पासित्ता एव वयासी—'किं ण तुम देवाणुप्पिए! ओहयमणसकप्पा जाव झियाहि? एव खलु तुम देवाणुप्पिए! मम पुव्वसगतिएण देवेण जबुद्दीवाओ दीवाओ, भारहाओ वासाओ, हत्थिणाउराओ नयराओ, जुहिट्ठिलस्स रण्णो भवणाओ साहरिया, त मा ण तुम देवाणुप्पिए! ओहयमणसकप्पा जाव झियाहि। तुम मए सद्धिं विपुलाइ भोगभोगाइ जाव [भुजमाणी] विहराहि।'

तदनन्तर राजा पद्मनाभ स्नान करके, यावत् सब अलकारो से विभूषित होकर तथा अन्त पुर के परिवार से परिवृत होकर, जहाँ अशोकवाटिका थी और जहाँ द्रौपदी देवी थी, वहाँ आया। आकर उसने द्रौपदी देवी को भग्नमनोरथ एव चिन्ता करती देख कर कहा—'देवानुप्रिये! तुम भग्नमनोरथ होकर चिन्ता क्यो कर रही हो? देवानुप्रिये! मेरा पूर्वसांगतिक देव जम्बूद्वीप से, भारतवर्ष से, हस्तिनापुर नगर से और युधिष्ठिर राजा के भवन मे सहरण करके तुम्हें यहाँ ले आया है। अतएव देवानुप्रिये! तुम हतमन सकल्प होकर चिन्ता मत करो। तुम मेरे साथ विपुल भोगने योग्य भोग भोगती हुई रहो।

१५५—तए ण सा दोवई देवी पउमणाभ एव वयासी—'एव खलु देवाणुप्पिया! जबुद्दीवे दीवे भारहे वासे बारवईए नयरीए कण्हे णाम वासुदेवे मम पियभाउए परिवसइ, त जइ ण से छण्ह मासाण मम कूव नो हव्वमागच्छइ तए ण अह देवाणुप्पिया! ज तुम वदसि तस्स आणा-ओवाय-वयण-णिद्देसे चिट्ठिस्सामि।'

तब द्रौपदी देवी ने पद्मनाभ से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय! जम्बूद्वीप मे, भारतवर्ष में द्वारवती नगरी मे कृष्ण नामक वासुदेव मेरे स्वामी के भ्राता रहते हैं। सो यदि छह महीनो तक वे मुझे छुडाने—सहायता करने या वापिस ले जाने के लिए यहाँ नहीं आएँगे तो मैं, हे देवानुप्रिय! तुम्हारी आज्ञा, उपाय, वचन और निर्देश मे रहूँगी, अर्थात् आप जो कहेंगे, वही करूँगी।'

१५६—तए ण से पउमे राया दोवईए एयमट्ठ पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता दोवइं देविं कण्णतेउरे ठवेइ। तए ण सा दोवई देवी छट्ठछट्ठेण अणिक्खित्तेण आयबिलपरिग्गहिएण तवोकम्मेण अप्पाण भावेमाणी विहरइ।

तब पद्मनाभ राजा ने द्रौपदी का कथन अगीकार किया। अगीकार करके द्रौपदी देवी को कन्याओ के अन्त पुर मे रख दिया। तत्पश्चात् द्रौपदी देवी निरतर षष्ठभक्त और पारणा मे आयबिल के तप कर्म से आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी।

विवेचन—द्रौपदी, छह महीने तक श्रीकृष्ण यदि लेने न आएँ तो पद्मनाभ की आज्ञा मान्य करने की तैयारी बतलाती है। इस तैयारी के पीछे द्रौपदी की मानसिक दुर्बलता या चारित्रिक शिथिलता है, ऐसा किसी को आभास हो सकता है। किन्तु वास्तव मे ऐसा है नही। द्रौपदी को कृष्ण के असाधारण सामर्थ्य पर पूरा विश्वास है। वह जानती है कि कृष्णजी आए बिना रह नही सकते। इसी कारण उसने पाण्डवो का उल्लेख न करके श्रीकृष्ण का उल्लेख किया। उसकी चारित्रिक दृढता मे सदेह करने का कोई कारण नही है। सूत्रकार ने देवता के मुख से भी यही कहलवा दिया है कि द्रौपदी पाण्डवो के सिवाय अन्य पुरुष की कामना त्रिकाल मे भी नही कर सकती। वह तो किसी युक्ति से श्रीकृष्ण के आने तक समय निकालना चाहती थी। उसकी युक्ति काम कर गई।

उधर पद्मनाभ ने बडी सरलता से द्रौपदी की बात मान्य कर ली। इसका कारण उसका यह विश्वास रहा होगा कि कहाँ जम्बूद्वीप और कहा धातकीखडद्वीप ! दोनो द्वीपो के बीच दो लाख योजन के महान् विस्तार वाला लवणसमुद्र है। प्रथम तो श्रीकृष्ण को पता ही नही चलेगा कि द्रौपदी कहा है ! पता भी चल गया तो उनका यहाँ पहुँचना असभव है।

अपने इस विश्वास के कारण पद्मनाभ ने द्रौपदी की शर्त आनाकानी किए बिना स्वीकार कर ली। इसके अतिरिक्त कामान्ध पुरुष की विवेकशक्ति भी नष्ट हो जाती है।

द्रौपदी की गवेषणा

१५७—तए ण से जुहिट्ठिल्ले राया तओ मुहुत्तंतरस्स पडिबुद्धे समाणे दोवइ देविं पासे अपासमाणो सयणिज्जाओ उट्ठेइ, उट्ठित्ता दोवईए देवीए सव्वओ समता मग्गणगवेसण करेइ, करित्ता दोवईए देवीए कत्थइ सुइ वा खुइ वा पवित्ति वा अलभमाणे जेणेव पडुराया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पडुराय एव वयासी—

इधर द्रौपदी का हरण हो जाने के पश्चात् थोडी देर मे युधिष्ठिर राजा जागे। वे द्रौपदी देवी को अपने पास न देखते हुए शय्या से उठे। उठकर सब तरफ द्रौपदी देवी की मार्गणा-गवेषणा करने लगे। किन्तु द्रौपदी देवी की कही भी श्रुति (शब्द), क्षुति (छीक वगैरह) या प्रवृत्ति (खबर) न पाकर जहा पाण्डु राजा थे वहाँ पहुँचे। वहाँ पहुँचकर पाडु राजा से इस प्रकार बोले—

१५८—एव खलु ताओ ! मम आगासतलगसि पसुत्तस्स पासाओ दोवई देवी न णज्जइ केणइ देवेण वा, दाणवेन वा, किन्नरेण वा, महोरगेण वा गधव्वेण वा, हिया वा, णीया वा, अवक्खित्ता वा ? इच्छामि ण ताओ ! दोवईए देवीए सव्वओ समता मग्गणगवेसण करित्तए।

हे तात ! मैं आकाशतल (अगासी) पर सो रहा था। मेरे पास द्रौपदी देवी को न जाने कौन देव, दानव, किन्नर, महोरग अथवा गधर्व हरण कर गया, ले गया या खीच ले गया ! तो हे तात ! मैं चाहता हूँ कि द्रौपदी देवी की सब तरफ मार्गणा की जाय।

१५९ तए ण से पडुराया कोडुबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'गच्छह ण तुब्भे देवाणुप्पिया ! हत्थिणाउरे नयरे सिंघाडग-तिय चउक्क-चच्चर-महापह-पहेसु महया महया सद्देण उग्घोसेमाणा उग्घोसेमाणा एव वदह—'एव खलु देवाणुप्पिया ! जुहिट्ठिल्लस्स रण्णो आगासतलगसि

सुहपसुत्तस्स पासाओ दोवई देवी न णज्जइ केणइ देवेण वा, दाणवेण वा, किंपुरिसेण वा, किन्नरेण वा, महोरगेण वा, गंधव्वेण वा हिया वा नीया वा अवक्खित्ता वा ? तं जो णं देवाणुप्पिया ! दोवईए देवीए सुइं वा खुइं वा पवित्तिं वा परिकहेइ तस्स णं पंडुराया विउलं अत्थसंपयाणं दलयइ' त्ति कट्टु घोसणं घोसावेह, घोसावित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।'

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पच्चप्पिणंति ।

तत्पश्चात् पाण्डु राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर यह आदेश दिया—'देवानुप्रियो ! हस्तिनापुर नगर में शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, महापथ और पथ आदि में जोर-जोर के शब्दों से घोषणा करते-करते इस प्रकार कहो—हे देवानुप्रियो (लोगो) आकाशतल (अगासी) पर सुख से सोये हुए युधिष्ठिर राजा के पास से द्रौपदी देवी को न जाने किस देव, दानव, किंपुरुष किन्नर, महोरग या गंधर्व देवता ने हरण किया है, ले गया है, या खींच ले गया है ? तो हे देवानुप्रियो ! जो कोई द्रौपदी देवी की श्रुति, क्षुति या प्रवृत्ति बताएगा, उस मनुष्य को पाण्डु राजा विपुल सम्पदा का दान देंगे—इनाम देंगे । इस प्रकार की घोषणा करो। घोषणा करके मेरी यह आज्ञा वापिस लौटाओ ।'

तब कौटुम्बिक पुरुषों ने उसी प्रकार घोषणा करके यावत् आज्ञा वापिस लौटाई ।

१६०—तए णं से पंडू राया दोवईए देवीए कत्थइ सुइं वा जाव अलभमाणे कोंतिं देविं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिए ! बारवइं नयरिं कण्हस्स वासुदेवस्स एयमट्ठं णिवेदेहि । कण्हे णं परं वासुदेवे दोवईए देवीए मग्गणगवेसणं करेज्जा, अन्नहा न नज्जइ दोवईए देवीए सुइं वा खुइं वा पवित्तिं वा उवलभेज्जा ।'

पूर्वोक्त घोषणा कराने के पश्चात् भी पाण्डु राजा द्रौपदी देवी की कहीं भी श्रुति यावत् समाचार न पा सके तो कुन्ती देवी को बुलाकर इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिये ! तुम द्वारवती (द्वारिका) नगरी जाओ और कृष्ण वासुदेव को यह अर्थ निवेदन करो । कृष्ण वासुदेव ही द्रौपदी देवी की मार्गणा—गवेषणा करेंगे, अन्यथा द्रौपदी देवी की श्रुति, क्षुति या प्रवृत्ति अपने को ज्ञात हो, ऐसा नहीं जान पड़ता ।' अर्थात् हम द्रौपदी का पता नहीं पा सकते, केवल कृष्ण ही उसका पता लगा सकते हैं ।

१६१—तए णं कोंती देवी पंडुरण्णा एवं वुत्ता समाणी जाव पडिसुणइ, पडिसुणित्ता ण्हाया कयबलिकम्मा हत्थिखंधवरगया हत्थिणाउरं णयरं मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता कुरुजणवयं मज्झंमज्झेणं जेणेव सुरट्ठजणवए, जेणेव बारवई णयरी, जेणेव अग्गुज्जाणे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थिखंधाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! बारवइं णयरिं जेणेव कण्हस्स वासुदेवस्स गिहे तेणेव अणुपविसह, अणुपविसित्ता कण्हं वासुदेवं करयलपरिग्गहियं एवं वयह—'एवं खलु सामी ! तुब्भं पिउच्छा कोंती देवी हत्थिणाउराओ नयराओ इह हव्वमागया तुब्भं दंसणं कंखति ।'

पाण्डु राजा के द्वारका जाने के लिए कहने पर कुन्ती देवी ने उनकी बात यावत् स्वीकार की । वह नहा-धोकर बलिकर्म करके, हाथी के स्कंध पर आरूढ होकर हस्तिनापुर नगर के मध्य में

होकर निकली । निकल कर कुरु देश के बीचोबीच होकर जहाँ सुराष्ट्र जनपद था, जहाँ द्वारवती नगरी थी और नगर के बाहर श्रेष्ठ उद्यान था, वहाँ आई । आकर हाथी के स्कध से नीचे उतरी । उतरकर कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और उनसे इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो ! तुम जहा द्वारका नगरी है वहाँ जाओ, द्वारका नगरी के भीतर प्रवेश करो । प्रवेश करके कृष्ण वासुदेव को दोनो हाथ जोडकर, मस्तक पर अजलि करके इस प्रकार कहना—'हे स्वामिन् ! आपके पिता की बहन (भुआ) कुन्ती देवी हस्तिनापुर नगर से यहाँ आ पहुँची हैं और तुम्हारे दर्शन की इच्छा करती है—तुमसे मिलना चाहती है ।'

१६२—तए ण ते कोडुबियपुरिसा जाव कहेति । तए ण कण्हे वासुदेवे कोडुबियपुरिसाण अतिए एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठे हत्थिखधवरगए बारवईए नयरीए मज्भमज्भेण जेणेव कोती देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थिखधाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता कोतीए देवीए पायग्गहण करेइ, करित्ता कोतीए देवीए सद्धि हत्थिखध दुरूहइ, दुरूहित्ता बारवईए नगरीए मज्भमज्भेण जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सय गिह अणुपविसइ ।

तब कौटुम्बिक पुरुषो ने यावत कृष्ण वासुदेव के पास जाकर कुन्ती देवी के आगमन का समाचार कहा । कृष्ण वासुदेव कौटुम्बिक पुरुषो के पास से कुन्ती देवी के आगमन का समाचार सुनकर हर्षित और सन्तुष्ट हुए । हाथी के स्कध पर आरूढ होकर द्वारवती नगरी के मध्यभाग मे होकर जहाँ कुन्ती देवी थी, वहा आये, आकर हाथी के स्कध से नीचे उतरे । नीचे उतर कर उन्होने कुन्ती देवी के चरण ग्रहण किये—पैर छुए । फिर कुन्ती देवी के साथ हाथी पर आरूढ हुए । आरूढ होकर द्वारवती नगरी के मध्य भाग मे होकर जहाँ अपना महल था, वहाँ आये । आकर अपने महल मे प्रवेश किया ।

१६३—तए ण से कण्हे वासुदेवे कोतिं देविं ण्हाय कयबलिकम्म जिमियभुत्तुत्तरागय जाव सुहासणवरगय एव वयासी—'सदिसउ ण पिउच्छा ! किमागमणपओयण ?'

कुन्ती देवी जब स्नान करके, बलिकर्म करके और भोजन कर चुकने के पश्चात् सुखासन पर बैठी, तब कृष्ण वासुदेव ने इस प्रकार कहा—'हे पितृभगिनी ! कहिए, आपके यहा आने का क्या प्रयोजन है ?'

१६४—तए ण सा कोती देवी कण्ह वासुदेव एव वयासी—'एव खलु पुत्ता ! हत्थिणाउरे णयरे जुहिट्ठिल्लस्स आगासतले सुहपसुत्तस्स दोवई देवी पासाओ ण णज्जइ केणइ अवहिया वा, णीया वा, अवक्खित्ता वा, त इच्छामि ण पुत्ता ! दोवईए देवीए मग्गणगवेसण कय ।'

तब कुन्ती देवी ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—'हे पुत्र ! हस्तिनापुर नगर मे युधिष्ठिर आकाशतल (अगासी) पर सुख से सो रहा था । उसके पास मे द्रौपदी देवी को न जाने कौन अपहरण करके ले गया, अथवा खीच ले गया । अतएव हे पुत्र ! मैं चाहती हूँ कि द्रौपदी देवी की मार्गणा-गवेषणा करो ।'

१६५—तए ण से कण्हे वासुदेवे कोतिं पिउच्छि एव वयासी—'ज नवर पिउच्छा ! दोवईए

देवीए कत्थइ सुइं वा जाव [खुइं वा पवित्ति वा] लभामि तो णं अहं पायालाओ वा भवणाओ वा अद्धभरहाओ वा समंतओ दोवइं साहत्थिं उवणेमि' त्ति कट्टु कोंतिं पिउच्छिं सक्कारेइ, सम्माणेइ जाव पडिविसज्जेइ।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने अपनी पितृभगिनी (फूफी) कुन्ती से कहा—'भुआजी! अगर मैं कहीं भी द्रौपदी देवी की श्रुति (शब्द) यावत् [छींक आदि ध्वनि या समाचार] पाऊं, तो मैं पाताल में, भवन में से या अर्धभरत में से, सभी जगह से, हाथों-हाथ ले आऊँगा।' इस प्रकार कह कर उन्होंने कुन्ती भुआ का सत्कार किया, सम्मान किया, यावत् उन्हें विदा किया।

१६६—तए णं सा कोंती देवी कण्हेण वासुदेवेण पडिविसज्जिया समाणी जामेव दिसिं पाउब्भूआ तामेव दिसिं पडिगया।

कृष्ण वासुदेव से यह आश्वासन पाने के पश्चात् कुन्ती देवी, उनसे विदा होकर जिस दिशा से आई थी, उसी दिशा में लौट गई।

१६७—तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! बारवइं नयरिं, एवं जहा पंडू तहा घोसणं घोसावेइ, जाव पच्चप्पिणंति, पंडुस्स जहा।

कुन्ती देवी के लौट जाने पर कृष्ण वासुदेव ने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर उनसे कहा—'देवानुप्रियो! तुम द्वारका में जाओ' इत्यादि कहकर द्रौपदी के विषय में घोषणा करने का आदेश दिया। जैसे पाण्डु राजा ने घोषणा करवाई थी, उसी प्रकार कृष्ण वासुदेव ने भी करवाई। यावत् उनकी आज्ञा कौटुम्बिक पुरुषों ने वापिस की। सब वृत्तान्त पाण्डु राजा के समान कहना चाहिए।

१६८—तए णं से कण्हे वासुदेवे अन्नया अंतो अंतेउरगए ओरोहे जाव विहरइ। इमं च णं कच्छुल्लए जाव समोवइए जाव णिसीइत्ता कण्हं वासुदेवं कुसलोदंतं पुच्छइ।

तत्पश्चात् किसी समय कृष्ण वासुदेव अन्तःपुर के अन्दर रानियों के साथ रहे हुए थे। उसी समय वह कच्छुल्ल नारद यावत् आकाश से नीचे उतरे। यावत् कृष्ण वासुदेव के निकट जाकर पूर्वोक्त रीति से आसन पर बैठकर कृष्ण वासुदेव से कुशल वृत्तान्त पूछने लगे।

१६९—तए णं से कण्हे वासुदेवे कच्छुल्लं णारयं एवं वयासी—'तुमं णं देवाणुप्पिया! बहूणि गामागर जाव[1] अणुपविससि, तं अत्थि याइं ते कहिं वि दोवईए देवीए सुई वा जाव उवलद्धा?'

तएणं से कच्छुल्ले णारए कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—'एवं खलु देवाणुप्पिया! अन्नया धायईसंडे दीवे पुरत्थिमद्धं दाहिणड्ढभरहवासं अमरकंकारायहाणिं गए, तत्थ णं मए पउमनाभस्स रण्णो भवणंसि दोवई देवी जारिसिया दिट्ठपुव्वा यावि होत्था।'

---

१ अ. १६ सूत्र १३९

तए णं कण्हे वासुदेवे कच्छुल्लं णारयं एवं वयासी—'तुब्भ चेव णं देवाणुप्पिया ! एवं पुव्वकम्मं ।'

तए णं से कच्छुल्लनारए कण्हेण वासुदेवेण एवं वुत्ते समाणे उप्पयणिं विज्जं आवाहेइ, आवाहित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए ।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने कच्छुल्ल नारद से कहा—'देवानुप्रिय ! तुम बहुत-से ग्रामो, आकरो, नगरो आदि मे प्रवेश करते हो, तो किसी जगह द्रौपदी देवी की श्रुति आदि कुछ मिली है ?

तब कच्छुल्ल नारद ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय ! एक वार मैं धातकी-खण्ड द्वीप मे, पूर्व दिशा के दक्षिणार्ध भरत क्षेत्र मे अमरकका नामक राजधानी मे गया था। वहा मैंने पद्मनाभ राजा के भवन मे द्रौपदी देवी जैसी (कोई महिला) देखी थी ।'

तब कृष्ण वासुदेव ने कच्छुल्ल नारद से कहा—'देवानुप्रिय ! यह तुम्हारी ही करतूत जान पडती है ।'

कृष्ण वासुदेव के द्वारा इस प्रकार कहने पर कच्छुल्ल नारद ने उत्पतनी विद्या का स्मरण किया। स्मरण करके जिस दिशा से आये थे उसी दिशा मे चल दिए ।

द्रौपदी का उद्धार

१७०—तए णं से कण्हे वासुदेवे दूयं सद्दावेई, सद्दावित्ता एवं वयासी—गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया ! हत्थिणाउरं, पंडुस्स रण्णो एयमट्ठं निवेदेहि—'एवं खलु देवाणुप्पिया ! धायइसंडे दीवे पुरच्छिमद्धे अमरकंकाए रायहाणीए पउमनाभभवणंसि दोवईए देवीए पउत्ती उवलद्धा। तं गच्छंतु पंच पंडवा चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडा पुरच्छिमवेयालीए ममं पडियालेमाणा चिट्ठंतु ।'

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने दूत को बुलाया। बुला कर उससे कहा—'देवानुप्रिय ! तुम हस्तिनापुर जाओ और पाण्डु राजा को यह अर्थ निवेदन करो—'हे देवानुप्रिय ! धातकीखण्ड द्वीप मे पूर्वार्ध भाग मे, अमरकंका राजधानी मे, पद्मनाभ राजा के भवन मे द्रौपदी देवी का पता लगा है। अतएव पाचो पाण्डव चतुरंगिणी सेना से परिवृत होकर रवाना हो और पूर्व दिशा के वेतालिक[1] (लवणसमुद्र) के किनारे मेरी प्रतीक्षा करे ।'

१७१—तए णं दूए जाव भणइ—'पडिवालेमाणा चिट्ठह ।' ते वि जाव चिट्ठंति ।

तत्पश्चात् दूत ने जाकर यावत् कृष्ण के कथनानुसार पाण्डवो से प्रतीक्षा करने को कहा। तब पाचो पाण्डव वहाँ जाकर यावत् कृष्ण वासुदेव की प्रतीक्षा करने लगे ।

१७२—तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! सन्नाहियं भेरिं ताडेह ।' ते वि तालेंति ।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया। बुलाकर कहा—'देवानुप्रियो !

---

१ जहा समुद्र की वेल [लहर] चढ कर गगा नदी मे मिलती है, वह स्थान ।

तुम जाओ और सान्नाहिक (सामरिक) भेरी बजाओ।' यह सुन कर कौटुम्बिक पुरुषों ने सामरिक भेरी बजाई।

१७३—तए णं तीसे सण्णाहियाए भेरीए सद्दं सोच्चा समुद्दविजयपामोक्खा दस दसारा जाव[1] छप्पण्णं बलवयसाहस्सीओ सन्नद्धबद्ध जाव[2] गहियाउहपहरणा अप्पेगइया हयगया जाव वग्गुरा परिक्खित्ता जेणेव सभा सुहम्मा, जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल जाव वद्धावेंति।

सान्नाहिक भेरी की ध्वनि सुन कर समुद्रविजय आदि दस दसार यावत् छप्पन हजार बलवान् योद्धा कवच पहन कर, तैयार होकर, आयुध और प्रहरण ग्रहण करके कोई-कोई घोड़ों पर सवार होकर, कोई हाथी आदि पर सवार होकर, सुभटों के समूह के साथ जहाँ कृष्ण वासुदेव की सुधर्मा सभा थी और जहाँ कृष्ण वासुदेव थे, वहाँ आये। आकर हाथ जोड़ कर यावत उनका अभिनन्दन किया।

१७४—तए णं कण्हे वासुदेवे हत्थिखंधवरगए सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं वीइज्जमाणे महया हय-गय-रह-पवरजोहकलियाए चउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे महया भडचडगरपहकरविंदपरिक्खित्ते बारवईए णयरीए मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव पुरच्छिमवेयाली तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं एगयओ मिलइ, मिलित्ता खंधावारणिवेसं करेइ, करित्ता पोसहसालं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता सुट्ठियं देवं मणसि करेमाणे करेमाणे चिट्ठइ।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव श्रेष्ठ हाथी के स्कंध पर आरूढ हुए। कोरंट वृक्ष के फूलों की मालाओं से युक्त छत्र उनके मस्तक के ऊपर धारण किया गया। दोनों पार्श्वों में उत्तम श्वेत चामर ढोरे जाने लगे। वे बड़े-बड़े अश्वों, गजों, रथों और उत्तम पदाति-योद्धाओं की चतुरंगिणी सेना और अन्य सुभटों के समूहों से परिवृत होकर द्वारका नगरी के मध्य भाग में होकर निकले। निकल कर जहाँ पूर्व दिशा का वेतालिक था, वहाँ आए। वहाँ आकर पाँच पाण्डवों के साथ इकट्ठे हुए (मिले) फिर पड़ाव डाल कर पौषधशाला में प्रवेश किया। प्रवेश करके सुस्थित देव का मन में पुनः पुनः चिन्तन करते हुए स्थित हुए।

कृष्ण द्वारा देव का आह्वान

१७५—तए णं कण्हस्स वासुदेवस्स अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि सुट्ठिओ जाव आगओ—'भण देवाणुप्पिया! जं मए कायव्वं।'

तए णं से कण्हे वासुदेवे सुट्ठियं देवं एवं वयासी—'एवं खलु देवाणुप्पिया! दोवई देवी जाव पउमनाभस्स रण्णो भवणंसि साहरिया, तं णं तुमं देवाणुप्पिया! मम पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पछट्ठस्स छण्हं रहाणं लवणसमुद्दे मग्गं वियरेहि। जं णं अहं अमरकंकारायहाणिं दोवईए देवीए कूवं गच्छामि।'

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव का अष्टमभक्त पूरा होने पर सुस्थित देव यावत् उनके समीप

1 अ. १६ सूत्र ८६   2 अ० १६ सूत्र १०७

आया। उसने कहा—'देवानुप्रिय! कहिए मुझे क्या करना है ?

तब कृष्ण वासुदेव ने सुस्थित देव से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय! द्रौपदी देवी यावत् पद्मनाभ राजा के भवन में हरण की गई है, अतएव तुम हे देवानुप्रिय! पांच पाण्डवों सहित छठे मेरे छह रथों को लवणसमुद्र में मार्ग दो, जिससे मैं (पाण्डवों सहित) अमरकंका राजधानी में द्रौपदी देवी को वापस छीनने के लिए जाऊँ।'

१७६—तए णं से सुत्थिए देवे कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—'किण्णं देवाणुप्पिया! जहा चेव पउमनाभस्स रण्णो पुव्वसंगतिएणं देवेणं दोवई देवी जाव [जंबुद्दीवाओ दीवाओ भारहाओ वासाओ हत्थिणाउराओ नयराओ जुहिट्ठिलस्स रण्णो भवणाओ] संहरिया, तहा चेव दोवइं देविं धायईसंडाओ दीवाओ भारहाओ [वासाओ अमरकंकाओ रायहाणीओ पउमनाभस्स रण्णो भवणाओ] जाव हत्थिणाउरं साहरामि ? उदाहु पउमनाभं रायं सपुरबलवाहणं लवणसमुद्दे पक्खिवामि ?'

तत्पश्चात् सुस्थित देव ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय! जैसे पद्मनाभ राजा के पूर्व संगतिक देव ने द्रौपदी देवी का [जम्बूद्वीपवर्ती भरत क्षेत्र के हस्तिनापुर नगर से युधिष्ठिर राजा के भवन से] संहरण किया, उसी प्रकार क्या मैं द्रौपदी देवी का धातकीखण्डद्वीप के भरत क्षेत्र से यावत् अमरकंका राजधानी में स्थित पद्मनाभ राजा के भवन से हस्तिनापुर ले जाऊँ ? अथवा पद्मनाभ राजा को उसके नगर, सैन्य और वाहनों के साथ लवणसमुद्र में फेंक दूं ?

१७७—तए णं कण्हे वासुदेवे सुत्थियं देवं एवं वयासी—'मा णं तुमं देवाणुप्पिया! जाव साहराहि तुमं णं देवाणुप्पिया! लवणसमुद्दे अप्पछट्ठस्स छण्हं रहाणं मग्गं वियराहि, सयमेव णं अहं दोवईए देवीए कूवं गच्छामि।'

तब कृष्ण वासुदेव ने सुस्थित देव से कहा—'देवानुप्रिय! तुम यावत् संहरण मत करो। देवानुप्रिय! तुम तो पाँच पाण्डवों सहित छठे हमारे छह रथों को लवणसमुद्र में जाने का मार्ग दे दो। मैं स्वयं ही द्रौपदी देवी को वापिस लाने के लिए जाऊँगा।'

१७८—तए णं से सुट्ठिए देवे कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—'एवं होउ।' पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पछट्ठस्स छण्हं रहाणं लवणसमुद्दे मग्गं वियरइ।

तब सुस्थित देव ने कृष्ण वासुदेव से कहा—'ऐसा ही हो—तथास्तु।' ऐसा कह कर उसने पाँच पाण्डवों सहित छठे वासुदेव के छह रथों को लवणसमुद्र में मार्ग प्रदान किया।

पद्मनाभ के पास दूत-प्रेषण

१७९—तए णं से कण्हे वासुदेवे चाउरंगिणिं सेणं पडिविसज्जेइ, पडिविसज्जित्ता पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पछट्ठे छहिं रहेहिं लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं वीईवयइ, वीईवइत्ता जेणेव अमरकंका रायहाणी, जेणेव अमरकंकाए अग्गुज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रहं ठवेइ, सारहिं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने चतुरंगिणी सेना को विदा करके

तुम जाओ और सान्नाहिक (सामरिक) भेरी बजाओ।' यह सुन कर कौटुम्बिक पुरुषों ने सामरिक भेरी बजाई।

१७३—तए णं तीसे सण्णाहियाए भेरीए सद्दं सोच्चा समुद्दविजयपामोक्खा दस दसारा जाव[1] छप्पण्णं बलवयसाहस्सीओ सन्नद्धबद्ध जाव[2] गहियाउहपहरणा अप्पेगइया हयगया जाव वग्गुरा परिक्खित्ता जेणेव सभा सुहम्मा, जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल जाव वद्धावेंति।

सान्नाहिक भेरी की ध्वनि सुन कर समुद्रविजय आदि दस दसार यावत् छप्पन हजार बलवान् योद्धा कवच पहन कर, तैयार होकर, आयुध और प्रहरण ग्रहण करके कोई-कोई घोड़ों पर सवार होकर, कोई हाथी आदि पर सवार होकर, सुभटों के समूह के साथ जहाँ कृष्ण वासुदेव की सुधर्मा सभा थी और जहा कृष्ण वासुदेव थे, वहाँ आये। आकर हाथ जोड कर यावत् उनका अभिनन्दन किया।

१७४—तए णं कण्हे वासुदेवे हत्थिखंधवरगए सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं वीइज्जमाणे महया हय गय-रह-पवरजोहकलियाए चउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे महया भडचडगरपहकरविंदपरिक्खित्ते बारवईए णयरीए मज्झमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव पुरच्छिमवेयाली तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं एगयओ मिलइ, मिलित्ता खंधावारणिवेसं करेइ, करित्ता पोसहसालं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता सुट्ठियं देवं मणसि करेमाणे करेमाणे चिट्ठइ।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव श्रेष्ठ हाथी के स्कंध पर आरूढ हुए। कोरंट वृक्ष के फूलों की मालाओं से युक्त छत्र उनके मस्तक के ऊपर धारण किया गया। दोनों पार्श्वों में उत्तम श्वेत चामर ढोरे जाने लगे। वे बड़े बड़े अश्वों, गजों, रथों और उत्तम पदाति-योद्धाओं की चतुरंगिणी सेना और अन्य सुभटों के समूहों से परिवृत होकर द्वारका नगरी के मध्य भाग में होकर निकले। निकल कर जहा पूर्व दिशा का वैतालिक था, वहाँ आए। वहाँ आकर पांच पाण्डवों के साथ इकट्ठे हुए (मिले) फिर पड़ाव डाल कर पौषधशाला में प्रवेश किया। प्रवेश करके सुस्थित देव का मन में पुनः पुनः चिन्तन करते हुए स्थित हुए।

कृष्ण द्वारा देव का आह्वान

१७५—तए णं कण्हस्स वासुदेवस्स अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि सुट्ठिओ जाव आगओ—'भण देवाणुप्पिया! जं मए कायव्वं।'

तए णं से कण्हे वासुदेवे सुट्ठियं देवं एवं वयासी—'एवं खलु देवाणुप्पिया! दोवई देवी जाव पउमनाभस्स रण्णो भवणंसि साहरिया, तं णं तुमं देवाणुप्पिया! मम पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पछट्ठस्स छण्हं रहाणं लवणसमुद्दे मग्गं वियरेहि। जं णं अहं अमरकंकारायहाणिं दोवईए कूवं गच्छामि।'

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव का अष्टमभक्त पूरा होने पर सुस्थित देव यावत् उनके समीप

१ अ० १६ सूत्र ८६ २ अ० १६ सूत्र १०७

आया। उसने कहा—'देवानुप्रिय ! कहिए मुझे क्या करना है ?

तब कृष्ण वासुदेव ने सुस्थित देव से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय ! द्रौपदी देवी यावत् पद्मनाभ राजा के भवन मे हरण की गई है, अतएव तुम हे देवानुप्रिय ! पाच पाण्डवो सहित छठे मेरे छह रथो को लवणसमुद्र मे माग दो, जिससे मैं (पाण्डवो सहित) अमरकका राजधानी मे द्रौपदी देवी को वापस छीनने के लिए जाऊँ।'

१७६—तए ण से सुत्थिए देवे कण्ह वासुदेव एव वयासी—'किण्ण देवाणुप्पिया ! जहा चेव पउमनाभस्स रण्णो पुव्वसगतिएण देवेण दोवई देवी जाव [जबुद्दीवाओ दीवाओ भारहाओ वासाओ हत्थिणाउराओ नयराओ जुहिट्ठिलस्स रण्णो भवणाओ] सहरिया, तहा चेव दोवइ देवि धायईसडाओ दीवाओ भारहाओ [वासाओ अमरककाओ रायहाणीओ पउमनाभस्स रण्णो भवणाओ] जाव हत्थिणाउर साहरामि ? उदाहु पउमनाभ राय सपुरबलवाहण लवणसमुद्दे पक्खिवामि ?'

तत्पश्चात् सुस्थित देव ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय ! जैसे पद्मनाभ राजा के पूर्व सगतिक देव ने द्रौपदी देवी का [जम्बूद्वीपवर्ती भरत क्षेत्र के हस्तिनापुर नगर से युधिष्ठिर राजा के भवन से] सहरण किया, उसी प्रकार क्या म द्रौपदी देवी को धातकीखण्डद्वीप क भरत क्षेत्र से यावत् अमरकका राजधानी मे स्थित पद्मनाभ राजा के भवन से हस्तिनापुर ले जाऊँ ? अथवा पद्मनाभ राजा को उसके नगर, सैन्य और वाहनो के साथ लवणसमुद्र मे फेक दू ?

१७७—तए ण कण्हे वासुदेवे सुत्थिय देव एव वयासी—'मा ण तुम देवाणुप्पिया ! जाव साहराहि तुम ण देवाणुप्पिया ! लवणसमुद्दे अप्पछट्ठस्स छण्ह रहाण मग्ग वियराहि, सयमेव ण अह दोवईए देवीए कूव गच्छामि।'

तब कृष्ण वासुदेव ने सुस्थित देव से कहा—'देवानुप्रिय ! तुम यावत् सहरण मत करो। देवानुप्रिय ! तुम तो पाच पाण्डवो सहित छठे हमारे छह रथो को लवणसमुद्र मे जाने का माग दे दो। मैं स्वय ही द्रौपदी देवी को वापिस लाने के लिए जाऊँगा।'

१७८—तए ण से सुट्ठिए देवे कण्ह वासुदेव एव वयासी—'एव होउ।' पचहिं पडवेहिं सद्धि अप्पछट्ठस्स छण्ह रहाण लवणसमुद्दे मग्ग वियरइ।

तब सुस्थित देव ने कृष्ण वासुदेव से कहा—'ऐसा ही हो—तथास्तु।' ऐसा कह कर उसने पाँच पाण्डवो सहित छठे वासुदेव के छह रथो को लवणसमुद्र मे माग प्रदान किया।

पद्मनाभ के पास दूत-प्रेषण

१७९—तए ण से कण्हे वासुदेवे चाउरगिणि सेण पडिविसज्जेइ, पडिविसज्जित्ता पचहिं पडवेहिं सद्धि अप्पछट्ठे छहिं रहेहिं लवणसमुद्द मज्झमज्झेण वीईवयइ, वीईवइत्ता जेणेव अमरकका रायहाणी, जेणेव अमरककाए अग्गुज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रह ठवेइ, ठवित्ता दारुय सारहिं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने चतुरगिणी सेना को विदा करके पाँच पाण्डवो के साथ छठे

आप स्वय छह रथो मे बैठ कर लवणसमुद्र के मध्यभाग मे होकर जाने लगे। जाते-जाते जहाँ अमरकका राजधानी थी और जहाँ अमरकका का प्रधान उद्यान था, वहाँ पहुँचे। पहुँचने के बाद रथ रोका और दारुक नामक सारथी को बुलाया। उसे बुलाकर कहा—

१८०—'गच्छह ण तुम देवाणुप्पिया ! अमरकंकारायहाणि अणुपविसाहि, अणुपविसित्ता पउमणाभस्स रण्णो वामेण पाएण पायपीढं अक्कमित्ता कुंतग्गेण लेहं पणामेहि, तिवलियं भिउडिं णिडाले साहट्टु आसुरुत्ते रुट्ठे कुद्धे कुविए चंडिक्किए एवं वदह—'हं भो पउमणाहा ! अपत्थिय पत्थिया ! दुरंतपंतलक्खणा ! हीणपुण्णचाउद्दसा ! सिरिहिरिधीपरिवज्जिया ! अज्ज ण भवसि, किं ण तुमं ण जाणासि कण्हस्स वासुदेवस्स भगिणिं दोवइं देविं इहं हव्वं आणमाणे ? तं एयमवि गए पच्चप्पिणाहि णं तुमं दोवइं देविं कण्हस्स वासुदेवस्स, अहवा णं जुद्धसज्जे णिग्गच्छाहि, एस णं कण्हे वासुदेवे पंचहिं पंडवेहिं अप्पछट्ठे दोवईदेवीए कूवं हव्वमागए।'

'देवानुप्रिय ! तू जा और अमरकका राजधानी मे प्रवेश कर। प्रवेश करके पद्मनाभ राजा के समीप जाकर उसके पादपीठ को अपने वाँयें पर से आक्रान्त करके-ठोकर मार करके भाले की नोक द्वारा यह (लेख) पत्र देना। फिर कपाल पर तीन बल वाली भृकुटि चढा कर, आँखें लाल करके, रुष्ट होकर, क्रोध करके, कुपित होकर और प्रचण्ड रूप धारण कर कहना—'अरे पद्मनाभ ! मौत की कामना करने वाले ! अनन्त कुलक्षणो वाले ! पुण्यहीन ! चतुर्दशी के दिन जन्मे हुए (अथवा हीनपुण्य वाली चतुर्दशी अर्थात् कृष्ण पक्ष की चौदस को जन्मे हुए) श्री, लज्जा और बुद्धि से हीन ! आज तू नहीं बचेगा। क्या तू नहीं जानता कि तू कृष्ण वासुदेव की भगिनी द्रौपदी देवी को यहाँ ले आया है ? खैर, जो हुआ सो हुआ, अब भी तू द्रौपदी देवी कृष्ण वासुदेव को लौटा दे अथवा युद्ध के लिए तैयार होकर बाहर निकल। कृष्ण वासुदेव पाँच पाण्डवो के साथ छठे आप द्रौपदी देवी को वापिस छीनने के लिए अभी-अभी यहाँ आ पहुँचे हैं।'

१८१—तए णं से दारुए सारही कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे जाव पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता अमरकंकारायहाणिं अणुपविसइ अणुपविसित्ता जेणेव पउमनाभे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता करयल जाव वद्धावेत्ता एवं वयासी—'एस णं सामी ! मम विणयपडिवत्ती, इमा अन्ना मम सामियस्स समुहाणत्ति' त्ति कट्टु आसुरुत्ते वामपाएणं पायपीढं अणुक्कमति, अणुक्कमित्ता कोंतग्गेण लेहं पणामइ, पणामित्ता जाव कूवं हव्वमागए।

तत्पश्चात् वह दारुक सारथी कृष्ण वासुदेव के इस प्रकार कहने पर हर्षित और सतुष्ट हुआ। यावत् उसने यह आदेश अगीकार किया। अगीकार करके अमरकका राजधानी मे प्रवेश किया। प्रवेश करके पद्मनाभ के पास गया। वहाँ जाकर दोनो हाथ जोडकर यावत् अभिनन्दन किया और कहा—स्वामिन् ! यह मेरी अपनी विनय प्रतिपत्ति (शिष्टाचार) है। मेरे स्वामी के मुख से कही हुई आज्ञा दूसरी है। वह यह है। इस प्रकार कह कर उसने नेत्र लाल करके और क्रुद्ध होकर अपना वाम पैर से उसने पादपीठ को आक्रान्त किया—ठुकराया। भाले की नोक से लेख दिया। फिर कृष्ण वासुदेव का समस्त आदेश कह सुनाया, यावत वे स्वय द्रौपदी को वापिस लेने के लिए आ पहुँचे हैं।

१८२—तए णं से पउमणाभे दारुएणं सारहिणा एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते तिवलिं भिउडिं

निडाले साहट्टु एव वयासी—'णो अप्पणामि ण अह देवाणुप्पिया ! कण्हस्स वासुदेवस्स दोवइ, एस ण अह सयमेव जुज्झसज्जो निग्गच्छामि, त्ति कटटु दारुय सारहिं एव वयासी—'केवल भो ! रायसत्थेसु दूए अवज्झे' त्ति कट्टु असक्कारिय असम्माणिय अवद्दारेण णिच्छुभावेइ ।

तत्पश्चात् पद्मनाभ ने दारुक सारथी के इस प्रकार कहने पर नेत्र लाल करके और क्रोध से कपाल पर तीन सल वाली भृकुटी चढा कर कहा—'देवानुप्रिय ! मै कृष्ण वासुदेव को द्रौपदी वापिस नही दू गा। मैं स्वय ही युद्ध करने के लिए सज्ज होकर निकलता हूँ। इस प्रकार कहकर फिर दारुक सारथी से कहा—'हे दूत ! राजनीति मे दूत अवध्य है (केवल इसी कारण मैं तुझ नही मारता)।' इस प्रकार कहकर सत्कार—सम्मान न करके—अपमान करके, पिछले द्वार से उसे निकाल दिया।

१८३—तए ण से दारुए सारही पउमनाभेण असक्कारिय जाव [असम्माणिय अवद्दारेण] निच्छूढे समाणे जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहिय जाव कण्ह एव वयासी—'एव खलु अह सामी ! तुब्भ वयणेण जाव णिच्छुभावेइ।'

वह दारुक सारथि पद्मनाभ राजा के द्वारा असत्कृत हुआ, यावत् पिछले द्वार से निकाल दिया गया, तब कृष्ण वासुदेव के पास पहुँचा। पहुच कर दोनो हाथ जोड कर कृष्ण वासुदेव से यावत् बोला—'स्वामिन् ! मैं आपके वचन (आदेश) से राजा पद्मनाभ के पास गया था, इत्यादि पूर्ववत्, यावत् उसने मुझे पिछले द्वार से निकाल दिया'— इत्यादि समग्र वृत्तान्त कहा।

पद्मनाभ-पाण्डव युद्ध

१८४—तए ण से पउमणाभे बलवाउय सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! आभिसेक्क हत्थिरयण पडिकप्पेह।' तयाणतर च ण छेयायरिय उवदेस मइविकप्पणा-विगप्पेहिं जाव [सुनिउणेहिं उज्जलणेवत्थि हत्थपरिवत्थिय सुसज्ज जाव आभिसेक्क हत्थिरयण पडिकप्पेह पडिकप्पेत्ता] उवणेइ। तए ण से पउमनाहे सन्नद्ध जाव[1] अभिसेय दुरुहइ, दुरुहित्ता हयगय[2] जेणेव कण्हे वासुदेवे तणेव पहारेत्थ गमणाए।

कृष्ण वासुदेव के दूत को निकलवा देने के पश्चात् इधर पद्मनाभ राजा ने सेनापति को बुलाया और उससे कहा—'देवानुप्रिय ! अभिषेक किए हुए हस्तिरत्न को तैयार करके लाओ।' यह आदेश सुनकर कुशल आचार्य के उपदेश से उत्पन्न हुई बुद्धि की कल्पना के विकल्पो (प्रकारो) से निपुण पुरुषो (महावतो) ने अभिषेक किया हुआ हस्ति उपस्थित किया। वह उज्ज्वल वेष से परिवृत था, सुसज्जित था। तत्पश्चात् पद्मनाभ राजा कवच आदि धारण करके सज्जित हुआ, यावत् अभिषेक किये हाथी पर सवार हुआ। सवार होकर अश्वो, हाथियो आदि की चतुरंगिणी सेना के साथ वहा जाने को उद्यत हुआ जहाँ वासुदेव कृष्ण थे।

१८५—तए ण से कण्हे वासुदेवे पउमनाभ रायाण एज्जमाण पासइ, पासित्ता ते पच पडवे एव वयासी—'ह भो दारगा ! किं तुब्भे पउमनाभेण सद्धि जुज्झिहिह उयाहु पेच्छिहिह ?'

1 अ १६, सूत्र १०७ 2 अ १६ सूत्र १७४

तए ण पच पडवा कण्हं वासुदेव एव वयासी—'अम्हे ण सामी ! जुज्झामो, तुब्भे पेच्छह ।'

तए ण पच पडवे सन्नद्ध जाव पहरणा रहे दुरूहंति, दुरूहित्ता जेणेव पउमनाभे राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता एव वयासी—'अम्हे पउमणाभे वा राय त्ति कट्टु पउमनाभेण सद्धि सपलग्गा यावि होत्था ।

तत्पश्चात् वासुदेव ने पद्मनाभ राजा को आता देखा। देख कर वह पाचो पाण्डवो से बोले—'अरे बालको ! तुम पद्मनाभ के साथ युद्ध करोगे या युद्ध देखोगे ?'

तब पाच पाण्डवो ने कृष्ण वासुदेव से कहा—'स्वामिन् ! हम युद्ध करेंगे और आप हमारा युद्ध देखिए ।'

तत्पश्चात् पाचो पाण्डव तैयार होकर यावत् शस्त्र लेकर रथ पर सवार हुए और जहाँ पद्मनाभ था, वहाँ पहुँचे । पहुँच कर 'आज हम हैं या पद्मनाभ राजा है ।' ऐसा कहकर वे युद्ध करने में जुट गये ।

पाण्डवो का पराजय

१८६—तए ण से पउमनाभे राया ते पच पडवे खिप्पामेव हय-महिय पवरवीर घाइयविवडिय चिंधद्धय-पडागे जाव [किच्छोवगयपाणे] दिसोदिसिं पडिसेहेइ । तए ण ते पच पडवा पउमणाभेण रण्णा हयमहियपवरवीर घाइयविवडिय जाव पडिसेहिया समाणा अत्थामा जाव अधारणिज्ज त्ति कट्टु जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छंति । तए ण से कण्हे वासुदेवे ते पच पडवे एव वयासी—'कहण्ण तुब्भे देवाणुप्पिया ! पउमनाभेण रण्णा सद्धि सपलग्गा ?'

तए ण ते पच पडवा कण्हं वासुदेव एव वयासी—'एव खलु देवाणुप्पिया ! अम्हे तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया समाणा सन्नद्ध-बद्ध वम्मिय कवया रहे दुरूहामो, दुरूहित्ता जेणेव पउमणाभे जाव पडिसेहेइ ।'

तत्पश्चात् पद्मनाभ राजा ने उन पाचो पाण्डवो पर शीघ्र ही शस्त्र से प्रहार किया, उनके अहंकार को मथ डाला और उनकी उत्तम चिह्न से चिह्नित पताका गिरा दी । मुश्किल से उनके प्राणो की रक्षा हुई । उसने उन्हें इधर-उधर भगा दिया । तब वे पाचो पाण्डव पद्मनाभ राजा द्वारा शस्त्र से आहत, मथित अहंकार वाले और पतित पताका वाले होकर यावत् पद्मनाभ के द्वारा भगाए हुए, शत्रुसेना का निराकरण करने मे असमर्थ होकर, वासुदेव कृष्ण के पास आये । तब वासुदेव कृष्ण ने पाचों पाण्डवो से कहा—'देवानुप्रियो ! तुम लोग पद्मनाभ राजा के साथ किस प्रकार [किस शर्त के साथ] युद्ध मे सलग्न हुए थे ?'

तब पाचो पाण्डवो ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय ! हम आपकी आज्ञा पाकर सुसज्जित होकर रथ पर आरूढ हुए । आरूढ होकर पद्मनाभ के सामने गये, इत्यादि सब पूर्ववत् कहना चाहिए, यावत् उसने हमें भगा दिया ।'

१८७—तए ण कण्हे वासुदेवे ते पच पडवे एव वयासी—'जइ ण तुब्भे देवाणुप्पिया ! एवं वयंता—अम्हे, णो पउमणाभे राय त्ति पउमणाभेण सद्धि सपलग्गता, तो ण तुब्भे णो पउमनाहे

हयमहियपवर जाव पडिसेहते । त पेच्छह ण तुब्भे देवाणुप्पिया ! 'अह, णो पउमणाभे राय' त्ति कट्टु पउमनाभेण रन्ना सद्धि जुज्झामि । रह दुरूहइ, दुरूहित्ता जेणेव पउमनाभे राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सेय गोखीर हार-धवल तणसोल्लिय सिंदुवार कुदेंदु सन्निगास नियबलस्स हरिसजणण रिउसेण्णविणासकर पचजण्ण सख परामुसइ परामुसित्ता मुहवायपूरिय करेइ ।

पाण्डवो का उत्तर सुनकर कृष्ण वासुदेव ने पाचो पाण्डवो से कहा—देवानुप्रियो ! अगर तुम ऐसा बोले होते कि 'हम है, पद्मनाभ राजा नही' और ऐसा कहकर पद्मनाभ के साथ युद्ध मे जुटते तो पद्मनाभ राजा तुम्हारा हनन नही कर सकता था । (तुमने बोलने मे भूल की, इसी कारण तुम्हे भाग कर आना पडा ।) हे देवानुप्रियो ! अब तुम देखना । 'मैं हूँ, पदमनाभ राजा नही' इस प्रकार कह कर मैं पद्मनाभ के साथ युद्ध करता हूँ । इसके बाद कृष्ण वासुदेव रथ पर आरूढ हुए । आरूढ होकर पदमनाभ राजा के पास पहुँचे । पहुँच कर उन्होने श्वेत, गाय के दूध और मोतियो के हार के समान उज्ज्वल, मल्लिका के फूल, मालती-कुसुम, सिन्दुवार-पुष्प, कुन्दपुष्प और चन्द्रमा के समान श्वेत, अपनी सेना को हर्ष उत्पन्न करने वाला पाञ्चजन्य शख हाथ मे लिया और मुख की वायु से उसे पूर्ण किया, अर्थात् फूँका ।

१८८—तए ण तस्स पउमनाहस्स तेण सखसद्देण बल तिभाए हए जाव[1] पडिसेहिए । तए ण से कण्हे वासुदेवे धणु परामुसइ, वेढो, धणु पूरेइ, पूरित्ता धणुसद्द करेइ । तए ण तस्स पउमनाभस्स दोच्चे बल तिभाए धणुसद्देण हयमहिय जाव पडिसेहिए । तए ण से पउमनाभे राया तिभागबलावसेसे अत्थामे अबले अवीरिए अपुरिसक्कारपरक्कमे अधारणिज्ज त्ति कट्टु सिग्घ तुरिय जेणेव अमरकका तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अमरकक रायहाणि अणुपविसइ, अणुपविसित्ता दाराइ पिहेइ, पिहित्ता रोहसज्जे चिट्ठइ ।

तत्पश्चात् उस शख के शब्द से पद्मनाभ की सेना का तिहाई भाग हत हो गया, यावत् दिशा दिशा मे भाग गया । उसके बाद कृष्ण वासुदेव ने सारग नामक धनुप हाथ मे लिया । यहाँ एक वेढ कह लेना चाहिए । धनुप पर प्रत्यचा चढाई । प्रत्यचा चढा कर टकार की । तब पद्मनाभ की सेना का दूसरा तिहाई भाग उस धनुप की टकार से हत-मथित हो गया यावत् इधर-उधर भाग छूटा । तब पद्मनाभ की सेना का एक तिहाई भाग ही शेप रह गया । अतएव पद्मनाभ सामर्थ्यहीन, बलहीन, वीर्यहीन और पुरुपार्थ पराक्रम से हीन हो गया । वह कृष्ण के प्रहार को सहन करने या निवारण करने मे असमर्थ होकर शीघ्रतापूर्वक, त्वरा के साथ, अमरकका राजधानी मे जा घुसा । उसने अमरकका राजधानी के अन्दर घुस कर द्वार बद कर लिए । द्वार बद करके वह नगररोध के लिए सज्ज होकर स्थित हो गया ।

विवेचन—मूल मे आए वेढ (वेष्टक)—अर्थ है—एक वस्तुविपयक पदपद्धति । यह वेढ यहाँ धनुपविषयक समझना चाहिए । टीका के अनुसार वह इस प्रकार है—

अइरुग्गयबालचद इदधणुसन्निगास वरमहिस-दरिय-दप्पिय-दढघणसिंगग्गरइयसार, उरगवर-पवरगवल पवरपहुरय-भमरकुल-नीलिनिद्ध-धतधोयपट्ट, निउणोविय-मिसिमिमित-मणिरयणघटिया-

[1] अ १६ सूत्र १८६

जालपरिक्खित्त, तडित तरुणकिरण-तवणिज्जबद्धचिंध, दद्दरमलयगिरिसिहर-केसरचामरवाल-अद्धचंदचिंध, काल-हरिय-रत्त-पीय-सुक्किल्ल-बहुण्हारुणिसंपिणद्धजीव, जीवियंतकर —

भावार्थ—यह श्रीकृष्ण के धनुष का वर्णन है। वह इस प्रकार है—कृष्ण का धनुष शुक्लपक्ष की द्वितीया के अचिर-उदित—जिसे उदित हुए बहुत समय न हुआ हो ऐसे चन्द्रमा और इन्द्रधनुष के समान वक्र था, अतीव दृप्त-मदमाते उत्तम महिष के दृढ और सघन श्रृंगों के अग्रभागों से बनाया गया था, कृष्ण सर्प, श्रेष्ठ भैंसे के सींग, उत्तम कोकिला, भ्रमर निकर और नील की गोली के सदृश उज्ज्वल स्निग्ध-काली कान्ति से युक्त उसका पृष्ठ भाग था, किसी कुशल कलाकार द्वारा उजाले गए—चमकाए हुए—मणिरत्नों की घंटियों के समूह से वेष्टित था, चमकती बिजली की किरणों जैसे स्वर्ण-चिह्नों से सुशोभित था, दर्दर और मलय पर्वत शिखरों पर विचरण करने वाले सिंह की गर्दन के बालों (अयाल) तथा चमरों की पूंछ के केशों के एवं अर्द्धचन्द्र के लक्षणों—चिह्नों से युक्त था, काली, हरी, लाल, पीली और श्वेत वर्ण की नसों से उसकी जीवा (प्रत्यंचा) बंधी थी। वह धनुष शत्रुओं के जीवन का अन्त करने वाला था।

१८९—तए णं से कण्हे वासुदेवे जेणेव अमरकंका तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रहं ठवेइ, ठवित्ता रहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ, समोहणित्ता एगं महं णरसीहरूवं विउव्वइ, विउव्वित्ता महया महया सद्देणं पाददद्दरियं करेइ। तए णं से कण्हेणं वासुदेवेणं महया महया सद्देणं पाददद्दरएणं कएणं समाणेणं अमरकंका रायहाणी संभग्गपागार-गोपुराट्टालय-चरिय-तोरण-पल्हत्थियपवरभवण-सिरिघरा सरस्सरस्स धरणियले सन्निवइया।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव जहाँ अमरकंका राजधानी थी, वहाँ गये। वहाँ जाकर रथ ठहराया। रथ से नीचे उतरे। वैक्रियसमुद्घात से समवहत हुए अर्थात् समुद्घात किया। समुद्घात करके उन्होंने एक महान् नरसिंह का रूप धारण किया। फिर जोर-जोर के शब्द करके पैरों का आस्फालन किया—पैर पछाड़े। कृष्ण वासुदेव के जोर-जोर की गर्जना के साथ पैर पछाड़ने से अमरकंका राजधानी के प्राकार (परकोटा) गोपुर (फाटक) अट्टालिका (झरोखे) चरिका (परकोटा और नगर के बीच का मार्ग) और तोरण (द्वार का ऊपरी भाग) गिर गये और श्रेष्ठ महल तथा श्रीगृह (भंडार) चारों ओर से तहस-नहस होकर सरसराट करके धरती पर आ पड़े।

पद्मनाभ द्रौपदी की शरण में

१९०—तए णं पउमणाभे राया अमरकंकं रायहाणिं संभग्गं जाव पासित्ता भीए दोवइं देविं सरणं उवेइ। तए णं सा दोवई देवी पउमणाभं रायं एवं वयासी—'किण्णं तुमं देवाणुप्पिया! न जाणसि कण्हस्स वासुदेवस्स उत्तमपुरिसस्स विप्पियं करेमाणे मम इह हव्वमाणेसि? तं एवमवि गए गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! ण्हाए उल्लपडसाडए अवचूलगवत्थणियत्थे अंतेउरपरियालसंपरिवुडे अग्गाइं वराइं रयणाइं गहाय मम पुरतो काउं कण्हं वासुदेवं करयलपायपडिए सरणं उवेहि, पणिवइयवच्छला णं देवाणुप्पिया! उत्तमपुरिसा।

तत्पश्चात् पद्मनाभ राजा अमरकंका राजधानी को पूर्वोक्त प्रकार से बुरी तरह भग्न हुई पाकर भयभीत होकर द्रौपदी देवी की शरण में गया। तब द्रौपदी देवी ने पद्मनाभ राजा से

कहा—देवानुप्रिय ! क्या तुम नही जानते कि पुरुषोत्तम कृष्ण वासुदेव का विप्रिय करते हुए तुम मुझे यहा लाये हो ? किन्तु जो हुआ सो हुआ। अब देवानुप्रिय ! तुम जाओ। स्नान करो। पहनने और ओढने के वस्त्र गीले (पानी नितरते हुए) धारण करो। पहने हुए वस्त्र का छोर नीचा रखो अर्थात् काछ खुली रखो। अन्त पुर की रानियो आदि परिवार को साथ मे ले लो। प्रधान और श्रेष्ठ रत्न भेंट के लिए लो। मुझे आगे कर लो। इस प्रकार चलकर कृष्ण वासुदेव को दोनो हाथ जोड कर उनके परो मे गिरो और उनकी शरण ग्रहण करो। देवानुप्रिय ! उत्तम पुरुष प्रणिपतित-वत्सल होते हैं—अर्थात् जो उनके सामने नम्र होते है, उन पर दया और प्रसन्नता प्रकट करते है। (ऐसा करने से ही तुम्हारी नगरी आदि की रक्षा होगी। अन्यथा नही)।

द्रौपदी समर्पण

१९१—तए ण से पउमणाभे दोवईए देवीए एयमट्ठ पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता ण्हाए जाव सरण उवेइ, उवइत्ता करयल एव वयासी—'दिट्ठा ण देवाणुप्पियाण इड्ढी जाव परक्कमे, त खामेमि ण देवाणुप्पिया ! जाव खमतु ण जाव णाह भुज्जो एव करणयाए' त्ति कट्टु पजलिउडे पायवडिए कण्हस्स वासुदेवस्स दोवइ देविं साहत्थि उवणेइ।

उस समय पद्मनाभ ने द्रौपदी देवी के इस अर्थ को अगीकार किया। अगीकार करके द्रौपदी देवी के कथनानुसार स्नान आदि करके कृष्ण वासुदेव की शरण मे गया। वहाँ जाकर दोनो हाथ जोड कर इस प्रकार कहने लगा—'मैंने आप देवानुप्रिय की ऋद्धि देख ली, पराक्रम देख लिया। हे देवानुप्रिय ! मैं क्षमा की प्रार्थना करता हूँ, आप यावत् क्षमा करे। यावत् मैं पुन ऐसा नही करू गा।' इस प्रकार कह कर उसने हाथ जोडे। पैरो मे गिरा। उसने अपने हाथो द्रौपदी देवी सौंपी।

१९२—तए ण से कण्हे वासुदेवे पउमणाभ एव वयासी—'ह भो पउमणाभा ! अप्पत्थियपत्थिया ! किण्ण तुम ण जाणसि मम भगिणिं दोवइ देविं इह हव्वमाणमाणे ? त एवमवि गए णत्थि ते ममाहितो इयाणिं भयमत्थि' त्ति कट्टु पउमणाभ पडिविसज्जेइ, पडिविसज्जित्ता दोवइ देविं गिण्हइ, गिण्हित्ता रह दुरूहेइ, दुरूहित्ता जेणेव पच पडवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पचण्ह पडवाण दोवइ देविं साहत्थि उवणेइ।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने पद्मनाभ से इस प्रकार कहा—'अरे पद्मनाभ अप्रार्थित (मृत्यु) की प्रार्थना करने वाले ! क्या तू नही जानता कि तू मेरी भगिनी द्रौपदी देवी को जल्दी से यहाँ ले आया है ? ऐसा होने पर भी, अब तुझे मुझसे भय नही है !' इस प्रकार कह कर पद्मनाभ को छुट्टी दी। उसे छुटकारा देकर द्रौपदी देवी को ग्रहण किया और रथ पर आरूढ हुए। रथ पर आरूढ होकर पाँच पाण्डवो के समीप आये। वहाँ आकर द्रौपदी देवी को हाथों-हाथ पाँचो पाण्डवो को सौंप दिया।

१९३—तए ण से कण्हे पर्चाहि पडवेहि सद्धि अप्पछट्ठे छहि रहेहि लवणसमुद्द मज्झमज्झेण जेणेव जबुद्दीवे दीवे, जेणेव भारहे वासे, तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तत्पश्चात् पाँचो पाण्डवो के साथ, छठे आप स्वय कृष्ण वासुदेव छह रथो मे बैठकर, लवण-समुद्र के बीचोंबीच होकर जिधर जम्बूद्वीप था और जिधर भारतवर्ष था उधर जाने को उद्यत हुए

१९४—तेण कालेण तेण समएण धायइसंडे पुरिच्छमद्धे भारहे वासे चंपा णामं णयरी होत्था। पुण्णभद्दे चेइए। तत्थ णं चंपाए णयरीए कविले णामं वासुदेवे राया होत्था, महया हिमवंत वण्णओ'।

उस काल और उस समय में, धातकीखंडद्वीप में, पूर्वार्ध भाग के भरतक्षेत्र में, चम्पा नामक नगरी थी। पूर्णभद्र नामक चैत्य था। उस चम्पा नगरी में कपिल नामक वासुदेव राजा था। वह महान् हिमवान् पर्वत के समान महान् था। यहाँ राजा का वर्णन कह लेना चाहिए।

वासुदेवों का ध्वनि-मिलन

१९५—तेण कालेण तेण समएण मुणिसुव्वए अरहा चंपाए पुण्णभद्दे समोसढे। कविले वासुदेवे धम्मं सुणेइ। तए णं से कविले वासुदेवे मुणिसुव्वयस्स अरहओ धम्मं सुणमाणे कण्हस्स वासुदेवस्स संखसद्दं सुणेइ। तए णं तस्स कविलस्स वासुदेवस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए समुप्पज्जित्था—'किं मण्णे धायइसंडे दीवे भारहे वासे दोच्चे वासुदेवे समुप्पण्णे जस्स णं अयं संखसद्दे मम पिव मुहवायपूरिए वियम्भइ?'

उस काल और उस समय में मुनिसुव्रत नामक अरिहंत चम्पा नगरी के पूर्णभद्र चैत्य में पधारे। कपिल वासुदेव ने उनसे धर्मोपदेश श्रवण किया। उसी समय मुनिसुव्रत अरिहंत से धर्म श्रवण करते-करते कपिल वासुदेव ने कृष्ण वासुदेव के पाँचजन्य शंख का शब्द सुना। तब कपिल वासुदेव के चित्त में इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ—'क्या धातकीखण्ड द्वीप के भारतवर्ष में दूसरा वासुदेव उत्पन्न हो गया है? जिसके शंख का शब्द ऐसा फैल रहा है, जैसे मेरे मुख की वायु से पूरित हुआ हो—मैंने बजाया हो।'

१९६—'कविला वासुदेवा, सद्दाइ (सुणेइ)' मुणिसुव्वए अरहा कविलं वासुदेवं एवं वयासी—'से णूणं ते कविला! वासुदेवा! मम अंतिए धम्मं निसामेमाणस्स संखसद्दं आकण्णित्ता इमेयारूवे अज्झत्थिए समुप्पण्णे—'किं मण्णे जाव वियम्भइ, से णूणं कविला! वासुदेवा! अयमट्ठे समट्ठे?

'हंता अत्थि।'

'कपिल वासुदेव' इस प्रकार से सम्बोधित करके मुनिसुव्रत अरिहन्त ने कपिल वासुदेव से कहा—'हे कपिल वासुदेव! मेरे धर्म श्रवण करते हुए तुम्हें यह विचार आया है कि—'क्या इस भरतक्षेत्र में दूसरा वासुदेव उत्पन्न हो गया है, जिसके शंख का यह शब्द फैल रहा है' आदि, 'हे कपिल वासुदेव! मेरा यह अर्थ (कथन) सत्य है?'

(कपिल वासुदेव ने उत्तर दिया)—'हाँ सत्य है।'

१९७—'नो खलु कविला! वासुदेवा! एवं भूयं वा, भवइ वा, भविस्सइ वा जन्नं एगे खेत्ते, एगे जुगे, एगे समए दुवे अरहंता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा वा उप्पज्जिंसु वा, उप्पज्जंति वा, उप्पज्जिस्संति वा। एवं खलु वासुदेवा! जंबुद्दीवाओ दीवाओ भारहाओ वासाओ

१ औपपातिक सूत्र में राजवर्णन देखिए।

हत्थिणाउरनयराओ पडुस्स रण्णो सुण्हा पचण्ह पंडवाण भारिया दोवई देवी तव पउमणाभस्स रण्णो पुव्वसगतिएण देवेण अमरककाणयरिं साहरिया। तए ण से कण्हे वासुदेवे पचहिं पडवेहिं सद्धि अप्पछट्ठे छहिं रहेहिं अमरकक रायहाणिं दोवईए देवीए कूव हव्वमागए। तए ण तस्स कण्हस्स वासुदेवस्स पउमनाभेण रण्णा सद्धि सगाम सगामेमाणस्स अय सखसद्दे तव मुहवायपूरिते इव इट्ठे कते इहेव वियभइ।[1]

मुनिसुव्रत अरिहत ने पुन कहा—'कपिल वासुदेव ! ऐसा कभी हुआ नही, होता नही और होगा नही कि एक क्षेत्र मे एक ही युग मे और एक ही समय मे दो तीर्थंकर, दो चक्रवर्ती, दो बलदेव अथवा दो वासुदेव उत्पन्न हुए हो, उत्पन्न होते हो या उत्पन्न होगे। हे वासुदेव ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे, भरतक्षेत्र से, हस्तिनापुर नगर से पाण्डु राजा की पुत्र-वधु और पाच पाण्डवो की पत्नी द्रौपदी देवी को तुम्हारे पद्मनाभ राजा का पहले का साथी देव हरण करके ले आया था। तब कृष्ण वासुदेव पाच पाण्डवो समेत आप स्वय छठे द्रौपदी देवी को वापिस छीनने के लिए शीघ्र आये हैं। वह पद्मनाभ राजा के साथ सग्राम कर रहे है। अत कृष्ण वासुदव के शख का यह शब्द है, जो ऐसा जान पडता है कि तुम्हारे मुख की वायु से पूरित किया गया हो और जो इष्ट है, कान्त है और यहा तुम्हे सुनाई दिया है।'

१९८—तए ण से कविले वासुदेवे मुणिसुव्वय वदइ, नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—'गच्छामि ण अह भते ! कण्ह वासुदेव उत्तमपुरिस पासामि।'

तए ण मुणिसुव्वए अरहा कविल वासुदेव एव वयासी—'नो खलु देवाणुप्पिया ! एव भूय वा, भवइ वा, भविस्सइ वा जण्ण अरिहता वा अरिहत पासति, चक्कवट्टी वा चक्कवट्टि पासति, बलदेवा वा बलदेव पासति, वासुदेवा वा वासुदेव पासति। तह वि य ण तुम कण्हस्स वासुदेवस्स लवणसमुद्द मज्झमज्झेण वीइवयमाणस्स सेयापीयाइ धयग्गाइ पासिहिसि।'

तत्पश्चात् कपिल वासुदेव ने मुनिसुव्रत तीर्थंकर को वन्दना की, नमस्कार किया। वदना नमस्कार करके कहा—'भगवन् ! मैं जाऊँ और पुरुषोत्तम कृष्ण वासुदेव को देखूँ—उनके दर्शन करूँ।'

तव मुनिसुव्रत अरिहन्त ने कपिल वासुदेव से कहा—'देवानुप्रिय ! ऐसा हुआ नही, होता नही और होगा नही कि एक तीर्थंकर दूसरे तीर्थंकर को देखें, एक चक्रवर्ती दूसरे चक्रवर्ती को देखे, एक बलदेव दूसरे बलदेव को देखे और एक वासुदेव दूसरे वासुदेव को देखें। तब भी तुम लवणसमुद्र के मध्य भाग मे होकर जाते हुए कृष्ण वासुदेव के श्वेत एव पीत ध्वजा के अग्रभाग को देख सकोगे।'

१९९—तए ण कविले वासुदेवे मुणिसुव्वय वदइ, नमसइ, वदित्ता नमसित्ता हत्थिखध दुरूहइ, दुरूहित्ता सिग्घ सिग्घ जेणेव वेलाउले तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कण्हस्स वासुदेवस्स लवणसमुद्द मज्झमज्झेण वीइवयमाणस्स सेयापीयाइ धयग्गाइ पासइ, पासित्ता एव वयइ—'एस ण मम सरिसपुरिसे उत्तमपुरिसे कण्हे वासुदेवे लवणसमुद्द मज्झमज्झेण वीईवयइ' त्ति कट्टु पचयन्न सख परामुसइ मुहवायपूरिय करेइ।

तत्पश्चात् कपिल वासुदेव ने मुनिसुव्रत तीर्थंकर को वन्दन और नमस्कार किया। वन्दन

१ पाठान्तर—'इव वियभइ'।

नमस्कार करके वह हाथी के स्कंध पर आरूढ हुए। आरूढ होकर जल्दी-जल्दी जहाँ वेलाकूल (लवणसमुद्र का किनारा) था, वहाँ आये। वहाँ आकर लवणसमुद्र के मध्य में होकर जाते हुए कृष्ण वासुदेव की श्वेत-पीत ध्वजा का अग्रभाग देखा। देखकर कहने लगे—'यह मेरे समान पुरुष हैं, यह पुरुषोत्तम कृष्ण वासुदेव हैं, लवणसमुद्र के मध्य में होकर जा रहे हैं। ऐसा कहकर कपिल वासुदेव ने अपना पाञ्चजन्य शंख हाथ में लिया और उसे अपनी मुख की वायु से पूरित किया—फूंका।

२००—तए णं से कण्हे वासुदेवे कविलस्स वासुदेवस्स संखसद्दं आयन्नेइ, आयन्नित्ता पंचयन्नं जाव पूरियं करेइ। तए णं दो वि वासुदेवा संखसद्दसामायारिं करेंति।

तब कृष्ण वासुदेव ने कपिल वासुदेव के शंख का शब्द सुना। सुनकर उन्होंने भी अपने पाञ्चजन्य को यावत् मुख की वायु से पूरित किया। उस समय दोनों वासुदेवों ने शंख की समाचारी की, अर्थात् शंख के शब्द द्वारा मिलाप किया।

२०१—तए णं से कविले वासुदेवे जेणेव अमरकंका तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अमरकंकं रायहाणिं संभग्गतोरणं जाव[1] पासइ, पासित्ता पउमणाभं एवं वयासी—'किण्णं देवाणुप्पिया! एसा अमरकंका रायहाणी संभग्ग जाव[2] सन्निवइया?'

तत्पश्चात् कपिल वासुदेव जहाँ अमरकंका राजधानी थी, वहाँ आए। आकर उन्होंने देखा कि अमरकंका के तोरण आदि टूट-फूट गये हैं। यह देखकर उन्होंने पद्मनाभ से पूछा—'देवानुप्रिय! अमरकंका के तोरण आदि भग्न होकर क्यों पड़ गए हैं।'

२०२—तए णं से पउमनाभे कविलं वासुदेवं एवं वयासी—'एवं खलु सामी! जंबुद्दीवाओ दीवाओ भारहाओ वासाओ इहं हव्वमागम्म कण्हेणं वासुदेवेणं तुब्भे परिभूय अमरकंका जाव[3] सन्निवाइया।'

तब पद्मनाभ ने कपिल वासुदेव से इस प्रकार कहा—'स्वामिन्! जम्बूद्वीप नामक द्वीप से, भारतवर्ष से, यहाँ एकदम आकर कृष्ण वासुदेव ने, आपका पराभव करके, आपका अपमान करके, अमरकंका को यावत् गिरा दिया है—अर्थात् इस भग्नावस्था में पहुँचा दिया है।'

श्रीकृष्ण का लौटना : पांडवों की शरारत

२०३—तए णं से कविले वासुदेवे पउमणाहस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा पउमणाहं एवं वयासी—'हं भो पउमणाभा! अपत्थियपत्थिया! किं णं तुमं न जाणसि मम सरिसपुरिसस्स कण्हस्स वासुदेवस्स विप्पियं करेमाणे?' आसुरुत्ते जाव [रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे तिवलियं भिउडिं निडाले साहट्टु] पउमणाहं णिव्विसयं आणवेइ, पउमणाहस्स पुत्तं अमरकंकारायहाणीए महया महया रायाभिसेएणं अभिसिंचइ, जाव पडिगए।

तत्पश्चात् कपिल वासुदेव, पद्मनाभ से ... पद्मनाभ ने ... अप्रार्थित की प्रार्थना करने वाले! क्या तू नहीं ... मेरे समान ... का

---

[1]-[2] अ. १६ सूत्र २०१ [3] अ. १६ सूत्र २०२

अनिष्ट किया है ? इस प्रकार कहकर वह क्रुद्ध हुए, यावत् [रुष्ट, कुपित, प्रचण्ड हुए, मस्तक पर त्रिवलियुक्त भृकुटि चढाकर] पद्मनाभ को देश-निर्वासन की आज्ञा दे दी। पद्मनाभ के पुत्र को अमरकका राजधानी मे महान् राज्याभिषेक से अभिषिक्त किया। यावत् कपिल वासुदेव वापिस चले गये।

२०४—तए ण से कण्हे वासुदेवे लवणसमुद्द मज्झमज्झेण वीइवयइ, गग उवागए, ते पच पडवे एव वयासी—'गच्छह ण तुब्भे देवाणुप्पिया ! गगामहानदिं उत्तरह जाव ताव अह सुट्ठिय देव लवणाहिवइ पासामि।'

तए ण पच पडवा कण्हेण वासुदेवेण एव वुत्ता समाणा जेणेव गगा महानदी तेणेव उवागच्छति उवागच्छित्ता एगट्ठियाए णावाए मग्गणगवेसण करेंति, करित्ता एगट्ठियाए नावाए गगामहानदिं उत्तरंति, उत्तरित्ता अण्णमण्ण एव वयति—'पहू ण देवाणुप्पिया ! कण्हे वासुदेवे गगामहाणइ वाहाहिं उत्तरित्तए ? उदाहु णो पभू उत्तरित्तए ?' त्ति कट्टु एगट्ठिय नाव णूमेति, णूमित्ता कण्ह वासुदेव पडिवालेमाणा पडिवालेमाणा चिट्ठति।

इधर कृष्ण वासुदेव लवणसमुद्र के मध्य भाग से जाते हुए गगा नदी के पास आये। तब उन्होने पाच पाण्डवो से कहा—'देवानुप्रियो ! तुम लोग जाओ। जब तक गगा महानदी को उतरो, तब तक मैं लवणसमुद्र के अधिपति सुस्थित देव से मिल लेता हूँ।'

तब वे पाचों पाण्डव, कृष्ण वासुदेव के ऐसा कहने पर जहाँ गगा महानदी थी, वहाँ आये। आकर एक नौका की खोज की। खोज कर उस नौका से गगा महानदी उतरे। उतरकर परस्पर इस प्रकार कहने लगे—'देवानुप्रिय ! कृष्ण वासुदेव गगा महानदी को अपनी भुजाओ से पार करने मे समर्थ हैं अथवा समर्थ नही है ? (चलो, इस बात की परीक्षा करें), ऐसा कह कर उन्होने वह नौका छिपा दी। छिपा कर कृष्ण वासुदेव की प्रतीक्षा करते हुए स्थित रहे।

२०५—तए ण से कण्हे वासुदेवे सुट्ठिय लवणाहिवइ पासइ, पासित्ता जेणेव गगा महाणदी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एगट्ठियाए सव्वओ समता मग्गणगवेसण करेइ, करित्ता एगट्ठिय णाव अपासमाणे एगाए बाहाए रह सतुरग ससारहिं गेण्हइ, एगाए बाहाए गग महाणदिं बासट्ठि जोयणाइ अद्धजोयण च वित्थिन्न उत्तरिउ पयत्ते यावि होत्था।

तए ण कण्हे वासुदेवे गगामहाणईए बहूमज्झदेसभाग सपत्ते समाणे सते तते परितते बद्धसेए जाए यावि होत्था।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव लवणाधिपति सुस्थित देव से मिले। मिलकर जहाँ गगा महानदी थी वहाँ आये। वहाँ आकर उन्होंने सब तरफ नौका की खोज की, पर खोज करने पर भी नौका दिखाई नही दी। तब उन्होने अपनी एक भुजा से अश्व और सारथी सहित रथ ग्रहण किया और दूसरी भुजा से बासठ योजन और आधा योजन अर्थात् साढे बासठ योजन विस्तार वाली गगा महानदी को पार करने के लिए उद्यत हुए।

कृष्ण वासुदेव जब गगा महानदी के बीचोबीच पहुँचे तो थक गये, नौका की इच्छा करने लगे और बहुत खेदयुक्त हो गये। उन्हे पसीना आ गया।

२०६—तए णं कण्हस्स वासुदेवस्स इमे एयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—'अहो णं पंच पंडवा महाबलवग्गा, जेहिं गंगा महाणदी बासट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं च वित्थिन्ना बाहाहिं उत्तिण्णा। इच्छंतएहिं णं पंचहिं पंडवेहिं पउमणाभे राया जाव णो पडिसेहिए।'

तए णं गंगा देवी कण्हस्स इमं एयारूवं अज्झत्थियं जाव जाणित्ता थाहं वियरइ। तए णं से कण्हे वासुदेवे मुहुत्ततरं समासासेइ, समासासित्ता गंगामहाणदिं बासट्ठिं जाव उत्तरइ, उत्तरित्ता जेणेव पंच पंडवा तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता पंच पंडवे एवं वयासी—अहो णं तुब्भे देवाणुप्पिया! महाबलवगा, जेणं तुब्भेहिं गंगा महाणदी बासट्ठिं जाव उत्तिण्णा, इच्छंतएहिं पउमनाहे जाव णो पडिसेहिए।

उस समय कृष्ण वासुदेव को इस प्रकार का विचार आया कि—'अहा, पांच पाण्डव बड़े बलवान् हैं, जिन्होंने साढे बासठ योजन विस्तार (पाट) वाली गंगा महानदी अपने बाहुओं से पार करली।[1] (जान पड़ता है कि) पांच पाण्डवों ने इच्छा करके अर्थात् चाह कर या जान-बूझकर ही पद्मनाभ राजा को पराजित नहीं किया।'

तब गंगा देवी ने कृष्ण वासुदेव का ऐसा अध्यवसाय यावत् मनोगत संकल्प जानकर थाह दे दी—जल का थल कर दिया। उस समय कृष्ण वासुदेव ने थोड़ी देर विश्राम किया। विश्राम लेने के बाद साढे बासठ योजन विस्तृत गंगा महानदी पार की। पार करके पांच पाण्डवों के पास पहुँचे। वहाँ पहुँच कर पांच पाण्डवों से बोले—'अहो देवानुप्रियो! तुम लोग महाबलवान् हो, क्योंकि तुमने साढे बासठ योजन विस्तार वाली गंगा महानदी अपने बाहुबल से पार की है। तब तो तुम लोगों ने चाह कर ही पद्मनाभ को पराजित नहीं किया।'

२०७—तए णं पंच पंडवा कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ता समाणा कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—'एवं खलु देवाणुप्पिया! अम्हे तुब्भेहिं विसज्जिया समाणा जेणेव गंगा महाणदी तेणेव उवागच्छामो, उवागच्छित्ता एगट्ठियाए मग्गणगवेसणं तं चेव जाव णूमेमो, तुब्भे पडिवालेमाणा चिट्ठामो।'

तब कृष्ण वासुदेव के इस प्रकार कहने पर पांच पाण्डवों ने कृष्ण वासुदेव से कहा—'देवानुप्रिय! आपके द्वारा विसर्जित होकर अर्थात् आज्ञा पाकर हम लोग जहाँ गंगा महानदी थी, वहाँ आये। वहाँ आकर हमने नौका की खोज की। उस नौका से पार पहुँच कर आपके बल की परीक्षा करने के लिए हमने नौका छिपा दी। फिर आपकी प्रतीक्षा करते हुए हम यहाँ ठहरे हैं।'

श्रीकृष्ण का पाण्डवों पर रोष—देशनिर्वासन

२०८—तए णं कण्हे वासुदेवे तेसिं पंचण्हं पंडवाणं एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म आसुरुत्ते जाव तिवलियं एवं वयासी—'अहो णं जया मए लवणसमुद्दं दुवे जोयणसयसहस्सा वित्थिन्नं वीईवइत्ता पउमणाभं हयमहियं जाव पडिसेहित्ता अमरकंका संभग्गा, दोवई साहत्थिं उवणीया, तया णं तुब्भेहिं मम माहप्पं ण विण्णायं, इयाणिं जाणिस्सह!' त्ति कट्टु लोहदंडं परामुसइ, पंचण्हं पंडवाणं रहे चूरेइ, चूरित्ता णिव्विसए आणवेइ आणवित्ता तत्थ णं रहमद्दणे नाम कोट्टे णिविट्ठे।

पांच पाण्डवों का यह अर्थ (उत्तर) सुनकर और समझ कर कृष्ण वासुदेव कुपित हो उठे

---

1 अ. १६ सूत्र २०१

उनकी तीन बल वाली भृकुटि ललाट पर चढ गई। वह बोले—'ओह, जब मैंने दो लाख योजन विस्तीर्ण लवणसमुद्र को पार करके पद्मनाभ को हत और मथित करके, यावत् पराजित करके अमरकंका राजधानी को तहस-नहस किया और अपने हाथो से द्रौपदी लाकर तुम्हे सौंपी, तब तुम्हे मेरा माहात्म्य नही मालूम हुआ! अब तुम मेरा माहात्म्य जान लोगे! इस प्रकार कहकर उन्होने हाथ मे एक लोहदण्ड लिया और पाण्डवो के रथ को चूर-चूर कर दिया। रथ चूर-चूर करके उन्हे देश-निर्वासन की आज्ञा दी। फिर उस स्थान पर रथमर्दन नामक कोट स्थापित किया—रथमर्दन तीर्थ की स्थापना की।

२०९—तए ण से कण्हे वासुदेवे जेणेव सए खधावारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सएण खधावारेण सद्धि अभिसमन्नागए यावि होत्था। तए ण से कण्हे वासुदेवे जेणेव बारवई नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बारवइ णयरि अणुपविसइ।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव अपनी सेना के पडाव (छावनी) मे आये। आकर अपनी सेना के साथ मिल गये। उसके पश्चात् कृष्ण वासुदेव जहाँ द्वारका नगरी थी, वहाँ आये। आकर द्वारका नगरी मे प्रविष्ट हुए।

२१०—तए ण ते पच पडवा जेणेव हत्थिणाउरे णयरे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता जेणेव पडू तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता करयल जाव एव वयासी—'एव खलु ताओ! अम्हे कण्हेण णिव्विसया आणत्ता।'

तए ण पडुराया ते पच पडवे एव वयासी—'कह ण पुत्ता! तुब्भे कण्हेण वासुदेवेण णिव्विसया आणत्ता?'

तए ण ते पच पडवा पडुराय एव वयासी—'एव खलु ताओ! अम्हे अमरकंकाओ पडिनियत्ता लवणसमुद्द दोण्णि जोयणसयसहस्साइ वीइवइत्था तए ण से कण्हे वासुदेवे अम्हे एव वयासी—'गच्छह ण तुब्भे देवाणुप्पिया! गगामहाणदि उत्तरह'[1] जाव चिट्ठह, ताव अह एव तहेव जाव चिट्ठेमो। तए ण से कण्हे वासुदेवे सुट्ठिय लवणाहिवइ दट्ठूण त चेव सव्व, नवर कण्हस्स चिंता ण वुज्जइ (वुच्चइ), जाव अम्हे णिव्विसए आणवेइ।'

तत्पश्चात् वे पाचो पाण्डव हस्तिनापुर नगर आये। पाण्डु राजा के पास पहुँचे। वहाँ पहुँच कर और हाथ जोड कर बोले—'हे तात! कृष्ण ने हमे देशनिर्वासन की आज्ञा दी है।'

तब पाण्डु राजा ने पाच पाण्डवो से प्रश्न किया—'पुत्रो! किस कारण वासुदेव ने तुम्हे देशनिर्वासन की आज्ञा दी?'

तब पाच पाण्डवो ने पाण्डु राजा को उत्तर दिया—तात! हम लोग अमरकंका से लौटे और दो लाख योजन विस्तीर्ण लवणसमुद्र को पार कर चुके, तब कृष्ण वासुदेव ने हमसे कहा—देवानुप्रियो! तुम लोग चलो, गगा महानदी पार करो यावत् मेरी प्रतीक्षा करते हुए ठहरना। तब तक मैं सुस्थित देव से मिलकर आता हूँ—इत्यादि पूर्ववत् कहना। हम लोग गगा महानदी पार करके नौका छिपा कर उनकी राह देखते ठहरे। तदनन्तर कृष्ण वासुदेव लवणसमुद्र के अधिपति

1. अ. १६ सूत्र २०४-२०७

सुस्थित देव से मिल कर आये। इत्यादि सब पूर्ववत्—समग्र वृत्तान्त कहा, केवल कृष्ण के मन में जो विचार उत्पन्न हुआ था, वह नहीं कहना। यावत् कुपित होकर उन्होंने हमें देशनिर्वासन की आज्ञा दे दी।

२११—तए णं से पंडुराया ते पंच पंडवे एवं वयासी—'दुट्ठु णं पुत्ता! कयं कण्हस्स वासुदेवस्स विप्पियं करेमाणेहिं।'

तब पाण्डु राजा ने पांच पाण्डवों से कहा—'पुत्रो! तुमने कृष्ण वासुदेव का अप्रिय (अनिष्ट) करके बुरा काम किया।'

२१२—तए णं पंडू राया कोंतिं देविं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'गच्छ णं तुमं देवाणुप्पिया! बारवइं कण्हस्स वासुदेवस्स निवेदेहि—'एवं खलु देवाणुप्पिया! तुम्हे पंच पंडवा णिव्विसया आणत्ता, तुमं च णं देवाणुप्पिया! दाहिणड्ढभरहस्स सामी, तं संदिसंतु णं देवाणुप्पिया! ते पंच पंडवा कयरं देसं वा दिसिं वा विदिसिं वा गच्छंतु?'

तदनन्तर पाण्डु राजा ने कुन्ती देवी को बुलाकर कहा—'देवानुप्रिये! तुम द्वारका जाओ और कृष्ण वासुदेव से निवेदन करो कि—'हे देवानुप्रिय! तुमने पांचों पाण्डवों को देशनिर्वासन की आज्ञा दी है, किन्तु हे देवानुप्रिय! तुम तो समग्र दक्षिणार्ध भरतक्षेत्र के अधिपति हो। अतएव हे देवानुप्रिय! आदेश दो कि पांच पाण्डव किस देश में या दिशा अथवा किस विदिशा में जाएँ—कहाँ निवास करें?

२१३—तए णं सा कोंती पंडुणा एवं वुत्ता समाणी हत्थिखंधं दुरूहइ, दुरूहित्ता जहा हेट्ठा जाव—'संदिसंतु णं पिउच्छा! किमागमणपओयणं?

तए णं सा कोंती कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु पुत्ता! तुमे पंच पंडवा निव्विसया आणत्ता, तुमं च णं दाहिणड्ढभरह [स्स सामी। तं संदिसंतु णं देवाणुप्पिया ते पंच पंडवा कयरं देसं वा दिसं वा] जाव विदिसिं वा गच्छंतु?

तब कुन्ती देवी, पाण्डु राजा के इस प्रकार कहने पर हाथी के स्कंध पर आरूढ होकर पहले कहे अनुसार द्वारका पहुँची। अग्र उद्यान में ठहरी। कृष्ण वासुदेव को सूचना करवाई। कृष्ण स्वागत के लिए आये। उन्हें महल में ले गये। यावत् पूछा—'हे पितृभगिनी! आज्ञा कीजिए, आपके आने का क्या प्रयोजन है?'

तब कुन्ती देवी ने कृष्ण वासुदेव से कहा—'हे पुत्र! तुमने पांचों पाण्डवों को देश निकाले का आदेश दिया है और तुम समग्र दक्षिणार्ध भरतक्षेत्र के स्वामी हो, तो बतलाओ वे किस देश में, किस दिशा या विदिशा में जाएँ?'

पाण्डु मथुरा की स्थापना

२१४—तए णं से कण्हे वासुदेवे कोंतिं देविं एवं वयासी—'अपूइवयणा णं पिउच्छा! उत्तमपुरिसा—वासुदेवा बलदेवा चक्कवट्टी। तं गच्छंतु णं देवाणुप्पिए! पंच पंडवा दाहिणिल्लं वेयालिं, तत्थ पंडुमहुरं निवेसंतु, मम अदिट्ठसेवगा भवंतु।' त्ति कट्टु सक्कारेइ, सम्माणेइ, जाव [सक्कारित्ता सम्माणित्ता] पडिविसज्जेइ।

तब कृष्ण वासुदेव ने कुन्ती देवी से कहा—'पितृभगिनी! उत्तम पुरुष अर्थात् वासुदेव बलदेव और चक्रवर्ती अपूतिवचन होते हैं—उनके वचन मिथ्या नही होते। (वे कहकर बदलते नह हैं, अत मैं देशनिर्वासन की आज्ञा वापिस लेने मे असमर्थ हूँ) देवानुप्रिये! पाचो पाडव दक्षि दिशा के वेलातट (समुद्र किनारे) जाएँ, वहाँ पाण्डु-मथुरा नामक नयी नगरी बसायें और मेरे अदृ सेवक होकर रहे अर्थात् मेरे सामने न आएँ। इस प्रकार कहकर उन्होने कुन्ती देवी का सत्कार सम्मान किया, यावत् [सत्कार-सम्मान करके] उन्हे विदा दी।

२१५—तए ण सा कोती देवी जाव पडुस्स एयमट्ठ णिवेदेइ। तए ण पडू राया पच पड सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'गच्छह ण तुब्भे पुत्ता! दाहिणिल्ल वेयालि, तत्थ ण तुब्भे पडुमहुर णिवेसेह।'

तए ण पच पडवा पडुस्स रण्णो जाव [एयमट्ठ] तह त्ति पडिसुर्णेति, पडिसुणि सबलवाहणा हयगय हत्थिणाउराओ पडिणिक्खमति, पडिणिक्खमित्ता जेणेव दक्खिणिल्ले वेयाल तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता पडुमहुर नयरि निवेसति, निवेसित्ता तत्थ ण ते विपुलभोग समितिसमण्णागया यावि होत्था।

तत्पश्चात् कुन्ती देवी ने द्वारवती नगरी से आकर पाण्डु राजा को यह अर्थ (वृत्तान्त निवेदन किया। तब पाण्डु राजा ने पाचो पाण्डवो को बुलाकर कहा—'पुत्रो! तुम दक्षिणी वेलात (समुद्र के किनारे) जाओ वहाँ पाण्डुमथुरा नगरी बसा कर रहो।'

तब पाचो पाण्डवो ने पाण्डु राजा की यह बात 'तथास्तु—ठीक है' कह कर स्वीकार की स्वीकार करके बल और वाहनो के साथ घोडे और हाथी [आदि की चतुरगिणी सेना तथा अने भटो को] साथ लेकर हस्तिनापुर से बाहर निकले। निकल कर दक्षिणी वेलातट पर पहुँचे पाण्डुमथुरा नगरी की स्थापना की। नगरी की स्थापना करके वे वहा विपुल भोगो के समूह युक्त हो गये—सुखपूर्वक निवास करने लगे।

पाण्डुसेन का जन्म

२१६—तए ण सा दोवई देवी अन्नया कयाइ आवण्णसत्ता जाया यावि होत्था। तए दोवई देवी णवण्ह मासाण बहुपडिपुण्णाण जाव सुरूव दारग पयाया सूमाल, कोमलय गयतालु समाण, णिव्वत्तबारसाहस्स इम एयारूव गोण्ण गुणनिप्फण्ण नामधेज्ज करेंति—जम्हा ण अम्ह ए दारए पचण्ह पडवाण पुत्ते दोवईए देवीए अत्तए, त होउ अम्ह इमस्स दारगस्स णामधेज्ज 'पडुसेणे' तए ण तस्स दारगस्स अम्मापियरो णामधेज्ज करेंति पडुसेण त्ति।

तत्पश्चात् एक बार किसी समय द्रौपदी देवी गर्भवती हुई। फिर द्रौपदी देवी ने नौ मा यावत् सम्पूर्ण होने पर सुन्दर रूप वाले और सुकुमार तथा हाथी के तालु के समान कोमल बालक जन्म दिया। बारह दिन व्यतीत होने पर बालक के माता-पिता को ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि—क्योंकि हमारा यह बालक पाँच पाण्डवो का पुत्र है और द्रौपदी देवी का आत्मज है, अत इ बालक का नाम 'पाण्डुसेन' होना चाहिए। तत्पश्चात् उस बालक के माता-पिता ने उसका 'पाण्डुसे नाम रखा।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र के पश्चात् 'अंगसुत्ताणि' में रायपसेणियसूत्र के आधार पर निम्नलिखित पाठ अधिक दिया गया है—

तए णं तं पंडुसेणं दारयं अम्मापियरो साइरेगट्ठवासयं चेव सोहणंसि तिहि-करण-मुहुत्तंसि कलायरियस्स उवणेंति।

तए णं से कलायरिए पंडुसेणं कुमारं लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउणिरुयपज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ सुत्तओ य अत्थओ य करणओ य सेहावेइ, सिक्खावेइ।

'जाव अलं भोगसमत्थे जाए। जुवराया विहरइ।'

अर्थात्—पाण्डुसेन पुत्र जब कुछ अधिक आठ वर्ष का हो गया तो माता पिता शुभ तिथि, करण और मुहूर्त में उसे कलाचार्य के पास ले गये।

कलाचार्य ने पाण्डुसेन कुमार को लेखनकला से प्रारम्भ करके गणितप्रधान और शकुनिरुत तक की बहत्तर कलाएँ सूत्र-मूलपाठ-से, अर्थ से और करण-प्रयोग से सिखलाईं।

यथासमय पाण्डुसेन मानवीय भोग भोगने में समर्थ हो गया। वह युवराज पद पर प्रतिष्ठित हो गया।

प्रस्तुत पाठ के स्थान पर टीका वाली प्रति में संक्षिप्त पाठ इस प्रकार दिया गया है—

'बावत्तरिं कलाओ जाव भोगसमत्थे जाए, जुवराया जाव विहरइ।'

यद्यपि यह वर्णन प्रत्येक राजकुमार के लिए सामान्य है, इसमें कोई नवीन-मौलिक बात नहीं है, तथापि इससे आगे के पाठ में पाण्डवों की दीक्षा का प्रसंग वर्णित है। बालक के नामकरण के पश्चात् ही माता पिता के दीक्षा-प्रसंग का वर्णन आ जाए तो कुछ अटपटा-सा लगता है, अतएव बीच में इस पाठ का संकलन करना ही उचित प्रतीत होता है। पुत्र युवराज हो तो उसे राजसिंहासन पर आसीन करके माता-पिता प्रव्रजित हो जाएँ, यह जैन-परम्परा का वर्णन अन्यत्र भी देखा जाता है। अतएव किसी-किसी प्रति में उल्लिखित पाठ उपलब्ध न होने पर भी यहाँ उसका उल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है।

स्थविर-आगमन धर्म-श्रवण

२१७—तेणं कालेणं तेणं समएणं धम्मघोसा[1] थेरा समोसढा। परिसा निग्गया। पंडवा निग्गया, धम्मं सोच्चा एवं वयासी—'जं णवरं देवाणुप्पिया! दोवइं देविं आपुच्छामो, पंडुसेणं च कुमारं रज्जे ठावेमो, तओ पच्छा देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता जाव पव्वयामो।'

'अहासुहं देवाणुप्पिया!'

उस काल और समय में धर्मघोष स्थविर पधारे। धर्मश्रवण करने और उन्हें वन्दना करने के लिए परिषद् निकली। पाण्डव भी निकले। धर्म श्रवण करके उन्होंने स्थविर से कहा—'देवानुप्रिय! हमें संसार से विरक्ति हुई है, अतएव हम दीक्षित होना चाहते हैं, केवल द्रौपदी देवी से अनुमति ले लें और पाण्डुसेन कुमार को राज्य पर स्थापित कर दें। तत्पश्चात् देवानुप्रिय के निकट मुण्डित होकर यावत् प्रव्रज्या ग्रहण करेंगे।'

तब स्थविर धर्मघोष ने कहा—'देवानुप्रियो! जैसे तुम्हें सुख उपजे, वैसा करो।'

---

१ किन्हीं प्रतियों में 'धम्मघोसा' पद नहीं है।

२१८—तए ण ते पच पंडवा जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता दोवइ देविं सद्दावेंति, सद्दावित्ता एव वयासी—'एव खलु देवाणुप्पिए ! अम्हेहिं थेराण अतिए धम्मे णिसते जाव पव्वयामो, तुम देवाणुप्पिये ! किं करेसि ?'

तए ण सा दोवई देवी ते पच पडवे एव वयासी—'जइ ण तुब्भे देवाणुप्पिया ! ससार-भउव्विग्गा पव्वयह, मम के अण्णे आलबे वा जाव [आहारे वा पडिबधे वा] भविस्सइ ! अह पि य ण ससारभउव्विग्गा देवाणुप्पिएहिं सद्धि पव्वइस्सामि ।'

तत्पश्चात पाचो पाण्डव अपने भवन मे आये । आकर उन्होंने द्रौपदी देवी को बुलाया और उससे कहा—देवानुप्रिये ! हमने स्थविर मुनि से धर्म श्रवण किया है, यावत् हम प्रव्रज्या ग्रहण कर रहे हैं । देवानुप्रिये ! तुम्हे क्या करना है ?

तब द्रौपदी देवी ने पाचो पाण्डवो से कहा—'देवानुप्रियो ! यदि आप ससार के भय से उद्विग्न होकर प्रव्रजित होते हो तो मेरा दूसरा कौन अवलम्बन यावत् [या आधार है ? या प्रतिबन्ध है ?] अतएव मैं भी ससार के भय से उद्विग्न होकर देवानुप्रियो के साथ दीक्षा अगीकार करूँगी ।'

प्रव्रज्या-ग्रहण

२१९—तए ण पच पडवा पडुसेणस्स अभिसेओ जाव राया जाए जाव रज्ज पसाहेमाणे विहरइ । तए ण ते पच पडवा दोवई य देवी अन्नया कयाइ पडुसेण रायाण आपुच्छति ।

तए ण से पडुसेणे राया कोडुबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! निक्खमणाभिसेय करेह, जाव पुरिससहस्सवाहिणीओ सिवियाओ उवट्ठवेह ।' जाव पच्चोरुहति । जेणेव थेरा तेणेव, आलित्ते ण जाव[1] समणा जाया । चोद्दसपुव्वाइ अहिज्जति, अहिज्जित्ता बहूणि वासाणि छट्ठट्ठम दसम दुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं अप्पाण भावेमाणा विहरति ।

तत्पश्चात् पाचो पाण्डवो ने पाण्डुसेन का राज्याभिषेक किया । यावत् पाण्डुसेन राजा हो गया, यावत् राज्य का पालन करने लगा । तब किसी समय पाचो पाण्डवो ने और द्रौपदी ने पाण्डुसेन राजा से दीक्षा की अनुमति मागी ।

तब पाण्डुसेन राजा ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और उनसे कहा—'देवानुप्रियो ! शीघ्र ही दीक्षा-महोत्सव की तयारी करो और हजार पुरुषो द्वारा वहन करने योग्य शिविकाएँ तैयार करो । शेष वृत्तान्त पूर्ववत् जानना चाहिए, यावत् वे शिविकाओ पर आरूढ होकर चले और स्थविर मुनि के स्थान के पास पहुँच कर शिविकाओ से नीचे उतरे । उतर कर स्थविर मुनि के निकट पहुँचे । वहाँ जाकर स्थविर से निवेदन किया—भगवन् ! यह ससार जल रहा है आदि, यावत् पाचो पाण्डव श्रमण बन गये । चौदह पूर्वो का अध्ययन किया । अध्ययन करके बहुत वर्षों तक बेला, तेला, चोला, पचोला तथा अर्धमास-खमण, मासखमण आदि तपस्या द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे ।

२२०—तए ण सा दोवई देवी सीयाओ पच्चोरुहइ, जाव पव्वइया सुव्वयाए अज्जाए

१ अ. १ मेघकुमार का दीक्षाप्रसग देखिए ।

सिसिणीयत्ताए दलयति, इक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूणि वासाणि छट्ठट्ठमदसमदुवालसेहिं जाव विहरइ ।

द्रौपदी देवी भी शिविका से उतरी, यावत् दीक्षित हुई । वह सुव्रता आर्या को शिष्या के रूप में सौंप दी गयी । उसने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया । अध्ययन करके बहुत वर्षों तक वह षष्ठभक्त अष्टभक्त, दशमभक्त और द्वादशभक्त आदि तप करती हुई विचरने लगी ।

२२१—तए णं थेरा भगवंतो अन्नया कयाई पंडुमहुराओ णयरीओ सहस्संबवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमंति, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरंति ।

तत्पश्चात् किसी समय स्थविर भगवंत पाण्डुमथुरा नगरी के सहस्राम्रवन नामक उद्यान से निकले । निकल कर बाहर जनपदों में विचरण करने लगे ।

भगवान् अरिष्टनेमि का निर्वाण

२२२—तेणं कालेणं तेणं समएणं अरिहा अरिट्ठनेमी जेणेव सुरट्ठाजणवए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुरट्ठाजणवयंसि संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ । तए णं बहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खइ—'एवं खलु देवाणुप्पिया ! अरिहा अरिट्ठनेमी सुरट्ठाजणवए जाव विहरइ । तए णं से जुहिट्ठिल्लपामोक्खा पंच अणगारा बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा अन्नमन्नं सद्दावेंति, सद्दावित्ता एवं वयासी—

'एवं खलु देवाणुप्पिया ! अरहा अरिट्ठनेमी पुव्वाणुपुव्विं जाव विहरइ, तं सेयं खलु अम्हं थेरे भगवंते आपुच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं वंदणाए गमित्तए ।' अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति पडिसुणित्ता जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता थेरे भगवंते वंदंति, नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—'इच्छामो णं तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया समाणा अरहं अरिट्ठनेमिं जाव गमित्तए ।'

'अहासुहं देवाणुप्पिया !'

उस काल और उस समय में अरिहंत अरिष्टनेमि जहाँ सुराष्ट्र जनपद था, वहाँ पधारे । पधार कर सुराष्ट्र जनपद में संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे । उस समय बहुत जन परस्पर इस प्रकार कहने लगे—'हे देवानुप्रियो ! तीर्थंकर अरिष्टनेमि सुराष्ट्र जनपद में यावत् विचर रहे हैं ।' तब युधिष्ठिर प्रभृति पाँचों अनगारों ने बहुत जनों से यह वृत्तान्त सुन कर एक दूसरे को बुलाया और कहा—'देवानुप्रियो ! अरिहंत अरिष्टनेमि अनुक्रम से विचरते हुए यावत् सुराष्ट्र जनपद में पधारे हैं, अतएव स्थविर भगवंत से पूछकर तीर्थंकर अरिष्टनेमि को वन्दना करने के लिए जाना हमारे लिए श्रेयस्कर है ।' परस्पर की यह बात सब ने स्वीकार की । स्वीकार करके वे जहाँ स्थविर भगवन्त थे, वहाँ गये । जाकर स्थविर भगवंत को वन्दन-नमस्कार किया । वन्दन-नमस्कार करके उनसे कहा—'भगवन् ! आपकी आज्ञा पाकर हम अरिहंत अरिष्टनेमि को वन्दना करने हेतु जाने की इच्छा करते हैं ।'

स्थविर ने अनुज्ञा दी—'देवानुप्रियो ! जैसे सुख हो, वैसा करो ।'

२२३—तए ण ते जहुट्ठिलपामोक्खा पच अणगारा थेरेहिं अब्भणुण्णाया समाणा थेरे भगवते वदति, णमसति, वदित्ता णमसित्ता थेराण अतियाओ पडिणिक्खमति, पडिणिक्खमित्ता मासमासेण अणिक्खित्तेण तवोकम्मेण गामाणुगाम दूइज्जमाणा जाव जेणेव हत्थिकप्पे नयरे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता हत्थिकप्पस्स बहिया सहसबवणे उज्जाणे जाव विहरति ।

तत्पश्चात् उन युधिष्ठिर आदि पाचो अनगारो ने स्थविर भगवान् से अनुज्ञा पाकर उन्हे वन्दना-नमस्कार किया । वन्दना नमस्कार करके वे स्थविर के पास से निकले । निकल कर निरन्तर मासखमण करते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम आते हुए, यावत् जहाँ हस्तिकल्प नगर था, वहा पहुँचे । पहुँच कर हस्तिकल्प नगर के बाहर सहस्राम्रवन नामक उद्यान मे ठहरे ।

२२४—तए ण ते जुहिट्ठिलवज्जा चत्तारि अणगारा मासक्खमणपारणए पढमाए पोरिसीए सज्झाय करेंति बीयाए एव जहा गोयमसामी, णवर जुहिट्ठिल आपुच्छति, जाव अडमाणा बहुजणसद्द णिसामेति—'एव खलु देवाणुप्पिया ! अरहा अरिट्ठनेमी उज्जितसेलसिहरे मासिएण भत्तेण अपाणएण पर्चाहि छत्तीसेहिं अणगारसएहिं सद्धि कालगए सिद्धे बुद्धे मुत्ते अतगडे सव्वदुक्खप्पहीणे ।'

तत्पश्चात् युधिष्ठिर के सिवाय शेप चार अनगारो ने मासखमण के पारणक के दिन पहले प्रहर मे स्वाध्याय किया, दूसरे प्रहर मे ध्यान किया । शेप गौतमस्वामी के समान वणन जानना चाहिए । विशेप यह कि उन्होने युधिष्ठिर अनगार से पूछा—भिक्षा की अनुमति माँगी । फिर वे भिक्षा के लिए जब अटन कर रहे थे, तब उन्होने बहुत जनो से सुना—'देवानुप्रियो ! तीर्थंकर अरिष्टनेमि गिरिनार पवत के शिखर पर, एक मास का निजल उपवास करके, पाच सौ छत्तीस साधुओ के साथ काल-धम को प्राप्त हो गये हैं, यावत् सिद्ध, मुक्त, अन्तकृत् होकर समस्त दु खो से रहित हो गये हैं ।'

२२५—तए ण ते जुहिट्ठिलवज्जा चत्तारि अणगारा बहुजणस्स अतिए एयमट्ठं सोच्चा हत्थिकप्पाओ पडिणिक्खमति, पडिणिक्खमित्ता जेणेव सहसबवणे उज्जाणे, जेणेव जुहिट्ठिले अणगारे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता भत्तपाण पच्चुवेक्खति, पच्चुवेक्खित्ता गमणागमणस्स पडिक्कमति, पडिक्कमित्ता एसणमणेसण आलोएति, आलोइत्ता भत्तपाण पडिदसेंति, पडिदसित्ता एव वयासी—

तब युधिष्ठिर के सिवाय व चारो अनगार बहुत जनो के पास से यह अर्थ सुन कर हस्तिकल्प नगर से बाहर निकले । बाहर निकलकर जहाँ सहस्राम्रवन था और जहाँ युधिष्ठिर अनगार थे वहाँ पहुँचे । पहुँच कर आहार-पानी की प्रत्युपेक्षणा की, प्रत्युपेक्षणा करके गमनागमन का प्रतिक्रमण किया । फिर एपणा-अनेपणा की आलोचना की । आलोचना करके आहार-पानी दिखलाया । दिखला कर युधिष्ठिर अनगार से कहा—

२२६—'एव खलु देवाणुप्पिया ! जाव[1] कालगए, ते सेय खलु अम्ह देवाणुप्पिया ! इम पुव्वगहिय भत्तपाण परिट्ठवेत्ता सेत्तु ज पव्वय सणिय सणिय दुरुहित्तए, सलेहणा झूसणा-झोसियाण काल अणवकखमाणाण विहरित्तए, त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठ पडिसुर्णेति, पडिसुणित्ता त पुव्व-

१ अ १६ सूत्र २२४

सिस्सिणीयत्ताए दलयति, इक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूणि वासाणि छट्ठट्ठमदसमदुवालसेहिं जाव विहरइ।

द्रौपदी देवी भी शिबिका से उतरी, यावत् दीक्षित हुई। वह सुव्रता आर्या को शिष्या के रूप में सौंप दी गई। उसने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। अध्ययन करके बहुत वर्षों तक वह षष्ठभक्त, अष्टभक्त, दशमभक्त और द्वादशभक्त आदि तप करती हुई विचरने लगी।

२२१—तए णं थेरा भगवंतो अन्नया कयाई पंडुमहुराओ नयरीओ सहस्संबवणाओ उज्जाणाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरंति।

तत्पश्चात् किसी समय स्थविर भगवन्त पाण्डुमथुरा नगरी के सहस्राम्रवन नामक उद्यान से निकले। निकल कर बाहर जनपदों में विचरण करने लगे।

भगवान् अरिष्टनेमि का निर्वाण

२२२—तेणं कालेणं तेणं समएणं अरिहा अरिट्ठनेमी जेणेव सुरट्ठाजणवए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुरट्ठाजणवयंसि संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तए णं बहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खइ—'एवं खलु देवाणुप्पिया! अरिहा अरिट्ठनेमी सुरट्ठाजणवए जाव विहरइ।' तए णं से जुहिट्ठिल्लपामोक्खा पंच अणगारा बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा अन्नमन्नं सद्दावेंति, सद्दावित्ता एवं वयासी—

'एवं खलु देवाणुप्पिया! अरहा अरिट्ठनेमी पुव्वाणुपुव्विं जाव विहरइ, तं सेयं खलु अम्हं थेरे भगवंते आपुच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं वंदणाए गमित्तए।' अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता थेरे भगवंते वंदंति, नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—'इच्छामो णं तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया समाणा अरहं अरिट्ठनेमिं जाव गमित्तए।'

'अहासुहं देवाणुप्पिया!'

उस काल और उस समय में अरिहन्त अरिष्टनेमि जहाँ सुराष्ट्र जनपद था, वहाँ पधारे। पधार कर सुराष्ट्र जनपद में संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। उस समय बहुत जन परस्पर इस प्रकार कहने लगे—'हे देवानुप्रियो! तीर्थंकर अरिष्टनेमि सुराष्ट्र जनपद में यावत् विचर रहे हैं।' तब युधिष्ठिर प्रभृति पाँचों अनगारों ने बहुत जनों से यह वृत्तान्त सुन कर एक दूसरे को बुलाया और कहा—'देवानुप्रियो! अरिहन्त अरिष्टनेमि अनुक्रम से विचरते हुए यावत् सुराष्ट्र जनपद में पधारे हैं, अतएव स्थविर भगवन्त से पूछकर तीर्थंकर अरिष्टनेमि को वन्दना करने के लिए जाना हमारे लिए श्रेयस्कर है।' परस्पर की यह बात सबने स्वीकार की। स्वीकार करके वे जहाँ स्थविर भगवन्त थे, वहाँ गये। जाकर स्थविर भगवन्त को वन्दना-नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके उनसे कहा—'भगवन्! आपकी आज्ञा पाकर हम अरिहन्त अरिष्टनेमि को वन्दना करने हेतु जाने की इच्छा करते हैं।'

स्थविर ने अनुज्ञा दी—'देवानुप्रियो! जैसे सुख हो, वैसा करो।'

२२३—तए ण ते जहुट्ठिलपामोक्खा पच अणगारा थेरेहिं अब्भणुन्नाया समाणा थेरे भगवते वदति, णमसति, वदित्ता णमसित्ता थेराण अतियाओ पडिणिक्खमति, पडिणिक्खमित्ता मासमासेण अणिक्खित्तेण तवोकम्मेण गामाणुगाम दूइज्जमाणा जाव जेणेव हत्थिकप्पे नयरे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता हत्थिकप्पस्स बहिया सहसबवणे उज्जाणे जाव विहरति ।

तत्पश्चात् उन युधिष्ठिर आदि पाचो अनगारो ने स्थविर भगवान् से अनुज्ञा पाकर उन्हे वन्दना-नमस्कार किया । वन्दना नमस्कार करके वे स्थविर के पास से निकले । निकल कर निरन्तर मासखमण करते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम आते हुए, यावत् जहाँ हस्तिकल्प नगर था, वहाँ पहुँचे । पहुँच कर हस्तिकल्प नगर के बाहर सहस्राम्रवन नामक उद्यान मे ठहरे ।

२२४—तए ण ते जुहिट्ठिलवज्जा चत्तारि अणगारा मासक्खमणपारणए पढमाए पोरिसीए सज्झाय करेंति बीयाए एव जहा गोयमसामी, णवर जुहिट्ठिल आपुच्छति, जाव अडमाणा बहुजणसद्द णिसामेति—'एव खलु देवाणुप्पिया ! अरहा अरिट्ठनेमी उज्जितसेलसिहरे मासिएण भत्तेण अपाणएण पर्चाहि छत्तीसेहिं अणगारसएहिं सद्धि कालगए सिद्धे बुद्धे मुत्ते अतगडे सव्वदुक्खप्पहीणे ।'

तत्पश्चात् युधिष्ठिर के सिवाय शेष चार अनगारो ने मासखमण के पारणक के दिन पहले प्रहर मे स्वाध्याय किया, दूसरे प्रहर मे ध्यान किया । शेष गौतमस्वामी के समान वर्णन जानना चाहिए । विशेष यह कि उन्होने युधिष्ठिर अनगार से पूछा—भिक्षा की अनुमति मागी । फिर वे भिक्षा के लिए जब अटन कर रहे थे, तब उन्होने बहुत जनो से सुना—'देवानुप्रियो ! तीर्थंकर अरिष्टनेमि गिरिनार पर्वत के शिखर पर, एक मास का निर्जल उपवास करके, पाच सौ छत्तीस साधुओ के साथ काल-धर्म को प्राप्त हो गये है, यावत् सिद्ध, मुक्त, अन्तकृत् होकर समस्त दु खो से रहित हो गये हैं ।'

२२५—तए ण ते जुहिट्ठिलवज्जा चत्तारि अणगारा बहुजणस्स अतिए एयमट्ठे सोच्चा हत्थिकप्पाओ पडिणिक्खमति, पडिणिक्खमित्ता जेणेव सहसबवणे उज्जाणे, जेणेव जुहिट्ठिले अणगारे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता भत्तपाण पच्चुवेक्खति, पच्चुवेक्खित्ता गमणागमणस्स पडिक्कमति, पडिक्कमित्ता एसणमणेसण आलोएति, आलोइत्ता भत्तपाण पडिदसेंति, पडिदसित्ता एव वयासी—

तब युधिष्ठिर के सिवाय वे चारो अनगार बहुत जनो के पास से यह अर्थ सुन कर हस्तिकल्प नगर से बाहर निकले । बाहर निकलकर जहाँ सहस्राम्रवन था और जहाँ युधिष्ठिर अनगार थे वहाँ पहुँचे । पहुँच कर आहार-पानी की प्रत्युपेक्षणा की, प्रत्युपेक्षणा करके गमनागमन का प्रतिक्रमण किया । फिर एषणा-अनेषणा की आलोचना की । आलोचना करके आहार-पानी दिखलाया । दिखला कर युधिष्ठिर अनगार से कहा—

२२६—'एव खलु देवाणुप्पिया ! जाव[1] कालगए, ते सेय खलु अम्ह देवाणुप्पिया ! इम पुव्वगहिय भत्तपाण परिट्ठवेत्ता सेत्तु ज पव्वय सणिय सणिय दुरुहित्तए, सलेहणा झूसणा-झोसियाण काल अणवकखमाणाण विहरित्तए, त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठ पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता त पुव्व-

---

१ अ १६ सूत्र २२४

गहिय भत्तपाणं एगंते परिट्ठवेंति, परिट्ठवित्ता जेणेव सेत्तुंजे पव्वए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सेत्तुंजं पव्वयं दुरूहंति, दुरूहित्ता जाव कालं अणवकंखमाणा विहरंति।

'हे देवानुप्रिय! (हम आपकी अनुमति लेकर भिक्षा के लिए नगर में गये थे। वहाँ हमने सुना है कि तीर्थंकर अरिष्टनेमि) यावत् कालधर्म को प्राप्त हुए हैं। अतः हे देवानुप्रिय! हमारे लिए यही श्रेयस्कर है कि भगवान् के निर्वाण का वृत्तान्त सुनने से पहले ग्रहण किये हुए आहार-पानी को परठ कर धीरे-धीरे शत्रुंजय पर्वत पर आरूढ़ हों तथा संलेखना करके झोषणा (कर्म-शोषण की क्रिया) का सेवन करके और मृत्यु की आकांक्षा न करते हुए विचरें—रहें, इस प्रकार कह कर सबों ने परस्पर के इस अर्थ (विचार) को अंगीकार किया। अंगीकार करके पहले ग्रहण किया आहार-पानी एक जगह परठ दिया। परठ कर जहाँ शत्रुंजय पर्वत था, वहाँ गए। शत्रुंजय पर्वत पर आरूढ़ हुए। आरूढ़ होकर यावत् मृत्यु की आकांक्षा न करते हुए विचरने लगे।

पाण्डवों का निर्वाण

२२७—तए णं ते जुहिट्ठिल्लपामोक्खा पंच अणगारा सामाइयमाइयाइं चोद्दस पुव्वाइं अहिज्जित्ता बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणित्ता दोमासियाए संलेहणाए अत्ताणं झोसित्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे जाव[1] तमट्ठं आराहेंति। आराहित्ता अणंते जाव केवलवरनाणदंसणे समुप्पाडेत्ता जाव सिद्धा।

तत्पश्चात् उन युधिष्ठिर आदि पांचों अनगारों ने सामायिक से लेकर चौदह पूर्वों का अभ्यास करके बहुत वर्षों तक श्रामण्यपर्याय का पालन करके, दो मास की संलेखना से आत्मा को झोषण करके, जिस प्रयोजन के लिए नग्नता, मुण्डता आदि अंगीकार की जाती है उस प्रयोजन को सिद्ध किया। उन्हें अनन्त यावत् श्रेष्ठ केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त हुआ। यावत् वे सिद्ध हो गये।

आर्या द्रौपदी का स्वर्गवास

२२८—तए णं सा दोवई अज्जा सुव्वयाणं अज्जियाणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए आलोइयपडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा बंभलोए उववन्ना।

दीक्षा अंगीकार करने के पश्चात् द्रौपदी आर्या ने सुव्रता आर्या के पास सामायिक से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। अध्ययन करके बहुत वर्षों तक श्रामण्यपर्याय का पालन किया। अन्त में एक मास की संलेखना करके, आलोचना और प्रतिक्रमण करके तथा कालमास में काल करके (यथासमय निधन को प्राप्त होकर) ब्रह्मलोक नामक स्वर्ग में जन्म लिया।

२२९—तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। तत्थ णं दोवइस्स[2] देवस्स दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ब्रह्मलोक नामक पांचवें देवलोक में कितनेक देवों की दस सागरोपम की स्थिति कही गई है। वहाँ द्रौपदी (द्रुपद) देव की भी दस सागरोपम की स्थिति कही गई है।

1. औपपातिक सूत्र ११४   2. पाठान्तर—'दुवयस्स'।

द्रौपदी का भविष्य

२३०—से ण भंते ! दुवए देवे ताओ जाव [देवलोगाओ आउक्खएण ठिइक्खएण भवक्खएण अणतर चय चइत्ता] महाविदेहे वासे जाव अंत काहिइ।

गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर से प्रश्न किया—'भगवन् ! वह द्रुपद देव वहाँ से चय कर कहा जन्म लेगा ? तब भगवान् ने उत्तर दिया—'ब्रह्मलोक स्वर्ग से वहाँ की आयु, स्थिति एव भव का क्षय होने पर महाविदेह वर्ष में उत्पन्न होकर यावत् कर्मों का अन्त करेगा।

निक्षेप

२३१—एव खलु जंबू ! समणेण भगवया महावीरेण सोलसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि।

प्रकृत अध्ययन का उपसहार करते हुए श्री सुधर्मास्वामी ने जम्बूस्वामी से कहा—इस प्रकार निश्चय ही, हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर ने सोलहवें ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादित किया है। जसा मैंने सुना वैसा तुम्हे कहा है।

॥ सोलहवाँ अध्ययन समाप्त ॥

सत्रहवाँ अध्ययन : आकीर्ण

सार : संक्षेप

प्रस्तुत अध्ययन का नाम आकीर्णज्ञात है। आकीर्ण अर्थात् उत्तम जाति का अश्व। अश्वों के उदाहरण द्वारा यहाँ यह प्रतिपादन किया गया है कि जो साधक इन्द्रियों के वशवर्ती होकर, अनुकूल विषयों को प्राप्त करके उनमें लुब्ध हो जाते हैं, वे अपनी रागवृत्ति की उत्कटता के कारण दीर्घकाल तक भव भ्रमण करते हैं। जन्म-जरा मरण की वेदनाओं के अतिरिक्त भी उन्हें अनेक प्रकार की व्यथाएँ सहन करनी पड़ती हैं। इसके विपरीत, प्रलोभन-जनक विषयों में जो आसक्त नहीं होते, जो इन्द्रिय-विषयों से विमुख रहते हैं, वे अपने वीतरागभाव के कारण सांसारिक यातनाओं से बच जाते हैं। यही नहीं, वे सहज—स्वाभाविक असीम आत्मानन्द को प्राप्त कर लेते हैं। कथानक इस प्रकार है—

हस्तिशीर्ष नगर के कुछ नौकावणिक्—जलयान द्वारा समुद्र के रास्ते विदेश जाकर व्यापार करने वाले व्यापारी, व्यापार के लिए निकले। वे लवणसमुद्र में जा रहे थे कि अचानक तूफान आ गया। नौका आँधी के झोंकों से डगमगाने लगी। वणिक विचलित होने लगे। इधर-उधर चक्कर खाने लगी। निर्यामक की बुद्धि भी चक्कर खाने लगी। उसे दिशा का भान नहीं रहा—नौका किधर जा रही है, किस ओर जाना है, यह भी वह भूल गया। वणिकों के भी होश-हवास ठिकाने नहीं रहे। वे देवी-देवताओं की मनौती करने लगे।

गनीमत रही कि तूफान थोड़ी देर में शान्त हो गया। निर्यामक की चेतना जागृत हुई। दिशा का बोध हो आया। नौका कालिक-द्वीप के किनारे जा लगी।

कालिक-द्वीप में पहुँचने पर वणिकों ने देखा—वहाँ चाँदी, सोने, हीरों आदि रत्नों की प्रचुर खानें हैं। उन्होंने वहाँ उत्तम जाति के विविध वर्णों वाले अश्व भी देखे।

मगर वणिकों को अश्वों से कोई प्रयोजन नहीं था, अतएव वे चाँदी, सोना, हीरा आदि भर कर वापिस अपने नगर में—हस्तिशीर्ष—लौट आए।

तत्कालीन परम्परा के अनुसार वणिक बहुमूल्य उपहार लेकर राजा कनककेतु के समक्ष गए। राजा ने उनसे पूछा—देवानुप्रियो! आप लोग अनेक नगरों में भ्रमण करते हैं, समुद्रयात्रा भी करते हैं तो क्या इस बीच कुछ अद्भुत अनोखी वस्तु देखने में आई है?

वणिकों ने कालिक-द्वीप में अश्वों का उल्लेख किया, उनकी सुन्दरता का वर्णन कह सुनाया। तब राजा ने वणिकों को अश्व ले आने का आदेश दिया।

वणिक, राजा के सेवकों के [illegible] कालिक द्वीप गए। किन्तु उन्होंने देखा था कि वहाँ के अश्व मनुष्य [illegible] [illegible] के सहज ही पकड़ में आने वाले नहीं थे। अतएव वे लोग [illegible] [illegible] था। कालिक द्वीप पहुँच कर उन्होंने वह सामग्री बिखेर दी [illegible] गये, उस सामग्री में आसक्त हो फँस गए, वे बन्धन में फँस [illegible] [illegible] । यहाँ प्रतिपादित हो। से उन्हें

चाबुको की मार खानी पडी । वध-बन्धन के अनेकानेक कष्ट सहन करने पडे । उनकी स्वाधीनता का सुख नष्ट हो गया । पराधीनता मे जीवन-यापन करना पडा ।

कुछ अश्व ऐसे भी थे जो वणिको द्वारा बिखेरी गई लुभावनी सामग्री के जाल मे नही फँसे थे । वे जाल मे फँसने से भी बच गए । वे उस सामग्री से विमुख होकर दूर चल गए । उनकी स्वाधीनता नष्ट नही हुई । पराधीनता के कष्टो से वे बचे रहे । उन्हे न चाबुक आदि की मार सहनी पडी और न सवारी का काम करना पडा । वे स्वेच्छापूर्वक कालिक-द्वीप मे ही सुख से रहे ।

इस प्रकार जो कोई भी साधक इन्द्रियो के विषयो मे आसक्त हो जाता है, वह पराधीन बन जाता है । उसे वध-बन्धन सम्बन्धी अनेक प्रकार के कष्ट झेलने पडते हैं । दीर्घकाल तक ससार परिभ्रमण करना पडता है । इससे विपरीत, जो साधक इन्द्रियो पर सयम रखता है, उनके अधीन नही होता, वह स्वतत्र विहार करता हुआ इस भव मे सुख का भागी होता है और भविष्य मे राग-मोह का उच्छेदन करके अजर, अमर, अविनाशी बन जाता है । अनन्त आत्मिक आनन्द को उपलब्ध कर लेता है ।

इस अध्ययन मे अश्ववर्णन के प्रसग मे एक 'वेढ' आया है । वेढ जैन-आगमो मे यत्र-तत्र आने वाली एक विशिष्ट प्रकार की रचना है । वह रचना विशेषत द्रष्टव्य है ।

सत्तरसमं अज्झयणं : आइण्णे

जम्बूस्वामी की जिज्ञासा

१—'जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं सोलसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, सत्तरसमस्स णं णायज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?'

जम्बूस्वामी ने अपने गुरु श्री सुधर्मास्वामी से प्रश्न किया—'भगवन् ! यदि यावत् निर्वाण को प्राप्त जिनेन्द्रदेव श्रमण भगवान् महावीर ने सोलहवें ज्ञात-अध्ययन का यह (पूर्वोक्त) अर्थ कहा है तो सत्रहवें ज्ञात-अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?'

श्री सुधर्मा द्वारा समाधान

२—'एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं हत्थिसीसे णामं णयरे होत्था, वण्णओ[1]। तत्थ णं कणगकेऊ णामं राया होत्था, वण्णओ[2]।

श्री सुधर्मास्वामी ने जम्बूस्वामी की जिज्ञासा का समाधान करते हुए कहा—उस काल और उस समय में हस्तिशीर्ष नामक नगर था। यहाँ नगर-वर्णन जान लेना चाहिए। उस नगर में कनककेतु नामक राजा था। राजा का भी वर्णन औपपातिकसूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिए।

नौकावणिकों का कालिकद्वीपगमन

३—तत्थ णं हत्थिसीसे णयरे बहवे संजत्ताणावावाणियगा परिवसंति, अड्ढा जाव बहुजणस्स अपरिभूया यावि होत्था। तए णं तेसिं संजत्ताणावावाणियगाणं अन्नया कयाइं एगयओ सहियाणं जहा अरहण्णओ[3] जाव लवणसमुद्दं अणेगाइं जोयणसयाइं ओगाढा यावि होत्था।

उस हस्तिशीर्ष नगर में बहुत-से सांयात्रिक नौकावणिक् (देशान्तर में नौका-जहाज द्वारा व्यापार करने वाले व्यापारी) रहते थे। वे धनाढ्य थे, यावत् बहुत लोगों से भी पराभव न पाने वाले थे। एक बार किसी समय वे सांयात्रिक नौकावणिक् आपस में मिले। उन्होंने अर्हन्नक की भाँति समुद्रयात्रा पर जाने का विचार किया, वे लवणसमुद्र में कई सैकड़ों योजनों तक अवगाहन भी कर गये।

४—तए णं तेसिं जाव बहूणि उप्पाइयसयाइं जहा मागंदियदारगाणं जाव[4] कालियवाए य तत्थ समुत्थिए। तए णं सा णावा तेणं कालियवाएणं आघोलिज्जमाणी आघोलिज्जमाणी संचालिज्जमाणी संचालिज्जमाणी संखोहिज्जमाणी संखोहिज्जमाणी तत्थेव परिभमइ। तए णं से णिज्जामए णट्ठमईए णट्ठसुईए णट्ठसण्णे मूढदिसाभाए जाए यावि होत्था। ण जाणइ कयरं देसं वा दिसं वा विदिसं वा पोयवहणे अवहिए त्ति कट्टु ओहयमणसंकप्पे जाव झियायइ।

१-२ औपपातिक सूत्र ३ देखिए अष्टम अध्ययन ४ देखिए नवम अध्ययन सूत्र १०

उस समय उन वणिकों को माकन्दीपुत्रों के समान[1] सैकडो उत्पात हुए, यावत् समुद्री तूफान भी आरम्भ हो गया। उस समय वह नौका उस तूफानी वायु से बार-बार कापने लगी, बार-बार चलायमान होने लगी, बार-बार क्षुब्ध होने लगी और उसी जगह चक्कर खाने लगी। उस समय नौका के निर्यामक (खेवटिया) की बुद्धि मारी गई, श्रुति (समुद्रयात्रा सम्बन्धी शास्त्र का ज्ञान) भी नष्ट हो गई और सज्ञा (होश-हवास) भी गायब हो गई। वह दिशाविमूढ हो गया। उसे यह भी ज्ञान न रहा कि पोतवाहन (नौका) कौन-से प्रदेश मे है या कौन-सी दिशा अथवा विदिशा मे चल रहा है? उसके मन के सकल्प भग हो गये। यावत् वह चिन्ता मे लीन हो गया।

५—तए ण ते बहवे कुच्छिधारा य कण्णधारा य गब्भिल्लगा य सजत्ताणावावाणिया य जेणेव से निज्जामए तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता एव वयासी—'किण्ण तुम देवाणुप्पिया! ओहयमण-सकप्पे जाव [करयलपल्हत्यमुखे अट्टज्झाणोवगए] झियायसि?'

तए ण से णिज्जामए ते बहवे कुच्छिधारा य कण्णधारा य गब्भिल्लगा य सजत्ताणावावाणि-यगा य एव वयासी—'एव खलु अह देवाणुप्पिया! णट्ठमईए जाव[2] अवहिए त्ति कट्टु तओ ओहयमणसकप्पे जाव झियामि।'

उस समय बहुत-से कुक्षिधार (फावडा चलाने वाले नौकर), कर्णधार, गब्भिल्लक (भीतरी फुटकर काम करने वाले) तथा सायात्रिक नौकावणिक् निर्यामक के पास आये। आकर उससे बोले—देवानुप्रिय! नष्ट मन के सकल्प वाले होकर एव मुख हथेली पर रखकर चिन्ता क्यो कर रहे हो?

तब उस निर्यामक ने उन बहुत-से कुक्षिधारकों, कर्णधारो, गब्भिल्लकों और सायात्रिक नौकावणिको से कहा—'देवानुप्रियो! मेरी मति मारी गई है, यावत् पोतवाहन किस देश, दिशा या विदिशा मे जा रहा है, यह भी मुझे नही जान पडता। अतएव मैं भग्नमनोरथ होकर चिता कर रहा हूँ।'

६—तए ण ते कण्णधारा तस्स णिज्जामयस्स अतिए एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म भीया तत्या उव्विग्गा उव्विग्गमणा ण्हाया कयबलिकम्मा करयल परिग्गहिय दसनह सिरसावत्त मत्यए अजलि कट्टु बहूण इदाण य खदाण य जहा मल्लिनाए जाव[3] उवायमाणा उवायमाणा चिट्ठति।

तब वे कर्णधार उस निर्यामक से यह बात सुनकर और समझ कर भयभीत हुए, त्रस्त हुए, उद्विग्न हुए, घबरा गये। उन्होंने स्नान किया, बलिकर्म किया और हाथ जोडकर बहुत-से इन्द्र, स्कन्द (कार्तिकेय) आदि देवो की मल्लि-अध्ययन मे कहे अनुसार हाथ जोडकर मस्तक पर अजलि करके मनौती मनाने लगे।

७—तए ण से णिज्जामए तओ मुहुत्ततरस्स लद्धमईए, लद्धसुईए, लद्धसण्णे अमूढदिसाभाए जाए यावि होत्था। तए ण से णिज्जामए ते बहवे कुच्छिधारा य कण्णधारा य गब्भिल्लगा य सजत्ता णावावाणियगा य एव वयासी—'एव खलु अह देवाणुप्पिया! लद्धमईए जाव अमूढदिसाभाए जाए। अम्हे णं देवाणुप्पिया! कालियदीवतेण सवूढा, एस ण कालियदीवे आलोक्कइ।

---

१ देखिए, अध्ययन ९वा २ अ १७ सूत्र ४ ३ देखिए अष्टम अध्ययन

थोड़ी देर बाद वह निर्यामक लब्धमति, लब्धश्रुति, लब्धसंज्ञ और अदिङ्मूढ हो गया। अर्थात् उसकी बुद्धि लौट आई, शास्त्रज्ञान जाग गया, होश आ गया और दिशा का ज्ञान भी हो गया। तब उस निर्यामक ने उन बहुसंख्यक कुक्षिधारों, कर्णधारों, गर्भिल्लकों और सांयात्रिक नौकावणिकों से कहा—'देवानुप्रियो! मुझे बुद्धि प्राप्त हो गई है, यावत् मेरी दिशा-मूढता नष्ट हो गई। देवानुप्रियो! हम लोग कालिक-द्वीप के समीप आ पहुँचे हैं। यह कालिक-द्वीप दिखाई दे रहा है।'

८—तए णं ते कुच्छिधारा य कण्णधारा य गब्भिल्लगा य संजत्ताणावावाणियगा य तस्स निज्जामयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठा पयक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव कालियदीवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पोयवहणं लंबेंति, लंबित्ता एगट्ठियाहिं कालियदीवं उत्तरंति।

उस समय वे कुक्षिधार, कर्णधार, गर्भिल्लक तथा सांयात्रिक नौकावणिक् उस निर्यामक (खलासी) की यह बात सुनकर और समझकर हृष्ट-तुष्ट हुए। फिर दक्षिण दिशा के अनुकूल वायु की सहायता से वहाँ पहुँचे जहाँ कालिक-द्वीप था। वहाँ पहुँच कर लंगर डाला। लंगर डाल कर छोटी नौकाओं द्वारा कालिक द्वीप में उतरे।

कालिकद्वीप के आकर और अश्व

९—तत्थ णं बहवे हिरण्णागरे य सुवण्णागरे य रयणागरे य वइरागरे य बहवे तत्थ आसे पासंति। किं ते? हरिरेणुसोणिसुत्तगा आईणवेढो।

तए णं ते आसा ते वाणियए पासंति, पासित्ता तेसिं गंधं आघायंति, आघाइत्ता भीया तत्था उव्विग्गा उव्विग्गमणा तओ अणेगाइं जोयणाइं उब्भमंति, ते णं तत्थ पउरगोयरा पउरतणपाणिया निब्भया निरुव्विग्गा सुहंसुहेणं विहरंति।

उस कालिकद्वीप में उन्होंने बहुत-सी चाँदी की खानें, सोने की खानें, रत्नों की खानें, हीरे की खानें और बहुत से अश्व देखे। वे अश्व कैसे थे? वे आकीर्ण अर्थात् उत्तम जाति के थे। उनका वेढ अर्थात् वर्णन जातिमान् अश्वों के वर्णन के समान यहाँ समझ लेना चाहिए। वे अश्व नीले वर्ण वाली रेणु के समान वर्ण वाले और श्रोणिसूत्रक अर्थात् बालकों की कमर में बांधने के काले डोरे जैसे वर्ण वाले थे। (इसी प्रकार कोई श्वेत, कोई लाल वर्ण के थे)।

उन अश्वों ने उन वणिकों को देखा। देख कर उनकी गंध सूँघी। गंध सूँघ कर वे अश्व भयभीत हुए, त्रास को प्राप्त हुए, उद्विग्न हुए, उनके मन में उद्वेग उत्पन्न हुआ, अतएव वे कई योजन दूर भाग गए। वहाँ उन्हें बहुत से गोचर (चरने के घास-चरागाह) प्राप्त हुए। खूब घास और पानी मिलने से वे निर्भय एवं निरुद्विग्न होकर सुखपूर्वक वहाँ विचरने लगे।

विवेचन—अभयदेव कृत टीका वाली प्रति में तथा अन्य प्रतियों में 'हरिरेणुसोणिसुत्तग आईणवेढो' इतना ही संक्षिप्त पाठ ग्रहण किया गया है, किन्तु टीका में अश्वों के पूरे वर्ण का उल्लेख है। अंगसुत्ताणि (भाग ३) में भी यह उद्धृत है। तदनुसार विस्तृत पाठ इस प्रकार है—

हरिरेणु-सोणिसुत्तग-सकविल-मज्जार-पायवुक्कुड-वोंडसमुग्गयसामवण्णा ।
गोहूमगोरग गोरपाडलगोरा, पवालवण्णा य धूमवण्णा य केइ ॥१॥
तलपत्त-रिट्ठवण्णा य, सालिवण्णा य भासवण्णा य केइ ।
जपिय-तिल-कीडगा य, सोलोयरिट्ठगा य पुंडपइया य कणगपिट्ठा य केइ ॥२॥
चक्कागपिट्ठवण्णा सारसवण्णा य हंसवण्णा य केइ ।
केइत्थ अब्भवण्णा पक्कतल-मेघवण्णा य बाहुवण्णा य ॥३॥
संझाणुरागसरिसा सुयमुह-गुंजद्धराग-सरिसत्थ केइ ।
एला-पाडलगोरा सामलया-गवलसामला पुणो केइ ॥४॥

बहवे अण्णे अणिद्देसा, सामा कासीसरत्त-पीया, अच्चंत विसुद्धा वि य णं आइण्णग-जाइ-कुल-विणीय-गयमच्छरा ।

हयवरा जहोवएस-कम्मवाहिणो वि य णं सिक्खा विणीयविणया,
लंघण-वग्गण-धावण-तिवई-जईण-सिक्खियगई ।
किं ते ? मणसा वि उव्विहंताइं अणेगाइं आससयाइं पासंति ॥

भावार्थ—कालिक-द्वीप में पहुँचने पर नौका-वणिकों ने चांदी, सोने, रत्नों और हीरों की खानों के साथ विविध वर्ण वाले अश्वों को भी देखा। उन अश्वों में कोई-कोई नीले वर्ण की रेणु के समान, श्रोणिसूत्रक अर्थात् बालकों की कमर में बांधने के काले डोरे के समान तथा मार्जार, पादुकुक्कुट [विशेष जाति का कुकड़ा] एवं कच्चे कपास के फल के समान श्याम वर्ण वाले थे। कोई गेहूँ और पाटल पुष्प के समान गौर वर्ण वाले थे, कोई विद्रुम मूंगा के समान अथवा नवीन कोंपल के सदृश रक्तवर्ण—लाल थे, कोई धूमवर्ण-पाण्डुर धुंए जैसे रंग के थे।

कोई तालवृक्ष के पत्तों के सरीखे तो कोई रिष्ठा-मदिरा सरीखे वर्ण वाले थे। कोई शालिवर्ण-चावल जैसे रंग वाले और कोई भस्म जैसे रंग वाले थे। कोई पुराने तिलों के कीड़ों जैसे, कोई चमकदार रिष्टक रत्न जैसे वर्ण वाले, कोई धवल श्वेत पैरों वाले, कोई कनकपृष्ठ-सुनहरी पीठ वाले थे।

कोई सारस पक्षी की पीठ, चक्रवाक एवं हंस के समान श्वेत थे। कोई मेघ-वर्ण और कोई तालवृक्ष के पत्तों के समान वर्ण वाले थे। कोई रंगबिरंगे अर्थात् अनेक रंगों वाले थे।

कोई सध्याकाल की लालिमा, तोते की चोंच तथा गुंजा [चिरमी] के अर्धभाग के सदृश लाल थे, कोई एला-पाटल या एला और पाटल जैसे रंग के थे। कोई प्रियंगु-लता और महिषशृंग के समान श्यामवर्ण थे।

कोई-कोई अश्व ऐसे थे कि उनके वर्ण का निर्देश—कथन ही नहीं किया जा सकता, जैसे कोई श्यामाक (धान्य विशेष), कासीस (एक रक्तवर्ण द्रव्य), रक्त और पीत थे—अर्थात् चितकबरे (अनेक रंगों के) थे। वे अश्व विशुद्ध—निर्दोष थे। आकीर्ण अर्थात वेगवत्ता आदि गुणों वाली जाति एवं कुल के थे। विनीत, प्रशिक्षित (ट्रेनिंग पाए हुए) थे एवं परस्पर असहनशीलता से रहित थे—जैसे अन्य अश्व दूसरे अश्वों को सहन नहीं करते, एक दूसरे के निकट आते ही लड़ने लगते हैं, वैसे वे अश्व नहीं थे,

थोडी देर बाद वह निर्यामक लब्धमति, लब्धश्रुति, लब्धसंज्ञ और अदिङ्मूढ हो गया अर्थात् उसकी बुद्धि लौट आई, शास्त्रज्ञान जाग गया, होश आ गया और दिशा का ज्ञान भी हो गया। तब उस निर्यामक ने उन बहुसंख्यक कुक्षिधारो, कर्णधारो, गब्भिल्लको और सांयात्रिक नौकावणिको से कहा—'देवानुप्रियो ! मुझे बुद्धि प्राप्त हो गई है, यावत् मेरी दिशा-मूढता नष्ट हो गई है। देवानुप्रियो ! हम लोग कालिक-द्वीप के समीप आ पहुँचे हैं। वह कालिक-द्वीप दिखाई दे रहा है।'

८—तए ण ते कुच्छिधारा य कण्णधारा य गब्भिल्लगा य संजत्ताणावावाणियगा य तस्स निज्जामयस्स अतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठा पयक्खिणाणुकूलेण वाएण जेणेव कालियदीवे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता पोयवहण लबेंति, लबित्ता एगट्ठियाहि कालियदीवं उत्तरति।

उस समय वे कुक्षिधार, कर्णधार, गब्भिल्लक तथा सांयात्रिक नौकावणिक उस निर्यामक (खलासी) की यह बात सुनकर और समझकर हृष्ट-तुष्ट हुए। फिर दक्षिण दिशा के अनुकूल वायु की सहायता से वहाँ पहुँचे जहाँ कालिक-द्वीप था। वहाँ पहुँच कर लगर डाला। लगर डाल कर छोटी नौकाओ द्वारा कालिक-द्वीप मे उतरे।

कालिकद्वीप के आकर और अश्व

९—तत्थ ण बहवे हिरण्णागरे य सुवण्णागरे य रयणागरे य वइरागरे य बहवे तत्थ आसे पासति। कि ते ? हरिरेणुसोणिसुत्तगा आईणवेढो।

तए ण ते आसा ते वाणियए पासति, पासित्ता तेसि गध अग्घायति, अग्घाइत्ता भीया तत्था उव्विग्गा उव्विग्गमणा तओ अणेगाइ जोयणाइ उब्भमति, ते ण तत्थ पउरगोयरा पउरतणपाणिया निब्भया निरुव्विग्गा सुहसुहेण विहरति।

उस कालिकद्वीप मे उन्होने बहुत-सी चाँदी की खानें, सोने की खानें, रत्नो की खानें, हीरे की खानें और बहुत से अश्व देखे। वे अश्व कैसे थे ? वे आकीर्ण अर्थात् उत्तम जाति के थे। उनका वेढ अर्थात् वर्णन जातिमान् अश्वों के वर्णन के समान यहाँ समझ लेना चाहिए। वे अश्व नीले वर्ण वाली रेणु के समान वर्ण वाले और श्रोणिसूत्रक अर्थात् बालकों की कमर मे बाधने के काले डोरे जैसे वर्ण वाले थे। (इसी प्रकार कोई श्वेत, कोई लाल वर्ण के थे)।

उन अश्वो ने उन वणिको को देखा। देख कर उनकी गध सूघी। गध सूघ कर वे अश्व भयभीत हुए, त्रास को प्राप्त हुए, उद्विग्न हुए, उनके मन मे उद्वेग उत्पन्न हुआ, अतएव वे कई योजन दूर भाग गये। वहाँ उन्हे बहुत-से गोचर (चरने के खेत-चरागाह) प्राप्त हुए। खूब घास और पानी मिलने से वे निर्भय एव निरुद्वेग होकर सुखपूर्वक वहा विचरने लगे।

विवेचन—अभयदेव कृत टीका वाली प्रति मे तथा अन्य प्रतियो मे 'हरिरेणुसोणियसुत्तगा आईणवेढो' इतना ही सक्षिप्त पाठ ग्रहण किया गया है, किन्तु टीका मे अश्वो के पूरे वेढ का उल्लेख है। अगसुत्ताणि (भाग ३) मे भी वह उद्धृत है। तदनुसार विस्तृत पाठ इस प्रकार है—

हरिरेणु-सोणिसुत्तग-सकविल-मज्जार-पायकुक्कुड-वोंडसमुग्गयसामवण्णा ।
गोहूमगोरग गोरपाडलगोरा, पवालवण्णा य धूमवण्णा य केइ ॥१॥
तलपत्त-रिट्ठवण्णा य, सालिवण्णा य भासवण्णा य केइ ।
जंपिय-तिल-कीडगा य, सोलोयरिट्ठगा य पुंडपइया य कणगपिट्ठा य केइ ॥२॥
चक्कागपिट्ठवण्णा सारसवण्णा य हंसवण्णा य केइ ।
केइत्थ अब्भवण्णा पक्कतल-मेघवण्णा य बाहुवण्णा य ॥३॥
संझाणुरागसरिसा सुयमुह गुंजद्धराग-सरिसत्थ केइ ।
एला-पाडलगोरा सामलया-गवलसामला पुणो केइ ॥४॥

बहवे अण्णे अणिद्देसा, सामा कासीसरत्त-पीया, अच्चंत विसुद्धा वि य णं आइण्णग-जाइ-कुल-विणीय-गयमच्छरा ।

हयवरा जहोवएस-कम्मवाहिणो वि य णं सिक्खा विणीयविणया,
लंघण-वग्गण-धावण-तिवई-जईण-सिक्खियगई ।
किं ते ? मणसा वि उव्विहंताइं अणेगाइं आससयाइं पासंति ॥

भावार्थ—कालिक-द्वीप में पहुँचने पर नौका वणिकों ने चांदी, सोने, रत्नों और हीरों की खानों के साथ विविध वर्ण वाले अश्वों को भी देखा। उन अश्वों में कोई-कोई नीले वर्ण की रेणु के समान, श्रोणिसूत्रक अर्थात् बालकों की कमर में बांधने के काले डोरे के समान तथा मार्जार, पादु-कुक्कुट [विशेष जाति का कुक्कड़] एवं कच्चे कपास के फल के समान श्याम वर्ण वाले थे। कोई गेहूँ और पाटल पुष्प के समान गौर वर्ण वाले थे, कोई विद्रुम-मूंगा के समान अथवा नवीन कोंपल के सदृश रक्तवर्ण—लाल थे, कोई धूम्रवर्ण-पाण्डुर धुंए जैसे रंग के थे।

कोई तालवृक्ष के पत्तों के सरीखे तो कोई रिष्ठा मदिरा सरीखे वर्ण वाले थे। कोई शालिवर्ण-चावल जैसे रंग वाले और कोई भस्म जैसे रंग वाले थे। कोई पुराने तिलों के कीड़ों जैसे, कोई चमकदार रिष्टक रत्न जैसे वर्ण वाले, कोई धवल श्वेत पैरों वाले, कोई कनकपृष्ठ-सुनहरी पीठ वाले थे।

कोई सारस पक्षी की पीठ, चक्रवाक एवं हंस के समान श्वेत थे। कोई मेघ-वर्ण और कोई तालवृक्ष के पत्तों के समान वर्ण वाले थे। कोई रंगबिरंगे अर्थात् अनेक रंगों वाले थे।

कोई संध्याकाल की लालिमा, तोते की चोंच तथा गुंजा [चिरमी] के अर्धभाग के सदृश लाल थे, कोई एला-पाटल या एला और पाटल जैसे रंग के थे। कोई प्रियंगु-लता और महिषशृंग के समान श्यामवर्ण थे।

कोई-कोई अश्व ऐसे थे कि उनके वर्ण का निर्देश—कथन ही नहीं किया जा सकता, जैसे कोई श्यामाक (धान्य विशेष), कासीस (एक रक्तवर्ण द्रव्य), रक्त और पीले थे—अर्थात् चितकबरे (अनेक रंगों के) थे। ये अश्व विशुद्ध—निर्दोष थे। आकीर्ण अर्थात् वेगवत्ता आदि गुणों वाली जाति एवं कुल के थे। विनीत, प्रशिक्षित (ट्रेनिंग पाए हुए) थे एवं परस्पर असहनशीलता से रहित थे—जैसे अन्य अश्व दूसरे अश्वों को सहन नहीं करते, एक दूसरे के निकट आते ही लड़ने लगते हैं, वैसे ये अश्व नहीं थे,

सहनशील थे। वे अश्व-प्रवर थे, प्रशिक्षण के अनुसार ही गमन करते थे। गड्ढा आदि को लांघने में, कूदने मे, दौडने मे, धोरण अर्थात् गतिचातुर्य मे, त्रिपदी-रंगभूमि मे मल्ल की-सी गति करने मे कुशल थे। न केवल शरीर से ही वरन् मन से भी वे उछल रहे थे।

नौकावणिकों आदि ने ऐसे सैकडों घोडे वहाँ देखे।

इस वेढ का अर्थ करने के पश्चात् अन्त मे अभयदेवसूरि लिखते हैं—'गमनिकामात्रमेतदस्य वर्णकस्य भावार्थस्तु बहुश्रुतबोध्य' अर्थात् इस वर्णक का यह अर्थमात्र दिया गया है, भावार्थ तो बहुश्रुत विद्वान् ही जानें।

१०—तए ण ते संजत्ताणावावाणियगा अण्णमण्णं एवं वयासी—'किण्हं अम्हे देवाणुप्पिया! आसेहिं? इमे णं बहवे हिरण्णागरा य, सुवण्णागरा य, रयणागरा य वइरागरा य, तं सेयं खलु अम्हं हिरण्णस्स य, सुवण्णस्स य, रयणस्स य, वइरस्स य पोयवहणं भरित्तए' त्ति कट्टु अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता हिरण्णस्स य, सुवण्णस्स य, रयणस्स य, वइरस्स य, तणस्स य, अण्णस्स य, कट्ठस्स य, पाणियस्स य पोयवहणं भरेंति, भरित्ता पयक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव गंभीरपोयवहणपट्टणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पोयवहणं लंबेंति, लंबित्ता सगडीसागडं सज्जेंति, सज्जित्ता तं हिरण्णं जाव वइरं च एगट्ठियाहिं पोयवहणाओ संचारेंति, संचारित्ता सगडीसागडं संजोइंति, संजोइत्ता जेणेव हत्थिसीसए नयरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता हत्थिसीसयस्स नयरस्स बहिया अग्गुज्जाणे सत्थणिवेसं करेंति करित्ता सगडीसागडं मोएंति, मोइत्ता महत्थं जाव [महग्घं महरिहं विउलं रायारिहं] पाहुडं गेण्हंति गेण्हित्ता हत्थिसीसं नयरं अणुपविसंति, अणुपविसित्ता जेणेव कणगकेऊ राया तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता जाव उवणेंति।

तब उन सांयात्रिक नौकावणिकों ने आपस में इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! हमें अश्वों से क्या प्रयोजन है? अर्थात् कुछ भी नहीं। यहाँ यह बहुत सी चाँदी की खानें, सोने की खानें, रत्नों की खानें और हीरों की खानें हैं। अतएव हम लोगों को चाँदी-सोने से, रत्नों से और हीरों से जहाज भर लेना ही श्रेयस्कर है।' इस प्रकार कहकर उन्होंने एक दूसरे की बात अंगीकार की। अंगीकार करके उन्होंने हिरण्य से—स्वर्ण से, रत्नों से, हीरों से, घास से, अन्न से, काष्ठों से और मीठे पानी से अपना जहाज भर लिया। भर कर दक्षिण दिशा की अनुकूल वायु से जहाँ गंभीर पोतवहनपट्टन था, वहाँ आये। आकर जहाज का लंगर डाला। लंगर डाल कर गाडी-गाडे तैयार किये। तैयार करके लाये हुए उस हिरण्य—स्वर्ण, यावत् हीरों का छोटी नौकाओं द्वारा संचार किया अर्थात् पोतवहन से गाडे-गाडियों में भरा। फिर गाडी-गाडे जोते। जोतकर जहाँ हस्तिशीर्ष नगर था वहाँ पहुँचे। हस्तिशीर्ष नगर के बाहर अग्र उद्यान में सार्थ को ठहराया। गाडी-गाडे खोले। फिर बहुमूल्य [महान् पुरुषों के योग्य, विपुल एवं नृपतियोग्य] उपहार लेकर हस्तिशीर्ष नगर में प्रवेश किया। प्रवेश करके कनककेतु राजा के पास आये। वह उपहार राजा के समक्ष उपस्थित किया।

११—तए णं से कणगकेऊ तेसिं संजत्ताणावावाणियगाणं तं महत्थं जाव पडिच्छइ।

राजा कनककेतु ने उन सांयात्रिक नौकावणिकों के उस बहुमूल्य [महान् पुरुषों के एवं राजा के योग्य विपुल] उपहार को स्वीकार किया।

अश्वों का अपहरण

१२—ते संजत्ताणावावाणियगा एवं वयासी—'तुब्भे णं देवाणुप्पिया! गामागर जाव आहिंडह, लवणसमुद्दं च अभिक्खणं अभिक्खणं पोयवहणेणं ओगाहह, तं अत्थि याइं केइ भे कहिंचि अच्छेरए दिट्ठपुव्वे ?'

तए णं संजत्ताणावावाणिया कणगकेउं रायं एवं वयासी—'एवं खलु अम्हे देवाणुप्पिया! इहेव हत्थिसीसे नयरे परिवसामो, तं चेव जाव कालियदीवतेणं संवूढा, तत्थ णं बहवे हिरण्णागरा य जाव बहवे तत्थ आसे, किं ते हरिरेणुसोणिसुत्तगा जाव[1] अणेगाइं जोयणाइं उब्भमंति। तए णं सामी! अम्हेहिं कालियदीवे ते आसा अच्छेरए दिट्ठा।

फिर राजा ने उन सांयात्रिक नौकावणिकों से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय! तुम लोग ग्रामों में यावत् आकरों में (सभी प्रकार की वस्तियों में) घूमते हो और बार-बार पोतवहन द्वारा लवणसमुद्र में अवगाहन करते हो, तुमने कहीं कोई आश्चर्यजनक-अद्भुत-अनोखी वस्तु देखी है ?'

तब सांयात्रिक नौकावणिकों ने राजा कनककेतु से कहा—'देवानुप्रिय! हम लोग इसी हस्तिशीर्ष नगर के निवासी हैं, इत्यादि पूर्ववत् कहना चाहिए, यावत् हम कालिकद्वीप के समीप गए। उस द्वीप में बहुत-सी चाँदी की खानें यावत् बहुत-से अश्व हैं। वे अश्व कैसे हैं ? नील वर्ण वाली रेणु के समान और श्रोणिसूत्रक के समान श्याम वर्ण वाले हैं। यावत् वे अश्व हमारी गंध से कई योजन दूर चले गए। अतएव हे स्वामिन्! हमने कालिकद्वीप में उन अश्वों को आश्चर्यभूत (विस्मय की वस्तु) देखा है।'

१३—तए णं से कणगकेऊ तेसिं संजत्ताणावावाणियगाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म ते संजत्ताणावावाणियए एवं वयासी—'गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! मम कोडुंबियपुरिसेहिं सद्धिं कालियदीवाओ ते आसे आणेह।'

तए णं ते संजत्ता कणगकेउं रायं एवं वयासी—'एवं सामी!' त्ति कट्टु आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेंति।

तत्पश्चात् कनककेतु राजा ने उन सांयात्रिकों से यह अर्थ सुन कर उन्हें कहा—'देवानुप्रियो! तुम मेरे कौटुम्बिक पुरुषों के साथ जाओ और कालिकद्वीप से उन अश्वों को यहाँ ले आओ।'

तब सांयात्रिक वणिकों ने कनककेतु राजा से इस प्रकार कहा—'स्वामिन्! बहुत अच्छा।' ऐसा कहकर उन्होंने राजा का वचन आज्ञा के रूप में विनयपूर्वक स्वीकार किया।

१४—तए णं कणगकेऊ राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! संजत्ताणावावाणिएहिं सद्धिं कालियदीवाओ मम आसे आणेह।' ते वि पडिसुणेंति। तए णं ते कोडुंबियपुरिसा सगडीसागडं सज्जेंति, सज्जित्ता तत्थ णं बहूणं वीणाण य, वल्लकीण य, भामरीण य, कच्छभीण य, भंभाण य, छब्भामरीण य, विचित्तवीणाण य, अन्नेसिं च बहूणं सोइंदियपाउग्गाणं दव्वाणं सगडीसागडं भरेंति।

---

[1] अ. १७ सूत्र ९

सहनशील थे। वे अश्व-प्रवर थे, प्रदक्षिण के अनुसार ही गमन करते थे। गड्ढा आदि को लांघने मे, कूदने मे, दौडने में, धोरण अर्थात् गतिचातुर्य मे, त्रिपदी-रगभूमि मे मल्ल की-सी गति करने मे कुशल थे। न केवल शरीर से ही वरन् मन से भी वे उछल रहे थे।

नौकावणिकों आदि ने ऐसे सैकडो घोडे वहा देखे।

इस वेढ का अर्थ करने के पश्चात् अन्त मे अभयदेवसूरि लिखते हैं—'गमनिकामात्रमेतदस्य वर्णकस्य भावार्थस्तु बहुश्रुतबोध्य' अर्थात् इस वर्णक का यह अर्थमात्र दिया गया है, भावार्थ तो बहुश्रुत विद्वान् ही जानें।

१०—तए ण ते सजत्ताणावावाणियगा अण्णमण्ण एव वयासी—'किण्ह अम्हे देवाणुप्पिया! आसेहिं? इमे ण बहवे हिरण्णागरा य, सुवण्णागरा य, रयणागरा य वइरागरा य, त सेय खलु अम्ह हिरण्णस्स य, सुवण्णस्स य, रयणस्स य, वइरस्स य पोयवहण भरित्तए' त्ति कट्टु अन्नमन्नस्स एयमट्ठ पडिसुर्णेति, पडिसुणित्ता हिरण्णस्स य, सुवण्णस्स य, रयणस्स य, वइरस्स य, तणस्स य, अण्णस्स य, कट्ठस्स य, पाणियस्स य पोयवहण भरेंति, भरित्ता पयक्खिणाणुकूलेण वाएण जेणेव गभीरपोयवहण पट्टणे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता पोयवहण लबेंति, लबित्ता सगडीसागड सज्जेंति, सज्जित्ता त हिरण्ण जाव वइर च एगट्ठियाहिं पोयवहणाओ सचारेंति, सचारित्ता सगडीसागड सजोइति, सजोइत्ता जेणेव हत्थिसीसए नयरे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता हत्थिसीसयस्स नयरस्स बहिया अग्गुज्जाणे सत्थणिवेस करेंति करित्ता सगडीसागड मोएति, मोइत्ता महत्थ जाव [महग्घ महरिह विउल रायारिह] पाहुड गेण्हति गेण्हित्ता हत्थिसीस नयर अणुपविसति, अणुपविसित्ता जेणेव कणगकेऊ राया तेणेव उवागच्छति उवागच्छित्ता जाव उवणेंति।

तब उन सायात्रिक नौकावणिकों ने आपस मे इस प्रकार कहा— देवानुप्रियो! हमे अश्वों से क्या प्रयोजन है? अर्थात् कुछ भी नही। यहाँ यह बहुत-सी चाँदी की खानें, सोने की खानें, रत्नों की खानें और हीरो की खानें हैं। अतएव हम लोगो को चाँदी-सोने से, रत्नों से और हीरों से जहाज भर लेना ही श्रेयस्कर है।' इस प्रकार कहकर उन्होंने एक दूसरे की बात अगीकार की। अगीकार करके उन्होंने हिरण्य से—स्वर्ण से, रत्नो से, हीरो से, घास से, अन्न से, काष्ठा से और मीठे पानी से अपना जहाज भर लिया। भर कर दक्षिण दिशा की अनुकूल वायु से जहाँ गभीर पोतवहनपट्टन था, वहाँ आये। आकर जहाज का लगर डाला। लगर डाल कर गाडी-गाडे तैयार किये। तैयार करके लाये हुए उस हिरण्य—स्वर्ण, यावत् हीरों का छोटी नौकाओ द्वारा सचार किया अर्थात् पोतवहन से गाडे-गाडियों मे भरा। फिर गाडी-गाडे जोते। जोतकर जहाँ हस्तिशीर्ष नगर था वहाँ पहुँचे। हस्तिशीर्ष नगर के बाहर अग्र उद्यान मे सार्थ को ठहराया। गाडी-गाडे खोले। फिर बहुमूल्य [महान् पुरुषों के योग्य, विपुल एव नृपतियोग्य] उपहार लेकर हस्तिशीर्ष नगर मे प्रवेश किया। प्रवेश करके कनककेतु राजा के पास आये। वह उपहार राजा के समक्ष उपस्थित किया।

११—तए ण से कणगकेऊ तेसिं सजत्ताणावावाणियगाण त महत्थ जाव पडिच्छइ।

राजा कनककेतु ने उन सायात्रिक नौकावणिकों के उस बहुमूल्य [महान् पुरुषों के एव राजा के योग्य विपुल] उपहार को स्वीकार किया।

अश्वों का अपहरण

१२—ते संजत्ताणावावाणियगा एवं वयासी—'तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! गामागर जाव आहिंडह, लवणसमुद्दं च अभिक्खणं अभिक्खणं पोयवहणेणं ओगाहह, तं अत्थि याइं केइ भे कहिंचि अच्छेरए दिट्ठपुव्वे ?'

तए णं संजत्ताणावावाणिया कणगकेउं रायं एवं वयासी—'एवं खलु अम्हे देवाणुप्पिया ! इहेव हत्थिसीसे नयरे परिवसामो, तं चेव जाव कालियदीवंतेणं संवूढा, तत्थ णं बहवे हिरण्णागरा य जाव[1] बहवे तत्थ आसे, किं ते ? हरिरेणुसोणिसुत्तगा जाव[1] अणेगाइं जोयणाइं उब्भमंति। तए णं सामी ! अम्हेहिं कालियदीवे ते आसा अच्छेरए दिट्ठा।

फिर राजा ने उन सांयात्रिक नौकावणिकों से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय ! तुम लोग ग्रामों में यावत् आकरों में (सभी प्रकार की बस्तियों में) घूमते हो और बार-बार पोतवहन द्वारा लवणसमुद्र में अवगाहन करते हो, तुमने कहीं कोई आश्चर्यजनक-अद्‌भुत-अनोखी वस्तु देखी है ?'

तब सांयात्रिक नौकावणिकों ने राजा कनककेतु से कहा—'देवानुप्रिय ! हम लोग इसी हस्तिशीर्ष नगर के निवासी हैं, इत्यादि पूर्ववत् कहना चाहिए, यावत् हम कालिकद्वीप के समीप गए। उस द्वीप में बहुत-सी चांदी की खानें यावत् बहुत-से अश्व हैं। वे अश्व कैसे हैं ? नील वर्ण वाली रेणु के समान और श्रोणिसूत्रक के समान श्याम वर्ण वाले हैं। यावत् वे अश्व हमारी गंध से कई योजन दूर चले गए। अतएव हे स्वामिन् ! हमने कालिकद्वीप में उन अश्वों को आश्चर्यभूत (विस्मय की वस्तु) देखा है।'

१३—तए णं से कणगकेऊ तेसिं संजत्ताणावावाणियगाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म ते संजत्ताणावावाणियए एवं वयासी—'गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! मम कोडुंबियपुरिसेहिं सद्धिं कालियदीवाओ ते आसे आणेह।'

तए णं ते संजत्ता कणगकेउं रायं एवं वयासी—'एवं सामी !' त्ति कट्टु आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेंति।

तत्पश्चात् कनककेतु राजा ने उन सांयात्रिकों से यह अर्थ सुन कर उन्हें कहा—'देवानुप्रियो ! तुम मेरे कौटुम्बिक पुरुषों के साथ जाओ और कालिकद्वीप से उन अश्वों को यहाँ ले आओ।'

तब सांयात्रिक वणिकों ने कनककेतु राजा से इस प्रकार कहा—'स्वामिन् ! बहुत अच्छा' ऐसा कहकर उन्होंने राजा का वचन आज्ञा के रूप में विनयपूर्वक स्वीकार किया।

१४—तए णं कणगकेऊ राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! संजत्ताणावावाणिएहिं सद्धिं कालियदीवाओ मम आसे आणेह।' ते वि पडिसुणेंति। तए णं ते कोडुंबियपुरिसा सगडीसागडं सज्जेंति, सज्जित्ता तत्थ णं बहूणं वीणाण य, वल्लकीण य, भामरीण य, कच्छभीण य, भंभाण य, छब्भामरीण य, विचित्तवीणाण य, अन्नेसिं च बहूणं सोइंदियपाउग्गाणं दव्वाणं सगडीसागडं भरेंति।

१२ अ १७ सूत्र ९

तत्पश्चात् कनककेतु राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और उनसे कहा—'देवानुप्रियो ! तुम सांयात्रिक वणिकों के साथ जाओ और कालिकद्वीप से मेरे लिए अश्व ले आओ।' उन्होंने भी राजा का आदेश अंगीकार किया। तत्पश्चात् कौटुम्बिक पुरुषों ने गाडी-गाडे सजाए। सजा कर उनमें बहुत-सी वीणाएँ, वल्लकी, भ्रामरी, कच्छपी, भंभा, षट्भ्रमरी आदि विविध प्रकार की वीणाओं तथा विचित्र वीणाओं में और श्रोत्रेन्द्रिय के योग्य अन्य बहुत-सी वस्तुओं (कानों को प्रिय लगने योग्य सामग्री-साधनों) से गाडी-गाडे भर लिये।

१५—भरित्ता बहूण किण्हाण य जाव [नीलाण य लोहियाण य हालिद्दाण य] सुक्किल्लाण य कट्ठकम्माण य [चित्तकम्माण य पोत्थकम्माण य लेप्पकम्माण य] गंथिमाण य जाव [वेढिमाण य पूरिमाण य] संघाइमाण य अन्नेसिं च बहूणं चक्खिंदियपाउग्गाणं दव्वाणं सगडीसागडं भरेंति।

भरित्ता बहूणं कोट्ठपुडाण य केयइपुडाण य जाव [पत्तपुडाण य चोयपुडाण य तगरपुडाण य एलापुडाण य हिरिवेरपुडाण य उसीरपुडाण य चंपगपुडाण य मरुयपुडाण य दमणगपुडाण य जाइपुडाण य जुहियापुडाण य मल्लियपुडाण य वासंतियपुडाण य कप्पूरपुडाण य पाडलपुडाण य] अन्नेसिं च बहूणं घाणिंदियपाउग्गाणं दव्वाणं सगडीसागडं भरेंति।

भरित्ता बहुस्स खंडस्स य गुलस्स य सक्कराए य मच्छंडियाए य पुप्फुत्तरपउमुत्तर अन्नेसिं च जिब्भिंदियपाउग्गाणं दव्वाणं सगडीसागडं भरेंति।

भरित्ता बहूणं कोयवयाण य कंबलाण य पावरणाण य नवतयाण य मलयाण य मसगाण य सिलावट्टाण य जाव हंसगब्भाण य अन्नेसिं च फासिंदियपाउग्गाणं दव्वाणं सगडीसागडं भरेंति।

श्रोत्रेन्द्रिय के योग्य (प्रिय) वस्तुएँ भर कर बहुत-से कृष्ण वर्ण वाले, [नील, रक्त, पीत एवं] शुक्ल वर्ण वाले काष्ठकर्म (लकड़ी में पटिये पर चित्रित चित्र), चित्रकर्म, पुस्तकर्म (पुट्ठे पर बनाए चित्र), लेप्यकर्म (मृत्तिका से बनाए चित्र-विचित्र रूप) तथा वेढिम, पूरिम तथा संघातिम एवं अन्य चक्षु-इन्द्रिय के योग्य द्रव्य गाडी-गाडों में भरे।

यह भर कर बहुत-से कोष्ठपुट[1] (कोष्ठपुट में जो पकाये जाते हैं वे वास—सुगंधित द्रव्य विशेष) इसी प्रकार केतकीपुट, पत्रपुट, चोय-त्वक्‌पुट, तगरपुट, एलापुट, ह्रीबेर (वालक) पुट, उशीर (खसखस का मूल अथवा एक विशिष्ट पुष्पजाति) पुट, चम्पापुट, मरुक (मरुआ) पुट, दमनकपुट, जाती (चमेली) पुट, यूथिकापुट, मल्लिकापुट, वासंतीपुट, कपूरपुट, पाटलपुट तथा अन्य बहुत-सी घ्राणेन्द्रिय को प्रिय लगने वाले पदार्थों से गाडी-गाडे भरे।

तदनन्तर बहुत-से खांड, गुड, शक्कर, मत्स्यंडिका (विशिष्ट प्रकार की शक्कर), पुष्पोत्तर (शर्करा-विशेष) तथा पद्मोत्तर जाति की शर्करा आदि अन्य अनेक जिह्वा-इन्द्रिय के योग्य द्रव्य गाडी-गाडों में भरे।

उसके बाद बहुत से कोयतक—रुई के बने वस्त्र, कंबल—रत्न-कंबल, प्रावरण—ओढ़ने के वस्त्र, नवत—जीन, मलय—विशेष प्रकार का आसन [अथवा मलय देश में बने वस्त्र, मसग—चर्म से मढ़े एक प्रकार के वस्त्र, शिलापट्टक—चिकनी शिलाएँ यावत् हंसगर्भ (श्वेत वस्त्र) तथा अन्य स्पर्शेन्द्रिय के योग्य द्रव्य गाडी-गाडों में भरे।

१ कोष्ठपुटे पच्यन्ते ते कोष्ठपुटा वासविशेषा—अभयदेवटीका।

१६—भरित्ता सगडीसागडं जोएंति, जोइत्ता जेणेव गभीरपोयट्ठाणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सगडीसागडं मोएंति, मोइत्ता पोयवहणं सज्जेंति सज्जित्ता तेसिं उक्किट्ठाणं सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधाणं कट्ठस्स य तणस्स य पाणियस्स य तंदुलाण य समियस्स य गोरसस्स य जाव[1] अन्नेसिं च बहूणं पोयवहणपाउग्गाणं पोयवहणं भरेंति।

उक्त सब द्रव्य भरकर उन्होंने गाडी-गाडे जोते। जोत कर जहां गभीर पोतपट्टन था, वहाँ पहुँचे। पहुँच कर गाडी-गाडे खोले। खोल कर पोतवहन तैयार किया। तैयार करके उन उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस रूप और गंध के द्रव्य तथा काष्ठ, तृण, जल, चावल, आटा, गोरस तथा अन्य बहुत-से पोतवहन के योग्य पदार्थ पोतवहन में भरे।

१७—भरित्ता दक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव कालियदीवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पोयवहणं लंबेंति, लंबित्ता ताइं उक्किट्ठाइं सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधाइं एगट्ठियाहिं कालियदीवं उत्तारेंति, उत्तारित्ता जहिं जहिं च णं ते आसा आसयंति वा, सयंति वा, चिट्ठंति वा, तुयट्टंति वा, तहिं तहिं च णं ते कोडुंबियपुरिसा ताओ वीणाओ य जाव[2] विचित्तवीणाओ य अन्नाणि बहूणि सोइंदियपाउग्गाणि य दव्वाणि समुदीरेमाणा समुदीरेमाणा चिट्ठंति, तेसिं च परिपेरंतेणं पासए ठवेंति, ठवित्ता णिच्चला णिप्फंदा तुसिणीया चिट्ठंति।

वे उपर्युक्त सब सामान पोतवहन में भर कर दक्षिण दिशा के अनुकूल पवन से जहां कालिक द्वीप था, वहाँ आये। आकर लंगर डाला। लंगर डाल कर उन उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध के पदार्थों को छोटी-छोटी नौकाओं द्वारा कालिक द्वीप में उतारा। उतार कर वे घोड़े जहाँ-जहाँ बैठते थे, सोते थे और लोटते थे, वहां-वहां वे कौटुम्बिक पुरुष वह वीणा, विचित्र वीणा आदि श्रोत्रेन्द्रिय को प्रिय वाद्य बजाते रहने लगे तथा इनके पास चारों ओर जाल स्थापित कर दिए—जाल बिछा दिए। जाल बिछा करके वे निश्चल, निस्पन्द और मूक होकर स्थित हो गए।

१८—जत्थ जत्थ ते आसा आसयंति वा जाव तुयट्टंति वा, तत्थ तत्थ णं ते कोडुंबियपुरिसा बहूणि किण्हाणि य ५ कट्ठकम्माणि य जाव संघाइमाणि य अन्नाणि य बहूणि चक्खिंदियपाउग्गाणि य दव्वाणि ठवेंति, तेसिं परिपेरंतेणं पासए ठवेंति, ठवित्ता णिच्चला णिप्फंदा तुसिणीया चिट्ठंति।

जहां-जहाँ वे अश्व बैठते थे, यावत् लोटते थे, वहाँ-वहाँ उन कौटुम्बिक पुरुषों ने बहुतेरे कृष्ण वर्ण वाले यावत् शुक्ल वर्ण वाले काष्ठकर्म यावत् संघातिम तथा अन्य बहुत-से चक्षु-इन्द्रिय के योग्य पदार्थ रख दिए तथा उन अश्वों के पास चारों ओर जाल बिछा दिया और वे निश्चल और मूक होकर छिप रहे।

१९—जत्थ जत्थ ते आसा आसयंति वा, सयंति वा, चिट्ठंति वा, तुयट्टंति वा, तत्थ-तत्थ णं ते कोडुंबियपुरिसा तेसिं बहूणं कोट्ठपुडाण य अन्नेसिं च घाणिंदियपाउग्गाणं दव्वाणं पुंजे य णियरे य करेंति, करित्ता तेसिं परिपेरंते जाव चिट्ठंति।

जहाँ-जहाँ वे अश्व बैठते थे, सोते थे, खड़े होते थे अथवा लोटते थे वहाँ-वहाँ उन कौटुम्बिक

१ अ. ८ सूत्र ५५। २ अ. १७ सूत्र १४-१५।

पुरुषों ने बहुत से कोष्ठपुट तथा दूसरे घ्राणेन्द्रिय के प्रिय पदार्थों के पुंज (ढेर) और निकर (बिखरे हुए समूह) कर दिये। उनके पास चारों ओर जाल बिछाकर वे मूक होकर छिप गये।

२०—जत्थ जत्थ ण ते आसा आसयंति वा, सयंति वा, चिट्ठंति वा, तुयट्टंति वा, तत्थ तत्थ गुलस्स जाव अन्नेसिं च बहूणं जिब्भिंदियपाउग्गाणं दव्वाणं पुंजे य णियरे य करेंति, करित्ता वियरए खणंति, खणित्ता गुलपाणगस्स खंडपाणगस्स पोरपाणगस्स अन्नेसिं च बहूणं पाणगाणं वियरे भरेंति, भरित्ता तेसिं परिपेरतेणं पासए ठवेंति जाव चिट्ठंति।

जहाँ-जहाँ वे अश्व बैठते थे, सोते थे, खड़े होते थे अथवा लोटते थे, वहाँ-वहाँ कौटुम्बिक पुरुषों ने गुड के यावत् अन्य बहुत-से जिह्वेन्द्रिय के योग्य पदार्थों के पुंज और निकर कर दिये। करके उन जगहों पर गड्हे खोदे। खोद कर गुड का पानी, खांड का पानी, पोर (ईख) का पानी तथा दूसरा बहुत तरह का पानी उन गड्हों में भर दिया। भरकर उनके पास चारों ओर जाल स्थापित करके मूक होकर छिप रहे।

२१—जहिं जहिं च णं ते आसा आसयंति वा, सयंति वा, चिट्ठंति वा, तुयट्टंति वा, तहिं तहिं च णं ते बहवे कोयवया य जाव सिलावट्टया अण्णाणि य फासिंदियपाउग्गाइं अत्थुयपच्चत्थुयाइं ठवेंति, ठवित्ता तेसिं परिपेरतेणं जाव चिट्ठंति।

जहाँ-जहाँ वे घोड़े बैठते थे, सोते थे, खड़े होते थे यावत् लोटते थे, वहाँ वहाँ कोयवक (रुई के वस्त्र) यावत् शिलापट्टक (चिकनी शिला) तथा अन्य स्पर्शनेन्द्रिय के योग्य आस्तरण—प्रत्यास्तरण (एक दूसरे के ऊपर बिछाए हुए वस्त्र) रख दिये। रख कर उनके पास चारों ओर जाल बिछा कर एवं मूक होकर छिप गए।

२२—तए णं ते आसा जेणेव एए उक्किट्ठा सद्द-फरिस रस-रूव गंधा तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तत्थ णं अत्थेगइया आसा 'अपुव्वा णं इमे सद्द-फरिस रस रूव-गंधा' इति कट्टु तेसु उक्किट्ठेसु सद्द फरिस रस रूव-गंधेसु अमुच्छिया अगढिया अगिद्धा अणज्झोववण्णा, तेसिं उक्किट्ठाणं सद्द जाव गंधाणं दूरंदूरेणं अवक्कमंति, ते णं तत्थ पउरगोयरा पउरतणपाणिया निब्भया निरुव्विग्गा सुहंसुहेणं विहरंति।

तत्पश्चात् वे अश्व वहाँ आये, जहाँ यह उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध (वाली वस्तुएं) रखी थी। वहाँ आकर उनमें से कोई-कोई अश्व ये शब्द, स्पर्श, रस रूप और गंध अपूर्व हैं, अर्थात् पहले कभी इनका अनुभव नहीं किया है, ऐसा विचार कर उन उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध में मूर्च्छित, गृद्ध, आसक्त न होकर उन उत्कृष्ट शब्द यावत गंध से दूर चले गये। वे अश्व वहाँ जाकर बहुत गोचर (चरागाह) प्राप्त करके तथा प्रचुर घास-पानी पीकर निर्भय हुए, उद्वेग रहित हुए और सुखे-सुखे विचरने लगे।

कथानक का निष्कर्ष

२३—एवामेव समणाउसो! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा सद्द फरिस-रस रूव गंधेसु

णो सज्जइ, से ण इहलोगे चेव बहूण समणाण समणीण सावयाण सावियाण अच्चणिज्जे जाव [चाउरतससारकतार] वोइवयइ ।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! हमारा जो साधु या साध्वी शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गध मे आसक्त नही होता, वह इस लोक मे बहुत साधुओ, साध्वियो, श्रावको और श्राविकाओ का पूजनीय होता है और इस चातुर्गतिक ससार-कान्तार को पार कर जाता है ।

विषयलोलुपता का दुष्परिणाम

२४—तत्थ ण अत्थेगइया आसा जेणेव उक्किट्ठ सद्द फरिस-रस-रूव गधा तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता तेसु उक्किट्ठेसु सद्द-फरिस रस रूव-गधेसु मुच्छिया जाव अज्झोववण्णा आसेविउ पयत्ता यावि होत्था । तए ण ते आसा एए उक्किट्ठ सद्द-फरिस-रस-रूव गधा आसेवमाणा तेहिं बहूहिं कूडेहि य पासेहि य गलएसु य पाएसु य बज्झति ।

उन घोडो मे से कितनेक घोडे जहा वे उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गध थे, वहाँ पहुँचे । वहाँ पहुँच कर वे उन उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गध मे मूर्च्छित हुए, अति आसक्त हो गए और उनका सेवन करने मे प्रवृत्त हो गए । तत्पश्चात् उस उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गध का सेवन करने वाले वे अश्व कौटुम्बिक पुरुषो द्वारा बहुत से कूट पाशो (कपट से फैलाए गए बधनो) से गले में यावत् पैरो मे बाँधे गए—बधनो से बाँधे गए—पकड लिए गए ।

२५—तए ण ते कोडुबिया एए आसे गिण्हति, गिण्हित्ता एगट्टियाहिं पोयवहणे सचारेंति, सचारित्ता तणस्स कट्ठस्स जाव[1] भरेंति ।

तए ण ते सजत्ताणावावाणियगा दक्खिणाणुकूलेण वाएण जेणेव गभीरपोयपट्टणे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता पोयवहण लवेंति, लवित्ता ते आसे उत्तारेंति, उत्तारित्ता जेणेव हत्थिसीसे णयरे, जेणेव कणगकेऊ राया, तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता करयल जाव वद्धावेंति वद्धावित्ता ते आसे उवणेंति ।

तए ण से कणगकेऊ राया तेसिं सजत्ताणावावाणियगाण उस्सुक्क वियरइ, वियरित्ता सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ ।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषो ने उन अश्वो को पकड लिया । पकड कर वे नौकाओ द्वारा पोतवहन मे ले आये । लाकर पोतवहन को तृण, काष्ठ आदि आवश्यक पदार्थो से भर लिया ।

तत्पश्चात् वे सायात्रिक नौकावणिक् दक्षिण दिशा के अनुकूल पवन द्वारा जहा गभीर पोत-पट्टन था, वहा आये । आकर पोतवहन का लगर डाला । लगर डाल कर उन घोडो को उतारा । उतार कर जहाँ हस्तिशीर्ष नगर था और जहाँ कनककेतु राजा था, वहाँ पहुँचे । पहुँच कर दोनो हाथ जोडकर राजा का अभिनन्दन किया । अभिनन्दन करके वे अश्व उपस्थित किये ।

राजा कनककेतु ने उन सायात्रिक वणिको का शुल्क माफ कर दिया । उनका सत्कार-सम्मान किया और उन्हें विदा किया ।

---

१ अ १७ सूत्र १६

२६—तए ण से कणगकेऊ राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता सक्कारेइ, समाणेइ, सक्कारित्ता समाणित्ता पडिविसज्जेइ ।

तत्पश्चात् कनककेतु राजा ने कालिक-द्वीप भेजे हुए कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुला कर उनका भी सत्कार-सम्मान किया और फिर उन्हें विदा कर दिया ।

२७—तए ण से कणगकेऊ राया आसमद्दए सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'तुब्भे ण देवाणुप्पिया ! मम आसे विणएह ।'

तए ण ते आसमद्दगा तह त्ति पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता ते आसे बहूहिं मुहबंधेहि य, कण्णबंधेहि य, णासाबंधेहि य, वालबंधेहि य, खुरबंधेहि य कडगबंधेहि य खलिणबंधेहि य, अहिलाणेहि य, पडयाणेहि य, अकणाहि य, वेलप्पहारेहि य, वित्तप्पहारेहि य, लयप्पहारेहि य, कसप्पहारेहि य, छिवप्पहारेहि य विणयंति, विणइत्ता कणगकेउस्स रण्णो उवणेंति ।

तत्पश्चात् कनककेतु राजा ने अश्वमर्दकों (अश्वपालों) को बुलाया और उनसे कहा—'देवानुप्रियो ! तुम मेरे अश्वों को विनीत करो—प्रशिक्षित करो ।'

तब अश्वमर्दकों ने 'बहुत अच्छा' कहकर राजा का आदेश स्वीकार किया । स्वीकार करके उन्होंने उन अश्वों को मुख बाँधकर, कान बाँधकर, नाक बाँधकर, झौंरा (पूंछ के बालों का अग्रभाग) बाँधकर, खुर बाँधकर, कटक बाँधकर, चौकड़ी चढाकर, तोबरा चढाकर, पटतानक (पलान के नीचे का पट्टा) लगा कर, खस्सी करके, वेलाप्रहार करके, बेंतों का प्रहार करके, लताओं का प्रहार करके, चाबुकों का प्रहार करके तथा चमड़े के कोडों का प्रहार करके विनीत किया—प्रशिक्षित किया । विनीत करके वे राजा कनककेतु के पास ले आये ।

२८—तए ण से कणगकेऊ ते आसमद्दए सक्कारेइ, समाणेइ, सक्कारित्ता समाणित्ता पडिविसज्जेइ । तए ण ते आसा बहूहिं मुहबंधेहि य जाव छिवप्पहारेहि य बहूणि सारीरमाणसाणि दुक्खाइं पावेंति ।

तत्पश्चात् कनककेतु ने उन अश्वमर्दकों का सत्कार किया, सम्मान किया । सत्कार सम्मान करके उन्हें विदा किया । उसके बाद वे अश्व-मुखबंधन से यावत् चमड़े के चाबुकों के प्रहार से बहुत शारीरिक और मानसिक दुःखों को प्राप्त हुए ।

२९—एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा पव्वइए समाणे इट्ठेसु सद्द-फरिस रस-रूव गंधेसु सज्जति, रज्जति, गिज्झति, मुज्झति, अज्झोववज्जति, से ण इह लोगे चेव बहूणं समणाण य जाव सावियाण य हीलणिज्जे जाव [चाउरंतसंसारकंतारं भुज्जो भुज्जो] अणुपरियट्टिस्सइ ।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! हमारा जो निर्ग्रंथ या निर्ग्रंथी दीक्षित होकर प्रिय शब्द स्पर्श रस रूप और गंध में गृद्ध होता है, मुग्ध होता है और आसक्त होता है, वह इसी लोक में बहुत श्रमणों, श्रमणियों, श्रावकों तथा श्राविकाओं की अवहेलना का पात्र होता है, चातुर्गतिक संसाराटवी में पुनः-पुनः भ्रमण करता है ।

इन्द्रियलोलुपता का दुष्फल

३०—कल रिभिय महुर-तंती तलतालवसकउहाभिरामेसु ।
सद्देसु रज्जमाणा, रमंति सोइंदियवसट्टा ॥१॥

कल अर्थात् श्रुतिसुखद और हृदयहारी, रिभित अर्थात् स्वरघोलना के प्रकार वाले, मधुर वीणा, तलताल (हाथ की ताली-करताल) और बांसुरी के श्रेष्ठ और मनोहर वाद्यों के शब्दों में अनुरक्त होने और श्रोत्रेन्द्रिय के वशवर्ती बने हुए प्राणी आनन्द मानते हैं ॥१॥

सोइंदियदुद्दन्त-त्तणस्स अह एत्तिओ हवइ दोसो ।
दीविगरुयमसहंतो, वहबंध तित्तिरो पत्तो ॥२॥

किन्तु श्रोत्रेन्द्रिय की दुर्दान्तता का अर्थात् श्रोत्रेन्द्रिय की उच्छृङ्खलता का इतना दोष होता है, जैसे पारधि के पिंजरे में रहे हुए तीतुर के शब्द को सहन न करता हुआ तीतुर पक्षी वध और बंधन को प्राप्त होता है ।

तात्पर्य यह है कि पारधि के पींजरे में फँसे हुए तीतुर का शब्द सुनकर वन का स्वाधीन तीतुर अपने स्थान से निकल आता है और पारधि उसे भी फँसा लेता है । श्रोत्रेन्द्रिय को न जीतने से ऐसे दुष्परिणाम की प्राप्ति होती है ॥२॥

थण जहण वयण कर-चरण णयण गव्विय-विलासियगइसु ।
रूवेसु रज्जमाणा, रमंति चक्खिंदियवसट्टा ॥३॥

चक्षु इन्द्रिय के वशीभूत और रूपों में अनुरक्त होने वाले पुरुष, स्त्रियों के स्तन, जघन, वदन, हाथ, पैर, नेत्रों में तथा गर्विष्ठ बनी हुई स्त्रियों की विलासयुक्त गति में रमण करते हैं—आनन्द मानते हैं ॥३॥

चक्खिंदियदुद्दंत त्तणस्स अह एत्तिओ भवइ दोसो ।
जं जलणम्मि जलंते, पडइ पयंगो अबुद्धीओ ॥४॥

परन्तु चक्षु इन्द्रिय की दुर्दान्तता से इतना दोष होता है कि—जैसे बुद्धिहीन पतंगा जलती हुई आग में जा पड़ता है अर्थात् चक्षु के वशीभूत हुआ पतंगा जैसे प्राणों से हाथ धो बैठता है, उसी प्रकार मनुष्य भी वध-बंधन के घोर दु:ख पाते हैं ॥४॥

अगुरु-वरपवरधूवण,-उउय मल्लाणुलेवणविहीसु ।
गंधेसु रज्जमाणा, रमंति घाणिंदियवसट्टा ॥५॥

सुगंध में अनुरक्त हुए और घ्राणेन्द्रिय के वश में पड़े हुए प्राणी श्रेष्ठ अगर, श्रेष्ठ धूप, विविध ऋतुओं में वृद्धि को प्राप्त माल्य (जाई आदि के पुष्पों) तथा अनुलेपन (चन्दन आदि के लेप) की विधि में रमण करते हैं अर्थात् सुगंधित पदार्थों के सेवन में आनन्द का अनुभव करते हैं ॥५॥

घाणिंदियदुद्दन्त त्तणस्स अह एत्तिओ हवइ दोसो ।
ज ओसहिगंधेण, बिलाओ निद्धावई उरगो ॥६॥

परन्तु घ्राणेन्द्रिय (नासिका) की दुर्दान्तता से अर्थात् नासिका-इन्द्रिय का दमन न करने से इतना दोष होता है कि औषधि (वनस्पति) की गंध से सर्प अपने बिल से बाहर निकल आता है। अर्थात नासिका के विषय मे आसक्त हुआ सर्प सँपेरे के हाथों पकड़ा जाकर अनेक कष्ट भोगता है ॥६॥

तित्त-कडुय कसायंब-महुर बहुखज्ज-पेज्ज लेज्झेसु ।
आसायमि उ गिद्धा, रमंति जिब्भिदियवसट्टा ॥७॥

रस मे आसक्त और जिह्वा इन्द्रिय के वशवर्त्ती हुए प्राणी कडवे, तीखे, कसले, खट्टे एवं मधुर रस वाले बहुत खाद्य, पेय, लेह्य (चाटने योग्य) पदार्थों मे आनन्द मानते हैं ॥७॥

जिब्भिंदियदुद्दन्त त्तणस्स अह एत्तिओ हवइ दोसो ।
ज गललग्गुक्खित्तो, फुरइ थलविरल्लिओ मच्छो ॥८॥

किन्तु जिह्वा इन्द्रिय का दमन न करने से इतना दोष उत्पन्न होता है कि गल (बडिश) मे लग्न होकर जल से बाहर खींचा हुआ मत्स्य स्थल मे फेंका जाकर तडपता है ।

अभिप्राय यह है कि मच्छीमार मछली को पकडने के लिए मास का टुकडा काटे में लगाकर जल मे डालते हैं । मास का लोभी मत्स्य उसे मुख मे लेता है और तत्काल उसका गला बिध जाता है । मच्छीमार उसे जल से बाहर खींच लेते हैं और उसे मृत्यु का शिकार होना पडता है ॥८॥

उउ भयमाण-सुहेहि य, सविभव हियय मणनिव्वुइकरेसु ।
फासेसु रज्जमाणा, रमंति फासिंदियवसट्टा ॥९॥

स्पर्शेन्द्रिय के वशीभूत हुए प्राणी स्पर्शेन्द्रिय की अधीनता से पीडित होकर विभिन्न ऋतुओं मे सेवन करने से सुख उत्पन्न करने वाले तथा विभव (समृद्धि) सहित, हितकारक (अथवा वैभव वालों को हितकारक) तथा मन को सुख देने वाले माला, स्त्री आदि पदार्थों मे रमण करते हैं ॥९॥

फासिंदियदुद्दन्त-त्तणस्स अह एत्तिओ हवइ दोसो ।
ज खणइ मत्थयं कुंजरस्स लोहंकुसो तिक्खो ॥१०॥

किन्तु स्पर्शनेन्द्रिय का दमन न करने से इतना दोष होता है कि लोहे का तीखा अंकुश हाथी के मस्तक को पीडा पहुँचाता है । अर्थात् स्वच्छंद रूप से वन मे विचरण करने वाला हाथी स्पर्शेन्द्रिय के वश मे होकर पकडा जाता है और फिर पराधीन बनकर महावत की मार खाता है ॥१०॥

इन्द्रियसंवर का सुफल

कलरिभियमहुरतंती-तल-ताल-वंस-ककुहाभिरामेसु ।
सद्देसु जे न गिद्धा, वसट्टमरण न ते मरए ॥११॥

कल, रिभित एवं मधुर तंत्री, तलताल तथा बाँसुरी के श्रेष्ठ और मनोहर वाद्यों के शब्दों में जो आसक्त नही होते, वे वशार्त्तमरण नहीं मरते ।

अर्थात्—जो इन्द्रियो के वश होकर आर्त्त-पीडित होते है, उन्हे वशार्त्त कहते हैं। अथवा वश को अर्थात् इन्द्रियो की पराधीनता को जो ऋत—प्राप्त है, वे वशात्त कहलाते है। ऐसे प्राणियो का मरण वशार्त्त-मरण है। अथवा इन्द्रियो के वशीभूत होकर मरना, विषयो के लिए हाय-हाय करते हुए प्राण त्यागना वशात्तमरण कहलाता है। इन्द्रियो का दमन करने वाले पुरुष ऐसा मरण नही मरते ॥११॥

विवेचन—मरण, जीवन की अन्तिम परिणति है और वह ध्रुव परिणति है। मरण के अनन्तर जन्म हो अथवा न भी हो, किन्तु जन्म के पश्चात् मरण अनिवाय है, अवश्यभावी है।

जैन परम्परा मे मृत्यु को भी महोत्सव का रूप प्रदान किया गया है, यदि वह विवेक, समभाव, आत्मलीनता, प्रभुमयता के साथ समाधिपूर्वक हो। वहाँ मृत्यु के सम्बन्ध मे अनेक स्थलो पर विशद प्रकाश डाला गया है और उसका विश्लेषण किया गया है। उत्तराध्ययनसूत्र मे लिखा है—

बालाण अकाम तु मरण असइ भवे।
पडियाण सकाम तु उक्कोसेण सइ भवे॥

—उत्तराध्ययन, अ ५, गाथा ४

अर्थात् अज्ञानी जीव अकाम-मरण से मरते है। उन्हे बार-बार मरना पडता है। किन्तु पडितो अर्थात् ज्ञानी जनो का सकाम-मरण होता है। देह उत्कृष्ट एक बार ही होता है। उन्हे बारबार नही मरना पडता—वे अमर—जन्म मरण से मुक्त हो जाते है।

इस प्रकार मरण के दो भेद बतलाए गये हैं। कही-कही बालमरण, पण्डितमरण और बाल-पण्डितमरण यो तीन भेद किए गये है। बाल-पण्डितमरण श्रमणोपासक का कहा गया है, शेष दो मरण पूर्वोक्त ज्ञानी और अज्ञानी के ही है।

भावपाहुड आदि मे मरण के सत्तरह प्रकार भी कहे गये है। जो इस प्रकार हैं—

(१) **आवीचिमरण**—जन्म होने के पश्चात् प्रतिसमय उदय मे आए हुए आयुकर्म के दलिको का निर्जीण होना-प्रतिसमय आयुदालिको का कम होते जाना।

(२) **तद्भवमरण**—वर्त्तमान भव मे प्राप्त शरीर के सबन्ध छूट जाना।

(३) **अवधिमरण**—एक बार भोग कर छोडे हुए परमाणुओ को दोबारा भोगने से पहले—जब तक जीव उनका भोगना प्रारम्भ नही करता तब तक अवधिमरण कहलाता है।

(४) **आद्यन्तमरण**—सर्व से और देश से आयु क्षीण होना तथा दोनो भवो मे एक-सी मृत्यु होना।

(५) **बालमरण**—अज्ञानपूर्वक हाय-हाय करते हुए मरना।

(६) **पण्डितमरण**—समाधि के साथ आयु पूर्ण होना।

(७) **असन्नमरण**—सयम एव व्रत से भ्रष्ट होकर मरना।

(८) **बाल-पण्डितमरण**—श्रावक के व्रतो का आचरण करके समाधिपूर्वक शरीर त्याग करना।

(९) **सशल्यमरण**—मायाशल्य, मिथ्यात्वशल्य या निदानशल्य के साथ मरना।

घाणिंदियदुद्दन्त त्तणस्स अह एत्तिओ हवइ दोसो ।
ज ओसहिगधेण, बिलाओ निद्धावई उरगो ॥६॥

परन्तु घ्राणेन्द्रिय (नासिका) की दुर्दान्तता से अर्थात् नासिका-इन्द्रिय का दमन न करने से इतना दोष होता है कि औषधि (वनस्पति) की गध से सर्प अपने बिल से बाहर निकल आता है। अर्थात नासिका के विषय मे आसक्त हुआ सर्प सँपेरे के हाथो पकडा जाकर अनेक कष्ट भोगता है ॥६॥

तित्त-कडुय कसायब महुर बहुखज्ज-पेज्ज लेज्झेसु ।
आसायमि उ गिद्धा, रमति जिब्भिदियवसट्टा ॥७॥

रस में आसक्त और जिह्वा इन्द्रिय के वशवर्ती हुए प्राणी कडवे, तीखे, कसैले, खट्टे एव मधुर रस वाले बहुत खाद्य, पेय, लेह्य (चाटने योग्य) पदार्थों मे आनन्द मानते हैं ॥७॥

जिब्भिदियदुद्दन्त त्तणस्स अह एत्तिओ हवइ दोसो ।
ज गललग्गुक्खित्तो, फुरइ थलविरल्लिओ मच्छो ॥८॥

किन्तु जिह्वा इन्द्रिय का दमन न करने से इतना दोष उत्पन्न होता है कि गल (बडिश) मे लग्न होकर जल से बाहर खीचा हुआ मत्स्य स्थल मे फका जाकर तडपता है ।

अभिप्राय यह है कि मच्छीमार मछली को पकडने के लिए मास का टुकडा काटे में लगाकर जल मे डालते हैं। मास का लोभी मत्स्य उसे मुख मे लेता है और तत्काल उसका गला विध जाता है। मच्छीमार उसे जल से बाहर खीच लेते हैं और उसे मृत्यु का शिकार होना पडता है ॥८॥

उउ भयमाण-सुहेहि य, सविभव हियय मणनिव्वुइकरेसु ।
फासेसु रज्जमाणा, रमति फासिंदियवसट्टा ॥९॥

स्पर्शेन्द्रिय के वशीभूत हुए प्राणी स्पर्शेन्द्रिय की अधीनता से पीडित होकर विभिन्न ऋतुओ मे सेवन करने से सुख उत्पन्न करने वाले तथा विभव (समृद्धि) सहित, हितकारक (अथवा वैभव वालो को हितकारक) तथा मन को सुख देने वाले माला, स्त्री आदि पदार्थों मे रमण करते हैं ॥९॥

फासिंदियदुद्दन्त-त्तणस्स अह एत्तिओ हवइ दोसो ।
ज खणइ मत्थय कुजरस्स लोहकुसो तिक्खो ॥१०॥

किन्तु स्पर्शनेन्द्रिय का दमन न करने से इतना दोष होता है कि लोहे का तीखा अकुश हाथी के मस्तक को पीडा पहुँचाता है। अर्थात् स्वच्छद रूप से वन मे विचरण करने वाला हाथी स्पर्शनेन्द्रिय के वश मे होकर पकडा जाता है और फिर पराधीन होकर महावत की मार खाता है ॥१०॥

इन्द्रियसवर का सुफल

कलरिभियमहुरतती-तल-ताल-वस-ककुहाभिरामेसु ।
सद्देसु जे न गिद्धा, वसट्टमरण न ते मरए ॥११॥

कल, रिभित एव मधुर तत्री, तलताल तथा बाँसुरी के श्रेष्ठ और मनोहर वाद्यो के शब्दो मे जो आसक्त नही होते, वे वशार्त्तमरण नहीं मरते ।

अर्थात्—जो इन्द्रयो के वश होकर आत्त-पीडित होते है, उन्ह वशात्त कहते हैं। अथवा वश को अर्थात् इन्द्रियो की पराधीनता को जो ऋत—प्राप्त है, वे वशात्त कहलाते हैं। ऐसे प्राणियो का मरण वशार्त्त-मरण है। अथवा इन्द्रियो के वशीभूत होकर मरना, विपयो के लिए हाय हाय करते हुए प्राण त्यागना वशात्तमरण कहलाता है। इन्द्रियो का दमन करने वाले पुरुप ऐसा मरण नही मरते ॥११॥

विवेचन—मरण, जीवन की अन्तिम परिणति है और वह ध्रुव परिणति है। मरण के अनन्तर जन्म हो अथवा न भी हो, किन्तु जन्म के पश्चात् मरण अनिवाय है, अवश्यभावी है।

जैन परम्परा मे मृत्यु को भी महोत्सव का रूप प्रदान किया गया है, यदि वह विवेक, समभाव, आत्मलीनता, प्रभुमयता के साथ समाधिपूर्वक हो। वहा मृत्यु के सम्बन्ध मे अनेक स्थलो पर विशद प्रकाश डाला गया है और उसका विश्लेपण किया गया है। उत्तराध्ययनसूत्र मे लिखा है—

वालाण अकाम तु मरण असइ भवे।
पडियाण सकाम तु उक्कोसेण सइ भवे॥

—उत्तराध्ययन, अ ५, गाथा ४

अर्थात् अज्ञानी जीव अकाम-मरण से मरते हैं। उन्ह वार-वार मरना पडता है। किन्तु पडितो अर्थात् ज्ञानी जनो का सकाम-मरण होता है। देह उत्कृष्ट एक वार ही होता है। उन्हे वारवार नही मरना पडता—वे अमर—जन्म मरण से मुक्त हो जाते हैं।

इस प्रकार मरण के दो भेद वतलाए गये हैं। कही-कही वालमरण, पण्डितमरण और वाल-पण्डितमरण यो तीन भेद किए गये है। वाल-पण्डितमरण श्रमणोपासक का कहा गया है, शेप दो मरण पूर्वोक्त ज्ञानी और अज्ञानी के ही हैं।

भावपाहुड आदि मे मरण के सत्तरह प्रकार भी कहे गये हैं। जो इस प्रकार हैं—

(१) **आवीचिमरण**—जन्म होने के पश्चात् प्रतिसमय उदय मे आए हुए आयुकर्म के दलिको का निर्जीण होना-प्रतिसमय आयुदालिको का कम होते जाना।

(२) **तद्भवमरण**—वत्तमान भव मे प्राप्त शरीर के सबध छूट जाना।

(३) **अवधिमरण**—एक वार भोग कर छोडे हुए परमाणुओ को दोवारा भागने से पहले—जब तक जीव उनका भोगना प्रारम्भ नहीं करता तव तक अवधिमरण कहलाता है।

(४) **आद्यन्तमरण**—सव से और देश से आयु क्षीण होना तथा दोनो भवो मे एक-सी मृत्यु होना।

(५) **वालमरण**—अज्ञानपूर्वक हाय-हाय करते हुए मरना।

(६) **पण्डितमरण**—समाधि के साथ आयु पूण होना।

(७) **यसमरण**—सयम एव व्रत से भ्रष्ट होकर मरना।

(८) **बाल-पण्डितमरण**—श्रावक के व्रतो का आचरण करके समाधिपूवक शरीर त्याग करना।

(९) **सशल्यमरण**—मायाशल्य, मिथ्यात्वशल्य या निदानशल्य के साथ मरना।

३१—एव खलु जबू ! समणेण भगवया महावीरेण जाव सपत्तेण सत्तरसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि ।

सुधर्मास्वामी अध्ययन का उपसहार करते हुए कहते हैं—'जम्बू ! निश्चय ही यावत् मुक्ति को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने सत्रहवें ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है । वही अर्थ मैं तुमसे कहता हूँ ।

॥ सत्रहवां अध्ययन समाप्त ॥

अठारहवाँ अध्ययन : सुंसुमा

सार : संक्षेप

सुसुमा ! सोने के पलने मे झूली, सुख मे पली, राजगृह नगर के धन्य-सार्थवाह की लाडली कुमारी कितनी अभागिनी ! कैसा करुण अन्त हुआ उसके जीवन का !

धन्य-सार्थवाह के पाँच पुत्रो के पश्चात् उसका जन्म हुआ था। जव वह छोटी थी तव चिलात (किरात) दास उसे अडौस-पडौस के बच्चो के साथ खेलाया करता था, यही उसका मुख्य काम था। चिलात बडा ही नटखट था, बहुत उद्दड और दुष्ट। खेल के समय वह वालक-वालिकाओ को बहुत सताता था। बहुत वार वह उनकी कौडियाँ छीन लेता, लाख के गोले छिपा लेता, वस्त्र हरण कर लेता। कभी उन्हे धमकाता, मारता, पीटता। उसके मारे वालको का नाको दम था। वे घर जाकर अपने माता-पिता से उसकी शिकायत करते। धन्य सेठ उसे डाँटते मगर वह अपनी आदत से बाज न आया। उसकी हरकतें बढती गईं।

एक बार बालको के अभिभावक जब बहुत क्रुद्ध हुए, रुष्ट हुए, तव धन्य-सार्थवाह ने चिलात को खरी-खोटी सुना कर अपने घर से निकाल दिया।

चिलात अब पूरी तरह स्वच्छद और निरकुश हो गया। उसे कोई रोकने वाला या फटकारने वाला नही था। अतएव वह जुआ के अड्डो मे, मदिरालयो मे, वेश्यागृहो मे—इधर-उधर भटकने लगा। उसके जीवन मे सभी प्रकार के दुर्व्यसनो ने अड्डा जमा लिया।

राजगृह से कुछ दूरी पर सिंहगुफा नामक एक चोरपल्ली थी। उसमे पाँच सौ चोरो के साथ उनका सरदार विजय नामक चोर रहता था। चिलात उस चोर-पल्ली में जा पहुँचा। वह बडा साहसी, बलिष्ठ और निर्भीक तो था ही, विजय ने उसे चोरकलाएँ चोरविद्याएँ और चोरमत्र सिखला कर चौर्य-कला में निष्णात कर दिया। विजय की मृत्यु के पश्चात् वह चोरो का सरदार-सेनापति भी वन गया।

तिरस्कृत करके घर से निकाल देने के कारण धन्य-सार्थवाह के प्रति उसके मन मे प्रतिशोध की भावना थी। कदाचित् सुसुमा पर उसकी प्रीति थी किन्तु उसके जीवन की अपवित्रता ने उस प्रीति को भी अपवित्र बना दिया था। जो भी कारण हो, उसने एक बार सब साथियो को एकत्र करके धन्य का घर लूटने का निश्चय प्रकट किया। सब साथी उससे सहमत हो गए। चिलात ने कहा—लूट मे जो धन मिलेगा वह सब तुम्हारा होगा, केवल सुसुमा लडकी मेरी होगी।

निश्चयानुसार एक रात्रि में धन्य-सार्थवाह के घर डाका डाला गया। प्रचुर सम्पत्ति और

सु सुमा को लेकर चोर जब वापिस लौट गए तो धन्य सेठ, जो कहीं छिपकर अपने प्राण बचा पाया था, नगर-रक्षकों के यहाँ गया। समग्र वृत्तान्त सुनकर नगर-रक्षकों ने सशस्त्र होकर चोरों का पीछा किया। धन्य और उसके पांचों पुत्र भी साथ चले।

नगर-रक्षकों ने निरंतर पीछा करके चिलात को पराजित कर दिया। तब उसके साथी पाँच सौ चोर चोरी का माल छोड कर इधर-उधर भाग गए। नगर-रक्षक वह धन-सम्पत्ति लेकर वापिस लौट गए। चिलात सु सुमा को लेकर अकेला भागा। धन्य सेठ अपने पुत्रों के साथ उसका लगातार पीछा करता चला गया। यह देखकर, बचने का अन्य कोई उपाय न रहने पर चिलात ने सु सुमा का गला काट डाला और धड को वहीं छोड, मस्तक साथ लेकर अटवी में कहीं भाग गया। मगर भूख प्यास से पीडित होकर वह अटवी में ही मृत्यु को प्राप्त हो गया—सिंहगुफा तक नहीं पहुँच सका।

उधर धन्य सार्थवाह ने जब अपनी पुत्री का मस्तकविहीन निर्जीव शरीर देखा तो उसके शोक-संताप का पार न रहा। वह बहुत देर तक रोता—विलाप करता रहा।

धन्य और उसके पुत्र चिलात का पीछा करते-करते बहुत दूर पहुँच गये थे। जोश ही जोश में उन्हें पता नहीं चला कि हम नगर से कितनी दूर आ गए हैं। अब वह जोश निःशेष हो चुका था। वे भूख प्यास से बुरी तरह पीडित हो गए थे। आसपास पानी तलाश किया, मगर कहीं एक बूंद न मिला। भूख-प्यास की इस स्थिति में लौट कर राजगृह तक पहुँचना भी संभव नहीं था। बडी विकट अवस्था थी। सभी के प्राणों पर संकट था।

यह सब सोचकर धन्य-सार्थवाह ने कहा—'भोजन-पान के बिना राजगृह पहुँचना संभव नहीं है, अतएव मेरा हनन करके मेरे मांस और रुधिर का उपभोग करके तुम लोग सकुशल घर पहुँचो।' किन्तु ज्येष्ठ पुत्र ने पिता के इस सुझाव को स्वीकार नहीं किया। उसने अपने वध की बात कही, पर अन्य भाइयों ने उसे भी मान्य नहीं किया। इसी प्रकार कोई भी किसी भाई के वध के लिए सहमत नहीं हुआ। तब धन्य ने सु सुमा के मृत कलेवर से ही भूख प्यास की निवृत्ति करने का प्रस्ताव किया। यही निर्णय रहा। सु सुमा के शरीर का आहार करके अपने पुत्रों के साथ धन्य सार्थवाह सकुशल राजगृह नगर पहुँच गया। यथासमय धन्य ने प्रव्रज्या अंगीकार की। सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुआ। वह विदेहक्षेत्र से सिद्धि प्राप्त करेगा।

प्रस्तुत अध्ययन में वर्णित कथा का यह संक्षिप्त स्वरूप है। इसका सार—निष्कर्ष स्वयं शास्त्रकार ने अन्त में दिया है। वह इस प्रकार है—

धन्य-सार्थवाह और उसके पुत्रों ने सु सुमा के मांस रुधिर का आहार शरीर के पोषण के लिए नहीं किया था, जिह्वालोलुपता के वशीभूत होकर भी नहीं किया था, किन्तु राजगृह तक पहुँचने के उद्देश्य से ही किया था। इसी प्रकार साधक मुनि को चाहिए कि वह इस अशुचि शरीर के पोषण के लिए नहीं वरन् मुक्तिधाम तक पहुँचने के लक्ष्य से ही आहार करे।

जैसे धन्य-सार्थवाह को अपनी पुत्री के मांस-रुधिर के सेवन में लेशमात्र भी आसक्ति या लोलुपता नहीं थी, उसी प्रकार साधक के मन में आहार के प्रति अणुमात्र भी आसक्ति नहीं होनी चाहिए।

उच्चतम कोटि की अनासक्ति प्रदर्शित करने के लिए योजित यह उदाहरण अत्यन्त उपयुक्त है—अनुरूप है। इस पर सही दृष्टिकोण से विचार करना चाहिए—शास्त्रकार के आशय को समझने का प्रयत्न करना चाहिए।

अट्ठारसमं अज्झयणं : सुंसुमा

उत्क्षेप

१—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं सत्तरसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, अट्ठारसमस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

जम्बूस्वामी ने प्रश्न किया—'भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर ने सत्रहवें ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है, तो अठारहवें अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?'

२—एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णामं नयरे होत्था, वण्णओ। तत्थ णं धण्णे णामं सत्थवाहे परिवसइ, तस्स णं भद्दा भारिया।

तस्स णं धण्णस्स सत्थवाहस्स पुत्ता भद्दाए अत्तया पंच सत्थवाहदारगा होत्था, तंजहा-धणे, धणपाले, धणदेवे, धणगोवे, धणरक्खिए। तस्स णं धण्णस्स सत्थवाहस्स धूया भद्दाए अत्तया पंचण्हं पुत्ताणं अणुमग्गजाइया सुंसुमा णामं दारिया होत्था सूमालपाणिपाया।

तस्स णं धण्णस्स सत्थवाहस्स चिलाए नामं दासचेडए होत्था। अहीणपंचिंदियसरीरे मंसोवचिए बालकीलावणकुसले यावि होत्था।

श्री सुधर्मास्वामी उत्तर देते हैं—'हे जम्बू ! उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था, उसका वर्णन औपपातिकसूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिए। वहाँ धन्य नामक सार्थवाह निवास करता था। भद्रा नाम की उसकी पत्नी थी।

उस धन्य-सार्थवाह के पुत्र, भद्रा के आत्मज पाँच सार्थवाहदारक थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—धन, धनपाल, धनदेव, धनगोप और धनरक्षित। धन्य-सार्थवाह की पुत्री, भद्रा की आत्मजा और पाँचों पुत्रों के पश्चात् जन्मी हुई सुंसुमा नामक बालिका थी। उसके हाथ-पैर आदि अंगोपांग सुकुमार थे।

उस धन्य-सार्थवाह का चिलात नामक दास चेटक (दासपुत्र) था। उसकी पाँचों इन्द्रियाँ पूरी थीं और शरीर भी परिपूर्ण एवं मांस से उपचित था। वह बच्चों को खेलाने में कुशल भी था।

दास चेटक : उसकी शैतानी

३—तए णं दासचेडे सुंसुमाए दारियाए बालग्गाहे जाए यावि होत्था। सुंसुमं दारियं कडीए गिण्हइ, गिण्हित्ता बहूहिं दारएहिं य दारियाहि य डिंभएहि य डिंभियाहि य कुमारएहि य कुमारियाहि य सद्धिं अभिरममाणे अभिरममाणे

अतएव वह [illegible] । बालिका [illegible] (बालक को खेलाने वाला) नियत किया गया। वह सु[illegible] को कमर [illegible] बहुत से लड़कों, लड़कियों, बच्चों, बच्चियों, कुमारों और [illegible] साथ खेल[illegible]

४—तए णं से। [illegible] बहूण [illegible] य डिंभियाण य

कुमाराण य कुमारीण य अप्पेगइयाण खुल्लए अवहरइ, एव वट्टए आडोलियाओ तेंदूसए पोत्तुल्लए साडोल्लए, अप्पेगइयाण आभरणमल्लालंकार अवहरइ, अप्पेगइए आउसइ, एव अवहसइ, निच्छोडेइ, निब्भच्छेइ, तज्जेइ, अप्पेगइए तालेइ ।

उस समय वह चिलात दास-चेटक उन बहुत-से लडको, लडकियो, बच्चो, बच्चियो, कुमारो, और कुमारियो मे से किन्ही की कौडियाँ हरण कर लेता—छीन लेता या चुरा लेता था । इसी प्रकार वर्तक (लाख के गोले) हर लेता, आडोलिया (गेंद) हर लेता, दडा (बडी गेंद), कपडा और साडोल्लक (उत्तरीय वस्त्र) हर लेता था । किन्ही किन्ही के आभरण, माला और अलकार हरण कर लेता था । किन्हीं पर आक्रोश करता, किसी की हँसी उडाता, किसी को ठग लेता, किसी की भर्त्सना करता, किसी की तर्जना करता और किसी को मारता-पीटता था । तात्पर्य यह है कि वह दास-चेटक बहुत शैतान था ।

दास-चेटक की शिकायतें

५—तए ण ते बहवे दारगा य दारिया य डिंभया य डिंभिया य कुमारा य कुमारिगा य रोयमाणा य कंदमाणा य सोयमाणा य तिप्पमाणा य विलवमाणा य साण-साण अम्मापिऊण णिवेदेंति ।

तए ण तेसिं बहूण दारगाण य दारिगाण य डिंभाण य डिंभियाण य कुमाराण य कुमारियाण य अम्मापियरो जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता धण्ण सत्थवाह बहूहि खिज्जणाहि य रुंटणाहि य उवलभणाहि य खिज्जमाणा य रुंटमाणा य उवलंभेमाणा य धण्णस्स एयमट्ठ णिवेदेंति ।

तब वे बहुत-से लडके, लडकिया, बच्चे, बच्चियाँ, कुमार और कुमारिकाएँ रोते हुए, चिल्लाते हुए, शोक करते हुए, आंसू बहाते हुए, विलाप करते हुए जाकर अपने-अपने माता-पिताओ से चिलात की करतूत कहते थे ।

उस समय बहुत-से लडको, लडकियो, बच्चे, बच्चियों, कुमारो और कुमारिकाओं के माता-पिता धन्य-सार्थवाह के पास आते । आकर धन्य-सार्थवाह को खेदजनक वचनो से, रुआंसे होकर उलाहने—भरे वचनो से खेद प्रकट करते, रोते और उलाहना देते थे और धन्य-सार्थवाह को यह वृत्तान्त कहते थे ।

६—तए ण धण्णे सत्थवाहे चिलाय दासचेड एयमट्ठ भुज्जो भुज्जो णिवारेति, णो चेव णं चिलाए दासचेडे उवरमइ । तए ण से चिलाए दासचेडे तेसिं बहूण दारगाण य दारिगाण य डिंभयाण य डिंभियाण य कुमारगाण य कुमारिगाण य अप्पेगइयाण खुल्लए अवहरइ जाव तालेइ ।

तत्पश्चात् धन्य-सार्थवाह ने चिलात दास-चेटक को इस बात के लिए बार-बार मना किया, मगर चिलात दास-चेटक रुका नहीं, । माना नही । धन्य सार्थवाह के रोकने पर भी चिलात दास-चेटक उन बहुत-से लडको, लडकियों, बच्चो, बच्चियों, कुमार और कुमारिकाओं मे से किन्हीं की कौडियाँ हरण करता रहा और किन्ही को यावत् मारता-पीटता रहा ।

७—तए णं ते बहवे दारगा य दारिया य डिंभगा य डिंभिया य कुमारा य कुमारिया य रोयमाणा य जाव[1] अम्मापिऊणं णिवेदेंति ।

तए णं ते आसुरुत्ता रुट्ठा कुविया चंडिक्किया मिसिमिसेमाणा जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता बहूहिं खिज्जणाहि य जाव[2] एयमट्ठं णिवेदेंति ।

तब वे बहुत लड़के-लड़कियाँ, बच्चे-बच्चियाँ, कुमार और कुमारिकाएँ रोते-चिल्लाते गये, यावत् माता-पिताओं से उन्होंने यह बात कह सुनाई ।

तब वे माता-पिता एकदम क्रुद्ध हुए, रुष्ट, कुपित, प्रचण्ड हुए, क्रोध से जल उठे और धन्य सार्थवाह के पास पहुँचे । पहुँच कर बहुत खेदयुक्त वचनों से उन्होंने यह बात उससे कही ।

दास-चेटक का निष्कासन

८—तए णं से धण्णे सत्थवाहे बहूणं दारगाणं दारियाणं डिंभयाणं डिंभियाणं कुमारगाणं कुमारियाणं अम्मापिऊणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा आसुरुत्ते चिलायं दासचेडं उच्चावयाहिं आउसणाहिं आउसइ, उद्धंसइ, णिब्भच्छेइ, णिच्छोडेइ, तज्जेइ, उच्चावयाहिं तालणाहिं तालेइ, साओ गिहाओ णिच्छुभइ ।

तब धन्य-सार्थवाह बहुत-से लड़कों, लड़कियों, बच्चों, बच्चियों, कुमारों और कुमारिकाओं के माता-पिताओं से यह बात सुन कर एकदम कुपित हुआ । उसने ऊँचे-नीचे आक्रोश-वचनों से चिलात दास-चेट पर आक्रोश किया अर्थात् खरी-खोटी सुनाई, उसका तिरस्कार किया, भर्त्सना की, धमकी दी, तर्जना की और ऊँची-नीची ताडनाओं से ताड़ना की और फिर उसे अपने घर से बाहर निकाल दिया ।

दास-चेटक दुर्व्यसनी बना

९—तए णं से चिलाए दासचेडे साओ गिहाओ निच्छूढे समाणे रायगिहे नयरे सिंघाडए जाव पहेसु य देवकुलेसु य सभासु य पवासु य जूयखलएसु य वेसाघरेसु य पाणघरेसु य सुहंसुहेणं परियट्टइ ।

तए णं से चिलाए दासचेडे अणोहट्टिए अणिवारिए सच्छंदमई सइरप्पयारी मज्जपसंगी चोज्जपसंगी मंसपसंगी जूयप्पसंगी वेसापसंगी परदारप्पसंगी जाए यावि होत्था ।

धन्य सार्थवाह द्वारा अपने घर से निकाला हुआ वह चिलात दास-चेट राजगृह नगर में शृंगाटकों यावत् पथों में अर्थात् गली-कूचों में, देवालयों में, सभाओं में, प्याउओं में, जुआरियों के अड्डों में, वेश्याओं के घरों में तथा मद्यपानगृहों में मजे से भटकने लगा ।

उस समय उस दास-चेट चिलात को कोई हाथ पकड़ कर रोकने वाला (हटकने वाला) तथा वचन से रोकने वाला न रहा, अतएव वह निरंकुश बुद्धि वाला, स्वेच्छाचारी, मदिरापान में आसक्त, चोरी करने में आसक्त, मांसभक्षण में आसक्त, जुआ में आसक्त, वेश्यासक्त तथा पर-स्त्रियों में भी लम्पट हो गया ।

---

१. अ. १८ सूत्र २   २. अ. १८ सूत्र ४

१०—तए ण रायगिहस्स णगरस्स अदूरसामंते दाहिणपुरत्थिमे दिसिभाए सीहगुहा नाम चोरपल्ली होत्था, विसमगिरिकडग कोडब-सनिविट्ठा वसीकलक पागार-परिक्खित्ता छिण्ण सेल-विसमप्पवाय फरिहोवगूढा एगदुवारा अणेगखडी विदितजणणिग्गम-पवेसा अब्भितरपाणिया सुदुल्लभ-जलपेरता सुबहुस्स वि कूवियबलस्स आगयस्स दुप्पहसा यावि होत्था ।[1]

उस समय राजगृह नगर से न अधिक दूर और न अधिक समीप प्रदेश मे, दक्षिणपूर्व दिशा (आग्नेयकोण) मे सिंहगुफा नामक एक चोरपल्ली थी । वह पल्ली विषम गिरिनितब के प्रान्त भाग मे बसी हुई थी । बास की झाडियो के प्राकार से घिरी हुई थी । अलग-अलग टकरियो के प्रपात (दो पर्वतो के बीच के गडहे) रूपी परिखा से युक्त थी । उसमे जाने-आने के लिए एक ही दरवाजा था, परन्तु भाग जाने के लिए छोटे-छोटे अनेक द्वार थे । जानकार लोग ही उसमे से निकल सकते और उसमे प्रवेश कर सकते थे । उसके भीतर ही पानी था । उस पल्ली से बाहर आस-पास मे पानी मिलना अत्यन्त दुर्लभ था । चुराये हुए माल को छीनने के लिए आई हुई सेना भी उस पल्ली का कुछ नही बिगाड सकती थी । ऐसी थी वह चोरपल्ली ।

११—तत्थ ण सीहगुहाए चोरपल्लीए विजए णाम चोरसेणावई परिवसइ अहम्मिए जाव [अहम्मिट्ठे अहम्मक्खाई अहम्माणुए अहम्मपलोई अहम्मपलज्जणे अहम्मसील-समुयायारे अहम्मेण चेव वित्ति कप्पेमाणे विहरइ । हण-छिंद भिंद-वियत्तए लोहियपाणी चडे रुद्दे खुद्दे साहस्सिए उक्कचण-वचण माया-नियडि-कवड-कूड-साइ-सपयोगबहुले निस्सीले निव्वए निग्गुणे निप्पच्चक्खाणपोसहोववासे बहूण दुप्पय-चउप्पय मिय-पसु-पक्खि-सरिसिवाण घायाए वहाए उच्छायणाए] अहम्मकेऊ समुट्ठिए बहुनगरणिग्गयजसे सूरे दढप्पहारी साहसिए सद्दवेही । से ण तत्थ सीहगुहाए चोरपल्लीए पचण्हं चोरसयाण आहेवच्च जाव विहरइ ।

उस सिंहगुफा पल्ली मे विजय नामक चोर सेनापति रहता था । वह अधार्मिक, [अत्यन्त क्रूर कर्मकारी होने के कारण अधर्मिष्ठ, अधम की बात करने वाला, अधम-प्रलोकी—अधर्म पर ही दृष्टि रखने वाला, अधर्म-कृत्यो का अनुरागी, अधमशील और अधर्माचारी था तथा अधर्म से ही जीवन-निर्वाह कर रहा था । इसका घात कर डालो, इसे काट डालो, इसे भेद डालो, ऐसी दूसरो को प्रेरणा किया करता था । उसके हाथ रुधिर से लिप्त रहते थे । वह चड—तीव्र रोष वाला, रौद्र—नृशस, क्षुद्र—क्षुद्रकर्म करने वाला, साहसिक—परिणाम विचार किए बिना किसी भी काम मे कूद पडने वाला था । प्राय उत्कचन, वचन, माया, निकृति (वक्रवृत्ति से दूसरो को ठगना अथवा एक मायाचार को ढँकने के लिए दूसरी माया करना), कपट (वेष परिवर्तन करना आदि), कूट (न्यूनाधिक तोलना-नापना) एव स्वाति अविश्रंभ का ही प्रयोग किया करता था । वह शीलहीन,

---

१ वाचनान्तर मे इस प्रकार का पाठ है— जत्थ चउरंगबलनिउत्तावि कूवियबला हय-महिय-पवरवीर-घाइय-निवडिय चिंध-धय-पडागा कीरति । —अभयदेव टीका पृ २४१ (पू)

तात्पर्य यह कि उस चोरपल्ली मे रहने वाले चोर इतने बलिष्ठ और साहसी थे कि चुराया हुआ माल छीनने के लिए यदि सबल चतुरगिणी सेना भेजी जाय तो उसे भी वे हत और मथित कर सकते थे—उसका मान-मर्दन कर सकते थे और उसकी ध्वजा-पताका नष्ट कर सकते थे ।

व्रतहीन गुणहीन, प्रत्याख्यान और प्रोषधोपवास से रहित तथा बहुत से द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी और सरीसृप—रेंग कर चलने वाले जंतुओं का घात, वध और उच्छेदन करने वाला था।] इन पाप कार्यों और पापों के कारण वह अधर्म की ध्वजा था। बहुत नगरों में उसका (चोरी करने की बहादुरी का) यश फैला हुआ था। वह शूर था, दृढ प्रहार करने वाला, साहसी और शब्दवेधी (शब्द के आधार पर बाण चला कर लक्ष्य का वेधन करने वाला) था। वह उस सिंहगुफा में पांच सौ चोरों का अधिपतित्व करता हुआ रहता था।

१२—तए णं से विजए तक्करे चोरसेणावई बहूणं चोराण य पारदारियाण य गंठिभेयगाण य संधिच्छेयगाण य खत्तखणगाण य रायावगारीण य अणधारगाण य बालघायगाण य वीसंभघायगाण य जूयकाराण य खंडरक्खाण य अन्नेसिं च बहूणं छिन्न-भिन्न बाहिराहयाणं कुडंगे यावि होत्था।

वह चोरों का सेनापति विजय तस्कर दूसरे बहुतेरे चोरों के लिए, जारों के लिए, राजा के अपकारियों के लिए, ऋणियों के लिए, गठकटों के लिए, सेंध लगाने वालों के लिए, खात खोदने वालों के लिए बालघातकों के लिए, विश्वासघातियों के लिए, जुआरिओं के लिए तथा खण्डरक्षकों (दण्डपाशिकों) के लिए और मनुष्यों के हाथ-पैर आदि अवयवों को छेदन-भेदन करने वाले अन्य लोगों के लिए कुडंग (बांस की झाडी) के समान शरणभूत था। अर्थात् जैसे अपराधी लोग राजभय से बांस की झाडी में छिप जाते हैं अतः बांस की झाडी उनके लिए शरणरूप होती है, उसी प्रकार विजय चोर भी अन्यायी-अत्याचारी लोगों का आश्रयदाता था।

१३—तए णं से विजए तक्करे चोरसेणावई रायगिहस्स नगरस्स दाहिणपुरच्छिमं जणवयं बहूहिं गामघाएहिं य नगरघाएहिं य गोग्गहणेहिं य बंदिग्गहणेहिं य पंथकुट्टणेहिं य खत्तखणणेहिं य उवीलेमाणे उवीलेमाणे विद्धंसेमाणे विद्धंसेमाणे णित्थाणं णिद्धणं करेमाणे विहरइ।

वह चोर सेनापति विजय तस्कर राजगृह नगर के दक्षिणपूर्व (अग्निकोण) में स्थित जनपद-प्रदेश को, ग्राम के घात द्वारा नगरघात द्वारा, गायों का हरण करके, लोगों को कैद करके, पथिकों को मारकूट कर तथा सेंध लगा कर पुनः-पुनः उत्पीडित करता हुआ तथा विध्वस्त करता हुआ, लोगों को स्थानहीन एवं धनहीन बना रहा था।

चोर-सेनापति की शरण में

१४—तए णं से चिलाए दासचेडे रायगिहे नयरे बहूहिं अत्थाभिसंकीहि य चोराभिसंकीहि य दाराभिसंकीहि य धणिएहि य जूयकरेहि य परब्भवमाणे परब्भवमाणे रायगिहाओ नयराओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव सीहगुहा चोरपल्ली तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता विजयं चोर-सेणावइं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ।

तत्पश्चात् वह चिलात दास-चेट राजगृह नगर में बहुत से अर्थाभिशंकी (हमारा धन यह चुरा लेगा ऐसी शंका करने वालों), चौराभिशंकी (चोर समझने वालों), दाराभिशंकी (यह हमारी स्त्री को ले भागेगा, ऐसी शंका करने वालों), धनिकों और जुआरियों द्वारा पराभव पाता हुआ—तिरस्कृत

होकर राजगृह नगर से बाहर निकला। निकलकर जहाँ सिंहगुफा नामक चोरपल्ली थी, वहा पहुँचा। पहुँच कर चोरसेनापति विजय के पास उसकी शरण मे जाकर रहने लगा।

१५—तए ण से चिलाए दासचेडे विजयस्स चोरसेणावइस्स अग्ग-असि लट्ठिग्गाहे जाए यावि होत्था। जाहे वि य ण से विजए चोरसेणाई गामघाय वा जाव [नगरघाय वा गोगहण वा बंदिग्गहण वा] पथकोट्टि वा काउ वच्चइ, ताहे वि य ण से चिलाए दासचेडे सुबहुपि हु कूवियबल हयमहिय जाव[1] पडिसेहेइ, पुणरवि लद्धट्ठे कयकज्जे अणहसमग्गे सीहगुह चोरपल्लि हव्वमागच्छइ।

तत्पश्चात् वह दास-चेट चिलात विजय नामक चोरसेनापति के यहाँ प्रधान खड्गधारी या खड्ग और यष्टि का धारक हो गया। अतएव जब भी वह विजय चोरसेनापति ग्राम का घात करने के लिए [नगर-घात करने के लिए, गायो का अपहरण करने या बंदियो को पकडने अथवा], पथिकों को मारने-कूटने के लिए जाता था, उस समय दास-चेट चिलात बहुत-सी कूविय (चोरी का माल छीनने के लिए आने वाली) सेना को हत एव मथित करके रोकता था—भगा देता था और फिर उस धन आदि को लेकर अपना कार्य करके सिंहगुफा चोरपल्ली मे सकुशल वापिस आ जाता था।

१६—तए ण से विजए चोरसेणावई चिलाय तक्कर बहूईओ चोरविज्जाओ य चोरमते य चोरमायाओ य चोरनिगडीओ य सिक्खावेइ।

उस विजय चोरसेनापति ने चिलात तस्कर को बहुत-सी चोरविद्याएँ, चोरमंत्र, चोरमायाएँ और चोर-निकृतियाँ (चोरो के योग्य छल-कपट) सिखला दीं।

१७—तए ण से विजए चोरसेणावई अन्नया कयाइ कालधम्मुणा सजुत्ते यावि होत्था। तए ण ताइ पच चोरसयाइ विजयस्स चोरसेणावइस्स महया महया इड्ढी-सक्कार-समुदएण णीहरण करेंति, करित्ता बहूइ लोइयाइ मयकिच्चाइ करेइ, करित्ता जाव [कालेण] विगयसोया जाया यावि होत्था।

तत्पश्चात् विजय चोर किसी समय मृत्यु को प्राप्त हुआ—कालधर्म से युक्त हुआ। तब उन पाच सौ चोरो ने बडे ठाठ और सत्कार के समूह के साथ विजय चोरसेनापति का नीहरण किया—श्मशान मे ले जाने की क्रिया की। फिर बहुत-से लौकिक मृतकृत्य किये। कुछ समय बीत जाने पर वे शोकरहित हो गये।

चिलात सेनापति बना

१८—तए ण ताइ पच चोरसयाइ अन्नमन्न सद्दावेंति, सद्दावित्ता एव वयासी—एव खलु अम्ह देवाणुप्पिया! विजए चोरसेणावई कालधम्मुणा सजुत्ते, अय च ण चिलाए तक्करे विजएण चोरसेणावइणा बहूओ चोरविज्जाओ य जाव[2] सिक्खाविए, त सेय खलु अम्ह देवाणुप्पिया! चिलाय तक्कर सीहगुहाए चोरपल्लीए चोरसेणावइत्ताए अभिसिचित्तए।' त्ति कट्टु अन्नमन्नस्स एयमट्ठ पडिसुणेति, पडिसुणित्ता चिलाय तक्कर तीए सीहगुहाए चोरसेणावइत्ताए अभिसिंचति। तए ण से चिलाए चोर सेणावई जाए अहम्मिए जाव[3] विहरइ।

१ अ १८, सूत्र १७९ २ अ १८ सूत्र १६ ३ अ १८ सूत्र ११

तत्पश्चात् उन पाँच सौ चोरों ने एक दूसरे को बुलाया (सब इकट्ठे हुए)। तब उन्होंने आपस में कहा—'देवानुप्रियो! हमारा चोरसेनापति विजय कालधर्म (मरण) से संयुक्त हो गया है और विजय चोरसेनापति ने इस चिलात तस्कर को बहुत-सी चोरविद्याएं आदि सिखलाई हैं। अतएव देवानुप्रियो! हमारे लिए यही श्रेयस्कर होगा कि चिलात तस्कर का सिंहगुफा चोरपल्ली के चोरसेनापति के रूप में अभिषेक किया जाय।' इस प्रकार यह बात उन्होंने एक दूसरे की बात स्वीकार की। चिलात तस्कर को सिंहगुफा चोरपल्ली के चोरसेनापति के रूप में अभिषिक्त किया। तब वह चिलात चोरसेनापति हो गया तथा विजय के समान ही अधार्मिक, क्रूरकर्मा एवं पापाचारी होकर रहने लगा।

१९—तए णं से चिलाए चोरसेणावई चोरणायगे जाव[1] कुडंगे यावि होत्था। से णं तत्थ सीहगुहाए चोरपल्लीए पंचण्हं चोरसयाण य एवं जहा विजओ[2] तहेव सव्वं जाव रायगिहस्स दाहिण पुरच्छिमिल्लं जणवयं जाव णित्थाणं निद्धणं करेमाणे विहरइ।

वह चिलात चोरसेनापति चोरों का नायक यावत् कुडंग (बाँस की झाड़ी) के समान चोरों-जारों आदि का आश्रयभूत हो गया। वह उस सिंहगुफा नामक चोरपल्ली में पाँच सौ चोरों का अधिपति हो गया, इत्यादि विजय चोर के वर्णन के समान समझना चाहिए। यावत् वह राजगृह नगर के दक्षिण-पूर्व के जनपद निवासी जनों को स्थानहीन और धनहीन बनाने लगा।

२०—तए णं से चिलाए चोरसेणावई अन्नया कयाइ विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेत्ता पंच चोरसए आमंतेइ। तओ पच्छा ण्हाए कयबलिकम्मे भोयणमंडवंसि तेहिं पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं सुरं च जाव [मज्जं च मंसं च सीधुं च] पसण्णं च आसाएमाणे विसाएमाणे परिभाएमाणे परिभुंजेमाणे विहरइ। जिमियभुत्तुत्तरागए ते पंच चोरसए विपुलेणं धूव-पुप्फ-गंध-मल्लालंकारेणं सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता एवं वयासी—

तत्पश्चात् चिलात चोरसेनापति ने एक बार किसी समय विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार करवा कर पाँच सौ चोरों को आमंत्रित किया। फिर स्नान तथा बलिकर्म करके भोजन-मंडप में उन पाँच सौ चोरों के साथ विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम का तथा सुरा-(मद्य, मांस, सीधु तथा) प्रसन्ना नामक मदिराओं का आस्वादन, विस्वादन, वितरण एवं परिभोग करने लगा। भोजन कर चुकने के पश्चात् पाँच सौ चोरों का विपुल धूप, पुष्प, गंध, माला और अलंकार से सत्कार किया, सम्मान किया। सत्कार-सम्मान करके उनसे इस प्रकार कहा—

धन्य-सार्थवाह के घर की लूट : धन्य-कन्या का अपहरण

२१—एवं खलु देवाणुप्पिया! रायगिहे णयरे धण्णे णामं सत्थवाहे अड्ढे, तस्स णं धूया भद्दाए अत्तया पंचण्हं पुत्ताणं अणुमग्गजाइया सुंसुमा णामं दारिया यावि होत्था अहीणा जाव सुरूवा। तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया! धण्णस्स सत्थवाहस्स गिहं विलुपामो। तुब्भं विपुले धणकणग जाव [रयण मणि-मोत्तिय-संख- सिलप्पवाले, मम सुंसुमा दारिया।'

तए णं ते पंच चोरसया चिलायस्स चोरसेणावइस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति।

---

१ अ. १८ सूत्र १२   २ देखिए, द्वितीय अध्ययन

(चिलात ने कहा)—'देवानुप्रियो ! राजगृह नगर मे धन्य नामक धनाढ्य सार्थवाह है। उसकी पुत्री, भद्रा की आत्मजा और पाच पुत्रो के पश्चात् जन्मी हुई सुंसुमा नाम की लडकी है। वह परिपूर्ण इन्द्रियो वाली यावत् सुन्दर रूप वाली है। तो हे देवानुप्रियो ! हम लोग चले और धन्य-सार्थवाह का घर लूटें। उस लूट मे मिलने वाला विपुल धन, कनक, यावत् [रत्न, मणि, मोती, शख तथा] शिला, मूंगा वगैरह तुम्हारा होगा, सुंसुमा लडकी मेरी होगी।'

तब उन पाँच सौ चोरो ने चोरसेनापति चिलात की बात अगीकार की।

२२—तए णं से चिलाए चोरसेणावई तेहिं पर्चाहिं चोरसएहिं सद्धिं अल्ल चम्मं दुरूहइ, पच्चावरण्हकालसमयंसि पर्चाहिं चोरसएहिं सद्धिं सन्नद्ध जाव गहियाउहपहरणे माइयगोमुहिएहिं फलएहिं, णिक्कट्ठाहिं असिलट्ठीहिं, असगएहिं तोणेहिं, सजीवेहिं धणूहिं, समुक्खित्तेहिं सरेहिं समुल्लालियाहिं दाहाहिं, ओसारियाहिं उरुघंटियाहिं, छिप्पतूरेहिं वज्जमाणेहिं महया महया उक्किट्ठसीहणाय-बोल-कलकलरवेण जाव [पक्खुभियमहा] समुद्दरवभूयं करेमाणा सीहगुहाओ चोरपल्लीओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव रायगिहे नगरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रायगिहस्स अदूरसामंते एगं महं गहणं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता दिवसं खवेमाणो चिट्ठइ।

तत्पश्चात् चिलात चोरसेनापति उन पाँच सौ चोरो के साथ (मगल के लिए) आर्द्र चर्म (गीली चमडी) पर बैठा। फिर दिन के अतिम प्रहर मे पाच सौ चोरो के साथ कवच धारण करके तैयार हुआ। उसने आयुध और प्रहरण ग्रहण किये। कोमल गोमुखित—गाय के मुख सरीखे किए हुए फलक (ढाल) धारण किये। तलवारें म्यानो से बाहर निकाल ली। कन्धो पर तरकश धारण किये। धनुष जीवायुक्त कर लिए। बाण बाहर निकाल लिए। बछिया और भाले उछालने लगे। जघाओं पर बाधी हुई घंटिकाएँ लटका दी। शीघ्र बाजे बजने लगे। बडे-बडे उत्कृष्ट सिहनाद और बोलो की कल कल ध्वनि से ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे महासमुद्र का खलखल शब्द हो रहा हो। इस प्रकार शोर करते हुए वे सिहगुफा नामक चोरपल्ली से बाहर निकले। निकलकर जहा राजगृह नगर था, वहाँ आये। आकर राजगृह नगर से कुछ दूर एक सघन वन मे घुस गये। वहा घुस कर शेष रहे दिन को समाप्त करने लगे—सूर्य के अस्त हो जाने की प्रतीक्षा करने लगे।

२३—तए णं से चिलाए चोरसेणावई अद्धरत्तकालसमयंसि निसंतपडिनिसंतंसि पर्चाहिं चोरसएहिं सद्धिं माइयगोमुहिएहिं फलएहिं जाव मूइआहिं ऊरुघंटियाहिं जेणेव रायगिहे नयरे पुरच्छिमिल्ले दुवारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता उदगवत्थिं परामुसइ, परामुसित्ता आयंते चोक्खे परमसुइभूइ तालुग्घाडणिविज्जं आवाहेइ, आवाहित्ता रायगिहस्स दुवारकवाडे उदएणं अच्छोडेइ, अच्छोडित्ता कवाडं विहाडेइ, विहाडित्ता रायगिहं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता महया महया सद्देणं उग्घोसेमाणे उग्घोसेमाणे एवं वयासी—

तत्पश्चात् चोरसेनापति चिलात आधी रात के समय, जब सब जगह शान्ति और सुनसान हो गया था, पाच सौ चोरो के साथ, रीछ आदि के चमडे से मढ़ित होने के कारण कोमल गोमुखित (ढालें), छाती से बांध कर यावत् जांघो पर घूघरे लटका कर राजगृह नगर के पूर्व दिशा के दरवाजे पर पहुँचा। पहुँच कर उसने जल की मशक ली। उसमे से जल की एक अजलि लेकर आचमन किया, स्वच्छ हुआ, पवित्र हुआ, फिर ताला खोलने की विद्या का आवाहन करके राजगृह के द्वार के

किवाड़ों पर पानी छिड़का। पानी छिड़क कर किवाड़ उघाड़ लिये। तत्पश्चात् राजगृह में भीतर प्रवेश किया। प्रवेश करके ऊँचे ऊँचे शब्दों से आघोषणा करते-करते इस प्रकार बोला—

२४—'एवं खलु देवाणुप्पिया! चिलाए णामं चोरसेणावई पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं सीहगुहाओ चोरपल्लीओ इहं हव्वमागए धण्णस्स सत्थवाहस्स गिहं घाउकामे, तं जो णं णवियाए माउयाए दुद्धं पाउकामे, से णं निग्गच्छउ' त्ति कट्टु जेणेव धण्णस्स सत्थवाहस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धण्णस्स गिहं विहाडेइ।

'देवानुप्रियो! मैं चिलात नामक चोरसेनापति, पांच सौ चोरों के साथ, सिंहगुफा नामक चोर-पल्ली से, धन्य-सार्थवाह का घर लूटने के लिए यहाँ आया हूँ। जो नवीन माता का दूध पीना चाहता हो अर्थात् मरना चाहता हो, वह निकल कर मेरे सामने आवे।' इस प्रकार कह कर वह धन्य सार्थवाह के घर आया। आकर उसने धन्य-सार्थवाह का (द्वार) उघाड़ा।

२५—तए णं से धण्णे सत्थवाहे चिलाएणं चोरसेणावइणा पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं गिहं घाइज्जमाणं पासइ, पासित्ता भीए, तत्थे, पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं एगंतं अवक्कमइ।

तए णं से चिलाए चोरसेणावई धण्णस्स सत्थवाहस्स गिहं घाएइ, घाइत्ता सुबहुं धणकणगं जाव सावएज्जं सुंसुमं च दारियं गेण्हइ, गेण्हित्ता रायगिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव सीहगुहा तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

धन्य-सार्थवाह ने देखा कि पांच सौ चोरों के साथ चिलात चोरसेनापति के द्वारा घर लूटा जा रहा है। यह देखकर वह भयभीत हो गया, घबरा गया और अपने पांचों पुत्रों के साथ एकान्त में चला गया—छिप गया।

तत्पश्चात् चोर सेनापति चिलात ने धन्य सार्थवाह का घर लूटा। लूट कर बहुत सारा धन, कनक यावत् स्वापतेय (द्रव्य) तथा सुंसुमा दारिका को लेकर वह राजगृह से बाहर निकल कर जिधर सिंहगुफा थी, उसी ओर जाने के लिए उद्यत हुआ।

नगररक्षकों के समक्ष फरियाद

२६—तए णं से धण्णे सत्थवाहे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुबहुं धणकणगं सुंसुमं दारियं च अवहरियं जाणित्ता महत्थं महग्घं महरिहं पाहुडं गहाय जेणेव णगरगुत्तिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं महत्थं जाव पाहुडं उवणेइ, उवणित्ता एवं वयासी—'एवं खलु देवाणुप्पिया! चिलाए चोरसेणावई सीहगुहाओ चोरपल्लीओ इहं हव्वमागम्म पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं मम गिहं घाएत्ता सुबहुं धणकणगं सुंसुमं च दारियं गहाय जाव पडिगए, तं इच्छामो णं देवाणुप्पिया! सुंसुमादारियाए कूवं गमित्तए। तुब्भं णं देवाणुप्पिया! से विपुले धणकणगे, ममं सुंसुमा दारिया।

चोरों के चले जाने के पश्चात् धन्य-सार्थवाह अपने घर आया। आकर उसने जाना कि मेरा बहुत सा धन कनक और सुंसुमा लड़की का अपहरण कर लिया गया है। यह जान कर वह बहुमूल्य भेंट लेकर नगर के रक्षकों के पास गया और उनसे कहा—'देवानुप्रियो! चिलात नामक चोरसेनापति सिंहगुफा नामक चोरपल्ली से यहाँ आकर, पांच सौ चोरों के साथ मेरा घर लूट कर और बहुत सा

धन, कनक तथा सुसुमा लडकी को लेकर चला गया है । अतएव हम, हे देवानुप्रियो ! सुसुमा लडकी को वापिस लाने के लिए जाना चाहते हैं । देवानुप्रियो ! जो धन, कनक वापिस मिले वह सब तुम्हारा होगा और सुसुमा दारिका मेरी रहेगी ।

चिलात का पीछा किया

२७—तए ण ते णयरगुत्तिया धण्णस्स एयमट्ठ पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता सन्नद्ध जाव गहियाउह पहरणा महया महया उक्किट्ठ जाव समुद्दरवभूय पिव करेमाणा रायगिहाओ निग्गच्छति, निग्गच्छित्ता जेणेव चिलाए चोरे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता चिलाएण चोरसेणावइणा सद्धि सपलग्गा यावि होत्था ।

तब नगर के रक्षको ने धन्य-सार्थवाह की यह बात स्वीकार की । स्वीकार करके वे कवच धारण करके सन्नद्ध हुए । उन्होने आयुध और प्रहरण लिए । फिर जोर-जोर के उत्कृष्ट सिंहनाद से समुद्र की खलभलाहट जैसा शब्द करते हुए राजगृह से बाहर निकले । निकल कर जहाँ चिलात चोर था, वहाँ पहुँचे, पहुँच कर चिलात चोरसेनापति के साथ युद्ध करने लगे ।

२८—तए ण णगरगुत्तिया चिलाय चोरसेणावइ हयमहिय जाव पडिसेहेंति । तए ण ते पच चोरसया णगरगोत्तिएहिं हयमहिय जाव पडिसेहिया समाणा त विपुल धणकणग विच्छडडेमाणा य विप्पकिरेमाणा य सव्वओ समता विप्पलाइत्था ।

तए ण ते णयरगुत्तिया त विपुल धणकणग गेण्हति, गेण्हित्ता जेणेव रायगिहे तेणेव उवागच्छति ।

तब नगररक्षको ने चोरसेनापति चिलात को हत, मथित करके यावत् पराजित कर दिया । उस समय वे पाच सौ चोर नगररक्षको द्वारा हत, मथित होकर, और पराजित होकर उस विपुल धन और कनक आदि को छोडकर और फेंक कर चारो ओर—कोई किसी तरफ, कोई किसी तरफ भाग खडे हुए ।

तत्पश्चात् नगररक्षको ने वह विपुल धन, कनक आदि ग्रहण कर लिया । ग्रहण करके वे जिस ओर राजगृह नगर था, उसी ओर चल पडे ।

२९—तए ण से चिलाए त चोरसेण्ण तेहिं नगरगुत्तिएहिं हयमहिय जाव पवरवीरघाइय विवडियचिंध धय पडाग किच्छोवगयपाण दिसोदिसि पडिसेहिय (पासित्ता ?) भीते तत्थे सुसुम दारिय गहाय एग मह अगामिय दीहमद्ध अडवि अणुपविट्ठे ।

तए ण धण्णे सत्थवाहे सुसुम दारिय चिलाएण अडवीमुहिं अवहीरमाणिं पासित्ता ण पचहिं पुत्तेहिं सद्धि अप्पछट्ठे सन्नद्धबद्धवम्मियकवए चिलायस्स पदमग्गविहिं अभिगच्छइ, अणुगच्छमाणे अणुगज्जेमाणे हक्कारेमाणे पुक्कारेमाणे अभितज्जेमाणे अभितासेमाणे पिट्ठओ अणुगच्छइ ।

नगररक्षको द्वारा चोरसैन्य को हत एव मथित हुआ देख कर तथा उसके श्रेष्ठ वीर मारे गये, ध्वजा-पताका नष्ट हो गई, प्राण सकट मे पड गए हैं, सैनिक इधर उधर भाग छूटे हैं यह देख

कर चिलात भयभीत और उद्विग्न हो गया। वह सुंसुमा दारिका को लेकर एक महान् अग्रामिक¹ (जिसके बीच में या आसपास कोई गाँव न हो ऐसी) तथा लम्बे मार्ग वाली अटवी में घुस गया।

उस समय धन्य सार्थवाह सुंसुमा दारिका को अटवी के सम्मुख ले जाती देख कर, पाँचों पुत्रों के साथ छठा आप स्वयं कवच पहन कर, चिलात के पैरों के मार्ग पर चला अर्थात् उसके पैरों के चिह्न देखता-देखता आगे बढ़ा। वह उसके पीछे पीछे चलता हुआ, गर्जना करता हुआ, चुनौती देता हुआ, पुकारता हुआ, तर्जना करता हुआ और उसे त्रस्त करता हुआ उसके पीछे पीछे चलने लगा।

सुंसुमा पुत्री का शिरच्छेदन

३०—तए णं से चिलाए तं धण्णं सत्थवाहं पंचहिं पुत्तेहिं अप्पछट्ठं सन्नद्धबद्धं समणुगच्छमाणं पासइ, पासित्ता अत्थामे अबले अपरक्कमे अवीरिए जाहे णो संचाएइ सुंसुमं दारियं णिव्वाहित्तए, ताहे संते तंते परितंते नीलुप्पलं असिं परामुसइ, परामुसित्ता सुंसुमाए दारियाए उत्तमंगं छिंदइ, छिंदित्ता तं गहाय तं अगामियं अडविं अणुपविट्ठे।

चिलात ने देखा कि धन्य-सार्थवाह पाँच पुत्रों के साथ आप स्वयं छठा सन्नद्ध होकर मेरा पीछा कर रहा है। यह देख कर निस्तेज, निर्बल, पराक्रमहीन एवं वीर्यहीन हो गया। जब वह सुंसुमा दारिका का निर्वाह करने (ले जाने) में समर्थ न हो सका, तब श्रान्त हो गया—थक गया, ग्लानि को प्राप्त हुआ और अत्यन्त श्रान्त हो गया। अतएव उसने नील कमल के समान तलवार हाथ में ली और सुंसुमा दारिका का सिर काट लिया। कटे सिर को लेकर वह उस अग्रामिक या दुर्गम अटवी में घुस गया।

३१—तए णं चिलाए तीसे अगामियाए अडवीए तण्हाए अभिभूए समाणे पम्हुट्ठदिसाभाए सीहगुहं चोरपल्लिं असंपत्ते अंतरा चेव कालगए।

चिलात उस अग्रामिक अटवी में प्यास से पीड़ित होकर दिशा भूल गया। वह चोरपल्ली तक नहीं पहुँच सका और बीच में ही मर गया।

विवेचन—सूत्र संख्या २०वें से यहाँ तक का कथानक अत्यन्त विस्मयजनक है। राजगृह जैसे राजधानी नगर में चोरों का, जो केवल पाँच सौ थे, घुसना और धमकी देकर डाका डालना, जिसके घर डाका डालना है उसे पहले बता देना, फिर डाका डाल ले जाना, फिर भी नगर-रक्षकों के कानों पर जूं न रेंगना—उनका सबका बैठे रहना कितना आश्चर्यजनक है!

धन और कन्या का अपहरण होने के पश्चात् धन्य, नगर रक्षकों के समक्ष फरियाद करने जाता है तो उसे बहुमूल्य भेंट लेकर जाना पड़ता है। इसके सिवाय भी उस कथन से पता चलता है कि चोरों द्वारा लूटा गया माल सब तुम्हारा होगा, मुझे केवल मेरी पुत्री चाहिए।

धन्य के ऐसा कहने पर नगर-रक्षक अपने शस्त्रों से सुसज्जित होकर जाते हैं और चोरों को परास्त करते हैं। मगर लूटा हुआ धन जब उनके हाथ लग जाता है तो वहीं से वापिस लौट आते हैं। सुंसुमा कन्या के उद्धार के लिए वे आगे नहीं बढ़ते, मानो उन्हें धन की ही चिन्ता थी, पहली

---

१. टीकाकार ने 'अग्रामिक' का 'छिन्नग्राम' अर्थ किया है। इसका एक अर्थ ग्रामशून्य भी हो सकता है।

की नही ! लडकी को प्राप्त करने के लिए अकेले ही अपने पाचो पुत्रो के साथ धन्य-साथवाह को जाना पडता है ।

यह सत्य है कि प्रस्तुत कथानक एक ज्ञात-उदाहरण मात्र ही है तथापि इस वणन से उस समय की शासन-व्यवस्था का जो चित्र उभरता है, उस पर आधुनिक काल का कोई भी विचारशील व्यक्ति गौरव का अनुभव नही कर सकता ।

इस वृत्तान्त से हमारा यह भ्रम दूर हो जाना चाहिए कि अतीत का सभी कुछ अच्छा था । यहाँ आचायवय श्री हेमचन्द्र का कथन स्मरण आता है—'न कदाचिदनीदश जगत्' अर्थात् जगत् कभी ऐसा नही था, ऐसी बात नही है । वह तो सदा ऐसा ही रहता है ।

३२——एवामेव समणाउसो ! जाव पव्वइए समाणे इमस्स ओरालियसरीरस्स वतासवस्स जाव [पित्तासवस्स खेलासवस्स सुक्कासवस्स सोणियासवस्स दुरुय-उस्सास निस्सासस्स दुरुय-मुत्त-पुरीस-पूय-बहुपडिपुण्णस्स उच्चार-पासवण खेल सिंघाणग वत पित्त-सुक्क-सोणियसभवस्स अधुवस्स अणितियस्स असासयस्स सडण पडण-विद्धसणधम्मस्स पच्छा पुर च ण अवस्स विप्पजहणस्स] वण्णहेउ जाव आहार आहारेइ, से ण इहलोए चेव बहूण समणाण समणीण सावयाण सावियाण हीलणिज्जे जाव अणुपरि-यट्टिस्सइ, जहा व से चिलाए तक्करे ।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! हमारे जो साधु या साध्वी प्रव्रजित होकर जिससे वमन बहता झरता है [पित्त, कफ, शुक्र एव शोणित बहता है, जिससे अमनोज्ञ उच्छ्वास-नि श्वास निकलता है, जो अशुचि मूत्र, पुरीष, मवाद से भरपूर है, जो मल, मूत्र, कफ, रेंट (नासिका मल), वमन, पित्त, शुक्र, शोणित की उत्पत्ति का स्थान है, अध्रु व, अनित्य, अशाश्वत है, सडना, पडना तथा विध्वस्त होना जिसका स्वभाव है और जिसका आगे या पीछे अवश्य ही त्याग करना पडेगा, ऐसे अपावन एव] विनाशशील इस औदारिक शरीर के वण (रूप-सौन्दय) के लिए यावत् आहार करते हैं, वे इसी लोक मे बहुत-से श्रमणो, श्रमणियो, श्रावको और श्राविकाओ की अवहेलना का पात्र बनते है और दीघ ससार मे पयटन करते हैं, जैसे चिलात चोर अन्त मे दु खी हुआ, (उसी प्रकार वे भी दु खी होते है) ।

धन्य का शोक

३३—तए ण से धण्णे सत्थवाहे पर्चाहि पुत्तेहि अप्पछट्ठे चिलाय परिधाडेमाणे परिधाडेमाणे तण्हाए छुहाए य सते तते परितते नो सचाएइ चिलाय चोरसेणावइ साहित्थि गिण्हित्तए । से ण तओ पडिनियत्तइ, पडिनियत्तित्ता जेणेव सा सु सुमा दारिया चिलाएण जीवियाओ ववरोविया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सु सुम दारिय चिलाएण जीवियाओ ववरोविय पासइ, पासित्ता परसुनियत्तेव चपगपायवे निव्वत्तमहेव्व इदलट्ठी विमुक्कबधणे धरणितलसि सव्वगेहि धसत्ति पडिए ।

तत्पश्चात् धन्य-साथवाह पाच पुत्रो के साथ आप छठा स्वय चिलात के पीछे दौडता-दौडता प्यास से और भूख से श्रान्त हो गया, ग्लान हो गया और बहुत थक गया । वह चोरसेनापति चिलात को अपने हाथ से पकडने मे समथ न हो सका । तब वह वहाँ से लौट पडा, लौट कर वहाँ आया जहाँ सु सुमा दारिका को चिलात ने जीवन से रहित कर दिया था । वहाँ आकर उसने देखा कि बालिका

सुंसुमा चिलात के द्वारा मार डाली गई है। यह देख कर कुल्हाड़े से काटे हुए चम्पक वृक्ष के समान या बंधनमुक्त इन्द्रयष्टि के समान धड़ाम से वह पृथ्वी पर गिर पड़ा।

३४—तए णं से धण्णे सत्थवाहे पंचहिं पुत्तेहिं अप्पछट्ठे आसत्थे कूयमाणे कंदमाणे विलवमाणे महया महया सद्देणं कुहकुहस्सुपरुन्ने[1] सुचिरं कालं वाहमोक्खं करेइ।

तत्पश्चात् पांच पुत्रों सहित छठा आप धन्य-सार्थवाह आश्वस्त हुआ तो आक्रन्दन करने लगा, विलाप करने लगा और जोर-जोर के शब्दों से कुह-कुह (अस्पष्ट शब्द) करता रोने लगा। वह बहुत देर तक आंसू बहाता रहा।

आहार-पानी का अभाव

३५—तए णं से धण्णे पंचहिं पुत्तेहिं अप्पछट्ठे चिलायं तीसे अगामियाए सव्वओ समंता परिधाडेमाणा तण्हाए छुहाए य पराभूए समाणे तीसे अगामियाए अडवीए सव्वओ समंता उदगस्स मग्गणगवेसणं करेंति, करित्ता संते तंते परितंते णिव्विण्णे तीसे अगामियाए अडवीए उदगस्स मग्गण-गवेसणं करेमाणे नो चेव णं उदगं आसादेइ।

पांच पुत्रों सहित छठे स्वयं धन्य सार्थवाह ने चिलात के पीछे चारों ओर दौड़ने के कारण प्यास और भूख से पीड़ित होकर, उस अग्रामिक अटवी में सब तरफ जल की मार्गणा-गवेषणा की। गवेषणा करके वह श्रान्त हो गया, ग्लान हो गया, बहुत थक गया और खिन्न हो गया। उस अग्रामिक अटवी में जल की खोज करने पर भी वह कहीं जल न पा सका।

धन्य-सार्थवाह का प्राणत्याग का प्रस्ताव

३६—तए णं उदगं अणासाएमाणे जेणेव सुंसुमा जीवियाओ ववरोविया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जेट्ठं पुत्तं धण्णे सत्थवाहे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी- 'एवं खलु पुत्ता ! सुंसुमाए दारियाए अट्ठाए चिलायं तक्करं सव्वओ समंता परिधाडेमाणा तण्हाए छुहाए य अभिभूया समाणा इमीसे अगामियाए अडवीए उदगस्स मग्गणगवेसणं करेमाणा णो चेव णं उदगं आसादेमो। तए णं उदगं अणासाएमाणा णो संचाएमो रायगिहं संपावित्तए। तं णं तुम्हे ममं देवाणुप्पिया ! जीवियाओ ववरोवेह, मंसं च सोणियं च आहारेह, आहारित्ता तेणं आहारेणं अवहिट्ठा[2] समाणा तओ पच्छा इमं अगामियं अडविं णित्थरिहिह, रायगिहं च संपाविहिह, मित्त-णाइ-णियग-सयण-संबंधि-परियणं अभिसमागच्छिहिह, अत्थस्स य धम्मस्स य पुण्णस्स य आभागी भविस्सह।'

तत्पश्चात् कहीं भी जल न पाकर धन्य-सार्थवाह, जहाँ सुंसुमा जीवन से रहित की गई थी, उस जगह आया। आकर उसने ज्येष्ठ पुत्र को बुलाया। बुलाकर उससे कहा— 'हे पुत्र ! सुंसुमा दारिका के लिये चिलात तस्कर के पीछे-पीछे चारों ओर दौड़ते हुए प्यास और भूख से पीड़ित होकर हमने इस अग्रामिक अटवी में जल की तलाश की, मगर जल न पा सके। जल के बिना हम लोग राजगृह नहीं पहुँच सकते। अतएव हे देवानुप्रिय ! तुम मुझे जीवन से रहित कर दो और सब भाई मेरा मांस

1. पाठान्तर – 'कुहकुहस्स परुन्ने'—अंगसुत्ताणि।
2. पाठान्तर 'अवत्थद्धा' और 'अवयद्धा'—अ. सु.।

और रुधिर का आहार करो। आहार करके उस आहार से स्वस्थ होकर फिर इस अग्रामिक अटवी को पार कर जाना, राजगृह नगर पा लेना, मित्रो, ज्ञातिजनो, निजजनो, स्वजनो, सम्बन्धियो और परिजनो मे मिलना तथा अर्थ, धर्म और पुण्य के भागी होना।'

ज्येष्ठपुत्र की प्राणोत्सर्ग की तैयारी

३७—तए ण से जेट्ठपुत्ते धण्णेण सत्थवाहेण एव वुत्ते समाणे धण्ण सत्थवाह एव वयासी—'तुब्भे ण ताओ! अम्ह पिया, गुरू, जणया, देवयभूया, ठावका, पइट्ठावका, सरक्खगा, सगोवगा, त कह ण अम्हे ताओ! तुब्भे जीवियाओ ववरोवेमो? तुब्भ ण मस च सोणिय च आहारेमो? त तुब्भे ण तातो! मम जीवियाओ ववरोवेह, मस च सोणिय च आहारेह, अगामिय अडवि णित्थरह।' त चेव सव्व भणइ जाव अत्थस्स जाव पुण्णस्स आभागी भविस्सह।

धन्य-सार्थवाह के इस प्रकार कहने पर ज्येष्ठपुत्र ने धन्य-सार्थवाह से कहा—'तात! आप हमारे पिता हो, गुरु हो, जनक हो, देवता-स्वरूप हो, स्थापक (विवाह आदि करके गृहस्थधर्म मे स्थापित करने वाले) हो प्रतिष्ठापक (अपने पद पर स्थापित करने वाले) हो, कष्ट मे रक्षा करने वाले हो, दुर्व्यसनो से बचाने वाले हो, अत हे तात! हम आपको जीवन से रहित कैसे करें? कसे आपके मास और रुधिर का आहार करे? हे तात! आप मुझे जीवन-हीन कर दो और मेरे मास तथा रुधिर का आहार करो और इस अग्रामिक अटवी को पार करो।' इत्यादि सब पूर्ववत् कहा, यहा तक कि अर्थ, धर्म और पुण्य के भागी बनो।

३८—तए ण धण्ण सत्थवाह दोच्चे पुत्ते एव वयासी—'मा ण ताओ! अम्हे जेट्ठ भायर गुरु देवय जीवियाओ ववरोवेमो, तुब्भे ण ताओ! मम जीवियाओ ववरोवेह, जाव आभागी भविस्सह।' एव जाव पचमे पुत्ते।

तत्पश्चात् दूसरे पुत्र ने धन्य सार्थवाह से कहा—'हे तात! हम गुरु और देव के समान ज्येष्ठ बधु का जीवन से रहित नही करेगे। हे तात! आप मुझको जीवन से रहित कीजिए, यावत आप सब पुण्य के भागी बनिए।' तीसरे, चौथे और पाचवें पुत्र ने भी इसी प्रकार कहा।

विवेचन—सूत्र ३६ से ३८ तक का वर्णन तत्कालीन कौटुम्बिक जीवन पर प्रकाश डालने वाला है। इस वर्णन से स्पष्ट होता है कि उस समय का पारिवारिक जीवन अत्यन्त प्रशस्त था। सुसुमा का उद्धार करने के लिए धन्य-सार्थवाह और उसके पाचो पुत्र चिलात का पीछा करते-करते भयकर और अग्रामिक अटवी मे पहुच गये थे। जोश ही जोश मे वे आगे बढते गए जो ऐसे प्रसग पर स्वाभाविक ही था। किन्तु जब सुसुमा का वध कर दिया गया और चिलात आगे चला गया तो धन्य ने उसका पीछा करना छोड दिया। मगर लगातार वेगवान् दौडादौड से अतिशय श्रान्त हो गए। फिर सुसुमा का वध हुआ जानकर तो उनकी निराशा की सीमा नही रही। थकावट, भूख, प्यास और सबसे बडी निराशा ने उनका बुरा हाल कर दिया। समीप मे कही जल उपलब्ध नही। अटवी अग्रामिक—जिसमे दूर-दूर के प्रदेश मे कोई ग्राम नही, जहा भोजन-पानी प्राप्त हो सकता। बडी विकट स्थिति थी। पिता सहित पाचो पुत्रो के जीवन की रक्षा का कोई उपाय नही था। सबका मरण-शरण हो जाना, सम्पूर्ण कुटुम्ब का निर्मूल हो जाना था। ऐसी स्थिति मे धन्य-

सार्थवाह ने 'सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डितः' की नीतोक्ति का अनुसरण करते हुए अपने वध का प्रस्ताव उपस्थित किया। ज्येष्ठ पुत्र ने उसे स्वीकार करने में अपनी असमर्थता प्रकट की और अपने वध की बात सुनाई। अन्य भाइयों ने उनकी बात भी मान्य नहीं की। सभी के वध का प्रस्ताव दूसरे किसी भाई को स्वीकार्य नहीं हुआ।

यह प्रसंग हमारे समक्ष कौटुम्बिक सम्बन्ध के विषय में अतीव स्पृहणीय आदर्श प्रस्तुत करता है। पुत्र के प्रति पिता का, पिता के प्रति पुत्र का, भाई के प्रति भाई का स्नेह कितना प्रगाढ और उत्सर्गमय होना चाहिए। पारस्परिक प्रीति की मधुरिमा इस वर्णन से स्पष्ट है। प्रत्येक, प्रत्येक की प्राण-रक्षा के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग करने का अभिलाषी है। इससे अधिक त्याग और बलिदान अन्य क्या हो सकता है! वस्तुतः यह चित्रण भारतीय-साहित्य में असाधारण है, साहित्य की अनूठी निधि है।

अन्तिम निर्णय

३९—तए णं धण्णे सत्थवाहे पंचपुत्ताणं हियइच्छियं जाणित्ता ते पंच पुत्ते एवं वयासी—'मा णं अम्हे पुत्ता! एगमवि जीवियाओ ववरोवेमो, एस णं सुंसुमाए दारियाए सरीरे निप्पाणे जाव [निच्चेट्ठे] जीवविप्पजढे, तं सेयं खलु पुत्ता! अम्हं सुंसुमाए दारियाए मंसं च सोणियं च आहारेत्तए। तए णं अम्हे तेणं आहारेणं अवत्थद्धा समाणा रायगिहं संपाउणिस्सामो।'

तत्पश्चात् धन्य-सार्थवाह ने पांचों पुत्रों के हृदय की इच्छा जान कर पांचों पुत्रों से इस प्रकार कहा—'पुत्रो! हम किसी को भी जीवन से रहित न करें। यह सुंसुमा का शरीर निष्प्राण निश्चेष्ट और जीवन द्वारा त्यक्त है, अतएव हे पुत्रो! सुंसुमा दारिका के मांस और रुधिर का आहार करना हमारे लिए उचित होगा। हम लोग उस आहार से स्वस्थ होकर राजगृह को पा लेंगे।

४०—तए णं ते पंच पुत्ता धण्णेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणा एयमट्ठं पडिसुणेंति। तए णं धण्णे सत्थवाहे पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अरणिं करेइ, करित्ता सरगं च करेइ, करित्ता सरएणं अरणिं महेइ, महित्ता अग्गिं पाडेइ, पाडित्ता अग्गिं संधुक्खेइ, संधुक्खित्ता दारुयाइं पक्खेवेइ, पक्खेवित्ता अग्गिं पज्जालेइ, पज्जालित्ता सुंसुमाए दारियाए मंसं च सोणियं च आहारेइ।

धन्य सार्थवाह के इस प्रकार कहने पर उन पांच पुत्रों ने यह बात स्वीकार की। तब धन्य सार्थवाह ने पांचों पुत्रों के साथ अरणि की (अरणि काष्ठ में गड्ढा किया)। फिर शर बनाया (अरणि को रगड़ने वाली लकड़ी तैयार की)। दोनों तैयार करके शर से अरणि का मंथन किया। मंथन करके अग्नि उत्पन्न की। फिर अग्नि धौंकी, उसमें लकड़ियाँ डालीं, अग्नि प्रज्वलित की। प्रज्वलित करके सुंसुमा दारिका का मांस पका कर उस मांस का और रुधिर का आहार किया।

राजगृह में वापिसी

४१—तए णं आहारेणं अवत्थद्धा समाणा रायगिहं नयरिं संपत्ता मित्त-णाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणं अभिसमन्नागया, तस्स य विउलस्स धणकणगरयण जाव[१] आभागी जाया वि होत्था।

---
१. अ. १८ सूत्र २१

तए ण से धण्णे सत्यवाहे सु सुमाए दारियाए बहूइ लोइयाइ जाव [मयकिच्चाइ करेइ, करेत्ता कालेण] विगयसोए जाए यावि होत्था ।

उस आहार से स्वस्थ होकर वे राजगृह नगरी तक पहुँचे । अपने मित्रो एव ज्ञातिजनों, स्वजनो, परिजनो आदि से मिले और विपुल धन, कनक, रत्न आदि के तथा धर्म, अर्थ एव पुण्य के भागी हुए ।

तत्पश्चात् धन्य साथवाह ने सु सुमा दारिका के बहुत-से लौकिक मृतक कृत्य किए, तदनन्तर कुछ काल बीत जाने पर वह शोकरहित हो गया ।

४२—तेण कालेण तेण समएण समणे भगव महावीरे गुणसीलए चेइए समोसढे । से ण धण्णे सत्यवाहे सपत्ते, धम्म सोच्चा पव्वइए, एक्कारसगवी, मासियाए सलेहणाए सोहम्मे उववण्णो, महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ ।

उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर राजगृह के गुणशील चैत्य मे पधारे । उस समय धन्य-साथवाह वन्दना करने के लिए भगवान् के निकट पहुँचा । धर्मोपदेश सुन कर दीक्षित हो गया । क्रमश ग्यारह अगो का वेत्ता मुनि हो गया । अन्तिम समय आने पर एक मास की सलेखना करके सौधर्म देवलाक मे उत्पन्न हुआ । वहाँ से च्यवन करके महाविदेह क्षेत्र मे सयम धारण करके सिद्धि प्राप्त करेगा ।

निष्कर्ष

४३—जहा वि य ण जबू ! धण्णेण सत्यवाहेण णो वण्णहेउ वा, णो रूवहेउ वा, नो विसयहेउ वा, सु सुमाए दारियाए मससोणिए आहारिए नन्नत्य एगाए रायगिह सपावणट्ठाए ।

एवामेव समणाउसो ! जो अम्ह निग्गथो वा निग्गथी वा इमस्स ओरालियसरीरस्स वतासवस्स पित्तासवस्स सुक्कासवस्स सोणियासवस्स जाव[1] अवस्स विप्पजहियव्वस्स नो वण्णहेउ वा, नो रूवहेउ वा, नो बलहेउ वा, नो विसयहेउ वा आहार आहारेइ, नन्नत्य एगाए सिद्धिगमणसपावणट्ठयाए, से ण इहभवे चेव बहूण समणाण, बहूण समणीण, बहूण सावयाण बहूण सावयाण अच्चणिज्जे जाव वीईवइस्सइ ।

हे जम्बू ! जैसे उस धन्य साथवाह ने वर्ण के लिए, रूप के लिए, बल के लिए अथवा विषय के लिए सु सुमा दारिका के मास और रुधिर का आहार नही किया था, केवल राजगृह नगर को पाने के लिए ही आहार किया था ।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! हमारा जो साधु या साध्वी वमन को झराने वाले, पित्त को झराने वाले, शुक्र को झराने वाले, शोणित को झराने वाले यावत् अवश्य ही त्यागने योग्य इस औदारिक शरीर के वर्ण के लिए, बल के लिए अथवा विषय के लिए आहार नही करते हैं, केवल सिद्धिगति को प्राप्त करने के लिए आहार करते हैं, वे इसी भव मे बहुत श्रमणो, बहुत श्रमणियो, बहुत श्रावको और बहुत श्राविकाओ के अर्चनीय होते ह एव ससार कान्तार को पार करते है ।

---

१ अ १८ सूत्र ३२

सार्थवाह ने 'सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डितः' की लोकोक्ति का अनुसरण करते हुए अपने वध का प्रस्ताव उपस्थित किया। ज्येष्ठ पुत्र ने उसे स्वीकार करने में अपनी असमर्थता प्रकट की और अपने वध की बात सुझाई। अन्य भाइयों ने उसकी बात भी मान्य नहीं की। सभी के वध का प्रस्ताव दूसरे किसी भाई को स्वीकार्य नहीं हुआ।

यह प्रसंग हमारे समक्ष कौटुम्बिक सम्बन्ध के विषय में अतीव स्पृहणीय आदर्श प्रस्तुत करता है। पुत्रों के प्रति पिता का, पिता के प्रति पुत्रों का, भाई के प्रति भाई का स्नेह कितना प्रगाढ और उत्सर्गमय होना चाहिए। पारस्परिक प्रीति की मधुरिमा इस वर्णन से स्पष्ट है। प्रत्येक, प्रत्येक की प्राण रक्षा के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग करने का अभिलाषी है। इससे अधिक त्याग और बलिदान अन्य क्या हो सकता है! वस्तुतः यह चित्रण भारतीय-साहित्य में असाधारण है, साहित्य की अमूल्य निधि है।

अन्तिम निर्णय

३९—तए णं धण्णे सत्थवाहे पंचपुत्ताणं हियइच्छियं जाणित्ता ते पंच पुत्ते एवं वयासी—'मा णं अम्हे पुत्ता! एगमवि जीवियाओ ववरोवेमो, एस णं सुंसुमाए दारियाए सरीरे निप्पाणे जाव [निच्चेट्ठे] जीवविप्पजढे, तं सेयं खलु पुत्ता! अम्हं सुंसुमाए दारियाए मंसं च सोणियं च आहारेत्तए। तए णं अम्हे तेणं आहारेणं अवत्थद्धा समाणा रायगिहं संपाउणिस्सामो।'

तत्पश्चात् धन्य-सार्थवाह ने पांचों पुत्रों के हृदय की इच्छा जान कर पांचों पुत्रों से इस प्रकार कहा—'पुत्रो! हम किसी को भी जीवन से रहित न करें। यह सुंसुमा का शरीर निष्प्राण, निश्चेष्ट और जीवन द्वारा त्यक्त है, अतएव हे पुत्रो! सुंसुमा दारिका के मांस और रुधिर का आहार करना हमारे लिए उचित होगा। हम लोग उस आहार से स्वस्थ होकर राजगृह को पा लेंगे।

४०—तए णं ते पंच पुत्ता धण्णेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणा एयमट्ठं पडिसुणेंति। तए णं धण्णे सत्थवाहे पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अरणिं करेइ, करित्ता सरगं च करेइ, करित्ता सरएणं अरणिं महेइ, महित्ता अग्गिं पाडेइ, पाडित्ता अग्गिं संधुक्खेइ, संधुक्खित्ता दारुयाइं पक्खेवेइ, पक्खेवित्ता अग्गिं पज्जालेइ, पज्जालित्ता सुंसुमाए दारियाए मंसं च सोणियं च आहारेइ।

धन्य-सार्थवाह के इस प्रकार कहने पर उन पांचों पुत्रों ने यह बात स्वीकार की। तब धन्य सार्थवाह ने पांचों पुत्रों के साथ अरणि की (अरणि काष्ठ में गड्ढा किया)। फिर शर बनाया (अरणि की मथनी जैसी तैयार की)। दोनों तैयार करके शर से अरणि का मंथन किया। मंथन करके अग्नि उत्पन्न की। फिर अग्नि धौंकी, उसमें लकड़ियाँ डालीं, अग्नि प्रज्वलित की। प्रज्वलित करके सुंसुमा दारिका का मांस पकाया और उस मांस का और रुधिर का आहार किया।

राजगृह में वापिसी

४१—तए णं आहारेणं अवत्थद्धा समाणा रायगिहं नयरिं संपत्ता मित्तणाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणं अभिसमन्नागया, तस्स य विउलस्स धण-कणग-रयण जाव[1] आभागी जाया वि होत्था।

---

1. अ. १८ सूत्र २१

तए ण से धण्णे सत्यवाहे सु सुमाए दारियाए बहूइ लोइयाइ जाव [मयकिच्चाइ करेइ, करेत्ता कालेण] विगयसोए जाए यावि होत्या ।

उस आहार से स्वस्थ होकर वे राजगृह नगरी तक पहुँचे । अपने मित्रो एव ज्ञातिजनों, स्वजनो, परिजनो आदि से मिले और विपुल धन, कनक, रत्न आदि के तथा धर्म, अर्थ एव पुण्य के भागी हुए ।

तत्पश्चात् धन्य-सार्थवाह ने सु सुमा दारिका के बहुत-से लौकिक मृतक कृत्य किए, तदनन्तर कुछ काल बीत जाने पर वह शोकरहित हो गया ।

४२—तेण कालेण तेण समएण समणे भगव महावीरे गुणसीलए चेइए समोसढे । से ण धण्णे सत्यवाहे सपत्ते, धम्म सोच्चा पव्वइए, एक्कारसगवी, मासियाए सलेहणाए सोहम्मे उववण्णो, महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ ।

उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर राजगृह के गुणशील चैत्य मे पधारे । उस समय धन्य-सार्थवाह वन्दना करने के लिए भगवान् के निकट पहुँचा । धर्मोपदेश सुन कर दीक्षित हो गया । क्रमश ग्यारह अगो का वेत्ता मुनि हो गया । अन्तिम समय आने पर एक मास की सलेखना करके सौधर्म देवलाक मे उत्पन्न हुआ । वहाँ से च्यवन करके महाविदेह क्षेत्र मे सयम धारण करके सिद्धि प्राप्त करेगा ।

निष्कर्ष

४३—जहा वि य ण जबू ! धण्णेण सत्यवाहेण णो वण्णहेउ वा, णो रूवहेउ वा, नो विसयहेउ वा, सु सुमाए दारियाए मससोणिए आहारिए नन्नत्य एगाए रायगिह सपावणट्ठाए ।

एवामेव समणाउसो ! जो अम्ह निग्गथो वा निग्गथी वा इमस्स ओरालियसरीरस्स वतासवस्स पित्तासवस्स सुक्कासवस्स सोणियासवस्स जाव[1] अवस्स विप्पजहियव्वस्स नो वण्णहेउ वा, नो रूवहेउ वा, नो बलहेउ वा, नो विसयहेउ वा आहार आहारेइ, नन्नत्य एगाए सिद्धिगमणसपावणट्ठयाए, से ण इहभवे चेव बहूण समणाण, बहूण समणीण, बहूण सावयाण बहूण सावयाण अच्चणिज्जे जाव वीईवइस्सइ ।

हे जम्बू ! जैसे उस धन्य सार्थवाह ने वर्ण के लिए, रूप के लिए, बल के लिए अथवा विषय के लिए सु सुमा दारिका के मास और रुधिर का आहार नही किया था, केवल राजगृह नगर को पाने के लिए ही आहार किया था ।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! हमारा जो साधु या साध्वी वमन को झराने वाले, पित्त को झराने वाले शुक्र को झराने वाले, शोणित को झराने वाले यावत् अवश्य ही त्यागने योग्य इस औदारिक शरीर के वर्ण के लिए, बल के लिए अथवा विषय के लिए आहार नही करते हैं, केवल सिद्धिगति को प्राप्त करने के लिए आहार करते है, वे इसी भव मे बहुत श्रमणो, बहुत श्रमणियो, बहुत श्रावको और बहुत श्राविकाओ के अर्चनीय होते हैं एव ससार कान्तार को पार करते हैं ।

१ अ १८ सूत्र ३२

विवेचन—'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' अर्थात् धर्म का प्रथम अथवा प्रधान साधन शरीर है। शरीर की रक्षा पर ही संयम की रक्षा निर्भर है। मानव-शरीर के माध्यम से ही मुक्ति की साधना संभव होती है। अतएव त्यागी वैरागी उच्चकोटि के संतों को भी शरीर टिकाए रखने के लिए आहार करना पड़ता है। तीर्थंकरों ने आहार करने का विधान भी किया है। किन्तु संत जन का आहार अपने लक्ष्य की पूर्ति के एक मात्र ध्येय को समक्ष रख कर होना चाहिए। शरीर की पुष्टि, सुन्दरता, विषयसेवन की शक्ति, इन्द्रिय-तृप्ति आदि की दृष्टि से नहीं।

साधु-जीवन में अनासक्ति का बड़ा महत्त्व है। गृहस्थों के घरों से गोचर-चर्या द्वारा साधु को आहार उपलब्ध होता है। वह मनोज्ञ भी हो सकता है, अमनोज्ञ भी हो सकता है। आहार अमनोज्ञ हो तो उस पर अप्रीतिभाव अरुचि या द्वेष का भाव उत्पन्न न हो और मनोज्ञ आहार करते समय प्रीति या आसक्ति उत्पन्न न हो, यह साधु के समभाव की कसौटी है। यह कसौटी बड़ी विकट है। आहार न करना उतना कठिन नहीं है, जितना कठिन है मनोहर सुस्वादु आहार करते हुए भी पूर्ण रूप से अनासक्त रहना। विकार का कारण विद्यमान होने पर भी चित्त का विकृत न होना, इसके लिए दीर्घकालिक अभ्यास, अत्यन्त धैर्य एवं दृढ़ता की आवश्यकता होती है।

साधु के चित्त में आहार करते समय किस श्रेणी की अनासक्ति होनी चाहिए, इस तथ्य को सरलता से समझाने के लिए ही प्रस्तुत उदाहरण की योजना की गई है।

धन्य-सार्थवाह को अपनी बेटी सुंसुमा अतिशय प्रिय थी। उसकी रक्षा के लिए उसने सभी संभव उपाय किए थे। उसके निर्जीव शरीर को देखकर वह मूर्छित होकर धरती पर गिर पड़ा। रोता रहा। इससे स्पष्ट है कि सुंसुमा उसकी प्रिय पुत्री थी। तथापि प्राण-रक्षा का अन्य उपाय न रहने पर उसने उसके निर्जीव शरीर के मांस-शोणित का आहार किया। कल्पना की जा सकती है कि इस प्रकार का आहार करते समय धन्य के मन में किस सीमा की अनासक्ति रही होगी। निश्चय ही लेशमात्र भी आसक्ति का सम्पर्क उसके मन का नहीं हुआ होगा—अनुराग लिप्त भी नहीं हुआ होगा। उस आहार में तनिक भी आनन्द न माना होगा। राजगृह नगर और अपने घर पहुँचने के लिए प्राण टिकाए रखना ही उसका एक मात्र लक्ष्य रहा होगा।

साधु को इसी प्रकार का अनासक्त भाव रखकर आहार करना चाहिए। अनासक्ति को समझाने के लिए इससे अच्छा तो दूर रहा, इसके समकक्ष भी अन्य उदाहरण मिलना कठिन है। सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है।

इसी दृष्टिकोण को समक्ष रख कर इस उदाहरण की उपयुक्तता समझनी चाहिए।

४८—एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठारसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि।

जम्बू ! इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर ने अठारहवें ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है। जैसा मैंने सुना वैसा ही तुम्हें कहता हूँ।

॥ अठारहवाँ अध्ययन समाप्त ॥

उन्नीसवाँ अध्ययन : पुण्डरीक

सार : संक्षेप

प्रस्तुत अध्ययन का कथानक मानव-जीवन मे होने वाले उत्थान और पतन का तथा पतन और उत्थान का सजीव चित्र उपस्थित करता है। जो कथानक यहाँ प्रतिपादित किया गया है, वह महाविदेह क्षेत्र का है।

महाविदेह क्षेत्र के पूर्वीय भाग मे पुष्कलावती विजय मे पुण्डरीकिणी राजधानी है। राजधानी साक्षात् देवलोक के समान मनोहर एव सुन्दर है। बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौडी है। वहाँ के राजा महापद्म के दो पुत्र थे—पुण्डरीक और कण्डरीक।

एक बार वहा धर्मघोष स्थविर का पदार्पण हुआ। धर्मदेशना श्रवण कर और ससार की असारता का अनुभव करके राजा महापद्म दीक्षित हो गए। पुण्डरीक राजसिंहासन पर आसीन हुए। महापद्म मुनि सयम और तपश्चर्या से आत्मा विशुद्ध करके यथासमय सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गए।

किसी समय दूसरी बार पुन स्थविर का आगमन हुआ। इस बार धर्मोपदेश श्रवण करने से राजकुमार कण्डरीक को वैराग्य उत्पन्न हुआ। उसने राजा पुण्डरीक से दीक्षा की अनुमति मागी। पुण्डरीक ने उसे राजसिंहासन प्रदान करने की पेशकश की, मगर कण्डरीक ने उसे स्वीकार नही किया। आखिर वह दीक्षित हो गया।

दीक्षा के पश्चात् स्थविर के साथ कण्डरीक मुनि देश-देशान्तर मे विचरने लगे, किन्तु रूखा-सूखा आहार करने के कारण उनका शरीर रुग्ण हो गया। स्थविर जब पुन पुण्डरीकिणी नगरी मे आए तो राजा पुण्डरीक ने कण्डरीक मुनि को रोगाक्रान्त देखा। पुण्डरीक ने स्थविर मुनि से निवेदन किया—भते ! मैं कण्डरीक मुनि की चिकित्सा कराना चाहता हूँ, आप मेरी यानशाला मे पधारे।

स्थविर यानशाला मे पधार गए। उचित चिकित्सा होने से कण्डरीक मुनि स्वस्थ हो गए। स्थविर मुनि वहाँ से अन्यत्र विहार कर गए परन्तु कण्डरीक मुनि राजसी भोजन-पान मे ऐसे आसक्त हो गए कि विहार करने का नाम ही न लेते। पुण्डरीक उनकी आसक्ति और शिथिलता को समझ गए। कण्डरीक की आत्मा को जागृत करने के लिए एक बार पुण्डरीक ने उनके निकट जाकर वन्दन-नमस्कार करके कहा—'देवानुप्रिय, आप धन्य है आप पुण्यशाली है, आपका मनुष्यजन्म सफल हुआ है, आपने अपना जीवन धन्य बनाया है। मैं पुण्यहीन हूँ, भाग्यहीन हूँ कि अभी तक मेरा मोह नही छूटा, मैं ससार मे फँसा हूँ।

कण्डरीक को यह कथन रुचिकर तो नही हुआ फिर भी वह लज्जा के कारण, बिना इच्छा ही विहार कर गया। मगर सयम का पालन तो तभी सभव है जब अन्तरात्मा मे सच्ची विरक्ति हो, इन्द्रिय विषयो के प्रति लालसा न हो और आत्महित की गहरी लगन हो। कण्डरीक मे यह कुछ भी शेष नही रहा था। अतएव कुछ समय तक वह स्थविर के पास रह कर और सासारिक लालसाओ

विवेचन—'शरीरमाद्य खलु धर्मसाधनम्' अर्थात् धर्म का प्रथम अथवा प्रधान साधन शरीर है। शरीर की रक्षा पर ही संयम की रक्षा निर्भर है। मानव शरीर के माध्यम से ही मुक्ति की साधना सम्भव होती है। अतएव त्यागी वैरागी उच्चकोटि के सन्तों को भी शरीर टिकाए रखने के लिए आहार करना पड़ता है। तीर्थंकरों ने आहार करने का विधान भी किया है। किन्तु सन्त जना का आहार अपने लक्ष्य की पूर्ति के एक मात्र ध्येय को समक्ष रख कर होना चाहिए। शरीर की पुष्टि, सुन्दरता, विषयसेवन की शक्ति, इन्द्रिय-तृप्ति आदि की दृष्टि से नहीं।

साधु-जीवन में अनासक्ति का बड़ा महत्त्व है। गृहस्थों के घर से गोचर-चर्या द्वारा साधु को आहार उपलब्ध होता है। वह मनोज्ञ भी हो सकता है, अमनोज्ञ भी हो सकता है। आहार अमनोज्ञ हो तो उस पर अप्रीतिभाव अरुचि या द्वेष का भाव उत्पन्न न हो और मनोज्ञ आहार करते समय प्रीति या आसक्ति उत्पन्न न हो यह साधु के समभाव की कसौटी है। यह कसौटी बड़ी विकट है। आहार न करना उतना कठिन नहीं है, जितना कठिन है मनोहर सुस्वादु आहार करते हुए भी पूर्ण रूप से अनासक्त रहना। विकार का कारण विद्यमान होने पर भी चित्त को विकृत न होने देने के लिए दीर्घकालिक अभ्यास, अत्यन्त धैर्य एवं दृढता की आवश्यकता होती है।

साधु के चित्त में आहार करते समय किस श्रेणी की अनासक्ति होनी चाहिए इस तथ्य को सरलता से समझाने के लिए ही प्रस्तुत उदाहरण की योजना की गई है।

धन्य-सार्थवाह को अपनी बेटी सुंसुमा अतिशय प्रिय थी। उसकी रक्षा के लिए उसने सभी सभव उपाय किए थे। उसके निर्जीव शरीर को देखकर वह संज्ञाशून्य होकर धरती पर गिर पड़ा। रोता रहा। इससे स्पष्ट है कि सुंसुमा उसको प्रिय पुत्री थी। तथापि प्राण-रक्षा का अन्य उपाय न रहने पर उसने उसके निर्जीव शरीर के मास-शोणित का आहार किया। कल्पना की जा सकती है कि इस प्रकार का आहार करते समय धन्य के मन में किस सीमा का अनासक्त भाव रहा होगा! निश्चय ही लेशमात्र भी आसक्ति का स्पर्श उसके मन को नहीं हुआ होगा—अनुराग निकट भी नहीं फटका होगा। धन्य ने उस आहार में तनिक भी आनन्द न माना होगा। राजगृह नगर और अपने घर पहुँचने के लिए प्राण टिकाए रखना ही उनका एक मात्र लक्ष्य रहा होगा।

साधु को इसी प्रकार का अनासक्त भाव रखकर आहार करना चाहिए। अनासक्ति को समझाने के लिए इससे अच्छा तो दूर रहा, इसके समकक्ष भी अन्य उदाहरण मिलना सभव नहीं है। सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है।

इसी दृष्टिकोण को समक्ष रख कर इस उदाहरण की अवघटना करनी चाहिए।

४४—एवं खलु जंबू! समणेण भगवया महावीरेण अट्ठारसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि।

जम्बू! इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर ने अठारहवें ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है। जैसा मैंने सुना वैसा ही तुम्हें कहा है।

॥ अठारहवां अध्ययन समाप्त ॥

उन्नीसवाँ अध्ययन : पुण्डरीक

सार : संक्षेप

प्रस्तुत अध्ययन का कथानक मानव-जीवन मे होने वाले उत्थान और पतन का तथा पतन और उत्थान का सजीव चित्र उपस्थित करता है। जो कथानक यहाँ प्रतिपादित किया गया है, वह महाविदेह क्षेत्र का है।

महाविदेह क्षेत्र के पूर्वीय भाग मे पुष्कलावती विजय मे पुण्डरीकिणी राजधानी है। राजधानी साक्षात देवलोक के समान मनोहर एव सुन्दर है। बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौडी है। वहा के राजा महापद्म के दो पुत्र थे—पुण्डरीक और कण्डरीक।

एक बार वहा धर्मघोष स्थविर का पदार्पण हुआ। धर्मदेशना श्रवण कर और ससार की असारता का अनुभव करके राजा महापद्म दीक्षित हो गए। पुण्डरीक राजसिंहासन पर आसीन हुए। महापद्म मुनि सयम और तपश्चर्या से आत्मा विशुद्ध करके यथासमय सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गए।

किसी समय दूसरी बार पुन स्थविर का आगमन हुआ। इस बार धर्मोपदेश श्रवण करने से राजकुमार कण्डरीक को वैराग्य उत्पन्न हुआ। उसने राजा पुण्डरीक से दीक्षा की अनुमति मागी। पुण्डरीक ने उसे राजसिंहासन प्रदान करने की पेशकश की, मगर कण्डरीक ने उसे स्वीकार नही किया। आखिर वह दीक्षित हो गया।

दीक्षा के पश्चात् स्थविर के साथ कण्डरीक मुनि देश-देशान्तर मे विचरने लगे, किन्तु रूखा-सूखा आहार करने के कारण उनका शरीर रुग्ण हो गया। स्थविर जब पुन पुण्डरीकिणी नगरी मे आए तो राजा पुण्डरीक ने कण्डरीक मुनि को रोगाक्रान्त देखा। पुण्डरीक ने स्थविर मुनि से निवेदन किया—भते! मैं कण्डरीक मुनि की चिकित्सा कराना चाहता हूँ, आप मेरी यानशाला मे पधारे।

स्थविर यानशाला मे पधार गए। उचित चिकित्सा होने से कण्डरीक मुनि स्वस्थ हो गए। स्थविर मुनि वहा से अन्यत्र विहार कर गए परन्तु कण्डरीक मुनि राजसी भोजन-पान मे ऐसे आसक्त हो गए कि विहार करने का नाम ही न लेते। पुण्डरीक उनकी आसक्ति और शिथिलता को समझ गए। कण्डरीक की आत्मा को जागृत करने के लिए एक बार पुण्डरीक ने उनके निकट जाकर वन्दन-नमस्कार करके कहा—'देवानुप्रिय, आप धन्य हैं, आप पुण्यशाली हैं, आपका मनुष्यजन्म सफल हुआ है, आपने अपना जीवन धन्य बनाया है। मैं पुण्यहीन हूँ, भाग्यहीन हूँ कि अभी तक मेरा मोह नही छूटा, मैं ससार मे फँसा हूँ।

कण्डरीक को यह कथन रुचिकर तो नही हुआ फिर भी वह लज्जा के कारण, बिना इच्छा ही विहार कर गया। मगर सयम का पालन तो तभी सभव है जब अन्तरात्मा मे सच्ची विरक्ति हो, इन्द्रिय-विषयो के प्रति लालसा न हो और आत्महित की गहरी लगन हो। कण्डरीक मे यह कुछ भी शेष नही रहा था। अतएव कुछ समय तक वह स्थविर के पास रह कर और सासारिक लालसाओ

विवेचन—'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' अर्थात् धर्म का प्रथम अथवा प्रधान साधन शरीर है। शरीर की रक्षा पर ही संयम की रक्षा निर्भर है। मानव शरीर के माध्यम से ही मुक्ति की साधना संभव होती है। अतएव त्यागी वैरागी उच्चकोटि के सन्तों को भी शरीर टिकाए रखने के लिए आहार करना पड़ता है। तीर्थंकरों ने आहार करने का विधान भी किया है। किन्तु सन्त जनों का आहार अपने लक्ष्य की पूर्ति के एक मात्र ध्येय को समक्ष रख कर होना चाहिए। शरीर की पुष्टि, सुन्दरता, विषयसेवन की शक्ति, इन्द्रिय-तृप्ति आदि की दृष्टि से नहीं।

साधु-जीवन में अनासक्ति का बड़ा महत्त्व है। गृहस्थों के घरों से गोचर-चर्या द्वारा साधु को आहार उपलब्ध होता है। वह मनोज्ञ भी हो सकता है, अमनोज्ञ भी हो सकता है। आहार अमनाप हो तो उस पर अप्रीतिभाव अरुचि या द्वेष का भाव उत्पन्न न हो और मनोज्ञ आहार करते समय प्रीति या आसक्ति उत्पन्न न हो, यह साधु के समभाव की कसौटी है। यह कसौटी बड़ी विकट है। आहार न करना उतना कठिन नहीं है, जितना कठिन है मनोहर सुस्वादु आहार करते हुए भी पूर्ण रूप से अनासक्त रहना। विकार का कारण विद्यमान होने पर भी चित्त को विकृत न होने देने के लिए दीर्घकालिक अभ्यास, अत्यन्त धैर्य एवं दृढ़ता की आवश्यकता होती है।

साधु के चित्त में आहार करते समय किस श्रेणी की अनासक्ति होनी चाहिए, इस तथ्य को सरलता से समझाने के लिए ही प्रस्तुत उदाहरण की योजना की गई है।

धन्य-सार्थवाह को अपनी बेटी सुंसुमा अतिशय प्रिय थी। उसकी रक्षा के लिए उसने सभी संभव उपाय किए थे। उसके निर्जीव शरीर को देखकर वह संज्ञाशून्य होकर धरती पर गिर पड़ा। रोता रहा। इससे स्पष्ट है कि सुंसुमा उसकी प्रिय पुत्री थी। तथापि प्राण-रक्षा का अन्य उपाय न रहने पर उसने उसके निर्जीव शरीर के मांस-शोणित का आहार किया। कल्पना की जा सकती है कि इस प्रकार का आहार करते समय धन्य के मन में किस सीमा का अनासक्त भाव रहा होगा! निश्चय ही लेशमात्र भी आसक्ति का संस्पर्श उनके मन को नहीं हुआ होगा—अनुराग निकट भी नहीं फटका होगा। धन्य ने उस आहार में तनिक भी आनन्द न माना होगा। राजगृह नगर और अपने घर पहुँचने के लिए प्राण टिकाए रखना ही उसका एक मात्र लक्ष्य रहा होगा।

साधु को इसी प्रकार का अनासक्त भाव रखकर आहार करना चाहिए। अनासक्ति को समझाने के लिए इससे अच्छा तो दूर रहा, इसके समकक्ष भी अन्य उदाहरण मिलना संभव नहीं है। सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है।

इसी दृष्टिकोण को समक्ष रख कर इस उदाहरण की अर्थघटना करनी चाहिए।

४४—एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठारसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि।

जम्बू! इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर ने अठारहवें ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है। जैसा मैंने सुना वैसा ही तुम्हें कहा है।

॥ अठारहवां अध्ययन समाप्त ॥

उन्नीसवाँ अध्ययन : पुण्डरीक

सार : संक्षेप

प्रस्तुत अध्ययन का कथानक मानव-जीवन मे होने वाले उत्थान और पतन का तथा पतन और उत्थान का सजीव चित्र उपस्थित करता है। जो कथानक यहा प्रतिपादित किया गया है, वह महाविदह क्षेत्र का है।

महाविदेह क्षेत्र के पूर्वीय भाग मे पुष्कलावती विजय मे पुण्डरीकिणी राजधानी है। राजधानी साक्षात देवलोक के समान मनोहर एव सुदर है। बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौडी है। वहा के राजा महापद्म के दो पुत्र थे—पुण्डरीक और कण्डरीक।

एक बार वहा धर्मघोष स्थविर का पदार्पण हुआ। धर्मदेशना श्रवण कर और ससार की असारता का अनुभव करके राजा महापद्म दीक्षित हो गए। पुण्डरीक राजसिहासन पर आसीन हुए। महापद्म मुनि सयम और तपश्चर्या से आत्मा विशुद्ध करके यथासमय सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गए।

किसी समय दूसरी बार पुन स्थविर का आगमन हुआ। इस बार धर्मोपदेश श्रवण करने से राजकुमार कण्डरीक को वैराग्य उत्पन्न हुआ। उसने राजा पुण्डरीक से दीक्षा की अनुमति मागी। पुण्डरीक ने उसे राजसिहासन प्रदान करने की पेशकश की, मगर कण्डरीक ने उसे स्वीकार नही किया। आखिर वह दीक्षित हो गया।

दीक्षा के पश्चात् स्थविर के साथ कण्डरीक मुनि देश-देशान्तर मे विचरने लगे, किन्तु रूखा-सूखा आहार करने के कारण उनका शरीर रुग्ण हो गया। स्थविर जब पुन पुण्डरीकिणी नगरी मे आए तो राजा पुण्डरीक ने कण्डरीक मुनि को रोगाक्रान्त देखा। पुण्डरीक ने स्थविर मुनि से निवेदन किया—भते ! मैं कण्डरीक मुनि की चिकित्सा कराना चाहता हूँ, आप मेरी यानशाला मे पधारें।

स्थविर यानशाला मे पधार गए। उचित चिकित्सा होने से कण्डरीक मुनि स्वस्थ हो गए। स्थविर मुनि वहाँ से अन्यत्र विहार कर गए परन्तु कण्डरीक मुनि राजसी भोजन-पान मे ऐसे आसक्त हो गए कि विहार करने का नाम ही न लेते। पुण्डरीक उनकी आसक्ति और शिथिलता को समझ गए। कण्डरीक की आत्मा को जागृत करने के लिए एक बार पुण्डरीक ने उनके निकट जाकर वन्दन-नमस्कार करके कहा—'देवानुप्रिय, आप धन्य है, आप पुण्यशाली है, आपका मनुष्यजन्म सफल हुआ है, आपने अपना जीवन धन्य बनाया है। मैं पुण्यहीन हूँ, भाग्यहीन हूँ कि अभी तक मेरा मोह नही छूटा, मैं ससार मे फँसा हूँ।

कण्डरीक को यह कथन रुचिकर तो नही हुआ फिर भी वह लज्जा के कारण, बिना इच्छा ही विहार कर गया। मगर सयम का पालन तो तभी सभव है जब अन्तरात्मा मे सच्ची विरक्ति हो, इन्द्रिय विषयो के प्रति लालसा न हो और आत्महित की गहरी लगन हो। कण्डरीक मे यह कुछ भी शेष नही रहा था। अतएव कुछ समय तक वह स्थविर के पास रह कर और सासारिक लालसाओ

से पराजित होकर फिर लौट आया। वह लौट कर राजप्रासाद की अशोकवाटिका में जा कर बैठ गया। लज्जा के कारण प्रासाद में प्रवेश करने का उसे साहस न हुआ।

धाय माता ने उसे अशोकवाटिका में बैठा देखा। जाकर पुण्डरीक से कहा। पुण्डरीक अन्त पुर के साथ उसके पास गया और पूर्व की भांति उसकी सराहना की। किन्तु इस बार पुण्डरीक की वह युक्ति काम न आई। कण्डरीक चुपचाप बैठा रहा। तब पुण्डरीक ने उससे पूछा—भगवन् ! आप भोग भोगना चाहते हैं ?

कण्डरीक ने लज्जा और संकोच को त्याग कर 'हाँ' कह दिया।

पुण्डरीक राजा ने उसी समय कण्डरीक का राज्याभिषेक किया, उसे राजगद्दी दे दी और कण्डरीक के संयमोपकरण लेकर स्वयं दीक्षित हो गए। उन्होंने प्रतिज्ञा धारण की कि स्थविर महाराज के दर्शन करके एवं उनके निकट चातुर्याम धर्म अंगीकार करने के पश्चात् ही मैं आहार पानी ग्रहण करूंगा। वे पुण्डरीकिणी नगरी का परित्याग करके, विहार करके स्थविर भगवान् के निकट जाने को प्रस्थान कर गए।

कण्डरीक अपने अपथ्य आचरण के कारण कल्प काल में ही आर्त्तध्यानपूर्वक मृत्यु को प्राप्त हुआ। तेंतीस सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति वाले नारकों में, सप्तम पृथ्वी में उत्पन्न हुआ।

यह उत्थान के पश्चात् पतन की करुण कहानी है।

पुण्डरीक मुनि उग्र साधना करके, अन्त में समाधिपूर्वक शरीर का त्याग करके तेंतीस सागरोपम की स्थिति वाले देवों में सर्वार्थसिद्ध नामक अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुए। तदनन्तर वे मुक्ति के भागी होंगे।

यह पतन से उत्थान की ओर जाने का उत्कृष्ट उदाहरण है।



एगुणवीसइमं अज्झयणं : पुंडरीए

श्री जम्बू की जिज्ञासा

१—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सपत्तेणं अट्ठारसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, एगुणवीसइमस्स णायज्झयणस्स समणेणं भगवया महावीरेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

जम्बूस्वामी प्रश्न करते है—'भगवन् ! यदि यावत् सिद्धिप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने अठारहवे ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है तो उन्नीसवें ज्ञात-अध्ययन का श्रमण भगवान् महावीर ने क्या अर्थ कहा है ?

श्री सुधर्मा द्वारा समाधान

२—एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे पुव्वविदेहे सीयाए महाणदीए उत्तरिल्ले कूले नीलवंतस्स दाहिणेणं उत्तरिल्लस्स सीतामुहवणसंडस्स पच्छिमेणं एगसेलगस्स वक्खारपव्वयस्स पुरच्छिमेणं एत्थ णं पुक्खलावई णामं विजए पण्णत्ते।

तत्थ णं पुंडरीगिणी णामं रायहाणी पन्नत्ता—णवजोयणवित्थिन्ना दुवालसजोयणायामा जाव[1] पच्चक्खं देवलोयभूया पासाईया दरिसणीया अभिरूवा पडिरूवा। तीसे णं पुंडरीगिणीए णयरीए उत्तरपुरच्छिमे दिसिभाए णलिणिवणे णामं उज्जाणे होत्था। वण्णओ।

श्री सुधर्मास्वामी ने जम्बूस्वामी के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा—जम्बू ! उस काल और उस समय मे इसी जम्बूद्वीप मे, पूर्व विदेह क्षेत्र मे, सीता नामक महानदी के उत्तरी किनारे नीलवन्त वर्षधर पर्वत के दक्षिण मे, उत्तर तरफ के सीतामुख वनखण्ड के पश्चिम मे और एकशैल नामक वक्षार पर्वत से पूर्व दिशा मे पुष्कलावती नामक विजय कहा गया है।

उस पुष्कलावती विजय मे पुण्डरीकिणी नामक राजधानी है। वह नौ योजन चौडी और बारह योजन लम्बी यावत् साक्षात् देवलोक के समान है। मनोहर है, दर्शनीय है, सुन्दर रूप वाली है और दर्शकों को आनन्द प्रदान करने वाली है। उस पुण्डरीकिणी नगरी मे उत्तर-पूर्वदिशा के भाग (ईशानकोण) में नलिनीवन नामक उद्यान था। उसका वर्णन औपपातिकसूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिए।

महापद्मराज को दीक्षा सिद्धिप्राप्ति

३—तत्थ णं पुंडरीगिणीए रायहाणीए महापउमे णामं राया होत्था। तस्स णं पउमावई देवी होत्था। तस्स णं महापउमस्स रण्णो पुत्ता पउमावईए देवीए अत्तया दुवे कुमारा होत्था, तं जहा—पुंडरीए य कंडरीए य सुकुमालपाणिपाया। पुंडरीए जुवराया।

उस पुण्डरीकिणी राजधानी मे महापद्म नामक राजा था। पद्मावती उसकी—देवी-पटरानी

---

1. अ. ५, सूत्र २

थी। महापद्म राजा के पुत्र और पद्मावती देवी के आत्मज दो कुमार थे—पुंडरीक और कंडरीक। उनके हाथ-पैर (आदि) बहुत कोमल थे। उनमें पुंडरीक युवराज था।

४—तेणं कालेणं तेणं समएणं थेरागमणं (धम्मघोसा थेरा पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणा जाव जेणेव णलिणिवणे उज्जाणे तेणेव समोसढे[1]।)

उस काल और उस समय में स्थविर मुनि का आगमन हुआ अर्थात् धर्मघोष स्थविर पांच सौ अनगारों के साथ परिवृत होकर, अनुक्रम से चलते हुए, यावत् नलिनीवन नामक उद्यान में ठहरे।

५—महापउमे राया णिग्गए। धम्मं सोच्चा पोंडरीयं रज्जे ठवेत्ता पव्वइए। पोंडरीए राया जाए। कंडरीए जुवराया। महापउमे अणगारे चोद्दसपुव्वाइं अहिज्जइ। तए णं थेरा बहिया जणवयविहारं विहरइ। तए णं से महापउमे बहूणि वासाणि जाव सिद्धे।

महापद्म राजा स्थविर मुनि को वन्दना करने निकला। धर्मोपदेश सुनकर उसने पुंडरीक को राज्य पर स्थापित करके दीक्षा अंगीकार कर ली। अब पुंडरीक राजा हो गया और कंडरीक युवराज हो गया। महापद्म अनगार ने चौदह पूर्वों का अध्ययन किया। स्थविर मुनि बाहर जाकर जनपदों में विहार करने लगे। मुनि महापद्म ने बहुत वर्षों तक श्रामण्यपर्याय पालकर सिद्धि प्राप्त की।

६—तए णं थेरा अन्नया कयाइ पुणरवि पुंडरीगिणीए रायहाणीए णलिणिवणे उज्जाणे समोसढा। पोंडरीए राया णिग्गए। कंडरीए महाजणसद्दं सोच्चा जहा महाबलो जाव[2] पज्जुवासइ। थेरा धम्मं परिकहेंति। पुंडरीए समणोवासए जाए जाव पडिगए।

तत्पश्चात् एक बार किसी समय पुनः स्थविर पुंडरीकिणी राजधानी के नलिनीवन उद्यान में पधारे। पुंडरीक राजा उन्हें वन्दना करने के लिए निकला। कंडरीक भी महाजनों (बहुत लोगों) के मुख से स्थविर के आने की बात सुन कर (भगवतीसूत्र में वर्णित) महाबल कुमार की तरह गया। यावत् स्थविर की उपासना करने लगा। स्थविर मुनिराज ने धर्म का उपदेश दिया। धर्मोपदेश सुन कर पुंडरीक श्रमणोपासक हो गया और अपने घर लौट आया।

कंडरीक की दीक्षा

७—तए णं कंडरीए उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठाए उट्ठित्ता जाव[3] से जहेयं तुब्भे वदह, जं णवरं पुंडरीयं रायं आपुच्छामि, तए णं जाव पव्वयामि।

'अहासुहं देवाणुप्पिया!'

तत्पश्चात् कंडरीक युवराज खड़ा हुआ। खड़े होकर उसने इस प्रकार कहा— आपने जो कहा है—वैसा ही है—सत्य है। मैं पुंडरीक राजा से अनुमति लेकर दीक्षा ग्रहण करूंगा।'

---

१ किसी किसी प्रति में कोष्टक में दिया पाठ अधिक है। २ भगवती श. ११.

३ अ. १ सूत्र ११५

तब स्थविर ने कहा—'देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हे सुख उपजे, वैसा करो ।'

८—तए ण से कडरीए जाव थेरे वदइ, नमसइ, वदित्ता नमसित्ता अतियाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता तमेव चाउघट आसरह दुरुहइ, जाव पच्चोरुहइ, जेणेव पु डरीए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल जाव पु डरीए एव वयासी—'एव खलु देवाणुप्पिया ! मए थेराण अतिए जाव धम्मे निसते, से धम्मे अभिरुइए, तए ण देवाणुप्पिया ! जाव पव्वइत्तए ।'

तत्पश्चात् कडरीक ने यावत् स्थविर मुनि को वन्दन किया । वन्दन-नमस्कार करके उनके पास से निकला । निकल कर चार घटो वाले घोडा के रथ पर आरूढ हुआ, यावत् राजभवन मे आकर उतरा । रथ मे उतर कर पु डरीक राजा के पास गया, वहाँ जाकर हाथ जोड कर यावत् पु डरीक से कहा—'देवानुप्रिय ! मैने स्थविर मुनि से धम सुना है और वह धम मुझे रुचा है । अतएव हे देवानुप्रिय ! मैं यावत प्रव्रज्या अगीकार करने की इच्छा करता हूँ ।'

९—तए ण पु डरीए राया कडरीय जुवराय एव वयासी—'मा ण तुम देवाणुप्पिया ! इदाणि मु डे जाव पव्वयाहि, अह ण तुम महया महया रायाभिसेएण अभिसिचामि ।

तए ण से कडरीए पु डरीयस्स रण्णो एयमट्ठ णो आढाइ, जाव तुसिणीए सचिट्ठइ । तए ण पु डरीए राया कडरीय दोच्च पि तच्च पि एव वयासी जाव तुसिणीए सचिट्ठइ ।

तब पु डरीक राजा ने कडरीक युवराज मे इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय ! तुम इस समय मु डित होकर यावत् दीक्षा ग्रहण मत करो । मैं तुम्हे महान्-महान् राज्याभिषेक से अभिषिक्त करना चाहता हूँ ।'

तब कडरीक ने पु डरीक राजा के इस अर्थ का आदर नही किया—स्वीकार नही किया, वह यावत् मौन रहा । तब पु डरीक राजा ने दूसरी बार और तीसरी बार भी कण्डरीक मे इस प्रकार कहा, यावत् कण्डरीक फिर भी मौन ही रहा ।

१०—तए ण पु डरीए कडरीय कुमार जाहे नो सचाएइ बहूहि आघवणाहि पण्णवणाहि य सण्णवणाहि य विण्णवणाहि य ताहे अकामए चेव एयमट्ठ अणुमण्णित्या जाव णिक्खमणाभिसेएण अभिसिचइ जाव थेराण सीसभिक्ख दलयइ । पव्वइए, अणगारे जाए, एक्कारसगविऊ ।

तए ण थेरा भगवतो अन्नया कयाइ पु डरीगिणीओ नयरीओ नलिनीवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमति, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहार विहरति ।

तत्पश्चात् जब पुण्डरीक राजा, कण्डरीक कुमार को बहुत कहकर और समझा-बुझा कर और विज्ञप्ति करके रोकने मे समथ न हुआ, तब इच्छा न होने पर भी उसने यह बात मान ली, अर्थात् दीक्षा की आज्ञा दे दी, यावत् उसे निष्क्रमण अभिषेक से अभिषिक्त किया, यहा तक कि स्थविर मुनि को शिष्य-भिक्षा प्रदान की । तब कडरीक प्रव्रजित हो गया, अनगार हो गया, यावत् ग्यारह अगो का वेत्ता हो गया ।

तत्पश्चात् स्थविर भगवान् अन्यदा कदाचित् पुण्डरीकिणि नगरी के नलिनीवन उद्यान से बाहर निकले । निकल कर बाहर जनपद-विहार करने लगे ।

थी। महापद्म राजा के पुत्र और पद्मावती देवी के आत्मज दो कुमार थे—पुंडरीक और कंडरीक। उनके हाथ-पैर (आदि) बहुत कोमल थे। उनमे पुंडरीक युवराज था।

४—तेण कालेण तेण समएण थेरागमण (धम्मघोसा थेरा पंचहिं अणगारसएहिं सद्धि सपरिवुडे पुव्वाणुपुव्वि चरमाणा जाव जेणेव णलिणिवणे उज्जाणे तेणेव समोसढे[1]।)

उस काल और उस समय मे स्थविर मुनि का आगमन हुआ अर्थात् धर्मघोष स्थविर पाच सौ अनगारो के साथ परिवृत होकर, अनुक्रम से चलते हुए, यावत् नलिनीवन नामक उद्यान मे ठहरे।

५—महापउमे राया णिग्गए। धम्मं सोच्चा पोंडरीयं रज्जे ठवेत्ता पव्वइए। पोंडरीए राया जाए। कंडरीए जुवराया। महापउमे अणगारे चोद्दसपुव्वाइं अहिज्जइ। तए णं थेरा बहिया जणवयविहारं विहरइ। तए णं से महापउमे बहूणि वासाणि जाव सिद्धे।

महापद्म राजा स्थविर मुनि को वन्दना करने निकला। धर्मोपदेश सुनकर उसने पुंडरीक को राज्य पर स्थापित करके दीक्षा अंगीकार कर ली। अब पुंडरीक राजा हो गया और कंडरीक युवराज हो गया। महापद्म अनगार ने चौदह पूर्वो का अध्ययन किया। स्थविर मुनि बाहर जाकर जनपदो में विहार करने लगे। मुनि महापद्म ने बहुत वर्षों तक श्रामण्यपर्याय पालकर सिद्धि प्राप्त की।

६—तए णं थेरा अन्नया कयाइ पुणरवि पुंडरीगिणीए रायहाणीए णलिणिवणे उज्जाणे समोसढा। पोंडरीए राया णिग्गए। कंडरीए महाजणसद्दं सोच्चा जहा महाबलो जाव[2] पज्जुवासइ। थेरा धम्मं परिकहेंति। पुंडरीए समणोवासए जाए जाव पडिगए।

तत्पश्चात् एक बार किसी समय पुनः स्थविर पुंडरीकिणी राजधानी के नलिनीवन उद्यान मे पधारे। पुंडरीक राजा उन्हें वन्दना करने के लिए निकला। कंडरीक भी महाजनों (बहुत लोगों) के मुख से स्थविर के आने की बात सुन कर (भगवतीसूत्र मे वर्णित) महाबल कुमार की तरह गया। यावत् स्थविर की उपासना करने लगा। स्थविर मुनिराज ने धर्म का उपदेश दिया। धर्मोपदेश सुन कर पुंडरीक श्रमणोपासक हो गया और अपने घर लौट आया।

कंडरीक की दीक्षा

७—तए णं कंडरीए उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठाए उट्ठित्ता जाव[3] से जहेयं तुब्भे वदह, जं णवरं पुंडरीयं रायं आपुच्छामि, तए णं जाव पव्वयामि।

'अहासुहं देवाणुप्पिया!'

तत्पश्चात् कंडरीक युवराज खड़ा हुआ। खड़े होकर उसने इस प्रकार कहा—'भगवन्! आपने जो कहा है—वैसा ही है—सत्य है। मैं पुंडरीक राजा से अनुमति ले लूँ, तत्पश्चात् यावत् दीक्षा ग्रहण करूँगा।'

१ किसी किसी प्रति में ब्रैकिट मे दिया पाठ अधिक है। २ भगवती श. ११ १६१

३ अ. १ सूत्र ११५

तब स्थविर ने कहा—'देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हे सुख उपजे, वैसा करो ।'

८—तए ण से कडरीए जाव थेरे वदइ, नमसइ, वदित्ता नमसित्ता अतियाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता तमेव चाउघट आसरह दुरुहइ, जाव पच्चोरुहइ, जेणेव पु डरीए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल जाव पु डरीए एव वयासी—'एव खलु देवाणुप्पिया ! मए थेराण अतिए जाव धम्मे निसते, से धम्मे अभिरुइए, तए ण देवाणुप्पिया ! जाव पव्वइत्तए ।'

तत्पश्चात् कडरीक ने यावत् स्थविर मुनि को वन्दन किया । वन्दन-नमस्कार करके उनके पास से निकला । निकल कर चार घटो वाले घोडो के रथ पर आरूढ हुआ, यावत् राजभवन म आकर उतरा । रथ से उतर कर पु डरीक राजा के पास गया, वहाँ जाकर हाथ जोड कर यावत पु डरीक से कहा—'देवानुप्रिय ! मैंने स्थविर मुनि से धम सुना है और वह धम मुझे रुचा है । अतएव हे देवानुप्रिय ! मैं यावत प्रव्रज्या अगीकार करने की इच्छा करता हूँ ।'

९—तए ण पु डरीए राया कडरीय जुयराय एव वयासी—'मा ण तुम देवाणुप्पिया ! इदाणि मु डे जाव पव्वयाहि, अह ण तुम महया महया रायाभिसेएण अभिसिचामि ।

तए ण से कडरीए पु डरीयस्स रण्णो एयमट्ठ णो आढाइ, जाव तुसिणीए सचिट्ठइ । तए ण पु डरीए राया कडरीय दोच्च पि तच्च पि एव वयासी जाव तुसिणीए सचिट्ठइ ।

तव पु डरीक राजा ने कडरीक युवराज से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय ! तुम इस समय मु डित होकर यावत् दीक्षा ग्रहण मत करो । मैं तुम्हे महान्-महान् राज्याभिषेक से अभिषिक्त करना चाहता हूँ ।'

तब कडरीक ने पु डरीक राजा के इस अथ का आदर नही किया—स्वीकार नही किया, वह यावत् मौन रहा । तब पु डरीक राजा ने दूसरी बार और तीसरी बार भी कण्डरीक से इस प्रकार कहा, यावत् कण्डरीक फिर भी मौन ही रहा ।

१०—तए ण पु डरीए कडरीय कुमार जाहे नो सचाएइ बहूहि आघवणाहि पण्णवणाहि य सण्णवणाहि य विण्णवणाहि य ताहे अकामए चेव एयमट्ठ अणुमण्णित्था जाव णिक्खमणाभिसेएण अभिसिचइ जाव थेराण सीसभिक्ख दलयइ । पव्वइए, अणगारे जाए, एक्कारसगविऊ ।

तए ण थेरा भगवतो अन्नया कयाइ पु डरीगिणीओ नयरीओ नलिनीवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमति, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहार विहरति ।

तत्पश्चात् जब पुण्डरीक राजा, कण्डरीक कुमार को बहुत कहकर और समझा-बुझा कर और विज्ञप्ति करके रोकने मे समथ न हुआ, तब इच्छा न होने पर भी उसने यह बात मान ली, अर्थात् दीक्षा की आज्ञा दे दी, यावत् उसे निष्क्रमण अभिषेक से अभिषिक्त किया, यहाँ तक कि स्थविर मुनि को शिष्य-भिक्षा प्रदान की । तब कडरीक प्रव्रजित हो गया, अनगार हो गया, यावत् ग्यारह अगो का वेत्ता हो गया ।

तत्पश्चात् स्थविर भगवान् अन्यदा कदाचित् पुण्डरीकिणि नगरी के नलिनीवन उद्यान से बाहर निकले । निकल कर बाहर जनपद-विहार करने लगे ।

कंडरीक की रुग्णता

११—तए णं तस्स कंडरीयस्स अणगारस्स तेहिं अंतेहि य पंतेहि य जहा सेलगस्स जाव दाहवक्कंतीए यावि विहरइ।

तत्पश्चात् कंडरीक अनगार के शरीर में अन्त-प्रान्त अर्थात् रूखे-सूखे आहार के कारण शैलक मुनि के समान यावत् दाह-ज्वर उत्पन्न हो गया। वे रुग्ण होकर रहने लगे।

१२—तए णं थेरा अन्नया कयाई जेणेव पोंडरीगिणी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता णलिणिवणे समोसढा, पोंडरीए णिग्गए, धम्मं सुणेइ।

तए णं पुंडरीए राया धम्मं सोच्चा जेणेव कंडरीए अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कंडरीयं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता कंडरीयस्स अणगारस्स सरीरगं सव्वाबाहं सरोयं पासइ, पासित्ता जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता थेरे भगवंते वंदइ, णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—'अहं णं भंते! कंडरीयस्स अणगारस्स अहापवत्तेहिं ओसहभेसज्जेहिं जाव तेइच्छं आउट्टामि, तं तुब्भे णं भंते! मम जाणसालासु समोसरह।'

तत्पश्चात् एक बार किसी समय स्थविर भगवंत पुण्डरीकिणी नगरी में पधारे और नलिनीवन उद्यान में ठहरे। तब पुंडरीक राजमहल से निकला और उसने धर्मदेशना श्रवण की।

तत्पश्चात् धर्म सुनकर पुंडरीक राजा कंडरीक अनगार के पास गया। वहाँ जाकर कंडरीक मुनि की वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके उसने कंडरीक मुनि का शरीर सब प्रकार की बाधा से युक्त और रोग से आक्रान्त देखा। यह देखकर राजा स्थविर भगवंत के पास गया। जाकर स्थविर भगवंत को वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया—'भगवन्! मैं कंडरीक अनगार की यथाप्रवृत्त (आपकी प्रवृत्ति समाचारी के अनुकूल) औषध और भेषज से चिकित्सा कराता हूँ (करना चाहता हूँ) अतः भगवन्! आप मेरी यानशाला में पधारिये।

१३—तए णं थेरा भगवंतो पुंडरीयस्स रण्णो एयमट्ठं पडिसुणेंति पडिसुणित्ता जाव उवसंपज्जित्ता णं विहरंति। तए णं पुंडरीए राया जहा मड्डुए सेलगस्स जाव बलियसरीरे जाए।

तब स्थविर भगवान् ने पुंडरीक राजा का यह विवेचन स्वीकार कर लिया। स्वीकार करके यावत् यानशाला में रहने की आज्ञा लेकर विचरने लगे—वहाँ रहने लगे। तत्पश्चात् जैसे मंडुक राजा ने शैलक ऋषि की चिकित्सा करवाई, उसी प्रकार राजा पुंडरीक ने कंडरीक की करवाई। चिकित्सा हो जाने पर कंडरीक अनगार बलवान् शरीर वाले हो गये।

कंडरीक मुनि की शिथिलता

१४—तए णं थेरा भगवंतो पोंडरीयं रायं पुच्छंति, पुच्छित्ता बहिया जणवयविहारं विहरंति।

तए णं से कंडरीए ताओ रोयायंकाओ विप्पमुक्के समाणे तंसि मणुन्नंसि असण-पाण-खाइम-साइमंसि मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववन्ने, णो संचाएइ पोंडरीयं आपुच्छित्ता बहिया अब्भुज्जएणं जणवयविहारेणं विहरित्तए। तत्थेव ओसण्णे जाए।

तत्पश्चात् स्थविर भगवान् ने पुण्डरीक राजा से पूछा अर्थात् अपने विहार को उसे सूचना दी। तदनन्तर वे बाहर जाकर जनपद-विहार विहरने लगे।

उस समय कण्डरीक अनगार उस रोग आतंक से मुक्त हो जाने पर भी उस मनोज्ञ अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार मे मूर्च्छित, गृद्ध, आसक्त और तल्लीन हो गए। अतएव वे पुण्डरीक राजा से पूछ कर अर्थात् कहकर बाहर जनपदो मे उग्र विहार करने मे समर्थ न हो सके। शिथिलाचारी होकर वही रहने लगे।

१५—तए ण से पोंडरीए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे ण्हाए अंतेउरपरियालसंपरिवुडे जेणेव कंडरीए अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कंडरीयं तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ, करित्ता वदइ, णमसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—'धन्ने सि ण तुमं देवाणुप्पिया ! कयत्थे कयपुण्णे कयलक्खणे, सुलद्धे ण देवाणुप्पिया ! तव माणुस्सए जम्म-जीवियफले, जे ण तुमं रज्जं च जाव अंतेउरं च छड्डइत्ता विगोवइत्ता जाव पव्वइए। अहं ण अहण्णे अकयपुण्णे रज्जे जाव अंतेउरे य माणुस्सएसु य कामभोगेसु मुच्छिए जाव अज्झोववन्ने नो संचाएमि जाव पव्वइत्तए। तं धन्नो सि ण तुमं देवाणुप्पिया ! जाव जीवियफले।'

तत्पश्चात् पुण्डरीक राजा ने इस कथा का अर्थ जाना अर्थात् जब उसे यह बात विदित हुई, तब वह स्नान करके और विभूषित होकर तथा अन्त पुर के परिवार से परिवृत होकर जहाँ कण्डरीक अनगार थे वहाँ आया। आकर उसने कण्डरीक को तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की। फिर वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना और नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय ! आप धन्य हैं, कृतार्थ है, कृतपुण्य है और सुलक्षण वाले है। देवानुप्रिय ! आपको मनुष्य के जन्म और जीवन का फल सुन्दर मिला है, जो आप राज्य को और अन्त पुर को त्याग कर और दुत्कार कर प्रव्रजित हुए हैं। और मैं अधन्य हूँ, पुण्यहीन हूँ, यावत् राज्य मे, अन्त पुर मे और मानवीय कामभोगो मे मूर्च्छित यावत् तल्लीन हो रहा हूँ, यावत् दीक्षित होने के लिए समर्थ नही हो पा रहा हूँ। अतएव देवानुप्रिय ! आप धन्य हैं, यावत् आपको जन्म और जीवन का सुन्दर फल प्राप्त हुआ है।

१६—तए ण से कंडरीए अणगारे-पुंडरीयस्स एयमट्ठं णो आढाइ जाव [णो परियाणाइ, तुसिणीए] संचिट्ठइ। तए ण कंडरीए पुंडरीएणं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे अकामए अवस्सवसे लज्जाए गारवेण य पोंडरीयं रायं आपुच्छइ, आपुच्छित्ता थेरेहिं सद्धिं बहिया जणवय-विहारं विहरइ। तए ण से कंडरीयं थेरेहिं सद्धिं किंचि कालं उग्गउग्गेण विहरइ। तओ पच्छा समणत्तणपरितंते समणत्तणणिव्विण्णे समणत्तणणिब्भत्थिए समणगुणमुक्कजोगी थेराणं अंतियाओ सणियं सणियं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता जेणेव पुंडरीगिणी णयरी, जेणेव पुंडरीयस्स भवणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता असोगवणियाए असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टगंसि णिसीयइ, णिसीइत्ता ओहयमणसंकप्पे जाव झियायमाणे संचिट्ठइ।

तत्पश्चात् कण्डरीक अनगार ने पुण्डरीक राजा की इस बात का आदर नही किया। यावत् वह मौन बने रहे। तब पुण्डरीक ने दूसरी बार और तीसरी बार भी यही कहा। तत्पश्चात् इच्छा न होने पर भी विवशता के कारण, लज्जा से और बड़े भाई के गौरव के कारण पुण्डरीक राजा से

पूछा—अपने जाने के लिए कहा। पूछ कर वह स्थविर के साथ बाहर जनपदों में विचरने लगे। उस समय स्थविर के साथ-साथ कुछ समय तक उन्होंने उग्र-उग्र विहार किया। उसके बाद वह श्रमणत्व (साधुपन) से थक गये, श्रमणत्व से ऊब गये और श्रमणत्व से निर्भत्सना को प्राप्त हुए। साधुता के गुणों से रहित हो गये। अतएव धीरे-धीरे स्थविर के पास से (बिना आज्ञा प्राप्त किये) खिसक गये। खिसक कर जहाँ पुण्डरीकिणी नगरी थी और जहाँ पुण्डरीक राजा का भवन था, उसी तरफ आये। आकर अशोकवाटिका में, श्रेष्ठ अशोकवृक्ष के नीचे, पृथ्वीशिलापट्टक पर बैठ गये। बैठ कर भग्नमनोरथ एवं चिन्तामग्न हो रहे।

१७—तए णं तस्स पोंडरीयस्स अम्मधाई जेणेव असोगवणिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कंडरीयं अणगारं असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टयंसि ओहयमणसंकप्पं जाव झियायमाणं पासइ, पासित्ता जेणेव पोंडरीए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोंडरीयं रायं एवं वयासी—'एवं खलु देवाणुप्पिया ! तव पियभाउए कंडरीए अणगारे असोगवणियाए असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टे ओहयमणसंकप्पे जाव झियायइ।'

तत्पश्चात् पुण्डरीक राजा की धाय-माता जहाँ अशोकवाटिका थी, वहाँ गई। वहाँ जाकर उसने कण्डरीक अनगार को अशोक वृक्ष के नीचे, पृथ्वीशिलापट्टक पर भग्नमनोरथ यावत् चिन्तामग्न देखा। यह देखकर वह पुण्डरीक राजा के पास गई और उनसे कहने लगी—देवानुप्रिय ! तुम्हारा प्रिय भाई कण्डरीक अनगार अशोकवाटिका में, उत्तम अशोक वृक्ष के नीचे, पृथ्वीशिलापट्ट पर भग्नमनोरथ होकर यावत् चिन्ता में डूबा बैठा है।

१८—तए णं पोंडरीए अम्मधाईए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म तहेव संभंते समाणे उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठित्ता अंतेउरपरियालसंपरिवुडे जेणेव असोगवणिया जाव कंडरीयं तिक्खुत्तो एवं वयासी—'धण्णे सि तुमं देवाणुप्पिया ! जाव[1] पव्वइए, अहं णं अधण्णे जाव[1] पव्वइत्तए, तं धन्ने सि णं तुमं देवाणुप्पिया ! जाव जीवियफले।'

तब पुण्डरीक राजा, धाय माता की यह बात सुनते और समझते ही संभ्रान्त हो उठा। उठ कर अन्तःपुर के परिवार के साथ अशोकवाटिका में गया। जाकर यावत् कण्डरीक को तीन बार इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय ! तुम धन्य हो कि यावत् दीक्षित हो। मैं अधन्य हूँ कि यावत् दीक्षित होने के लिए समर्थ नहीं हो पाता। अतएव देवानुप्रिय ! तुम धन्य हो यावत् तुमने मानवीय जन्म और जीवन का सुन्दर फल पाया है।'

१९—तए णं कंडरीए पुंडरीएणं एवं वुत्ते समाणे तुसिणीए संचिट्ठइ दोच्चं पि तच्चं पि जाव चिट्ठइ।

तत्पश्चात् पुंडरीक राजा के द्वारा इस प्रकार कहने पर कण्डरीक चुपचाप रहा। दूसरी बार और तीसरी बार कहने पर भी यावत् मौन ही बना रहा।

१-२ अ. १९ सूत्र १६

प्रव्रज्या का परित्याग

२०—तए ण पु डरीए कडरीय एव वयासी—'अट्ठो भते ! भोगोहिं ?'

'हता अट्ठो ।'

तव पुण्डरीक राजा ने कडरीक से पूछा—'भगवन ! क्या भोगो से प्रयोजन है ? अर्थात् क्या भोग भोगने की इच्छा है ?

तव कडरीक ने कहा—'हा प्रयोजन है ।'

राज्याभिषेक

२१—तए ण पोडरीए राया कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एव वयासी—'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! कडरीयस्स महत्थ जाव रायाभिसेय उवट्ठवेह ।' जाव रायाभिसेएण अभिसिचइ ।

तत्पश्चात् पुण्डरीक राजा ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया । बुला कर इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो ! शीघ्र ही कडरीक के महान अर्थव्यय वाले एव महान पुरुषो के योग्य राज्याभिषेक की तयारी करो ।' यावत् कडरीक राज्याभिषेक से अभिषिक्त किया गया । वह मुनिपर्याय त्याग कर राजसिंहासन पर आसीन हो गया ।

पुण्डरीक का दीक्षा ग्रहण

२२—तए ण पु डरीए सयमेव पचमुट्ठियं लोय करेइ सयमेव चाउज्जाम धम्म पडिवज्जइ, पडिवज्जित्ता कडरीयस्स अतिअ आयारभडय गेण्हइ, गेण्हित्ता इम एयारूव अभिग्गह अभिगिण्हइ—'कप्पइ मे थेरे वदित्ता णमसित्ता थेराण अतिए चाउज्जाम धम्म उवसपज्जित्ता ण तओ पच्छा आहार आहारित्तए' त्ति कट्टु इम च एयारूव अभिग्गह अभिगिण्हेत्ता ण पोडरीगिणीए पडिणिक्खमइ । पडिणिक्खमित्ता पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे गामाणुगाम दूइज्जमाणे जेणेव थेरा भगवतो तेणेव पहारेत्य गमणाए ।

तत्पश्चात् पुण्डरीक ने स्वय पचमुष्टिक लोच किया और स्वय ही चातुर्याम धम अगीकार किया । अगीकार करके कडरीक के आचारभाण्ड (उपकरण) ग्रहण किये और इस प्रकार का अभिग्रह ग्रहण किया ।

'स्थविर भगवान् को वन्दन-नमस्कार करने और उनके पास से चातुर्याम धम अगीकार करने के पश्चात् ही मुझे आहार करना कल्पता है ।' ऐसा कहकर और इस प्रकार का अभिग्रह धारण करके पुण्डरीक पुण्डरीकिणी नगरी से बाहर निकला । निकल कर अनुक्रम से चलता हुआ, एक ग्राम से दूसरे ग्राम जाता हुआ, जिस ओर स्थविर भगवान् थे, उसी ओर गमन करने को उद्यत हुआ ।

विवेचन—आगमो मे अनेक स्थलो पर दीक्षा के प्रसग मे 'पचमुट्ठियलोय' अर्थात पञ्च मुष्टियो द्वारा लोच करने का उल्लेख आता है । अभिधानराजेन्द्रकोष मे इसका अथ किया गया है—'पञ्चभि-मु ष्टिभि शिर केशापनयनम्' अर्थात् पाँच मुट्ठियो से शिर के केशो का उत्पाटन करना—हटा देना ।

इस अथ के अनुसार पाँच मुट्ठियो से शिर के केशो को उखाडने का अभिप्राय तो स्पष्ट होता है किन्तु दाढी और मू छो के केशो के विषय मे कुछ भी ज्ञात नही होता । इन केशो का अपनयन

पाँच मुट्ठियो मे ही हो जाता है अथवा अतिरिक्त मुट्ठियों मे ? अगर अतिरिक्त मुट्ठियो से होता है तो उसे पचमुष्ठिक लोच कैसे कहा जाता है ?

भगवान् ऋषभदेव के लोच सम्बन्ध मे लिखा है—(ऋषभ) सयमेव चउहि अट्ठाहि मुट्ठिहि लोय करेइ—स्वयमेव चतसृभि (अट्ठाहि ति) मुष्टिभि करणभूताभिर्लुञ्चनीयकेशाना पञ्चमभाग-लुञ्चिकाभिरित्यर्थ , लोच करोति, अपरालङ्कारादिमोचनपूर्वकमेव शिरोलकारादिमोचन विधि क्रमायेति पर्यन्ते मस्तकालकारकेशामोचनम् । तीर्थकृता पञ्चमुष्टिकलोचसम्भवेऽपि अस्य भगवतश्चतुमुष्टिकलोचगोचर श्रीहेमचन्द्राचार्यकृत-ऋषभचरित्राद्यभिप्रायोऽयम्—प्रथममेकया मुष्टया श्मश्रुकूर्चयोर्लोचे, तिसृभिश्च शिरोलोचे कृते, एका मुष्टिमवशिष्यमाणा पवनान्दोलिता कनकावदातयो प्रभुस्कन्धयोरुपरि लुठन्ती मरकतोपमानमाबिभ्रती परमरमणीया वीक्ष्य प्रमोदमानेन शक्रेण—भगवन् ! मय्यनुग्रह विधाय ध्रियतामेव इत्थमेवेति विज्ञप्ते भगवताऽपि तथैव रक्षिता ।

इस उद्धरण से विदित होता है कि एक मुट्ठी से, लोच करने के योग्य समस्त केशो के पाँचवें भाग का उत्पाटन किया जाता है । किन्तु भ० ऋषभदेव ने चार-मुट्ठि लोच किया । वह इस प्रकार--पहली एक मुट्ठी से दाढी और मूछो के केश उखाडे और तीन मुष्टियो से सिर के केश उखाडे । जब एक मुट्ठी शेष रही तब भगवान् के दोनो कन्धो पर केशराशि सुशोभित हो रही थी । भगवान् के स्वर्ण-वर्ण कन्धो पर मरकत मणि की सी अतिशय रमणीय केशराशि को देख कर शक्रेन्द्र को प्रमोदभाव उत्पन्न हुआ और उसने प्रार्थना की—'भगवन् ! मुझ पर अनुग्रह करके इस केशराशि को इसी प्रकार रहने दीजिए ।' भगवान् ने इन्द्र की प्रार्थना स्वीकार करके वैसी ही रहने दी ।

इससे स्पष्ट है कि दोनो कन्धो के ऊपर वाले केश एक पाचवी मुट्ठी से उखाडे जाते है ।

यह भी सम्भव है कि किस मुट्ठी से कौन से केश उखाडे जाएँ, ऐसा कोई प्रतिबन्ध न हो, केवल यही अभीष्ट हो कि पाँच मुट्ठियों मे मस्तक, दाढी और मूछो के समस्त केश उखड जाने चाहिए ।

फण्डरीक की पुन रुग्णता

२३—तए ण तस्स कडरीयस्स रण्णो त पणीय पाणभोयण आहारियस्स समाणस्स अतिजागरिएण य अइभोयणप्पसगेण य से आहारे णो सम्म परिणमइ । तए ण तस्स कडरीयस्स रण्णो तसि आहारसि अपरिणममाणसि पुव्वरत्तावरत्तकालसमयसि सरीरसि वेयणा पाउब्भूया उज्जला विउला कक्खडा पगाढा जाव [चडा दुक्खा] दुरहियासा पित्तज्जरपरिगयसरीरे दाहवक्कतीए यावि होत्था ।

तत्पश्चात् प्रणीत (सरस पौष्टिक) आहार करने वाले कण्डरीक राजा को अति जागरण करने से और मात्रा से अधिक भोजन करने के कारण वह आहार अच्छी तरह परिणत नही हुआ, पच नहीं सका । उस आहार का पाचन न होने पर, मध्य रात्रि के समय कण्डरीक राजा के शरीर मे उज्ज्वल, विपुल, कर्कश, अत्यन्त गाढी, प्रचड और दु खद वेदना उत्पन्न हो गई । उसका शरीर पित्तज्वर से व्याप्त हो गया । अतएव उसे दाह होने लगा । कण्डरीक ऐसी रोगमय स्थिति में रहने लगा ।

मरण एवं नारक-जन्म

२४—तए ण से कडरीए राया रज्जे य रट्ठे य अंतेउरे य जाव अज्झोववन्ने अट्टदुहट्टवसट्टे अकामए अवस्सवसे कालमासे कालं किच्चा अहे सत्तमाए पुढवीए उक्कोसकालट्ठिइयंसि नरयंसि नेरइयत्ताए उववण्णे ।

तत्पश्चात् कडरीक राजा राज्य में, राष्ट्र में, और अन्तःपुर में यावत् अतीव आसक्त बना हुआ, आर्तध्यान के वशीभूत हुआ, इच्छा के बिना ही, पराधीन होकर, कालमास में (मरण के अवसर पर) काल करके नीचे सातवीं पृथ्वी में सर्वोत्कृष्ट (तेतीस सागरोपम) स्थिति वाले नरक में नारक रूप से उत्पन्न हुआ ।

२५—एवामेव समणाउसो ! जाव पव्वइए समाणे पुणरवि माणुस्सए कामभोगे आसाएइ जाव अणुपरियट्टिस्सइ, जहा व से कडरीए राया ।

इस प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! यावत् हमारा जो साधु-साध्वी दीक्षित होकर पुनः मानवीय कामभोगों की इच्छा करता है, वह यावत् कडरीक राजा की भाँति संसार में पुनः-पुनः पर्यटन करता है ।

पुण्डरीक की उग्र साधना

२६—तए णं से पोंडरीए अणगारे जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता थेरे भगवंते वंदइ, णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता थेराणं अंतिए दोच्चं पि चाउज्जामं धम्मं पडिवज्जइ, छट्ठक्खमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ, करित्ता जाव अडमाणे सीयलुक्खं पाणभोयणं पडिगाहेइ, पडिगाहित्ता अहापज्जत्तमिति कट्टु पडिणियत्तइ, पडिणियत्तित्ता जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भत्तपाणं पडिदंसेइ पडिदंसित्ता थेरेहिं भगवंतेहिं अब्भणुन्नाए समाणे अमुच्छिए अगिद्धे अगढिए अणज्झोववण्णे बिलमिव पण्णगभूएणं अप्पाणेणं तं फासुएसणिज्जं असणं पाणं खाइमं साइमं सरीरकोट्ठगंसि पक्खिवइ ।

पुंडरीकिणी नगरी से रवाना होने के पश्चात् पुंडरीक अनगार वहाँ पहुँचे जहाँ स्थविर भगवान् थे । वहाँ पहुँच कर उन्होंने स्थविर भगवान् को वन्दना की, नमस्कार किया । वन्दना-नमस्कार करके स्थविर के निकट दूसरी बार चातुर्याम धर्म अंगीकार किया । फिर षष्ठभक्त के पारणक में, प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया, (दूसरे प्रहर में ध्यान किया,) तीसरे प्रहर में यावत् भिक्षा के लिए अटन करते हुए ठंडा और रूखा भोजन-पान ग्रहण किया । ग्रहण करके यह मेरे लिए पर्याप्त है, ऐसा सोच कर लौट आये । लौट कर स्थविर भगवान् के पास आये । उन्हें लाया हुआ भोजन-पानी दिखलाया । फिर स्थविर भगवान् की आज्ञा होने पर मूर्च्छाहीन होकर तथा गृद्धि, आसक्ति एवं तल्लीनता से रहित होकर, जैसे सर्प बिल में सीधा चला जाता है, उसी प्रकार (स्वाद न लेते हुए) उस प्रासुक तथा एषणीय अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार को उन्होंने शरीर रूपी कोठे में डाल लिया ।

२७—तए णं तस्स पुंडरीयस्स अणगारस्स तं अरसं विरसं सीयलुक्खं पा।

आहारियस्स समाणस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयसि धम्मजागरिय जागरमाणस्स से आहारे णो सम्म परिणमइ। तए ण तस्स पु डरीयस्स अणगारस्स सरीरगसि वेयणा पाउब्भूया उज्जला जाव[1] दुरहियासा पित्तज्जरपरिगयसरीरे दाहवक्कतीए विहरइ।

तत्पश्चात् पु डरीक अनगार उस कालातिक्रान्त (जिसके खाने का समय बीत गया है ऐसे), रसहीन, खराब रस वाले तथा ठडे और रूखे भोजन पानी का आहार करके मध्य रात्रि के समय धर्म-जागरण कर रहे थे। तब वह आहार उन्हे सम्यक् रूप से परिणत न हुआ। उस समय पु डरीक अनगार के शरीर मे उज्ज्वल, विपुल, कर्कश, प्रचण्ड एव दु खरूप, दुस्सह वेदना उत्पन्न हो गई। उनका शरीर पित्तज्वर से व्याप्त हो गया और शरीर मे दाह होने लगा।

उग्र साधना का सुफल

२८—तए ण से पु डरीए अणगारे अत्थामे अबले अवीरिए अपुरिसक्कारपरक्कमे करयल जाव एव वयासी—

'नमोऽत्थु ण अरिहताण जाव सपत्ताण, णमोऽत्थु ण थेराण भगवताण मम धम्मायरियाण धम्मोवएसयाण, पुव्वि पि य ण मए थेराण अतिए सव्वे पाणाइवाए पच्चक्खाए जाव मिच्छादसण सल्ले ण पच्चक्खाए' जाव आलोइयपडिक्कते कालमासे काल किच्चा सव्वट्ठसिद्धे उववण्णे। ततोऽणतर उव्वट्टित्ता महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ जाव सव्वदुक्खाणमत काहिइ।

तत्पश्चात् पु डरीक अनगार निस्तेज, निर्बल, वीर्यहीन और पुरुषकार-पराक्रमहीन हो गये। उन्होने दोनो हाथ जोडकर यावत् इस प्रकार कहा—

'यावत् सिद्धिप्राप्त अरिहतो को नमस्कार हो। मेरे धर्माचार्य और धर्मोपदेशक स्थविर भगवान् को नमस्कार हो। स्थविर के निकट पहले भी मैने समस्त प्राणातिपात का प्रत्याख्यान किया, यावत् मिथ्यादर्शन शल्य का (अठारहो पापस्थानो) का त्याग किया था' इत्यादि कहकर यावत शरीर का भी त्याग करके आलोचना प्रतिक्रमण करके, कालमास मे काल करके सर्वार्थसिद्ध नामक अनुत्तर विमान मे देवपर्याय मे उत्पन्न हुए। वहाँ से अनन्तर च्यवन करके, अर्थात् बीच मे कही अन्यत्र जन्म न लेकर सीधे महाविदेह क्षेत्र मे उत्पन्न होकर सिद्धि प्राप्त करेगे। यावत् सब दु खो का अन्त करेगे।

२९—एवामेव समणाउसो! जाव पव्वइए समाणे माणुस्सएहि कामभोगेहि णो सज्जइ, णो रज्जइ, जाव नो विप्पडिघायमावज्जइ, से ण इह भवे चेव बहूण समणाण बहूण समणीण बहूण सावयाण बहूण सावियाण अच्चणिज्जे वदणिज्जे पूयणिज्जे सक्कारणिज्जे सम्माणिज्जे कल्लाण मगल देवय चेइय पज्जुवासणिज्जे त्ति कट्टु परलोए वि य ण णो आगच्छइ बहूणि दडणाणि य मु डणाणि य तज्जणाणि य ताडणाणि य जाव चाउरतससारकतार जाव वीईवइस्सइ, जहा व से पोंडरीए राया।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो! जो हमारा साधु या साध्वी दीक्षित होकर मनुष्य-सबधी कामभोगो मे आसक्त नही होता, अनुरक्त नही होता, यावत् प्रतिघात को प्राप्त नही होता, वह इसी भव मे बहुत श्रमणो, बहुत श्रमणियो, बहुत श्रावको और [illegible] द्वारा अर्चनीय, वन्दनीय,

1 अ १९, सूत्र २८

पूजनीय, सत्करणीय, सम्माननीय, कल्याणरूप, मगलकारक, देव और चैत्य समान उपासना करने योग्य होता है। इसके अतिरिक्त वह परलोक मे भी राजदण्ड, राजनिग्रह, तर्जना और ताडना को प्राप्त नही होता, यावत् चतुर्गति रूप ससार-कान्तार को पार कर जाता है, जैसे पु डरीक अनगार।

३०—एव खलु जम्बू ! समणेण भगवया महावीरेण आइगरेण तित्थगरेण सिद्धिगइणामधेज्ज ठाण सपत्तेण एगूणवीसइमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते।

जम्बू ! धर्म की आदि करने वाले, तीर्थ की स्थापना करने वाले, यावत सिद्धि नामक स्थान को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने ज्ञात-अध्ययन के उन्नीसवें अध्ययन का यह अर्थ कहा है।

३१—एव खलु जबू ! समणेण भगवया महावीरेण जाव सिद्धिगइनामधेज्ज ठाण सपत्तेण छट्ठस्स अगस्स पढमस्स सुयक्खधस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि।

श्री सुधर्मास्वामी पुन कहते हैं—'इस प्रकार हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर ने यावत् सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त जिनेश्वर देव ने इस छठे अग के प्रथम श्रुतस्कध का यह अर्थ कहा है। जैसा सुना वैसा मैंने कहा है—अपनी कल्पना-बुद्धि से नही कहा।

३२—तस्स ण सुयक्खधस्स एगूणवीस अज्झयणाणि एक्कसरगाणि एगूणवीसाए दिवसेसु समप्पत्ति ॥१४७॥

इस प्रथम श्रुतस्कन्ध के उन्नीस अध्ययन हैं, एक एक अध्ययन एक-एक दिन मे पढने से उन्नीस दिनो मे यह अध्ययन पूर्ण होता है (इसके योगवहन मे उन्नीस दिन लगते हैं)।

॥ उन्नीसवा अध्ययन समाप्त ॥

॥ प्रथम श्रुतस्कध समाप्त ॥

द्वितीय श्रुतस्कन्ध
१-१० वर्ग

सार सक्षेप

महाव्रतो का विधिवत् पालन करने वाला जीव उसी भव मे यदि समस्त कर्मों का क्षय कर सके तो निर्वाण प्राप्त करता है। यदि कम शेष रह जाएँ तो वैमानिक देवो मे उत्पन्न होता है। किन्तु महाव्रतो को अंगीकार करके भी जो उनका विधिवत् पालन नही करता, कारणवश शिथिलाचारी बन जाता है, कुशील हो जाता है, सम्यग्ज्ञान आदि का विराधक हो जाता है, तीर्थंकर के उपदेश की परवाह न करके स्वेच्छाचारी बन जाता है और अन्तिम समय मे अपने अनाचार की आलोचना प्रतिक्रमण नही करता, वह मात्र कायक्लेश आदि बाह्य तपश्चर्या करने के कारण देवगति प्राप्त करके भी वैमानिक जैसी उच्चगति और देवत्व नही पाता। भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क की पर्याय प्राप्त करता है।

द्वितीय श्रुतस्कन्ध मे यही तत्त्व प्रकाशित किया गया है। इनमें चारों देव निकायो की इन्द्राणियो के पूर्व-जीवन का विवरण दिया गया है। इन सब इन्द्राणियो के पूर्व-जीवन मे इतनी समानता है कि एक का वर्णन करके दूसरी सभी के जीवन को उसी के सदृश समझ लेने का उल्लेख कर दिया गया है।

द्वितीय श्रुतस्कन्ध मे दस वर्ग हैं। वर्ग का अर्थ है श्रेणी। एक श्रेणी की जीवनियाँ एक वर्ग मे सम्मिलित कर दी गई हैं।

प्रथम वर्ग मे चमरेन्द्र की अग्रमहिषियो का वर्णन है। दूसरे वर्ग मे वैरोचनेन्द्र बलीन्द्र की, तीसरे मे असुरेन्द्र को छोडकर दक्षिण दिशा के नौ भवनवासी-इन्द्रो की अग्रमहिषियो का और चौथे मे उत्तर दिशा के इन्द्रो की अग्रमहिषियो का वर्णन है। पाचवें मे दक्षिण और छठे मे उत्तर दिशा के वाणव्यन्तर देवो की अग्रमहिषियो का, सातवें मे ज्योतिष्केन्द्र की, आठवें मे सूर्य इन्द्र की तथा नौवें और दसवें वर्ग मे वैमानिक निकाय के सौधर्मेन्द्र तथा ईशानेन्द्र की अग्रमहिषियो का वर्णन है।

इन सब देवियो का वर्णन वस्तुत उनके पूर्वभव का है, जिसमे वे मनुष्य पर्याय मे महिला के रूप मे जन्मी थी, उन्होंने साध्वीदीक्षा अंगीकार की थी और कुछ समय तक चारित्र की आराधना की थी। कुछ काल के पश्चात् वे शरीर-बकुशा हो गई, चारित्र की विराधना करने लगी। गुरुनी के मना करने पर भी विराधना के मार्ग से हटी नही। गच्छ से अलग होकर रहने लगी और अन्तिम समय मे भी उन्होंने अपने दोषो की आलोचना-प्रतिक्रमणा किये बिना ही शरीर-त्याग किया।

राजगृह नगर मे श्रमण भगवान महावीर का पदार्पण हुआ। उस समय चमरेन्द्र असुरराज की अग्रमहिषी (पटरानी) काली देवी अपने सिंहासन पर आसीन थी। उसने अवधिज्ञान का उपयोग जम्बूद्वीप की ओर लगाया तो देखा कि भगवान् महावीर जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में राजगृह नगर मे विराजमान हैं। यह देखते ही काली देवी सिंहासन से नीचे उतरी, जिस दिशा

मे भगवान् थे, उसमे सात-आठ कदम आगे गई और पृथ्वी पर मस्तक टेक कर उन्हे विधिवत् वन्दना की।

तत्पश्चात् उसने भगवान् के समक्ष जाकर प्रत्यक्ष दर्शन करने, वन्दना और नमस्कार करने का निश्चय किया। उसी समय एक हजार योजना विस्तृत दिव्य-यान की विनिया द्वारा तैयारी करने का आदेश दिया। यान तैयार हुआ और भगवान् के समक्ष उपस्थित हुई। वन्दन किया, नमस्कार किया। देवो की परम्परा के अनुसार अपना नाम-गोत्र प्रकाशित किया। फिर बत्तीस प्रकार की नाटयविधि दिखला कर वापिस लौट गई।

काली देवी के चले जाने पर गौतम स्वामी ने भगवान् के समक्ष निवेदन किया—भंते! काली देवी को यह दिव्य ऋद्धि—विभूति किस प्रकार प्राप्त हुई है?

तब भगवान् ने उसके पूर्वभव का वृत्तान्त सुनाया—आमलकल्पा नगरी के काल नामक गाथापति की एक पुत्री थी। उसकी माता का नाम कालश्री था। पुत्री का नाम काली था। काली नामक वह पुत्री शरीर से बडी बेडौल थी। उसके स्तन तो इतने लम्बे थे कि नितम्ब भाग तक लटकते थे। अतएव उसे कोई वर नही मिला। वह अविवाहित ही रही।

एक बार पुरुषादानीय भगवान् पार्श्वनाथ का आमलकल्पा नगरी मे पदार्पण हुआ। काली ने धर्मदेशना श्रवण कर दीक्षा अंगीकार करने का संकल्प किया। माता-पिता ने सहर्ष अनुमति दे दी। ठाठ के साथ दीक्षा-महोत्सव मनाया गया। भगवान् ने दीक्षा प्रदान कर उसे आर्या पुष्पचूला को सौंप दिया। काली आर्या ने ग्यारह अंगो—आगमो का अध्ययन किया और यथाशक्ति तपश्चर्या करती हुई संयम की आराधना करने लगी।

किन्तु कुछ समय के पश्चात् काली आर्या को शरीर के प्रति आसक्ति उत्पन्न हो गई। वह बार-बार अंग उपांग धोती और जहा स्वाध्याय, कायोत्सर्ग आदि करती, वहाँ जल छिडकती। साध्वी आचार से विपरीत उसकी यह प्रवृत्ति देखकर आर्या पुष्पचूला ने उसे ऐसा न करने के लिए समझाया। वह नही मानी। बार-बार टोकने पर वह गच्छ से सम्बन्ध तोड कर अलग उपाश्रय मे रहने लगी। अब वह पूरी तरह स्वच्छन्द हो गई। संयम की विराधिका बन गई। कुछ समय इसी प्रकार व्यतीत हुआ। अंतिम समय मे उसने पन्द्रह दिन का अनशन संथारा तो किया किन्तु अपने शिथिलाचार की न आलोचना की और न प्रतिक्रमण ही किया।

भगवान् महावीर ने कहा—यही वह काली आर्या का जीव है, जो काली देवी के रूप मे उत्पन्न हुआ है।

गौतम स्वामी के पुनः प्रश्न करने पर भगवान् ने कहा—देवीभव का अन्त होने पर उद्वर्त्तन करके काली देवी महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेगी। वहा निरतिचार संयम की आराधना करके सिद्धि प्राप्त करेगी।

यह प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का सार-संक्षेप है। आगे के वर्गों और अध्ययनो की कथाएँ काली के ही समान हैं अतएव उनका विस्तृत वर्णन नही किया गया है केवल उनके नाम, पूर्वभव के माता-पिता, नगर आदि का उल्लेख करके शेष वृत्तान्त काली के समान जान लेने की सूचना कर दी गई है।

द्वितीय श्रुतस्कध : धर्मकथा

प्रथम वर्ग

प्रथम अध्ययन : काली

प्रास्ताविक

प्रथम श्रुतस्कध मे दृष्टान्तो द्वारा धर्म का प्रतिपादन किया गया है। इस द्वितीय श्रुतस्कध में साक्षात् कथाओं द्वारा धर्म का अर्थ प्रकट किया गया है।

१—तेण कालेण तेण समएण रायगिहे नयरे होत्था। वण्णओ। तस्स ण रायगिहस्स बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए तत्थ ण गुणसीलए णाम चेइए होत्था। वण्णओ।

उस काल और उस समय मे राजगृह नगर था। उसका वर्णन यहाँ कहना चाहिए। उस राजगृह के बाहर उत्तरपूर्व दिशाभाग (ईशान कोण) मे गुणशील नामक चैत्य था। उसका भी वर्णन यहाँ औपपातिकसूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिए।

सुधर्मा का आगमन

२—तेण कालेण तेण समएण समणस्स भगवओ महावीरस्स अतेवासी अज्जसुहम्मा णामं थेरा भगवतो जाइसपन्ना कुलसपन्ना जाव[1] चउद्दसपुव्वी, चउणाणोवगया, पचहि अणगारसएहि सद्धि सपरिवुडा, पुव्वाणुपुव्वि चरमाणा, गामाणुगाम दूइज्जमाणा, सुहसुहेण विहरमाणा जेणेव रायगिहे णयरे, जेणेव गुणसीलए चेइए, जाव[2] सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणा विहरति।

उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर के अन्तेवासी आर्य सुधर्मा नामक स्थविर उच्चजाति से सम्पन्न, कुल से सम्पन्न यावत् चौदह पूर्वों के वेत्ता और चार ज्ञानो से युक्त थे। वे पाच सौ अनगारो से परिवृत होकर अनुक्रम से चलते हुए, ग्रामानुग्राम विचरते हुए और सुखे-सुखे विहार करते हुए जहाँ राजगृह नगर था और जहाँ गुणशील चैत्य था, वहाँ पधारे। यावत् सयम और तप के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

जम्बू का प्रश्न

३—परिसा णिग्गया। धम्मो कहिओ। परिसा जामेव दिस पाउब्भूया तामेव दिसि पडिगया।

तेण कालेण तेण समएण अज्जसुहम्मस्स अणगारस्स अतेवासी अज्जजंबू णाम अणगारे जाव[3] पज्जुवासमाणे एव वयासी—जइ ण भते! समणेण भगवया महावीरेण जाव सपत्तेण छट्ठस्स अगस्स पढमसुयक्खधस्स णायसुणाय[4] अयमट्ठे पण्णत्ते, दोच्चस्स ण भते! सुयक्खधस्स धम्मकहाणं समणेण जाव सपत्तेण के अट्ठे पण्णत्ते?

सुधर्मास्वामी की वन्दना करने के लिए परिषद् निकली। सुधर्मास्वामी ने धर्म का उपदेश दिया। तत्पश्चात् परिषद् वापिस चली गई।

उस काल और उस समय मे आर्य सुधर्मा अनगार के अन्तेवासी आर्य जम्बू नामक अनगार

---

१ प्र अ सूत्र ४   २ प्र अ सूत्र ४   ३ प्र अ सूत्र ६   ४ पाठान्तर—नायाणं।

यावत सुधर्मास्वामी की उपासना करते हुए बोले—भगवान् ! यदि यावत् सिद्धि को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने छठे अंग के 'ज्ञातश्रुत' नामक प्रथम श्रुतस्कंध का यह (पूर्वोक्त) अर्थ कहा है, तो भगवन् ! धर्मकथा नामक द्वितीय श्रुतस्कंध का सिद्धपद को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने क्या अर्थ कहा है ?

सुधर्मास्वामी का उत्तर

४ एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं दस वग्गा पन्नत्ता, तंजहा—

(१) चमरस्स अग्गमहिसीणं पढमे वग्गे ।
(२) बलिस्स वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो अग्गमहिसीणं बीए वग्गे ।
(३) असुरिंदवज्जियाणं दाहिणिल्लाणं भवणवासीणं इंदाणं अग्गमहिसीणं तइए वग्गे ।
(४) उत्तरिल्लाणं असुरिंदवज्जियाणं भवणवासिइंदाणं अग्गमहिसीणं चउत्थे वग्गे ।
(५) दाहिणिल्लाणं वाणमंतराणं इंदाणं अग्गमहिसीणं पंचमे वग्गे ।
(६) उत्तरिल्लाणं वाणमंतराणं इंदाणं अग्गमहिसीणं छट्ठे वग्गे ।
(७) चंदस्स अग्गमहिसीणं सत्तमे वग्गे ।
(८) सूरस्स अग्गमहिसीणं अट्ठमे वग्गे ।
(९) सक्कस्स अग्गमहिसीणं णवमे वग्गे ।
(१०) ईसाणस्स अग्गमहिसीणं दसमे वग्गे ।

श्री सुधर्मास्वामी ने उत्तर दिया—'इस प्रकार हे जम्बू ! यावत् सिद्धिप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने धर्मकथा नामक द्वितीय श्रुतस्कंध के दस वर्ग कहे हैं । वे इस प्रकार हैं—

(१) चमरेन्द्र की अग्रमहिषियों (पटरानियों) का प्रथम वर्ग ।
(२) वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि (बलीन्द्र) की अग्रमहिषियों का दूसरा वर्ग ।
(३) असुरेन्द्र को छोड़ कर शेष नौ दक्षिण दिशा के भवनपति इन्द्रों की अग्रमहिषियों का तीसरा वर्ग ।
(४) असुरेन्द्र के सिवाय नौ उत्तर दिशा के भवनपति इन्द्रों की अग्रमहिषियों का चौथा वर्ग
(५) दक्षिण दिशा के वाणव्यन्तर देवों के इन्द्रों की अग्रमहिषियों का पाँचवाँ वर्ग ।
(६) उत्तर दिशा के वाणव्यन्तर देवों के इन्द्रों की अग्रमहिषियों का छठा वर्ग ।
(७) चन्द्र की अग्रमहिषियों का सातवाँ वर्ग ।
(८) सूर्य की अग्रमहिषियों का आठवाँ वर्ग ।
(९) शक्र इन्द्र की अग्रमहिषियों का नौवाँ वर्ग और
(१०) ईशानेन्द्र की अग्रमहिषियों का दसवाँ वर्ग ।

५—जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं दस वग्गा पन्नत्ता, पढमस्स णं भंते ! वग्गस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स वग्गस्स पंच अज्झयणा पण्णत्ता, तंजहा—
(१) काली (२) राई (३) रयणी (४) विज्जू (५) मेहा ।

जइ ण भंते ! समणेण जाव सपत्तेण पढमस्स वग्गस्स पंच अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स ण भंते ! अज्झयणस्स समणेण जाव सपत्तेण के अट्ठे पण्णत्ते ?

जम्बूस्वामी पुनः प्रश्न करते हैं—भगवन् ! श्रमण भगवान् यावत् सिद्धिप्राप्त ने यदि धर्मकथा श्रुतस्कंध के दस वर्ग कहे हैं, तो भगवन् ! प्रथम वर्ग का श्रमण यावत् सिद्धिप्राप्त भगवान् ने क्या अर्थ कहा है ?

आर्य सुधर्मा उत्तर देते हैं—जम्बू ! श्रमण यावत् सिद्धिप्राप्त भगवान् ने प्रथम वर्ग के पांच अध्ययन कहे हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) काली (२) राजी (३) रजनी (४) विद्युत् और (५) मेघा।

जम्बू ने पुनः प्रश्न किया—भगवन् ! श्रमण यावत् सिद्धिप्राप्त महावीर भगवान् ने यदि प्रथम वर्ग के पांच अध्ययन कहे हैं तो हे भगवन् ! प्रथम अध्ययन का श्रमण यावत् सिद्धिप्राप्त भगवान् ने क्या अर्थ कहा है ?

६—'एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे, गुणसीलए चेइए, सेणिए राया, चेलणा देवी। सामी समोसरिए। परिसा निग्गया जाव परिसा पज्जुवासइ।'

श्री सुधर्मास्वामी उत्तर देते हैं—जम्बू ! उस काल और उस समय में राजगृह नगर था, गुणशील चैत्य था, श्रेणिक राजा था और चेलना रानी थी।

उस समय स्वामी (भगवान् महावीर) का पदार्पण हुआ। वन्दना करने के लिए परिषद् निकली, यावत् परिषद् भगवान् की पर्युपासना करने लगी।

काली देवी की कथा

७—तेणं कालेणं तेणं समएणं काली नामं देवी चमरचंचाए रायहाणीए कालवडिंसगभवणे कालंसि सीहासणंसि, चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं, चउहिं महत्तरियाहिं, सपरिवाराहिं, तिहिं परिसाहिं सत्तहिं अणिएहिं, सत्तहिं अणियाहिवईहिं, सोलसहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं, अन्नेहिं बहुएहिं य कालवडिंसयभवणवासीहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहिं य सद्धिं संपरिवुडा महयाहय जाव विहरइ।

उस काल और उस समय में, काली नामक देवी चमरचंचा राजधानी में, कालावतंसक भवन में, काल नामक सिंहासन पर आसीन थी। चार हजार सामानिक देवियों, चार महत्तरिका देवियों, परिवार सहित तीनों परिषदा, सात अनीक, सात अनीकाधिपतियों, सोलह हजार आत्मरक्षक देवों तथा अन्यान्य कालावतंसक भवन के निवासी असुरकुमार देवों और देवियों से परिवृत होकर जोर से बजने वाले वादित्र नृत्य गीत आदि से मनोरंजन करती हुई विचर रही थी।

८—इमं च णं केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं विउलेणं ओहिणा आभोएमाणी आभोएमाणी पासइ। तत्थ णं समणं भगवं महावीरं जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे रायगिहे नयरे गुणसिलए चेइए अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिया पीइमणा हरिसवसविसप्पमाणहियया सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता पाउयाओ ओमुयइ,

ओमुइत्ता तित्थगराभिमुही सत्तट्ठ पयाइ अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता वाम जाणु अचेइ, अचित्ता दाहिण जाणु धरणियलसि निहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाण धरणियलसि निवेसेइ, निवेसित्ता ईसि पच्चुण्णमइ, पच्चुण्णमइत्ता कडय तुडिय-थभियाओ भुयाओ साहरइ, साहरित्ता करयल जाव [परिग्गहिय दसनह सिरसावत्त मत्थए अजलि] कट्टु एव वयासी—

वह काली देवी इस केवल-कल्प (सम्पूर्ण) जम्बूद्वीप को अपने विपुल अवधिज्ञान से उपयोग लगाती हुई देख रही थी। उसने जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भरत क्षेत्र मे, राजगृह नगर के गुणशील उद्यान मे, यथाप्रतिरूप—साधु के लिए उचित स्थान की याचना करके, सयम और तप द्वारा आत्मा को भावित करते हुए श्रमण भगवान् महावीर को देखा। देखकर वह हर्षित और सन्तुष्ट हुई। उसका चित्त आनन्दित हुआ। मन प्रीतियुक्त हो गया। वह अपहृतहृदय होकर सिंहासन से उठी। पादपीठ से नीचे उतरी। उसने पादुका (खडाऊँ) उतार दिए। फिर तीर्थंकर भगवान् के सम्मुख सात आठ पर आगे बढी। बढकर बाये घुटने को ऊपर रखा और दाहिने घुटने को पृथ्वी पर टेक दिया। फिर मस्तक कुछ ऊँचा किया। तत्पश्चात् कडो और बाजूबदो से स्तभित भुजाओ को मिलाया। मिलाकर, दोनो हाथ जोडकर [मस्तक पर अजलि करके, आवर्त्त करके] इस प्रकार कहने लगी—

९—णमोऽत्थु ण अरहताण भगवताण जाव सपत्ताण, णमोऽत्थु ण समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव सपाविउकामस्स, वदामि ण भगवत तत्थ गय इह गए, पासउ ण मे समणे भगव महावीरे तत्थ गए इह गय, ति कट्टु वदइ, णमसइ, वदित्ता णमसित्ता सीहासणवरसि पुरत्थाभिमुहा निसण्णा।

यावत् सिद्धि को प्राप्त अरिहन्त भगवन्तो को नमस्कार हो। यावत् सिद्धि को प्राप्त करने की इच्छा वाले श्रमण भगवान् महावीर को नमस्कार हो। यहा रही हुई मैं, वहाँ स्थित भगवान् को वन्दना करती हूँ। वहाँ स्थित श्रमण भगवान् महावीर, यहा रही हुई मुझको देखे। इस प्रकार कह कर वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना—नमस्कार करके पूर्व दिशा की ओर मुख करके अपने श्रेष्ठ सिंहासन पर आसीन हो गई।

१०—तए ण तीसे कालीए देवीए इमेयारूवे जाव समुप्पज्जित्था—'सेय खलु मे समण भगव महावीर वदित्ता जाव पज्जुवासित्तए' त्ति कट्टु एव सपेहेइ, सपेहित्ता आभिओगिए देवे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'एव खलु देवाणुप्पिया! समणे भगव महावीरे एव जहा सूरियाभो तहेव आणत्तिय देइ, जाव दिव्व सुरवराभिगमणजोग्ग करेह। करित्ता जाव पच्चप्पिणह।' ते वि तहेव जाव करित्ता जाव पच्चप्पिणति, णवर जोयणसहस्सविच्छिन्न जाण, सेस तहेव। णामगोय साहेइ, तहेव नट्टविहिं उवदसेइ, जाव पडिगया।

तत्पश्चात् काली देवी को इस प्रकार का अध्यवसाय उत्पन्न हुआ—'श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना करके यावत् उनकी पर्युपासना करना मेरे लिए श्रेयस्कर है।' उसने ऐसा विचार किया। विचार करके आभियोगिक देवो को बुलाया। बुलाकर उन्हे इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो! श्रमण भगवान् महावीर राजगृह नगर के गुणशील चैत्य मे विराजमान हैं, इत्यादि जैसे सूर्याभ देव[1] ने अपने

१ विस्तार के लिए देखिए—राजप्रश्नीय सूत्र ९ साराश पहले दिया जा चुका है। देखें—पृष्ठ ३३८।

आभियोगिक देवों को आज्ञा दी थी, उसी प्रकार काली देवी ने भी आज्ञा दी यावत् 'दिव्य और श्रेष्ठ देवताओं के गमन के योग्य यान-विमान बनाकर तैयार करो, यावत् मेरी आज्ञा वापिस सौंपो।' आभियोगिक देवों ने आज्ञानुसार कार्य करके आज्ञा लौटा दी। यहाँ विशेषता यही है कि हजार योजन विस्तार वाला विमान बनाया (जब कि सूर्याभ देव के लिए लाख योजन का विमान बनाया गया था)। शेष वर्णन सूर्याभ के वर्णन के समान ही समझना चाहिए। सूर्याभ की तरह ही भगवान् के पास जाकर अपना नाम-गोत्र कहा, उसी प्रकार नाटक दिखलाया। फिर वन्दना-नमस्कार करके काली देवी वापिस चली गई।

११—भंते ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—'कालीए णं भंते ! देवीए सा दिव्वा देविड्ढी कहिं गया ?' कूडागारसाला दिट्ठंतो।

'अहो भगवन् !' इस प्रकार संबोधन करके भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना की, नमस्कार किया, वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'भगवन् ! काली देवी की वह दिव्य ऋद्धि कहाँ चली गई ?' भगवान् ने उत्तर में कूटागारशाला का दृष्टान्त दिया।[1]

काली देवी का पूर्वभव

१२—'अहो णं भंते ! काली देवी महिड्ढिया। कालीए णं भंते ! देवीए सा दिव्वा देविड्ढी किण्णा लद्धा ? किण्णा पत्ता ? किण्णा अभिसमण्णागया ?'

एवं जहा सूरियाभस्स जाव एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे आमलकप्पा णामं णयरी होत्था। वण्णओ। अंबसालवणे चेइए। जियसत्तू राया।

'अहो भगवन् ! काली देवी महती ऋद्धि वाली है। भगवन् ! काली देवी को वह दिव्य देवर्धि पूर्वभव में क्या करने से मिली ? देवभव में कैसे प्राप्त हुई ? और किस प्रकार उसके सामने आई, अर्थात् उपभोग में आने योग्य हुई ?'

यहाँ भी सूर्याभ देव के समान ही कथन समझना चाहिए। भगवान् ने कहा—'हे गौतम ! उस काल और उस समय में, इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, भारतवर्ष में, आमलकल्पा नामक नगरी थी। उसका वर्णन कहना चाहिए। उस नगरी के बाहर ईशान दिशा में आम्रशालवन नामक चैत्य (बाग) था। उस नगरी में जितशत्रु नामक राजा था।

१३—तत्थ णं आमलकप्पाए णयरीए काले णामं गाहावई होत्था, अड्ढे जाव अपरिभूए। तस्स णं कालस्स गाहावइस्स कालसिरी णामं भारिया होत्था, सुकुमालपाणिपाया जाव सुरूवा। तस्स णं कालगस्स गाहावइस्स धूया कालसिरीए भारियाए अत्तया काली णामं दारिया होत्था, वड्ढा वड्ढकुमारी जुण्णा जुण्णकुमारी पडियपुयत्थणी णिव्विण्णवरा वरपरिवज्जिया वि होत्था।

उस आमलकल्पा नगरी में काल नामक गाथापति (गृहस्थ) रहता था। वह धनाढ्य था और किसी से पराभूत होने वाला नहीं था। काल नामक गाथापति की पत्नी का नाम कालश्री था। वह सुकुमार हाथ-पैर आदि अवयवों वाली यावत् मनोहर रूप वाली थी। उस काल गाथापति की पुत्री और कालश्री भार्या की आत्मजा काली नामक बालिका थी। वह (उम्र में) बड़ी थी और बड़ी

---

1. दृष्टान्त का विवरण पहले आ चुका है, देखिए पृ. ११९।

होकर भी कुमारी (अविवाहिता) थी। वह जीर्णा (शरीर से जीर्ण होने के कारण वृद्धा) थी और जीर्ण होते हुए कुमारी थी। उसके स्तन नितंब प्रदेश तक लटक गये थे। वर (पति बनने वाले पुरुष) उससे विरक्त हो गये थे अर्थात् कोई उसे चाहता नही था, अतएव वह वर-रहित अविवाहित रह रही थी।

१४—तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए आइगरे जहा वद्धमाणसामी, णवरं णवहत्थुस्सेहे सोलसहिं समणसाहस्सीहिं अट्ठत्तीसाए अज्जियासाहस्सीहिं सद्धिं संपरिवुडे जाव अंबसालवणे समोसढे, परिसा णिग्गया जाव पज्जुवासइ।

उस काल और उस समय मे पुरुषादानीय (पुरुषो मे आदेय नामकर्म वाले) एवं धर्म की आदि करने वाले पार्श्वनाथ अरिहंत थे। वे वर्धमान स्वामी के समान थे। विशेषता केवल इतनी थी कि उनका शरीर नौ हाथ ऊँचा था तथा वे सोलह हजार साधुओं और अड़तीस हजार साध्वियों से परिवृत थे। यावत् वे पुरुषादानीय पार्श्व तीर्थंकर आम्रशालवन मे पधारे। वन्दना करने के लिए परिषद् निकली, यावत् वह परिषद् भगवान् की उपासना करने लगी।

१५—तए णं सा काली दारिया इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणी हट्ठ जाव हियया जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता करयल जाव एवं वयासी—'एवं खलु अम्मयाओ! पासे अरहा पुरिसादाणीए आइगरे जाव विहरइ, तं इच्छामि णं अम्मयाओ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया समाणी पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स पायवंदिया गमित्तए।'

'अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेहि।'

तत्पश्चात् वह काली दारिका इस कथा का अर्थ प्राप्त करके अर्थात् भगवान् के पधारने का समाचार जानकर हर्षित और संतुष्ट हृदय वाली हुई। जहाँ माता-पिता थे, वहा गई। जाकर दोनो हाथ जोड़कर इस प्रकार बोली—'हे माता-पिता! पार्श्वनाथ अरिहन्त पुरुषादानीय, धर्मतीर्थ की आदि करने वाले यावत् यहाँ विचर रहे हैं। अतएव हे माता-पिता! आपकी आज्ञा हो तो मैं पार्श्वनाथ अरिहन्त पुरुषादानीय के चरणो मे वन्दना करने जाना चाहती हूँ।'

माता-पिता ने उत्तर दिया—'देवानुप्रिये! तुझे जैसे सुख उपजे, वैसा कर। धर्म कार्य मे विलम्ब मत कर।'

१६—तए णं सा कालिया दारिया अम्मापिईहिं अब्भणुन्नाया समाणी हट्ठ जाव हियया ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउय-मंगल पायच्छित्ता सुद्धप्पवेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवरपरिहिया अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा चेडिया चक्कवाल-परिकिण्णा साओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव धम्मिए जाणप्पवरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियं जाणप्पवरं दुरूढा।

तत्पश्चात् वह काली नामक दारिका का हृदय माता-पिता की आज्ञा पाकर हर्षित हुआ। उसने स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक, मंगल और प्रायश्चित्त किया तथा साफ, सभा के योग्य, मांगलिक और श्रेष्ठ वस्त्र धारण किये। अल्प किन्तु बहुमूल्य आभूषणो से शरीर को भूषित किया। फिर दासियो के समूह से परिवृत होकर अपने गृह से निकली। निकल कर जहाँ बाहर की

आभियोगिक देवों को आज्ञा दी थी, उसी प्रकार काली देवी ने भी आज्ञा दी यावत् 'दिव्य और श्रेष्ठ देवनाओं के गमन के योग्य यान-विमान बनाकर तैयार करो, यावत् मेरी आज्ञा वापिस सौंपो।' आभियोगिक देवों ने आज्ञानुसार कार्य करके आज्ञा लौटा दी। यहाँ विशेषता यही है कि हजार योजन विस्तार वाला विमान बनाया (जब कि सूर्याभ देव के लिए लाख योजन का विमान बनाया गया था)। शेष वर्णन सूर्याभ के वर्णन के समान ही समझना चाहिए। सूर्याभ की तरह ही भगवान् के पास जाकर अपना नाम-गोत्र कहा, उसी प्रकार नाटक दिखलाया। फिर वन्दन-नमस्कार करके काली देवी वापिस चली गई।

११—भंते ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—'कालीए णं भंते ! देवीए सा दिव्वा देविड्ढी कहिं गया ?' कूडागारसाला-दिट्ठंतो।

'अहो भगवन् !' इस प्रकार संबोधन करके भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना की, नमस्कार किया, वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'भगवन् ! काली देवी की वह दिव्य ऋद्धि कहाँ चली गई ?' भगवान् ने उत्तर में कूटाकारशाला का दृष्टान्त दिया।[1]

काली देवी का पूर्वभव

१२—'अहो णं भंते ! काली देवी महिड्ढिया। कालीए णं भंते ! देवीए सा दिव्वा देविड्ढी किण्णा लद्धा ? किण्णा पत्ता ? किण्णा अभिसमण्णागया ?'

एवं जहा सूरियाभस्स जाव एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे आमलकप्पा णामं णयरी होत्था। वण्णओ। अंबसालवणे चेइए। जियसत्तू राया।

'अहो भगवन् ! काली देवी महती ऋद्धि वाली है। भगवन् ! काली देवी को वह दिव्य देवर्द्धि पूर्वभव में क्या करने से मिली ? देवभव में कैसे प्राप्त हुई ? और किस प्रकार उसके सामने आई, अर्थात् उपभोग में आने योग्य हुई ?'

यहाँ भी सूर्याभ देव के समान ही कथन समझना चाहिए। भगवान् ने कहा—'हे गौतम ! उस काल और उस समय में, इस जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, भारतवर्ष में, आमलकल्पा नामक नगरी थी। उसका वर्णन कहना चाहिए। उस नगरी के बाहर ईशान दिशा में आम्रशालवन नामक चैत्य (वन) था। उस नगरी में जितशत्रु नामक राजा था।

१३—तत्थ णं आमलकप्पाए नयरीए काले णामं गाहावई होत्था, अड्ढे जाव अपरिभूए। तस्स णं कालस्स गाहावइस्स कालसिरी णामं भारिया होत्था, सुकुमालपाणिपाया जाव सुरूवा। तस्स णं कालगस्स गाहावइस्स धूया कालसिरीए भारियाए अत्तया काली णामं दारिया होत्था, वड्डा वड्डकुमारी जुण्णा जुण्णकुमारी पडियपुयत्थणी णिव्विन्नवरा वरपरिवज्जिया वि होत्था।

उस आमलकल्पा नगरी में काल नामक गाथापति (गृहस्थ) रहता था। वह धनाढ्य था और किसी से पराभूत होने वाला नहीं था। काल नामक गाथापति की पत्नी का नाम कालश्री था। वह सुकुमार हाथ-पैर आदि अवयवों वाली यावत् मनोहर रूप वाली थी। उस काल गाथापति की पुत्री और कालश्री भार्या की आत्मजा काली नामक बालिका थी। वह (उम्र से) बड़ी थी और बड़ी

१ दृष्टान्त का विवरण पहले आ चुका है देखिये पृ ३३९।

होकर भी कुमारी (अविवाहिता) थी। वह जीर्णा (शरीर से जीर्ण होने के कारण वृद्धा) थी और जीर्ण होते हुए कुमारी थी। उसके स्तन नितंब प्रदेश तक लटक गये थे। वर (पति बनने वाले पुरुष) उससे विरक्त हो गये थे अर्थात् कोई उसे चाहता नहीं था, अतएव वह वर-रहित अविवाहित रह रही थी।

१४—तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए आइगरे जहा वद्धमाणसामी, णवरं णवहत्थुस्सेहे सोलसहिं समणसाहस्सीहिं अट्ठत्तीसाए अज्जियासाहस्सीहिं सद्धिं संपरिवुडे जाव अंबसालवणे समोसढे, परिसा णिग्गया जाव पज्जुवासइ।

उस काल और उस समय में पुरुषादानीय (पुरुषों में आदेय नामकर्म वाले) एवं धर्म की आदि करने वाले पार्श्वनाथ अरिहंत थे। वे वर्धमान स्वामी के समान थे। विशेषता केवल इतनी थी कि उनका शरीर नौ हाथ ऊँचा था तथा वे सोलह हजार साधुओं और अड़तीस हजार साध्वियों से परिवृत थे। यावत् वे पुरुषादानीय पार्श्व तीर्थंकर आम्रशालवन में पधारे। वन्दना करने के लिए परिषद् निकली, यावत् वह परिषद् भगवान् की उपासना करने लगी।

१५—तए णं सा काली दारिया इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणी हट्ठ जाव हियया जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता करयल जाव एवं वयासी—'एवं खलु अम्मयाओ! पासे अरहा पुरिसादाणीए आइगरे जाव विहरइ, तं इच्छामि णं अम्मयाओ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया समाणी पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स पायवंदिया गमित्तए।'

'अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेहि।'

तत्पश्चात् वह काली दारिका इस कथा का अर्थ प्राप्त करके अर्थात् भगवान् के पधारने का समाचार जानकर हर्षित और संतुष्ट हृदय वाली हुई। जहाँ माता-पिता थे, वहाँ गई। जाकर दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार बोली—'हे माता-पिता! पार्श्वनाथ अरिहन्त पुरुषादानीय, धर्मतीर्थ की आदि करने वाले यावत् यहाँ विचर रहे हैं। अतएव हे माता-पिता! आपकी आज्ञा हो तो मैं पार्श्वनाथ अरिहन्त पुरुषादानीय के चरणों में वन्दना करने जाना चाहती हूँ।'

माता-पिता ने उत्तर दिया—'देवानुप्रिये! तुझे जैसे सुख उपजे, वैसा कर। धर्म कार्य में विलम्ब मत कर।'

१६—तए णं सा कालिया दारिया अम्मापिईहिं अब्भणुन्नाया समाणी हट्ठ जाव हियया ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउय-मंगल पायच्छित्ता सुद्धप्पवेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवरपरिहिया अप्प-महग्घाभरणालंकियसरीरा चेडिया चक्कवाल परिकिण्णा साओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्ख-मित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव धम्मिए जाणप्पवरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियं जाणप्पवरं दुरूढा।

तत्पश्चात् वह काली नामक दारिका का हृदय माता-पिता की आज्ञा पाकर हर्षित हुआ। उसने स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक, मंगल और प्रायश्चित्त किया तथा साफ, सभा के योग्य, मांगलिक और श्रेष्ठ वस्त्र धारण किये। अल्प किन्तु बहुमूल्य आभूषणों से शरीर को भूषित किया। फिर दासियों के समूह से परिवृत होकर अपने गृह से निकली। निकल कर जहाँ बाहर की

उपस्थानशाला (सभा) थी, वहाँ आई। आकर धर्मकार्य में प्रयुक्त होने वाले श्रेष्ठ यान प
आरूढ हुई।

१७—तए णं सा काली दारिया धम्मियं जाणप्पवरं दुरूढा समाणी एवं जहा दोवई जाव
पज्जुवासइ। तए णं पासे अरहा पुरिसादाणीए कालीए दारियाए तीसे य महइमहालियाए परिसाए
धम्मं कहेइ।

तत्पश्चात् काली नामक दारिका धार्मिक श्रेष्ठ यान पर आरूढ होकर द्रौपदी के समान
भगवान् को वन्दना करके उपासना करने लगी। उस समय पुरुषादानीय तीर्थंकर पार्श्व ने काली
नामक दारिका को और उपस्थित विशाल जनसमूह को धर्म का उपदेश दिया।

१८—तए णं सा काली दारिया पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स अंतिए धम्मं सोच्चा
णिसम्म हट्ठ जाव हियया पासं अरहं पुरिसादाणीयं तिक्खुत्तो वंदइ नमसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं
वयासी—'सद्दहामि णं भंते! णिग्गंथं पावयणं जाव[1] से जहेयं तुब्भे वयह, जं णवरं देवाणुप्पिया!
अम्मापियरो आपुच्छामि, तए णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए जाव [मुंडा भवित्ता णं अगाराओ
अणगारियं] पव्वयामि।'

'अहासुहं देवाणुप्पिए?'

तत्पश्चात् उस काली नामक दारिका ने पुरुषादानीय अरिहन्त पार्श्वनाथ के पास से धर्म
सुन कर और उसे हृदयंगम करके, हर्षितहृदय होकर यावत् पुरुषादानीय अरिहन्त पार्श्वनाथ को
तीन बार वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना, नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया—
'भगवन्! मैं निर्ग्रन्थप्रवचन पर श्रद्धा करती हूँ। यावत् आप जैसा कहते हैं, वह वैसा ही है।
केवल, हे देवानुप्रिय! मैं अपने माता-पिता से पूछ लेती हूँ, उसके बाद मैं आप देवानुप्रिय के निकट
[मुंडित होकर गृहत्याग करके] प्रव्रज्या ग्रहण करूंगी।'
भगवान् ने कहा—'देवानुप्रिये! जैसे तुम्हें सुख उपजे, करो।'

१९—तए णं सा काली दारिया पासेणं अरहया पुरिसादाणीएणं एवं वुत्ता समाणी हट्ठ जाव
हियया पासं अरहं वंदइ, नमसइ, वंदित्ता नमंसित्ता तमेव धम्मियं जाणप्पवरं दुरुहइ, दुरुहित्ता पासस्स
अरहओ पुरिसादाणीयस्स अंतियाओ अंबसालवणाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव
आमलकप्पा नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता आमलकप्पं णयरिं मज्झंमज्झेणं जेणेव बाहिरिया
उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियं जाणपवरं ठवेइ, ठवित्ता धम्मियाओ
जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव अम्मापियरो तेणेव [illegible], उवागच्छित्ता करयल
जाव एवं वयासी—

तत्पश्चात् पुरुषादानीय [illegible] के द्वारा [illegible] ने पर वह काली नामक
दारिका हर्षित एवं सन्तुष्ट हृदय [illegible] पार्श्व [illegible] और नमस्कार किया।
वन्दन-नमस्कार करके वह उसी [illegible] पर [illegible] होकर [illegible] पुरुषादानीय

१ प्र [illegible] ५

अरिहन्त पार्श्व के पास से, आम्रशालवन नामक चैत्य से बाहर निकली और आमलकल्पा नगरी की ओर चली। आमलकल्पा नगरी के मध्य भाग मे होकर जहा बाहर की उपस्थानशाला थी वहा पहुँची। धार्मिक एव श्रेष्ठ यान को ठहराया और फिर उससे नीचे उतरी। फिर अपने माता-पिता के पास जाकर और दोनो हाथ जोडकर यावत् इस प्रकार बोली—

२०—'एव खलु अम्मयाओ ! मए पासस्स अरहओ अतिए धम्मे णिसते, से वि य ण धम्मे इच्छिए, पडिच्छिए, अभिरुइए, तए ण अह अम्मयाओ ! ससारभउव्विग्गा, भीया जम्मणमरणाण इच्छामि ण तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया समाणी पासस्स अरहओ अतिए मु डा भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइत्तए।'

'अहासुह देवाणुप्पिया ! मा पडिबध करेह।'

'हे माता-पिता ! मैंने पार्श्वनाथ तीर्थंकर से धम सुना है और उस धम की मैंने इच्छा की है, पुन पुन इच्छा की है। वह धम मुझे रुचा है। इस कारण हे मात-तात ! म ससार के भय से उद्विग्न हो गई हूँ, जन्म मरण से भयभीत हो गई हूँ। आपकी आज्ञा पाकर पार्श्व अरिहन्त के समीप मु डित होकर, गृहत्याग कर अनगारिता की प्रव्रज्या धारण करना चाहती हूँ।'

माता-पिता ने कहा—'देवानुप्रिये ! जैसे सुख उपजे, करो। धमकाय मे विलब न करो।'

२१—तए ण से काले गाहावई विपुल असण पाण खाइम साइम उवक्खडावेइ, उवक्खडावित्ता मित्त णाइ णियग-सयण-सबन्धि-परियण आमतेइ, आमतित्ता ततो पच्छा ण्हाए जाव विपुलेण पुप्फ-वत्थ-गध-मल्लालकारेण सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता तस्सेव मित्त णाइ णियग सयण सबन्धि परियणस्स-पुरओ कालिय दारिय सेयापीएहिं कलसेहिं ण्हावेइ, ण्हावित्ता सव्वालकारविभूसिय करेइ, करित्ता पुरिससहस्सवाहिणीय सीय दुरूहेइ, दुरूहित्ता मित्त णाइ णियग-सयण-सबन्धि परियणेण सद्धि सपरिवुडा सव्वड्ढीए, जाव रवेण आमलकप्प नर्यारं मज्झमज्झेण णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव अबसालवणे चेइए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता छत्ताईए तित्थगराइसए पासइ, पासित्ता सीय ठवेइ, ठवित्ता कालिय दारिय सीयाओ पच्चोरुहेइ। तए ण कालि दारिय अम्मापियरो पुरओ काउ जेणेव पासे अरहा पुरिसादाणीए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वदइ, नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—

तत्पश्चात् काल नामक गाथापति ने विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन तैयार करवाया। तैयार करवाकर मित्रो, ज्ञातिजनो, निजको, स्वजनो, सबन्धियो और परिजनो को आमन्त्रित किया। आमत्रण देकर स्नान किया। फिर यावत् विपुल पुष्प, वस्त्र, गध, माल्य और अलकार से उनका सत्कार सम्मान करके उन्ही ज्ञाति, मित्र, निजक, स्वजन, सवन्धी और परिजनो के सामने काली नामक दारिका को श्वेत एव पीत अर्थात् चादी और सोने के कलशो से स्नान करवाया। स्नान करवाने के पश्चात् उसे सब अलकारो से विभूषित किया। फिर पुरुषसहस्रवाहिनी शिविका पर आरूढ किया। आरूढ करके मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी और परिजनो के साथ परिवृत होकर सम्पूण ऋद्धि के साथ, यावत् वाद्यो की ध्वनि के साथ, आमलकल्पा नगरी के बीचो-बीच होकर निकले। निकल कर आम्रशालवन की ओर चले। चलकर छत्र आदि तीर्थंकर भगवान् के अतिशय देखे। अतिशयो पर दृष्टि पडते ही शिविका रोक दी गई। फिर माता पिता काली नामक दारिका को शिविका से नीचे उतार कर और फिर उसे आगे करके जिस ओर पुरुषादानीय तीर्थंकर

पार्श्व थे, उसी ओर गये। जाकर भगवान् को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करने के पश्चात् इस प्रकार कहा—

२२—'एव खलु देवाणुप्पिया! काली दारिया अम्हं धूया इट्ठा कंता जाव किमग पुण पासणयाए? एस ण देवाणुप्पिया! ससार भउव्विग्गा इच्छइ देवाणुप्पियाण अतिए मुंडा भवित्ता ण जाव पव्वइत्तए, त एय ण देवाणुप्पियाण सिस्सिणीभिक्ख दलयामो, पडिच्छंतु ण देवाणुप्पिया! सिस्सिणीभिक्ख।'

'अहासुह देवाणुप्पिया! मा पडिबध करेह।'

'देवानुप्रिय! काली नामक दारिका हमारी पुत्री है। हमे यह इष्ट है और प्रिय है, यावत् इसका दर्शन भी दुर्लभ है। देवानुप्रिय! यह संसार-भ्रमण के भय से उद्विग्न होकर आप देवानुप्रिय के निकट मुंडित होकर यावत् प्रव्रजित होने की इच्छा करती है। अतएव हम यह शिष्यनीभिक्षा देवानुप्रिय को अर्पित करते हैं। देवानुप्रिय! शिष्यनीभिक्षा स्वीकार करें।'

तब भगवान् बोले—'देवानुप्रिय! जैसे सुख उपजे, करो। धर्मकार्य मे विलम्ब न करो।'

२३—तए ण सा काली कुमारी पास अरह वदइ, नमसइ, वदित्ता नमसित्ता उत्तरपुरत्थिम दिसिभाय अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सयमेव आभरणमल्लालकार ओमुयइ, ओमुइत्ता सयमेव लोय करेइ, करित्ता जेणेव पासे अरहा पुरिसादाणीए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पास अरह तिक्खुत्तो वदइ, नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—आलित्ते ण भते! लोए, एव जहा देवाणदा,[1] जाव सयमेव पव्वावेउ।

तत्पश्चात् काली कुमारी ने पार्श्व अरिहत को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके वह उत्तरपूर्व (ईशान) दिशा के भाग मे गई। वहाँ जाकर उसने स्वय ही आभूषण, माला और अलकार उतारे और स्वय ही लोच किया। फिर जहाँ पुरुषादानीय अरहन्त पार्श्व थे वहा आई। आकर पार्श्व अरिहन्त को तीन वार वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार बोली—'भगवन्! यह लोक आदीप्त है अर्थात् जन्म-मरण आदि के सताप से जल रहा है, इत्यादि (भगवतीसूत्रवर्णित) देवानन्दा के समान जानना चाहिए। यावत् मैं चाहती हूँ कि आप स्वय ही मुझे दीक्षा प्रदान करें।

२४—तए ण पासे अरहा पुरिसादाणीए कालिं सयमेव पुप्फचूलाए अज्जाए सिस्सिणियत्ताए दलयति।

तए ण सा पुप्फचूला अज्जा कालिं कुमारिं सयमेव पव्वावेइ, जाव उवसपज्जित्ता ण विहरइ। तए ण सा काली अज्जा जाया ईरियासमिया जाव[2] गुत्तबभयारिणी। तए ण सा काली अज्जा पुप्फचूलाअज्जाए अतिए सामाइयमाइयाइ एक्कारस अगाइ अहिज्जइ, बहूणि चउत्थ जाव [छट्ठट्ठम दसमदुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं अप्पाण भावेमाणी] विहरइ।

तत्पश्चात् पुरुषादानीय अरिहत पार्श्व ने स्वयमेव काली कुमारी को, पुष्पचूला आर्या को शिष्यनी के रूप मे प्रदान किया।

तब पुष्पचूला आर्या ने काली कुमारी को स्वय ही दीक्षित किया। यावत् वह काली प्रव्रज्या अगीकार करके विचरने लगी। तत्पश्चात् वह काली आर्या ईर्यासमिति से युक्त यावत् गुप्त

१ भगवती श ९ २ अ १४ सूत्र २=

ब्रह्मचारिणी आर्या हो गई। तदनन्तर उस काली आर्या ने पुष्पचूला आर्या के निकट सामायिक से लेकर ग्यारह अंगो का अध्ययन किया तथा बहुत-से चतुथभक्त-उपवास, [षष्टभक्त, अष्टमभक्त, दशमभक्त, द्वादशमभक्त, अर्धमासखमण, मासखमण] आदि तपश्चरण करती हुई विचरने लगी।

२५—तए ण सा काली अज्जा अन्नया कयाइ सरीरबाउसिया जाया यावि होत्था, अभिक्खण अभिक्खण हत्थे धोवइ, पाए धोवइ, सीस धोवइ, मुह धोवइ, थणतराइ धोवइ, कक्खतराणि धोवइ, गुज्झतराइ धोवइ, जत्थ जत्थ वि य ण ठाण वा सेज्ज वा णिसीहिय वा चेएइ, त पुव्वामेव अब्भुक्खेत्ता पच्छा आसयइ वा सयइ वा।

तत्पश्चात् किसी समय, एक वार काली आर्या शरीरबाकुशिका (शरीर को साफ सुथरा रखने की वृत्ति वाली—शरीरासक्त) हो गई। अतएव वह बार-बार हाथ धोने लगी, पैर धोने लगी, सिर धोने लगी, मुख धोने लगी, स्तना के अन्तर धोने लगी, काखो के अन्तर-प्रदेश धोने लगी और गुह्यस्थान धोने लगी। जहाँ-जहाँ वह कायोत्सग, शय्या या स्वाध्याय करती थी, उस स्थान पर पहले जल छिडक कर बाद मे बैठती अथवा सोती थी।

२६—तए ण सा पुप्फचूला अज्जा कालिं अज्ज एव वयासी—'नो खलु कप्पइ देवाणुप्पिए! समणीण णिग्गथीण सरीरबाउसियाण होत्तए, तुम च ण देवाणुप्पिए, सरीरबाउसिया जाया अभिक्खण अभिक्खण हत्थे धोवसि जाव आसयाहि वा सयाहि वा, त तुम देवाणुप्पिए! एयस्स ठाणस्स आलोएहि जाव पायच्छित्त पडिवज्जाहि।'

तब पुष्पचूला आर्या ने उस काली आर्या से कहा—'देवानुप्रिये! श्रमणी निग्रन्थियो को शरीरबकुशा होना नही कल्पता और तुम देवानुप्रिये! शरीरबकुशा हो गई हो। बार बार हाथ धोती हो, यावत् पानी छिडककर बैठती और सोती हो। अतएव देवानुप्रिये! तुम इस पापस्थान की आलोचना करो, यावत् प्रायश्चित्त-अगीकार करो।'

२७—तए ण सा काली अज्जा पुप्फचूलाए एयमट्ठ नो आढाइ जाव तुसिणीया सचिट्ठइ।

तब काली आर्या ने पुष्पचूला आर्या की यह बात स्वीकार नही की। यावत् वह चुप बनी रही।

२८—तए ण ताओ पुप्फचूलाओ अज्जाओ कालिं अज्ज अभिक्खण अभिक्खण हीलेंति, णिंदति, खिसति, गरिहति, अवमण्णति, अभिक्खण अभिक्खण एयमट्ठ निवारेंति।

तत्पश्चात् वे पुष्पचूला आदि आर्याएँ, काली आर्या की बार-बार अवहेलना करने लगी, निन्दा करने लगी, चिढने लगी, गर्हा करने लगी, अवज्ञा करने लगी और बार-बार इस अर्थ (निषिद्ध कर्म) को रोकने लगी।

२९—तए ण तीसे कालीए अज्जाए समणीहिं णिग्गथीहिं अभिक्खण अभिक्खण हीलिज्जमाणीए जाव निवारिज्जमाणीए इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—'जया ण अह अगारवासमज्झे वसित्था, तया ण अह सयवसा, जप्पभिइ च ण अह मुडा भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइया, तप्पभिइ च ण अह परवसा जाया, त सेय खलु मम कल्ल पाउप्पभायाए रयणीए जाव

जलते पाडिक्किय उवस्सय उवसपज्जित्ताण विहरित्तए' त्ति कट्टु एव सपेहेइ, सपेहित्ता कल्ल जाव जलते पाडिएक्क उवस्सय गिण्हइ, तत्थ ण अणिवारिया अणोहट्टिया सच्छदमई अभिक्खण अभिक्खण हत्थे धोवइ, जाव आसयइ वा सयइ वा ।

निर्ग्रंथी श्रमणियो द्वारा बार-बार अवहेलना की गई यावत् रोकी गई उस काली आर्यिका के मन मे इस प्रकार का अध्यवसाय उत्पन्न हुआ—'जब मैं गृहवास मे बसती थी, तब मैं स्वाधीन थी, किन्तु जब से मैंने मुडित होकर गृहत्याग कर अनगारिता की दीक्षा अगीकार की है, तब से मैं पराधीन हो गई हूँ । अतएव कल रजनी के प्रभातयुक्त होने पर यावत् सूर्य के देदीप्यमान होने पर अलग उपाश्रय ग्रहण करके रहना ही मेरे लिए श्रेयस्कर होगा । उसने ऐसा विचार किया । विचार करके दूसरे दिन सूर्य के प्रकाशमान होने पर उसने पृथक् उपाश्रय ग्रहण कर लिया । वहाँ कोई रोकने वाला नही रहा, टकने (निषेध करने) वाला नही रहा, अतएव वह स्वच्छदमति हो गई और बार-बार हाथ-पैर आदि धोने लगी, यावत् जल छिडक छिडक कर बैठने और सोने लगी ।

३०—तए ण सा काली अज्जा पासत्था पासत्थविहारी, ओसण्णा ओसण्णविहारी, कुसीला कुसीलविहारी, अहाछदा, अहाछदविहारी, ससत्ता ससत्तविहारी, बहूणि वासाणि सामण्णपरियाग पाउणइ, पाउणित्ता अद्धमासियाए सलेहणाए अत्ताण झूसेइ, झूसित्ता तीस भत्ताइ अणसणाए छेएइ, छेदित्ता तस्स ठाणस्स अणालोइयअप्पडिक्कता कालमासे काल किच्चा चमरचचाए रायहाणीए कालवडिसए भवणे उववायसभाए देवसयणिज्जसि देवदूसतरिया अगुलस्स असखेज्जाए भागमेत्ताए ओगाहणाए कालीदेवित्ताए उववन्ना ।

तत्पश्चात् वह काली आर्या पासत्था (पार्श्वस्था—ज्ञान दर्शन चारित्र के पास रहने वाली) पासत्थविहारिणी, अवसन्ना, (धर्म-क्रिया मे आलसी) अवसन्नविहारिणी, कुशीला, कुशीलविहारिणी, यथाछदा (मनचाहा व्यवहार करने वाली), यथाछदविहारिणी, ससक्ता (ज्ञानादि की विराधना करने वाली) तथा ससक्तविहारिणी होकर, बहुत वर्षों तक श्रामण्यपर्याय (साध्वी-अवस्था का पालन करके, अर्द्धमास (एक पखवाडे) की सलेखना द्वारा आत्मा (अपने शरीर) को क्षीण करके तीस बार के भोजन को अनशन से छेद कर, उस पापकर्म की आलोचना—प्रतिक्रमण किए बिना ही, कालमास में काल करके चमरचचा राजधानी मे, कालावतसक नामक विमान मे, उपपात (देवों के उत्पन्न होने की) सभा मे, देवशय्या मे, देवदूष्य वस्त्र से अतरित होकर (देवदूष्य वस्त्र के नीचे) अगुल के असख्यातवें भाग की अवगाहना द्वारा, काली देवी के रूप मे उत्पन्न हुई ।

३१—तए ण सा काली देवी अहुणोववन्ना समाणी पचविहाए पज्जत्तीए जहा सूरियाभो जाव भासामणपज्जत्तीए ।

तत्पश्चात् काली देवी उत्पन्न होकर तत्काल (अन्तर्मुहूर्त मे) सूर्याभ देव की तरह यावत भाषापर्याप्ति और मन पर्याप्ति आदि पाँच प्रकार की पर्याप्तियों से युक्त हो गई ।

३२—तए ण सा काली देवी चउण्ह सामाणियसाहस्सीण जाव अण्णेसि च बहूण कालवडेंसगभवणवासीण असुरकुमाराण देवाण य देवीण ... जाव ... एवु गोयमा ! कालीए देवीए सा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा ... सद्धे ... ।

तत्पश्चात् वह काली देवी चार हजार सामानिक देवों तथा अन्य बहुतेरे कालावतंसक नामक भवन में निवास करने वाले असुरकुमार देवों और देवियों का अधिपतित्व करती हुई यावत् रहने लगी। इस प्रकार हे गौतम! काली देवी ने वह दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देवानुभाव प्राप्त किया है यावत् उपभोग में आने योग्य बनाया है।

३३—कालीए णं भंते! देवीए केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! अड्ढाइज्जाइं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

काली णं भंते! देवी ताओ देवलोगाओ अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छिहिइ? कहिं उववज्जिहिइ?

गोयमा! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ, जाव अंतं काहिइ।

गौतम स्वामी ने प्रश्न किया—'भगवन्! काली देवी की कितने काल की स्थिति कही गई है?'

भगवान्—'हे गौतम! अढाई पल्योपम की स्थिति कही है।'

गौतम—'भगवन्! काली देवी उस देवलोक से अनन्तर चय करके (शरीर त्याग कर) कहाँ उत्पन्न होगी?'

भगवान्—'गौतम! महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर यावत् सिद्धि प्राप्त करेगी यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेगी।'

३४—एवं खलु जंबू! समणेणं जाव संपत्तेणं पढमवग्गस्स पढमज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि ॥१४८॥

श्री सुधर्मास्वामी अध्ययन का उपसंहार करते हुए कहते हैं—हे जम्बू! यावत् सिद्धि को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा है। वही मैंने तुमसे कहा है।

३५—जइ णं भंते! समणेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं पढमस्स वग्गस्स पढमज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते बिइयस्स णं भंते! अज्झयणस्स समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते?

जम्बूस्वामी ने अपने गुरुदेव आर्य सुधर्मा से प्रश्न किया—'भगवन्! यदि यावत् सिद्धि को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने धर्मकथा के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा है तो यावत् सिद्धिप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने दूसरे अध्ययन का क्या अर्थ कहा है?'

३६—एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णगरे, गुणसीलए चेइए, सामी समोसढे, परिसा णिग्गया जाव पज्जुवासइ।

श्री सुधर्मास्वामी ने उत्तर दिया—हे जम्बू! उस काल और उस समय में राजगृह नगर था तथा गुणशील नामक उद्यान था। स्वामी (भगवान् महावीर) पधारे। वन्दन करने के लिए परिषद् निकली यावत् भगवान् की उपासना करने लगी।

३७—तेण कालेण तेण समएण राई देवी चमरचचाए रायहाणीए एव जहा काली तहेव आगया, नट्टविहिं उवदंसेत्ता पडिगया। 'भंते त्ति' भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता पुव्वभवपुच्छा।

उस काल और उस समय में राजी नामक देवी चमरचंचा राजधानी से काली देवी के समान भगवान् की सेवा में आई और नाट्यविधि दिखला कर चली गई। उस समय 'हे भगवन्!' इस प्रकार कह कर गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करके राजी देवी के पूर्वभव की पृच्छा की। (तब भगवान् ने आगे कहा जाने वाला वृत्तान्त कहा)।

३८—एवं खलु गोयमा! तेण कालेण तेण समएण आमलकप्पा णयरी, अंबसालवणे चेइए, जियसत्तू राया, राई गाहावई, राईसिरी भारिया, राई दारिया, पासस्स समोसरणं, राई दारिया जहेव काली तहेव णिक्खंता तहेव सरीरबाउसिया, तं चेव सव्वं जाव अंतं काहिइ।

हे गौतम! उस काल और उस समय में आमलकल्पा नगरी थी। आम्रशालवन नामक उद्यान था। जितशत्रु राजा था। राजी नामक गाथापति था। उसकी पत्नी का नाम राजश्री था। राजी उसकी पुत्री थी। किसी समय पार्श्व तीर्थंकर पधारे। काली की भांति राजी दारिका भी भगवान् को वन्दना करने के लिए निकली। वह भी काली की तरह दीक्षित होकर शरीरबकुश हो गई। शेष समस्त वृत्तान्त काली के समान ही समझना चाहिए, यावत् वह महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त करेगी।

३९—एवं खलु जंबू! बिइयज्झयणस्स निक्खेवओ।

इस प्रकार हे जम्बू! द्वितीय अध्ययन का निक्षेप जानना चाहिए।



तइयं अज्झयणं

[तृतीय अध्ययन]

रजनी

४०— जइ ण भंते ! तइयस्स उक्खेवओ [समणेण भगवया महावीरेण धम्मकहाण पढमस्स वग्गस्स बिइयज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, तइयस्स ण भंते ! अज्झयणस्स समणेण भगवया महावीरेण के अट्ठे पण्णत्ते ?

तीसरे अध्ययन का उत्क्षेप (उपोद्घात) इस प्रकार है—'भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने धर्मकथा के प्रथम वर्ग के द्वितीय अध्ययन का यह (पूर्वोक्त) अर्थ कहा है तो, भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर ने तीसरे अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

४१—एव खलु जबू ! तेण कालेण तेण समएण रायगिहे णयरे, गुणसीलए चेइए, एव जहेव राई तहेव रयणी वि। णवर—आमलकप्पा णयरी, रयणी (रयणे) गाहावई, रयणसिरी भारिया, रयणी दारिया, सेस तहेव जाव अंत काहिइ।

जम्बूस्वामी के प्रश्न के उत्तर मे श्री सुधर्मा ने कहा—जम्बू ! राजगृह नगर था, गुणशील चैत्य था इत्यादि जो वृत्तान्त राजी के विषय मे कहा गया है, वही सब रजनी के विषय में भी नाट्यविधि दिखलाने आदि का वृत्तान्त कहना चाहिए। विशेषता यह है—आमलकल्पा नगरी में रजनी (रयण-रत्न ?) नामक गाथापति था। उसकी पत्नी का नाम रजनीश्री था। उसकी पुत्री का भी नाम रजनी था। शेष सब वृत्तान्त पूर्ववत् समझ लेना चाहिए, यावत् वह महाविदेह क्षेत्र से मुक्ति प्राप्त करेगी।



चउत्थं अज्झयणं

[चतुर्थ अध्ययन]

विज्जू-विद्युत्

४२—एव विज्जू वि । आमलकप्पा नयरी । विज्जू गाहावाई । विज्जूसिरी भारिया । विज्जू दारिया । सेस तहेव ।

इसी प्रकार विद्युत् देवी का कथानक समझना चाहिए । विशेष यह कि आमलकल्पा नगरी थी । उसमे विद्युत नामक गाथापति निवास करता था । उसकी पत्नी विद्युत्श्री थी । विद्युन् नामक उसकी पुत्री थी । शेष समग्र कथा पूर्ववत् ।

पंचमं अज्झयणं

[पञ्चम अध्ययन]

मेहा-मेघा

४३—एव मेहा वि । आमलकप्पाए नयरीए मेहे गाहावई, मेहसिरी भारिया, मेहा दारिया, सेस तहेव ।

मेघा देवी का कथानक भी ऐसा ही जान लेना चाहिए । नामो की विशेषता यों है—आमलकल्पा नगरी थी । उसमे मेघ नामक गाथापति निवास करता था । मेघश्री उसकी भार्या थी । पुत्री का नाम मेघा था । शेप कथन पूर्ववत्, अर्थात् उसने भी आकर नाटयप्रदर्शन किया । उसके चले जाने के पश्चात् गौतमस्वामी ने उसके विषय मे जिज्ञासा की । भगवान् ने उसके पूर्वभव का वृत्तान्त बतलाया और अन्त मे कहा कि वह भी सिद्धि प्राप्त करेगी ।

बीओ वग्गो-द्वितीय वर्ग

[पढम अज्झयण]

प्रथम अध्ययन

४४—जइ ण भंते ! समणेण जाव सपत्तेण—जाव दोच्चस्स वग्गस्स उक्खेवओ।

जम्बूस्वामी ने प्रश्न किया—भगवन् ! यावत् मुक्तिप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने प्रथम वर्ग का यह अर्थ कहा है तो दूसरे वर्ग का क्या अर्थ कहा है ?

४५—एव खलु जबू ! समणेण जाव सपत्तेण दोच्चस्स वग्गस्स पच अज्झयणा पण्णत्ता, तजहा—(१) सुभा (२) निसुभा (३) रभा (४) निरभा (५) मदणा।

श्री सुधर्मास्वामी उत्तर देते हैं—जम्बू ! श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त भगवान् महावीर ने दूसरे वर्ग के पाच अध्ययन कहे हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) शुभा (२) निशुभा (३) रभा (४) निरभा और (५) मदना।

४६—जइ ण भंते ! समणेण जाव सपत्तेण धम्मकहाण दोच्चस्स वग्गस्स पच अज्झयणा पण्णत्ता, दोच्चस्स ण भंते ! वग्गस्स पढमज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

(प्रश्न) भगवन् ! यदि श्रमण यावत् सिद्धिप्राप्त भगवान् महावीर ने धर्मकथा के द्वितीय वर्ग के पाँच अध्ययन प्रज्ञप्त किए हैं तो द्वितीय वर्ग के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है ?

४७—एव खलु जबू ! तेण कालेण तेण समएण रायगिहे नयरे, गुणसीलए चेइए, सामी समोसढे, परिसा निग्गया जाव पज्जुवासइ।

(उत्तर) जम्बू ! उस काल और उस समय में राजगृह नगर था, गुणशील चैत्य था। भगवान् का पदार्पण हुआ। परिषद् (नगर से) निकली और भगवान् की उपासना करने लगी।

४८—तेण कालेण तेण समएण सुभा देवी बलिचचाए रायहाणीए सुभवडेंसए भवने सुभसि सीहासणसि विहरइ। कालीगमएण जाव नट्टविहिं उवदंसेत्ता पडिगया।

उस काल और उस समय में (भगवान् जब राजगृह में पधारे तब) शुभा नामक देवी बलिचचा राजधानी में, शुभावतसक भवन में शुभ नामक सिंहासन पर आसीन थी, इत्यादि काली देवी के अध्ययन के अनुसार समग्र वृत्तान्त कहना चाहिए। वह नाट्यविधि प्रदर्शित करके वापिस लौट गई।

४९—पुव्वभवपुच्छा। सावत्थी नयरी, कोट्ठए चेइए, जियसत्तू राया, सुभे गाहावई, सुभसिरी भारिया, सुभा दारिया, सेस जहा कालीए। णवर—अद्धुट्ठाइं पलिओवमाइं ठिई।

एव खलु निक्खेवओ अज्झयणस्स।

शुंभा देवी जब नाट्यविधि दिखला कर चली गई तो गौतम स्वामी ने उसके पूर्वभव के विषय मे पृच्छा की। भगवान् ने उत्तर दिया—श्रावस्ती नगरी थी। कोष्ठक नामक चैत्य था। जितशत्रु राजा था। श्रावस्ती मे शुंभ नाम का गाथापति था। शुंभश्री उस की पत्नी थी। शुंभा उनकी पुत्री का नाम था। शेष सब वृत्तान्त काली देवी के समान समझना चाहिए। विशेषता यह है—शुंभा देवी की साढे तीन पल्योपम की स्थिति—आयु है।

हे जम्बू! दूसरे वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ है। उसका निक्षेप कह लेना चाहिए।

२—५ अज्झयणाणि

[२-३ ४-५]

५०—एव सेसा वि चत्तारि अज्झयणा। सावत्थीए। णवर—माया पिता सरिसनामया।

शेष चार अध्ययन पूर्वोक्त प्रकार के ही हैं। इसमे नगरी का नाम श्रावस्ती कहना चाहिए और उन-उन देवियो (पूर्वभव की पुत्रियो) के समान उनके माता-पिता के नाम समझ लेने चाहिए। यथा—निशुंभा नामक पुत्री के पिता का नाम निशुंभ और माता का नाम निशुंभश्री। रंभा के पिता का नाम रंभ और माता का नाम रंभश्री। निरंभा के पिता निरंभ गाथापति और माता निरंभश्री। मदना के पिता मदन और माता मदनश्री।

पूर्वभव मे इन देवियो के ये नाम थे। इन्ही नामो से देव भव मे भी इनका उल्लेख किया गया है।

तइओ वग्गो—तृतीय वर्ग

पढम अज्झयण

प्रथम अध्ययन

५१—उक्खेवओ तइयवग्गस्स ।

एव खलु जम्बू ! समणेण भगवया महावीरेण जाव सपत्तेण तइअस्स वग्गस्स चउप्पण्ण अज्झयणा पण्णत्ता, तजहा—पढमे अज्झयणे जाव चउप्पण्णइमे अज्झयणे ।

तीसरे वर्ग का उपोद्‌घात समझ लेना चाहिए, अर्थात् जम्बूस्वामी के प्रश्न से उसकी भूमिका जान लेनी चाहिए ।

सुधर्मास्वामी ने उत्तर दिया—हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर यावत् मुक्तिप्राप्त ने तीसरे वर्ग के चौपन अध्ययन कहे हैं । वे इस प्रकार—प्रथम अध्ययन यावत् चौपनवाँ अध्ययन ।

५२—जइ ण भते ! समणेण जाव सपत्तेण धम्मकहाण तइयस्स वग्गस्स चउप्पण्ण अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स ण भते ! अज्झयणस्स समणेण जाव सपत्तेण के अट्ठे पण्णत्ते ?

(प्रश्न) भगवन् ! यदि यावत् सिद्धिप्राप्त भगवान् महावीर ने धर्मकथा के तीसरे वर्ग के चौपन अध्ययन कहे हैं तो भगवन् ! प्रथम अध्ययन का श्रमण यावत् सिद्धिप्राप्त भगवान् ने क्या अर्थ कहा है ?

५३—एव खलु जम्बू ! तेण कालेण तेण समएण रायगिहे णयरे, गुणसीलए चेइए, सामी समोसढे, परिसा णिग्गया जाव पज्जुवासइ ।

तेण कालेण तेण समएण इला[1] देवी धारणीए[2] रायहाणीए इलावतसए[3] भवणे इलसि[4] सीहासणसि, एव कालीगमएण जाव नट्टविहिं उवदसेत्ता पडिगया ।

(उत्तर) हे जम्बू ! उस काल और उस समय में राजगृह नगर था । गुणशील चैत्य था । भगवान् पधारे । परिषद् निकली और भगवान् की उपासना करने लगी ।

उस काल और उस समय इला देवी धारणी नामक राजधानी में इलावतसक भवन में, इला नामक सिंहासन पर आसीन थी । (उसने अवधिज्ञान से भगवान् का पदार्पण जाना, भगवान् की सेवा में उपस्थित हुई और) काली देवी के समान भी यावत् नाट्यविधि दिखलाकर लौट गई ।

५४—पुव्वभवपुच्छा ।

वाराणसीए णयरीए काममहावणे चेइए, इले गाहावई, इलसिरी भारिया, इला दारिया,

---

१ पाठान्तर—'अला' । २ पाठान्तर—'धरणाए' । ३ पाठान्तर—'अलाव॰' । ४ पाठान्तर—'अलसि' ।

सेस जहा कालीए। णवर—धरणस्स अग्गमहिसित्ताए उववाओ, सातिरेग अद्धपलिओवम ठिई। सेस तेहेव।

इला देवी के चले जाने पर गौतम स्वामी ने उसका पूवभव पूछा।

भगवान् ने उत्तर दिया—वाराणसी नगरी थी। उसमे काममहावन नामक चैत्य था। इल गाथापति था। उसकी इलश्री पत्नी थी। इला पुत्री थी। शेप वृत्तान्त काली देवी के समान। विशेष यह कि इला आर्या शरीर त्याग कर धरणेन्द्र की अग्रमहिषी के रूप मे उत्पन्न हुई। उसकी आयु अद्ध-पल्योपम से कुछ अधिक है। शेप वृत्तान्त पूववत्।

५५—एव खलु निक्खेवओ पढमज्झयणस्स।

यहाँ प्रथम अध्ययन का निक्षेप—उपसहार कह लेना चाहिए।

२-६ अज्झयणाणि

(२ ६ अध्ययन)

५६—एव कमा सतेरा, सोयामणी, इदा, घणा, विज्जुया वि, सव्वाओ एयाओ धरणस्स अग्गमहिसीओ।

इसी क्रम से (१) सतेरा, (२) सौदामिनी (३) इन्द्रा (४) घना और (५) विद्युता, इन पाँच देवियो के पाँच अध्ययन समझ लेने चाहिएँ। ये सब धरणेन्द्र की अगमहिषियाँ है।

विवेचन—किन्ही-किन्ही प्रतियो मे कमा (क्रमा) को पृथक् नाम माना गया है और 'घणा विज्जुया' इन दो के स्थानो पर 'घनविद्युता' एक नाम मान कर पाच की पूर्ति की गई है। एक प्रति मे 'कमा' पृथक् और 'घणा' तथा 'विज्जुआ' को भी पृथक स्वीकार किया है, किन्तु ऐसा मानने पर एक नाम अधिक हो जाता है, जो समीचीन नही है।

७-१२ अज्झयणाणि

(७-१२ अध्ययन)

५७—एव छ अज्झयणा वेणुदेवस्स वि अविसेसिया भाणियव्वा।

इसी प्रकार छह अध्ययन, विना किसी विशेपता के वेणुदेव के भी कह लेने चाहिए।

१३-५४ अज्झयणाणि

(१३ ५४ अध्ययन)

५८—एव जाव [हरिस्स अग्गिसिहस्स पुण्णस्स जलकतस्स अमियगतिस्स वेलबस्स] घोसस्स वि एए चेव छ-छ अज्झयणा।

इसी प्रकार [हरि, अग्निशिख, पूर्ण, जलकान्त, अमितगति वेलम्ब और] घोप इन्द्र की पटरानियो के भी येही छह-छह अध्ययन कह लेने चाहिएँ।

५९—एवमेते दाहिणिल्लाण इदाण चउप्पण्ण अज्झयणा भवंति । सव्वाओ वि वाणारसीए महाकामवणे चेइए ।

तइयवग्गस्स निक्खेवओ ।

इस प्रकार दक्षिण दिशा के इन्द्रों के चौपन अध्ययन होते है । ये सब वाणारसी नगरी के महाकामवन नामक चैत्य मे कहने चाहिएँ ।

यहाँ तीसरे वर्ग का निक्षेप भी कह लेना चाहिए, अर्थात् भगवान् ने तीसरे वर्ग का यह अर्थ कहा है ।

चउत्थो वग्गो—चतुर्थ वर्ग

पढम अज्झयण

प्रथम अध्ययन

रूपा

६०—चउत्थस्स उक्खेवओ ।

एव खलु जबू ! समणेण जाव सपत्तेण धम्मकहाण चउत्थस्स वग्गस्स चउप्पण्ण अज्झयणा पण्णत्ता, तजहा—पढमे अज्झयणे जाव चउप्पण्णइमे अज्झयणे ।

प्रारम्भ मे चौथे वर्ग का उपोद्घात कह लेना चाहिए, अर्थात् जम्बूस्वामी ने प्रश्न किया—भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर ने यदि तीसरे वग का यह पूर्वोक्त अर्थ कहा है तो चौथे वग का श्रमण भगवान् ने क्या अथ कहा है ?

इस प्रश्न का उत्तर सुधर्मा स्वामी देते हैं—जम्बू ! यावत् सिद्धिप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने धमकथा के चौथे वग के चौपन अध्ययन कहे हैं । वे इस प्रकार है —प्रथम अध्ययन यावत् चौपनवा अध्ययन ।

६१—पढमस्स अज्झयणस्स उक्खेवओ ।

एव खलु जबू ! तेण कालेण तेण समएण रायगिहे समोसरण जाव परिसा पज्जुवासइ ।

यहाँ प्रथम अध्ययन का उपाद्घात कह लेना चाहिए ।

सुधर्मास्वामी ने उत्तर दिया—हे जम्बू ! उस काल और उस समय मे राजगृह नगर (गुणशील चैत्य) मे भगवान् पधारे । नगर से परिषद् निकली यावत् भगवान् की पयु पासना करने लगी ।

६२—तेण कालेण तेण समएण रूया देवी, रुयाणदा[1] रायहाणी, रूयगवडिसए भवणे, रूयगसि सीहासणसि, जहा कालीए तहा, नवर पुव्वभवे चपाए पुण्णभद्दे चेइए, रूयगगाहावई, रूयगसिरी भारिया, रूया दारिया, सेस तहेव । णवर भूयाणद अग्गमहिसित्ताए उववाओ, देसूण पलिओवम ठिई ।

निक्खेवओ ।

उस काल और उस समय मे रूपा देवी, रूपानन्दा राजधानी मे, रूपकावतसक भवन मे, रूपक नामक सिंहासन पर आसीन थी । इत्यादि वृत्तान्त काली देवी के समान समझना चाहिए । विशेषता इतनी है—पूर्वभव मे चम्पा नगरी थी, पूणभद्र चैत्य था, वहा चम्पा नगरी मे रूपक नामक गाथापति था । रूपकश्री उसकी भार्या थी । रूपा उसकी पुत्री थी । शेष सब वृत्तान्त पूर्ववत् है । विशेषता यह कि

---

१ पाठान्तर—'भूयाणदा'—राजधानी का नाम 'भूतानन्दा' था ।

रूपा भूतानन्द नामक इन्द्र की अग्रमहिषी के रूप मे जन्मी। उसकी स्थिति कुछ कम एक पल्योपम की है।

यहाँ चौथे वर्ग के प्रथम अध्ययन का निक्षेप समझ लेना चाहिए, अर्थात यह कहना चाहिए कि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धिप्राप्त ने चतुर्थ वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा है।

२-६ अध्ययन

६३—एव सुरूया वि, रूयसा वि, रूयगावई वि, रूयकता वि रूयप्पभा वि।

इसी प्रकार सुरूपा भी, रूपांशा भी, रूपवती भी, रूपकान्ता भी और रूपप्रभा के विषय में भी समझ लेना चाहिए, अर्थात् इन पाच देवियो के पाच अध्ययन भी ऐसे ही जानने चाहिएँ।

७-५४ अध्ययन

६४—एयाओ चेव उत्तरिल्लाण इदाण भाणियव्वाओ जाव (वेणुदालिस्स हरिस्सहस्स अग्गिमाणवस्स विसिट्ठस्स, जलप्पभस्स अमितवाहणस्स पभजणस्स) महाघोसस्स।

निक्खेवओ चउत्थवग्गस्स।

इसी प्रकार उत्तर दिशा के इन्द्रो की छह-छह पटरानियो के छह छह अध्ययन कह लेना चाहिए, अर्थात् वेणुदाली, हरिस्सह अग्निमाणवक, विशिष्ट, जलप्रभ, अमितवाहन, प्रभजन तथा महाघोष की पटरानियो के छह-छह अध्ययन होते हैं। सब मिलकर चौपन अध्ययन हो जाते हैं।

यहाँ चौथे वर्ग का निक्षेप—उपसहार पूर्ववत् कह लेना चाहिए।



पचमो वग्गो—पचम वर्ग

प्रथम अध्ययन

कमला

६५—पचमवग्गस्स उक्खेवओ ।

एव खलु जबू ! जाव बत्तीस अज्झयणा पण्णत्ता, तजहा—

कमला कमलप्पभा चेव, उप्पला य सुदसणा ।
रूववई बहुरूवा, सुरूवा सुभगा वि य ॥ १ ॥

पुण्णा बहुपुत्तिया चेव, उत्तमा भारिया वि य ।
पउमा वसुमती चेव, कणगा कणगप्पभा ॥ २ ॥

वडेंसा केउमइ चेव, वइरसेणा रइप्पिया ।
रोहिणी नवमिया चेव, हिरी पुप्फवती ति य ॥ ३ ॥

भुयगा भुयगवई चेव, महाकच्छाऽपराइया ।
सुघोसा विमला चेव, सुस्सरा य सरस्सई ॥ ४ ॥

पचम वर्ग का उपोद्घात पूववत् कहना चाहिए ।

सुधर्मास्वामी ने उत्तर दिया—जम्बू ! पाचवें वग मे बत्तीस अध्ययन हैं। उनके नाम ये हैं—(१) कमला देवी (२) कमलप्रभा देवी (३) उत्पला (४) सुदशना (५) रूपवती (६) बहुरूपा (७) सुरूपा (८) सुभगा (९) पूर्णा (१०) बहुपुत्रिका (११) उत्तमा (१२) भारिका (१३) पद्मा (१४) वसुमती (१५) कनका (१६) कनकप्रभा (१७) अवतसा (१८) केतुमती (१९) वज्रसेना (२०) रतिप्रिया (२१) रहिणी (२२) नवमिका (२३) ह्री (२४) पुष्पवती (२५) भुजगा (२६) भुजगवती (२७) महाकच्छा (२८) अपराजिता (२९) सुघोषा (३०) विमला (३१) सुस्वरा (३२) सरस्वती ।

इन बत्तीस देवियो के वर्णन से सम्बद्ध बत्तीस अध्ययन पचम वग मे जानने चाहिएँ ।

प्रथम अध्ययन

६६—उक्खेवओ पढमज्झयणस्स ।

एव खलु जबू ! तेण कालेण तेण समएण रायगिहे समोसरण जाव परिसा पज्जुवासइ ।

प्रथम अध्ययन का उपोद्घात कहना चाहिए, यथा जम्बूस्वामी ने प्रश्न किया—भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर ने पाँचवें वर्ग के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

तब सुधर्मास्वामी ने उत्तर दिया—जम्बू ! उस काल और उस समय राजगृह नगर था। भगवान् महावीर वहाँ पधारे। यावत् परिषद् निकलकर भगवान् की पर्युपासना करने लगी।

६७—तेण कालेण तेण समएण कमला देवी कमलाए रायहाणीए कमलवडेंसए भवणे कमलंसि सीहासणंसि, सेस जहा कालीए तहेव। नवरं—पुव्वभवे नागपुरे नयरे, सहसंबवणे उज्जाणे, कमलस्स गाहावइस्स कमलसिरीए भारियाए कमला दारिया पासस्स अरहओ अंतिए निक्खंता, कालस्स पिसाय कुमारिंदस्स अग्गमहिसी, अद्धपलिओवम ठिई।

उस काल और उस समय कमला देवी कमला नामक राजधानी में, कमलावतंसक भवन में, कमल नामक सिंहासन पर आसीन थी। आगे की शेष समस्त घटना काली देवी के अध्ययन के अनुसार ही जानना चाहिए। काली देवी से विशेषता मात्र यह है—पूर्वभव में कमला देवी नागपुर नगर में थी। वहाँ सहस्राम्रवन नामक चैत्य था। कमल गाथापति था। कमलश्री उसकी पत्नी थी और कमला पुत्री थी। कमला अरहन्त पार्श्व के निकट दीक्षित हो गई। शेष वृत्तान्त पूर्ववत् जान लेना चाहिए यावत् वह काल नामक पिशाचेन्द्र की अग्रमहिषी के रूप में जन्मी। उसकी आयु यहाँ अर्ध-पल्योपम की है।

शेष अध्ययन

६८—एवं सेसा वि अज्झयणा दाहिणिल्लाण वाणमंतरिंदाण भाणियव्वाओ। सव्वाओ नागपुरे सहसंबवणे उज्जाणे माया पिया धूया सरिसनामया, ठिई अद्धपलिओवम।

इसी प्रकार शेष एकतीस अध्ययन दक्षिण दिशा के वाणव्यन्तर इन्द्रों के कह लेने चाहिएँ। कमलप्रभा आदि ३१ कन्याओं ने पूर्वभव में नागपुर में जन्म लिया था। वहाँ सहस्राम्रवन उद्यान था। सब के माता-पिता के नाम कन्याओं के नाम के समान ही हैं। देवीभव में स्थिति सबकी आधे आधे पल्योपम की कहनी चाहिए।

छट्ठो वग्गो-षष्ठ वर्ग

१-३२ अध्ययन

६९—छट्ठो वि वग्गो पचमवग्गसरिसो । णवर महाकालिदाण उत्तरिल्लाण इदाण अग्गमहिसीओ ।

पुव्वभवे सागेयनयरे, उत्तरकुरु-उज्जाणे, माया पिया धूया सरिसणामया । सेस त चेव ।

छठा वग भी पाचव वग के समान है । विशेपता इतनी ही है कि ये सब कुमारिया महाकाल इद्र आदि उत्तर दिशा के आठ इन्द्रो की वत्तीस अग्रमहिषिया हुई ।

पूवभव मे सब साकेतनगर मे उत्पन्न हुई । उत्तरकुरु नामक उद्यान उम नगर मे था । इन कुमारियो के नाम के समान ही उनके माता-पिता के नाम थे । शेष सब पूववत् ।

सत्तमो वग्गो—सप्तम वर्ग

१-४ अध्ययन

७०—सत्तमस्स उक्खेवओ ।

एव खलु जबू ! जाव चत्तारि अज्झयणा पण्णत्ता, तजहा—सूरप्पभा, आयवा, अच्चिमाली, पभकरा ।

सातवें वर्ग का उत्क्षेप कहना चाहिए—जम्बूस्वामी ने प्रश्न किया—भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने छठे वर्ग का यह अर्थ कहा तो सातवें वर्ग का क्या अर्थ कहा है ?

उत्तर मे सुधर्मास्वामी ने कहा—हे जम्बू ! भगवान् महावीर ने सप्तम वर्ग के चार अध्ययन प्रज्ञप्त किए है । उनके नाम ये हैं—(१) सूर्यप्रभा (२) आतपा (३) अर्चिमाली और (४) प्रभकरा ।

७१—पढमज्झयणस्स उक्खेवओ ।

एव खलु जबू ! तेण कालेण तेण समएण रायगिहे समोसरण जाव परिसा पज्जुवासइ ।

यहाँ प्रथम अध्ययन का उपोद्घात कहना चाहिए ।

सुधर्मास्वामी ने उत्तर दिया—जम्बू ! उस काल और उस समय राजगृह मे भगवान् पधार यावत् परिषद् उनकी उपासना करने लगी ।

७२—तेण कालेण तेण समएण सूरप्पभा देवी सूरसि विमाणसि सूरप्पभसि सीहासणसि, सेस जहा कालीए तहा, णवर पुव्वभवो अरक्खुरीए नयरीए सूरप्पभस्स गाहावइस्स सूरसिरीए भारियाए सूरप्पभा दारिया । सूरस्स अग्गमहिसी, ठिई अद्धपलिओवम पचहि वाससएहि अब्भहिय । सेस जहा कालीए । एव सेसाओ वि सव्वाओ अरक्खुरीए नयरीए ।

सत्तमो वग्गो समत्तो ।

उस काल और उस समय सूर्य (सूर) प्रभादेवी सूर्य विमान मे सूर्यप्रभ सिंहासन पर आसीन थी । शेष समग्र कथानक कालीदेवी के समान । विशेष बात इतनी कि—पूर्वभव मे अरक्खुरी नगरी मे सूर्याभ गाथापति की सूर्यश्री भार्या थी । उनकी सूर्यप्रभा नामक पुत्री थी । अन्त मे मरण के पश्चात् वह सूर्य नामक ज्योतिष्क इन्द्र की अग्रमहिषी हुई । उसकी स्थिति वहाँ पाँच सौ वर्ष अधिक आधे पल्योपम की है । शेष सब वृत्तान्त कालीदेवी के समान जानना चाहिए ।

इसी प्रकार शेष सब—तीनों देवियों का वृत्तान्त जानना चाहिए । वे भी (पूर्वभव में) अरक्खुरी नगरी मे उत्पन्न हुई थी ।

॥ सातवाँ वर्ग समाप्त ॥

अट्ठमो वग्गो-अष्टम वर्ग

१-४ अध्ययन

७३—अट्ठमस्स उक्खेवओ ।

एव खलु जबू ! जाव चत्तारि अज्झयणा पण्णत्ता, तजहा—(१) चदप्पहा (२) दोसिणाभा (३) अच्चिमाली (४) पभकरा ।

आठवें वग का उपोद्घात कह लेना चाहिए, अर्थात् जम्बूस्वामी ने सुधर्मास्वामी से प्रश्न किया कि श्रमण भगवान् महावीर ने सातवे वग का यह अर्थ प्ररूपित किया है तो आठवें वग का क्या अथ कहा है ?

सुधर्मास्वामी ने उत्तर दिया—जम्बू ! श्रमण भगवान् ने आठवें वग के चार अध्ययन प्ररूपित किए हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) चन्द्रप्रभा (२) दोसिणाभा [ज्योत्स्नाभा] (३) अर्चिमाली (४) प्रभकरा ।

७४—पढमज्झयणस्स उक्खेवओ ।

एव खलु जबू ! तेण कालेण तेण समएण रायगिहे समोसरण, जाव परिसा पज्जुवासइ ।

प्रथम अध्ययन का उपोद्घात पूववत् कह लेना चाहिए । सुधर्मास्वामी ने कहा—जम्बू ! उस काल और उस समय मे भगवान् राजगृह नगर मे पधारे यावत् परिषद उनकी पर्युपास्ति करने लगी ।

७५—तेण कालेण तेण समएण चदप्पभा देवी चदप्पभसि विमाणसि चदप्पभसि सीहासणसि, सेस जहा कालीए । णवर पुव्वभवे महुराए णयरीए चदवडेंसए उज्जाणे, चदप्पभे गाहावई, चदसिरी भारिया, चदप्पभा दारिया, चदस्स अग्गमहिसी, ठिई अद्धपलिओवम पण्णासाए वाससाहस्सेहि अब्भहिय ।

एव सेसाओ वि महुराए णयरीए, माया-पियरो वि धूया-सरिसमाणा ।

अट्ठमो वग्गो समत्तो ।

उस काल और उस समय मे चन्द्रप्रभा देवी, चन्द्रप्रभ विमान मे, चन्द्रप्रभ सिंहासन पर आसीन थी । शेष वणन काली देवी के समान ही है । विशेषता यह—पूवभव मे मथुरा नगरी की निवासिनी थी । वहाँ चन्द्रावतसक उद्यान था । वहा चन्द्रप्रभ गाथापति रहता था । चन्द्रश्री उसकी पत्नी थी । चन्द्रप्रभा उनकी पुत्री थी । वह (अगले भव मे) चन्द्र नामक ज्योतिष्क इन्द्र की अग्र-महिषी हुई । उसकी आयु पचास हजार वष अधिक अर्ध पल्योपम की है । शेष सब वणन काली देवी के समान ।

॥ आठवा वर्ग समाप्त ॥

...ओ-नौवां वर्ग

१-८ अध्ययन

७८ ... उक्खेवओ।

... पाव अट्ठ अज्झयणा पण्णत्ता, तंजहा—(१) पउमा (२) सिवा (३) सती पाम... रोहिणी (६) णवमिया (७) अचला (८) अच्छरा।

... का उपोद्घात। सुधर्मास्वामी ने उत्तर दिया—हे जम्बू! यावत् श्रमण भगवान् ...वीर ने नौवें वर्ग के आठ अध्ययन कहे हैं, वे इस प्रकार हैं—(१) पदमा (२) शिवा (३) सती (४) अंजू (५) रोहिणी (६) नवमिका (७) अचला और (८) अप्सरा।

७९—पढमज्झयणस्स उक्खेवओ।

एवं खलु जंबू! तेण कालेण तेण समएण रायगिहे समोसरणं। जाव परिसा पज्जुवासइ।

तेण कालेण तेण समएण पउमावई देवी सोहम्मे कप्पे पउमवडेंसए विमाणे सभाए सुहम्माए, पउमंसि सीहासणंसि, जहा कालीए।

एवं अट्ठ वि अज्झयणा काली-गमएणं नायव्वा। नवरं—सावत्थीए दो जणीओ, हत्थिणाउरे दो जणीओ, कंपिल्लपुरे दो जणीओ, सागेयनयरे दो जणीओ, पउमे पियरो, विजया मायराओ। सव्वाओ वि पासस्स अंतिए पव्वइयाओ, सक्कस्स अग्गमहिसीओ, ठिई सत्त पलिओवमाइं, महाविदेहे वासे अंतं काहिंति। णवमो वग्गो समत्तो।

प्रथम अध्ययन का उत्क्षेप कह लेना चाहिए।

सुधर्मास्वामी ने कहा—जम्बू! उस काल ... समय स्वामी—भगवान् ...वीर राजगृह में पधारे। यावत् जनसमूह उनकी पर्युपासना क...

उस काल और उस समय पद्मावती ... कल्प में, ... सुधर्मा सभा में, पद्म नामक सिंहासन पर आसीन थी। ... देवी के ... ।

काली देवी के ... आठों अध्य... समझ लेने ... से जो विशेषता है वह ... पूर्वभव में ... में, दो जनी ... जनी ... काम्पिल्यपुर में और ... में ... पिता ... का नाम विजया था। ... में ... । सभी ... हुई। उनकी स्थिति ... । सभी ... में ... पालन करेंगे) यावत् ... करेंगी

...

दसमो वग्गो–दसवां वर्ग

१-८ अध्ययन

७८—दसमस्स उक्खेवओ ।

एव खलु जबू ! जाव अट्ठ अज्झयणा पण्णत्ता, तजहा—

काण्हा य कण्हराई, रामा तह रामरक्खिया वसु या ।
वसुगुत्ता वसुमित्ता, वसु धरा चेव ईसाणे ॥१॥

दसवें वर्ग का उपोद्घात । सुधर्मास्वामी का उत्तर—जम्बू ! यावत् सिद्धिप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने दसवे वर्ग के आठ अध्ययन प्ररूपित किए हैं, वे इस प्रकार—(१) कृष्णा (२) कृष्णराजि (३) रामा (४) रामरक्षिता (५) वसु (६) वसुगुप्ता (७) वसुमित्रा और (८) वसु धरा । ये आठ ईशानेन्द्र की आठ अग्रमहिषियाँ हैं ।

७९—पढमज्झयणस्स उक्खेवओ ।

एव खलु जम्बू ! तेण कालेण तेण समएण रायगिहे समोसरण, जाव परिसा पज्जुवासइ ।

तेण कालेण तेण समएण कण्हा देवी ईसाणे कप्पे कण्हवडेंसए विमाणे, सभाए सुहम्माए, कण्हसि सीहासणसि, सेस जहा कालीए ।

एव अट्ठ वि अज्झयणा कालीगमएण णेयव्वा । णवर—पुव्वभवे वाणारसीए णयरीए दो जणीओ, रायगिहे णयरे दो जणीओ, सावत्थीए णयरीए दो जणीओ, कोसबीए नयरीए दो जणीओ । रामे पिया, धम्मा माया । सव्वाओ वि पासस्स अरहओ अतिए पव्वइयाओ । पुप्फचूलाए अज्जाए सिस्सिणीयत्ताए, ईसाणस्स अग्गमहिसीओ, ठिई णव पलिओवमाइ, महाविदेहे वासे सिज्झिहिंति, बुज्झिहिंति, मुच्चिहिंति, सव्वदुक्खाण अत काहिंति ।

एव खलु जबू ! निक्खेवओ दसमवग्गस्स ।

दसमो वग्गो ! समत्तो ।

प्रथम अध्ययन का उपोद्घात कहना चाहिए, अर्थात् जम्बूस्वामी ने प्रश्न किया कि—भगवन् यदि श्रमण भगवान् महावीर ने नौवे वर्ग का यह पूर्वोक्त अर्थ कहा है तो भगवान् ने दसवें वर्ग का क्या अर्थ कहा है ?

इस प्रश्न के उत्तर मे सुधर्मास्वामी ने कहा—जम्बू ! उस काल और उस समय मे स्वामी राजगृह नगर मे पधारे, यावत् परिषद् ने उपासना की ।

उस काल और उस समय कृष्णा देवी ईशान कल्प (देवलोक) मे कृष्णावतसक विमान मे सुधर्मा सभा मे, कृष्ण सिंहासन पर आसीन थी । शेष वृत्तान्त काली देवी के समान है, अर्थात् कृष्णा देवी भगवान् का राजगृह मे पदार्पण जानकर सेवा में उपस्थित हुई । काली देवी के समान नाट्य-

विधि का प्रदान किया और वन्दन तथा नमस्कार करके चली गई। तब गौतम स्वामी ने उसके पूर्व भव की पृच्छा की। भगवान् ने उसके पूर्वभव का वृत्तान्त कहा, इत्यादि।

आठों अध्ययन काली-अध्ययन सदृश ही समझ लेने चाहिएँ। इनमें जो विशेष बात है, वह इस प्रकार है—पूर्वभव में इन आठ में से दो जनी बनारस नगरी में, दो जनी राजगृह में, दो जनी श्रावस्ती में और दो जनी कौशाम्बी में उत्पन्न हुई थी। सबके पिता का नाम राम और माता का नाम धर्मा था। सभी पार्श्व तीर्थंकर के निकट दीक्षित हुई थी। वे पुष्पचूला नामक आर्या की शिष्या हुई। वर्त्तमान भव में ईशानेन्द्र की अग्रमहिषियाँ हैं। सबकी आयु नौ पल्योपम की कही गई है। सब महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होंगी और सब दुःखों का अन्त करेंगी।

यहाँ दसवें वर्ग का निक्षेप—उपसंहार कहना चाहिए, अर्थात् यों कह लेना चाहिए कि यावत् सिद्धिप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने दसवें वर्ग का यह अर्थ कहा है।

॥ दसवाँ वर्ग समाप्त ॥

अन्तिम उपसंहार

८०—एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं तित्थगरेणं सयंसंबुद्धेणं पुरिसुत्तमेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं अयमट्ठे पण्णत्ते।

धम्मकहासुयक्खंधो समत्तो दसहिं वग्गेहिं।

णायाधम्मकहाओ समत्ताओ।

हे जम्बू ! अपने युग में धर्म की आदि करने वाले, तीर्थ के संस्थापक, स्वयं बोध प्राप्त करने वाले, पुरुषोत्तम यावत् सिद्धि को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने धर्मकथा नामक द्वितीय श्रुतस्कंध का यह अर्थ कहा है।

धर्मकथा नामक द्वितीय श्रुतस्कन्ध दस वर्गों में समाप्त।

[ज्ञाताधर्मकथा समाप्त]

परिशिष्ट

☐ उवणय-गाहाओ

☐ व्यक्ति-नाम-सूची

☐ स्थल विशेष सूची

—ज्ञाताधर्मकथांग

विधि का प्रदर्शन किया और वन्दन तथा नमस्कार करके चली गई। तब गौतम स्वामी ने उसके पूर्व भव की पृच्छा की। भगवान् ने उसके पूर्वभव का वृत्तान्त कहा, इत्यादि।

आठों अध्ययन काली-अध्ययन सदृश ही समझ लेने चाहिएँ। इनमें जो विशेष बात है, वह इस प्रकार है—पूर्वभव में इन आठ में से दो जनी वनारस नगरी में, दो जनी राजगृह में, दो जनी श्रावस्ती में और दो जनी कौशाम्बी में उत्पन्न हुई थीं। सबके पिता का नाम राम और माता का नाम धर्मा था। सभी पार्श्व तीर्थंकर के निकट दीक्षित हुई थीं। वे पुष्पचूला नामक आर्या की शिष्या हुईं। वर्त्तमान भव में ईशानेन्द्र की अग्रमहिषियाँ हैं। सबकी आयु नौ पल्योपम की कही गई है। सब महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होंगी और सब दुःखों का अन्त करेंगी।

यहाँ दसवें वर्ग का निक्षेप—उपसंहार कहना चाहिए, अर्थात् यों कह लेना चाहिए कि यावत् सिद्धिप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने दसवें वर्ग का यह अर्थ कहा है।

॥ दसवाँ वर्ग समाप्त ॥

अन्तिम उपसंहार

८०—एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं तित्थगरेणं सयंसबुद्धेणं पुरिसुत्तमेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं अयमट्ठे पण्णत्ते।

धम्मकहासुयक्खंधो समत्तो दसहिं वग्गेहिं।

णायाधम्मकहाओ समत्ताओ।

हे जम्बू! अपने युग में धर्म की आदि करने वाले, तीर्थ के संस्थापक, स्वयं बोध प्राप्त करने वाले, पुरुषोत्तम यावत् सिद्धि को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने धर्मकथा नामक द्वितीय श्रुतस्कन्ध का यह अर्थ कहा है।

धर्मकथा नामक द्वितीय श्रुतस्कन्ध दस वर्गों में समाप्त।

[ज्ञाताधर्मकथा समाप्त]

परिशिष्ट

- ☐ उवणय-गाहाओ
- ☐ व्यक्ति-नाम-सूची
- ☐ स्थल विशेष सूची

—ज्ञाताधर्मकथांग

परिशिष्ट (१)

उवणय-गाहाओ

टीकाकार द्वारा प्रत्येक अध्ययन के अत मे विभिन्नसख्यक गाथाएँ उदधृत की गई हैं, जिन्हें उपनय-गाथाओ के नाम से अभिहित किया गया है। ये गाथाएँ मूल सूत्र का अश नही है, किसी स्थविर आचाय द्वारा रचित हैं। अध्ययन के मूल भाव को स्पष्ट करने वाली होने से उन्हे परिशिष्ट के रूप मे यहाँ उद्धृत किया जा रहा है।

प्रथम अध्ययन

१—महुरेहिं णिउणेहिं वयणेहिं चोययति आयरिया।
सीसे कहिंचि खलिए, जइ मेहमुणि महावीरो॥

किसी प्रसग पर शिष्य सयम से स्खलित हो जाय तो आचाय उसे मधुर तथा निपुण वचनो से सयम मे स्थिरता के लिए प्रेरित करते हैं। जैसे भगवान् महावीर ने मेघमुनि को स्थिर किया।

द्वितीय अध्ययन

२—सिवसाहणेसु आहार विरहिओ ज न वट्टए देहो।
तम्हा धण्णोव्व विजय साहू त तेण पोसेज्जा॥

मोक्ष के साधनो मे आहार के विना यह देह समथ नही हो सकता, अतएव साधु आहार से शरीर का उसी प्रकार पोषण करे, जैसे धन्य सार्थवाह ने विजय चोर का (लेशमात्र अनुराग न होने पर भी) पोषण किया।

तृतीय अध्ययन

१—जिणवर भासिय भावेसु, भावसच्चेसु भावओ मइम।
नो कुज्जा सदेह, सदेहोऽणत्थहेउ त्ति॥

२—निस्सदेहत्त पुण गुणहेउ ज तओ तय कज्ज।
एत्थ दो सेट्ठिसुया, अडयगाही उदाहरण॥

३—कत्थइ मइदुब्बल्लेण, तव्विहायरियविरहओ वा वि।
नेयगहणत्तणेण, नाणावरणोदएण य॥

४—हेऊदाहरणासभवे य, सइ सुट्ठु ज न बुज्झिज्जा।
सव्वण्णुमयमवितह, तहावि इइ चितए मइम॥

५—अणुवकयपराणुग्गह परायणा ज जिणा जगप्पवरा।
जिय राग दोस-मोहा, य णन्नहावाइणो तेण॥

१—सन्देह अनर्थ का कारण है, अतः बुद्धिमान् पुरुष वीतराग जिनेश्वर द्वारा भाषित भाव-सत्य विषयों—भावों में सन्देह न करे।

२—निस्सन्देहता—आप्तवचनों पर श्रद्धा करने योग्य है। इस विषय में मयूरी के अण्डे ग्रहण करने वाले दो श्रेष्ठिपुत्र (जिनदत्तपुत्र और सागरदत्तपुत्र) उदाहरण हैं।

३-४—बुद्धि की दुर्बलता, तज्ज्ञ आचार्य का संयोग न मिलना, ज्ञेय विषय की अतिगहनता, ज्ञानावरणीय कर्म का उदय अथवा हेतु एवं उदाहरण का अभाव होने से कोई तत्त्व ठीक तरह से समझ में न आए, तो भी सर्वज्ञ का मत (सिद्धान्त) अवितथ (असत्य नहीं) है, विवेकी पुरुष को ऐसा विचार करना चाहिए। तथा—

५—जिनेश्वर देव दूसरों से अनुपकृत होकर भी परोपकारपरायण, राग, द्वेष और मोह-अज्ञान से अतीत हैं, अतः अन्यथावादी हो ही नहीं सकते।

चतुर्थ अध्ययन

१—विसएसु इंदियाइं, संभंता राग-दोस निम्मुक्का।
पावंति निव्वुइसुहं, कुम्मुव्व मयगदहसोक्खं॥

२—अवरे उ अणत्थपरंपराउ पावंति पावकम्मवसा।
संसार-सागरगया गोमाउग्गसिय-कुम्मो व्व॥

विषयों से इन्द्रियों को रोकते हुए अर्थात् इन्द्रिय विषयों में आसक्ति न रखने वाले राग-द्वेष से रहित साधक मुक्ति का सुख प्राप्त करते हैं, जैसे कूर्म (कच्छप) ने मृतगंगातीर ह्रद में पहुँच कर सुख प्राप्त किया। इसके विपरीत, पापकर्म के वशीभूत प्राणी संसार सागर में गोते खाते हुए, शृगालों द्वारा ग्रस्त कूर्म की तरह और अनर्थ-परम्पराओं को प्राप्त करते हैं।

पंचम अध्ययन

१—सिढिलियसंजमकज्जा वि होइउं उज्जमंति जइ पच्छा।
संवेगाओ तो सेलउव्व आराहया होंति॥

संयम-आराधना में शिथिल हो जाने पर भी यदि कोई साधक बाद में संवेग उत्पन्न हो जाने से संयम में उद्यत हो जाते हैं तो वे शैलक राजर्षि के समान आराधक होते हैं।

षष्ठ अध्ययन

१—जह मिउलेवालित्तं गरुयं तुंबं अहो वयइ एवं।
आसव-कय-कम्मगुरू, जीवा वच्चंति अहरगइं॥

२—तं चेव तव्विमुक्कं जलोवरिं ठाइ जायलहुभावं।
जह तह कम्मविमुक्का लोयग्गपइट्ठिया होंति॥

१—जैसे मिट्टी के लेप से भारी होकर तुम्बा जल के तल मे चला जाता है, इसी प्रकार आस्रव द्वारा उपार्जित कर्मों से भारी होकर जीव अधोगति म जाता है।

२—जैसे वही तुम्बा मिट्टी के लेप से विमुक्त होने पर, लघु होकर जल के ऊपर स्थित होता है, वसे ही कर्म से विमुक्त जीव लोक के अग्र—ऊपरी भाग मे प्रतिष्ठित—विराजमान हो जाते हैं।

सप्तम अध्ययन

१—जह सेट्ठी तह गुरुणो, जह णाइजणो तहा समणसघो।
जह बहुया तह भव्वा, जह सालिकणा तह वयाइ॥

२—जह सा उज्झियणामा, उज्झियसाली जहत्थमभिहाणा।
पेसण गारित्तेण, असखदुक्खक्खणी जाया॥

३—तह भव्वो जो कोई, सघसमक्ख गुरुविदिण्णाइ।
पडिवज्जिउ समुज्झइ, महव्वयाइ महामोहा॥

४—सो इह चेव भवम्मि, जणाण धिक्कारभायण होइ।
परलोए उ दुहत्तो, नाणाजोणीसु सचरइ॥

५—जह वा सा भोगवती, जहत्थनामोवभुत्तसालिकणा।
पेसणविसेसकारित्तणेण पत्ता दुह चेव॥

६—तह जो महव्वयाइ उवभुजइ जीवियत्ति पालितो।
आहाराइसु सत्तो, चत्तो सिवसाहणिच्छाए॥

७—सो इत्थ जहिच्छाए, पावइ आहारमाइ लिगित्ति।
विउसाण नाइपुज्जो परलोयम्मि दुही चेव॥

८—जह वा रक्खिय बहुया, रक्खियसालीकणा जहत्थक्खा।
परिजणमण्णा जाया, भोगसुहाइ च सपत्ता॥

९—तह जो जीवो सम्म पडिवज्जिज्जा महव्वए पच।
पालेइ निरइयारे, पमायलेसपि वज्जेंतो॥

१०—सो अप्पहिएक्करई, इहलोयमि वि विऊहि पणयपओ।
एगतसुही जायइ, परम्मि मोक्ख पि पावेइ॥

११—जह रोहिणी उ सुण्हा, रोवियसाली जहत्थमभिहाणा।
वड्ढित्ता सालिकणे पत्ता सव्वस्स सामित्त॥

१२—तह जो भव्वो पाविय वयाइ पालेइ अप्पणा सम्म।
अन्नेसि वि भव्वाण देइ अणेगेसि हियहेउ॥

१३—सो इह सघपहाणो, जुगप्पहाणेत्ति लहइ ससद्द।
अप्पपरेसि कल्लाणकारओ गोयमपहुव्व॥

१४—तित्थस्स वुड्ढिकारी, अक्खेवणओ कुतित्थियाईणं।
विउसनर-सेविय-कमो, कमेण सिद्धिं पि पावेइ ॥

१—श्रेष्ठी (धन्य सार्थवाह) के स्थान पर गुरु, ज्ञातिजनों के स्थान पर श्रमणसंघ, बहुओं के स्थान पर भव्य प्राणी और शालिकणों के स्थान पर महाव्रत समझने चाहिएँ।

२—जैसे उज्झिता बहू यथार्थ नाम वाली थी और शालि के दानों को फेंक देने के कारण दास्य-कर्म करने से असह्य दुःखों को प्राप्त हुई—

३—वैसे ही जो भव्य जीव गुरु द्वारा प्रदत्त महाव्रतों को संघ के समक्ष स्वीकार करके महामोह के वशीभूत होकर त्याग देता है—

४—वह इस भव में जनता के तिरस्कार का पात्र होता है और परलोक में भी दुःख से पीड़ित होकर अनेक योनियों में भ्रमण करता है।

५—जैसे यथार्थ नाम वाली भोगवती बहू शालिकणों को खा गई, वह भी विशेष प्रकार के कार्यों-कर्म करने के कारण दुःख को ही प्राप्त हुई—

६—वैसे ही जो महाव्रतों को जीविका का साधन मानकर पालता एवं उनका उसी प्रकार से उपयोग करता है, आहारादि में आसक्त होता है और ये महाव्रत मुक्ति के साधन हैं, इस भावना से रहित होता है—

७—वह केवल साधुलिंगधारी यथेष्ट आहारादि प्राप्त करता है पर विद्वानों का पूजनीय नहीं होता। परलोक में भी दुःखी होता है।

८—जिस प्रकार यथार्थ नामवाली बहू रक्षिता ने शालिकणों की रक्षा की और पारिवारिक जनों में मान्य हुई। उसने भोग-सुखों को भी प्राप्त किया—

९—उसी प्रकार जो जीव महाव्रतों को स्वीकार करके लेश मात्र भी प्रमाद नहीं करता हुआ उनका निरतिचार पालन करता है—

१०—वह एक मात्र आत्महित में आनन्द मानने वाला इस लोक में विद्वानों द्वारा पूजित तथा एकान्त रूप से सुखी होता है। परभव में मोक्ष भी प्राप्त करता है।

११—जैसे यथार्थ नाम वाली रोहिणी नामक पुत्रवधू शालि के रोप द्वारा उनकी वृद्धि करके समस्त घर की स्वामिनी बनी—

१२—उसी प्रकार जो भव्य प्राणी महाव्रतों को प्राप्त करके स्वयं उनका सम्यक् प्रकार से पालन करता है और दूसरे भी भव्य प्राणियों को उनके हित के लिए प्रदान करता है—

१३—वह इस भव में गौतमस्वामी के समान गणप्रधान एवं युगप्रधान पदवी को प्राप्त करता है तथा अपना और दूसरों का कल्याण करने वाला होता है।

१४—वह तीर्थ का अभ्युदय करने वाला, कुतीर्थिकों का निराकरण करने वाला और विद्वानों द्वारा पूजित होकर क्रमशः सिद्धि को भी प्राप्त करता है।

अष्टम अध्ययन

१—उग्ग तव संजमवओ पगिट्ठफलसाहगस्स वि जियस्स।
धम्मविसएवि सुहुमावि, होइ माया अणत्थाय ॥

२—जह मल्लिस्स महाबलभवम्मि तित्यगरनामबधे वि।
तवविसय थेवमाया जाया जुवइत्तहेउत्ति॥

१—उग्रतप तथा सयमवान् एव उत्कृष्ट फल के साधक जीव द्वारा की गई सूक्ष्म और धर्मविषयक माया भी अनर्थ का कारण होती है, यथा—

२—मल्ली कुमारी को महाबल के भव मे तीर्थकरनामकर्म का बध होने पर भी तप के विषय मे की गई थोडी-सी माया भी युवतीत्व (स्त्रीत्व) का कारण बन गई।

नौवा अध्ययन

१—जह रयणदीवदेवी, तह एत्थ अविरई महापावा।
जह लाहत्थी वणिया, तह सुहकामा इह जीवा॥
२—जह तेहिं भीएहिं, दिट्ठो आघायमडले पुरिसो।
ससारदुक्खभीया, पासति तहेव धम्मकह॥
३—जह तेण तेसि कहिया, देवी दुक्खाण कारण घोर।
तत्तो च्चिय नित्थारो, सेलगजक्खाओ नन्नत्तो॥
४—तह धम्मकहो भव्वाण, साहए दिट्ठ-अविरइ सहावो।
सयलदुहहेउभूआ, विसया विरयति जीवाण॥
५—सत्ताण दुहत्ताण सरण चरण जिणिदपण्णत्त।
आनन्दरूव-निव्वाण-साहण तह य देसेइ॥
६—जह तेसि तरियव्वो, रुद्दसमुद्दो तहेव ससारो।
जह तेसि सगिहगमण, निव्वाणगमो तहा एत्थ॥
७—जह सेलगपिट्ठाओ, भट्ठो देवीइ मोहियमईओ।
सावय सहस्स पउरमि, सायरे पाविओ निहण॥
८—तह अविरईइ नडिओ, चरणचुओ दुक्ख-सावयाइण्णो।
निवडइ अपार ससार सायरे दारुणसरूवे॥
९—जह देवीए अक्खोहो, पत्तो सट्ठाण जीवियसुहाइ।
तह चरणट्ठिओ साहू, अक्खोहो जाइ निव्वाण॥

१—रत्नद्वीप की देवी के स्थान पर यहा महापापमय अविरति समझना चाहिए। लाभ के अभिलाषी वणिको की जगह यहा सुख की कामना करने वाले जीव समझना चाहिए।

२—जसे उन्होने (जिनरक्षित और जिनपाल नामक वणिको ने) आघात-मडल मे एक पुरुष को देखा, उसी प्रकार ससार से भयभीत जन धर्मकथा (धर्मकथा करने वाले उपदेशक) को देखते है।

३—जैसे उस पुरुष ने उन्हे बतलाया कि यह (रत्न देवी) घोर दुखो का कारण है और उससे निस्तार पाने का उपाय शैलक-यक्ष के सिवाय अन्य नही है।

४—उसी प्रकार अविरति के स्वभाव को जानने वाले धर्मोपदेशक भव्य जीवो से कहते हैं—इन्द्रियो के विषय समस्त दुखो के हेतु हैं, अत वे जीवो को उनसे विरत करते हैं।

१४—तित्थस्स वुड्ढिकारी, अक्खेवणओ कुतित्थियाईण।
विउसनर-सेविय-कमो, कमेण सिद्धि पि पावेइ॥

१—श्रेष्ठी (धन्य सार्थवाह) के स्थान पर गुरु, ज्ञातिजनो के स्थान पर श्रमणसघ, बहुओ के *स्थान पर भव्य प्राणी और शालिकणो के स्थान पर महाव्रत समझने चाहिएँ।*

२—जैसे उज्झिता बहू यथाथ नाम वाली थी और शालि के दानो को फेंक देने के कारण दास्य-कर्म करने से असख्य दुखो को प्राप्त हुई—

३—वैसे ही जो भव्य जीव गुरु द्वारा प्रदत्त महाव्रतो को सघ के समक्ष स्वीकार करके महा-मोह के वशीभूत होकर त्याग देता है—

४—वह इस भव मे जनता के तिरस्कार का पात्र होता है और परलोक मे भी दु ख से पीडित होकर अनेक योनियो मे भ्रमण करता है।

५—जैसे यथाथ नाम वाली भोगवती बहू शालिकणो को खा गई, वह भी विशेष प्रकार के दासी-कर्म करने के कारण दु ख को ही प्राप्त हुई—

६—वैसे ही जो महाव्रतो को जीविका का साधन मानकर पालता एव उनका उसी प्रकार से उपयोग करता है, आहारादि मे आसक्त होता है और ये महाव्रत मुक्ति के साधन हैं, इस भावना से रहित होता है—

७—वह केवल साधुलिंगधारी यथेष्ट आहारादि प्राप्त करता है पर विद्वानो का पूजनीय नही होता। परलोक मे भी दु खी होता है।

८—जिस प्रकार यथार्थ नामवाली बहू रक्षिता ने शालिकणो की रक्षा की और पारिवारिक जनो मे मान्य हुई। उसने भोग-सुखो को भी प्राप्त किया—

९—उसी प्रकार जो जीव महाव्रतो को स्वीकार करके लेश मात्र भी प्रमाद नही करता हुआ उनका निरतिचार पालन करता है—

१०—वह एक मात्र आत्महित मे आनन्द मानने वाला इस लोक मे विद्वानो द्वारा पूजित तथा एकान्त रूप से सुखी होता है। परभव मे मोक्ष भी प्राप्त करता है।

११—जैसे यथार्थ नाम वाली रोहिणी नामक पुत्रवधू शालि के रोप द्वारा उनकी वृद्धि करके समस्त धन की स्वामिनी बनी—

१२—उसी प्रकार जो भव्य प्राणी महाव्रतो को प्राप्त करके स्वय उनका सम्यक् प्रकार से पालन करता है और दूसरे भी भव्य प्राणियो को उनके हित के लिए प्रदान करता है—

१३—वह इस भव मे गौतमस्वामी के समान सघप्रधान एव युगप्रधान पदवी को प्राप्त करता है तथा अपना और दूसरो का कल्याण करने वाला होता है।

१४—वह तीर्थ का अभ्युदय करने वाला, कुतीर्थिको का निराकरण करने वाला और विद्वानो द्वारा पूजित होकर क्रमश सिद्धि को भी प्राप्त करता है।

अष्टम अध्ययन

१—उग्ग तव-सजमवओ पगिट्ठफलसाहगस्स वि जियस्स।
धम्मविसएवि सुहुमावि, होइ माया अणत्थाय॥

२—जह मल्लिस्स महाबलभवम्मि तित्थगरनामबधे वि।
तवविसय थेवमाया जाया जुवइत्तहेउत्ति ॥

१—उग्रतप तथा सयमवान् एव उत्कृष्ट फल के साधक जीव द्वारा की गई सूक्ष्म और धर्मविषयक माया भी अनर्थ का कारण होती है, यथा—

२—मल्ली कुमारी को महाबल के भव मे तीर्थंकरनामकर्म का बध होने पर भी तप के विषय मे की गई थोडी-सी माया भी युवतीत्व (स्त्रीत्व) का कारण बन गई।

नौवा अध्ययन

१—जह रयणदीवदेवी, तह एत्थ अविरई महापावा।
जह लाहत्थी वणिया, तह सुहकामा इह जीवा ॥
२—जह तेहिं भीएहिं, दिट्ठो आघायमडले पुरिसो।
ससारदुक्खभीया, पासति तहेव धम्मकह ॥
३—जह तेण तेसि कहिया, देवी दुक्खाण कारण घोर।
तत्तो च्चिय नित्थारो, सेलगजक्खाओ नन्नत्तो ॥
४—तह धम्मकही भव्वाण, साहए दिट्ठ-अविरइ सहावो।
सयलदुहहेउभूआ, विसया विरयति जीवाण ॥
५—सत्ताण दुहत्ताण सरण चरण जिणिदपण्णत्त।
आनन्दरूव-निव्वाण-साहण तह य देसेइ ॥
६—जह तेसि तरियव्वो, रुदसमुद्दो तहेव ससारो।
जह तेसि सगिहगमण, निव्वाणगमो तहा एत्थ ॥
७—जह सेलगपिट्ठाओ, भट्ठो देवीइ मोहियमईओ।
सावय सहस्स पउरमि, सायरे पाविओ निहण ॥
८—तह अविरईइ नडिओ, चरणचुओ दुक्ख-सावयाइण्णो।
निवडइ अपार ससार-सायरे दारुणसरूवे ॥
९—जह देवीए अक्खोहो, पत्तो सट्ठाण जीवियसुहाइ।
तह चरणट्ठिओ साहू, अक्खोहो जाइ निव्वाण ॥

१—रत्नद्वीप की देवी के स्थान पर यहा महापापमय अविरति समझना चाहिए। लाभ के अभिलाषी वणिको की जगह यहाँ सुख की कामना करने वाले जीव समझना चाहिए।

२—जैसे उन्होने (जिनरक्षित और जिनपाल नामक वणिको ने) आघात-मडल मे एक पुरुष को देखा, उसी प्रकार ससार से भयभीत जन धर्मकथा (धर्मकथा करने वाले उपदेशक) को देखते हैं।

३—जैसे उस पुरुष ने उन्हे बतलाया कि यह (रत्न देवी) घोर दुखो का कारण है और उससे निस्तार पाने का उपाय शैलक-यक्ष के सिवाय अन्य नही है।

४—उसी प्रकार अविरति के स्वभाव को जानने वाले धर्मोपदेशक भव्य जीवो से कहते हैं—इन्द्रियो के विषय समस्त दुखो के हेतु हैं, अत वे जीवो को उनसे विरत करते हैं।

५—दु खो से पीडित प्राणियो के लिए जिनेन्द्र द्वारा प्ररूपित चारित्र ही शरण है। वही आनन्दस्वरूप निर्वाण का साधन है।

६—जैसे उन वणिको को विस्तृत सागर तरना था, उसी प्रकार भव्य जीवो को विशाल ससार तरना है। जैसे उन्हे अपने घर पहुँचना था, उसी प्रकार यहा मोक्ष मे पहुँचना समझना चाहिए।

७—देवी द्वारा मोहितमति (जिनरक्षित) शैलक-यक्ष की पीठ से भ्रष्ट होकर सहस्रो हिंसक जन्तुओ से व्याप्त सागर मे निधन को प्राप्त हुआ।

८—उसी प्रकार अविरति से बाधित होकर जो जीव चारित्र से भ्रष्ट हो जाता है, वह दु ख रूपी हिंसक जन्तुओ से व्याप्त, भयकर स्वरूप वाले अपार ससार-सागर मे पडता है।

९—जैसे देवी के प्रलोभन—मोहजनक वचनो से क्षुब्ध न होने वाला (जिनपालित) अपने स्थान पर पहुँच कर जीवन और सुखो को अथवा जीवन सबन्धी सुखो को प्राप्त कर सका, उसी प्रकार चारित्र मे स्थित एव विषयो से क्षुब्ध न होने वाला साधु निर्वाण प्राप्त करता है।

दशम अध्ययन

१—जह चदो तह साहू, राहुवरोहो जहा तह पमाओ।
वण्णाई गुणगणो जह तहा खमाई समणधम्मा॥
२—पुण्णो वि पइदिण जह, हायतो सव्वहा ससी नस्से।
तह पुण्णचरित्तो वि हु, कुसीलससग्गिमाईहिं॥
३—जणियपमाओ साहू, हायतो पइदिण खमाईहिं।
जायइ नट्ठचरित्तो, तत्तो दुक्खाइ पावेइ॥
४—हीणगुणो वि हु होउ, सुहगुरुजोगाइ जणियसवेगो।
पुण्णसरुवो जायइ, विवड्ढमाणो ससहरो व्व॥

१—यहाँ चन्द्रमा के समान साधु और राहु-ग्रहण के समान प्रमाद जानना चाहिए। चन्द्रमा के वर्ण, कान्ति आदि गुणो के समान साधु के क्षमा आदि दस श्रमणधर्म जानना चाहिए।

२-३—(*पूर्णिमा के दिन*) परिपूर्ण होकर भी चन्द्रमा प्रतिदिन घटता-घटता (*अमावस्या को*) सर्वथा लुप्त हो जाता है, उसी प्रकार पूर्ण चारित्रवान् साधु भी कुशीलो के ससर्ग आदि कारणो से प्रमादयुक्त होकर प्रतिदिन क्षमा आदि गुणो से हीन होता-होता अन्त मे चारित्रहीन बन जाता है। इससे उसे दु खो की प्राप्ति होती है।

४—कोई साधु भले हीन गुण वाला हो किन्तु सद्गुरु के ससर्ग से उसमे सवेग उत्पन्न हो जाता है तो वह चन्द्रमा के समान क्रमश वृद्धि पाता हुआ पूर्णता प्राप्त कर लेता है।

ग्यारहवाँ अध्ययन

१—जह दावद्दवतरुवणमेव साहू जहेव दीविच्चा।
वाया तह समणा इयसपक्खवयणाइ दुसहाइ॥
२—जह सामुद्दयवाया तहण्णतित्थाइकडुयवयणाइ।
कुसुमाइसपया जह, सिवमग्गाराहणा तह उ॥

३—जह कुसुमाइविणासो, सिवमग्गविराहणा तहा नेया ।
जह दीववाउजोगे, बहु इड्ढी ईसि य अणिड्ढी ॥
४—तह साहम्मिय-वयणाण सहणमाराहणा भवे बहुया ।
इयराणमसहणे पुण, सिवमग्गविराहणा थोवा ॥
५—जह जलहि वाउजोगे, थेविड्ढी बहुयरा यऽणिड्ढी य ।
तह परपक्ख यखमणे, आराहणमीसि बहु इयर ॥
६—जह उभयवाउविरहे, सव्वा तरुसपया विणट्ठत्ति ।
अणिमित्तोभयमच्छरुव्वेह विराहणा तह य ॥
७—जह उभयवाउजोगे, सव्वसमिड्ढी वणस्स सजाया ।
तह उभयवयणसहणे, सिवमग्गाराहणा वुत्ता ॥
८—ता पुन्नसमणधम्माराहणचित्तो सया महासत्तो ।
सव्वेणवि कीरति, सहेज्ज सव्वपि पडिकूल ॥

१—जसे दावद्दव जाति के वृक्ष कहे गए ह, वसे यहाँ साधु समझना चाहिए । जैसे द्वीप सम्बन्धी वायु है, वैसे यहा श्रमण आदि (श्रमणी, श्रावक, श्राविका) रूप स्वपक्ष के दुस्सह वचन जानने चाहिएँ ।

२—जैसे सामुद्रिक पवन है वसे यहा अन्यतीर्थिको के कटुक वचन आदि जानना । वक्षो मे पुष्प आदि सम्पत्ति के समान यहा मोक्षमाग की आराधना समझना ।

३—पुष्प आदि समृद्धि के अभाव को यहा मोक्षमाग की विराधना जान लेना चाहिए । जैसे द्वीप सम्बन्धी वायु के सद्भाव मे अधिक समृद्धि और थोडी असमृद्धि होती है—

४—उसी प्रकार सार्धमिको के दुवचनो को सहन करने से बहुत आराधना होती है, किन्तु अन्ययूथिको के दुवचनो को सहन न करन से मोक्षमाग की किंचित् विराधना भी होती है ।

५—जैसे सामुद्रिक वायु का सयोग मिलने पर किंचित् समृद्धि और बहुतर असमृद्धि होती है, उसी प्रकार परपक्ष (अन्ययूथिको) के वचन सहन करने से थोडी आराधना होती है, (स्वयूथ्यो के वचन न सहने से) विराधना अधिक होती है ।

६—जसे दोनो— द्वपिक और सामुद्रिक प्रकार क पवन के अभाव मे समस्त तरु-सम्पदा (पत्र-पुष्प-फल आदि) का विनाश हो जाता है, वैस ही निष्कारण दोनो के प्रति मत्सरता होना यहाँ विराधना है ।

७—जैसे दोना प्रकार के पवन का योग प्राप्त होने पर वन-वृक्षसमूह को सव प्रकार की पूण समृद्धि प्राप्त होती है । उसी प्रकार दोनो पक्षो (स्वयूथिको, अन्ययूथिको) के दुर्वचनो को सहन करने से मोक्षमाग की पूर्ण आराधना कही गई है ।

८—अतएव जिसके चित्त मे पूण श्रमणधम की आराधना करने की अभिलाषा है, वह सभी प्रकार के मनुष्यो द्वारा किए जाने वाले प्रतिकूल व्यवहार, वचनप्रयोग उपसग आदि को सहन करे ।

बारहवाँ अध्ययन

१—मिच्छत्तमोहियमणा पावपसत्तावि पाणिणो विगुणा ।
फरिहोदग व गुणिणो हवंति वरगुरुपसायाओ ॥

१—जिनका मन मिथ्यात्व से मूढ बना हुआ है, जो पापो मे अतीव आसक्त ह और गुणो से शून्य हैं वे प्राणी भी श्रेष्ठ गुरु का प्रसाद पाकर गुणवान् बन जाते हैं, जैसे (सुबुद्धि अमात्य के प्रसाद से) खाई का गन्दा पानी शुद्ध, सुगधसम्पन्न और उत्तम जल बन गया।

तेरहवां अध्ययन

१—सपन्नगुणो वि जओ, सुसाहु ससग्गवज्जिओ पाय ।
पावइ गुणपरिहाणि, ददुरजीवोव्व मणियारो ।।

अथवा

२—तित्थयरवदणत्थ चलिओ भावेण पावए सग्ग ।
जह ददुरदेवेण, पत्त वेमाणियसुरत्त ।।

१—कोई भव्य जीव गुण-सम्पन्न होकर भी, कभी-कभी सुसाधु के सम्पर्क से जब रहित होता है तो गुणो की हानि को प्राप्त होता है। सुसाधु-समागम के अभाव म उसके गुणो का ह्रास हो जाता है, जैसे नन्द मणिकार का जीव (सम्यक्त्वगुण की हानि के कारण) ददु र (मडूक) के पर्याय मे उत्पन्न हुआ। अथवा इस अध्ययन का उपनय यो समझना चाहिए—

तीर्थंकर भगवान् की वन्दना के लिए रवाना हुआ प्राणी (भले भगवान के समक्ष न पहुँच पाए, मार्ग मे ही उसका निधन हो जाए, तो भी वह) भक्ति भावना के कारण स्वर्ग प्राप्त करता है। यथा-ददु र (मेढक) मात्र भावना के कारण वैमानिक देव-पर्याय को प्राप्त करने मे समर्थ हो सका।

चौदहवां अध्ययन

१—जाव न दुक्ख पत्ता, माणब्भस य पाणिणो पाय ।
ताव न धम्म गेण्हति, भावओ तेयलीसुयव्व ।।

१—प्राय —कभी-कभी ऐसा होता है कि मनुष्यों को जब तक दु ख प्राप्त नही होता और जब तक उनका मान-मदन नही होता, तब तक वे तेतलीपुत्र अमात्य का तरह भावपूर्वक—अत - करण से धर्म को ग्रहण नही करते।

पन्द्रहवां अध्ययन

१—चपा इव मणुयगई, धणो व्व भयव जिणो दएक्करसो ।
अहिछत्तानयरिसम इह निव्वाण मुणेयव्व ।।
२—घोसणया इव तित्थकरस्स सिवमग्गदेसणमहग्घ ।
चरगाइणो व्व इत्थ सिवसुहकामा जिया बहवे ।।
३—नदिफलाइ व्व इह सिवपहपडिवण्णागाण विसया उ ।
तब्भक्खणाओ मरण, जह तह विसएहि ससारो ।।
४—तव्वज्जणेण जह इट्ठपुरगमो विसयवज्जणेण तहा ।
परमाणदनिबधण सिवपुरगमण मु

१—चम्पा नगरी के समान मनुष्यगति, धन्य-सार्थवाह के समान एकान्त दयालु भगवान् तीर्थंकर और अहिछत्रा नगरी के समान निर्वाण समझना चाहिए।

२—धन्य-सार्थवाह की घोषणा के समान तीर्थंकर भगवान् की मोक्षमार्ग की अनमोल देशना और चरक आदि के समान मुक्ति-सुख की कामना करने वाले बहुतेरे प्राणी जानना चाहिए।

३—मोक्षमार्ग को अंगीकार करने वालो के लिए इन्द्रियो के विषय (विषमय) नदीफल के समान है। जैसे नदीफलो के भक्षण से मरण कहा, उसी प्रकार यहाँ इन्द्रियविषयो के सेवन से ससार-जन्म-मरण जानना चाहिए।

४—नन्दीफलो के नही सेवन करने से जैसे इष्ट पुर (अहिछत्रा नगरी) की प्राप्ति कही, उसी प्रकार विषयो के परित्याग से निर्वाण-नगर की प्राप्ति होती है, जो परमानन्द का कारण है।

सोलहवाँ अध्ययन

१—सुबहू वि तव किलेसो, नियाणदोसेण दूसिओ सतो।
न सिवाय दोवतीए, जह किल सुकुमालियाजम्मे॥

अथवा

२—अमणुन्नमभत्तीए, पत्ते दाण भवे अणत्थाय।
जह कडुयतुबदाण, नागसिरिभवमि दोवईए॥

१—तपश्चर्या का कोई कितना ही कष्ट क्यो न सहन करे किन्तु जब वह निदान के दोष से दूषित हो जाती है तो मोक्षप्रद नही होती, जैसे सुकुमालिका के भव मे द्रौपदी के जीव का तपश्चरण-क्लेश मोक्षदायक नही हुआ।

अथवा इस अध्ययन का उपनय इस प्रकार समझना चाहिए—सुपात्र को भी दिया गया आहार अगर अमनोज्ञ हो और भक्तिपूर्वक न दिया गया हो तो अनर्थ का कारण होता है, जैसे नागश्री ब्राह्मणी के भव मे द्रौपदी के जीव द्वारा दिया कटुक तुम्बे का दान।

सत्तरहवाँ अध्ययन

१—जह सो कालियदीवो अणुवमसोक्खो तहेव जइधम्मो।
जह आसा तह साहू, वणियव्वऽणुकूलकारिजणा॥

२—जह सद्दाइ अगिद्धा पत्ता नो पासबधण आसा।
तह विसएसु अगिद्धा, वज्झति न कम्मणा साहू॥

३—जह सच्छदविहारो, आसाण तह य इह वरमुणीण।
जर—मरणाइविवज्जिय—सपत्ताणद—निव्वाण॥

४—जह सद्दाइसु गिद्धा, बद्धा आसा तहेव विसयरया।
पावेंति कम्मबध, परमासुहकारण घोर॥

५—जह ते कालियदीवा णीया अन्नत्थ दुहगण पत्ता।
तह धम्मपरिब्भट्ठा, अधम्मपत्ता इह जीवा॥

६—पावेंति कम्म नरवइ वसया ससार-वाहयालीए।
आसप्पमद्दएहि य, नेरइयाईहिं दुक्खाइ॥

१—जैसे यहाँ कालिक द्वीप कहा है, वैसे अनुपम सुख प्रदान करने वाला श्रमणधर्म समझना चाहिए। अश्वों के समान साधु और वणिकों के समान अनुकूल उपसर्ग करने वाले (ललचाने वाले) लोग हैं।

२—जैसे शब्द आदि विषयों में आसक्त न होने वाले अश्व जाल में नहीं फँसे, उसी प्रकार जो साधु इन्द्रियविषयों में आसक्त नहीं होते वे साधु, कर्मों से बद्ध नहीं होते।

३—जैसे अश्वों का स्वच्छंद विहार कहा, उसी प्रकार श्रेष्ठ मुनिजनों का जरा-मरण से रहित और आनन्दमय निर्वाण समझना। तात्पर्य यह है कि शब्दादि विषयों से विरत रहने वाले अश्व जैसे स्वाधीन—इच्छानुसार विचरण करने में समर्थ हुए, वैसे ही विषयों से विरत महामुनि मुक्ति प्राप्त करने में समर्थ होते हैं।

४—इससे विपरीत शब्दादि विषयों में अनुरक्त हुए अश्व जैसे बंधन-बद्ध हुए, उसी प्रकार जो विषयों में अनुरागवान् हैं, वे प्राणी अत्यन्त दुःख के कारणभूत एवं घोर कर्मबंधन को प्राप्त करते हैं।

५—जैसे शब्दादि में आसक्त हुए अश्व अन्यत्र ले जाए गए और दुःख-समूह को प्राप्त हुए, उसी प्रकार धर्म से भ्रष्ट जीव अधर्म को प्राप्त होकर दुःखों को प्राप्त होते हैं।

६—ऐसे प्राणी कर्म रूपी राजा के वशीभूत होते हैं। वे सवारी जैसे सांसारिक दुःखों के, अश्वमर्दकों द्वारा होने वाली पीडा के समान (परभव में) नारकों द्वारा दिये जाने वाले कष्टों के पात्र बनते हैं।

अठारहवाँ अध्ययन

१—जह सो चिलाइपुत्तो, सुसुमगिद्धो अकज्जपडिबद्धो।
धणपारद्धो पत्तो, महाडविं वसणसय-कलिअं॥
२—तह जीवो विसयसुहे, लुद्धो काऊण पावकिरियाओ।
कम्मवसेण पावइ, भवाडवीए महादुक्खं॥
३—धणसेट्ठी विव गुरुणो, पुत्ता इव साहवो भवो अडवी।
सुय मासमिवाहारो, रायगिहं इह सिवं नेयं॥
४—जह अडवि नयर नित्थरण पावणत्थं तएहिं सुयमंसं।
भत्तं तहेह साहू, गुरुण आणाए आहारं॥
५—भवलंघण सिवपावण हेउं भुंजंति न उण गेहीए।
वण्ण-बल रूवहेउं, च भावियप्पा महासत्ता॥

१—जैसे चिलातीपुत्र सुसुमा पर आसक्त होकर कुकर्म करने पर उतारू हो गया और धन्य श्रेष्ठी के पीछा करने पर सैकड़ों संकटों से व्याप्त महा-अटवी को प्राप्त हुआ—

२—उसी प्रकार जीव विषय-सुखों में लुब्ध होकर पापक्रियाएँ करता है। पापक्रियाएँ करके कर्म के वशीभूत होकर इस संसार रूपी अटवी में घोर दुःख पाता है।

३—यहाँ धन्य श्रेष्ठी के समान गुरु हैं, उसके पुत्रों के समान साधु हैं और अटवी के समान संसार है। सुता (पुत्री) के मांस के समान आहार है और राजगृह के समान मोक्ष है।

४—जैसे उन्होंने अटवी पार करने और नगर तक पहुँचने के उद्देश्य से ही सुता के मांस भक्षण किया, उसी प्रकार साधु, गुरु की आज्ञा से आहार करते है।

५—वे भवितात्मा एव महासत्त्वशाली मुनि आहार करते हैं एक मात्र ससार को पार क और मोक्ष प्राप्त करने के ही उद्देश्य से। आसक्ति से अथवा शरीर के वर्ण, बल या रूप के लिए न

उन्नीसवाँ अध्ययन

१—वाससहस्स पि जई, काऊण सजम सुविउल पि।
अते किलिट्ठभावो, न विसुज्झइ कडरीयव्व॥
२—अप्पेण वि कालेण, केइ जहा गहियसीलसामण्णा।
साहिति निययकज्ज, पु डरीयमहारिसि व्व जहा॥

१—कोई हजार वर्ष तक अत्यन्त विपुल-उच्चकोटि के सयम का पालन करे किन्तु अन्त उसकी भावना सक्लेशयुक्त—मलीन हो जाए तो वह कडरीक के समान सिद्धि प्राप्त नही कर सक

२—इसके विपरीत, कोई शील एव श्रामण्य—साधुधर्म को अगीकार करके अल्प का भी महर्षि पु डरीक के समान अपने प्रयोजन को—शुद्ध आत्मस्वरूप की प्राप्ति के लक्ष्य को प्राप्त लेते हैं।

व्यक्ति-नाम सूची

स्थल-विशेषसूची

(क) नगर-नगरी

(ख) पर्वत

(ग) जलाशय

(घ) उद्यान वन

(ङ) द्वीप देश क्षेत्र

(च) भवन गृह विमान

(छ) प्रकीर्णक स्थल

अर्थसहयोगी सदस्यो की शुभ नामावली

महास्तम्भ

१ श्री सेठ मोहनमलजी चोरडिया, मद्रास
२ श्री गुलावचन्दजी मागीलालजी सुराणा, सिकन्दराबाद
३ श्री पुखराजजी शिशोदिया, ब्यावर
४ श्री सायरमलजी जेठमलजी चोरडिया, बेंगलोर
५ श्री प्रेमराजजी भवरलालजी श्रीश्रीमाल, दुर्ग
६ श्री एस किशनचन्दजी चोरडिया, मद्रास
७ श्री कवरलालजी बैताला, गोहाटी
८ श्री सेठ खीवराजजी चोरडिया, मद्रास
९ श्री गुमानमलजी चोरडिया, मद्रास
१० श्री एस बादलचन्दजी चोरडिया, मद्रास
११ श्री जे दुलीचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१२ श्री एस रतनचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१३ श्री जे अन्नराजजी चोरडिया, मद्रास
१४ श्री एस सायरचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१५ श्री आर शान्तिलालजी उत्तमचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१६ श्री सिरेमलजी हीराचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१७ श्री जे हुक्मीचन्दजी चोरडिया, मद्रास

स्तम्भ सदस्य

१ श्री अगरचन्दजी फतेचन्दजी पारख, जोधपुर
२ श्री जसराजजी गणेशमलजी सचेती, जोधपुर
३ श्री तिलोकचदजी, सागरमलजी सचेती, मद्रास
४ श्री पूसालालजी किस्तूरचदजी सुराणा, कटगी
५ श्री आर प्रसन्नचन्दजी चोरडिया, मद्रास
६ श्री दीपचन्दजी चोरडिया, मद्रास
७ श्री मूलचन्दजी चोरडिया, कटगी
८ श्री वर्द्धमान इण्डस्ट्रीज, कानपुर
९ श्री मागीलालजी मिश्रीलालजी सचेती, दुर्ग

सरक्षक

१ श्री बिरदीचदजी प्रकाशचदजी तलेसरा, पाली
२ श्री ज्ञानराजजी केवलचन्दजी मूथा पाली
३ श्री प्रेमराजजी जतनराजजी मेहता मेडता सिटी
४ श्री श० जडावमलजी माणकचन्दजी बेताला, बागलकोट
५ श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपडा, ब्यावर
६ श्री मोहनलालजी नेमीचन्दजी ललवाणी, चागाटोला
७ श्री दीपचदजी चन्दनमलजी चोरडिया, मद्रास
८ श्री पन्नालालजी भागचन्दजी बोथरा चागाटोला
९ श्रीमती सिरेकुवर बाई धर्मपत्नी स्व श्री सुगनचन्दजी झामड, मदुरान्तकम
१० श्री बस्तीमलजी मोहनलालजी बोहरा (K G F) जाडन
११ श्री थानचन्दजी मेहता, जोधपुर
१२ श्री भैरुदानजी लाभचन्दजी सुराणा, नागौर
१३ श्री खूबचन्दजी गादिया, ब्यावर
१४ श्री मिश्रीलालजी धनराजजी विनायकिया ब्यावर
१५ श्री इन्द्रचन्दजी बैद, राजनादगांव
१६ श्री रावतमलजी भीकमचन्दजी पगारिया, बालाघाट
१७ श्री गणेशमलजी धर्मीचन्दजी काकरिया, टगला
१८ श्री सुगनचन्दजी बोकडिया, इन्दौर
१९ श्री हरकचन्दजी सागरमलजी बेताला, इन्दौर
२० श्री रघुनाथमलजी लिखमीचन्दजी लोढा, चागाटोला
२१ श्री सिद्धकरणजी शिखरचन्दजी बैद, चागाटोला

श्री सागरमलजी नोरतमलजी पीचा, मद्रास
श्री मोहनराजजी मुक्नचन्दजी बालिया, अहमदाबाद
श्री केशरीमलजी जवरीलालजी तलेसरा, पाली
श्री रतनचन्दजी उत्तमचन्दजी मोदी, ब्यावर
श्री धर्मीचन्दजी भागचन्दजी बोहरा, झूठा
श्री छोगमलजी हेमराजजी लोढ़ा, डोंडीलोहारा
श्री गुणचदजी दलीचदजी कटारिया, बेल्लारी
श्री मूलचन्दजी सुजानमलजी सचेती, जोधपुर
श्री सा० अमरचन्दजी बोथरा, मद्रास
श्री भवरलालजी मूलचदजी सुराणा, मद्रास
श्री बादलचदजी जुगराजजी मेहता, इन्दौर
श्री लालचदजी मोहनलालजी कोठारी, गोठन
श्री हीरालालजी पन्नालालजी चोपडा, अजमेर
श्री मोहनलालजी पारसमलजी पगारिया, बेंगलोर
श्री भवरीमलजी चोरडिया, मद्रास
श्री भवरलालजी गोठी, मद्रास
श्री जालमचदजी रिखबचदजी बाफना, आगरा
श्री घेवरचदजी पुखराजजी भुरट, गोहाटी
श्री जवरचन्दजी गेलडा, मद्रास
श्री जडावमलजी सुगनचन्दजी, मद्रास
श्री पुखराजजी विजयराजजी, मद्रास
श्री चेनमलजी सुराणा ट्रस्ट, मद्रास
श्री लूणकरणजी रिखबचदजी लोढा, मद्रास
श्री सूरजमलजी सज्जनराजजी मेहता, कोप्पल

सहयोगी सदस्य

श्री देवकरणजी श्रीचन्दजी डोसी, मेडतासिटी
श्रीमती छगनीबाई विनायकिया, ब्यावर
श्री पूनमचन्दजी नाहटा, जोधपुर
श्री भवरलालजी विजयराजजी काकरिया, विल्लीपुरम्
श्री भवरलालजी चोपडा, ब्यावर
श्री विजयराजजी रतनलालजी चतर, ब्यावर
श्री बी. गजराजजी बोकडिया, सेलम

८ श्री फूलचन्दजी गौतमचन्दजी कांठेड, पाली
९ श्री के. पुखराजजी बाफणा, मद्रास
१० श्री रूपराजजी जोधराजजी मूथा, दिल्ली
११ श्री मोहनलालजी मगलचदजी पगारिया, रायपुर
१२ श्री नयमलजी मोहनलालजी लूणिया, चण्डावल
१३ श्री भवरलालजी गौतमचन्दजी पगारिया, कुशालपुरा
१४ श्री उत्तमचदजी मागीलालजी, जोधपुर
१५ श्री मूलचन्दजी पारख, जोधपुर
१६ श्री सुमेरमलजी मेडतिया, जोधपुर
१७ श्री गणेशमलजी नेमीचन्दजी टांटिया, जोधपुर
१८ श्री उदयराजजी पुखराजजी सचेती, जोधपुर
१९ श्री बादरमलजी पुखराजजी बंट, कानपुर
२० श्रीमती सुन्दरबाई गोठी W/o श्री ताराचदजी गोठी, जोधपुर
२१ श्री रायचन्दजी मोहनलालजी, जोधपुर
२२ श्री घेवरचन्दजी रूपराजजी, जोधपुर
२३ श्री भवरलालजी माणकचदजी सुराणा, मद्रास
२४ श्री जवरीलालजी अमरचन्दजी कोठारी, ब्यावर
२५ श्री माणकचन्दजी किशनलालजी, मेडतासिटी
२६ श्री मोहनलालजी गुलाबचन्दजी चतर, ब्यावर
२७ श्री जसराजजी जवरीलालजी धारीवाल, जोधपुर
२८ श्री मोहनलालजी चम्पालालजी गोठी, जोधपुर
२९ श्री नेमीचदजी डाकलिया मेहता, जोधपुर
३० श्री ताराचदजी केवलचदजी कर्णावट, जोधपुर
३१ श्री आसूमल एण्ड क०, जोधपुर
३२ श्री पुखराजजी लोढा, जोधपुर
३३ श्रीमती सुगनीबाई W/o श्री मिश्रीलालजी साड, जोधपुर
३४ श्री बच्छराजजी सुराणा, जोधपुर
३५ श्री हरकचन्दजी मेहता, जोधपुर
३६ श्री देवराजजी लाभचदजी मेडतिया, जोधपुर
३७ श्री कनकराजजी मदनराजजी गोलिया, जोधपुर
३८ श्री घेवरचन्दजी
३९ श्री मांगीलालजी

४० श्री सरदारमलजी सुराणा, भिलाई
४१ श्री ओकचदजी हेमराजजी सोनी, दुग
४२ श्री सूरजकरणजी सुराणा, मद्रास
४३ श्री घीसूलालजी लालचदजी पारख, दुग
४४ श्री पुखराजजी बोहरा, (जन ट्रान्सपोर्ट क) जोधपुर
४५ श्री चम्पालालजी सकलेचा, जालना
४६ श्री प्रेमराजजी मीठालालजी कामदार, बगलोर
४७ श्री भवरलालजी मूथा एण्ड स स, जयपुर
४८ श्री लालचदजी मोतीलालजी गादिया, बैंगलोर
४९ श्री भवरलालजी नवरत्नमलजी साखला, मेटटूपालियम
५० श्री पुखराजजी छल्लाणी, करणगुल्ली
५१ श्री आसकरणजी जसराजजी पारख, दुग
५२ श्री गणेशमलजी हेमराजजी सोनी, भिलाई
५३ श्री अमृतराजजी जसवन्तराजजी मेहता, मेडतासिटी
५४ श्री घेवरचदजी किशोरमलजी पारख, जोधपुर
५५ श्री मागीलालजी रेखचदजी पारख, जोधपुर
५६ श्री मुन्नीलालजी मूलचदजी गुलेच्छा, जोधपुर
५७ श्री रतनलालजी लखपतराजजी, जोधपुर
५८ श्री जीवराजजी पारसमलजी कोठारी, मेडता सिटी
५९ श्री भवरलालजी रिखवचदजी नाहटा, नागौर
६० श्री मागीलालजी प्रकाशचन्दजी रूणवाल, मैसूर
६१ श्री पुखराजजी बोहरा, पीपलिया कलां
६२ श्री हरकचदजी जुगराजजी बाफना, बेंगलोर
६३ श्री चन्दनमलजी प्रेमचदजी मोदी, भिलाई
६४ श्री भीवराजजी बाघमार, कुचेरा
६५ श्री तिलोकचदजी प्रेमप्रकाशजी, अजमेर
६६ श्री विजयलालजी प्रेमचदजी गुलेच्छा, राजनादगाँव
६७ श्री रावतमलजी छाजेड, भिलाई
६८ श्री भवरलालजी डूगरमलजी काकरिया, भिलाई
६९ श्री हीरालालजी हस्तीमलजी देशलहरा, भिलाई
७० श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावकसघ, दल्ली-राजहरा
७१ श्री चम्पालालजी बुद्धराजजी बाफणा, ब्यावर
७२ श्री गगारामजी इन्द्रचदजी बोहरा, कुचेरा
७३ श्री फतेहराजजी नेमीचदजी कर्णावट, कलकत्ता
७४ श्री बालचदजी थानचन्दजी भुरट, कलकत्ता
७५ श्री सम्पतराजजी कटारिया, जोधपुर
७६ श्री जवरीलालजी शांतिलालजी सुराणा, बोलारम
७७ श्री कानमलजी कोठारी, दादिया
७८ श्री पन्नालालजी मोतीलालजी सुराणा, पाली
७९ श्री माणकचदजी रतनलालजी मुणोत, टगला
८० श्री चिम्मनसिंहजी मोहनसिंहजी लोढा, ब्यावर
८१ श्री रिद्धकरणजी रावतमलजी भुरट, गोहाटी
८२ श्री पारसमलजी महावीरचदजी बाफना, गोठन
८३ श्री फकीरचदजी कमलचदजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
८४ श्री मांगीलालजी मदनलालजी चोरडिया, भरूदा
८५ श्री सोहनलालजी लूणकरणजी सुराणा, कुचेरा
८६ श्री घीसूलालजी, पारसमलजी, जवरीलालजी कोठारी, गोठन
८७ श्री सरदारमलजी एण्ड कम्पनी, जोधपुर
८८ श्री चम्पालालजी हीरालालजी बागरेचा, जोधपुर
८९ श्री पुखराजजी कटारिया, जोधपुर
९० श्री इन्द्रचन्दजी मुकनचदजी, इन्दौर
९१ श्री भवरलालजी बाफणा, इन्दौर
९२ श्री जेठमलजी मोदी, इन्दौर
९३ श्री बालचन्दजी अमरचन्दजी मोदी, ब्यावर
९४ श्री कुन्दनमलजी पारसमलजी भडारी, बेंगलोर
९५ श्रीमती कमलाकवर ललवाणी धमपत्नी श्री स्व पारसमलजी ललवाणी, गोठन
९६ श्री अखेचदजी लूणकरणजी भण्डारी, कलकत्ता
९७ श्री सुगनचन्दजी सचेती राजनादगाँव

९८ श्री प्रकाशचदजी जैन, भरतपुर
९९ श्री कुशालचदजी रिखबचन्दजी सुराणा, बालारम
१०० श्री लक्ष्मीचदजी अनोककुमारजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
१०१ श्री गूदडमलजी चम्पालालजी, गोठन
१०२ श्री तेजराजजी कोठारी, मांगलियावास
१०३ सम्पतराजजी चोरडिया, मद्रास
१०४ श्री अमरचदजी छाजेड, पादु बडी
१०५ श्री जुगराजजी धनराजजी बरमेचा, मद्रास
१०६ श्री पुखराजजी नाहरमलजी ललवाणी, मद्रास
१०७ श्रीमती कचनदेवी व निर्मलादेवी, मद्रास
१०८ श्री दुलेराजजी भवरलालजी कोठारी, कुशालपुरा
१०९ श्री भवरलालजी मागीलालजी बेताला, डेह
११० श्री जीवराजजी भवरलालजी चोरडिया, भैरूदा
१११ श्री मांगीलालजी शांतिलालजी रूणवाल, हरसोलाव
११२ श्री चादमलजी धनराजजी मोदी, अजमेर
११३ श्री रामप्रसन्न ज्ञानप्रसार केन्द्र, चन्द्रपुर
११४ श्री भूरमलजी दुलीचदजी बोकडिया, मेडतासिटी
११५ श्री मोहनलालजी धारीवाल पाली
११६ श्रीमती रामकवरबाई धर्मपत्नी श्री चादमल लोढा, बम्बई
११७ श्री मांगीलालजी उत्तमचदजी बाफणा, बेंगलोर
११८ श्री साचालालजी बाफणा, औरंगाबाद
११९ श्री भीकमचन्दजी माणकचन्दजी खाबिया, (कुडालोर), मद्रास
१२० श्रीमती अनोपकुवर धर्मपत्नी श्री चम्पालालजी सघवी, कुचेरा
१२१ श्री सोहनलालजी सोजतिया, थांवला
१२२ श्री चम्पालालजी भण्डारी, कलकत्ता
१२३ श्री भीकमचन्दजी गणेशमलजी चौधरी, धूलिया
१२४ श्री पुखराजजी किशनलालजी तातेड, सिकन्दराबाद
१२५ श्री मिश्रीलालजी सज्जनलालजी कटारिया सिकन्दराबाद
१२६ श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, बगडीनगर
१२७ श्री पुखराजजी पारसमलजी ललवाणी, बिलाडा
१२८ श्री टी पारसमलजी चोरडिया, मद्रास
१२९ श्री मोतीलालजी आसूलालजी बोहरा, एण्ड क , बेंगलोर
१३० श्री सम्पतराजजी सुराणा, मनमाड □□